GURUKUL PATRIKA

VOL 63, 64 2012

Jan. - Mar. Apr. - Jun. Jul - Sep Oct. - Dec.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Stock Verification 2023-24

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ISSN 0976-8017

॥ ओ३म् ॥

गुरुकुल पत्रिका

(प्राच्य विद्याओं की अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

64

जनवरी–मार्च 2012

131914

सम्पादक

डॉ. महावीर

आचार्य एवं उपकुलपति

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार - 249404

CC-0. In Public Domain. Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ISSN 0976-8017

ओ३म्

गुरुकुल - पत्रिका

(प्राच्य विद्याओं की अन्तर्राष्ट्रीय शोध - पत्रिका)

: 64

जनवरी, फरवरी, मार्च - 2012

131924

Central Library
Gurukul Kangri University
Haridwar-249404 (U.A.)

सम्पादक

डॉ. महावीर

आचार्य एवं उपकुलपति

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार-२४९४०४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक मण्डल

संरक्षक मण्डल:

श्री सुदर्शन शर्मा
कुलाधिपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पद्मश्री देवेन्द्र त्रिगुणा
परिद्रष्टा, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रो. स्वतन्त्र कुमार
कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आचार्य रामनाथ जी वेदालङ्कार
भूतपूर्व आचार्य एवं उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रधान सम्पादक:

डॉ. महावीर
आचार्य एवं उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी वि०वि०, हरिद्वार

सम्पादक मण्डल:

डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री, अध्यक्ष - वेद विभाग
डॉ० सत्यदेव निगमालंकार, अध्यक्ष - वैदिक शोध संस्थान
डॉ० ब्रह्मदेव विद्यालंकार, प्रोफेसर- संस्कृत विभाग

प्रकाशक:

प्रो. ए. के. चोपड़ा
कुलसचिव, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वित्त अधिकारी:

श्री आर०के० मिश्रा
वित्ताधिकारी, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Research Centre, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

			पृष्ठ संख्या
❖	वेदमञ्जरी	आचार्यः रामनाथ वेदालङ्कारः	-(v)
❖	सम्पादकीय	प्रो0 महावीर	-(vi)
1.	अथ त्रयोदशोऽध्यायः	डॉ0 विजयवीर विद्यालंकार	1
2.	प्रतापरुद्रदेव कृत ययातिचरित.....	डॉ0 वत्सला	13
3.	कालिदाससाहित्ये राज्याधिकारसदुपयोगित्वम्	डॉ0 धर्मदत्त चतुर्वेद	18
4.	भारत की प्राचीन शिक्षा-पद्धति के विकास.....	डॉ0 देवेन्द्र कुमार गुप्ता	23
5.	प्राचीन भारत में आश्रम व्यवस्था और वर्तमान...	अनीता स्नातिका	30
6.	प्राचीन भारत में संस्कार-मीमांसा तथा वर्तमान..	डॉ0 प्रभात कुमार	41
7.	''विज्ञानभैरव'' में सप्त-समाधि निरूपण	कु0 इन्दुशर्मा	55
8.	न्यायप्रवेश-सूत्रम् में हेत्वाभास विवेचन	डॉ0 (श्रीमती) लक्ष्मी मोर	59
9.	वैदिक साहित्य में मानवाधिकार की अवधारणा	डॉ0 योगेश शास्त्री	67
10.	वैदिकी राष्ट्रीय एकता की वर्तमान में प्रासंगिकता	डॉ0 आशा रानी पाण्डेय	73
11.	संस्कृतसमुन्नतौ उत्तराखण्डस्य योगदानम्	डॉ0 सरोज नौटियाल	80
12.	भारतीय धर्म-सम्प्रदायों में पारस्परिक सौहार्द....	डॉ0 प्रशान्त राठौर	83
13.	यजुर्वेद के कुछ मंत्र और गृहस्थ धर्म	डॉ0 हरिहर प्रसाद	93
14.	श्रौतयज्ञों के अनुष्ठान में अपेक्षित विधान	डॉ0 मीनाक्षी उपाध्याय (तिवारी)	99
15.	भारतीय नृत्य परम्परा : एक दृष्टि	डॉ0 अशोक कुमार शर्मा	103
16.	पाण्डुलिपि स्वरूप एवं महत्त्व	डॉ0 अर्चना त्रिपाठी	109
17.	कालिदास रचित ग्रन्थों में वर्णित आभूषण	डॉ. भावना आनन्द	113
18.	कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा: एक निरूपण	प्रो0 डॉ0 वेदप्रकाश उपाध्याय	117
19.	रामराज्य या मार्क्सवाद- एक अन्तःचिन्तन	डॉ0 मंजू अवस्थी, डॉ0 अर्चना	121
20.	विश्वामित्र द्वारा दृष्ट कलायें	श्रीमती रूप माला शर्मा	126
21.	मानव-निर्माण में आर्य समाज का बहुमूल्य...	डॉ0 दीपा गुप्ता	134
22.	अग्निपुराण में आयुर्वैदिक चिकित्सा	डॉ0 उमा जैन	141
23.	महाभारत के नारीपात्र एक अन्तर्दृष्टि	डॉ0 पद्मजा अभित	147
24.	वेदों में अध्यात्म	डॉ0 दीनदयाल वेदालंकार	153

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

25.	गीतोक्त 'स्वधर्म' का आधुनिक परिप्रेक्ष्य..	डॉ0 सुनीता सैनी	159
26.	''गीता के निष्काम कर्म की आधुनिक युग..	डॉ0 आशा	164
27.	वेदों में पर्यावरण चिन्तन	प्रो0 सत्येदव निगमालंकार चतुर्वेदी	169
28.	वैदिक साहित्य में वर्णित पर्यावरणविषयक	डॉ0 नरेश कुमार,	175
29.	वैदिक वाङ्मये प्राचीनशिक्षाविमर्श:	रवीन्द्र कुमार	180
30.	वैदिक वाङ्मय में लोकसंगीत एक चिन्तन	डॉ0 निशा पाठक	189
31.	Soft drinks consumption and human health	Vipin K. Sharma, B.Mazumdar	195

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदमञ्जरी

इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम, वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः।
नकिरापि र्ददृशे मर्त्यत्रा, किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः॥

ऋग् ६.४४.१०

ऋषिः शंयुर्बार्हस्पत्यः। **देवता** इन्द्रः। **छन्दः** त्रिष्टुप्।

(**मघवन्**) अयि प्रशस्तधनवन् (**इन्द्र**) परमेश्वर! (**वयं तुभ्यं दात्रे इत् अभूम**) वयं तुभ्यं दानशीलायैव सञ्जाताः। (**हरिवः**) हे किरणवन्! हे ऋक्-साम-किरण-युक्त! (**मा वि वेनः**) अस्मत् प्रीतिविमुखो मा भूः। (**मर्त्यत्रा**) मनुष्येषु (**आपिः**) बन्धुः (**नकिः**) न कश्चिदपि दृश्यते। (**अङ्ग**) हे प्रिय, हे भद्र! (**किं त्वा**) किमर्थं त्वाम् (**रध्रचोदनम्**) सफलतायाः प्रेरकम् (**आहुः**) कथयन्ति।

अयि इन्द्र! हे परमात्मन्! त्वं मघवा असि, धनाधिपतिरसि। तदतिरिक्तं त्वं धनस्य दाताऽप्यसि। साकमेव त्वदीयं धनं प्रशस्तमप्यस्ति, शुभ्रमस्ति, समुज्ज्वलमस्ति। अस्माकं लौकिक जनानां धनमिव नानाविधापवित्रतापूरितं नास्ति। मनुष्यस्य पूर्णपवित्रत्वम् यतोऽसभ्यवमस्ति, अतः तदर्जितं धनमपि पूर्णतः पवित्रं न भवति। विरल एव कश्चिज्जनः एतद् वक्तुं साहसं कर्तुं, शक्नोति, यत् तेन धनोपार्जनकाले किमपि प्रकारकम् असत्यं, छलच्छिद्रं वा नाचरितमिति। परं प्रभोस्तव धनस्य विषये वयं पूर्णविश्वासेन वक्तुं शक्तुमो यत् तत् पूर्णतः पवित्रमस्ति। किन्तु 'मघ' नाम्ना केवलं भौतिकं धनमेव न सूच्यते, शरीरं, मानसं, बौद्धिकम्, आत्मिकं, नैतिकं धनमपि मघपदवाच्यं भवति। हे परमेश! त्वं समस्तस्यापि पवित्रस्य धनस्य दानमस्यभ्यं करोषि। परं तत्कृते एतदावश्यकमस्ति यद् वयं तव भवेम, स्वात्मानं त्वां समर्पयेम। अतः अद्य वयमस्मान् त्वा समर्पयामः। हे परमेश! त्वं 'हरिवान्' असि, हरयो नाम किरणाः, तद्वानसि। स्वकीयान् दिव्यज्योतिष्किरणान् अस्माकमुपरि प्रक्षिप्य सूर्यवद् अस्मान् विभासय। हे देवेश! त्वं ऋक्-सामरूपकिरणवानसि। ऋचां स्तोत्राणि साम्नां च गीतानि तव वाहनानीव सन्ति। तैस्त्वं विश्वयात्रां कर्तुमर्हषि विश्वस्मिन् प्रकाशं, प्रापयसि त्वं स्वप्रीत्या अस्मान् सभाजय, अस्मान् प्रीतिविमुखान् मा कार्षीः।

हे प्रिय! वयं त्वदतिरिक्तं कस्य द्वारं गच्छेम, मनुष्येषु वयं कमपि स्वबन्धुं न पश्यामः, योऽस्माकम् 'आपिः' भवेत्, संकटकालेऽस्मत्सकाशं धावन्नागच्छेत्। अस्मान् स्वात्मनि व्याप्नुयात्, अस्माकमभिन्नहृदयो जायेत। जगति सर्वेऽपि स्वार्थस्य कृते मित्राणि प्रतीयन्ते। अतो हे प्रभो! वयं त्वां स्वकीयम् 'आपिं' कुर्मः, त्वमस्मान् स्वशरणे गृहाण त्वं संकुचसि किमर्थम्? किं व्यर्थमेव जगत् त्वां रध्रचोदनं कथयति? सफलताप्रदातुः रूपेण तव महिमानं गायति/नहि, त्वं सत्यमेव सफलतायाः दाताऽसि। त्वमस्मान् स्वकीयेबन्धुत्वे बधान, स्वस्नेहस्य पात्रं कृणुहि।

आचार्य रामनाथ वेदालङ्कारः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

नव वर्ष मंगलमय हो

विक्रमी संवत् 2068 विदा हो रहा है और 2069 का शुभागमन सबको हर्षित कर रहा है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा का दिवस कोटि-कोटि भारतीयों का अभिनन्दन करता है। इस वर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदा 23 मार्च 2012 के रूप में उपस्थित है, जो देश की स्वतन्त्रता के लिये हंसते-हंसते मृत्यु का आलिंगन करने वाले शहीदे आजम भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव का पुण्य स्मरण कराता है। किस धातु से बने हुए थे ये अमर शहीद, जो समस्त सांसारिक इच्छाओं का परित्याग कर बलिदान हो गये। यह थी देश प्रेम की उदात्त भावना। धीर-धीरे यह राष्ट्र प्रेम क्षीण होता जा रहा है।

नव वर्ष का प्रथम दिवस आर्य समाज स्थापना दिवस के रूप में भी हर्षोल्लास प्रदान करता है। यह स्मरण कराता है-युग प्रवर्त्तक देव दयानन्द के दिव्य, भव्य, अद्भुत, ब्रह्मचर्य की अलौकिक शक्ति और ईश्वराराधन से प्राप्त आध्यात्मिक तेज से विभूषित व्यक्तित्त्व को राष्ट्रहित विष के प्याले पीने वाले, हजारों विरोधियों के मध्य सिंहवद गर्जना करने वाले और मानवता की सेवा में अपना सर्वस्व समर्पित कर देने वाले महर्षि ने नव वर्ष के प्रारम्भ में 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के उद्घोष को सार्थक करने के लिये मुम्बई में आर्य समाज की स्थापना की थी। महर्षि दयानन्द ने और उनके पदचिहनों पर चलने वाले पं० लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, पं० गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा हंसराज, लाला लाजपतराय सदृश अनेक महापुरुषों ने लेखनी और वाणी के माध्यम से देशवासियों को श्रेष्ठतम जीवन जीने का मार्ग दिखाया। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने हरिद्वार में गंगा तट पर गुरुकुल कांगड़ी वि०वि० की स्थापना कर प्राचीन गुरुकुल शिक्षा पद्धति को पुनरूज्जीवित किया तो महात्मा हंसराज जी ने डी०ए०वी० के विद्यालयों, महाविद्यालयों के माध्यम से प्राचीन और अर्वाचीन विषयों के अध्ययन-अध्यापन का मार्ग प्रशस्त किया। वैदिक वाङ्मय के प्रचार-प्रसार के लिये गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों और उपाध्यायों ने अनेक कालजयी ग्रन्थों की रचना की। नव वर्ष की मंगल बेला पर आर्य समाज के महान आन्दोलन को श्रद्धा पूर्वक स्मरण और नमन करना चाहिए।

नव संवत्सर के स्वागत, अभिनन्दन के क्रम में रामनवमी का अतिपावन दिवस भी भारतीयों को जीवन का नव सन्देश प्रदान करता है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का आदर्श जीवन मानव मात्र के लिये प्रेरणा का अखण्ड स्रोत है। एक आदर्श राजा, आदर्श पिता, आदर्श पति और आदर्श पुत्र के रूप में श्रीराम के जीवन के अनेकानेक प्रेरक प्रसंगों को स्मरण कर जीवन पवित्रता से भर जाता है। आज भी हम सब भारतवासी रामराज्य की कामना करते हैं, क्योंकि रामराज्य एक ऐसी आदर्श कल्पना है, जिसमें प्रत्येक नागरिक की दैहिक, दैविक और भौतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संतापों से मुक्त होने की कामना की गई है। महाकवि भवभूति ने 'उत्तर रामचरित' नामक अमर नाटक में श्रीराम के प्रजानुरञ्जन रूप की इस प्रकार प्रशंसा की है-

'स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि'
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा''

अर्थात् प्रजा आराधन के लिये न केवल स्नेह, दया और सुख अपितु प्राणवल्लभा जानकी का परित्याग करने के लिये भी श्रीराम तत्पर हैं। आदि कवि ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के महनीय गुणों का व्यापक रूप से वर्णन किया है। वे लिखते हैं-

'कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति,
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्त्मवत्तया।।'

अर्थात् श्रीराम जीवन में कभी किसी ने कोई एक उपकार किया है तो उसी से परम प्रसन्न हो जाते हैं। उसे सदा कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करते हैं और किसी द्वारा किये सैकड़ों अपकारों को स्मरण नहीं करते। ऐसा था अनुपम जीवन, भगवान् श्रीराम का।

स्वार्थ-पङ्क में डूबे हुए, कृतज्ञता शब्द को विस्मृत कर देने वाले मानव को श्रीराम का पावन चरित्र सदैव स्मरण करना चाहिये।

नव संवत्सर, नये-नये पर्व, महापुरुषों की जयन्तियां, वेद की ऋचाएं, रामायण और महाभारत के भावपूर्ण पद्य, उपनिषदों के सन्देश, श्रीमद्भगवद्गीता के श्लोक, महाकवि कालिदास की रससिक्त कविता, गोस्वामी तुलसीदास का रामचरित मानस, महर्षि दयानन्द का सत्यार्थ प्रकाश आदि सब हमें जगाना चाहते हैं, कल्याण पथ पर चलने की प्रेरणा देते हैं, लेकिन हम ही हैं कि इन उपदेशों को श्रवण नहीं कर पाते।

आइये। नव संवत्सर का और आर्य समाज स्थापना दिवस का तथा मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के जन्म दिवस का अभिनन्दन करते हुए आत्मकल्याण का और अन्यों के कल्याण का श्रेष्ठ मार्ग स्वीकार करें। अन्त में-

संसारेऽस्मिन् विलसतु पुनः भव्यवेदांशुमाली,
संस्काराणां भवतु महतां पावनानां प्रचारः।
वर्षतु वेदामृतजलधरो वारिधारां प्रवर्षन्,
लोक स्वान्ते सकल सुखदा स्यन्दतां स्नेह धारा।।

मंगलाभिलाषी
प्रो० महावीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदा-काव्यामृतम्

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

डॉ० विजयवीर विद्यालंकार
पूर्व, संकायाध्यक्ष उस्मानिया विश्वविद्यालय
हैदराबाद।

मयि गृह्णाम्यग्रेऽअग्निꣳरायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्याय।
मामु देवताः सचन्ताम्॥१॥
ब्रह्मचर्याश्रम में सभी को, वेदादि पढ़ना चाहिए।
सच्छास्त्र पढ़कर उत्तमोत्तम, कर्म करना चाहिए॥
नित्य ईशोपासना, ब्रह्मज्ञान-अवगाहन करें।
श्रेष्ठ गुण-विद्वत् समागम, सन्तान धन-अर्जन करें॥1॥
अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम्।
वर्धमानो महाँ२ऽआ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व॥२॥
जो सत् चित् आनन्दस्वरूप है, वही जगत् रचने हारा।
वही सर्वव्यापक सर्वोत्तम, सर्वशक्तिमय सबसे न्यारा॥
उसी ब्रह्म की कर उपासना, विद्यादि अनन्त गुण प्राप्त करें।
उसका ही सेवन करके, भव-बन्धन सकल समाप्त करें॥2॥
ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचोवेनऽ आवः।
स बुध्न्याऽउपमा ऽ अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः॥३॥
आदि सृष्टि में सर्वोत्पादक, सबका ज्ञाता परमेश्वर है।
विस्तारयुक्त विस्तारयिता, सबसे बढ़कर सर्वेश्वर है॥
सुन्दर प्रकाशयुत शुचिकर, रुचि का विषय-ग्राह्य घ्राणेश्वर है।
जलाकाश में वर्तमान, स्थित सूर्यादि लोक स्थानेश्वर है॥
विविध स्थलों में स्थित ईश्वर, इसका प्रमाण व्योमेश्वर है।
अपनी व्याप्ति से आच्छादित, मार्यादा में स्थित ईश्वर है॥
अव्यक्त और कारण के स्थान को, प्राप्त वही जगदीश्वर है।
जो सब लोकों को नियमित करता, वही सेव्य ब्रह्मेश्वर है॥3॥
हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥४॥
उत्पन्न हुए संसार का कर्ता और पालक परमेश्वर है।
स्वयं समर्थ सूर्यादि तेजमय का आधार वह ईश्वर है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत्-रचना के पूर्व वही था, सब लोकों का धर्ता लोकेश्वर है।
सुख स्वरूप उस दिव्य ज्योति की, सेवा में यह आत्मा तत्पर है।।4।।

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः।।५।।

पंच प्राण मन और आत्मा, ये सात ग्रहण के साधन हैं।
पृथिवी सूर्यादि लोक-लोकान्तर, परमात्मा के कारण हैं।।
वह व्यापक है पूर्ण पुरुष, आनन्दस्वरूप सार्वत्रिक है।
नित मिलता है आनन्द और उत्साह उसी से हार्दिक है।।5।।

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु।
येऽ अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः।।६।।

दृश्य और अदृश्य लोक, अपनी-अपनी कक्षा में स्थिर हैं।
नियमानुसार आकाश मार्ग में, भ्रमणशील और सुस्थिर हैं।।
सब लोकों में प्राणी रहते, एक-समान चराचर हैं।
जीवन का आधार अन्न, सबको देता वह ईश्वर है।।6।।

याऽइषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीꣳरनु।
ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः।।७।।

राहजनों चोरों व उचक्कों से, सदैव तुम सजग रहो।
निशाचरों सर्पों दुष्टों के, छेदन-हित तुम वज्र गहो।।7।।

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्य्यस्य रश्मिषु।
येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः।।८।।

जल थल और आकाश-मार्ग में, दुष्ट जीव जो रहते हैं।
उन सब के संहार-कार्य में, वीर सदा रत रहते हैं।।8।।

कृणष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँꣳइमेन।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः।।९।।

पाकर बल भूमि पर जाल बिछा, सेनापति ऐसी चाल चले।
फंस जाए शत्रु-सेना उसमें आकण्ठ हस्तिवत् गर्त तले।।
नृप-समान सन्देशा-वाहक, विश्वायुपात्र हो तेरे पले।
दुःखदायी शास्त्रों से शीघ्र ही, शत्रु के रक्तिम गात्र गले।।9।।

तव भ्रमासऽआशुया पतन्त्यनु स्पृश घृषता शोशुचानः।
तपूꣳष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो विसृज विष्वगुल्काः।।१०।।

अग्नि समान तेजस्वी सेनानायक, तू रहना पुनीत।
प्रबल सैन्य के साथ विजय पाकर भी तू रहना विनीत।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आग्नेयादि अस्त्र-शस्त्र से, विद्युत-सा कर वृष्टिपात।
शत्रु-सैन्य पर श्येन तुल्य, तू करना तककर तुरत घात।।10।।

प्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशोऽअस्या अदब्धः।
यो नो दूरे ऽ अघशꣳसो योऽअन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत्।।११।।

अग्नि-तुल्य तू शत्रु सैन्य को, जला-जलाकर करना राख।
बान्ध शत्रु को कठिन दण्ड दे, राज्य-प्रजा की रखना साख।।
पापी डाकू चोर शत्रुजन का, तू करना समूल नाश।
पास-दूर जो भी शत्रु हो, उन सबका करना विनाश।।11।।

उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्राँ२ऽ ओषतात्तिग्महेते।
यो नो ऽ अरातिꣳ समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम्।।१२।।

राजा आदि सभ्य जनो, सब धर्म-विनय-सम्पन्न बनो।
मित्रों के लिए हिम तुल्य बनो, शत्रु के लिए तुम दहन बनो।।12।।

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने। अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून्। अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि।।१३।।

राज्यैश्वर्य पाकर मनुष्य, उत्तम स्वभाव-गुण-कर्म धरे।
दीन-हीन जन के दुःख-दर्दों को लखकर अविलम्ब हरे।।
दुष्ट अधर्माचारी मनुजों के हित, दण्ड-विधान करें।
शिष्टातिधर्मपरायण जन को, सुख-समृद्धि प्रदान करे।।13।।

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या ऽ अयम्।
अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति। इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि।।१४।।

जैसे सूर्य आकाश में चमचम, सब के सिरों पर लसता है।
वैसे ही राजा धरती पर, सबका सिरमौर विलसता है।।14।।

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः।।
दिवि मूर्द्धानं दधिषे स्वर्षा जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम्।।१५।।

जिस राज्य में विद्वद्राजा हो, वायु-तुल्य गतिशाली हो।
ऐश्वर्यवान् नेता न्यायाधिप, कल्याणी बलशाली हो।।
राजधर्म-पालक गुण ग्राहक, सत्पुरुषों का धर्ता हो।
सद्वाणी सद्विषय-ग्रहीता, सुखकारी सद्भर्ता हो।।15।।

ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा।
मा त्वा समुद्रऽउद्वधीन्मा सुपर्णोऽव्यथमाना पृथिवीं दृꣳह।।१६।।

राजनीति-विद्या को राजा, रानी भी शिक्षा को गहे।
स्त्री-व्रत हो राजा, रानी भी पतिव्रता होकर के रहे।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा पुरुषों, रानी स्त्री-जन का, विधिवत् सदसत् न्याय करे।
धर्मानुकूल आचरण करे, न किसी पे कभी अन्याय करे।।16।।

प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन्।
व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं ग्रथस्व पृथिव्यसि।।१७।।

जिस-जिस विभाग में राज-कार्य हित, राजपुरुष कार्यादि करें।
उस-उस विभाग में स्त्री जन भी नियुक्त, कार्य-निर्वाह करें।।
पुरुषों के कार्य पुरुष निपटाएँ है, स्त्रियों के कार्य स्त्री-जन देखें।
न्यायपूर्ण व्यवहार करें सब के संग, सब विध जांचे-परखें।।17।।

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः।।१८।।

भूमि-समान रानी कुलीन भी, राज्य-कार्य अधिकारी है।
गृहस्थ राज्य-सम्बन्धी व्यवहारों में, सम-सहकारी है।
पृथिवी-समान यह धैर्यशालिनी, अखण्ड ऐश्वर्य-बिहारी है।
पुरुष समान स्त्री समधिकारिणी, सर्व क्षेत्र-कृषिकारी है।।18।।

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय।
अग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद।।१९।।

हे स्त्री जो विज्ञानयुक्त, तेरा पति बहु सुखकारी है।
प्रकाशयुक्त अत्यन्त सुखद कर्मों का वह अनुकारी है।।
जीवन के हेतु प्राण दुःखों की निवृत्ति में, वह सजग रहे।
बहुविध उत्तम व्यवहार-सिद्धि में, उत्तम बल से अड़िग रहे।।
सत्कार और धर्माचरणों में, वह सदैव तेरे साथ रहे।
तू भी दिव्यस्वरूप पति से, निश्चल घनिष्ठ हो साथ रहे।।19।।

काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।
एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्त्रेण शतेन च।।२०।।

जैसे दूर्वा घास-ओषधि, रोगों को दूर भगाती है।
सुखों को बढ़ाती विस्तृत होती हुई, सुहानी लगती है।।
वैसे ही विदुषी स्त्री अनेकविध, पतिकुल का विस्तार करे।
पुत्र-पौत्र-ऐश्वर्ययुक्त हो, स्नेहसिक्त व्यवहार करे।।20।।

या शतेन प्रतनोषि सहस्त्रेण विरोहसि।
तस्यास्ते देवष्टिके विधेम हविषा वयम्।।२१।।

दृढ़ संकल्पों से युक्त, शुभ गुणों से शोभित देवी नारी।
शत-सहस्र ईंटों से निर्मित, गृह की भाँति तुम घरवाली।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी तरह से कुल को बढ़ाती, सब को साथ मिलाती हो।
सुख-सुविधा सब को देकर के, खाती और खिलाती हो।।21।।

यास्ते ऽ अग्ने सूर्य्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः।
तामिर्नोऽ अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि।।२२।।

घर के काम गृहणियाँ मन से और रुचि से किया करें।
उत्साह युक्त स्वयं होकर औरों को भी प्रेरित किया करें।।
गृह-कार्यों के सम्पन्न हेतु सब को साथ में लिया करें।
प्रीतिभाव से सुख-संवर्धन हेतु, सम्मति दिया करे।।22।।

या वो देवाः सूर्य्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः।
इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते।।२३।।

सद्गृहस्थ जन की जो रुचि, गौ अश्वादिक में होती है।
उसी तरह वैज्ञानिक की, सुख-साधन में प्रतीति होती है।।
विद्युत और तेजस्वी उपदेशक की, शिक्षा को मानो।
पूर्वाग्रह और पक्षपात को छोड़, पूर्ण विद्या जानो।।23।।

विराड् ज्योतिरधारयत् स्वराड् ज्योतिरधारयत्।
प्रजापतिष्ट्वा सादयतु पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम्।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्व ज्योतिर्यच्छ।
अग्निष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद।।२४।।

विविध विद्याओं में पारंगत स्त्री, विद्या का विकास करे।
सब धर्मयुक्त व्यवहारों में, शुद्धाचारी पति-आस करे।।
अग्नि समान तेजस्वी सुन्दर, देवस्वरूप तेरा स्वामी।
सूत्रात्मा वायु के समान, तू दृढ़ता हो अनुगामी।।
प्रजा का रक्षक तेरा पति, भूमि के ऊपर सुस्थित हो।
सुख प्राप्ति दुःख निवृत्ति हेतु, सुन्दर गुण-कर्मों में स्थित हो।।
शंसित विद्या ज्ञान युक्त तुझको अधिकार प्रदान करे।
तू भी समग्र विज्ञान-ज्ञान से, पतिवर से आदान करे।।24।।

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू ऽअग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठयाय सव्रताः। येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽ इमे वासन्तिकावृतूऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्।।२५।।

चैत्र और वैशाख मास ये, ऋतु वसन्त कहलाते हैं।
ज्येष्ठ मास की श्रेष्ठता लिए, गरमी लेकर आते हैं।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों मास माधुर्य को लिए मधुर फलान्वित रहते हैं।
सूर्य, भूमि, जल, औषधियाँ, माधुर्य-प्रपूरित रहते हैं।।
सद्व्यवहार-समविज्ञानविद्, अग्नि-समान कालज्ञानी।
अष्टैश्वर्य-प्राप्ति-हित पाएँ, ये होते सात्विक दानी।।
जैसे प्रकाश और अन्तरिक्ष, परमात्मा-संग प्राणवत् दृढ़ हैं।
वैसे ही स्त्री-पुरुष वसन्त में, ऋतु-अनुकूल ही सुदृढ़ हैं।।25।।

अषाढासि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः।
सहस्त्रवीर्य्यासि सा मा जिन्व।।२६।।

सहनशीला तू पति की, अन्य की परवाह न करती।
बात माने तू पति की, क्षमा सब अपराध करती।।
उत्तम पराक्रम युक्त स्त्री, अपने पति को तृप्त करती।
ऋतुकाल में पतिवर्य से, आनन्द की अनुभूति करती।।26।।

मधु वाताऽऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः।।२७।।

वायु मधुर ज्यों ऋतु बसन्त में, जलवत् प्रवाहित होती है।
ज्यों सागर या नदियाँ, कोमलयुत नीर बहाती हैं।।
ज्यों औषधियाँ मधुर रसान्वित और गुणान्वित होती हैं।
उसी तरह इन्द्रियाँ हमारी, ऋतु अनुकूल विचरती हैं।।27।।

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता।।२८।।

रात्रि सुकोमल ऋतु वसन्त में, सब के मन को हरती है।
सूर्योदय से अस्त समय तक, मन में मधुरता रहती है।।
पृथिवी के कण-कण में, मधुर गुणों की गरिमा दिखती है।
कोयल के कुहू-कुहू शब्द से श्रुति-मधुरिमा छलकती है।।
प्राणिमात्र पुलकित होता, प्रकृति की छटा झलकती है।
प्रकृति-सुन्दरी सुरभित होती, नव-यौवना-सी लगती है।।28।।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ऽ अस्तु सूर्य्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः।।२९।।

वसन्त ऋतु में वनस्पतियाँ, हमारे लिए सुखकारी हों।
कोमल गुणवाली होकर के, स्वास्थ्य-हेतु हितकारी हों।।
सूर्य सुहाता लगे, किरण गौ के समान मृदुकारी हो।
यज्ञानुष्ठानों का फल भी, सब के लिए उपकारी हो।।29।।

अपां गम्भन्त्सीद मा त्वा सूर्य्योऽभितापसीन्माग्निर्वैश्वानरः।
अच्छिन्नपत्राः प्रजाऽ अनुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम्।।३०।।

तू वसन्त ऋतु में जल के आधार रूप धन में स्थिर हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदी जलाशय का सेवन कर, सूर्य-ताप तेरे हितकर हो।।
वर्षेष्टि यज्ञ से वर्षा हो यज्ञों के लिए तू आतुर हो।
सारी प्रजा आनन्दित हो और कभी नहीं अनातुर हो।।30।।

त्रीन्त्समुद्रान्त्समसृपत् स्वर्गानपां पतिर्वृषभ ऽ इष्टकानाम्।
पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः।।३१।।

मनसा वाचा और कर्मणा, त्रिविध सुखों को प्राप्त करें।
सभी कामनाएँ पूरी हों, ऐसी विधि सम्प्राप्त करें।।
पूर्व पुरुष जैसे करते आये, हम सब भी किया करें।
ऋतु वसन्त धर्मानुकूल हो, नहीं गलत हम क्रिया करें।।31।।

मही द्यौः पृथिवी च न ऽ इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः।।३२।।

सूर्यलोक और भूमि ज्यों संसार का पालन करते हैं।
नित माता और पिता दोनों, कामना प्रपूरण करते हैं।।
विद्या-ग्रहण व्यवहार-रूप, वे सेव्य प्रसेचन करते हैं।
वसन्तादि ऋतुओं में उत्तम, धारण-पोषण करते हैं।।32।।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा।।३३।।

उस व्यापक ईश्वर के कर्मों, न्याय, प्रलय, पालन देखो।
सत्य भाषणादि नियमों और स्पर्शादिक के गुण परखो।।
परमैश्वर्य का इच्छुक प्राणी, मित्र-समान है उपास्य वही।
जिसके प्रताप से जीव जी रहा है, सबका आवास्य वही।।33।।

ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्यो ऽअधि जातवेदाः।
स गायत्र्या त्रिष्टुभानुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्।।३४।।

हे स्त्री जैसे तू शुभ गुण का, धारण करने वाली है।
निज कर्त्तव्यों में स्थिर हो, व्यवहार निभाने वाली है।।
वैसे ही पुरुषों की तरह, विद्या स्वकीय समृद्ध करो।
विदुषी बन उपदेशों द्वारा, स्त्री-विज्ञान प्रवृद्ध करो।।34।।

इषे राये रमस्व सहसे द्युम्नऽ ऊर्जेऽ अपत्याय।
सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम्।।३५।।

पुरुष विद्यादि गुणों से, स्वयं पुंज प्रकाश हो।
स्त्री स्वयं विज्ञान सत्याचरण से शुभ वास हो।।
मिलके दोनों विज्ञान धन बल यश व अन्नार्जन करें।
सन्तान प्राप्ति और पराक्रम, नित्य लाभार्जन करें।।35।।

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देवा साधवः। अरं वहन्ति मन्यवे।।३६।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्य गुण से युक्त राजा का परम कर्त्तव्य है।
अभीष्ट सिद्धि के लिए नित शत्रु-जय गन्तव्य है।।
अश्वों को ऋतु वसन्त में, सम्यक्तया शिक्षित करें।
चालक जनों को नियुक्त कर, उनको भी प्रशिक्षित करें।।36।।

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ२ऽ अश्वाँ२ऽ अग्ने रथीरिव। नि होता पूर्व्यः सदः।।३७।।

पूर्वज विद्वानों से सुशुक्षित, दानशील ही राजा हो।
सेना के अंगों से सज्जित, न्यायाधिप अधिराजा हो।।37।।

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना ऽ अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः।
घृतस्य धाराऽअभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्येंऽअग्नेः।।३८।।

जैसे वेगवती नदियाँ, सागर में जा मिल जाती हैं।
उसी तरह विद्वानों को पाकर, वाणी स्थिर हो जाती है।।38।।

ऋचे त्वा रुरूचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा।
अमूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वारस्य च।।३९।।

मनुष्यों में स्थित विद्युताग्नि और सब पदार्थ का ज्ञाता हो।
उसको ही विद्वान् जानना, जो इनकी शिक्षा का दाता हो।।
जिसको सीख पदार्थों के प्रति, प्रीति रूचि-परिज्ञान बढ़े।
विशेष ज्ञान और न्याय-प्रकाश की सीढी पर अविराम चढ़े।।39।।

अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान्।
सहस्त्रदाऽ असि सहस्त्राय त्वा।।४०।।

जो अग्नि तुल्य तेजस्वी और सुवर्ण-तुल्य वर्चस्वी हो।
विद्या-प्रकाश से ज्योतिर्मय, सुखदायक और मनस्वी हो।।
उनको ही विद्वान् जानकर, उनसे ही शिक्षा लेना।
उनसे अनन्त विज्ञान सीखकर, सदानन्द दीक्षा लेना।।40।।

आदित्यं गर्भं पयसा समङ्धि सहस्त्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्।
परिवृङधि हरसा माभि मंस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः।।४१।।

हे स्त्री-पुरुषो! नित्य सुगन्धित, पदार्थों से तुम होम करो।
सूर्य-प्रकाश जल-वायु-शुंद्ध हित, अन्तरिक्ष में धूम भरो।।
रोग रहित होकर सौ वर्षों जीने वाली सन्तान जनो।
विषयासक्ति अभिमान रहित हो, पूर्णायुष्य विद्वान् बनो।।41।।

वातस्य जेतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानꣳसरिरस्य मध्ये।
शिशुं नदीनाथ्ं हरिमद्रिवुध्नमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन्।।४२।।

तेजस्विन् विद्वान् आप मेघों का कभी न नाश करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये जलकारक नदी प्रवाहक, हर दुःख का नित ह्रास करें।।
बालक-समान ये राग-द्वेष से रहित सदा ही रहते हैं।
जीवन-शक्ति पदार्थ प्रदायक, इनसे बल बढ़ते रहते हैं।।42।।

अजस्त्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः।
स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिꣳसीरदितिं विराजम्।।४३।।

स्वास्थ्य प्रदायक अन्न, शक्तिप्रद जल का सेवन किया करें।
ऋतु अनुकूल क्रियामय होकर, पृथिवी का रक्षण किया करें।।43।।

वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाꣳ रजसः परस्मात्।
महीꣳ साहस्त्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन्।।४४।।

हे ज्ञानी! आकाश-समान, विस्तृत भूमि मत नाश करो।
महिमाशालिनी पृथिवी से, जीवन रक्षा का विकास करो।।
फल-प्रदायिनी सूर्य-वारिणी, जल-घनाधार यह धरती है।
ईश-रचित इसके गुण जानो, यह सुख की वर्षा करती है।।44।।

यो ऽ अग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्याऽ उत वा दिवस्पतरि।
येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु।।४५।।

अग्नि-विद्या जानकर, जन-कल्याण हित उपयोग हो।
सूर्य पृथिवी और विद्युतजन्य का न दुरुपयोग हो।।45।।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षꣳ सूर्य्यऽ आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।।४६।।

इस विचित्र सृष्टि को देखो, कितनी यह विस्मयकारी है।
उस अद्भुत अनन्त की रचना, अतुलित अनुपम न्यारी है।।
उदित सूर्य की किरणें देखों, उनकी छवि कितनी प्यारी है।
जड़-चेतन आकाश-व्याप्त इनकी महिमा अति भारी है।।
प्राणापान उदान अग्नि का, प्रकाशक वह परमेश्वर है।
वह सर्वान्तर्यामी रक्षक, उपास्य वही त्रिलोकेश्वर है।।46।।

इमं मा हिꣳसीर्द्विपादं पशुꣳ सहस्त्राक्षो मेधाय चीयमानः।
मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद।
मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु।।४७।।

मनुष्य जन्म को पाकर के, उन्नति पथ को तुम गाहा करो।
असंख्य आँख वाले होकर, सुख-सागर में तुम बहा करो।।
दोपाये मनुजों चौपाये, पशुओं का वध मत किया करो।
उपकारी गौ आदि प्राणी को, संरक्षण नित दिया करो।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शस्यादि नाश करने वाले, जंगली पशु का वध किया करो।
खेती-हित उपयोगी ग्राम्य, पशुओं का संग्रह किया करो।।47।।

इमं मा हिꣳसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु।
गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद।
गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु।।४८।।

एक खुर वाले अश्वादि पशु, बहु उपयोगी होते हैं।
दर्शनीय और वेगवान, संग्राम-योग्य ये होते हैं।।
आरण्यक और हानि रहित पशु, रक्षणीय से होते हैं।
अनुपकारक सिंहादि तो, हिंसनीय ही होते हैं।।48।।

इमꣳ साहस्रꣳ शतधारमुत्सं व्यच्यमानꣳ सरिरस्य मध्ये।
घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन्।
गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानतन्वो निषीद।
गवयं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु।।४९।।

असंख्य सुखों का साधन, दुग्ध की धारा जो नित्य बहाती है।
पालन-रक्षण योग्य होने से, गौ माता अघ्न्या कहलाती है।।
कूप-समान पालक कृषि योग्य, बलवान बैलों को देती है।
नित घी से परिपूर्ण हमें करती, गौ माता अहिंस्या होती है।।
गौ के समान नील गौ आदिक, खेती-हानि जो करती है।
उनको मारना राजधर्म है, इससे प्रजा उबरती है।।49।।

इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम्।
त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिꣳसीः परमे प्योमन्।
उष्ट्रमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद।
उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु।।५०।।

दोपाये मनुष्य पक्षी आदि, चौपाये भेड़-भेडी पालो।
रोम त्वचा से लाभ उठाने, सुख-साधन-हित इनको ढालो।।
भार वहन करने वाले ऊँटों की रक्षा नित किया करो।
दुःखदायी दुष्ट हत्यारों को, निःसंकोच दण्ड नित दिया करो।।50।।

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सो ऽ अपश्यज्जनितारमग्ने।
तेन देवा देवतामग्रमायँस्तेन रोहमायन्नुप मेध्यासः।
शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद।
शरभं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु।।५१।।

बकरे मोर आदि पशु-पक्षी की हत्या, कोई न करे।
वृद्धि प्रदायक सुखदायक, पशुओं की हत्या भी न करें।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषि-नाशक पशु सेह आदि हिंस्रक वृत्ति का नाश करें।
हितकारी पशु-पक्षी की रक्षा कर, उचित विकास करे।।51।।

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄंः पाहि श्रृणुधी गिरः। रक्षा तोकमुत त्मना।।५२।।

युवकजनो! सुखदायक धर्मज्ञों का हरदम त्राण करो।
उनके उपदेशों को सुन, निज रक्षा पशु-सन्तान करो।।52।।

अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्यन्त्सादयाम्यपां त्वा भस्मन्त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वायने सादयाम्यर्णवे त्वा सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि। सरिरे त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा सधिषि सादयम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रेष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि।।५३।।

अध्यापक शिष्यों को, हर प्रकार की शिक्षा दिया करें।
जिससे उनका सर्वांगपूर्ण विकास सदा ही हुआ करे।।
प्राण-ज्ञान ओषधि-विज्ञान-निर्माण-कला-परिज्ञान करे।
विद्युत्-विद्या और अन्तरिक्ष गतिमान-ज्ञान का भान करे।।
मन, श्रोत्र, नेत्र संयमित बनें, ऐसी विद्या का ग्रहण करें।
अन्नादि पदार्थों की प्राप्ति उपयोग-विधि का श्रवण करें।।
गायत्री आदि छन्दों में प्रतिपादित, वेदों की शिक्षा दें।
जिससे सब पदार्थ विद्या जानें, ऐसी शिष्यों को दीक्षा दें।।53।।

अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपाꣳशुरुपाꣳशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः।।५४।।

अग्नि प्राण का उत्पादक और प्राण सुगन्धक वसन्त है।
व्याख्या व सन्त की गाने लायक करता गायत्री छन्द है।।
गायत्री मन्त्रार्थ युक्त का, जाप सदा ही किया करो।
त्रिविध फलों की प्राप्ति कर, भव-सागर से तर लिया करो।।
ज्ञान कर्म और उपासना से युक्त बनो, दुःख से उबरो।
सुख सन्तानों का पाओ और वेदार्थवान् बनकर उभरो।।54।।

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब् ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारम्। स्वारादन्तर्य्यामोऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाजऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः।।५५।।

दक्षिण दिशा से बहने वाली, वायु आयु का कारण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसे ही सब के बनने का, कारण भी यह मेरा मन है।।
मन की ऊष्मा के समान, त्रिष्टुप् व्याख्यात ग्रीष्म ऋतु है।
इससे ही उत्पन्न तेज से, पक्ष प्रहर सबके हितु है।।
पन्द्रह तिथियों का पूरक, स्तुति-योग्य हैं होता पौर्णमास।
प्राणायाम-परायण होकर मन का संयम जीवन-विकास।।55।।

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्याऽ ऋक्सममम्। ऋक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः।।५६।।

विश्व प्रकाशक सूर्य-सहाय से नेत्र प्रकाशक बनते हैं।
नेत्रों के लिए हितकर वर्षा जल, मेघ सहस्र बरसते हैं।।
वर्षा व्याख्या जगती करती और साम ऋचा को गाता है।
साम पराक्रमशील, तत्त्व सत्रह विज्ञान का दाता है।।
ज्वलित अग्निमय नेत्र ऋषि हो, वेदार्थवान् हो जाता है।
जगत्-ज्ञान उत्तम दर्शन से चरित्रवान् बन जाता है।।56।।

इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रꣳ सौवꣳ शरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभऽऐडमैडान्मन्थीमन्थिनऽएकविꣳश ऽएकविꣳशाद् वैराजं विश्वमित्रऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः।।५७।।

सब से उत्तम सुख-साधक तो, शरीरस्थ श्रवणेन्द्रिय है।
विद्या की प्राप्ति सुनकर ही, होती यह परमेन्द्रिय है।।
श्रोत्र-सम्बन्ध शरद् ऋतु से शरद्-व्याख्याता अनुष्टुप् है।
साम ऋचा की व्याख्या करता औ' विश्वामित्र वेदाधिप है।।
श्रवण-श्रावण के इस ऋतु में, विद्यार्जन कर विद्वान् बनो।
सत्संग करो उपदेश करो, विद्या-पथ पर गतिमान बनो।।57।।

इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ्मात्या हेमन्तो वाच्यः पङ्क्तहैमन्ती पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवतऽ आग्रयणः। आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशाभ्याꣳ शाक्वररैवते विश्वकर्मऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाम्यः।।५८।।

।। इति त्रयोदशोऽध्यायः ।।

सबके ऊपर बुद्धि स्थित है, नित बुद्धि युक्त वाणी बोलो।
हेमन्त ऋतु गर्मी-शामक, तुम पंक्ति छन्द करनी खोलो।।
मृत्यु का शंसित व्याख्याता है, साम भाग इसको जानो।
कर्त्तव्य कर्म व्यवहार कुशलता को, स्तोत्रों से पहचानो।।
महात्मा ऋषिजन के समान, उत्तम विद्या शिक्षा पाओ।
वाणी को शुद्ध करो, सन्तानों को सच्चा पथ दर्शाओ।।58।।

।।तेरहवाँ अध्याय समाप्त।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतापरुद्रदेव कृत ययातिचरित पर कालिदास का प्रभाव

डॉ० वत्सला
व्याख्याता (संस्कृत)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़

ययातिचरित नाटक नृपति रुद्रदेव कृत सात अंकों का नाटक है। इस नाटक के कथानक का मूल स्रोत महाभारत के आदिपर्व में वर्णित ययाति उपाख्यान है। 13वीं से 14वीं सदी के बीच रुद्रदेव के द्वारा रचित 'ययातिचरित' का एक ही मुद्रित संस्करण उपलब्ध है। सौभाग्यवश इस एकमात्र संस्करण का सम्पादन सुप्रसिद्ध विद्वान् सी०आर० देवधर के सम्पादकत्व में उनकी प्रस्तावना और संक्षिप्त आंग्ल अनुवाद के साथ सन् 1965 में भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना से हुआ था। तब से अब तक 35 वर्षों की गुमनामी के बाद इसका पुनः सम्पादन व प्रकाशन सन् 2006 में हिन्दी अनुवाद के साथ मेरे द्वारा किया गया है। ययाति के चरित को लेकर लिखे गये संस्कृत नाटकों में प्रतापरुद्रदेव की यह कृति उपलब्ध सभी नाटकों में प्राचीनतम और अत्यन्त सार्थक है। यद्यपि नाटकों में क्षत्रिय राजाओं का नायक के रूप में चित्रण अनेकत्र किया गया है किन्तु ययाति चरित नाटक की यह विशेषता अन्य नाटकों की अपेक्षा सविशेष दर्शनीय है कि एक क्षत्रिय राजा जो स्वयं नाटककार है तथा पराक्रमी शासक है उसने क्षत्रिय वंश की महिमा एवं क्षत्रिय राजाओं के गौरव-सम्मान और वर्चस्व के संवर्द्धक क्षत्रिय चक्रवर्ती राजा (ययाति) को जोकि राजवंशों के प्रतिष्ठापक के रूप में महाभारतादि में प्रसिद्ध है, नायक के रूप में अपने नाटक में महनीय स्थान देकर क्षत्रिय जाति को चतुरस्र वृद्धिङ्गत करने का प्रयत्न किया है।

हर साहित्यकार की कृति कालत्रय से अनुप्राणित होती है। इसका कारण साहित्य और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है। लोक के विस्तीर्ण वितान पर जो व्याप्त होता है, घटित होता है और प्रतिफलित है वही साहित्य में झलकता है। इसीलिए लोक का प्रतिबिम्ब साहित्य है। कोई भी साहित्यकार देश, काल, समाज, धर्म एवं दर्शन से अभिप्रेरित होकर ही साहित्य सृजन के कार्य में प्रवृत्त होता है। समाज की राजनैतिक सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक प्रवृत्तियों का साहित्यकार के ऊपर अमिट प्रभाव पड़ता है। वह अपने से पूर्ववर्ती, कृतियों से भी बहुतायत कलेवर का अनुहरण करता है तथा अपनी कृति के द्वारा अग्रवर्ती कवियों के मार्ग को उन्मीलित करता है।

रुद्रदेव ने अपने नाटक 'ययातिचरित' में अपने से पूर्ववर्ती कवियों के काव्यों से बहुत सी सामग्री का ग्रहण किया है। यह तथ्य विश्व के सभी साहित्य में देखा जा सकता है। जिस प्रकार एक ही मिट्टी से रस का आहरण करते हुए वृक्ष उद्गत होते हैं पर प्रत्येक वृक्ष अपनी अपनी विशेषता के अनुसार पत्र, पुष्प और फल देते हैं उसी प्रकार प्राक्तन साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवियों के लिए रस आहरण की भूमि होता है और साहित्यकार भी स्व-स्व प्रतिभा से विलक्षण साहित्य रूपी फल की सर्जना करते हैं। अतीत से वर्तमान तक का यह सम्बन्ध कवि कृतियों को एक ओर परम्परा से जोड़ता है और दूसरी ओर उसी परम्परा को पुष्ट करते हुए भविष्य की ओर उसे प्रेरित करता है। अतः कवि (साहित्यकार) को हम अतीत और भविष्य के बीच में सम्बन्ध जोड़ने वाली एक कड़ी के रूप में देखते हैं।

रुद्रदेव के ऊपर भी प्राचीन कवियों का प्रभाव है जिनमें से सर्वाधिक प्रभाव कालिदास और हर्षवर्द्धन का है। सच कहा जाये तो कवि ने नाटकीय कथानक का पूरा संविधान मूलतः कालिदास के मालविकाग्निमित्र और हर्षवर्द्धन की उदयन सम्बन्धी नाटिकाओं के आधार पर ही किया है। रुद्रदेव की यह कृति यद्यपि लक्षणानुसार एक नाटक है फिर भी कथानक के स्वभाव को देखने से इसे एक नाटिका का ही परिवर्धित रूप कहा जा सकता है। तात्पर्य यह है नाटक होने के लिए जिस प्रकार की जटिल और गम्भीर कथावस्तु की अपेक्षा होती है उस प्रकार की वस्तु इस नाटक में नहीं है। विवाहित राजा एक नयी सुन्दरी को देखकर मुग्ध हो जाते हैं और अपनी महिषी से छिपकर उससे प्रेम करते हैं लेकिन अन्त में रानी के द्वारा यह नया प्रेम सम्बन्ध स्वीकृत हो जाता है यही इस नाटक की कथावस्तु का ढाँचा है। कहना अनावश्यक है कि इसमें शकुन्तला के या उत्तरामचरित के कथानक की जटिल समस्यायें नहीं है। थोड़ी बहुत बाधाओं के मध्य से स्त्री-पुरुषों के मिलन का यह एक सरल उपाख्यान है। इसीलिए इस नाटक के परिप्रेक्ष्य में हमें मालविकाग्निमित्र का स्मरण अनायास हो जाता है। उसमें भी दो रानियों के रहते हुए अग्निमित्र का नयी नायिका के साथ मिलन, नाना प्रकार के छल-कपट और अन्त में उसकी सफलता ये ही चित्रित है। हमारी दृष्टि में कालिदास का मालविकाग्निमित्र ही आगे लिखे जाने वाले नाटिकाओं के लिए मूल प्रेरक रचना है। हर्षवर्द्धन ने रत्नावली और प्रियदर्शिका में नाटिका के स्वरूप को स्पष्ट किया तथा एक स्वतन्त्र विधा का सम्मान दिया। हमारा विचार है कि रुद्रदेव ने कथानक की अवधारणा में हर्षवर्द्धन की नाटिका का अनुसरण किया है और पाँच की जगह सात अंकों में कथा को विन्यस्त किया है। अंकानुसार कथा विश्लेषण करते हुए हम इस प्रभाव को सुचिह्नित कर सकते हैं।

नाटक के आरम्भ में मंगलाचरण में भी शिव-पार्वती का इष्ट देवता के रूप में स्मरण किया गया है। इस मंगलाचरण में भी कालिदास का प्रभाव द्रष्टव्य है।

द्वितीय अङ्क में गरुड़ की पीठ पर आरूढ़ गालव मुनि द्वारा आकाश मार्ग से पृथ्वी के प्राकृतिक दृश्यों के अवलोकन के चित्रण में कवि के ऊपर महाकवि कालिदास के रघुवंश तथा शाकुन्तल का प्रभाव पड़ा है। महाकवि ने रघुवंश में पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर लंका से लौटते हुए राम के द्वारा तथा शाकुन्तल में रथ पर आरूढ़ मातलि एवं दुष्यन्त के द्वारा आकाशगमन का जो चित्रण कराया है, उसी का अनुसरण कवि ने अपने नाटक में किया है। इसी प्रकार का वर्णन राजशेखर ने अपने बालरामायण में और मुरारि ने अपने अनर्घराघव में किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम अंक में कवि ने कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक का अनुसरण किया है। जिस प्रकार पुरुरवा द्वारा बार-बार की जाने वाली प्रार्थना को औशनरी ठुकराती है उसी प्रकार ययाति चरित नाटक में भी देवयानी ययाति द्वारा बारम्बार की जाने वाली प्रार्थना को ठुकराकर अपने पिता के पास चली जाती है।

षष्ठ अंक में भी कवि के ऊपर कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक की ही झलक स्पष्ट दिखायी देती है। विक्रमोर्वशीय नाटक में पुरुरवा उर्वशी के वियोग में उन्मत्त व्यक्ति की भाँति इधर-उधर भटकता है। महाकवि ने उर्वशी के वियोग में पुरुरवा के प्रणयोन्माद का बड़ा ही मार्मिक एवं सजीव चित्रण किया है। प्रस्तुत नाटक में भी रुद्रदेव ने उन्हीं के पदाङ्क का अनुसरण किया है। शर्मिष्ठा के वियोग में ययाति भी पागल व्यक्ति की भाँति इधर-उधर भटकते फिरते हैं। रुद्रदेव ने भी नृप ययाति की उन्माद दशा का चित्रण बड़ी ही मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है।

इसके अतिरिक्त विश्व विश्रुत अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक से भी कई दृश्यों में साम्यता दृग्गोचरीभूत होती है। ययातिचरित नाटक के प्रथम अंक में शर्मिष्ठा और ययाति के प्रथम मिलन के समय ही शर्मिष्ठा के हाथ की अंगुलि तमाल के कठोर पत्ते से विद्ध हो जाती है[1] तथैव शाकुन्तल में भी शकुन्तला एवं दुष्यन्त के प्रथम साक्षात्कार के बाद भी शकुन्तला के पैर में कुश का अंकुर चुभ जाता है।[2]

द्वितीय अंक में जब राजा शार्दूल को मारकर वापस आते हैं तब तमालकुञ्ज में शर्मिष्ठा को न पाकर अत्यन्त दु:खी होते हैं। तमालकुञ्ज के वृक्षों से पतित होने वाले पीले पत्तों को देखकर राजा कल्पना करते हैं कि मानों वृक्ष के ये पत्ते शर्मिष्ठा की अनुपस्थिति की पीड़ा से विक्षुब्ध होकर अपने पीले पत्तों को गिरा रहे हैं।

'तस्याः क्षणावासतयालिभावं प्राप्ता लता मामनुवेदयन्ति।
तद्विप्रयोगादिव पाण्डुभावं मन्दानिलावर्जित पाण्डुपत्रैः।।'[3]

शाकुन्तल में भी शकुन्तला के विदाई के अवसर पर उसके वियोग में अपने कर्त्तव्य से विमुख हुए सभी चराचर प्राणियों का कवि ने बड़ा ही अनूठा चित्र उपस्थित किया है:-

'उदगलितदर्भकवला मृगाः परित्यक्तनर्तनाः मयूराः।
अपसृत-पाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः।।'[4]

दोनों कल्पनाओं में सादृश्य स्पष्ट है। चतुर्थ अंक में जब शर्मिष्ठा नृप ययाति से मिलन न हो सकने के कारण मूर्च्छित हो जाती है तब राजा उसे अपने अङ्क में लेकर अपने हाथों के स्पर्श से उसे पुनर्जीवित करते हैं। इस समय विदूषक उनसे गान्धर्व विवाह करने का प्रस्ताव रखता है तथा शार्मिष्ठा की सखियाँ चन्द्रलेखा आदि भी राजा से निवेदन करती हुई कहती हैं:-

चन्द्रलेखा- राजानः बहुवल्लभाः भवन्तीति निवेद्यते
'स्वदारेषु प्रायः प्रगुण रमणीयेष्वपि यथा
समावृत्तिः पूर्व गुरुभिरुपदिष्टेऽपि शशिना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न रोहिण्याः प्रेमप्रवणमनसा हन्त निहितो
विसोढः किं त्वदन्तर्दहन-पटुयक्ष्यापि विषमः।।'[5]

शाकुन्तल के तृतीय अङ्क में भी शकुन्तला की सखी अनसूया की उक्ति यथावत् ही है:-

अनसूया- वयस्य, बहुवल्लभाः राजानः श्रूयन्ते
'परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे।
समुद्ररसनाचोर्वी सखी च कुलस्य मे।।'[6]

विरही नायकों के द्वारा नायिकाओं का चित्रांकन शृङ्गार रस के अनेक नाटकों में दिखायी पड़ता है। प्रस्तुत नाटक में भी नृप ययाति विदूषक के कथनानुसार चित्रपट पर शर्मिष्ठा का चित्र अंकित कर उससे अपना मन बहलाने का प्रयत्न करते हैं। शाकुन्तल में भी कालिदास ने दुष्यन्त से शकुन्तला का चित्र अंकित करवाया है। नाट्क की सुखान्त परिणति भी महाकवि कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक की प्रभावान्विति से अनुस्यूत है।

पूर्वोक्त सादृश्यों के अतिरिक्त कई पात्रों के चरित्र चित्रण में भी कालिदास और हर्ष के प्रभाव स्पष्ट हैं। कञ्चुकी और विदूषक संस्कृत नाटकों में प्रायः गतानुगतिक चरित्र बन गया है। विदूषक हास्य के पुरट को जोड़ने में अपनी मूर्खता और पेटूपन का लगातार उपयोग करता है और कञ्चुकी भी बुढ़ापे की निन्दा करता हैं और कर्त्तव्य परायणता की दुहाई देता फिरता है। रुद्रदेव के कञ्चुकी तथा विदूषक दोनों कालिदास और हर्ष के द्वारा अंकित चरित्रों का प्रतिरूप ही उपस्थित करते हैं।

चौथे अंक में रूद्रदेव के कञ्चुकी की यह उक्तिः-
'पुरः स्थित्वा स्थित्वा सरणि नियताक्षो नततनु
र्निशान्तेऽस्मिन् भूयो निरूपधि च वेत्राहितभरः।
नियोगेऽवस्थातुं सविधमुपसर्तुं प्रभवतो
जराजीर्णैरङ्गैर्वरमहमिदानीं न तु पुरा।।'[7]

हमें झटिति शाकुन्तल के कञ्चुकी की इस उक्ति का स्मरण करा देती है:-

'आचार इत्यवहितेन मया गृहीता
या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः।
काले गते बहुतिथे मम सैव जाता
प्रस्थानविक्लवगतेश्वलम्बनार्थी।।'[8]

दोनों श्लोकों में भाव और भाषा में भी सादृश्य लक्षणीय है। 'ययातिचरित' में शर्मिष्ठा एवं ययाति के मिलन सम्पन्न कराने में विदूषक की भूमिका उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी की रत्नावली के विदूषक ही है।

भरतवाक्य समाज के लिए की गयी-कवि की अभिलाषा को मुखर करता है। भरतवाक्य की रचना में भी रूद्रदेव ने संस्कृत की श्रेष्ठ नाट्य परम्परा का अनुसरण किया है। शाकुन्तल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास ने राजाओं को प्रजा के कल्याण के लिए प्रेरित करते हुए प्रार्थना की है:-

'प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिव, सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम्।
ममापि च क्षपयन्तु नीललोहितः। पुनर्भवं परिगत शक्तिरात्मभूः॥'[9]

कवि रूद्रदेव ने इसी भाव को अपने छोटे से अनुष्टुप् में इस प्रकार बांधा है:-

'शस्याकरवती पृथ्वी मेघाः काले पयोमुचः।
प्रभवः पालनपरा गुणिनो मत्सरोज्झिताः॥'[10]

परम्परा को युगोचित नवीन स्वरूप में उपस्थित करने के द्वारा रुद्रदेव ने जिस कवि मार्ग का उन्मीलन किया है वह निश्चित रूप से उनके बाद आने वाले कवियों को प्रभावित करने में सफल हुआ।

इन सादृश्यों की चर्चा करने का उद्देश्य यह दिखाना नहीं है कि रुद्रदेव ने पूर्ववर्ती कवियों का केवल अन्धानुकरण ही किया है। प्रतिष्ठित महाकवियों का प्रभाव परवर्ती कवियों की रचनाओं से होते हुए ही साहित्यिक रिक्ख का निर्माण करता है। इसी प्रक्रिया में वाल्मीकि को कालिदास में, कालिदास को भवभूति में, भास को श्री हर्ष में हम प्रतिबिम्बित होते देखते हैं। सार्थक कवि प्राचीन स्रोत से रस का आहरण करता है और अपनी कृति को पल्लवित तथा पुष्पित कर भविष्य को सौंपता है-यही साहित्य की स्वाभाविक प्रगति का मार्ग है। रुद्रदेव ने अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से ही अपने पूर्व सूर्यों से भाव-भाषाओं का आवश्यकतानुसार समाहरण किया है ओर अपनी कृति को सार्थक बनाने में सफलता प्राप्त की है।

सन्दर्भ सङ्केतः-

1. ययातिचरितम्- प्रथमाङ्क, पृष्ठ संख्या-11
   कराङ्गुलौ जरठतमालदलेन क्षतं निरूप्य कुसुमभाजन भूमौ विकीर्य वामहस्तेनाङ्गुलि तृला
2. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 2/12
   दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
   तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।
3. ययातिचरितम्- 2/3
4. अभिज्ञान शाकुन्तलम्- 4/12
5. ययातिचरितम्- 4/36
6. अभिज्ञान शाकुन्तलम्- 3/17
7. ययाति चरितम्- 4/1
8. अभिज्ञान शाकुन्तलम्- 5/3
9. तत्रैव- 7/35
10. ययातिचरितम्- 7/25

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदाससाहित्ये राज्याधिकारसदुपयोगित्वम्

डॉ० धर्मदत्त चतुर्वेद
एसोसिएट प्रोफेसर
केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालयः
सारनाथो वाराणसी

किमपि साहित्यं निजदेशकालपरिस्थित्यनुरूपं तात्कालिकप्रजातन्त्रं सत्यधर्माचारन्याय सर्वसमभावसन्तोषबलिदानसौहार्दसेवादिभिर्द्रढयति परिपुष्णाति च। सङ्गीतनाट्यकलादिकमपि तथैव जनसमाजं मनोविनोदेन सुखंमुत्पादयदादर्शनियमाचार संहितायां रमयति। कविताकामिनी विलासिनो महाकवेः कालिदासस्य साहित्यमनवरतं प्रजानुरञ्जनं विदधत् शृंङ्गार रसपेशलं मैत्रीप्रीतिसौमनस्योद्भावकं सदाचारविनयश्रमौदार्यसंयमसेवात्यागभावपरिप्लुतं क्षुद्रस्वार्थभाव विसर्जकं शास्त्रज्ञानदुरुपयोगित्व तिरस्कारकं विमलाशयप्रदायकं युद्धोन्मादजन्यहिंसावरोधने प्रयतमानं वागर्धप्रतिपत्तिविशारदं जडचेतनयोरेकात्मानिवेशकं रागेर्ष्यामात्सर्यमोहकपटशाठ्यक्रौर्यपिसारकं दर्पमानोपशामकमहिंसासुखशान्तिसञ्चारकं गुणादर्शप्रतिष्ठापकं सौन्दर्यातिशविभावकं सहृदयाह्लादकमानन्द वर्धनमम्मट बाणभट्टराजशेवरादिभिः समर्थित विश्वप्रतिष्ठितं शीर्षायतेतराम्।

साम्प्रतं सर्वविध प्रवृत्तिषु राज्याधिकारस्य विशिष्टमहत्त्वं दरीदृश्यते। राज्याधिकारपदेनात्र राज्यविधिन्यायप्रजापालनाधिकारो लक्ष्यते न च गुरुशिष्योपदेश भ्रातृपितृमित्रनारीगतकर्तव्याधिकारः। साम्प्रतिको विविधराज्यपदाधिकारः कालिदास साहित्योचितपदाधिकारेण कियत्साक्यमसाम्यं वा धत्ते, विवेच्यमिदमत्रावधेयम्। अद्यतन पदाधिकारः क्वचिन्मर्यादामतिक्रामति क्वचित्तस्याव्यापारेषु व्यापाराधिकारित्वं क्वचिद् भ्रष्टाचारोन्मार्गित्वं निजक्षेत्राधिकारस्य क्षेत्रान्तराधिकारकूर्दनम् पदाधिकारगर्वितया निर्दिष्टनियमोल्लङ्घनम् क्वचिदधिकारस्य विक्रयः क्वचिन्तन्निक्षेपः, क्वचिदुत्कोचोन्मार्गित्वं क्वचित्तन्मार्गेण कृष्णविलोपार्जनं क्वचिन्न्यायाधीशेन क्रियमाणं निजराधिकारदुरुपयोगित्वं मन्त्रिभिस्तन्माध्यमेन राष्ट्रसम्पत्ति हरणं राष्ट्रियविश्वासहरणं हिंसनं चेति दृश्यते। तस्मादेवैतद्दशके निजपदाधिकारदुरुपयोगेन बहवो नेतारो। कारागारे जीवन्ति परं च भारतीयसंस्कृतिदृष्टया तेऽभ्रियन्त। कालिदासस्य शासका अध्यात्मशक्तिसम्पन्नास्तेजस्विनो महापराक्रमिणः प्रजासेवायामेव निजपदाधिकारं समर्पयन्तो दृश्यन्ते। साम्प्रतिकाः शासका निजपरिजनप्रगतये प्रयतन्ते। धनार्जन भूखण्डप्रासादाद्युपलब्धिपर्यवसितं जीवनं धारयन्ति। रघुवंशीयनृपादर्शचरितं पदाधिकारसदुपयोगत्वेन विभावयन्तु सुधियः। यथा नृपदशरथस्य चरितं हि-

अधिगतं विधिवद्यपालयात्प्रकृतिमण्डलमात्मकुलोचितम्।
अभवदस्य ततो गुणवत्तरं सनगरं नगरन्ध्रकरौजसः॥
जनपदे न गदः पदमादधावभिभवः कुत एक सपत्नजः।
क्षितिरभूत् फलवत्यजनन्दने शमरतेऽमरतेजसि पार्थिवे॥ (रघुवंशमहा० ९/२,४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वौ जगति कर्मनिष्ठौ, तत्रैको देवराज इन्द्रो यो हि यथाकालं जलं प्रवर्ष्य कृषिकान् सन्तर्पयति द्वितीयो दशरथनृपः सत्कर्मिभ्यो धनं प्रदाय तान् पालयामासेति कालिदासोक्तिः। तस्य राज्ये न रोगो, न देशान्तरशत्रवः परमद्य चीनपाकिष्ठानदेशौ भारतस्य शत्रुभूतौ सीमान्तप्रदेशानधिकर्तुं प्रयतेते। प्राचीन शासका अध्यात्मतपः शक्तिसम्वलिता ध्यानं चक्रिरे साम्प्रतम्मन्त्रिणो ध्यानयोगादिविधिमजानाना तीव्रप्रभवा न दृश्यन्ते तस्मादेव भारतं परितः शत्रवः परिभ्रमन्ति। पुरा राष्ट्रसीमानमतिक्रम्य शत्रुसैनिकानाभवसर एव नासीत् परमद्य आतङ्किनो भारतं प्रविश्य निर्दोषिजनान् घ्नन्ति। विविधनगरेषु लघुपरमाणुविस्फोटेन राष्ट्रजना अम्रियन्तेति खेदावहं वृत्तम्। दशरथेन सद्धर्मनीत्याश्रयेण सम्पत्तिः समचीयत न चावैधोपायैर्यथा-

नयगुणोपचितामिव भूपतेः सदुपकारफलां श्रियमर्थिनः।
अभिययुः सरसो मधुसम्भृतां कमलिनीमलिनीरपतत्त्रिणः॥

(रघुवंशमहा० ९/२७)

अद्य ये पदाधिकारिणः शीर्षाधिकारिणामानुकूल्यं न भजन्ति तेषां त्वरितमेव स्थानान्तरणं विधीयते। एतादृशा मन्त्रिणो जनतन्त्रं कलङ्कयन्ति। साम्प्रतमेतच्चित्रं हि भ्रष्टाचारविरोधिनोऽपि भ्रष्टाचारपङ्किला दृश्यन्ते।

राष्ट्रधनमधिकारिणो भक्षयन्ति अन्ना हजारे द्वारा सङ्कल्पितं जनलोकपालविधेयकं स्वीकर्तुं न सर्वकारस्य सामर्थ्यं दृश्यते। भ्रष्टाचारनिमग्ना आकण्ठं कस्मान्निजकण्ठे पाशदण्डमर्पयिष्यन्ति।

रामेण सीतापवादं प्रजामुखात् संश्रुत्य राजशासकाधिकारगरिमाणभवता प्रजानुरञ्जनाय निर्दुष्टगर्भिणीसीतापरित्याग एव विहितः किमद्य कस्यचित् पुत्रः शासकः सन् कृष्णकर्मणा यदि निगृहीतस्तर्हि किं स निजपुत्रं किञ्चित्कालमेव न गृहान्निष्कासयिष्यति?।

रामस्योक्तिः-

अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थाद्यशोधनानां हि यशो गरीयः।

(रघुवंशमहा० १४/३५)

प्राचीनाः शासकाः सामाजिककलङ्काद् बिभ्यति स्म। यथा-

पौरेषु सोऽहं बहुलीभवन्तमपां तरङ्गेष्विव तैलबिन्दुम्।
सोढुं न तत्पूर्वमवर्णमीशे आलानिकस्थाणुमिव द्विपेन्द्रः॥

(रघु० १४/३८)

रामस्य दृष्टौ लोकापवादो बलवान्जायते, स चासहनीय एव-

आवैमि चैनामनद्यति किन्तु लोकापवादो बलवान्मतो मे।
छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः॥

(रघु० १४/४०)

साम्प्रतं नेतारो मन्त्रिणोऽतिमहत्त्वाकांक्षिणो दृश्यन्ते। उत्तरप्रदेशे मुख्यमन्त्रिणी मायावती निजप्रतिमां स्थापयन्ती महद्धनं व्ययीकुरुते। क्वचिन्नेतारः स्वर्णरजतादिभिस्तोल्यन्ते तेषां स्वागताभिनन्दने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रसम्पत्तिर्दुरुपयुज्यते। परं रघुवंशे शत्रुघ्नविचारोऽवलोक्यतां तदा यदा लवणासुरवधं कृत्वा शत्रुघ्नो वाल्मीकिमुनेराश्रममार्गेण परावर्ततें तदा स च भूयो वाल्मीकिमुनिं नोपयाति कदाचित्तत्सकारे मुनेस्तपः शक्ति व्ययो न जायतामिति धिया स विचारयति-

भूयस्तपोव्ययो मा भूद् वाल्मीकेरिति सोऽत्यगात्।
मैथिलीतनयोद्गीतनिःस्पन्दमृगमाश्रमम्॥ (रघु० १५/३७)

अद्य निर्वाचन काले राजनीतिदलानि निजघोषणापत्रं जनतासमक्षं प्रकाशयन्ति तत्र जनहितार्थं विविधप्रस्तावान् प्रस्तुवन्ति तत्र यत् कार्यं प्रतिजानते तद्विजयानन्तरमुपेक्षन्ते विस्मरन्ति च परमद्यतना नेतारो मनस्यन्यद् वचस्यन्यदिति धिया व्यवहरन्ति ते रघुवंशीयातिथिनृपचरितं जानन्तु। अतिथिनृपो यत्प्रजायै निवेदयति तत् परिपालयति यौवनैश्वर्यसौन्दर्य सम्पन्नं तं दर्पो न स्पृशति, तस्य चरितं यथा-

यदुवाच न तन्मिथ्या यद् ददौ न जहार तत्।
सोऽभूद् भग्नव्रतः शत्रूनुद्धृत्य प्रतिरोपयन्॥ (रघु० १७/४२)
अनित्याः शत्रवो बाह्य विप्रकृष्टाश्च ते यतः।
अतः सोऽभ्यन्तरान्नित्यान् षट् पूर्वमजयद् रिपून्॥ (रघु० १७/४५)

अद्य केचिद् धनमादाय निजराष्ट्रियगुप्तसूचनां विदेशं प्रेषयन्ति ते निज भक्षितलवणं कलङ्कयन्ति। परं रघुवंशे गुप्त सूचनाः न सूच्यन्ते-

मन्त्रः प्रतिदिनं तस्य बभूव सह मन्त्रिभिः।
स जातु सेव्यमानोऽपि गुप्तद्वारो न सूच्यते॥ (रघु०१७-५०)

स कदापि अर्थकामाभ्यां धर्मं नात्यजत् नार्थाय कामं न कामायार्थं परं त्रिषु साम्यमचारत्। नीचजनो धनाढ्यश्चेति उभौ राजनीतौ बाधकौ जायेते, इति धिया स नृपः नीच जनं धनाढ्यं च नासेवत परं मध्यस्थवर्गानेव सोऽचिनोद् राजतन्त्रे। परमद्य धनपशुभ्यो निर्वाचनप्रत्याशित्वं दीयते। धनशस्त्रबलादेव अमेरिका सद्दामहुसेनाय मृत्युदण्डमददात् तथैव ओसामा बिनलादेनातङ्किने। रघुवंशीयनृपा अपराधिभ्योदण्डदाने न बिभ्यति परमद्य भारतं साक्षाद् निगृहीतमजमलकसाबभफजलगुरुं च दण्डयितुं नार्हति। तस्मादेव अपराधिनां निर्भयत्वं दृश्यते। साम्प्रतं पदाधिकारस्य दौर्बल्यं निष्प्रभावित्वं चेति। केवलं संविधानकर्गदपत्रे समुदृङ्किता दण्डाधिकारा फलदानेऽसामर्थ्यं भजन्ति। साम्प्रतं सुरेशकलमाड़ी-ए०राजा-कनिमोझी-येदियुरप्पा प्रभृतयो निर्लज्जं कारागारे वसन्ति निजारपराधं गोपयितुं चापि प्रयतन्ते। साम्प्रतं पदाधिकारः लब्धावसरं प्रतीक्षते। यस्य दलस्य निर्वाचने विजयाशा तत्र दलपरिवर्तनं विधाय प्रविशन्ति। राजनीतिमहत्त्वकांक्षा बलीयसी प्रतिभाति। रघुवंशीयनृपा सन्धिपत्रमान्यतासु बद्धाग्रहा दृश्यन्ते। पुष्यस्य पुत्रो ध्रुवोसन्धिसंज्ञो ध्रुव इवाटल आसीत्-

ततः परं तत्प्रभवः प्रपेदे ध्रुवोपमेयो ध्रुवसन्धिरुर्वीम्।
यस्मिन्नभूज्ज्यायसि सत्यसन्धे सन्धिर्ध्रुवः संनमतामरीणाम्॥ (रघु० १८/३४)

अद्य सुदर्शनसुताग्निवर्णोपमा मन्त्रिणो दृश्यन्ते। स भोगविलासी प्रजासेवापराङ्मुखो दृश्यते तथापि अद्यतनमन्त्रिवर्ग इव स बलात्कारी नासीत्। अद्य बलात्कारापराधात् केचिदधिकारिणो बन्दीगृहं बिभूषयन्ति। रघुवंशस्यैकोनविंशतितमसर्गः अद्योनविंशशताब्दीकं दुरचरितं सूचयति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेघदूते यक्षो निजकर्तव्याबहेलनया अभिशप्तो वर्षमेक रामगिर्याश्रमेषु व्यत्येति। निजाधिकारस्य सदुपयोगित्वमत्र दृश्यते। परमद्य पदाधिकाराच्च्युताः भ्रष्टकर्मिण कठोरदण्डेन न बहिष्क्रियन्ते न च पत्नी विरहिता विधीयन्ते। केचिन्निजभार्यासंसक्ततया कार्यालयं यथाकालं नोपयान्ति नाद्य तथा कठोरदण्डो यक्ष सदृशः। साम्प्रतं न्यायाधीशा अपि निजन्यायसिद्धान्तं धनबलेन विक्रीणन्ति तदा को न्यायं रक्षेदध। अद्य भ्रष्टाचारपरीक्षणसमितिः, पारदर्शितायोगः, बहुविद्याः समितयो संघट्यन्ते तत्रापि बहुविद्या आरोपा विधीयन्ते। अद्य नैतिकशुचिता सन्दिग्धैव प्रतीयते। अद्यापि नवनीतिनिर्माणं विधीयते परं निर्मातार एव निगृह्यन्ते। यक्षः प्रियाविरहकातरः निजप्रकृतिं प्रीणाति सच मालक्षेत्रे वर्षणाय आम्रकूटाग्निशमनाय च मेघं दिशति तद्दृष्टौ दरिद्रा अपि समागतमित्राण्यभिनन्दन्ति। दरिद्राणां कियन्महत्त्वं मेघदूतेन प्रकाश्यते। यथोक्तम्-

131924

न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः।।
(मेघ० पू० १७)

मेघदूत निषेवणेन कोऽपि पर्वतवन्यनदीक्षेत्रगतसमस्यां निवारयितुं प्रयतिष्यते। परमद्य केचन परसन्तापने भ्रष्टतायां च रमन्ते। मेघदूतमास्वाद्य कोऽपि क्षुद्रहृदयः कार्पव्यमना वा तिष्ठति तर्हि तेन मेघदूतं मनागपि न संस्पृष्टम्। प्रकृतिसमाराधकमेवं काव्यं नान्यत् किञ्चिदिति मन्ये। अद्य पाषाण खण्डा विच्छिद्यन्ते। पर्वतैः साकं विधीयमानं क्रौर्यमद्य रोद्धुं दौर्बल्यापहारकं मेघदूतं प्रतिभाति। अद्य ए०टी०एम० कोषागारा अपह्रियन्ते दिने धनप्रेषका अपह्रियन्ते वध्यन्ते, रक्षासैनिकाश्चापि हन्यन्ते कियद्दौर्बल्यं मनसि तद्विधूनकं मेघदूतमेवेति।

विश्वस्मिन्नपि विश्वे हिंसाताण्डवं दृश्यते।

कियत्कालं जायमाना हिंसा निजलक्ष्यं प्राप्स्यति। किमेकस्य ओसामा विनलादेनस्यावसानात् आतङ्किनां प्रजातिः समाप्ता? अद्यातङ्किनो निर्दोषिजनान् घ्नन्ति किं ते विश्वमभिव्याप्याधिकरिष्यन्ति? कालिदासदुष्यन्ताय वैखानसोक्तिस्तस्य पदाधिकारोपयोगं सूचयति-

आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि (शाकु० १/११)

निर्दोषिणां हननाय शस्त्राणि न प्रयुज्यन्तेऽपितु सन्तप्तानां रक्षणाय। अयं बुद्धोपदिष्टाऽहिंसाऽपि मन्ये विश्रान्तिं लभते गान्धिनश्चापि। वैदिकसंस्कृतेः प्रभावश्चापि दौर्बल्यमुपयातम्। एकत्र मधुकरेण व्यापादित शकुन्तलाया रक्षणं नृपकर्तव्यं दृश्यते पमद्य स्वास्थ्य स्वामिचिकित्सकैमनिवाङ्गानि छलेन निष्कास्य विक्रीयन्ते यथानोएडानगरस्थचिकित्सकानां दुर्वृत्तं विज्ञातम्। दुष्यन्तोक्तिः-

"यः पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्तः सोऽहमाश्रमिणा
मविघ्नक्रियोपलम्भाय धर्मारण्यमिद्मायातः" (शाकु० १)

अद्य वन्यवशवो घात्यन्ते पशुस्थानं मानवोऽधिकुरुते। वनानि उत्पाट्यन्ते मानवीक्रियन्ते वर्धमानजनसंख्यात्वेन। दुष्यन्तस्य वन्यजन्तुषु महती कृपा दृश्यते। अद्य प्राक्तनवन्य पशुप्रजातयो न लभ्यन्ते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदानीं तपोधनेषुशासकेषु गूढं दाहात्मकं सूर्यकान्तमण्युपमं तेजोऽदृश्यत परं मुनिवेशधारिणः बाबा रामदेव योगसदृशानाधुनिकान् दिग्विजयसिंहादयो द्रव्यलोलुपान् व्यापारिणः कथयन्ति। तद्दृष्टया कृष्णधनसंचेता बाबा रामदेवः। अद्य राजनीतिमाश्रयन्ते काषायवेशाः केचित् सन्यासिन इत्यपि चिन्तनीयं गृहस्थैस्तत् प्रत्याख्येयम्।

लोकतन्त्राधिकारो न विश्रमाय नाकर्मण्यतायै न चालस्योपहतायेति। कण्वशिष्यौ यदा गर्भापन्नां शकुन्तलामादाय दुष्यन्त भवनं प्राप्नुताम् तदैतसूचनां राज्ञे निवेदयितुं कञ्चुकी आह-''इदानीमेव धर्मासिनादुत्थिताय पुनरुपरोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्मै नोत्सहे निवेदयितुम् अथवा ''अविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकारः''। वस्तुतः शासकस्य रात्रिन्दिवं वहद्गन्धवहवद् युक्ततुरङ्गभानुवत् आहित भूमि भारिशेषनागवद् षष्ठांशवृत्तेस्तस्याधिकारिणः स्थितिरियम्। दुष्यन्तः स्वा इव प्रजाः तन्त्रयित्वा शान्तमना निषेवते। यथा वैतालिकोक्तिः-

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः।
प्रतिदिनमथवते वृत्तिरेवं विधैव॥ (शाकु० ५/७)

अद्य निजापराधस्य कदाचित् किंविधोऽपि प्राकृतिको दण्ड उपलभ्यते तदा तदपराधिना तदपराधहेतुत्वेन न स्वीक्रियते। अतीवोद्दामप्रवृत्तिकोऽद्यतनमानवस्तस्य विचारेषु शुचिता न दृश्यते प्रत्युत नवनवमद्भुतं कौटिल्यं क्रूरचेष्टादिकं धत्ते। तस्य रोगः संकटानि काठिन्यं चापि तस्य परिवर्तनं कर्तुं न शक्नुवन्ति। निजस्वार्थवशीभूतः भारतीयसंस्कृतिं दूषयति, अतथ्यानि समर्थयति तथ्यानि चोपेक्षते दुष्यन्तस्तु प्रजादुःखत्वेन निजकर्त्तव्यदौर्बल्यं मनुते-

अहोस्वित् प्रसवोममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधा।
मित्यारूढबहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः॥ (शा० ५/९)

पुरा यत्शासकीयं वेतनं येनालभ्यत तस्य परीक्षापि विधीयते स्म। साम्प्रतं प्राथमिक विद्यालयेषु तत्सत्यापननिदेशेकन यदा विद्यालयो निरीक्ष्यते तदा छात्रेण यः प्रश्नो नोत्तरितः स कदाचित् शिक्षकेणापि न समाधीयते, एवं वृत्तं समाचारपत्रेषु पढ्यते। परं मालविकाग्निमित्रस्य विदूषकोक्तिर्हरदत्तगणदासयोर्विषये-

''पश्याम उदरम्भरिसंवादम्। किं मुधा वेतनदानेनैतेषाम्।
कालिदासदृष्ट्या हिंसकाः शत्रवो न मर्षणीया

न च चिरकालं कारायां रक्षणीयाः। यथाऽद्य भारतसर्वकारेण अजमलकसाब, अफजल गुरु प्रभृतयः कारायां रक्ष्यन्ते न च ते मृत्युपाशेन वध्यन्ते तेषां रक्षाव्ययोऽपि भूयान् जायते तस्मादेव पेट्रोलडीजल मूल्यानि वर्ध्यन्ते। यस्मिन्नङ्गे सर्पदंशस्तस्य सधः कर्तनेन विप प्रभावः क्षीयते-

छेदो दंशस्य दाहो वा क्षतेर्वा रक्तमोक्षणम्।
एतानि दष्टमात्राणामायुष्याः प्रतिपत्तयः॥ (माल०४/४)

तथैवैते सर्वोपमा आतङ्किनः सद्योवध्या येन पुनस्ते न दशेयुः।

अतः साम्प्रतं प्रजातन्त्रात्मके शासने मानवः निज।

पदाधिकारस्य दुरुपयोगं न विधाय राष्ट्रसम्पतिं प्राणपणेन अवन् कालिदासीयशासकानां नीतिमनुसरन् राष्ट्रं संवर्धयेत् सर्वत्राभयं निर्दुष्टवातावरणं च विदध्यादिति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की प्राचीन शिक्षा-पद्धति के विकास में महर्षि दयानन्द का योगदान

डॉ० देवेन्द्र कुमार गुप्ता
प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

बिन ज्ञान के मुक्ति नहीं होती।[1] यह लोक प्रसिद्ध वाक्य मानव को मुक्ति पाने के लिये ज्ञान के प्रति प्रेरित करता है। महर्षि वेदव्यास ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ महाभारत में योगिराज श्रीकृष्ण के माध्यम से कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध युद्ध-प्रांगण में महान् धनुर्धर अर्जुन को ज्ञान-विषयक उपदेश देते हुए ज्ञान की महत्ता पर प्रकाश डालकर समझाया था कि इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र कुछ भी नहीं है।[2] यदि ज्ञान है तो सब कुछ है, ज्ञान नहीं है तो कुछ भी नहीं है। वस्तुत: मनुष्य और पशु योनियों में भेद स्थापित किया गया है वह मात्र ज्ञान का ही है। ज्ञान है तो मनुष्य है और ज्ञान नहीं है तो पशु है।[3]

प्राचीन भारत में ऋषियों, महर्षियों, आचार्यों तथा विद्वानों ने ज्ञान की प्राप्ति के भिन्न-भिन्न उपायों का अन्वेषण किया था। उनमें से एक उपाय जो मौलिक है, उसका नाम शिक्षा की प्राप्ति है, जैसा कि ज्ञात ही है कि महर्षि पाणिनि ने **शिक्ष विद्योपादाने** कहकर विद्या की प्राप्ति इसमें मूलकारण दर्शाया है।[4] महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी शिक्षा की इस प्राचीन परिभाषा को महत्त्व देते हुए इसे विद्यादि शुभगुणों की प्राप्ति का मूल मानते हुए दो स्थानों पर इसका व्याख्यान किया है-

जिससे मनुष्य विद्यादि शुभगुणों की प्राप्ति और अविद्यादि दोषों को छोड़ के सदा आनन्दित हो सकें, वह शिक्षा कहाती है।[5]

इस परिभाषा में अवद्यादि दोषों को छोड़कर सदा आनन्दित होने से महर्षि दयानन्द का अभिप्राय मुक्तिसम्बन्धी है। जब तक शुभ गुणों की अवाप्ति और प्राप्ति नहीं होगी तथा अशुभ गुणों का परित्याग नहीं होगा तब तक मुक्ति असम्भव है तथा यह तभी होता है जब शिक्षा की प्राप्ति हो जाती है।

लोकव्यवहार की समझ रखते हुए महर्षि दयानन्द ने अपनी विचारधारा शिक्षा के विषय में कुछ इस प्रकार प्रकट की है-

शिक्षा-जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें, उसको शिक्षा कहते हैं।[6]

वस्तुत: मानव जब किसी भी माध्यम से, अपने माता, पिता और अध्यापकों के द्वारा अथवा स्वयं अध्ययन से या जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों से जो कुछ सीखता है, तो वह शिक्षा प्राप्त कर रहा है- ऐसा माना जाता है। समाज में इस शिक्षा पद को दो अर्थों में विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से माना गया है- प्रथम है-प्रसिद्धार्थ में। अर्थात् जीवन के व्यावसायिक क्षेत्र को चुनने के लिये विभिन्न स्थानों पर जिस शिक्षा को ग्रहण किया जाता है यह शिक्षा का प्रसिद्ध अर्थ है। आज समाज में यही अर्थ अधिक विख्यात है। दूसरा अर्थ व्यापकता को अधिकृत करता है और वह मानव को विनम्रता के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान का विस्तारकर्त्ता बनाना। यह अन्तिम अर्थ ही मानव के दु:खादि बन्धनों को काटकर मुक्ति प्रदान करने वाला होता है। यही शिक्षा वास्तविक अर्थों में ज्ञान को प्राप्त कराती है। प्राचीन भारत में शिक्षा के विभिन्न महत्त्वों को समझा जाता था और शिक्षा की प्राप्ति के लिये भिन्न-भिन्न प्रकारों को स्थापित किया जाता रहा है। महर्षि मनु ने आदर और सम्बन्धों के प्रश्न पर चर्चा करते हुए आदरणीय एवं माननीयों के पाँच के क्रम में शिक्षा को विशेष स्थान दिया है और उन्होंने कहा है कि धन, सम्बन्धी, आयु, कर्म और विद्या-इन पाँचों में उत्तरोत्तर श्रेष्ठता होती है।[7] अर्थात् धन से उत्तम सम्बन्धी, सम्बन्धियों से उत्तम कर्म और कर्मों से भी उत्तम शिक्षा होती है। शिक्षा से मनुष्य की ज्ञानाग्नि प्रदीप्त होती है, और ज्ञानाग्नि से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार अग्नि काष्ठादि जलाकर भस्म कर देती है उसी प्रकार वेद की शिक्षा को प्राप्त करने वाला मानव सभी पापों को भस्म कर देता है।[8] महर्षि मनु ने शिक्षा को मोक्षप्राप्ति का साधन माना है।[9] स्मृतिकार अत्रि ने शिक्षा को जीवन के उच्चतम आदर्शों तक पहुँचाने का महान् रसायन मानते हुए कहा है कि यदि शिक्षा के साथ-साथ जीवन में तप का भी स्थान बन जाये तो मनुष्य किसी भी पापकर्म से लिप्त नहीं हो सकता है।[10]

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा के जिन महान् उद्देश्यों को अपने ग्रन्थों में उपस्थापित किया है उनसे ज्ञात होता है कि उनके समक्ष शिक्षा का उद्देश्य धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप इन पुरुषार्थ-चतुष्टय की प्राप्ति है, जिनसे मनुष्य मुक्ति की उपलधि कर पाता है। शिक्षा के द्वारा धर्म के सच्चे स्वरूप को मानवसमाज में स्थापित करना भी उनका उद्देश्य रहा है, जिसके जानने से समाज सभ्य और सुशील बनकर वास्तविक रूप से धार्मिक कहलाये। इसी प्रकार समाज में व्याप्त अन्धविश्वासों और पाखण्डों का विनाश करना भी उन्होंने शिक्षा के अन्तर्गत दर्शाया है, क्योंकि इनमें पड़कर समाज क्लेशों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं पाता है। सत्यार्थप्रकाश के दूसरे समुल्लास में शिक्षा को प्रकट करते हुए उन्होंने माता-पिता के लिये निर्देश दिया है-

बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे, जिससे सन्तान सभ्य हो और किसी अंग से कुचेष्टा न कर पावें।[११]

जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होके सर्वत्र प्रतिष्ठा प्राप्त करें।[१२]

जिससे सन्तान किसी धूर्त्त के बहकावे में न आवे।[१३]

जिससे भूत-प्रेतादि मिथ्या बातों का विश्वास न हो।[१४]

मानव का सर्वोत्तम अलंकार शिक्षा होती है। शिक्षारहित मानव अशिक्षित एवं असभ्य होता है, वह चाहे कितने भी स्वर्णाभूषणों से स्वयं को शोभान्वित करने का प्रयास करे। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
शिक्षा मानव का तृतीय नेत्र कहलाता है। यह प्रकाश का स्रोत, विघ्नों का विनाश करने वाली तथा मानव की प्रवृत्तियों को उचित मार्ग पर ले जाने वाली होती है।[15]

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा को सर्वोत्तम आभूषण बताते हुए लिखा-

''सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभाव रूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का प्रमुख कर्म है। सोने, चाँदी, मणिक, मोती, मूँगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण करने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकता।[16] शिक्षा के बिना मनुष्य जीवन पशुतुल्य ही है।'' अतः महर्षि ने लिखा- ''क्या मनुष्य अच्छी शिक्षा से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध नहीं कर सकता? और इसके बिना पशु के समान दुःखी नहीं रहता? जिस लिये सब मनुष्यों को सुशिक्षा से युक्त होना अवश्य है।''[17]

शिक्षा को प्राप्त करके मनुष्य को यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति सम्भव है। शिक्षा के माध्यम से बल, बुद्धि, धैर्य, कार्यप्रणाली तथा चिन्तनशक्ति में अपार ओज का उदय होता है। वस्तुतः शिक्षा ही सर्वोत्तम बल है।[18]

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी शिक्षा के यथार्थ लक्ष का वर्णन करते हुए लिखा है कि ''अविद्वान् लोग दूसरों को धर्म में निश्चय नहीं करा सकते। और विद्वान् लोग धार्मिक होकर अनेक मनुष्यों को भी धार्मिक कर सकते हैं। और कोई धूर्त्त मनुष्य अविद्वान् को बहका के अधर्म में प्रवृत्त कर सकता है, परन्तु विद्वान् को अधर्म में कभी नहीं चला सकता। क्योंकि जैसा देखता हुआ मनुष्य कुंए में नहीं गिरता, परन्तु अन्धे को तो गिरने का सम्भव है, वैसे ही विद्वान् सत्यासत्य को जानके उसमें निश्चल रह सकते हैं और अविद्वान् ठीक-ठीक स्थिर नहीं रह सकते हैं।[19]

भारतके प्राचीन शास्त्रों में शिक्षा की महिमा का अपार वर्णन है। **यह ज्ञान माता के समान रक्षा करता है, पिता के समान हितकर कर्मक्षेत्र में नियुक्त करता है, नारी के समान थकान को दूर करके आनन्द प्रदान करता है। सम्पत्ति की वृद्धि में यही सहायक है, और चारों दिशाओं में यही यश का प्रचारक है। वस्तुतः यह कल्पलता है जो मनुष्य के सभी प्रयोजनों को सिद्ध करता है।**[20]

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी इस प्राचीन शिक्षा के महत्त्व का वर्णन अपने व्यवहारभानु नामक ग्रन्थ में इस प्रकार किया है-

विद्या का यही फल है कि जो मनुष्य को धार्मिक होना अवश्य है। जिसने विद्या के प्रकाश से अच्छा जानकर न किया और बुरा जानकर न छोड़ा तो क्या वह चोर के समान नहीं है? क्योंकि जैसे चोर भी चोरी को बुरी जानता हुआ करता है और साहूकारी को अच्छी जान के भी नहीं करता है, वैसे ही जो पढ़ के भी अधर्म को नहीं छोड़ता और धर्म को नहीं करने हारा है।[21] विद्या शोक के समय में धर्मावलम्बन करानेवाली है। सुख में तो मूर्ख और विद्वान् सभी आनन्दित रहा करते हैं, परन्तु दुःख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में तो विद्वान् ही धैर्यावलम्बन करने शोकाकुल नहीं होते। विद्या का फल सच पूछो तो यही है।[२२]

महर्षि दयानन्द ने शिक्षा के उपर्युक्त उद्देश्यों में उन्हीं प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत फलनिपष्पत्तियों का वर्णन किया है, जिनका वर्णन लघुव्यास-संहिताकार ने मानकर लिखा है कि आजीविका हेतु शिक्षा की प्राप्ति अत्यन्त गर्हित और निष्फल है।[23] भारत में प्राचीन शास्त्रों ने जहाँ शिक्षा का उद्देश्य चरित्र-निर्माण होना बताया है[24], उस चरित्र का मूलाधार ब्रह्मचर्य माना है। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में ब्रह्मचर्य का व्रत पालन करते हुए शिक्षा की प्राप्ति की जाती थी। अथर्ववेद का ऋषि समझा रहा है कि ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला व्यक्ति ही, ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करने का अधिकारी होता है, उसमें सभी देवता निवास करते है।[25]

इस चरित्र और ब्रह्मचर्य से आचार्यों का अभिप्राय शारीरिक, मानसिक और वाचिक पवित्रता से है। जब तक व्यक्ति तीनों प्रकार की पवित्रताओं का आचरण नहीं करेगा वह ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि **आचरण से रहित मानव को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते हैं।**[२६] महर्षि भी इसी प्राचीन पवित्रता को शिक्षा के साथ संजोते हुए कहते हैं- **शिक्षा और वस्त्र शुद्ध रखें, मैले कभी न रखें। जो कुछ प्रतिज्ञा करें, उसको पूरी करें। जितेन्द्रिय होवें, लम्पटपन कभी न करें। उत्तमों का सदा मान करें, अपमान कभी न करें। उपकार मानके कृतज्ञ होवें। पुरुषार्थी रहें, आलसी कभी न होवें। जिस-जिस कर्म से विद्याप्राप्ति हो उस-उस को करते जायें। जो-जो बुरे काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक आदि विद्या-विरोधी हों, उनको छोड़कर सदा उत्तम गुणों की कामना करें। बुरे कर्मों पर क्रोध, विद्याग्रहण से लोभ, सज्जनों में मोह, बुरे कर्मों में भय, अच्छे काम न होने में शोक करके विद्यादि शुभ गुणों से आत्मा और वीर्य आदि धातुओं की रक्षा से जितेन्द्रिय हो शरीर का बल सदा बढ़ाते जायें।**[२७]

भारत के प्राचीन आचार्य महर्षि मनु, स्मृतिकार याज्ञवल्क्य, सूत्रकार गौतम तथा स्मृतिप्रणेता औशनस ने शिक्षा प्राप्त करने के लिये छात्र को विभिन्न प्रकार से निर्देश दिये हैं। **छात्र का मुख्य कर्त्तव्य वेद का नित्य और निरन्तर अध्ययन करना सर्वोत्तम माना गया है। उसमें तपस्वी जीवन और व्रतों का पालन करना अनिवार्य है।**[२८]

वेदों का अध्ययन किसी भी प्रकार से करना सर्वोत्तम तप माना गया है।[29] उन्होंने यहाँ तक कह दिया है कि जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बनने की इच्छा कर रहा है, वह यदि वेदाभ्यास को छोड़कर अन्यत्र शास्त्रों में परिश्रम करता है, वह जीवित रहते हुए भी अपने परिवार-सहित शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है।[30] यज्ञ, तप और शुभकर्मों में लगे रहने की शिक्षा का मूल बताया गया है। क्योंकि यही मोक्ष का साधन होता है।[31] वेदाध्ययन के अतिरिक्त इन्द्रियों का संयम करना, सन्ध्या-हवन, पितृयज्ञ, अभिमान के विनाश हेतु भिक्षावृत्ति गुरु के आदेश का पालन, गुरु के कहने पर बैठना अन्यथा खड़े रहना तथा गुरु से नीचे आसन पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ही बैठना भी शिष्य के कर्त्तव्यों में से एक है।[32] सूर्योदय से पूर्व उठना, नित्यकर्मों का करना, अभिवादन करना तथा वृद्धजनों को प्रणाम करना आदि शिक्षाप्राप्ति में पूर्णतः सहायक हैं।[33]

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी प्राचीन शिक्षा-पद्धति के इन नियमों को अपने ग्रन्थों में इस प्रकार वर्णित किया है-

''विद्यार्थी लोग भी जिन कर्मों से आचार्य को प्रसन्नता होती जाये, वैसे कर्म करें, जिससे उसका आत्मा सन्तुष्ट होकर चाहे कि ये लोग विद्या से युक्त होकर सदा प्रसन्न रहें। रात-दिन विद्या ही के विचार में लगकर एक-दूसरे के साथ प्रेम से परस्पर विद्या को पढ़ते-पढ़ाते जावें। जहाँ विषय वा अधर्म की चर्चा भी होती हो, वहाँ कभी खड़े भी न रहें। जहाँ-जहाँ विद्यादि व्यवहार और धर्म का व्याख्यान होता हो, वहाँ से अलग कभी न रहें। भोजन-छादन ऐसी रीति से करें कि जिससे कभी रोग, वीर्यहानि वा प्रमाद न बढ़े। जो बुद्धि के नाश करनेहारे नशा के पदार्थ हैं, उनको ग्रहण कभी न करें। किन्तु जो-जो ज्ञान बढ़ाने और रोगनाश करनेहारे पदार्थ हों, उन्हीं का सेवन सदा किया करें। नित्यप्रति परमेश्वर का ध्यान, योगाभ्यास, बुद्धि का बढ़ाना, सत्यधर्म की निष्ठा और अधर्म का सर्वथा त्याग करते रहें। जो-जो पढ़ने में विघ्नरूप कर्म हों, उनको छोड़कर पूर्ण विद्या प्राप्त करें।''[34]

इस प्रकार हम देखते है कि भारतवर्ष की प्राचीन शिक्षा-पद्धति के जिन मूलभूत सिद्धान्तों की चर्चा अपने ग्रन्थों में दिखायी है, महर्षि दयानन्द सरस्वती ने पराधीन भारत को मन, बुद्धि और वचन से स्वतन्त्र कराने के लिये उन नियमों का उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया है। जहाँ इन सभी उद्देश्यों को लेकर शिक्षा की प्राप्ति सम्भव है वहीं दोषों का परित्याग कराने के लिये उन्होंने महर्षि वेदव्यास के सुर से सुर मिलाते हुए डिण्डिमघोष पूर्वक ये पंक्तियाँ लिखीं-

आलस्यं मदमोहौ च चापल्यं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथाऽत्यागित्वमेव च॥
एते वै सप्तदोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः।
सुखार्थिनोः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम्॥[35]

आलस्य अर्थात् शरीर और बुद्धि में जड़ता, नशा, मोह, किसी वस्तु में फंसावट, चपलता, इधर-उधर की व्यर्थ कथा करना, सुनना, पढ़ते-पढ़ाते रूक जाना, अभिमानी और अत्यागी होना- ये सात दोष विद्यार्थियों में होते हैं। जो ऐसे हैं उनको विद्या कभी नहीं आती। सुख भोगने की इच्छा करनेवाले को विद्या कहाँ? क्योंकि विषयसुखार्थी विद्या को, और विद्यार्थी सुख को छोड़ दें। ऐसे किये बिना विद्या कभी नहीं हो सकती। और ऐसे को विद्या होती है-

सत्ये रतनां सततं, दान्तानामूर्ध्वरेतसाम्।
ब्रह्मचर्यं दहेद् राजन् सर्वपापान्युपासितम्॥[36]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द ने इस प्राचीन श्लोक का व्याख्यान करते हुए शिक्षा-प्राप्ति के मार्ग को खोलते हुए लिखा-

सत्याचार में प्रवृत्त, जितेन्द्रिय और जिनका वीर्य अधःस्खलित कभी न हो, उन्हीं का ब्रह्मचर्य सच्चा और वे ही विद्वान् होते हैं।[३७]

इस प्रकार महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भारत की प्राचीन शिक्षा-पद्धति की नींव की स्थापना अपने ग्रन्थों में करके उसके विकास के लिये अभूतपूर्व योगदान दिया है। जिसका समृद्धरूप वर्त्तमान में भारत के अन्दर प्रचलित गुरुकुल शिक्षा-पद्धति है।

सन्दर्भ

१. ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः- सुभाषितभाण्डागार
२. नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते-भगवद्गीता अ०४, श्लोक ३८
३. ज्ञानेन हीन पशुभिः समानः- सुभाषितभाण्डागार
४. धातुपाठ, भ्वादिगण- ८७९
५. महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत- व्यवहारभानुः
६. स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश संख्या- २२
७. वित्तं बन्धुवर्ग कर्म, विद्या भवति पञ्चमी। एतानि मान्यस्थानानि, वरीयो तद् यदुत्तमम्॥ २.१३७
८. यथैघस्तेजसा वह्निः, प्राप्तं निर्दहति क्षणात्।
तथा ज्ञानग्निना पापं, सर्वं दहति वेदवित्॥ मनु० ११.२४७
९. तपो विद्या च विप्रस्य, निःश्रेयस्करं परम्।
तपसा किल्विषं हन्ति, विद्ययाऽमृतमश्नुते॥ मनु० १२.१०४
१०. यथान्नं मधुसंयुक्तं, मधु वान्येन संयुतम्।
एवं तपश्च विद्या च, संयुक्तं भेषजं महत्॥ अत्रिस्मृति० २.१५
विद्यातपोभ्यां संयुक्तं, ब्राह्मणं जपतत्परम्।
कुत्सितैरपि वर्तन्तमेनो न प्रतिपद्यते॥ अत्रिस्मृति २.१६
११. सत्यार्थप्रकाश द्वितीय समुल्लास।
१२. सत्यार्थप्रकाश द्वितीय समुल्लास।
१३. सत्यार्थप्रकाश द्वितीय समुल्लास।
१४. सत्यार्थप्रकाश द्वितीय समुल्लास।
१५. ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रं समस्ततत्वार्थविलोकदक्षम्।
तेजोऽनपेक्षं विगतान्तरायं प्रवृत्तिमत्सर्वजगत्त्रयेऽपि॥ सुभाषितरत्नभाण्डागार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६. सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास।
१७. व्यवहारभानुः
१८. बुद्धिर्यस्य बलं तस्य। पञ्चतन्त्र मित्रभेदः- २१७
१९. व्यवहारभानुः।
२०. मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते, कान्तेव चापि रमयत्यपनीय खेदम्।
लक्ष्मी तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिम्, किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।। सुभाषितरत्नभाण्डागार
२१. महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत व्यवहारभानुः।
२२. महर्षि दयानन्द कृत व्यावहारभानुः।
२३. वृत्यर्थं यस्य चाधीतं, निष्फलं तस्य जीवितम्।। लघुव्याससंहिता- २.८२
२४. महाभारत- १२.३२.७८
२५. ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति।
तस्मिन् देवा अधि विश्वे समेताः।। ११.५.२४
२६. आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः। सुभाषितरत्नभाण्डागार
२७. महर्षि दयानन्द कृत व्यवहारभानुः।
२८. तपो विशेषैर्विविधैव्रतैश्च विधिचोदितैः। वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः, सरहस्यो द्विजन्मना।। मनु० २.१६५
२९. मनु० २.१६६-१६७
३०. योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशुगच्छति सान्वयः।। मनु० २.१३८
३१. यज्ञानां तपसां चैव शुभानां चैव कर्मणाम्।
वेद एव द्विजातीनां, निःश्रेयसकरः पदः।। याज्ञवल्क्यस्मृति १.४०
३२. मनु० २.१७५-१७८
३३. ततोऽभिवादयेद् वृद्धानसावहमिति ब्रुवन्।। याज्ञ० स्मृ० १.२६
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्यवर्धन्ते, आयुर्विद्या यशोबलम्।। मनु० २.१२१
३४. महर्षि दयानन्द कृत व्यवहारभानुः।
३५. महाभारत अ०४० श्लोक ५,६
३६. महाभारत अनु०पर्व० अ० ७५, श्लोक ३६
३७. सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समुल्लास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारत में आश्रम व्यवस्था और वर्तमान में उसकी उपयोगिता

अनीता स्नातिका
शोधच्छात्रा-संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

मानव के जीवन काल की अवधि लगभग सौ वर्षों तक की मानी है। ये हमारी आँखें देवों के द्वारा किये हमारे हितकर कर्म को अपने सामने ही देखें तथा यह हितकर कर्म देखते हुए हम लोग सौ शरद् ऋतुओं तक देखें, सौ शरद् ऋतुओं तक हम जीवित रहें, सौ शरद् ऋतुओं तक हम कल्याणकारी बातों को सुनें, सौ शरद् ऋतुओं तक हम प्रवचन करते रहें। हम दीनता से रहित होकर सौ वर्षों तक जीवनयापन करें। हम सौ वर्षों से भी अधिक काल तक देखें, जीवित रहें, सुनें, प्रवचन करते रहें और दीनता से रहित होकर रहें।[1] ऐसी परमात्मा से प्रार्थना की गयी है। वेद की यह प्रार्थना मानव को सुख और शान्तिपूर्वक शतायु प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न कराती है। पुरुष की आयु सौ वर्ष की है[2]। ऐसा कहकर भी मनुष्य के हृदय में सौ वर्षों तक जीने की कामना आती ही है।

भारत के प्राचीन महर्षियों और आचार्यों ने मानव जीवन का उद्देश्य **धर्म, अर्थ, काम** और **मोक्ष** की प्राप्ति माना है। इन चारों का नाम **पुरुषार्थ चतुष्टय** है। पुरुषार्थ चतुष्ट्य मनुष्य के जीवन को पुरुषार्थी बनाने के साथ-साथ दीर्घजीवन की प्रेरणा देता है। यह पुरुषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति के लिये भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है कि हे ईश्वर! आप दया के सागर हो, आपकी कृपा से तथा जप, उपासना और उत्तम-उत्तम कर्मों के द्वारा हमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि तत्काल हो जाये।[3]

इस प्रकार ज्ञात होता है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति करना मानव जीवन का उद्देश्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्राचीन मनीषियों ने शतवर्षीय जीवन को चार भागों में विभक्त किया था और इसका नाम आश्रम रखा था। श्रम करने का स्थान आश्रम कहलाता है।[4] आर्य जीवन की विशेष अवस्थाओं को प्रदर्शित करते हुए यह शब्द सर्वप्रथम उपनिषदों में प्रयुक्त किया गया है।[5] उपनिषद् में ही एक स्थल पर ब्रह्मचारी और गृहपति का उल्लेख मिलता है।[6] जिन्हें अध्ययन के पुरस्कार स्वरूप पुत्रों की उत्पत्ति, योग के अभ्यास, जीवित प्राणियों की हिंसा का अभाव, यज्ञों एवं जन्म-मरण से मुक्ति की आशा दिखायी गयी है।[7] दूसरे स्थान पर[8] तीन अवस्थाओं की उक्ति है, किन्तु क्रमिक रूप से नहीं। एक ब्रह्मचारी या तो गृहस्थ बन सकता है या वानप्रस्थी बन सकता है और या गुरु के आश्रम में ही जीवनपर्यन्त रह सकता था। उसी प्रकार एक वानप्रस्थी[9] के वन में मरने और याज्ञिक के ग्राम में ही यज्ञ करने का उल्लेख मिलता है। इन तीनों के विपर्यास में[10] ब्रह्मसंस्थ मनुष्य का उल्लेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उपनिषद्[11] में आत्मज्ञानी पुरुष का उनसे विपर्यास दिखाया गया है, जो अध्ययन करते हैं, जो यज्ञ करते हैं जो वनवास करते हैं। दूसरे[12] स्थान पर आत्मज्ञानी का विपर्यास उन लोगों से दिखाया है, जो यज्ञ करते हैं। जो दान करते हैं और जो तप भी करते हैं। तीन आश्रमों से इनके पार्थक्य और विशेषता से एक चतुर्थ आश्रम[13] भी सामने आया। गृहस्थ को केवल वानप्रस्थ ही नहीं, अपितु संन्यास (परिव्रजन, भिक्षुचर्या) को भी ग्रहण करना पड़ा। प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य अनिवार्य था। किन्तु यह आश्रम स्थायी न रहने पाया।[14]

महर्षि याज्ञवल्क्य ने इन चार आश्रमों का नाम इस प्रकार प्रकट करते हुए कहा-ब्रह्मचर्य समाप्त कर गृहस्थ होवें, गृहस्थ समाप्त कर वानप्रस्थ होवे तथा वानप्रस्थ समाप्त कर संन्यासी होवे।[15]

अथर्ववेदीय आचार्य जाबाल ने इन आश्रमों का नाम एवं काल के विषय में चर्चा करते हुए लिखा- **जिस दिन वैराग्य होवे उसी दिन घर या वन से या वानप्रस्थ से अथवा इन दोनों को न करके सीधे ब्रह्मचर्याश्रम से ही संन्यास ले लेवे।**[16]

वेदों में **ब्रह्मचारी**[17], **ब्रह्मचर्येण**[18], **गृहपत्नी**[20], **यतयः**[21] तथा **विजानतः**[22] आदि शब्दों के प्रयोग द्वारा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमों का संकेत दिया गया है। ब्राह्मणकार ने **लोकैषणा, वित्तैषणा** और **पुत्रैषणा** का परित्याग करने संन्यास आश्रम का आश्रय लेने की चर्चा की है।[23]

महर्षि पतञ्जलि ने भी वेदसम्मत और लोकसम्मत इन आश्रमों के व्यवहार पर अपना प्रवचन करते हुए शतवर्षीय जीवन की चार अवस्थाओं का वर्णन करते हुए लिखा[24]-

विद्याप्राप्ति के काल को आगमकाल माना जाये। क्योंकि इसमें ज्ञान की उपलब्धि मनुष्य करता है। इसके परिवर्धन और संकल्पन के काल का नाम स्वाध्यायकाल रखना ठीक है। उसमें कारण यह है कि अध्ययन की हुई विद्या का गृहस्थ में जाकर परिवर्धन और संकलन करता है। इस संकलन की हुई विद्या का आवंटन प्रवचनकाल के नाम से जानना उचित है। यतोहि वानप्रस्थ आश्रम में उपदेश करता है और जीवन में साक्षात् जब प्रयोग करता है, वह व्यवहार काल है। प्रत्यक्षीकरण ही संन्यास है जब मानव को वास्तविकता का आभास होता है और वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

महर्षि मनु महाराज ने इन चारों आश्रमों का नामोल्लेख करते हुए इन्हें गृहस्थाश्रम से उत्पन्न बताकर लिखा-

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और यति ये आश्रम गृहस्थ से उत्पन्न पृथक् पृथक् चार हैं।[25] ये चारों आश्रम व्यक्ति को सन्तुलित बनाकर घर परिवार तथा समाज को सुख एवं आनन्द प्रदान करते हुए स्थिर बनाये रखते हैं।

इन समस्त प्रमाणों से ज्ञात होता है कि मानव के जीवन को सुव्यवस्थित रखने के लिये वैदिक काल से ही एक सुनियोजित विचारधारा का सृजन हुआ, जिनका चरम लक्ष्य मोक्ष को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताया गया है तथा इस लक्ष्य को पाने की चार सीढ़ियाँ ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास नाम की बनायी गयी हैं, जिन पर चढ़कर जीवन का अन्तिम लक्ष्य दु:खों से मुक्त होकर मोक्ष की उपलब्धि है।[26] इन आश्रमों का परिपालन करना प्राचीनकाल में अनिवार्य था। महर्षि गौतम ने आश्रमव्यवस्था के अनुसार जीवनयापन न करने वाले पुरुष को दण्ड देने हेतु राजा को निर्देश दिया है।[27] यद्यपि महर्षि गौतम ने इन आश्रमों का नाम ब्रह्मचारी, गृहस्थ, भिक्षु और वैखानस इस प्रकार लिया है।[28] बौधायन आचार्य ने ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और परिव्राजक नाम दिया है।[29] तथा आचार्य आपस्तम्ब इन आश्रमों के नाम गार्हस्थ, आचार्यकुल, मौन एवं वानप्रस्थ-इस क्रम में पढ़ते हैं।[30] किन्तु इन सभी आचार्यों का उद्देश्य आश्रम व्यवस्था में रहते हुए उन्नति करना है।

रघुवंशी राजाओं के जीवनचरित्र का वर्णन करते हुए संस्कृतभाषा के कवि कालिदास ने शैशवकाल में विद्याओं का अभ्यास, यौवनावस्था में गृहस्थ का पालन, वार्धक्य में राज्य का परित्याग तथा अन्त में योगपूर्वक शरीर का परित्याग[31] करने की चर्चा की है।

इस प्रकार आश्रमों की व्यवस्था निर्विवाद रूप प्रकट हो जाने के उपरान्त इनका क्रमश: नामोल्लेख पूर्वक कर्म तथा कर्त्तव्य पर विचार करना उचित होगा।

शास्त्रकारों ने आयु के प्रथम पच्चीस वर्षों को मानव की आन्तरिक शक्तियों के विकास का काल माना है। इसी काल का नाम ब्रह्मचर्य आश्रम है। इस प्रकार जन्म से लेकर पच्चीस वर्षों का समय ब्रह्मचर्य-आश्रम स्वीकार किया है। ब्रह्मचारी का मुख्य उद्देश्य शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का विकास करना है। इस आयु में वह संसार के समस्त प्रपञ्चों का परित्याग कर आचार्य की शरण में जाकर मन, वचन और कर्म से ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करता हुआ जीवन के प्रारम्भिक पच्चीस वर्षों के स्वर्णिम भाग को विद्या की प्राप्ति में लगाना होता है। यह आश्रम गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमों की नींव है तथा नींव जितनी सुदृढ़ तथा सुव्यवस्थित होगी उस पर भविष्य का किला भी उतना ही सुदृढ़ और सुव्यवस्थित बन जायेगा। वस्तुत: यह ब्रह्मचर्यकाल भावी जीवन का मूलाधार है। यही वह काल है, जब मानव सांसारिक चिन्ता वासनाओं से दूर रहकर भविष्य में होने वाले अनेक संघर्षों को पार करने की विद्या को आनन्द से सीखता है। ब्रह्मचर्य के नियमों-उपनियमों का पालन करना इस आश्रम का मुख्य उद्देश्य है। ब्रह्मचर्य-आश्रम से आचार्यों के संरक्षण में ब्रह्मचारी को 25 वर्षों तक विद्याप्राप्ति का एक विशाल समय उपलब्ध होता है। यहाँ पर ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा के साथ-साथ उसे अध्यात्म-विद्या की भी उपलब्धि होती है। ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश करते हुए ब्रह्मचारी आचार्य से निवेदन करता है कि आप मुझे प्रथम एक ओंकार पश्चात् तीन महाव्याहृति, तत्पश्चात् सावित्री-ये त्रिक अर्थात् तीनों मिलके परमात्मा के वाचक मन्त्र को मुझे उपदेश कीजिये।[32] जब आचार्य उपदेश कर चुका होता है, पुन: ब्रह्मचारी आयु, ब्रह्म और वेद की रक्षा का संकल्प लेते हुए[33] आचार्य के हाथ से दण्ड ग्रहण करता है। बालक का पिता उसे उपदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देते हुए कहता है कि तू आज से ब्रह्मचारी है। नित्य सन्ध्योपासना और भोजन के पूर्व शुद्ध जल का आचमन किया कर। दुष्ट कर्मों को छोड़ धर्म किया कर। दिन में शयन कभी मत कर। आचार्य के आधीन रहकर नित्य संगोपांग वेद पढ़ने में पुरुषार्थ किया कर।34 एक-एक सांगोपांग वेद को पढ़ने के लिये बारह-बारह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य अर्थात् 48 वर्ष तक या जब तक सांगोपांग चारों वेद पूरे होवें, तब तक अखण्डित ब्रह्मचर्य कर।[35] आचार्य के आधीन धर्माचरण में रहकर, परन्तु यदि आचार्य अधर्माचरण वा अधर्म का उपदेश करे उसको तू कभी मत मान और उसका आचरण मत कर। क्रोध और मिथ्याभाषण करना छोड़ दे। स्त्री का ध्यान, कथा, स्पर्श, क्रीड़ा, दर्शन, आलिङ्गन, एकान्तवास और समागम-यह आठ प्रकार का मैथुन कहाता है- इन्हें छोड़ दे। भूमि में शयन करना। पलंग आदि पर कभी न सोना। कौशीलव अर्थात् गाना, बजाना तथा नृत्य आदि निन्दित कर्म, गन्ध और अञ्जन का सेवन मत कर।[36] अति स्नान, अति भोजन, अधिक निद्रा, अधिक जागरण, निन्दा, लोभ, मोह, शोक का ग्रहण कभी मत कर। रात्रि के चौथे पहर में जाग आवश्यक शौचादि, दन्तधावन, स्नान, संध्योपासना, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना योगाभ्यास का आचरण नित्य किया कर। क्षौर मत करा। मांस, रूखा-शुष्क अन्न मत खावे और मद्यादि न पीवे। बैल, घोड़ा, हाथी, ऊँट आदि की सवारी मत कर। गांव में निवास और जूता तथा छत्र का धारण मत कर। लघुशंका के बिना उपस्थ इन्द्रिय के स्पर्श से वीर्य स्खलन कभी न करके, वीर्य को शरीर में रखकर निरन्तर उर्ध्वरेता अर्थात् नीचे वीर्य को मत गिरने दे, इस प्रकार यत्न से वर्ता कर।[37] तैलादि से अंगमर्दन, उबटना, अति खट्टा इमली आदि, अति तीखा लाल मिर्च आदि, कसेला हरड़ आदि, क्षार अधिक लवण आदि और रेचक जमालघोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर। नित्य युक्ति से आहार-विहार करके विद्या ग्रहण में यत्नशील हो। सुशील, थोड़े बोलने वाला, सभा में बैठने योग्य गुण ग्रहण कर। मेखला और दण्ड धारण कर, भिक्षाचरण, अग्निहोत्र, स्नान, सन्ध्योपासना, आचार्य का प्रियाचरण, प्रातः-सायं आचार्य को नमस्कार करना-ये तेरे नित्य करने के और जो निषेध किये है, वे नित्य न करने के कर्म हैं।[38]

जब उपदेश पिता कर चुके, तब बालक पिता को नमस्कार कर हाथ जोड़कर कहे कि **जैसा आपने उपदेश किया, वैसा ही करूँगा।**[39]

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ब्रह्मचर्य के महत्त्व को दिखाते हुए लिखा है कि यदि कोई सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य धर्म से गिराना चाहे तो उसको ब्रह्मचारी उत्तर दे- अरे छोकरों के छोकरे! मुझसे दूर रहो। तुम्हारे दुर्गन्धरूप भ्रष्ट बन्धनों से मैं दूर रहता हूँ। मैं इस उत्तम ब्रह्मचर्य का लोप कभी नहीं करूँगा। इसको पूर्ण करके सर्वरोगरहित, सर्व-विद्यादि शुभ गुण-कर्म-स्वभावसहित होऊँगा। इस मेरी शुभ प्रतिज्ञा को परमात्मा की कृपा से पूर्व पूर्ण करे, जिससे मैं तुम निर्बुद्धियों को उपदेश और विद्या पढ़ा के विशेष तुम्हारे बालकों को आनन्दयुक्त कर सकूँ।[40]

महर्षि मनु ने इस ब्रह्मचर्याश्रम के महत्व को बताते हुए लिखा है कि जैसे फावड़े से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोदता हुआ मनुष्य जल को प्राप्त होता है, वैसा ही गुरु की सेवा करने वाला पुरुष गुरुजनों से जो पाई हुई विद्या है, उसको प्राप्त होता है। इस कारण ब्रह्मचर्याश्रम सम्पन्न होकर गुरुजन की सेवा कर उससे सुने और वेद पढ़े।[41] उत्तम विद्या की श्रद्धा करता हुआ पुरुष अपने से न्यून से भी विद्या को पावे तो ग्रहण करे। नीच जाति से भी उत्तम विद्या/धर्म का ग्रहण करे, यह नीति है। इससे गृहस्थाश्रम से पूर्व-पूर्व ब्रह्मचर्याश्रम सम्पन्न होकर कहीं से न कहीं से उत्तम विद्या पढ़े, उत्तम धर्म सीखे और ब्रह्मचर्य के अनन्तर गृहस्थाश्रम में उत्तम स्त्री से विवाह करें।[42] विष से भी अमृत का ग्रहण करना, बालक से भी उत्तम वचन को लेना और नाना प्रकार के शिल्प काम सबसे अच्छे प्रकार ग्रहण करने चाहिये। इस कारण ब्रह्मचर्याश्रम सम्पन्न होकर देश-देश पर्यटन कर उत्तम गुण सीखे।[43]

ब्रह्मचर्य आश्रम की जिस प्रकार प्राचीनकाल में उपादेयता थी, वर्तमान में भी उसी प्रकार समाज को इसकी आवश्यकता है। ब्रह्मचर्य के बिना विद्या एवं सुख ठीक-ठीक नहीं मिलते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम के सुस्थिर रहने पर आगे का समग्र जीवन सफलता को पा सकता है। यतोहि यह आश्रम अन्य आश्रमों की नींव है। ब्रह्मचर्याश्रम का काल एवं स्थान दोनों ही गुरुकुल में होता है एवं इन गुरुकुलों में अमीर-गरीब, ऊँच-नीच का भेदभाव समाप्त रहता है। जिससे बच्चों में अहंकार अथवा हीनभावना पनपती ही नहीं है जिससे बच्चे का आत्मबल बढ़ा रहता है और वह निरन्तर उन्नति करता है। ब्रह्मचर्यकाल में भिक्षा का कार्य इसीलिये किया जाता था ताकि वह बच्चा अहंकार से रहित हो तथा स्वयं को समग्र राष्ट्र का समझे। विद्या अध्ययन के उपरान्त उसे स्वार्थी न बनकर राष्ट्र के हित में चिन्तन करना है। क्योंकि जिस राष्ट्र ने उसे भिक्षान्न प्रदान कर शिक्षित कर दिया उस के विषय में उसे सोचना ही होगा। वर्त्तमान में बच्चों में बढ़ती अहंकार एवं वैमनस्य की प्रवृत्ति को रोकने के लिये प्राचीन ब्रह्मचर्याश्रम अति उपादेयता को लिये हुए है।

ब्रह्मचर्य आश्रम को पूर्ण कर वेद को यथावत् पढ़कर तथा अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करके गृहाश्रम को धारण करना चाहिये।[44] यथावत् उत्तम रीति से ब्रह्मचर्य और विद्या को ग्रहण कर गुरु की आज्ञा से स्नान करके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने वर्ण की उत्तम लक्षण्युक्त स्त्री से विवाह करे।[45] वस्तुतः गृहाश्रम उसको कहते हैं कि जो ऐहिक और पारलौकिक सुख-प्राप्ति के लिये विवाह करके अपने सामर्थ्य के अनुसार परोपकार करना और नियम काल में यथाविधि ईश्वरोपासना और गृहकृत्य तथा धर्मानुसार सन्तानों की उत्पत्ति करना है।[46]

महर्षि मनु ने गृहाश्रम में नारी एवं पुरुष को आपसी सम्बन्धों तथा गृहाश्रम की उपादेयता का वर्णन करते हुए लिखा कि जिस कुल में भार्या से प्रसन्न पति और पति से प्रसन्न भार्या सदा प्रसन्न रहती है, उसकी कुल में निश्चित कल्याण होता हे और दोनों परस्पर अप्रसन्न रहें तो उस कुल में नित्य कलहवास करता है।[47] यदि स्त्री पुरुष में रुचि न रखे या पुरुष को हर्षित न करे तो अप्रसन्नता से पुरुष के शरीर में कामोत्पत्ति कभी न होके सन्तान नहीं होते और

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
यदि होते हैं तो दुष्ट होते हैं।[48] जैसे वायु के आश्रय से सब जीवों का वर्तमान सिद्ध होता है, वैसे ही गृहस्थ के आश्रम से ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी अर्थात् सब आश्रमों का निर्वाह होता है।[49] जिससे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी इन तीन अश्रमियों को अन्न, वस्त्रादि दान से नित्य प्रति गृहस्थ धारण-पोषण करता है, इसलिये व्यवहार में गृहाश्रम सबसे बड़ा है।[50] जो लोग अक्षय मुक्तिसुख और संसार के सुख की इच्छा करते हों, तो जो दुर्बलेन्द्रिय और निर्बुद्धि पुरुषों के धारण करने योग्य नहीं है, उस गृहाश्रम को नित्य प्रयत्न से सब धारण करें।[51] वेद और स्मृति के प्रमाण से सब आश्रमों के बीच में गृहाश्रम श्रेष्ठ है, क्योंकि यही आश्रम ब्रह्मचारी आदि तीनों आश्रमों का धारण और पालन करता है।[52] जैसे सब बड़े-बड़े नद और नदी सागर में जाकर स्थिर हो जाते हैं वैसे ही सब आश्रमी गृहस्थ को प्राप्त होके स्थिर होते हैं।[53]

वर्त्तमान में भी उसी प्रकार के प्राचीन गृहस्थाश्रम की आवश्यकता है जिससे समाज नित्य उन्नति करता रहे। सभी आश्रमवासी आनन्द का जीवनयापन करें। अतः गृहस्थाश्रम की उपादेयता प्राचीन काल समय में जैसे थी वैसी वर्त्तमान में भी है।

गृहस्थाश्रम का उत्तरदायित्व लगभग 25 वर्ष में पूर्ण होने के उपरान्त व्यक्ति वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। वस्तुतः जो विवाह से सन्तान उत्पत्ति करके पूर्ण ब्रह्मचर्य से पुत्र भी विवाह करे और पुत्र का भी एक सन्तान हो जाये, अर्थात् जब पुत्र का भी पुत्र हो जाये तब पुरुष वानप्रस्थ अर्थात् वन में जाये।[54] आचार्य जाबाल ने लिखा है कि ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति करके गृहस्थ होवे, गृहस्थ होके वनी अर्थात् वानप्रस्थ होवे और वानप्रस्थ होके संन्यास ग्रहण करें।[55] जब वानप्रस्थ आश्रम की दीक्षा लेवे, तब ग्रामों में उत्पन्न हुए पदार्थों का आहार और घर के सब पदार्थों को छोड़के पुत्रों में अपनी पत्नी को छोड़ अथवा संग में लेके वन को जावें।[56] वहाँ जंगल में वेदादि शास्त्रों को पढ़ने-पढ़ाने में नित्ययुक्त, मन और इन्द्रियों को जीत कर यदि स्व स्त्री भी समीप हो, तथापि उससे सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य को न करे। सबसे मित्रभाव, सावधान, नित्य देनेहारा और किसी से कुछ भी न लेवे, सब प्राणीमात्र पर अनुकम्पा रखने वाला होवे।[57]

वानप्रस्थाश्रम में रहते हुए मनुष्य शक्ति का संग्रह करता है। दीर्घायुष्य की प्राप्ति करता है, शान्ति की कामना करता है, निःशुल्क शिक्षा देता है, अर्थ सन्तुलन की भावना जागती है, ईश्वर की आराधना में समय को देता है तथा सन्तान निरोध की क्षमता उत्पन्न होती है। वर्त्तमान में भी वानप्रस्थाश्रम पूर्व की भाँति तप, साधना, तथा संयम का प्रेरक है एवं आध्यात्मिक समृद्धियों का स्रोत है।

जो मोहादि आवरण पक्षपात छोड़ के विरक्त होकर सब पृथिवी में परोपकारार्थ विचरण करना है उसे संन्यास आश्रम कहते हैं।[58] विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य आश्रम से सब वेदों को पढ़, गृहाश्रमी होकर धर्म से पुत्रोत्पत्ति कर, वानप्रस्थ में सामर्थ्य के अनुसार यज्ञ करके, मोक्ष में अर्थात् संन्यास आश्रम में मन को लगावे।[59] जो पुरुष सब प्राणियों को अभयदान सत्योपदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देकर गृहाश्रम से ही संन्यास ग्रहण कर लेता है उस ब्रह्मवादी, वेदोक्त सत्योपदेशक संन्यासी को मोक्षलोक अर्थात् सब लोक-लोकान्तर तेजोमय हो जाते हैं।[60] इस क्रमानुसार संन्यासयोग से द्विज अर्थात् ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य संन्यास ग्रहण करता है। वह इस संसार और शरीर में सब पापों को छोड़ छुड़ाके परब्रह्म को प्राप्त करता है।[61]

इस प्रकार संन्यास आश्रम के सेवन से समाज का कल्याण होता है, समाज जागरूक होता है, संन्यासी अग्नि का प्रतीक होता है वह किसी सीमाओं में न बन्धकर सम्पूर्ण संसार का उपकार करता है, वह राजा तक को उपदेश दे देता है तथा धर्म की वृद्धि समाज में करता है। वर्त्तमान में भी इस आश्रम की उक्त कल्याणकारी भावनाओं को देखते हुए अति आवश्यक है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं वैदिक आश्रम व्यवस्था पूर्णतया वैज्ञानिक, सार्वकालिक, सार्वभौमिक और व्यक्ति व समाज के सुख का आधार है। यह एक ऐसी अद्वितीय व्यवस्था है जिसके द्वारा व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और सामाजिक उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है। यह व्यवस्था किसी भी व्यक्ति को यह अनुभव नहीं होने देती कि वह परिवार, समाज या देश के किसी काम नहीं आ सकता बल्कि सभी का उत्तरादायित्व स्थापित करते हुए सबकी हिस्सेदारी सुनिश्चित करती है। यह वैदिक आश्रम व्यवस्था आजकल साम्यवादी और पूंजीवादी पद्धतियों से अधिक व्यावहारिक और उत्कृष्ट है।

सन्दर्भ

१. तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ यजुर्वेद ३.६.२४

२. शतायुर्वै पुरुषः। शतपथब्राह्मण १२.३.१३

३. हे ईश्वर! दयानिधे! भगत्कृपयाऽनेनजपोसानादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः॥
महर्षि दयानन्द द्वारा प्रणीत प्रार्थनावचन। ये वचन दैनिक सन्ध्या के अन्तर्गत गाये जाते हैं।

४. आसमन्तात् श्रमो यत्र स आश्रम। अथवा आश्रयन्ति जनाः यत्र स आश्रमः। लोक प्रचलित उक्ति।

५. (क) श्वेताश्वतरोपनिषद् ६.२१
(ख) मैत्रायण्युपनिषद् ४.३

६. छान्दोग्योपनिषद् ८.५

७. छान्दोग्योपनिषद् २२.३.१

८. छान्दोग्योपनिषद् ५.१०

९. छान्दोग्योपनिषद् ५.१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०. छान्दोग्योपनिषद् ५२.२३.७
११. बृहदारण्यकोपनिषद् ४.२.२२
१२. बृहदारण्यकोपनिषद् ३.८.१०
१३. जाबाल्योपनिषद् खण्ड ४
१४. डॉयसन फिलासफी ऑफ द उपनिषद्
१५. ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत्, गृहीभूत्वा वनी भवेत। वनी भूत्वा प्रव्रजेत्॥
शत०ब्रा०कां १४ खं० ४
१६. यदहरेव विरजेत् तदरहवे प्रव्रजेद् वनाद् वा गृहाद् वा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्॥
अथर्ववेदीय जाबालोपनिषद् खं० ४
१७. (क) ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन्देवाः संमनसो भवन्ति।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्य तपसा पिपर्त्ति॥ अथर्ववेद ११.५.१
(ख) आचार्यो ब्रह्मचारी प्रजापतिः।
प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी॥ अथर्ववेद ११.५.१६
१८. (क) ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥ अथर्ववेद ११.५.१९
(ग) ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्॥ अथर्ववेद ११.५.१८
१९. (क) वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम्।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि॥ ऋग्० ६.१५.१९
(ख) अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाऽग्नेऽहं गृहपतिना
भूयासं सुगृहपतिस्त्वं मयाऽग्ने गृहपतिना भूयाः॥ यजुर्वेद २.२७
२०. (क) पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्रवहतां रथेन।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासे वशिनी त्वं विदथमा वदासि॥ ऋग्० १०.८५.२६
(ख) भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्रवहतां रथेन।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासे वशिनी त्वं विदथमा वदासि॥ अथर्व० १४.१.२०
२१. य इन्द यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः।
ममेदुग्र श्रुधि हवम्॥ ऋग्० ८.६१.१८
२२. यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकऽएकत्वमनुपश्यतः॥ यजु० ४०.७
२३. लोकैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च पुत्रैषणायाश्च उत्थाय अथ भैक्षचर्यं चरन्ति।
शत० ब्रा० ४.५.२.१
२४. चतुर्भिश्च प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति- आगमकालेन स्वाध्यकालेन प्रवचनकालेनेति॥
महा०भा० पस्पशाह्निक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२५. ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थे यतिस्तथा।
एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः प्रथमगाश्रमाः॥ मनु० ६.८७

२६. भागवत पुराण ११.१७.९, महाभारत शान्तिपर्व २४२/१५

२७. गौतमधर्मसूत्र २.३.२४

२८. गौतमधर्मसूत्र २.३.२४

२९. बौधायन धर्मसूत्र २.६.११.१४

३०. आपस्तम्ब धर्मसूत्र २.९.२१.१

३१. शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धक्ये मुनिवृत्तिनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥ रघुवंश महाकाव्य

३२. अधीहि भूः सावित्रीं भो अनुब्रूहि॥ आश्वलायन गृह्यसूत्र १.२१.४

३३. यो मे दण्डः परापतद्वैहायसोऽधिभूम्याम्।
तमहं पुनरादद् आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय॥ पारस्करगृह्यसूत्र २.१.१२

३४. ब्रह्मचार्यसि असौ। अपोऽशान। कर्म कुरु। दिवा मा स्वाप्सीः। आचार्याधीनो वेदमधीष्व॥
आश्वलायनगृह्यसूत्र १.२२.२

३५. द्वादश वर्षाणि प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं गुह्याण वा ब्रह्मचर्यंचर। आश्वलायनगृह्यसूत्र १.२२.३४ तथा पारस्करगृह्यसूत्र २.५.१३-१५

३६. आचार्यधीनो भवान्यत्राधर्माचरणात्। क्रोधानृते वर्जय। मैथुनं वर्जय। उपरि शय्यां वर्जय। कौशीलवगन्धाञ्जनानि वर्जय॥ गोभिलगृह्यसूत्र ३.१.१५-१९

३७. अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रां जागरणं लोकमोहभयशोकान् वर्जय। प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा दन्तधानवस्नानसन्ध्योपासनेश्वरस्तुति प्रार्थनोपासनायोगाभ्यासन्नित्यमाचर। क्षुरकृत्यं वर्जय। मांसरूक्षाहारं मद्यादिपानं च वर्जय। गावाश्वहस्त्युष्ट्रादियानं वर्जय। अन्तर्ग्रामनिवासोपानच्छत्रधारणं वर्जय। अकामतः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्यस्खलनं विहाय वीर्यं शरीर संरक्षयोर्ध्वरेताः सततं भव॥ गोभिल गृह्यसूत्र ३.१.१५-२२

३८. तैलाभ्यङ्गमर्दनात्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व। नित्यं युक्ताहारविहारवान् विद्योपार्जने च यत्नवान् भव। सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव। मेखलादण्डधारणभैक्ष्यचर्यसमिदाधानोदकस्पर्शनाचार्यप्रियाचरणप्रातः-सायमभिवादनविद्यासंचयजितेन्द्रियत्वादीन्येते ते नित्यधर्माः॥ गोभिलगृह्यसूत्र ३.१.२२-२६

३९ महर्षिदयानन्दसरस्वतीकृत-संस्कारविधि वेदारम्भप्रकरणम्।

४०. महर्षिदयानन्दसरस्वतीकृत-संस्कारविधि वेदारम्भप्रकरणम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४१. यथा खनन खनित्रेण नरोर्वायधिगच्छति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति।। मनुस्मृति २.२/८

४२. श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।। मनु० २.२३९

४३. विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्।
विविधानि च शिल्पानि समोदयानि सर्वतः।। मनु० २.२४०

४४. वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्।। मनु० ३.२

४५. गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधिः।
उद्वहेत् द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्।। मनु० ३.४

४६. महर्षिदयानन्दकृत संस्कारविधि का गृहाश्रमसंस्कारविधि प्रकरण।

४७. सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।। मनु० ३.६०

४८. यदि हि स्त्री न रोचते पुमांसं न प्रमोदयेत्।
अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते।। मनु० ३.६१

४९. यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।। मनु० ३.७७

५०. यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।। मनु० ३.७८

५१. सः संधार्यः प्रयत्नेन सवर्गमक्षयमिच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः।। मनु० ३.७९

५२. सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्ति हि।। मनु० ६.८९

५३. यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।। मनु० ६.९०

५४. महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि के वानप्रस्थ प्रकरण में।

५५. ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृहीभवेत् गृहीभूत्वा वनीभवेत् वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।
जाबालोपनिषद् खण्ड ४

५६. सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा।। मनु० ६.३

५७. स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात् दान्तो मैत्रः समाहितः।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः।। मनु० ६.८

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५८. महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि-संन्यासप्रकरण।

५९. अधीत्य विधिवत्वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे नियोजयेत्॥ मनु० ६.३६

६०. यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः॥ मनु० ६.३९

६१. अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः।
स विधूयेह पाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति॥ मनु० ६.८५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारत में संस्कार-मीमांसा तथा वर्तमान में उसकी उपादेयता

डॉ० प्रभात कुमार
प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

भारत की प्राचीन वैदिक संस्कृति का मूलाधार संस्कार हैं। किसी वस्तु को परिमार्जित करने का नाम संस्कार कहलाता है। शबर आचार्य के मत में जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के लिये योग्य हो जाने का नाम **संस्कार** कहलाता है।[1] संसार में संस्कार ऐसी क्रियायें अथवा परम्पराएं हैं, जिनसे मनुष्य में योग्यता उत्पन्न होती है। कोशकारों ने संस्कार पद का अर्थ वासना, प्रतियत्न, अनुभव, मानसकर्म, गुणविशेष, पृथिव्यादिचतुः पदार्थ गुण, शुद्धि तथा अदृष्टविशेषजनककर्म दिखाये हैं।[2] महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कारविधि की भूमिका में जिन उद्देश्यों को दिखाया है उनमें संस्कार की परिभाषा भी निहित हो गयी है-

जिस करके शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं, और सन्तान योग्य होते हैं, इसलिये संस्कारों को करना सब मनुष्यों को अति उचित है।[3]

संस्कारविधि के प्रारम्भ में ग्यारह श्लोकों के अन्तर्गत 3-5 श्लोकों में संस्कार का उद्देश्य दर्शाया गया है।

वेद आदि शास्त्रों के सिद्धान्त को परम आदर के साथ आर्यों के इतिहास को समझ रखकर शरीर और आत्मा की विशुद्धि के लिये[4] संस्कारों के द्वारा जो-जो सुसंस्कृत हैं वह उचित बात यहाँ कही जा रही है और जो लोक में असंस्कृत है वह अशोभनीयता को प्राप्त होती है।[5] अतः संस्कारों को करने में परिश्रमी समझदार लोगों को शिक्षा तथा औषधियों के द्वारा नित्य सभी प्रकार से सुख को बढ़ाने वाला करना चाहिये।[6]

वैदिक संस्कृति का मूलाधार होते हुए भी सभी संस्कार शब्द का प्रयोग वेद संहिताओं में नहीं हुआ है।[7] हाँ, **संस्कृत** शब्द का प्रयोग अवश्य हुआ है, जो वहाँ वरतन के अर्थ को प्रदान करता है।[8] अन्यत्र भी संस्कृत शब्द प्रयुक्त है।[9] **संस्कृतिः** शब्द का यजुर्वेद में एक स्थान पर प्रयोग वत्सार काश्यप ऋषि करते हुए विश्वदेवा की चर्चा करते हैं।[10] उसमें उन्होंने कहा है कि हे परमेश्वर! अखण्ड ऐश्वर्य के परिपोषक तेरे हम सदा देने वाले देनदार ऋणी हैं। वही परमेश्वरी शक्ति सबसे उत्तम संस्कृति है, जो सबकी रक्षा करती है। वह परमेश्वर ही सबसे श्रेष्ठ प्रथम, आदि मूल वरुण, मित्र और अग्नि है।

वेद का ऋषि यहाँ **संस्कृति** शब्द का प्रयोग वर्तमान में प्रचलित **संस्कृति** अर्थ से ही कर रहा है। ब्राह्मणग्रन्थों में **संस्कृतम्**[11] तथा उपनिषद् में **संस्करोति**[12] पद का प्रयोग अवश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता है। सर्वप्रथम संस्कार शब्द जैमिनि आचार्य के सूत्रों में **यज्ञ** या **पवित्र** या **निर्मल कार्य** के अर्थ में अनेकधा प्रयुक्त हुआ है।[13] सिर के केश मुंडाना, दाँत स्वच्छ रखना, नाखून काटना अथवा जल छिड़क कर शुद्ध करना-इन अर्थों में यह संस्कार पद आचार्य ने किया है। एक स्थान पर इस संस्कार पद का अर्थ **उपनयन** भी हुआ है, जिसकी व्याख्या करते हुए भाष्यकार शबर ने लिखा है कि संस्कार वह है जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के लिये योग्य हो जाता है।[14] इसी की व्याख्या तन्त्रवार्त्तिककार ने इस प्रकार दर्शायी है- संस्कार वे क्रियायें तथा रीतियाँ हैं जो योग्यता प्रदान करती हैं।[15] संस्कारों से समुत्पन्न योग्यता पापमोचन से तथा नवीन गुणों के द्वारा उत्पन्न होकर दो प्रकार की है। वस्तुतः संस्कार मानव को तपस्वी बनाता है और तपस्या से पापों का अथवा दोषों का परिक्षय होता है, इसी प्रकार संस्कार के द्वारा नवीन गुणों की प्राप्ति होती है। इस प्रकार व्यावहारिक पक्ष में शास्त्रविहित क्रियाओं के करने से एक विलक्षण योग्यता उत्पन्न हो जाती है, जिससे मानव विभिन्न दोषों से परिमुक्त हो जाता है। यह शास्त्रविहित क्रिया ही संस्कार है, जिसका गौतम धर्मसूत्र[16], आपस्तम्ब धर्मसूत्र[17] तथा वसिष्ठ धर्मसूत्र[18] में अत्यधिक वर्णन प्रथमतः उपलब्ध होता है।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि ये संस्कार कितने हैं? स्मृतिकारों का भी इनकी संख्या के सम्बन्ध में मतवैभिन्य दृष्टिगोचर होता है। महर्षि गौतम ने गर्भाधान से प्रारम्भ कर सात सोमयज्ञों तक चालीस संस्कार गिनाये हैं।[19] इनमें पञ्चयज्ञ[20], सप्त पाकयज्ञ[21], सप्त हविर्यज्ञ[22] तथा सप्त सोमयज्ञ[23] भी हैं। विभिन्न मतभेदों के होते हुए वैखानस ने बाईस[24] तथा व्यास ने सोलह[25] संस्कारों को मुख्य माना है। महर्षि मनु, याज्ञवल्क्य तथा विष्णु ने अपने ग्रन्थों में संस्कारों की संख्या तो नहीं गिनायी किन्तु गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्त्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास तथा अन्त्येष्टि-ये सोलह संस्कार पृथक्-पृथक् स्थानों पर दर्शाये हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इन्हीं सोलह संस्कारों को महत्त्व दिया है तथा इन्हीं पर एक ग्रन्थ **संस्कारविधिः** नामक है।[26] इस ग्रन्थ में संस्कारों को प्रारम्भ करते हुए उन्होंने लिखा-

मनुष्यों के शरीर और आत्मा उत्तम होने के लिये निषेक अर्थात् गर्भाधान से लेके श्मशानान्त अर्थात् अन्त्येष्टि मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर का विधिपूर्वक दाह करने पर्यन्त सोलह संस्कार होते हैं।

शरीर का आरम्भ गर्भाधान और शरीर का अन्त भस्म कर देने तक सोलह प्रकार के उत्तम संस्कार करने होते हैं।[२७]

गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त संस्कारों को मानने में उन्होंने महर्षि मनु का प्रमाण उपस्थापित किया है।[28]

गर्भाधान संस्कार के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अनेकानेक नाम दिये हैं। महर्षि मनु[29], महर्षि याज्ञवल्क्य[30] अपनी स्मृतियों में तथा आचार्य विष्णु[31] अपने धर्मसूत्र में इसका निमेष नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देते हैं। आचार्य शांखायन[32], आचार्य पारस्कर[33] एवं आचार्य आपस्तम्ब[34] के मत में गर्भाधान संस्कार का नाम चतुर्थी कर्म या चतुर्थी होम है। आचार्य आश्वलायन ने इस संस्कार का नाम गर्भलम्भन दिया है।[35] आचार्य बौधायन[36], आचार्य काठक[37] तथा आचार्य गौतम[38] ने गर्भाधान शब्द का प्रयोग किया है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी एक स्थान पर गर्भाधान पद का प्रयोग करते हुए इस संस्कार की महत्ता दर्शायी है।[39]

गृह्यसूत्रकारों[40] ने जो चतुर्थी कर्म अथवा चतुर्थीकृत्य पद का व्यवहार गर्भाधान हेतु किया है उसका अभिप्राय यह है कि विवाह के तीन रात उपरान्त, चौथी रात को पति अग्नि में पके हुए भोजन की आठ आहुतियाँ अग्नि, वायु, सूर्य, अर्यमा, वरुण, पूषा, प्रजापति एवं स्विष्टकृत को प्रदान करता है। इसके पश्चात् वह ऋग्वेद के दो मन्त्रों[41] से स्वाहा पद का प्रयोग करता हुआ अध्यण्डा की जड़ को कूट कर उसके जल का पत्नी की नाक में छिड़काव करता है। तदुपरान्त वह पत्नी का स्पर्श करता है तथा मन्त्र का मनन कर गर्भाधान करता है। पारस्कराचार्य[42], आपस्तम्बाचार्य[43] तथा गोभिलाचार्य[44] ने चतुर्थीकृत्य अथवा कर्म की यही विधि दर्शायी है। वैखानस[85] ने इस विधि का नाम ऋतु-संगमन किया है।

गर्भाधान के विभिन्न नाम होते हुए भी इनके उद्देश्य के विषय में सभी आचार्य एकमत हैं। सभी स्मृतिकारों तथा आचार्यों की विचारधारा को संक्षिप्त करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस संस्कार के प्रयोजन, महत्त्व एवं काल का वर्णन इस प्रकार किया है-

गर्भाधान उसको कहते हैं कि जो **गर्भस्याऽऽधानं वीर्यस्थापनं स्थिरीकरणं यस्मिन् येन वा कर्मणा तद् गर्भाधानम्**- गर्भ का धारण अर्थात् वीर्य का स्थापन, गर्भाशय में स्थिर करना जिस से होता है।

जैसे बीज और क्षेत्र के उत्तम होने से अन्नादि पदार्थ भी उत्तम होते हैं, वैसे उत्तम, बलवान् स्त्री-पुरुषों से सन्तान भी उत्तम होते हैं। इससे पूर्ण युवावस्था, यथावत् ब्रह्मचर्य का पालन और विद्याभ्यास करके अर्थात् न्यून से न्यून सोलह वर्ष की कन्या और पच्चीस वर्ष का पुरुष अवश्य हो, इससे अधिक वय वाले होने से अधिक उत्तमता होती है।

क्योंकि बिना सोलहवें वर्ष के गर्भाशय में बालक के शरीर को यथावत् बढ़ने के लिये अवकाश और स्त्री के शरीर में गर्भ के धारण-पोषण का सामर्थ्य भी नहीं होता। और 25 वर्ष के बिना पुरुष का वीर्य भी उत्तम नहीं होता। इसमें यह प्रमाण है।[46]

शरीर की उन्नति वा अवनति की विधि जैसी वैद्यकशास्त्र में है, वैसी अन्यत्र नहीं। जो उसका मूल विधान आगे वेदारम्भ में लिखा जायेगा, अर्थात् किस-किस वर्ष में कौन-कौन धातु किस-किस प्रकार की कच्चा व पक्का, वृद्धि वा क्षय को प्राप्त होता है, यह सब वैद्यकशास्त्र में है। इसलिये गर्भाधानादि संस्कारों के करने में वैद्यकशास्त्र का आश्रय विशेष लेना चाहिये।

अब देखिये सुश्रुतकार परमवैद्य कि जिसका प्रमाण सब विद्वान् लोग मानते हैं, वे विवाह और गर्भाधान का समय न्यून से न्यून सोलह वर्ष की कन्या और पच्चीस वर्ष का पुरुष अवश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होवे यह लिखते हैं। जितना सामर्थ्य पच्चीस वर्ष में पुरुष के शरीर में होता हे, उतना ही सामर्थ्य सोलहवें वर्ष में कन्या के शरीर में हो जाता है, इसलिये वैद्य लोग पूर्वोक्त अवस्था में दोनों का समवीर्य अर्थात् तुल्य सामर्थ्यवाले जानें।

सोलह वर्ष से न्यून अवस्था की स्त्री में पच्चीस वर्ष से कम अवस्था का पुरुष यदि गर्भाधान करता है, तो वह गर्भ उदर में ही बिगड़ जाता है। और जो उत्पन्न भी हो तो अधिक नहीं जीवे अथवा कदाचित् जीवे भी तो उसके अत्यन्त दुर्बल शरीर और इन्द्रिय हों, इसलिये **बाला** अर्थात् सोलह वर्ष की कम अवस्था से कम अवस्था की स्त्री में कभी गर्भाधान नहीं करना चाहिये।[47]

चिकित्साशास्त्र के प्रणेताा महर्षि सुश्रुत ने गर्भाधान की आयु का संकेत कुछ इस प्रकार करते हुए कहा है- सोलहवें वर्ष से आगे मनुष्य के शरीर के सब धातुओं की वृद्धि और पच्चीसवें वर्ष से युवावस्था का प्रारम्भ, चालीसवें वर्ष में युवावस्था की पूर्णता अर्थात् सब धातुओं की पूर्ण पुष्टि और उससे आगे किञ्चित्-किञ्चित् धातु वीर्य की हानि होती है। अर्थात् चालीसवें वर्ष में सब अवयव पूर्ण हो जाते हैं, पुनः खान-पान से जो उत्पन्न वीर्य धातु होता है, वह कुछ-कुछ क्षीण होने लगता है।[48]

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने गर्भाधान के उत्तमकाल पर महर्षि सुश्रुत के उक्त कथन पर इस प्रकार विचार प्रकट किये-

इससे सिद्ध होता है कि यदि शीघ्र विवाह करना चाहें तो कन्या सोलह वर्ष की और पुरुष पच्चीस वर्ष का अवश्य होना चाहिये। मध्यम समय कन्या का बीस वर्ष पर्यन्त और पुरुष का चालीसवाँ वर्ष और उत्तम समय कन्या का चौबीस वर्ष और पुरुष का अड़तालीस वर्ष पर्यन्त का है।[49]

इस प्रकार के काल-निर्धारण से जीवन में बहुत लाभ होते हैं, जिनका महर्षि ने ऊपर वर्णन कर दिया है। आगे उन्होंने लाभ बताते हुए पुनः लिखा-जो अपने कुल की उत्तमता, उत्तम सन्तान, दीर्घायु, सुशील, बुद्धि, बल, पराक्रमयुक्त विद्वान् और श्रीमान् करना चाहें, वे सोलहवें वर्ष से पूर्व कन्या और पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें। यही सब सुधार का सुधार, सब सौभाग्यों का सौभाग्य और उन्नतियों की उन्नति करने वाला कर्म है कि इस अवस्था में ब्रह्मचर्य रख के अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिससे उत्तम सन्तान होवें।[50]

गर्भाधान के काल, पुत्र-पुत्री को प्राप्त के उपाय तथा गृहाश्रम में रहते हुए भी ब्रह्मचारी-इन सब विषयों का प्रतिपादन महर्षि मनु आदि शास्त्रकारों ने अपने-अपने ग्रन्थ में किया है।[51] महर्षि दयानन्द ने उसका व्याख्यान करते हुए संस्कारविधि में लिखा-ऋतुदान के समय का निश्चय इस प्रकार से किया है कि सदा पुरुष ऋतुकाल में स्त्री का समागम करे ओर अपनी पत्नी के बिना दूसरी स्त्री का सर्वदा त्याग रखे। वैसे ही स्त्री भी अपने विवाहित पुरुष

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Varanasi.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को छोड़ के अन्य पुरुषों से सदैव पृथक् रहे। जो 'स्त्री-व्रत' अर्थात् अपनी विवाहित स्त्री ही से प्रसन्न रहता है, जैसे कि पतिव्रता स्त्री अपने विवाहित पुरुष को छोड़ दूसरे पुरुष का संग कभी नहीं करती वह पुरुष जब ऋतुदान देना हो तब 'पर्व' अर्थात् जो उन ऋतुदान के सोलह दिनों में पौर्णमासी, अमावस्या, चतुर्दशी वा अष्टमी आवे, उसको छोड़ देवे। इनमें स्त्री-पुरुष रतिक्रिया कभी न करें। स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल सोलह रात्रि का है, अर्थात् रजोदर्शन दिन से लेके 16 वें दिन तक ऋतु समय है। उनमें प्रथम की चार रात्रि अर्थात् रजोदर्शन दिन से लेके चार दिन निन्दित हैं। प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ रात्रि में पुरुष, स्त्री का स्पर्श और स्त्री पुरुष का सम्बन्ध कभी न करें, अर्थात् रजस्वला के हाथ का छुआ पानी भी न पीवे। न वह स्त्री कुछ काम करें, किन्तु एकान्त में बैठी रहे, क्योंकि इन चार रात्रियों में समागम करना व्यर्थ और महारोगकारक है। और जैसे प्रथम की चार रात्रि ऋतुदान देने में निन्दित हैं वैसे ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि भी निन्दित है। और बाकी रही दश रात्रि, सो ऋतुदान देने में श्रेष्ठ हैं। जिनको पुत्र की इच्छा हो, वे छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं-ये छः रात्रि ऋतुदान के लिये उत्तम जाने, इनमें भी उत्तर-उत्तर श्रेष्ठ हैं। और जिनको कन्या की इच्छा हो, वे पांचवीं, सातवीं, नौवीं और पन्द्रहवीं, ये चार रात्रि उत्तम समझें। इससे युग्म रात्रियों में ऋतुदान देवें। पुरुष के अधिक वीर्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्तव अधिक होने से कन्या, तुल्य होने से नपुंसक पुरुष वा बन्ध्या स्त्री, क्षीण और अल्पवीर्य से गर्भ का न रहना वा रह कर गिर जाना होता है। जो पूर्व में निन्दित आठ रात्रियाँ कह आये हैं, उनमें जो स्त्री का संग छोड़ देता है, वह गृहाश्रम में वसता हुआ भी ब्रह्मचारी ही कहाता है।[52]

गर्भाधान संस्कार के उपरान्त महर्षि दयानन्द ने खाद्य-अखाद्य की चर्चा करते हुए उसके द्वारा सन्तान पर पड़ने वाले प्रभाव को भी ज्ञापित किया है-

पुनः स्त्री के भोजन-छादन का सुनियम करे। कोई मादक मद्यादि रेचक हरीतकी आदि क्षार अति लवणादि, अत्यम्ल अर्थात् खटाई, रूक्ष चणे आदि, तीक्ष्ण अधिक लालमिर्च आदि, स्त्री कभी न खावे, किन्तु, घृत, दुग्ध, मिष्ट, सोमलता अर्थात् गुडुच्यादि औषधि, मिष्ट, दधि, गेहूँ, उर्द, मूंग, तुअर आदि अन्न और पुष्टिकारक शाक खावें, उसमें ऋतु-ऋतु के मसाले-गर्मी में ठण्डे सफेद इलायची आदि और शरदी में केशर, कस्तूरी आदि डालकर खाया करें। युक्ताहार विहार सदा किया करें। दूध में सूंठी और ब्राह्मी औषधि का सेवन स्त्री विशेष किया करें। जिससे सन्तान अति बुद्धिमान्, रोगरहित, शुभगुण-कर्म-स्वभाव वाला होवे।[53]

यद्यपि गर्भाधान संस्कार वर्तमान में भी प्रचलित है, किन्तु कोई भी श्रद्धा और विवेक के माध्यम से यदि किया जाये तो वह अनेक गुणान्वित होकर महान् फलोत्पादक बन जाता है।

संस्कारों में द्वितीय संस्कार पुंसवन है। इस शब्द का प्रयोग प्रथमतः अथर्ववेद में हुआ है।[54] इसके उपरान्त तो कौशिक सूत्र[55], या आश्वलायानगृह्यसूत्र[56], शांखायनगृह्यसूत्र[57] तथा गोभिलगृह्यसूत्र[58] में इसका नाम प्राप्त होता है। पुंसवन का उद्देश्य बालक की उत्पत्ति है। पुंसवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कार का समय गर्भस्थिति ज्ञात हुए समय से दूसरे वा तीसरे महीने में है। उसी समय पुंसवन संस्कार करना चाहिये, जिससे पुरुषत्व अर्थात् वीर्य का लाभ होवे।[59] यह संस्कार गर्भस्थिति ज्ञात हो जाने पर गर्भ के दूसरे या तीसरे महीने में करना चाहिये।[60] इस संस्कार में गर्भ का दूसरा वा तीसरे महीने में वटवृक्ष की जटा वा उसकी पत्ती लेके स्त्री को दक्षिण नासापुट से सुंघावे और कुछ अन्य पुष्ट अर्थात् गुडच जो गिलोय वा ब्राह्मी औषधि खिलावे।[61]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि पुंसवन संस्कार में धार्मिक, प्रतीकात्मक एवं औषधि सम्बन्धी तत्त्वों का सम्मिश्रण किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य गर्भ की स्थिरता एवं दृढ़ता से है। इसीलिये संस्कारविधि में इस संस्कार में करणीय तथा अकरणीय कर्मों[62] को दिखाते हुए लिखा गया-

स्त्री सुनियम युक्ताहार विहार करे। विशेषकर गिलोय, ब्राह्मी औषधि और सूंठ को दूध के साथ थोड़ी-थोड़ी खाया करे। और अधिक शयन और अधिक भाषण, अधिक खारा, खट्टा, तीखा, कड़वा रेचक, हरडें आदि न खावे। सूक्ष्म आहार करें। क्रोध, द्वेष, लोभादि दोषों में न फंसे। चित्त को सदा प्रसन्न रखें इत्यादि शुभाचरण करें।

इस संस्कार की उपादेयता प्राचीन काल के समान वर्तमान में भी है, यह सर्वविदित है।

वेदकालीन संस्कृति में 'सीमन्तोन्नयन' तीसरा संस्कार है। सीमन्तोन्नयन शब्द का अर्थ 'स्त्री के केशों को ऊपर विभाजित करना है।'[63] स्त्री के केशों के मध्य में निकाली गयी पद्धति का नाम सीमान्त है[64], जिसे वर्तमान में 'मांग' कहते हैं। सीमन्तोन्नयन संस्कार का वर्णन विभिन्न गृह्यसूत्रों में प्राप्त होता है।[65] कुछ आचार्यों ने इस संस्कार का नाम 'सीमान्त'[66] और कुछ ने 'सीमान्तकरण'[67] दिया है। गर्भमास से चौथे महीने में, शुक्लपक्ष में जिस दिन पुनर्वसू, पुष्य, अनुराधा, मूल, श्रवण, अश्विनी और मृगशिरा आदि नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमा हो, उसी दिन सीमन्तोन्नयन संस्कार करें।[68] और पुंसवन संस्कार के तुल्य छठें, आठवें महीने में पूर्वोक्त पक्ष नक्षत्रयुक्त चन्द्रमा के दिन सीमन्तोन्नयन संस्कार करना चाहिये।[69] जिससे गर्भिणी स्त्री का मन सन्तुष्ट, आरोग्य, गर्भस्थिर, उत्कृष्ट होवे और प्रतिदिन बढ़ता जावे।[70]

संसार में आते ही शिशु के स्वागत के लिये जो प्रथम संस्कार किया जाता है वह संस्कारों के मध्य चतुर्थ स्थानीय है जिसे गृह्यसूत्रकारों ने जातकर्म नाम दिया है। यह संस्कार सर्वप्राचीन और सर्वमान्य है। तैत्तिरीयसंहिता में आता है कि **जब किसी के सन्तान उत्पन्न हो, तो उसे बारह विभिन्न पात्रों में पके हुए पुरोडाश (रोटी) की बलि वैश्वानर को देनी चाहिये। वह सन्तान जिसके लिये यह 'इष्टि' की जाती है, पवित्र गौरवपूर्ण, धन-धान्य से सम्पूर्ण, वीर एवं पशु वाला होता है।**[71] बृहदारण्यकोपनिषद्[72] के ऋषि ने भी इस ओर संकेत करते हुए लिखा- **जब सन्तान की उत्पत्ति होती है, तब उसे सर्वप्रथम विमलीकृत मक्खन चटाना चाहिये, तब माँ के स्तन का स्पर्श करना चाहिये।**

यजुर्वेद[63] एवं पारस्करगृह्यसूत्र[74] में लिखा है कि जब प्रसव होने का समय आवे तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्भिणी स्त्री के शरीर पर जल का मार्जन करें। पुनः मार्जनोपरान्त मन्त्र का जाप कर[75] पुनः मार्जन करे। आचार्य आश्वलायन ने शिशु के जन्मोपरान्त जिस क्रिया को करने का निर्देश दिया है[76] महर्षि दयानन्द सरस्वती उसकी व्याख्या करते हुए लिखते हैं-

जब पुत्र का जन्म होवे, तब प्रथम दायी आदि स्त्री लोग बालक के शरीर का जरायु पृथक् कर मुख, नासिका, कान, नाक, आँख आदि में से मल को शीघ्र दूर कर कोमल वस्त्र से पोंछ, शुद्ध कर पिता की गोद में बालक को देवे।[77]

"पिता जहाँ वायु और शीत का प्रवेश न हो, वहाँ बैठ के एक बीता भर नाड़ी को छोड़ ऊपर सूत से बाँध के, उस बन्धन के ऊपर की नाड़ी छेदन करके, किञ्चित उष्ण जल से बालक को स्नान करा, शुद्ध वस्त्र से पोंछ, नवीन शुद्ध वस्त्र पहिना, जो प्रसूताघर के बाहर पूर्वोक्त प्रकार कुण्ड कर रखा हो अथवा ताँबे के कुण्ड में समिधा पूर्वलिखित प्रमाणे चयन कर..... आज्याहुति देनी।"

जातकर्म संस्कार में घृत और मधु असमभाग सम्मिश्रण कर सोने की शलाका से बालक की जीभ पर **'ओ३म्'** लिखना, कान में **वेदोऽसीति** कहना, गुप्त नाम रखना, सोने की शलाका से मधु और घृत चटाना इत्यादि अनेक क्रियायें है[78] जिनका उद्देश्य शिशु की देखभाल में पिता, घर के सभी सदस्य, सगे-सम्बन्धी और चिकित्सकों को सावधान रहना है। शिशु के कान में धीमे से मन्त्रों का जप का विधान[79] शिशु के सिर को सूँघना[80] प्रसूता स्त्री के सिर की ओर जल का कलश भर कर रखना, प्रसूता स्त्री का प्रसूत-स्थान पर दश दिन तक निरन्तर रहना[81], उसी स्थान पर प्रातः सायं सन्धिबेला में दो मन्त्रों से भात और सरसों मिलाकर दश दिन तक यज्ञ करना[82] तथा अन्तिम ग्यारहवें दिन मन्त्रों से ही शिशु को आशीर्वाद देना[83] जातकर्म की वे क्रियाएँ हैं जिनसे शिशु तथा प्रसूता की देखभाल की ओर संकेत जा रहा है।

वस्तुतः शिशु के साथ-साथ माँ का भी यह नया जन्म होता है। अतः उसका भी ध्यान रखना वैदिक परम्परा का आदेश है अन्यथा स्त्रियों में शिशु के जन्म के कुछ समय उपरान्त विभिन्न रोगों का आक्रमण होने की आशंका बनी रहती है। प्राचीनकाल की अपेक्षा इस संस्कार की वर्तमान में अत्यधिक उपयोगिता इसलिये है कि इस समय प्रायः सर्वत्र वातावरण प्रदूषित है, जिससे प्रसूता और शिशु को बिमारियाँ अधिक प्रभावित कर सकती हैं।

नामकरण की चर्चा करते हुए विभिन्न गृह्यसूत्रकारों ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है[84] यदि कोई मतभेद है तो वह नामकरण के काल का है। कुछ आचार्य जन्म के दिन ही नाम रखने की व्यवस्था दिखाते हैं[85] तथा कुछ आचार्य जन्म के दशवें दिन नामकरण संस्कार को उचित मानते हैं।[86]

वस्तुतः यह नामकरण के काल की व्यवस्था मौसम, ऋतु, प्रसूता एवं शिशु के स्वास्थ्य, गृह्य तथा सामाजिक सुविधा के आधार पर ही मुख्य रूप से है। यतोहि बाणभट्ट जन्म के दशवें दिन तक[87], याज्ञवल्क्य ग्यारहवें दिन तक[88], बौधायन बारहवें दिन तक[89], लघु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्वलायन सोलहवें दिन तक[90], गोभिल ने दश रात्रियों से लेकर सौ रात्रियों या एक वर्ष के उपरान्त[91], तथा महर्षि मनु दसवे दिन से लेकर किसी भी शुभ दिन, तिथि और नक्षत्र में[92], नामकरण संस्कार करने का निर्देश दिया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सभी आचार्यों के काल का समुचित निर्णय लेते हुए लिखा- **''जिस दिन जन्म हो, उस दिन से लेकर १०वें दिन छोड़, ११वें वा १०१वें दिन अथवा दूसरे वर्ष के आरम्भ में जिस दिन जन्म हुआ हो, नाम धरे।**[93]

वस्तुत: नामकराण का उद्देश्य उसके नाम को प्रकाशित करना और प्रसन्नता का सूचक है, तो आज भी प्राचीन काल की तरह महत्त्वपूर्ण है।

निष्क्रमण संस्कार उसको कहते हैं जब नवजात शिशु को शुद्ध वायुस्थान में भ्रमण कराना होता है। उसका समय जब अच्छा देखें, तभी बालक को बाहर घुमावे, अथवा चौथे मास में तो अवश्य भ्रमण करावें। ऐसा विभिन्न सूत्रकारों तथा आचार्यों का मत है।[94]

इसका उद्देश्य यही है कि शिशु को बाहर की शुद्ध वायु से धीरे-धीरे स्वस्थ रखा जाये।

अन्नप्राशन संस्कार जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य हो तब छठे महीने में करो देवे।95 जिसको केशच्छेदन संस्कार कहते हैं, इसे चूड़ाकर्म संस्कार भी कहा जाता है। इसे बालक के जन्म के तीसरे या चौथे वर्ष में अथवा उत्तरायणकाल शुक्ल पक्ष में जिस दिन आनन्द मंगल हो उसी दिन कर ले।[96] कर्णवेध संस्कार जन्म के तीसरे वा पांचवे वर्ष में उचित है।[97] **उपनयन** शब्द का भाव शिशु को आचार्य के समीप ले जाने से है, जहाँ वह विद्याग्रहण का प्रतीक यज्ञोपवीत धारण कर गुण, कर्म, स्वभावानुसार जन्म के आठवें, ग्यारहवें, बारहवें अथवा सोलहवें, बाइसवें, चौबीसवें वर्ष से पूर्व-पूर्व हो जाना चाहिये। यदि शिशु का यह संस्कार न हो तो उन्हें पतित माना जाना चाहिये।[98]

उपनयन संस्कार ही वर्तमान में विद्यारम्भ संस्कार के नाम से विख्यात है, जो प्राय: सभी बच्चों का होता है और बहुत अनिवार्य भी है। इसी प्रकार वेदारम्भ संस्कार भी है ''जो गायत्री मन्त्र से लेकर सांगोपांग चारों वेदों के अध्ययन करने के लिये नियम धारण करना। जिस दिन उपनयन संस्कार का है, वही वेदारम्भ का है। यदि उस दिवस में न हो सके अथवा करने की इच्छा न हो, तो दूसरे दिन करें। यदि दूसरा दिन भी अनुकूल न हो तो एक वर्ष के भीतर किसी भी दिन करें।[99] यह संस्कार बहुत ही विस्तृत रूप से गृह्यसूत्रकारों ने वर्णित किया है।

विद्या अध्ययन समाप्ति का सूचक समावर्तन संस्कार है।[100] इसके उपरान्त विवाह संस्कार है, जो ब्रह्मचर्याश्रम, विद्या, बल को प्राप्त तथा सब प्रकार से शुभ, गुण, कर्म, स्वभावों में तुल्य परस्पर प्रीतियुक्त होके सन्तानोत्पत्ति और अपने-अपने वर्णाश्रम के अनुकूल उत्तम कर्म करने के लिये स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध होता है।[101] इस संस्कार के विषय में सभी गृह्यसूत्रकारों तथा स्मृतिकारों ने लिखा है। प्राचीनकाल की तरह यह वर्तमान में भी प्रचलित है और प्राय: सभी लोग इसे करते हैं। वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम का वर्णन शतपथब्राह्मण तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाबालोपनिषद् में प्राप्त होता है।[102] इन दोनों आश्रमों की चर्चा मनुस्मृति में की गयी है।[103] वेद के प्रमाणों से इन संस्कारों की प्रामाणिकता विद्वानों ने मानी है।[104] तथा शरीर के अन्त का संस्कार अन्त्येष्टि संस्कार है।[105] आश्वलायन ऋषि ने इस संस्कार की विधि पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए मृत शरीर को अग्नि को समर्पित करने की चर्चा की है तथा इसको पर्यावरण की शुद्धि के साथ देखा गया है।106

इस प्रकार इस विवेचन से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में जिन संस्कारों का महत्त्व था, वर्तमान में भी उनकी उपादेयता कम नहीं है।

सन्दर्भ

१. संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य। पर्वमीमांसा, शाबरभाष्य ३.१.३

२. हलायुधकोषः पृष्ठ ६८०

३. महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधिः भूमिका के अन्तर्गत।

४. वेदादिशास्त्रसिद्धान्तमाध्याय परमादरात्।
आर्यैतिह्यं पुरस्कृत्य शरीरात्मविशुद्धये।। महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि का प्रारम्भिक श्लोक सं० ३

५. संस्कारैस्संस्कृतं यद्यन्मेध्यमत्र तदुत्तमम्।
असंस्कृतं तु यल्लोके तदमेध्यं प्रकीर्त्यते।। महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि का प्रारम्भिक श्लोक सं० ४

६. अतः संस्कारकरणे क्रियतामुद्यमो बुधैः।
शिक्षयौषधिभिर्नित्यं सर्वथा सुखवर्द्धनः।। महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि का प्रारम्भिक श्लोक सं० ५

७. द्रष्टव्यः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद संहिताएँ।

८. न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शंभविष्ठा।। ऋग्० ५.७६.२

९. (क) न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि।
उरुगायमभयं तस्य ता अनुगावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः।। ऋग्० ६.२८.४

(ख) य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः।
यदि स्तोतुर्मधवां श्रृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत्।। ऋ.८/३३/९

१०. अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम।
सा प्रथमा संस्कृतर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः।। यजुर्वेद ७.१४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११. स इदं देवेभ्यो हविः संस्कुरु साधु संस्कृतं संस्कुर्वित्येवेतदाह॥ १.१.४.१०॥ तस्मादेव एवं यज्ञस्तस्य मनश्च वाक् च वर्तिनी।

१२. तयोरन्यतरां मनसा संस्करोति ब्रह्मा वाचा होता॥ छान्दोग्योपनिषद् १.१६.१-२

१३. जैमिनि सूत्र ३.१.३, ३.२.१५, ३.८.३, ९.२.१, ४२.४४, ९.३.२५, ९.४.३३., ९.४.५०, ९.४.५४, १०.१.२, १०.१.११

१४. द्रष्टव्य उपरोक्त टिप्पणी-१

१५. योग्यतां चादधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यन्ते॥ तन्त्रवार्तिक

१६. गौतमधर्मसूत्र ८.८

१७. आपस्तम्बधर्मसूत्र १.१.१.९

१८. वसिष्ठधर्मसूत्र ४.२

१९. गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन, वेद के चार व्रत, स्नान, (या समावर्तन) विवाह, पंच महायज्ञ, सप्त पाकयज्ञ, सप्त हविर्यज्ञ, सप्त सोमयज्ञ-गौतम धर्मसूत्र ८.१४-२४

२०. देवयज्ञ, पितृयज्ञ, नृयज्ञ, भूतयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ॥

२१. अष्टका, पार्वण-स्थालीपाक, श्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री, आश्वयुजी।

२२. अग्न्यधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास्य, निरूढपशुबन्ध, सौत्रामणि॥

२३. अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम।

२४. पंच आह्निक यज्ञ, सात पाकयज्ञ, सात हविर्यज्ञ, सप्त सोमयज्ञ-यहाँ पंच आह्निक यज्ञों की एक संख्या है।

२५. गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, विष्णुबलि, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन, वेदव्रत-चतुष्ट्य, समावर्तन एवं विवाह-व्यास धर्मसूत्र १.१४.-१५

२६. संस्कारविधिः-यह ग्रन्थ वैदिक यन्त्रालय, अजमेर से बहुधा प्रकाशित हुआ है।

२७. महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधिः के गर्भाधानविधि के प्रारम्भ में।

२८. निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः॥ मनु० २.१६

२९. मनु० २.१६

३०. याज्ञवल्क्यस्मृति १.१०-११

३१. विष्णुधर्मसूत्र २.३ तथा २७.१

३२. शांखायनगृह्यसूत्र १.१८-१९

३३. पारस्करगृह्यसूत्र १.११

३४. आपस्तम्बगृह्यसूत्र ८.१०-११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३५. आश्वलायनगृह्यसूत्र १.१३.१

३६. बौधायनगृह्यसूत्र ३०.८

३७. काठकगृह्यसूत्र ३०.८

३८. गौतमधर्मसूत्रन ८.१४

३९. याज्ञवल्क्यस्मृति १.१

४०. शांखायनगृह्यसूत्र १.१८-१९

४१. (क) उदीर्ष्वातः पतिवती ह्येषा विश्वसवसुं नमसा गीर्भिरीळे।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि॥ ऋग्० १०.८५.२१
(ख) उदीर्ष्वातो विश्वावसो नमसेळामहे त्वा।
अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं सं जायां पत्या सृज॥ ऋग्० १०.८५.२२

४२. पारस्करगृह्यसूत्र १.११

४३. आपस्तम्बगृह्यसूत्र ८.१०-११

४४. गोभिलगृह्यसूत्र २.५

४५. वैखानसस्मार्तसूत्र ३.९

४६. (क) पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक्॥ सुश्रुतसंहिता अ० ३५ श्लोक १३
(ख) ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते॥ सुश्रुतसंहिता अ० १० श्लोक ४४
(ग) जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥ सुश्रुतसंहिता अ० १० श्लोक ५५

४७. महर्षि दयानन्द सरस्वतीकृत संस्कारविधिः के गर्भाधान प्रकरण में।

४८. चतस्रोऽवस्थाः शरीररस्य वृद्धियौवनं संपूर्णता किञ्चित् परिहाणिश्चेति आषोडशाद् वृद्धिराचतुर्विंशतेर्यौवनमाचत्वारिंशतः सम्पूर्णता ततः किञ्चित् परिहाणिश्चेति॥ सूत्रस्थान ३५.२९

४९. महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि का गर्भाधान प्रकरण।

५०. महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि का गर्भाधान प्रकरण।

५१. ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदानिरतस्सदा।
पर्ववर्ज व्रजच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया॥
ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः।
चतुर्भिरितरैः सार्द्धमहोभिः सद्विगर्हितैः॥
तासामाद्याश्चतस्त्रस्तु निन्दितैकादशी च या।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविदेदार्त्तवे स्त्रियम्॥
पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः।
समे पुमान् पंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः॥
निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्॥ मनु० ३.४५-५०

५२. महर्षि दयानन्दसरस्वतीकृत संस्कारविधिः गर्भाधानप्रकरणम्।

५३. महर्षि दयानन्दसरस्वतीकृत संस्कारविधिः गर्भाधानप्रकरणम्।

५४. शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम्।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वा भरामसि॥ अथर्ववेद ६.११.१

५५. कौशिकगृह्यसूत्र ३.५.८

५६. आश्वलायनगृह्यसूत्र १.१३

५७. शांखायनगृह्यसूत्र १.२०

५८. गोभिलगृह्यसूत्र २.६.१

५९. महर्षि दयानन्दसरस्वतीकृत संस्कारविधिः पुंसवनप्रकरण।

६०. अथ पुंसवनं पुरा स्पन्दत इति मासे द्वितीये तृतीये वा॥ पारस्करगृह्यसूत्र १.१४.१.२

६१. (क) अथास्यै मण्डलागारच्छायायां दक्षिणस्यां नासिकायामजीतामोषधीं नस्तः करोति। आ०गृ० १.१३५
(ख) प्रजावज्जीवपुत्राभ्यां हैके॥ आश्वलायन गृह्यसूत्र १.१३.६

६२. महर्षि दयानन्दसरस्वतीकृत संस्कारविधिः पुंसवनप्रकरण।

६३. धर्मशास्त्र का इतिहास-१ लेखक डॉ० पी०वी०काणे।

६४. हलायुधकोशः, पृ० ७१२

६५. आश्वलायनगृह्यसूत्र १.१४१-९, शांखायनगृह्यसूत्र १.२२, बौधायनगृह्यसूत्र १.१०, गोभिलगृह्यसूत्र २.७.१-१२

६६. गोभिलगृह्यसूत्र २.७.१, मानवगृह्यसूत्र १.१२.२, काठकगृह्यसूत्र ३१.१

६७. चतुर्थे गर्भमासे सीमन्तोन्नयनम्॥
आपूर्यमाणपक्षे यदा पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमायुक्तः स्यात्॥ अथास्मै युग्मेन शलालुग्रप्सेन त्र्येण्या च शलल्या त्रिभिश्च कुशपिञ्जूलैरूर्ध्वं सीमन्तं व्यूहति भूर्भुवः स्वरोमिति त्रिः॥ चतुर्वा॥ आश्वलायनगृह्यसूत्र १.१४.१; २;४;५

६९. पुंसवनवत्प्रथमे गर्भेमासे षष्ठऽष्टमे वा॥ पारस्करगृह्यसूत्र १/१५/२.३

७०. महर्षि दयानन्दसरस्वतीकृत संस्कारविधिः सीमन्तोन्नयन प्रकरणम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७१. तैत्तिरीयसंहिता २.२.५.३-४

७२. बृहदारण्यकोपनिषद् १.५.२

७३. एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह। यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति। एवायं दशमास्यो अस्त्रज्जरायुणा सह॥ यजुर्वेद ८.२८

७४. पारस्करगृह्यसूत्र १.१६.

७५. अवैतु पृश्निशैवलं शुने जराय्वत्तवे। नैव मांसेन पीवरीं न कस्मिंश्चनायतनमव जरायु पद्यताम्॥ पारस्करगृह्यसूत्र १.१६.२

७६. कुमारं जातं पुराऽन्यैरालम्भात्। सर्पिर्मथुनो हिरण्यनिकाषं हिरण्येन प्राशयेत्॥ आ० गृह्य० १.१५.२

७७. महर्षि दयानन्दसरस्वतीकृत संस्कारविधिः जातकर्मप्रकरणम्।

७८. (क) आश्वलायन गृह्यसूत्रम् १.१५.१
(ख) गोभिलीय गृह्यसूत्र २.७.२०

७९. पारस्करगृह्यसूत्र १.१६.६

८०. गोभिलगृह्यसूत्र २.८.२१-२२

८१. पारस्करगृह्यसूत्र १.१६.२२

८२. पारस्करगृह्यसूत्र १.१६.२३

८३. अथर्ववेद ६.४.४२; १२.२.२, २३; १८.३.३.६१

८४. आपस्तम्बगृह्यसूत्र १५.८-११, आश्वलायनगृह्यसूत्र १.१५.४-११, बौधायनगृह्यसूत्र २.१.२३-३१, भारद्वाजगृह्यसूत्र १.१६, गोभिलगृह्यसूत्र २.८.८-१८, हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र २.४.६-१५, काठकगृह्यसूत्र ३४.१-२, ३६.१-४, कौशिकगृह्यसूत्र ५४.१३-१७, मानवगृह्यसूत्र १.१८.१, शांखायनगृह्यसूत्र १.२४.४-६, वैखनसगृह्यसूत्र ३.१९, वाराहगृह्यसूत्र २

८५. (क) तस्मात् पुत्रस्य जातस्य नाम कुर्यात्पाप्मानमेवास्य तदपहन्त्यपि द्वितीयमपि तृतीयम्॥ श०ब्रा० ६.१.३.९
(ख) लोके तावन्मातापितरौ पुत्रस्य जातस्य संवृतेऽवकाशे नाम कुर्वाते देवदत्तो यज्ञदत्त इति। तयोरुपद्यारादन्येऽपि जानन्मीयमस्य संज्ञेति॥ पतञ्जलि संज्ञेति। पतञ्जलिकृत महाभाष्य।

८६. (क) दशम्यामुत्थाय पिता ब्राह्मणान् भोजयित्वा नाम करोति। पारस्कर गृह्यसूत्र १.१७.१
(ख) गोभिलगृह्यसूत्र २.८.२

८७. बाणभट्ट कृत कादम्बरी में तारापीड ने अपने पुत्र चन्द्रापीड का नामकरण जन्म के दसवें दिन रखा- पूर्वभाग अनुच्छेद- ६८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८८. याज्ञवल्क्यस्मृति १.१२
८९. बौधायनगृह्यसूत्र २.१.२३
९०. लघु आश्वलायनगृह्यसूत्र ६.१
९१. गोभिलगृह्यसूत्र २.८.८
९२. मनु० २.३०
९३. महर्षिदयानन्दकृत संस्कारविधिः का नामकरणप्रकरणम्।
९४. पारस्करगृह्यसूत्र-१.१७, गोभिलगृह्यसूत्र २.८.१-७, खादिरगृह्यसूत्र २.३.१-५, बौधायनगृह्यसूत्र १.१.२, मानवगृह्यसूत्र १.१९.१-६, काठकगृह्यसूत्र ३७-३८, संस्कारविधिः- महर्षिदयानन्दकृत, निष्क्रमणसंस्कार प्रकरण।
९५. षष्ठे मास्यन्नप्राशनम्। आश्वलायनगृह्यसूत्र १.१६.१
९६. (क) तृतीये वर्षे चौलम्॥ आश्वलायनगृह्यसूत्र १.१६.१
(ख) सांवत्सरिकस्य चूड़ाकरणम्॥ पारस्करगृह्यसूत्रम्। २.१.१
(ग) गोभिलगृह्यसूत्र २.८.१.६
(घ) महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधिः चूड़ाकर्मप्रकरणम्।
९७. कर्णवधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा॥ कात्यायनगृह्यसूत्रम् १.२
९८. अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्। गर्भाष्टमे वा। एकदशे क्षत्रियम्। द्वादशे वैश्यम्। आषोडशाद् ब्राह्मणस्यानतीतः कालः। आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य, आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य, अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति॥ आश्वलायनगृह्यसूत्रम् १.१९.१-६
९९. महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधिः वेदारम्भप्रकरणम्।
१००. वेदसमाप्तिं वाचयीत॥ आश्वलायनगृह्यसूत्र १.२२.१६
१०१. आश्वलायनगृह्यसूत्र १.४.१.२
१०२. शतपथब्राह्मण कां० १४, जाबालोपनिषद् खं० ४
१०३. मनु० ६.१-३, ८.२७-२९, ६.३३; ३६;३८, ३९;४१;४३;४५;४६
१०४ वानप्रस्थसंस्कार में प्रमाण-
(क) यजुर्वेद १९.३०, २०.२४, अथर्ववेद ९.५.१
(ख) ऋग्वेद ९.११३.१-२
१०५. महर्षि दयानन्दसरस्वतीकृत संस्कारविधिः का अन्त्येष्टिप्रकरणम्।
१०६. आश्वलायनगृह्यसूत्र ४.१.६-१०; १५-१७; ४.२.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''विज्ञानभैरव'' में सप्त-समाधि निरूपण

कु० इन्दुशर्मा
शोध छात्र, संस्कृत-विभाग
जे0 वी0 जैन कालेज सहारनपुर

काश्मीर शैवदर्शन के आधारभूत उपलब्ध साहित्य को तीन भागों में विभाजित किया गया है (1) आगमशास्त्र, (2) स्पन्दशास्त्र और (3) प्रत्यभिज्ञाशास्त्र।[1] इनमें आगमशास्त्र का प्रमुख स्थान है। क्योंकि यें शिवमुखोद्भूत हैं।[2] काश्मीर शैवागमों में श्रीमालिनीविजयोत्तरतन्त्र, श्रीस्वछन्दतन्त्र, श्रीनेत्रतन्त्र आदि प्रमुख आगमों के साथ विज्ञानभैरव की गणना की गयी है।[3] विज्ञानभैरव की अवतारणा देवी और भैरव के संवाद के रूप में हुई है।[4] यह रुद्रयामलतन्त्र का सार है और इसे सर्वशक्ति प्रभेदों का हृदय कहा गया है।[5]

इसमें सप्त समाधियों का वर्णन किया गया है। विज्ञानभैरव में एक साधारण प्राणी से योगी की विशिष्टता दिखाते हुए कहा गया है कि ग्राह्य-ग्राहक की प्रतीति सभी प्राणियों में सामान्य रूप में होती है[6] अर्थात् सभी प्रणियों का सदाशिव से लेकर कीट-पर्यन्त ग्राह्य-ग्राहकभाव सम्बन्ध से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह सामान्य है, एक ही प्रकार का है[7] परन्तु योगियों की विशेषता यह है कि वें इस ग्राह्य और ग्राहक के सम्बन्ध में ग्राहक का विस्मरण न करने के कारण सावधान होते हैं[8]। अभिप्राय यह है कि योगी यह समझता है कि मैं ग्राहक हूँ और मेरा स्वरूप ऐसा है अथवा मैं आकृति को ग्रहण करने वाला हूँ और दूसरे दिखाई देने वाले दृश्यमात्र हैं। अत: ये सब अनित्य और नाशवान् हैं, और मैं नित्य और अविनाशी हूँ।[9] ऐसा समझता हुआ योगी दूसरे शरीर में भी अपने शरीर की भाँति संवित्ति का अनुभव करने से तथा अपने शरीर की अपेक्षा को छोड़ देने से कुछ दिनों मे ही योगी व्यापक बन जाते हैं।[10] इस अवस्था में साधक का मन समस्त विकल्पों से रहित होकर परमात्मा में स्थित हो जाता है। ऐसा साधक स्वयं भैरव रूप हो जाता है।[11] योग में यह भावना दृढ हो जाती है कि ''वही मैं हूँ और मैं ही वह हूँ'' अर्थात् शिव तथा योगी में कोई भेद नहीं है।[12] योगी मे दो प्रकार की प्रत्यभिज्ञा जाग्रत होती हैं प्रथम प्रत्यभिज्ञा है-मैं वही शैवधर्मा हूँ एवं दूसरी प्रत्यभिज्ञा मुझ भैरव के द्वारा बना हुआ ही यह विश्व है।[13] इस प्रकार योगी भैरव के साथ अपनी अद्वैतता को लहरें और जल, अग्नि और ऊष्णता, सूर्य और प्रकाश की भाँति मानता है।[14] विज्ञानभैरव में कहा गया है कि सिद्धासन द्वारा मूलबन्ध लगाकर, ठुड्डी को कंठकूप के भीतर लगाकर कानों के छिद्रो को दोनों अंगूठों से बन्द करके, नासिका के दोनों छिद्रों को दोनों कनिष्ठा अंगुलियों से बन्द करना चाहिए। दोनों हाथों की शेष तीन-तीन अंगुलियों से दोनों आँखों को बन्द करना चाहिए और दृष्टि को भ्रूमध्य में लगाकर परावाक् से नाभि से लेकर कण्ठपर्यन्त आकार का उच्चारण करने पर साधक में ईश्वरप्रत्यभिज्ञा का उदय होता है।[15] बहुत बड़े छिद्र यथा कूपादि के समीप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठकर नीचे से ऊपर तक के आकाश को निश्चल दृष्टि से देखना चाहिए। तब विकल्प रहित बुद्धि वाले साधक के हृदय में निश्चयेन तत्क्षण ही प्रशान्त हुए चित्त में चिन्मयावस्था की उपलब्धि होती है।[16] जहाँ-जहाँ योगी का मन जाता है, चाहे बाह्य विषयों में अथवा आभ्यन्तर विषयों में, उन सभी अवस्थाओं में शिवावस्था व्यापक होने के कारण बनी ही रहेगी कहीं भी अन्यत्र नहीं जा सकेगी।[17] विज्ञानभैरव में सप्त समाधियों का विवरण दिया गया है। वह योगशास्त्र में उपदिष्ट छः समाधियों से लगभग मिलती जुलती हैं। आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि चित्त की इस चिन्मय आत्मा के साथ अखण्ड़ताद्वैत के भाव से स्थिरीभूत होकर अद्वैतब्रह्म सत्ता के रूप में प्रतीत होने वाली अवस्था विशेष को ''समाधि'' कहते हैं।[18] वहीं हृदय के भीतर की जाने वाले अन्तः समाधि भी दो प्रकार की हैं-(1) सविकल्प और (2) निर्विकल्प। उनमें सविकल्प भी दो प्रकार की -(1) दृश्यसम्पृक्त और (2) शब्दसम्पृक्त।[19] दृश्यसम्पृक्त-सविकल्पकसमाधि के विषय में ''वाक्यसुधा'' में कहा गया है कि ''चित्त के सामने इच्छा से साक्षी चिन्मय का ध्यान करने से उसके साथ अनुबिद्ध समाधि ''दृश्यसम्पृक्तसविकल्पकसमाधि'' कहलाती है।[20] यह स्थूलविकल्पसमाधि है'' तथा दूसरी सूक्ष्मविकल्पसमाधि के बारे में कहा गया है कि- ''असंग, सच्चिदानन्द, द्वैतवर्जित स्वयं समर्थ, आत्मास्वरूप व्यापक तत्त्व ''मैं'' ही हूँ- इस प्रकार शब्दमात्र से अनुबिद्ध सूक्ष्मसविकल्पसमाधि है।''[21]

इस प्रकार प्रयत्न के साथ दो प्रकार की समाधियों की सम्पत्तियों को प्राप्त कर लेने पर योगी निर्विकल्पसमाधि में प्रवेश करता है। इसका लक्षण देते हुए कहा गया है कि-

''स्वानुभूति के रसावेश में दृश्य शब्द की अपेक्षा को त्यागकर निर्वात स्थल पर स्थित दीपशिखा के समान निश्चल होकर बैठना ही निर्विकल्पसमाधि है।''[22]

सविकल्पकसमाधि के द्विविध भेदों के साथ निर्विकल्पक समाधि मिलकर तीन हो जाती है। यें तीनों ही समाधियाँ सूर्य, चन्द्र और आकाश इन बाह्यालम्बनों को प्रतिपादित करती हैं।[23] चतुर्थ समाधि ''दृश्यानुविद्धसविकल्पक 'समाधि' को पारिभाषित करते हुए कहा गया है कि-

''हृदय के समान बाह्य देश में किसी वस्तु में समाधि करने से सन्मात्रावस्था नामरूप से पृथक् होकर रहती है यह ''दृश्यानुविद्धसविकल्पसमाधि है।''[24] पंचम समाधि ''शब्दानुविद्धसमाधि'' का लक्षण निम्न प्रकार है- ''अखण्ड, एकरस, सच्चिदानन्द के अविच्छिन्न चिन्तन से जो समाधि उत्पन्न होती है, वह 'बाह्यशब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि'' है। यह बाह्य समाधियों के भीतर मध्य की स्थित है।''[25]

इस अवस्था में भी केवल ब्रह्माकार स्वरूप होने से मन को चेष्टारहित निर्विकल्पावस्था का अनुभव होता है। इसी प्रकार बाह्य पदार्थों में मन को निश्चेष्ट निर्विकल्पावस्था में होने वाली षष्ठम समाधि का लक्षण इस प्रकार बताया गया है कि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मन को निश्चेष्ट स्तब्ध करके आभ्यन्तर निर्विकल्प समाधि के समान ही बाह्य पदार्थो मे भी मन को विकल्परहित बनाकर स्थिर करना ही 'बाह्यनिर्विकल्पसमाधि'' हैं।''[26]

तदनन्तर छहों समाधियों द्वारा निरन्तर आत्मतत्त्व का चिन्तन करते हुए योगियों को अपना समय व्यतीत करना चाहिए।

इसके पश्चात् हृदेहाभिमान के नष्ट हो जाने तथा परमतत्त्व को पहचान लेने के बाद जहाँ-जहाँ मन जाता है, साधक के लिए वही समाधि उपलब्ध होती है।''[27] अभिप्राय यह है कि मन जिस विषय में जाता है, चाहे वह बाह्य हो या आभ्यन्तर, सर्वत्र चिन्मय सत्तत्व का चिन्तन करने के कारण योगी को सर्वत्र आत्मसत्त्व के अतिरिद्र अन्य किसी वस्तु का भान ही नहीं रहता। इसी अवस्था का नाम 'सप्तसमाधि' है।[28]

इस प्रकार विज्ञानभैरव में 1.दृश्यसम्पृक्त सविकल्पसमाधि या स्थूलविकल्पकसमाधि, 2. शब्दसम्पृक्त सविकल्पसमाधि या सूक्ष्मविकल्पकसमाधि, 3. निर्विकल्पसमाधि, 4. दृश्यानुविद्धसविकल्पसमाधि, 5. शब्दानुविद्धसविकल्पसमाधि, 6. बाह्यनिर्विकल्पसमाधि और 7. सूक्ष्मनिर्विकल्पसमाधि की क्रमशः समीक्षा की गई है।

पाद टिप्पणी

१. काश्मीर शैवदर्शन व कामायनी, डा० भँवरलाल जोशी, पृ० सं०-१३

२. स्वयं परमेश्वरः सिद्धान्तोपदिष्टा, विज्ञानभैरव, का०-७

३. Chatterji. J.C., Kashmir Shaivism, page-8

४. श्रुतं देव मया सर्वं रूद्रयामलसम्भवम्।
त्रिकभेदमशेषेण सारात्सारविभागशः।।
अद्यापि न निवृत्तो मे संशयः परमेश्वर। विज्ञानभैरव, का०-१-२

५. रूद्रयामलतन्त्रस्य सारमद्यावधारितम्।
सर्वशक्तिप्रभेदानां हृदयं ज्ञातमद्य च।। विज्ञानभैरव, का०-१६२

६. ग्राह्यग्राहकसंवित्तिः सामान्या सर्वदेहिनाम्। विज्ञानभैरव, का०-१०६

७. सर्वदेहिनां सदाशिवादिकीटान्तानां,सामान्य निर्विशेषा।। वि० भै० विवृ०, पृ० सं०-९३

८. योगिनां तु विशेषोऽस्ति सम्बन्धे सावधानता।। वि० भै० का०-१०६

९. योगिनां तु पुनः सावधानता ग्राहकरूपाविस्मरणम्।। वि० भै० विवृ०, पृ० सं०-९३

१०. स्ववदन्यशरीरेऽपि संवित्तिमनुभावयेत्।
अपेक्षां स्वशरीरस्य व्यापी दिनैर्भवेत्।। विज्ञानभैरव का०-१०७

११. निराधारं मनः कृत्वा विकल्पान्न विकल्पयेत्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदात्मपरमात्मत्वे भैरवो मृगलोचने।। विज्ञानभैरव का०-१०८

१२. सर्वज्ञः सर्वकर्ता च व्यापकः परमेश्वरः।
स एवाहं शैवधर्मा इति दार्ढ्यादभवेच्छिव।। विज्ञानभैरव का०-१०९

१३. स एवाहं। शैवधर्मा ----------।
ममैव भैरवस्यैता----------।। विज्ञानभैरव विवृ०, पृ० सं०-९८

१४. जलस्येवोर्मयो वह्वेर्ज्वालाभंगयः प्रभा रवेः।
ममैव भैरवस्यैता विश्वभंगयो विभेदिताः।। विज्ञानभैरव का०-११०

१५. सम्प्रदायमिमं देवि शृणु सम्यग्वदाम्यहम्।
कैवल्यं जायते सद्यो नेत्रयोः स्तब्धमात्रयोः।।
संकोचं कर्णयोः कृत्वा ह्यधोद्वारे तथैव च।
अनच्कमहलं ध्यायन्विशेद् ब्रह्म सनातनम्।। विज्ञानभैरव का०-११३, ११४

१६. विज्ञानभैरव, का० -११५

१७. विज्ञानभैरव, का० -११६

१८. समाधिर्नाम चित्तस्य अखण्ड़ात्माद्वयब्रह्मतामात्रेण स्थिरीभावः। विज्ञानभैरव विव्०, पृ० सं०-१०१

१९. स तु बहिरन्तर्वा विधेयः। तत्र हृदयान्तः कर्तव्यः समाधिः
द्विविधः-सविकल्पक-निर्विकल्पकभेदात्। सविकल्पोऽपि द्वेधा
दृश्यसम्पृक्तः शब्दसम्पृक्तश्च।- विज्ञानभैरव विवृ०, पृ० सं०-१०१

२०. विज्ञानभैरव विवृ०, पृ० सं०-१०१ पर उद्धृत।

२१. विज्ञानभैरव विवृ०, पृ० सं०-१०१ पर उद्धृत।

२२. स्वानुभूतिरसावेशाद् दृश्यशब्दानुपेक्ष्य तु।
निर्विकल्पः समाधिः स्यान्निवातस्थलदीपवत्।। यथोपरि

२३. एतत् समाधित्रयं सूर्यचन्द्राकाशादिबाह्यलम्बनं ।। यथोपरि

२४. हृदीव बाह्यदेशेऽपि यस्मिन्कस्मिंश्च वस्तुनि।
समाधिराद्य सन्मात्रे नामरूपपृथक्स्थितः।। विज्ञानभैरव विवृ०, पृ० सं०-१०१

२५. अखण्ड़ैकरसं वस्तु सच्चिदानन्दलक्षणम्।
इत्यविच्छिन्नचिन्तेयं समाधिर्मध्यमो भवेत्।। विज्ञानभैरव विवृ०, पृ० सं०-१०१

२६. वि० भै० विवृ०, पृ० सं०-१०१

२७. देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र-यत्र मनो याति तत्र-तत्र समाधयः।। विज्ञानभैरव विवृ०, पृ० सं०-१०२

२८. आचार्य वसुगुप्त, स्पन्दकारिका, का०- २०, २८, २९,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायप्रवेश-सूत्रम् में हेत्वाभास विवेचन

डॉ० (श्रीमती) लक्ष्मी मोर
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
आर.के.एस. डी (पी.जी.) कॉलेज, कैथल

भारतीय दर्शन में बौद्ध दर्शन का विशेषत: बौद्धन्याय का अपना एक विशेष महत्त्व है। न्यायप्रवेश सूत्रम् बौद्ध-न्याय का ही एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है । इसके रचयिता के विषय में चीनी और तिब्बती विद्वानों में मतभेद है कि यह दिङ्नाग की रचना है या उनके शिष्य शंकर स्वामी की। किन्तु दिङ्नाग के पक्ष में ही अधिक विद्वानों का झुकाव प्रतीत होता है।

न्यायप्रवेश में ग्रन्थकार ने परसंविद् अर्थात् पर अवबोध के लिए जो साधन प्रस्तुत किये हैं उनमें पक्ष और दृष्टान्त के साथ-साथ हेतु भी एक साधन बतलाया है। हेतु शब्द की व्युत्पत्ति है हिनोति गमयति जिज्ञासित धर्म विशिष्टानर्थानिति हेतु: अर्थात् जो जिज्ञासित धर्म से विशिष्ट अर्थ का बोध कराए वह हेतु है। न्यायप्रवेशकार ने हेतु[1] को साधन के द्वितीय अवयव के रूप में स्वीकारा है तथा उसको त्रिरूप सम्पन्न होना आवश्यक बतलाया है। हेतु के त्रिरूप इस प्रकार हैं- पक्षधर्मत्व, सपक्ष सत्व और विपक्षव्यावृत्ति।[2] पक्षधर्म शब्द का अर्थ है साध्यधर्मी का धर्म अर्थात् हेतु का रूप है उसका पक्ष (साध्यधर्मी) के धर्म (विशेषण) के रूप में उपस्थित होना। यथा धूम और अग्नि के उदाहरण में धूम (हेतु) पर्वत (पक्ष) के धर्म या विशेषण के रूप में उपस्थित होता है, यही पक्षधर्मतव है।[3]

त्रिरूप हेतु का द्वितीय रूप है- उसका पक्ष में विद्यमान होना। साध्य धर्मसामान्येनसमानोर्थ: सपक्ष:[4] अर्थात् साध्य: धर्म के साथ समानता रखने वाला जो विषय होता है वह समान पक्ष का सपक्ष कहलाता है। एक सद्हेतु के लिए यह आवश्यक है कि वह सपक्ष में विद्यमान रहे। त्रिरूप हेतु का तृतीय रूप है 'विपक्षेऽसत्वम्'। विसदृश: पक्षो विपक्ष:[5] अर्थात् जो पक्ष में सर्वथा भिन्न हो वह विपक्ष है अर्थात् जहाँ साध्य न रहे वह विपक्ष कहलाता है । टीकाकार हरिभद्रसूरि ने स्पष्ट कहा है कि साध्य और साधन एक दूसरे से सम्बद्ध हैं । अत: विपक्ष में साध्य के अभाव का तात्पर्य है साधन का भी अभाव होना।[6] इस प्रकार विपक्षेघ्सत्वमङ का सम्पूर्ण अर्थ हुआ विषय में हेतु और साध्य दोनों का अभाव होना। उदाहरणार्थ 'यन्नित्यं तदकृतकं दृष्टं यथाकाशमिति'[7] जो नित्य है वह अकृतक (अकार्य) देखा गया है जैसे आकाश।

हेत्वाभास विवेचन :

सद् हेतु का विवेचन करते हुए ही न्यायप्रवेशकार ने हेत्वाभासों का भी विवेचन किया है। जो हेतु के समान आभासित होता है किन्तु सद् हेतु नहीं होता वह हेत्वाभास कहलाता है।[8] बौद्धन्याय के अनुसार सद्हेतु वही है जिसमें पक्षधर्मत्व सपक्षेसत्व व विपक्षेऽसत्व ये त्रिरूप विद्यमान हों। फलत: जिस हेतु में उपरोक्त त्रिरूपों में से एक का भी अभाव होगा वह सद्हेतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न होकर हेत्वाभास कहलाएगा।

न्यायप्रवेशकार ने हेत्वाभासों को तीन प्रकार का माना है- असिद्ध, अनैकान्तिक और विरुद्ध।[9] इसके भेदों व उपभेदों को निम्न तालिका से स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है-

हेत्वाभास

क) असिद्ध	ख) अनैकान्तिक	ग) विरुद्ध
क-1 उभयासिद्ध	ख-1 साधारण	ग-1 धर्मस्वरूपविपरीत साधन:
क-2 अन्यतरासिद्ध	ख-2 असाधारण	ग-2 धर्मविशेषविपरीत साधन:
क-3 सन्दिग्धासिद्ध	ख-3 सपक्षेकदेशवृत्ति विपक्षव्यापी	ग-3 धर्मी स्वरूप विपरीतसाधन:
क-4 आश्रयासिद्ध	ख-4 विपक्षेकदेशवृत्ति सपक्षव्यापी	ग-4 धर्मीविशेषविपरीत साधन:
	ख-5 उभयपक्षेकदेशवृत्ति	
	ख-6 विरुद्धाव्याभिचारी	

क) असिद्ध हेत्वाभास :

'सिध्यति स:सिद्ध प्रतीत:, न सिद्ध: असिद्धप्रतीत:', जो साध्य को सिद्ध कर सके वह सिद्ध हेतु होगा किन्तु जो सिद्ध करने में समर्थ नहीं, वह हेतु न होकर असिद्ध हेत्वाभास कहलाता है। यह चार प्रकार का है-

क-१) उभयासिद्ध :

जो हेतु वादी और प्रतिवादी दोनों को मान्य न हो वह उभयासिद्ध हेत्वाभास कहलाता है।[10] उदाहरणार्थ शब्दोऽनित्य: चाक्षुषत्वात्[11] अर्थात् शब्द अनित्य हैं चाक्षुष होने से। यहाँ 'शब्द' को अनित्यता से युक्त सिद्ध करने के लिए दिया गया 'चाक्षुषत्वे' हेतु शब्द में वादी और प्रतिवादी दोनों के प्रति असिद्ध है क्योंकि उनके अनुसार शब्द श्रोत्रेन्द्रिय ग्राह्य है। अत: यह उभयासिद्ध हेत्वाभास है।

क-२) अन्यतरासिद्ध :

जो हेतु अन्यतर अर्थातङ वादी या प्रतिवादी में से किसी एक को अमान्य हो वह अन्यतरासिद्ध हेत्वाभास कहलाता है।[12] उदाहरणार्थ 'शब्द: अनित्य: कृतकत्वात्' अर्थात् शब्द अनित्य है कृतक होने से। शब्द को नित्य मानने वाले मीमांसक और सांख्याचार्यों के प्रति यहां दिया गया कृतकत्व हेतु उचित नहीं है क्योंकि उनके अनुसार शब्द की केवल अभिव्यक्ति होती है उत्पत्ति नहीं। जबकि वादी नैयायिक आदि से शब्द को अनित्य मानते हैं, के मत में कृतकत्व हेतु उचित है। अत: कृतकत्व हेतु अन्यतरासिद्ध हेत्वाभास का उदाहरण है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क-३) सन्दिग्धासिद्ध :

जो हेतु संदिग्ध होने के कारण असिद्ध हो वह सन्दिग्धासिद्ध हेत्वाभास कहलाता है। उदाहरणार्थ यदि वाष्प, धूम या रेणु के रूप में सन्दिग्ध पृथ्वी आदि भूतों के समुदाय (भूतसंघातः) को अग्नि की सिद्धि के लिए हेतु रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो यह सन्दिग्धासिद्ध हेत्वाभास होगा, क्योंकि यहां धूम जो हेतु है उसका यह निश्चय नहीं है कि वह वस्तुतः धूम ही है या वाष्प है या धूलि-रेखा। 'धूम' के रूप में निश्चित किया गया ही वह अग्नि का लिंग हो सकता है क्योंकि धूम अग्नि से उत्पन्न होता है । यदि वह धूम सन्दिग्ध है तो अग्नि का बोधक (लिंग) नहीं।[14] इस प्रकार यहाँ हेतु के स्वरूप में सन्देह है। अतः सन्दिग्धासिद्ध हेत्वाभास है।

क-४) आश्रयासिद्ध :

जिस हेतु का आश्रय अर्थात् धर्मी ही असिद्ध हो वह आश्रयासिद्ध हेत्वाभास कहलाता है।[15] उदाहरणार्थ आकाश द्रव्य है। गुण का आश्रय होने से आकाशासत्व वादियों के प्रति आश्रयासिद्ध हेत्वाभास है। यहां धर्मी आकाश है और साध्य धर्म 'द्रव्य' है । बौद्धों के अनुसार आकाश नामक कोई द्रव्य नहीं है। अतः यह बौद्धों के प्रति आश्रयासिद्ध हेत्वाभास है।

(ख) अनैकान्तिक हेत्वाभास :

न्यायप्रवेश के टीकाकार हरिभद्रसूरि ने 'अनैकान्तिक' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'एकान्ते भव ऐकान्तिकः। न ऐकान्तिकोऽनैकान्तिकः'[16] अर्थात् निश्चय होना ऐकान्तिक कहलाता है और जिसका कोई निश्चय न हो अर्थात् जो हेतु निश्चित किये गये 'त्रिरूपत्व' से भिन्न रूप में पाया जाए वह अनिश्चित रूप वाला होता है। अतः अनैकान्तिक हेत्वाभास कहलाता है। इसके उपभेदों का विवरण इस प्रकार है-

ख-१) साधारण :

जो हेतु दो अथवा दो से अधिक स्थलों पर सामान्य रूप से विद्यमान होता है। वह साधारण अनैकान्तिक हेत्वाभास कहलाता है।[17] उदाहरणार्थ शब्द नित्य है, प्रमेय होने से।[18] यहां प्रमेयत्व (ज्ञान का विषय होना) हेतु है जो सपक्ष (आकाश में) तथा विपक्ष (घटादि) में समान रूप से रहता है क्योंकि नित्य आकाश भी ज्ञान का विषय और अनित्य घटादि भी ज्ञान के विषय है। अतः ऐसी स्थिति में इस 'प्रमेयत्व' हेतु के आधार पर यह कहा जा सकना कठिन होगा कि शब्द आकाश के समान नित्य है अथवा घट के समान अनित्य। इस प्रकार प्रमेयत्व हेतु पक्ष, सपक्ष, विपक्ष तीनों में सामान्य रूप से रहने के कारण साधारण अनैकान्तिक हेत्वाभास का उदाहरण है।[19]

ख-२) असाधारण :

जो हेतु सपक्ष और विपक्ष दोनों से व्यावृत होता है और केवल पक्ष में विद्यमान होता है वह असाधारण अनैकान्तिक हेत्वाभास होता है।[20] उदाहरणार्थ शब्द नित्य है श्रवण का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय होने से- यहाँ 'श्रावणत्व' हेतु है।[21] यह अपने धर्मी (पक्ष) शब्द को छोड़कर सपक्ष नित्य आकाशादि व विपक्ष अनित्य घटादि में नहीं रहता। अतः संशय उत्पन्न होता है कि शब्द का अपना क्या स्वरूप है- नित्य अथवा अनित्य?[22] दो ही प्रकार के पदार्थ हो सकते है- नित्य और अनित्य। लेकिन शब्द का श्रावणत्व हेतु न तो घटादि अनित्य पदार्थों में होता है और न आकाशादि नित्य पदार्थो में फिर शब्द श्राव्य होने से कैसे है, यह संशय बना ही रहता है- यह असाधारण अनैकान्तिक हेत्वाभास का उदाहरण है।

ख-३) सपक्षैकदेशवृत्तिविपक्षव्यापी :

जो हेतु सपक्ष के एक देश (एकांश) में तथा विपक्ष में व्यापक रूप से रहता हो वह 'सपक्षैकदेशवृत्ति विपक्षव्यापी' हेत्वाभास कहलाता है। उदाहरणार्थ अप्रयत्नानान्तरीयकः शब्दोऽनित्यत्वात्[24] अर्थात् शब्द प्रयत्न से उत्पन्न नहीं होता क्योंकि अनित्य है। यहाँ 'शब्द' साध्य धर्मी है, 'अप्रयत्नानन्तरीयकः' साध्य धर्म है, 'अनित्यत्व' हेतु है। अतः विद्युत् और प्रकाश दोनों सपक्ष हैं, क्योंकि ये दोनों प्रयत्न से उत्पन्न नहीं होते। इन सपक्षों में से अनित्यत्व हेतु विद्युत् में है किन्तु आकाश में नहीं। इस प्रकार यह सपक्ष के एक देश में रहता है । दूसरी और प्रयत्न से उत्पन्न होने वाली सभी वस्तुएं विपक्ष के अन्तर्गत है जैसे घटादि । इन सभी में 'अनित्यत्व हेतु' रहता है। इस प्रकार यह हेतु विपक्ष में व्यापक है और सपक्ष के एक भाग विद्युत में रहता है। अतः यह 'सपक्षैकदेशवृत्तिविपक्षव्यापी' हेत्वाभास है।

ख-४) विपक्षैकदेशवृत्ति सपक्षव्यापी :

जो हेतु विपक्ष के एकदेश में (एकांश) में तथा सपक्ष में सम्पूर्ण रूप में व्यापक हो वह 'विपक्षैकदेशवृत्ति सपक्षव्यापी' हेत्वाभास कहलाता है । यथा- प्रयत्नान्तरीयकः शब्दोऽनित्यत्वात्[25] अर्थात् शब्द प्रयत्न से उत्पन्न होता है अनित्य होने के कारण, घट के समान, विद्युतङ के समान तथा आकाश के समान। यहाँ प्रयत्नान्तरीयकः' साध्य धर्म है और 'अनित्यत्व' हेतु है। घट सपक्ष है क्योंकि वह प्रयत्न उत्पन्न होता है। विद्युत और आकाश दोनों विपक्ष हैं और अनित्यत्त्व हेतु विपक्ष के एक देश 'विद्युत्' में है किन्तु आकाश में नहीं।[26] यह हेतु घटादि सपक्षों में सर्वत्र विद्यमान है। जो वस्तु प्रयत्न से उत्पन्न (कृतक) होती है वह अनित्य होती है। इस प्रकार यह 'अनित्यत्व' हेतु भी विद्युत् और घट से समानता रखने के कारण पहले की ही तरह शब्द को कृतकता या अकृतकता का निर्धारण करने में असमर्थ है। अतः 'विपक्षैकदेशवृत्ति सपक्षव्यापी' हेत्वाभास का उदाहरण है।

ख-५) उभयपक्षैकदेशवृत्ति :

जो हेतु दोनों अर्थात् सपक्ष और विपक्ष के एक देश में रहता है वह 'उभयपक्षैकदेशवृत्ति' हेत्वाभास कहलाता है।[27] उदाहरणार्थ नित्यशब्दोऽमूर्तत्वात्[28] अर्थात् शब्द नित्य है अमूर्त होने से। यहाँ 'नित्यत्व' साध्यधर्म है और 'अमूर्तत्व' हेतु है। आकाश और परमाणु दोनों सपक्ष है क्योंकि दोनों नित्य है। सुख और घट दोनों विपक्ष है क्योंकि अनित्य हैं। 'अमूर्तत्व' हेतु सपक्ष 'आकाश'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में तथा विपक्ष 'सुख' में रहता है क्योंकि आकाश और सुख दोनों अमूर्त है।[29] दूसरी ओर अमूर्तत्व हेतु सपक्ष 'परमाणु' तथा विपक्ष 'घट' में नहीं रहता क्योंकि दोनों ही मूर्त है। इस प्रकार अमूर्तत्व हेतु सपक्ष और विपक्ष दोनों के एक देश में रहता है अत: 'उभयपक्षैकदेशवृत्ति हेत्वाभास है और सपक्ष 'आकाश' और विपक्ष 'सुख' दोनों से ही सादृश्य रखने के कारण यह निश्चय नहीं किया जा सकता कि शब्द नित्य है अथवा अनित्य।[30] इस प्रकार अमूर्तत्व हेतु उभयपक्षैकदेशवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास कहलाता है।

ख-६) विरूद्धाव्यभिचारी :

जिस हेतु का अपने अनुमेय के विरुद्ध अर्थ को सिद्ध करने वाला दूसरा हेतु विद्यमान हो और वह अपने विरुद्ध हेतु से व्यभिचार न करे वह विरुद्धाव्याभिचारी हेत्वाभास होता है।[31] तात्पर्य यह है कि जिस हेतु का ऐसा प्रतिपक्ष हेतु विद्यमान हो जो उसके साध्य के विपरीत अर्थ को सिद्ध करने में सक्षम हो वह विरुद्धाव्यभिचारी हेत्वाभास है। यथा- अनित्य: शब्द: कृतकत्वात् घटवत् नित्य: शब्द: श्रवण त्वात् शब्दत्ववदिति।[32] यहाँ कृतकत्व हेतु का साध्य जो 'अनित्यत्व' है उसके विरुद्ध अर्थ 'नित्यता' को सिद्ध करने वाला दूसरा हेतु 'श्रावणत्व' विद्यमान है। ये दोनों ही हेतु साध्य का निश्चय करने में असमर्थ हैं कि शब्द नित्य है या अनित्य, अत: दोनों हेतु समुदित रूप में अनैकान्तिक हेत्वाभास है। इसी को न्याय-दर्शन में सत्प्रतिपक्ष नामक हेत्वाभास माना गया है।[33]

(ग) विरुद्ध हेत्वाभास:

जो हेतु अपने साध्य (धर्म और धर्मी) के साथ अन्वित न होकर उस साध्य के विपरीत रूप के साथ अन्वित होता हों तो वह विरुद्ध हेत्वाभास कहलाता है।[34] इसके चार उपभेद इस प्रकार हैं-

ग-१) धर्मस्वरूपविपरीतसाधन :

जो हेतु अपने साधन साध्यधर्म के स्वरूप को सिद्ध न करके उसके विपरीत रूप की सिद्धि करे वह धर्मस्वरूप विपरीत साधन हेत्वाभास होता है। यथा शब्द नित्य है कृतक अथवा प्रयत्नान्तरीयक (कार्य) होने से।[35] यहाँ शब्द साध्य धर्मी है, 'नित्यता' साध्य धर्म है, 'कृतकता' उनको सिद्ध करने वाला हेतु है। जो 'नित्यता' के विपरीत अनित्यता को सिद्ध करता है।

ग-२) धर्मविशेषविपरीतसाधन :

जो हेतु या साधन साध्य धर्म के किसी विशेष रूप को सिद्ध न करके उनके विपरीत रूप (जोकि वादी को अभीष्ट न हो) का अनुमोदन करे वह धर्मविशेषविपरीत साधन नामक विरुद्ध हेत्वाभास कहलाता है[36] यथा सांख्य बौद्ध के प्रति कहता है कि 'परार्थाचक्षुरादय: संघातत्वात्.....। अर्थात् चक्षुरादि किसी पर आत्मा के लिए होते है संघात होने के कारण शयनासनादि के समान। यहाँ चक्षुरादि' धर्मी है और 'पारार्थ्य साध्यधर्म है जिसका असंहत रूप सिद्ध करना सांख्याचार्य को अभीष्ट है। किन्तु प्रस्तुत हेतु संघातत्व यह तो सिद्ध करता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्षुरादि संघात (भूतसमूह) किसी दूसरे के लिए है, शयानासनादि के समान, किन्तु यह सिद्ध नहीं करता कि वह पर या आत्मा असंहत (निरावयव) है। तात्पर्य यह है कि इस 'संघातत्व' हेतु से यही सिद्ध होता है कि चक्षुरादि जिस परतत्व के लिये बने हैं वह संहत ही है (भूतसमुदाय ही है), जिस प्रकार शयनासनादि (संहतपदार्थ) जिसके लिए होते हैं वह भी भूतसमुदाय मात्र (मनुष्य) ही होता है । अतः 'संघातत्व' हेतु साध्य-धर्म पारार्थ्य के विशिष्ट रूप 'असंहतत्व' की सिद्ध न करके उसके विपरीत 'संहतत्व' रूप की ही सिद्धि करता है ।

ग-३) धर्मस्वरूपविपरीतसाधन :

जो हेतु या साधन साध्य धर्मी के स्वरूप को सिद्ध न करके उसके विपरीत रूप की सिद्धि करे वह धर्मी स्वरूप विपरीत साधन हेत्वाभास कहलाता है। उदाहरण के रूप में वैशेषिक सम्प्रदाय का एक साध्य प्रस्तुत किया गया है जो इस प्रकार है- न द्रव्यं न कर्म न गुणो भावः एक द्रव्यत्वात्, गुण कर्मसु चभावात्, सामान्यविशेषवदिति[37] अर्थात् भाव (सत्ता या पर सामान्य) न द्रव्य है, न कर्म है और न गुण है, एक द्रव्य वाला होने से (हेतु) गुण और कर्म में विद्यमान होने से, सामान्य-विशेष (द्रव्यत्व) के समान ।

वैशेषिकों ने छः पदार्थ, नौ द्रव्य, चौबीस गुणों को माना है और सामान्य दो प्रकार का बताया गया है- पर और अपर। पर सामान्य को ही सत्ता, भाव या महासामान्य कहते हैं जो प्रत्येक पदार्थ में 'सद्' 'सद्' इस प्रकार की प्रतीति का हेतु होता है। ऊपर सामान्य द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व आदि को कहते हैं जो कई द्रव्यों में या कई गुणों में एकता की स्थापना का हेतु होता है।[38] किन्तु सत्ता या महासामान्य द्रव्य, गुण, कर्म से एक भिन्न पदार्थ है, इसलिए कहा है- न द्रव्य भावः एकद्रव्यवत्वात् सामान्यविशेषवत्।[39] जैसे नौ द्रव्यों में प्रत्येक में वर्तमान द्रव्यत्व (सामान्य विशेष) है द्रव्य नहीं होता उसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य में रहने वाला भाव या महासामान्य द्रव्य से भिन्न होता है, इसी प्रकार कह सकते हैं- न गुणो भावः गुणेषु भावात् गुणत्ववत् अर्थात् भिन्न-भिन्न गुणों में विद्यमान होने के कारण गुण ही भाव नहीं है गुणत्व के समान। जिस प्रकार गुणत्व गुण से भिन्न होता है उसी प्रकार भाव (सत्ता) भी गुण से भिन्न होता है। इसी प्रकार कह सकते हैं- न कर्म भावः कर्मसु भावात् कर्मत्ववत्[41] अर्थात् सभी कर्मों में विद्यमान होने के कारण भाव कर्म ही नहीं है कर्मत्व के समान।

इन तीनों ही हेतुओं (एकद्रव्यवत्वात्, गुणेषुभावात्, कर्मसु भावात्) का साध्य धर्मी है भाव या सत्ता। वैशेषिक के इन वाक्यों के विरोध में बौद्ध का कहना है- ये तीनों ही हेतु जैसे भाव या सत्ता में द्रव्यादि का प्रतिषेध करते हैं वैसे ही भाव रूप धर्मी के अभाव को भी सिद्ध करते हैं। जिस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'न द्रव्यं भावः एक द्रव्यत्वात् द्रव्यत्ववत्' उसी प्रकार बौद्ध के मत में यह भी कहा जा सकता है कि 'भावो भाव एव न भवति एक द्रव्यत्वात् द्रव्यत्ववत्।[42]

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग-४) धर्मोविशेषविपरीतसाधन :

जो हेतु या साधन साध्यधर्मी के किसी विशेष रूप को सिद्ध न करके उसके विपरीत विशेष रूप की (जो वादी को अभीष्ट न हो) सिद्धि करे वह धर्मोविशेषविपरीत साधन हेत्वाभास होता है।[१५] जैसे ऊपर दिये गये उदाहरणों में से एक उदाहरण है- न द्रव्यं भाव: एकद्रव्यत्वात् द्रव्यत्ववत्। यहाँ हेतु 'एक द्रव्यत्व' साध्य धर्मी भाव है विशेष रूप सतङ प्रत्ययकर्तृत्व को सिद्ध न करके उसके विपरीत असत्प्रत्ययकृर्तत्व को भी सिद्ध करता है क्योंकि यह हेतु दोनों में समान रूप से जाता है। अत: यह धर्मी विशेषविपरीत साधन का उदाहरण है। इस प्रकार 'न्याय प्रवेश' नामक इस ग्रन्थ में बौद्ध न्याय में स्वीकृत हेत्वाभासों का विशद विवेचन मिलता है।

पाद टिप्पणी

१. न्यज्ञयप्रवेश वृत्ति:, पृ० १६, पंक्ति ८
२. हेतुस्त्रिरूप:। कि पुनस्त्रैरूप्यम्। पक्षधर्मत्वं, सपक्षसत्वं, च विपक्षेवासत्वमिति। न्या० पृ० पृ० १, पं० ८-९
३. उक्तलक्षण: पक्षस्तस्य धर्म: पक्षधर्मस्तद्भाव: पक्षधर्मत्वम्। पक्षशब्देन चात्र केवलो धर्म्येवाभिधीयते । न्या० प्र० वृत्ति, पृ० १६, पं० १२, १३
४. न्या० प्र०, पृ० १, पं० १०, ११
५. न्या० प्र० वृत्ति, पृ० १७, पं० ५-७
६. साध्यप्रतिबन्धत्वात् साधनस्य तदपि नास्तीति गम्यते । न्या० प्र० वृत्ति, पृ० १७, पं० १०-११
७. न्या० प्र०, पृ० १, पं० १३
८. न्या० प्र० वृत्ति, पृ० २२, पं० १८
९. असद्विनैकान्तिक विरूद्धा हेत्वाभासा:। न्या० प्र०, पृ० ३, पं० ९
१०. उभयोर्वादिप्रतिवादिनो: असिद्धउभयासिद्ध:। न्या० प्र० वृत्ति, पृ० २२, पं० २२
११. न्या० प्र०, पृ० ३, पं० १०-११
१२. न्या० प्र० वृत्ति, पृ० २२, पं० २३
१३. सन्दिह्यते स सन्दिग्ध:। न्या० प्र० वृत्ति, पृ० २२, पं० २३, २४
१४. न्या० प्र० वृत्ति, पृ० २३, पं० १३-१४
१५. आश्रयोधर्मी संसिद्धो यस्यासौ आश्रयासिद्ध:।
न्या० प्र० वृत्ति, पृ० २२, पं० २४, २५
१६. वही, पृ० २४, पं० ६-७
१७. द्वयोर्बहूनां वा य: सामान्य: स साधारण:। न्या० प्र० वृत्ति, पृ० २४, पं० ८, ९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८. न्या० प्र०, पृ० ३, न्या० प्र० वृत्ति, पृ० २४, पं० ९
१९. न्या० प्र० वृत्ति, पृ० २४, पं० १५, १६
२० वही, पृ० २५, पं० १, २
२१. श्रावणत्वान्नित्य शब्दः। न्या० प्र०, पृ० ३, पं० २२
२२. न्या० प्र० वृत्ति, पृ० २५, पं० ४, ५
२३. न्या० प्र०, पृ० ४, पं० ३, ४
२४. न्या० प्र० वृत्ति, पृ० २५, २६
२५. न्या० प्र०, पृ० ४, पं० ११
२६. न्या० प्र० वृत्ति, पृ० २६, पं० ५-७
२७. वही, पृ० ९, १०
२८. न्या० प्र०, पृ० ४, पं० १६, १७
२९. न्या० प्र० वृत्ति, पृ० २६, पं० १२, १३
३०. वही, पृ० २६, पं० १३, १४
३१. वही, पृ० २६ तथा न्या० प्र० पंजिका, पृ० ५९, ६०
३२. न्या० प्र०, पृ० ४, ५
३३. द्र० न्याय बिन्दु टीका (हिन्दी व्याख्या), पृ० ३२६
३४. द्र० न्याय प्रवेश वृत्ति, पृ० २७, पं० १४-१५
३५. द्र० न्याय प्रवेश, पृ० ५, पं० ५-७ तथा इसी पर वृत्ति
३६. द्र० ध्रुव, ए० बी०, टिप्पणी, पृ० ५४
३७. न्या० प्र०, पृ० ५
३८. न्या० प्र० वृत्ति, पृ० २८-२९
३९. वही, पृ० २९, पं० १०
४०. न्या० प्र० वृत्ति, पृ० ३०, पं० १
४१. वही, पृ० ३०, पं० ३
४२. वही, पृ० ३०
४३. ध्रुव ए० बी०, टिप्पणी, न्या० प्र०, पृ० ५५
४४. न्या० प्र० वृत्ति, पृ० ३१

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक साहित्य में मानवाधिकार की अवधारणा

डॉ० योगेश शास्त्री
संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, (हरिद्वार)

अधिकार सामाजिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं। जिनके बिना न तो व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और न ही समाज के लिए उपयोगी कार्य कर सकता है। अधिकारों के बिना मानव के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। राष्ट्र का सर्वोच्च लक्ष्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास करना है। जिसके लिए राष्ट्र के द्वारा व्यक्ति को कतिपय सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं और प्रदान की जाने वाली इन बाह्य सुविधाओं का नाम ही अधिकार है।

मानवाधिकारों का अभिप्राय उन नैतिक अधिकारों से है, जिनके बिना मनुष्य मनुष्य नहीं रह जाता और जिनसे युक्त होकर वह अन्य प्राणियों से भिन्न होता है। अतः पूर्ण विकास के लिये मानवाधिकार की सुरक्षा आवश्यक है। मानवाधिकार वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व का विषय बना हुआ है। मानवाधिकार की सार्वभौम घोषणा संयुक्त राष्ट्र की महासभा में 10 दिसम्बर 1948 को अंगीकृत की गयी थी, जिसमें नागरिकों के राजनैतिक, आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का विस्तृत समावेश है। भारतीय संविधान के मूल अधिकार भी मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा नागरिक और राजनैतिक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के प्रावधानों के अनुरूप ही है, जिनमें मुख्यतः.

1. समानता का अधिकार,
2. स्वतन्त्रता के विरुद्ध अधिकार,
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार,
4. आर्थिक स्वतन्त्रता का अधिकार,
5. संस्कृत और शिक्षा का अधिकार,
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार,
7. सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर संविदा,
8. आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर प्रसंविदा भारत में संवैधानिक उपचारों के अधिकार के रूप में ही वर्णित है। जिसकी सुरक्षा कर्त्तव्यों द्वारा ही सम्भव है।

वेद अनन्त ज्ञानराशि के अक्षय भण्डार हैं। वेदों के पठन-पाठन से ही हमें समाज में उचित ढंग से जीने का मूल मन्त्र प्राप्त होता है। हम परस्पर किस प्रकार का व्यवहार करें, तथा मनुष्य के अधिकार और कर्त्तव्य क्या हैं। वेदों में इन सभी पक्षों का पर्याप्त वर्णन वर्णित है। वेद ही मानवमात्र का प्रकाशस्तम्भ और शक्ति स्रोत हैं। इनमें गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, पति-पत्नी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता-पिता, समाज-व्यक्ति, राष्ट्र-राष्ट्रीयता, विश्वबन्धुता, परोपकार, उद्योग, दान-पुण्य, सत्कर्म एवं अतिथि-सत्कार आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है।

'ऋग्वेद' में परमपिता परमात्मा से प्रार्थना की गई हैं, कि समाज के सभी वर्ग ओजस्वी और समृद्धिशाली हों, और सभी को अधिकार का समान अवसर प्राप्त हो सके।[1] 'ऋग्वेद' के संज्ञान-सूक्त तथा 'अथर्ववेद' के सामंजस्य सूक्त में सभी मानवों को अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए मिलकर चलने, समान रूप से विचार एवं कार्य करने की आज्ञा है, जिसमें समानता का अधिकार प्राप्त होता है।[2] अथर्ववेद में 'यो नो द्वेषत पृथिवी' आदि मन्त्र द्वारा स्वतन्त्रता के अधिकार हेतु प्रार्थना की गई है। शत्रुता और द्वेष-भावना से युक्त जो लोग हमें परतन्त्रता के बन्धन में जड़कना चाहते हैं, ऐसे शत्रुओं के विनाश की कामना है।[3]

''जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवीं यथौकसम्। सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेण धेनुरनपस्फुरन्ती'' आदि मन्त्र में इस मातृभूमि पर विविध प्रकार की वाणियां अथवा भाषाओं को बोलने वाले और नाना धर्मों का अवलम्बन करने वाले लोग इस प्रकार मिलकर रहते हैं, जैसे एक घर के व्यक्ति मिलकर रहते हैं। इस मन्त्र से धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार का संकेत भी मिलता है।[4] भाषा और धर्म के नाम पर समाज के सामंजस्य को खण्ड-खण्ड करने को उद्यत और साम्प्रदायिकता से ग्रस्त अपने ही निर्दोष, निरीह देशवासी भाईयों को निर्ममता पूर्वक नष्ट करने वाले नरभक्षियों के लिए स्वीकरणीय उपदेश भी वर्णित है। यह वाक्य विविधता में एकता और विविध भाषाओं से धर्मों से सम्बद्ध मानव-समुदायों और सौहार्दपूर्ण-सहअस्तित्व एवं बन्धुत्व की प्रेरणा देता है।

वेदों में नारी के अधिकारों का विस्तार से वर्णन है। निरुक्त में वर्णन है, कि यदि पुत्र नहीं है, तो पुत्री ही सम्पूर्ण सम्पत्ति की अधिकारिणी होगी। विवाह के पश्चात् उसे पतिगृह में गृहपत्नी, गृहस्वामिनी का अधिकार प्राप्त होता है।[5] मनुष्य सन्तानोत्पत्ति करके ही पितृऋण से उऋण हो सकता है। प्राचीन साहित्य में कन्या के विवाहोपरान्त अधिकारों का विशद वर्णन है। भारतीय दर्शन प्रकृति और पुरुष के सहयोग से सृष्टि की उत्पत्ति मानता है। उसके अनुसार नारी प्रकृतिरूपा है। गीता में यह पुनराख्यान अनेक रूपों में वर्णित हैं।
यथा-

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।[6]
प्रकृतं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धिप्रकृतिसंभवान्।।
कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरूच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।।
पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।।[7]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यं एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते।[८]
प्रकृत्यैव च कर्माणि, क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति।[९]
प्रकृति स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नतस्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।[१०]

भारत की प्राचीन सभ्यता मानव कल्याण के विषय में अपना विशिष्ट मत रखती है। यहाँ सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में देखा गया है। साथ ही सम्पूर्ण विश्व की मानव जाति के लिए सुख-समृद्धि की बात की गयी है। भारतीय समाज की पारम्परिक व्यवस्था आज के मानवाधिकार के निर्माण एवं विकास में बहुत सहायक है। भारत के प्राचीन इतिवृत्त में व्यक्तिवाद एवं सार्वभौमिकता के तत्व मिलते हैं। जिनमें अहिंसा का सिद्धान्त, शोषण के विरोध का भाव, मानवता की रक्षा, विकास आदि मानवाधिकार के प्रति जागृतता को इंगित करते हैं। विश्व का प्राचीनतम ज्ञान वेद हैं। सृष्टि के आदि से ही वेदों का प्रादुर्भाव गतिमान है। जो परमेश्वर इस जगत् की उत्पत्ति, पोषण और प्रलय का कर्ता है, वही वेद रूपी ज्ञान का सृजक भी है।

यजुर्वेद में वर्णन है कि वेद कल्याणी वाणी सबके लिए है। चाहे वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्ध क्यों न हों-

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय, चार्याय च स्वाय चारणाय।।[११]

अथर्ववेद में वर्णित है कि- माता-पिता का कल्याण हो, गायों का कल्याण हो, संसार भर के पुरुषों का कल्याण हो। समस्त विश्व हमारे लिए सुभूत और सुविज्ञान हो.

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम्।।[१२]

ऋग्वेद का संगठन सूक्त भी मानवीय आदर्शों एवं कर्त्तव्यों को वर्णित करते हुए कहता है-

सं संमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसुन्या भर।।
संङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते।।
समानो मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मंत्रमभिमंत्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी वं आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[१३]

वेदों की विश्वव्यापी भावना है कि सभी मनुष्यों के संकल्प, प्रयत्न, व्यवहार समान हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबका मन, हृदय इस प्रकार हों कि सभी को शुभभावनाएँ सहभाव की प्रेरणा देकर कर्त्तव्यस्थ व्यवहार के प्रति प्रेरणा देती रहे।

अथर्ववेद में वर्णित है, कि हे मनुष्यो! तुम सब के लिए पेयजल कर्त्तव्यवस्था समान हो सभी मनुष्यों के लिए अन्न का विभाजन समान हो, तथा सभी परस्पर मिलकर रहें।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥[१४]

वैदिक साहित्य समस्त मानव जाति के कल्याण की कामना करता है। समस्त मानव समाज में परस्पर मेल, सहयोग, से परस्पर व्यवहार करें। सभी में मन की एकाग्रता, हृदय की समानताएं एवं विचारों की योग्यता मानवतावादी विचारधारा एवं मानवाधिकार की पर्याप्तता को सुदृढ़ता प्रदान करती हैं।

वेद में कहा गया है, कि यह धरती सभी मनुष्यों के लिए है। यह भूमि (पृथिवी) भिन्न.भिन्न भाषाओं को बोलने वाले लोगों को धारण करती है। यह भिन्न-भिन्न मतों धर्मों को मानने वालों को शरण देती है। यह भूमि कामधेनु (गाय) के सदृश हमें अजस्र रूप में कल्याण बहावें। यथा-

जनं विभ्रति बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवीं यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती॥[१५]

वेदों के इस विश्वव्यापी मानवतावादी, कल्याणकारक दृष्टिकोण को स्वीकृति प्रदान करते हुए इनरसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका विश्वकोष में भी वर्णित किया गया है, तथा वेदों के इस दृष्टिकोण को अमेरिकी एवं पाश्चात्य विद्वानों ने भी स्वाध्याय का प्रसून माना है.

बौद्ध दर्शन में भी मानवाधिकार के मत में वर्णन प्राप्त होता है। बौद्धदर्शन के मुख्यांग-किसी को कष्ट न देना, भातृत्व का भाव, अंहिसा, साथ ही बुद्ध ने धर्मनिरपेक्ष शिक्षा एवं सबके लिए समान शिक्षा की वकालत की है। इसके लिए किसी धार्मिक अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं है। अपितु शुद्धाचरण इसकी मुख्यतः कसौटी है।

इसी परम्परा में जैन दर्शन ने भी जीने का अधिकार मात्र मानव जाति को ही नहीं, अपितु सभी जीवधारियों एवं वनस्पतियों को समान रूप से दिया हैं। इनके जीवन को नष्ट करना अहिंसा ही नहीं पाप है। इस प्रकार नास्तिक मतों ने भी मानवीय जीवन के अधिकार को मानवाधिकार के रूप में वर्णित किया है।

मानवतावादी विचार एवं मानवाधिकार के सम्बन्ध में सम्राट् अशोक महान् की भूमिका भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सम्भवतः वह प्रथम राजा है, जिसने युद्ध की विभीषिका (वाच्छा) को समझा और युद्ध विरोधी सिद्धान्तों एवं नीतियों का प्रचार-प्रसार किया। अशोक के युद्धविरोधी शिलालेख मानवाधिकार के सम्बन्ध में सबसे प्राच्य दस्तावेज के रूप में परिलक्षित प्रतीत होते हैं।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास के शासकों में अकबर महान् की भूमिका भी महत्वपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही है। इसने भारत की विविधतापूर्ण संस्कृति को एक सूत्र में निबद्ध करने का प्रयास किया था, तथा सभी धर्मों के प्रचार-प्रचार के लिए समान अवसर भी प्रदान किये। उसके मत में सभी धर्मों में सत्व-सत्यता के गुण विद्यमान हैं। तथा उसके द्वारा स्त्रियों एवं बच्चों की गुलामी का निषेध, जजिया कर को हटाना, आदि सिद्धान्त मानवाधिकार की ओर प्रबल संकेत हैं।

मध्यकाल में भक्ति और सूफी आन्दोलन भी हुए हैं। इसमें सन्त नामदेव, कबीर, रामानन्द, रविदास, गुरुनानक आदि ने अपने वक्तव्यों में, सहनशीलता, सादा-जीवन, प्रेम, बन्धुत्व, एवं सहयोग की भावना को प्रदर्शित कर मानवाधिकार के समन्वय पर चिन्तन किया है।

पर्यावरणविदों ने भी मानवाधिकार के सम्बन्ध में समय-समय पर पर्याप्त कार्य किया है तथा उन्होंने कहा है कि पेड़-पौधों कीं न्यूनता के कारण संसार का वातावरण प्रदूषित होता जा रहा है। सम्राट् अशोक ने शिलालेखों, स्तम्भों पर पशु-पक्षियों की हत्या न करने का संदेश प्रसारित किया था। जो प्राणी मात्र के प्रति समानता की भावना को वर्णित करता है।

प्राचीन भारतीय दर्शन में मानवाधिकार के सम्बन्ध में मानव को विश्व का केन्द्र बिन्दु न होकर विभिन्न पदार्थों (तत्त्वों) को एक तत्त्व के रूप में माना गया है। तथा जैविक और अजैविक सभी का जीवन महत्वपूर्ण मान पेड़, जंगल, पहाड़, नदियां, पक्षी, जानवर एवं अन्य सभी प्राणियों को मानव के सदृश प्रकृति का अंग माना गया है।

वेदों में स्थान-स्थान पर ऐसे सन्देश प्राप्त होते हैं, जिनमें मानव-मानव में देश, काल, अलग आदि के आधार पर कोई भी भेद नहीं किया गया है। वेद कहता है। **'शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्यपुत्राः'** अर्थात् मेरे अमृतपुत्रों मेरी वाणी सुनो। वेद का पुरुष सूक्त स्पष्ट करता है, कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण सामाजिक जीवन को सुव्यवस्थित करने के लिए हैं न कि विघटन के लिए। इस अवस्था के विभाजन का आधार गुण-कर्म-स्वभाव-योग्यता आदि हैं, न कि जन्मगत। इनमें परस्पर वैमनस्य, कटुता नहीं अपितु उसी प्रकार एकरूपता है। जैसे शरीर के अवयव परस्पर मिलकर समन्वित रूप से कार्य करते हैं। सभी के लिये उन्नति के द्वार सदा खुले हुए हैं। यही मानवाधिकार की मूल-भावना है, कि किसी पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध या अवरोध न हो। सभी को समान अवसर प्राप्त हों, बलवान् निर्बल को अनावश्यक दबा न सके, उसकी हिंसा न करे, उसे विचारों की अभिव्यक्ति से वंचित न करे, और अपने धर्म अर्थात् कर्त्तव्यों का ठीक प्रकार से निर्वहन कर सके। इस दृष्टि से वैदिक साहित्य का विशिष्ट अध्ययन अत्यन्त उपयोगी, महत्वपूर्ण, समादृत एवं आवश्यक है, क्योंकि वेदों का ज्ञान प्राणि मात्र के लिए है। वह सार्वकालिक, सार्वभौमिक, विश्वकल्याणकारी तथा प्राणिमात्र का हितकारी है।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति, न कर्म लिप्यते नरे॥[१७]
विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।[१८]

उपसंहार- इस प्रकार से सिद्ध हो जाता है, कि मानवाधिकारों की व्यवस्था आज की व्यवस्था नहीं है। बल्कि वेदों में इसकी व्यवस्था प्राक्तन से है। मानव अधिकारों की सुरक्षा कर्त्तव्यों द्वारा ही सम्भव है। वैदिक वाङ्मय में ऋषियों ने धर्म और कर्त्तव्यों के पालनार्थ निर्देश दिये हैं। जिसके फलस्वरूप मानव-अधिकार स्वत: ही सुरक्षित हो जाते हैं। मानवाधिकारों की शिक्षा अनिवार्य की जानी चाहिये, जिससे सभी को समान अधिकार प्राप्त हो सकें।

जब हम वैदिक साहित्य का विशद अध्ययन करते हुए मानवाधिकार पर विचार करते हैं, तो आधुनिक चिन्तन और प्राचीन चिन्तन धारा में मौलिक अन्तर परिलक्षित होता है। आज के मानवाधिकारवादी जहाँ केवल अधिकारों की चर्चा करते हैं और अधिकारों की प्राप्ति के लिए किसी भी सीमा तक पहुँचकर संघर्ष से भी पीछे नहीं हटते हैं। जबकि वैदिक वाङ्मय में अधिकारों के साथ-साथ पदे-पदे कर्त्तव्य का संदेश प्राप्त होता है। पहले कर्त्तव्य तत्पश्चात् अधिकार दोनों एक ही सिक्के के पहलू हैं। दोनो अन्योन्याश्रित हैं। वैदिक वाङ्मय का अध्ययन करने से ज्ञात होता है, कि मानवाधिकार के पक्षधर अथवा मानवाधिकार की पताका अपने हाथों में लेकर आगे बढ़ने वाले संगठन यदि वेद प्रतिपादित मानवाधिकार तथा कर्त्तव्यों की अवधारणा को अपने चिन्तन के साथ जोड लें तो मानवता का अधिक कल्याण हो सकता है।

विश्व में आज जितना धन, युद्ध, अस्त्र, शस्त्रादि पर ख़र्च हो रहा है, उसका आधा भाग भी यदि मानव कल्याण पर खर्च किया जाय तो संसार के करोड़ों लोगों की गरीबी, भुखमरी और निरक्षरता दूर हो सकती है। जब तक मनुष्यों के हृदय, मन, कल्याणकारी होकर संकल्पों में एकरूपता तथा समानता नहीं आयेगी तब तक मानव समाज की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक समस्यायें समाप्त होकर, ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' का स्वप्न साकार नहीं हो सकेगा।

सन्दर्भ

१. ऋग्वेद १०/७१
२. ऋग्वेद १०/७१
३. अथर्ववेद १२/१/१४
४. अथर्ववेद १२/१/४५
५. नि० ३१.३
६. भगवद्गीता. ३/५
७. भगवद्गीता १३/१९.२१,
८. भगवद्गीता.१३.२३,
९. भगवद्गीता.१३.२९,
१०. भगवद्गीता. ९/८,
११. यजुर्वेद २६/२
१२. अथर्ववेद.१.३१.४
१३. ऋग्वेद . १०.१९१
१४. अथर्ववेद.३/३०।
१५. अथर्ववेद १२/ १.४५
१६. ऋग्वेद- १०/१९१,
१७. वही- १०/३४/२
१८. अथर्ववेद- ३/३०/२
१९. यजुर्वेद ४०/२
२०. यजुर्वेद ४०/१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिकी राष्ट्रीय एकता की वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ० आशा रानी पाण्डेय
रीडर, संस्कृत विभाग
डी०जी० कॉलेज, कानपुर

संस्कृत भाषा विश्व की सर्वश्रेष्ठ भाषा है। इसे जो सुरभारती 'देववाणी' आदि उपाधियों से समलंकृत किया है, उसका उद्देश्य मात्र हमारे पीछे संस्कृत में निहित वे भाव हैं, जो चिरन्तन, शाश्वत तथा सत्यनिष्ठ हैं, तथा जो हमारे ऋषियों के कठिन तप एवं चिन्तन के परिचायक हैं। जब अपनी सभ्यता पर अभिमान करने वाली जातियां जंगलों में भ्रमणकरण अपने भावों को संकेतों के माध्यम से व्यक्त किया करती थी, उस समय हमारे ऋषि मुनि (आर्य लोग) सरस्वती के किनारे देववाणी में सामगान किया करते थे। दर्शन एवं वेदों के द्वारा जगत् की सम्पूर्ण गुत्थियों को सुलझा कर उन्होंने अपने उन्नत मस्तिष्क का परिचय दिया है। एतदर्थ हमारे देश भारत को सम्पूर्ण मानव सभ्यता का गुरु माना जाता है। भारत को जगद्गुरु के इस महिमामय पद पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय निःसन्देह संस्कृत भाषा को है-

''एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षरेन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥''[१]

भारत एक अखण्ड राष्ट्र है। भारती की श्रेष्ठता के कारण ही हम ''धन्याभारतवसुन्धरा'' ''वयं भारतीयः वयं भारतीयः'' इत्यादि का उद्घोष अत्यन्त गर्व से करते हैं। मनुष्य ही नहीं अपितु देवता भी इसका गौरवगान मुक्तकण्ठ से करते हैं।

''गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तुते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापर्वगस्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरूषाः सुरत्वात्''[२]॥

संस्कृत भाषा का महत्व भारत ही नहीं अपितु विश्व में भी स्वीकरणीय, सम्माननीय एवं महनीय है।

राष्ट्रीय एकता का मूलाधार संस्कृत भाषा ही है इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं हैं। परन्तु इस विषय पर प्रकाश डालने से पूर्व आइए हम राष्ट्र की अवधारणा पर विचार करें।

सृष्टि ईश्वर कृत व मनुष्यकृत दो प्रकार की होती है। राष्ट्र की उत्पत्ति मनुष्या के द्वारा होती है। मनुष्यों की सृष्टि की उत्पत्ति हेतु वेदों ने तप की आवश्यकता मानी है।

''श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा
भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रम् बलमोजश्च जातम् तदस्मैदेवा उपसन्नमन्तु''[३]॥

जहां राष्ट्र नहीं होता वहाँ जनता नानाप्रकार की अभद्र आपत्तियों से ग्रसित हो जाती है। राष्ट्र ही समग्र जनता को एक विधान देकर तथा दण्ड का आश्रय लेकर कल्याणकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति उत्पन्न करता है, जिससे जनता निर्भय होकर तथा कर्तव्यपरायण बनकर सुखशान्ति का अनुभव करती है। तप के कई रूप होते हैं। राष्ट्र के प्रति सच्ची निष्ठा एवं लगन भी एक प्रकार का तप है।

राष्ट्र सर्वथा संकल्पना नहीं है, अपितु विश्व में अत्यन्त प्राचीन आदि ग्रन्थ में राष्ट्र शब्द बार-बार प्रयुक्त हुआ है। दसवां मण्डल इसका प्रमाण है जिसमें राष्ट्र का मुख्य पुरोहित राजा को अभिषिक्त करने के उपरान्त उसको उपदेश और आदेश देता है।

''इह राष्ट्रमुधारय''

अथर्ववेद में भी राष्ट्र के सन्दर्भ में-

'सानो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दाधातूत्तमे' में कहा गया है।

शुक्लयजुर्वेद में भी कहा गया है-

ओं आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्-

आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्॥''

अर्थात् हमारे राष्ट्र में शूर धर्नुर्धारि युद्धकला निपुण क्षत्रियों का जन्म हो।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है-

''राजानो वैराष्ट्र भृतस्ते हि राष्ट्राणि विभ्रति॥''

इस प्रकार की सुन्दर राष्ट्र की अवधारणा सर्वप्रथम संस्कृत ने ही दी है।

राष्ट्र शब्द **'सर्वधातुभ्यः** ष्ट्रन्' इस उणादि प्रत्यय के संयोग से **'रासुशब्दे'** अथवा **'राजृशोभते'** धातु से बना है। जिसका अर्थ है राज्य, देश, साम्राज्य।

शतपथ ब्राह्मण में राष्ट्र की अवधारणा इस प्रकार व्यक्त की गई है- श्री वैराष्ट्रम्'' अर्थात् समृद्धि युक्त ओजस्वीजन ही राष्ट्र है। राष्ट्र का स्वरूप स्वः से प्रारम्भ होता है। स्वराष्ट्र का मूल बिन्दु है और परिवार, समाज, व्यक्ति, राष्ट्र आदि स्व के विस्तार का परिणाम। स्वः का विस्तृत विशाल अहं से आवाम् तक का भाव जिसमें परिवार, समाज और उसके आवश्यक उपादानों का समावेश हो उसे राष्ट्र की गरिमा से मण्डित किया जा सकता है। किसी भी राष्ट्र की परिधि पहाड़ों एवं पत्थरों से घिरे भू-भाग के द्वारा ही नहीं व्यक्त की जा सकती अपितु उसमें किसी भू-भाग में समूह रूप से वसे जन-जन की मनोभूमि की संगठित मानसिकता भी समाविष्ट रहती है। संस्कृत भाषा में इसी समूह भाव में रहने की कामना का कितना सुन्दर निदर्शन हुआ है-

''संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्।

देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते''[५]॥

अर्थात् संग-संग चलो, संग बोलो तुम्हारे मन एक हों जैसा देवता पहले से करते आये है, उसी प्रकार बराबर करो। और भी-

''समानी व आकृतिः समाना हृदयानि वः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[६]

अर्थात् तुम लोगों के समस्त संकल्प समान हों, समस्त हृदय एक हो, और अन्तः करण समतुल्य हो, जिससे तुममें एकत्व का संचार हो।

राष्ट्रीय एकता का आधार है राष्ट्र प्रेम। राष्ट्र प्रेम की भावना दो प्रमुख रूपों में परिलक्षित होती है-

1. राष्ट्र की आन्तरिक सत्ता के प्रतिनिष्ठा
2. राष्ट्र की बाह्य सत्ता के प्रतिनिष्ठा।

राष्ट्र की वाह्य सत्ता भौतिक और भौगोलिक होती है। जिसमें काव्य के माध्यम से राष्ट्र की भौगोलिक, भौतिक सम्पन्नता तथा सौन्दर्य का वर्णन और उसकी प्राकृतिक आकृति के प्रति अभिमान की भावना के द्वारा राष्ट्र प्रेम की भावना व्यक्त की जाती है। संस्कृत भाषा में राष्ट्र के बाह्य स्वरूप का सुन्दर चित्रण हुआ है।

''उत्तरंयत समुदस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षतद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।''[७]

''गंगा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदा सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिकुरू।।''[८]

राष्ट्र की आन्तरिक सत्ता अत्यन्त व्यापक और विशाल होती है तथा जो अन्तस चेतना की सही और सम्पन्न अभिज्ञान है इसके अन्तर्गत राष्ट्र की धार्मिक आध्यात्मिक सांस्कृतिक ऐतिहासिक सामाजिक एवं राजनैतिकता के प्रति सजगता एवं गौरव की भावना निहित रहती है।

संस्कृत भाषा में राष्ट्र प्रेम के इन घटकों की मुक्तामालाएं वैदिक युग से लेकर अद्यावधि यत्र तत्र सर्वत्र परिलक्षित हो रही है। संस्कृत साहित्य ने घोर संकट की घड़ियों में हमारा मार्गदर्शन किया है। हताश-निराश देशवासियों में नए संकल्प और नवीन उत्साह का संचार किया है-

''उतिष्ठत जाग्रत प्राप्त वरान्निवोधत''[९]

धर्म और संस्कृति की रक्षा की है और विपर्यस्तिप्राय राष्ट्रों को एकता के सूत्र में आबद्ध करने की प्रेरणा दी है।

सम्पूर्ण वैदिक साहित्य राष्ट्रीय एकता, चेतना, एवं अखण्डता के विचारों से ओत-प्रोत है। जिसमें प्रगतिशील राष्ट्र के चरम उत्थान और राष्ट्रवासियों की सुख-समृद्धि के लिये एकात्मभाव से परिपूर्ण आकांक्षाओं को बार-बार व्यक्त किया गया है-

''सूर्य वर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त,
जनभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त।
विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुस्मै दत्त,
स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुस्मैदत्त।।''[१०]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्- हे देव तुम सूर्य के तुल्य तेज वाले हो, राष्ट्र के देने वाले हो मुझे (सूर्यसा तेजस्वी) राष्ट्र दो। हे देवों तुम जन कल्याणकारी हो मुझे (विश्व कल्याणकारी) राष्ट्र दो। हे देवों तुम विश्व के पालक हो, राष्ट्र के देने वाले हो। तुम मुझे (विश्व कल्याणकारी) राष्ट्र दो। हे देवों तुम स्वयं प्रकाशमान हो, राष्ट्र के देने वाले हो मुझे स्वराज्य वाला राष्ट्र दो।

राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता का पोषक वेद का यह मन्त्र भेद-भाव की नीति का परित्याग करने पर बल देता है-

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।

अन्योअन्यस्मै वल्गुवदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसंस्कृणोमि॥ अथर्व. ३/३०/५

तात्पर्य यह है कि प्रभु का मानव मात्र के लिये आदेश है कि तुम क्षुद्रता से पृथक् रहकर महान् बनो और महान् पुरुषों का सम्मान करो। तुम ज्ञान-विज्ञान में ऊँचे उठो और भेद-भाव को प्रश्रय न दो। कार्य सिद्धि हेतु मिलकर कार्य करो। एक धुरी के नीचे समवेत होकर प्रगति के पथ पर आगे बढ़ो। परस्पर मीठी वाणी बोलते हुये जीवन यात्रा में बढ़े चलो। मैं तुम्हें समान मन और समान धारण शक्ति से सम्पन्न करता हूँ।

उपर्युक्त वेद मन्त्र में द्रोह तथा विरोध भाव से पृथक् रहकर मानव मात्र को प्रेम पूर्वक जीवन व्यतीत करने का कितना चारु एवं सारगर्भित वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

विपत्तियों से डट कर संघर्ष करना और आनन्द का उपभोग करना हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। हम सब एक पिता की सन्तान है। सब को समान बन्धुता के सूत्र में आबद्ध होकर सौभाग्य एवं समृद्धि के लिये प्रेरित करते हुये एक वेद मन्त्र का अवलोकर करें।

"सध्रीचीनान वः संमनसंस्कृतेणोमि एक श्नुष्टीन्त्सवननेन सर्वान्।

दैवा इवामृतं रक्षमाणः सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु॥"[११] अथर्व. ३/३०/७

प्रत्येक प्राणी का कल्याण हो ऐसी सूर्योदय की उत्कृष्ट भावना संस्कृत के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा में कहां सम्भव है-

अजीतये अहतये पवस्वय स्वस्तये सर्वतातये बृहते।

तदुशन्ति विश्व इमे सखायः तदहं वश्मि पवमान॥ ऋग्वेद ९/९६/४

अर्थात्- हे सोम तुम अपनी शक्ति से सदैव समवेत रहते हो। मुझे भी ऐसी शक्ति दो जिससे मुझे कोई जीत न सके। मुझे कोई हानि न पहुंचा सके, मेरी यह भी कामना है कि सर्वत्र स्वस्ति का संचार हो और एक वृतसर्वोदय की कल्याणकारी स्थिति का उदय हो। यह मेरी ही नहीं मेरे सभी मित्रों की कामना है।

समस्त संस्कृत वाङ्मय में राष्ट्रीय चेतना एकता, एवं अखण्डता के विषय में गहन चिन्तन एवं मनन हुआ है। **"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या"** की दृढ़ प्रतीति राष्ट्रीयता की नींव मानी गयी है। सष्ट्र के प्रति अटल निष्ठा राष्ट्र गौरव की रक्षा के प्रति नागरिकों के दायित्व का स्पष्ट वर्णन वेदों में दृष्टिगोचर होता है। अथर्ववेद में माता भूमि का वन्दन करने का भाव

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय चेतना का ही भाव है जिसमें अपनी मातृ भूमि और राष्ट्र के प्रति अपनत्व की भावना से भरे वचनों का सुन्दर परिपाक है।

रामायण और महाभारत जैसे आर्षकाव्य ने हमारी राष्ट्रीय अस्मिता को अनेक संकट पूर्ण काल खण्डों में सुरक्षित रखा है। ये वे अमूल्य निधि है जिनसे मानव समूह तथा राष्ट्र जीवन को प्रेरणा मिलती रहेगी। चाणक्य जैसे चतुर राजनीतिज्ञ द्वारा, राजा और राष्ट्रोत्सर्ग के लिये करणीय आचरणों का वर्णन आज भी प्रासंगिक एवं सर्वजन ग्राह्य है। राष्ट्रहित एवं व्यक्तिगत हित की टकराहट में राष्ट्रहित को प्राथमिकता प्रदान करने का कितना सुन्दर दृष्टान्त महाकवि भवभूति ने राम के चरित्र के द्वारा व्यक्त किया है-

''स्नेहं दयी च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।।''[१२]

अर्थात् लोकानुरंजन हेतु प्रिया जानकी का त्याग करते हुये राम को व्यथा नहीं होगी लोकरांधन की वेदी पर अपने निजी सौख्य को तिलाञ्जलि देना राम की कर्तव्यनिष्ठा का, आदर्श भूपतित्व का उज्ज्वल निदर्शन है।

स्वयं विकास के साथ ही सम्पूर्ण विश्व के विकास की कामना संस्कृत साहित्य की सबसे बड़ी विशिष्टता है। यह साम्राज्यवाद के स्थान पर मानतावाद को विश्वप्रभुसत्ता के स्थान पर विश्वबुन्धुत्व के भाव को स्वीकार करती है। अत: संस्कृत भाषा स्वत्व एवं परत्त्व के भाव से सम्पूर्ण विश्व को आत्मवत् देखती है-

''अयं निज:परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।''[१३]

किसी भी राष्ट्र की एकता उस राष्ट्र के व्यक्ति तथा उनके चरित्र पर आधारित होती है। राष्ट्रीय एकता को पारिवारिक सन्दर्भ में देखे तो हम पायेंगे कि हमारे ऋषि मुनियों ने राष्ट्र को एकता एवं अखण्डता के सूत्र में पिरोए रखने के लिये संयुक्त परिवार की संकल्पना प्रस्तुत की। संयुक्त परिवार में केवल भौतिक सुख सुविधा ही नहीं अपितु भावनात्मक सुविधा भी प्राप्त होती थी। बीमारी तंगहाली आदि कष्टों के मध्य एक दूसरे को सहयोग करने की भावना प्रमुख थी। पारिवारिक सुखशान्ति हेतु स्वयं के सुखों का परित्याग कर देना संयुक्त परिवार की आत्मा थी। पिता की आज्ञा हेतु राम का वनगमन राम के साथ लक्ष्मण का वनगमन, भरत का राम के प्रति प्रेम आदि प्रसंग पारिवारिक उत्सर्ग की उदात्त भावना को ही व्यक्त करते हैं।

परन्तु आज स्वत्व एवं परत्त्व की भावना इस महत्तम पारिवारिक अमृत कल्प संगठन को प्रदूषित कर रही हैं जिसके कारण आज संयुक्त पारिवारिक संगठन भी प्रभावित होता हुआ परिलक्षित हो रहा है।

सभी के भाव विचार मन समान हो कोई किसी से द्वेश न करे वेद का यह संदेश सार्वकालिक, सार्वभौमिक एवं मानव मात्र के लिये है। परिवार में जिस कौटुमिम्बकता का भाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई पड़ता है यदि यह समाज में दिखाई पड़ने लगे तो राष्ट्रीय एकता के साथ हही विश्व कल्याण की घड़िया निकट आ सकती हैं। मैं पूर्व में ही यह बताने का प्रयास कर चुकी हूँ कि राष्ट्र के समस्त घटक एवं वस्तु के प्रतिनिष्ठा तथा अपनत्व की भावना का नाम राष्ट्रीय चेतना है। राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय चेतना में देशानुराग सदैव प्राणवान रहता है। राष्ट्रीय एकता की अभिव्यक्ति राष्ट्र की स्वतन्त्रता की अभिलाषा, उत्सर्ग, बलिदान, त्याग एवं समर्पण की भावना राष्ट्र की सम्पन्नता एवं अखण्डता की कामना के द्वारा अभिव्यक्त होती है। परन्तु खेद है कि सम्प्रति राष्ट्र के प्रति ये उदात्त एवं निर्मल भावनाएं तिरोहित होती जा रही हैं। विश्वबन्धुत्व एवं राष्ट्र प्रेम की भावना मृत प्राय है। मानवता एवं राष्ट्रीयता का अस्तित्व खतरे में है। स्व की प्रबलतम भावना के कारण आज सम्पूर्ण व्यक्ति राष्ट्र एवं विश्व के मध्य संघर्ष बढ़कर तृतीय विश्वयुद्ध के विनाशकारी कगार पर अग्रसर हैं सम्प्रति देश की एकता एवं अखण्डता खतरे में हैं सर्वत्र विनाश एवं पतन का ही ताण्डव परिलक्षित हो रहा है इसका कारण क्या है? युगों-युगों तक सभी को शिक्षित करने वाले महनीय गुणों से परिपूर्ण तथा सभी के ऊर्ध्वारोहण की कामना करने वाले हमारे देश की इस शोचनीय दशा का हेतु क्या है।

अत्यन्त चिन्तन एवं मनन करने के बाद मुझे इस विकराल समस्या के दो मूलभूत कारण ही समझ में आते हैं- एक आत्मविस्मरण तथा दूसरा पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण।

आज हम सभी भारतीय अपनी सांस्कृति धरोहर को विस्मृत करते जा रहे है। सम्पूर्ण मानवता भौतिकवाद की युगमरीचिका में फंसकर स्वपथ से भटक गयी है। आवश्यकता है इसे आत्मबल से संयुक्त कर आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर प्रवृत्त करने की।

दूसरे कारण का स्पष्ट प्रभाव हम जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करते हुये देख सकते हैं। यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है कि हम अपनी समय सिद्ध उपयोगी पद्धतियों का परित्याग कर पाश्चात्य अनुपयोगी पद्धतियों को अपनाने हेतु प्रयत्नशील हैं। पश्चिमी सभ्यता ने हमारे पारिवारिक, सामाजिक एवं शैक्षिक ढांचे को प्रभावित तथा विघटित किया है। संस्कृत भारत की आत्मा है और आत्मा की उपेक्षा करने का अर्थ होगा भारत जैसे महान् राष्ट्र की मृत्यु क्योंकि इतिहास प्रमाण है कि जिस भी राष्ट्र ने अपनी सभ्यता और संस्कृति का परित्याग किया वे सब शनैः-शनैः कालकवलित हो गये।

अतः हमें संस्कृत साहित्य में निरूपित अपनी वैभवपूर्ण, सर्वजनहिताय, सर्वकल्याणकारी स्वत्व एवं परत्व की सीमा से परे **'वसुधैवकुटुम्बकम्', 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' सर्वधर्मसमभाव, 'कामये दुःखतप्तानाम प्राणिनाम्' 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। तथा मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे''** को प्राण तत्व के रूप में स्वीकार करने वाली संस्कृत भाषा को उसके समग्र वैभव के साथ स्वीकार करना ही होगा।

निष्कर्ष संस्कृत भाषा में रचित साहित्य में मानवता, राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्र रक्षा आदि के परिप्रेक्ष्य में बहुधा गम्भीर चिन्तन किया गया है। निर्भीकता, आत्मविश्वास, दृढ़ता, धैर्य, धर्म,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहिंसा आदि उच्चतम दैवीय सम्पत्ति किसी भी राष्ट्र, समाज मानवजाति एवं मानव की रक्षा के अभेद्य कवच हैं तथा ये राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के मूलाधार हैं। यदि कोई भी राष्ट्र या समाज इनको ईमानदारी के साथ आत्मसात करता है तो उसे विश्व की कोई शक्ति कदापि तिरस्कृत नहीं कर सकती। अपितु इन सद्गुणें के द्वारा विजयश्री सदैव उसी का वरण करेगी क्योंकि समस्त सभ्यता का मूल संस्कृत वाङ्मय में ही निहित है। भारती की सर्वविध उन्नति संस्कृत से ही सम्भव है-

''भारतस्योन्नतिर्शान्तिः भवेत् संस्कृत भाषया।
वदामि करमुद्धृत्य, सर्वेषां सदसि स्थितः॥''

सन्दर्भ

1. मनुस्मृति : 2/20
2. विष्णुपुराण : अ०2, म०3 श्लोक 24
3. अथर्ववेद का० : 12/5/1; 19.4.1
4. शतपथ ब्राह्मण : 6/7/3/7
5. ऋग्वेद : 10, 19/म०-4
6. ऋग्वेद : 19/म० 4
7. विष्णुपुराण : 19/म० 4
8. अहिनक सूत्रावली : स्नान प्रसंग 106
9. कठोपनिषद : 1/3/4
10. यजुर्वेद : 10/4
11. ऋग्वेद : 9/96/4
12. उत्तरामचरितम् : प्रथम अंक
13. पंचतंत्र अपरीक्षित कारकम् : 3/37

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृतसमुन्नतौ उत्तराखण्डस्य योगदानम्

डॉ० सरोज नौटियाल
एसोसियेट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, देहरादून

संस्कृतं नाम व्याकरणादिशास्त्रैः शुद्धा परिष्कृता च भाषा संस्कृतभाषा वर्तते। संस्कृतभाषा देववाणी-गीर्वाणवाणी-देवभाषादिपदैराख्यायते। प्रचलितासु विश्वभाषासु संस्कृतभाषैव प्राचीनतमा इति पश्चिमापश्चिमानां विपश्चितां सर्वसम्मतः पक्षः। संस्कृतं देवभाषा वर्तते उत्तराखण्डं च देव भूमिरुच्यते। उक्तमपि कुमारसम्भवे कालिदासेन **अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।**[१] अत देवभूमौ देवभाषायाः समुन्नतये कार्यं न स्यादिति न खलु कदापि भवितुमर्हति।

उत्तराखण्डस्य देवभूमौ संस्कृत समुन्नतये अत्यन्तं कार्यम् अभूत्। पुरा काले कालिदासेन उत्तराखण्डस्य कोटद्वारजनपदे स्थितमनुमालिनीतीरं कण्वाश्रमवर्णनम् अवलोक्य को न सभ्यसुधी चिन्तयति यत् वस्तुत एवेदम् उत्तराखण्डं देवभूमिः। केचन ऐतिह्यविदस्तु भाषन्ते यद् नव्यम् अभिज्ञानशाकुन्तलनाटकमत्रैव कालिदासेन उत्तराखण्डभूमौ हिमगिरौ प्रणीतम्। प्राचीने काले संस्कृतस्य समुन्नतये विकासाय प्रचाराय प्रसाराय च उत्तराखण्डभूमौ बहूनि कार्याणि अभवन्, परन्तु यादृशानिसंकृतहिताय कार्याणि पुरा ऋषिभिः महर्षिभिश्चात्र कृतानि तथैव साम्प्रतमपि संस्कृतसमुन्नतये भवन्ति। कानिचन उदाहरणत्वेन प्रस्तुमः। द्वयधिक-एकोनविंशतितमे ईस्वीयसंवत्सरे (1902) त्यागिभिः तपस्विभिः मनस्विभिः स्वामिभिः स्वामिदयानन्दप्रवरेभ्यः प्राप्तसन्देशैः श्रद्धानन्द महाभागैः हरिद्वारजनपदस्य समीपे काङ्गडीग्रामे गङ्गातीरे गिरीणां निकटे गुरुकुलस्य स्थापना कृता। तैः स्वामिचरणैः स्वीयेन तपसा तेजसा च इदं गुरुकुलं संसारे अतीव विश्रुतं कृतम्। ते ऋग्वेदस्य **''उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत''**[२] इति मन्त्रं सार्थकं कृतवन्तः। तदानीं संस्कृतजगति काङ्गडीस्थस्य अस्य गुरुकुलस्य प्रसिद्धिः सर्वेषामपि भारतीयानां जिह्वायां नरीनर्ति स्म। वेदस्य उपनिषदः दर्शनस्य ब्राह्मणस्य वेदाङ्गस्य इतिहासस्य च क्षेत्रे अस्य गुरुकुलस्य स्नातकाः स्वामिश्रद्धानन्दपादानां च शिष्याः श्रद्धया संस्कृतकार्यं कृतवन्तः। स्वतन्त्रताप्राप्तये हैदराबाद सत्याग्रहे च काङ्गडीस्थस्य गुरुकुलस्य छात्राः सदैव सोत्साहं भागं गृहीतवन्तः। राजनीतिक्षेत्रे पत्रकारिताक्षेत्रे सम्मेल्य च एकमपि क्षेत्रं प्रायेण नैतादृशमासीद् यस्मिन् काङ्गडीस्थगुरुकुलस्य स्नातका कार्यं नाकुर्वन्। हरीशचन्द्रविद्यालङ्कार-इन्द्रविद्यावाचस्पति क्षितीशवेदालङ्कार-अभयदेव-विद्यावाचस्पति-सत्यव्रतसिद्धान्तालङ्कार-चन्द्रमणिविद्यालङ्कार-सत्यदेव बुद्धदेवविद्यालङ्कार इत्यादयो नैके स्नातकाः अस्य गुरुकुलस्य कर्णावतंसा इव सुभूषिता आसन्। अद्यद्वापि इदं काङ्गडीस्थं गुकुलंकाङ्गडीविश्वविद्यालयनाम्ना संसारे प्रसिद्धं वर्तते।

संस्कृतसमुन्नतये तत्रैव तदानीमेव हरिद्वास्य पूण्यभूमौ दर्शनानां विश्रुतमनीषिणो स्वामि दर्शनानन्दमहाभागा एकमन्यदपि गुरुकुलं संस्थापितवन्तः। यद् गुरुकुलमहाविद्यालयज्वालापुरनाम्ना

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विख्यातं वर्तते। अस्मिन् गुरुकुलेऽपि स्वामिदर्शनानन्दसदृशाः तर्कशास्त्रिणः प्राज्ञाः प्रादुरभवन्। अस्मिन् गुरुकुलमहाविद्यालये पं० प्रकाशवीरशास्त्रि-नरदेवतीर्थ-कपिलदेवद्विवेदीत्यादयो बहवो ज्ञानजाह्नवीजले संस्नाय पण्डिताः स्नातकाः समुत्पन्नाः। ये सर्वेऽपि जगति संस्कृतहिताय नैकानि कार्याणि प्रकृत्य शास्त्राणि विरच्य देशहितसाधकविचारवृन्दानि विस्तीर्य च स्वकीयगुरुकुल महाविद्यालस्य नाम जगत्प्रसिद्धं कृतवन्तः। अस्य उत्तराखण्डस्य भूमौ कन्यानां शिक्षाभावं समीक्ष्यैव काङ्गडीस्थस्य गुरुकुलस्य आचार्या रामदेववर्या देहरादूननगरे राजपुरपथे कन्यागुरुकुल महाविद्यालयं संस्थापितवन्तः। तस्य कन्यागुरुकुलमहाविद्यालस्य आचार्यापदं समलङ्कुर्वाणा आसन् श्रीमत्यो विदुष्यो दमयन्तीमहाभागाः। तासां दमयन्तीमहाभागानां नेतृत्वेनैव कन्यागुरुकुलमहाविद्यालयोऽयं कन्यानां शिक्षाया अद्भुतं शिक्षाकेन्द्रं जातम्। अस्य कन्यागुरुकुलस्य निपुणनिपुणां स्नातिकां समवलोक्यैव जनाः कन्याशिक्षां प्रति जागरूकाः अभवन्।

सप्तनवत्युत्तर-एकोनविंशतितमे (1977) ईस्वीयसंवत्सरे स्वामिदयानन्दस्य सिद्धान्तानां भक्ताः श्रीमन्तो वेदप्रकाशार्या एकमन्यदपि कन्यागुरुकुलं देहरादूननगरे आर्षकन्यागुरुकुल द्रोणस्थलीनाम्ना संस्थापितवन्तः। अस्य कन्यागुरुकुलस्य आचार्या सर्वशास्त्रनिपुणा अन्नपूर्णार्वर्या विद्यन्ते। एतासामाचार्यत्वे सम्प्रत्यत्र द्विशतं कन्या वेदवेदाङ्गानां शिक्षां प्राप्नुवन्ति। अत्रत्याः स्नातिकाः काश्चन एतासामाचार्यत्वे सम्प्रत्यत्र द्विशतं कन्या वेदवेदाङ्गानां शिक्षां प्राप्नुवन्ति। अत्रत्याः स्नातिकाः काश्चन उच्चशिक्षां प्राप्त राजकीयाजीविकायां रता काश्चन च स्वजीवनं राष्ट्राय समर्प्य वैदिकधर्मस्य संस्कृतस्य च प्रचारं कुर्वन्ति। देहरादूननगराद् अनतिदूरे एव प्रेमनगरसमीपे पौन्धाग्रामे वेदवेदाङ्गविद् आर्षपरम्परायाः समुपोषका आर्यसमाजस्य मूर्धन्याः स्वनामधन्याः स्वामिप्रणवानन्द-सरस्वतीमहाभागा नीमीतरङ्गिणीतटे बालकानां श्रीमद्दयानन्द-आर्षज्योतिर्मठ गुरुकुलमितिनाम्ना एकं गुरुकुलं द्विसहस्रतमे (2000) ईस्वीयसंवत्सरे विशालशालवने संस्थापितवन्तः। अस्य गुरुकुलस्य आचार्यपदमलङ्कुर्वाणः श्रीमन्तो मतिमन्तो धनञ्जयवर्याः सन्ति। अस्मिन् गुरुकुले अशीतिः बालकाः प्रायेण शिक्षां लभन्ते। अत्रत्या दशस्नातका दीक्षिताः शिक्षिताश्चाभवन्। ते च देशे उच्चशिक्षां सम्प्राप्य केचन आजीविकां लब्धाः केचन च वैदिकधर्मप्रसाराय संस्कृतभाषाविस्ताराय च कार्याणि कुर्वन्ति। एवं एतादृशैः गुरुकुलैः निश्चितमेव उत्तराखण्डभूमिः देवभूमिरभवत्। एतानि गुरुकुलानि उत्तराखण्डभूभागतः कियत् संस्कृतस्य कार्यं कुर्वन्तीति सर्वथा वाण्या अवर्णनीयमेव। एतादृशानि अन्यानि अपि बहूनि अदृष्टानि अज्ञातानि च संस्कृतस्य शिक्षास्थलानि सन्ति यत्र संस्कृतभाषासम्मुनतये निरन्तरं नितरां कार्यं भवति। तादृशैः स्थलैरपि अयमुत्तराखण्डभूभागो भाषति भुवने वने। एवं न प्राचीनेऽपितु अर्वाचीने वर्त्तमाने कालेऽपि संस्कृतसमुन्नतौ उत्तराखण्डस्य योगदानं भृशं वर्तते।

उत्तराखण्डे संस्कृतस्य महत्वं विज्ञायैव उत्तराखण्डभूमिं देवभूमिरूपेण सुरक्षयितुं च सर्वकारेण संस्कृतभाषा उत्तराखण्डस्य द्वितीया राजभाषा घोषिता। द्वितीया राजभाषा संस्कृतं संसारे केवलमुत्तराखण्डस्यै व वर्तते। अयं सर्वकारस्य प्रशंसनीयः प्रयत्नः संस्कृताय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्रत्यः सर्वकारोऽपि उत्तराखण्डे संस्कृतभाषाप्रसाराय संस्कृतभाषां जनभाषां कर्तुं च हरिद्वारनगरं ऋषिकेशनगरं च संस्कृतनगरं घोषितवती। अनेन एतयोः नगरयोः संस्कृतस्य महत्वपूर्णं कार्यं सम्प्रति भवति। एवमेव गढ़वालमण्डले कुमाऊ-मण्डले च एकमेकं ग्रामं संस्कृतग्राममपि सर्वकारः समुद्घोषितवती। सम्पूर्णेऽपि उत्तराखण्डे संस्कृतस्य समुन्नतिः विकासश्च स्यादिति भव्यभावनां लक्ष्यीकृत्य सर्वकारः उत्तराखण्डसंस्कृतसंस्थानमपि हरिद्वारे संस्थापितवान्।

इदमुत्तराखण्डसंस्कृतसंस्थानं निखिलेऽपि उत्तराखण्डे संस्कृतस्य नाटकानि शिविराणि प्रतिस्पर्धाः कार्यक्रमान् च समायोज्य संस्कृतभाषां जनभाषां कर्तुं प्रयतते। संस्कृतभाषां बालकाः शैशवादेव शिक्षेरन् इति लक्ष्यं प्रत्यक्षीकृत्यैव सर्वकारः उत्तराखण्डसंस्कृतशिक्षापरिषत् स्थापितवान्। इयं परिषत् शैशवात् मध्यमापर्यन्तं संस्कृतशिक्षाव्यवस्थां करिष्यति। येन बालकाः प्रारम्भत एव संस्कृतभाषया शिक्षिता दीक्षिताश्च भविष्यन्ति। मध्यमायाः पश्चात् संस्कृतशिक्षां प्राप्तुं सर्वकारः उत्तराखण्डसंस्कृतविश्वविद्यालयं हरिद्वारे समुद्घाटितवान्। यस्मिन् बहवः संस्कृतबालकाः उच्चशिक्षां प्राप्नुवन्ति। एवमत्रत्यः सर्वकरोऽपि संस्कृतशिक्षां सुतरां समेधयति उत्तराखण्डे।

उत्तराखण्डस्य बहवोऽशेषशेमुषीजुषो विद्वांसो विद्यन्ते, ये वर्तमानेऽपि संस्कृतभाषायाः सेवामुत्तराखण्डभूभागत एव कुर्वन्ति। जयदेवउप्रैती-वाचस्पतिगैरोला-कृष्णकान्त-रामनाथवेदाङ्कार श्रीकृष्णसेमवाल-इत्यादयो नैके गुणिगणगणनीया समादरणीया मनस्विनो यशस्विनो संस्कृतमनीषिणो विद्यन्ते, ये उत्तराखण्डस्य निश्चितमेव स्वदेवरूपेण देवभूमित्वं वर्धयन्ति। एवं वयं निर्विवादं वक्तुं शक्नुमो यत् संस्कृतसमुन्नतौ उत्तराखण्डस्य अतीव महनीयं योगदानं वर्तते। प्राचीनकालादद्यपर्यन्तं संस्कृतस्य विकासाय उत्तराखण्डस्य वर्णैः अवर्णनीयमुत्कृष्टं च योगदानं वर्तते एवात्र नास्ति शङ्कापङ्कास्पदमिति समालप्य विरमामि।।

सन्दर्भः-

1. कुमारसम्भवम्- 1/1
2. ऋग्वेद संहिता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय धर्म-सम्प्रदायों में पारस्परिक सौहार्द एवं समन्वय का स्वरूप-एक दार्शनिक विवेचन

डॉ० प्रशान्त राठौर
एम.ए. (गोल्ड मेडलिस्ट), यू.जी.सी.-नेट
पी-एच.डी. गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

भारत सहित विश्व के विभिन्न देशों के समाज में शैव, वैष्णव, शाक्त, बौद्ध, जैन, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिख इत्यादि धार्मिक सम्प्रदाय विद्यमान है। उक्त सभी धार्मिक सम्प्रदाय अपने समृद्ध धार्मिक विचारों द्वारा समाज में सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाते हैं। धार्मिक सौहार्द के द्वारा विभिन्न धर्मों में जो समन्वय स्थापित किया जाता है उसे समझने के लिए 'धर्म' शब्द के स्वरूप को समझना आवश्यक है। धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- 'धारण करना'। भारतीय मनीषियों ने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है- **''धार्यते जनैरिति धर्मः''** अर्थात् मनुष्य जिसे धारण कर तदनुरूप अपने आचरण को बनाता है, वही धर्म है। यदि धर्म के वास्तविक अर्थ को समझें तो यह ज्ञात हो जाता है कि सभी सम्प्रदाय सन्मार्ग पर चलने के लिए व्यक्ति को अपने द्वारा नियत कर्त्तव्यों का पालन करने का उपदेश देते हैं। जैसा कि **मुनुस्मृति** में कहा गया है-

''धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।''[१]

धैर्य, क्षमा, दमन, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य एवं अक्रोध धर्म के दस लक्षण हैं। **वामन पुराण** में सभी मानवों के लिए धर्म के निम्न लक्षण बताये गये हैं-

स्वाध्यायं ब्रह्मचर्यं च दानं यजनमेव च।
आर्पण्यमनायासं दया हिंसा क्षमा दमः।।
जितेन्द्रियत्वं शौचं च मांगल्यं भक्तिरुच्यते।
शंकरे भास्करे देव्यां धर्मोऽयं मानवः स्मृतः।।[२]

स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य, दान, यज्ञ, उदारता, विश्रान्ति, दया, अहिंसा, क्षमा, दम, जितेन्द्रियता, शौच, मांगल्य तथा ईश्वर के प्रति भक्ति ये सब मानवों के लिए धर्म के लक्षण नियत किये गये हैं और प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए धर्म के लक्षणों का पालन करना चाहिए।

भारत के सूफी, संतों और कवियों ने सदैव समाज की रूढ़ियों व बाह्याडम्बरों का प्रबल विरोध किया। उन्होंने मानव मात्र में परस्पर सामंजस्य स्थापित करने का विमल प्रयास किया। भारत में व्याप्त विविध अन्धविश्वासों व पाखण्डों को उन्होंने समूल उखाड़ फ़ैंकने में अपना अथक योगदान किया। समस्त मतों में एकत्व स्थापित करते हुए **कबीरदास** जी कहते हैं-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही महादेव वही मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिए।
को हिन्दू को तुरक कहावै एक जमी पर रहिए।
वेद किताब पढ़ें वे कुतबा वे मौलाना वे पाण्डे।
बेगरि बेगारि नाम धराएं एक मटिया के भाण्डे।[३]

जैन कवि देवसेन ने कहा है कि जो व्यक्ति धर्म का आचरण करता है वही सच्चा श्रावक है चाहे वह किसी भी कुल से उद्भूत हो।

एहु धम्मु जो आयरइ बंभगु सुद्दु वि कोई।
सो सावक कि सावयहं अणु कि सिरि माणि होइ।।[४]

महाराष्ट्र के संत **नामदेव** ईश्वर की सर्वव्यापकता को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं-

हिन्दू पूजै देहुरा, मुसलमान मसीत।
नामा सोई सेविया, जहं देहुरा न मसीत।[५]

व्यक्ति के अन्दर प्रेम और नफरत, मेल और लड़ाई, दोनों की तरफ झुकाव मौजूद है। प्रेम हमारे दिल के अन्दर खुदा है। नफरत खुदी से पैदा होती है और वही हमारे अन्दर का शैतान है। यही हमारे अन्दर का सुर-असुर संग्राम है। **मौलाना रूम** का एक बड़ा अच्छा और मशहूर शेर है-

तू बराए वस्ल करदन आमदी,
नै बराए फस्ल करदन आमदी।[६]

अर्थात् आदमी को दुनिया में एक दूसरे से मेल और प्रेम के लिये भेजा गया था, लड़ाई और नफरत के लिये नहीं।

विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों में एकता तथा सहिष्णुता को बनाये रखने का अनेक सूफियों ने प्रयत्न किया। एक सूफी कहता है-

फकत तफावत है नाम ही का।
दर अस्ल सब एक ही हैं, यारो!
जो आबे साफी कि मौज में है,
उसी का जलवा हुबाब में है।[७]

अर्थात् केवल नामों ही का फरक है, ऐ यारो! असल में सब एक हैं, जो साफ पानी लहर के अन्दर है उसी की चमक बुलबुले के अन्दर है।

मशहूर सूफी अत्तार ने कहा है कि रूह अक्ल और इल्म से जिन्दगी को जानती है, रूह के लिए ताजी और तुरकी का कोई फरक नहीं है।

आज तक के जितने भी इस धरा पर महापुरुष हुए हैं, उन्होंने सदा मनुष्यों को हिंसा से बचने का उपदेश दिया। उनका लक्ष्य यह होता था कि व्यक्ति-व्यक्ति में भेद को समाप्त किया जाये। इसलिए वे सदैव सद्कर्त्तव्यों को व्यवहार में लाने के लिए व्यक्तियों को कहते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंसा को उन्होंने मन, वचन तथा कर्म से विरोध करने का उपदेश दिया, क्योंकि दूसरों को मन से भी दु:खी करना हिंसा है। **संयुक्तनिकाय में भगवान् बुद्ध** कहते हैं-

"यो च कायेन, मनसा च हिंसति।
स वे अहिंसको होति, यो परं न विहिंसति।"[८]

हिंसा सदैव हिंसा को जन्म देती है, वह कभी अहिंसा को जन्म नहीं देती। दुश्मनी से, क्रोध से घृणा से, उपेक्षा से कभी शान्ति नहीं मिलती, बल्कि मित्रता, प्रेम, सौहार्द से ही शान्ति प्राप्त हो सकती है। **भगवान् बुद्ध** का उपदेश है-

"न हि वेरेन वेरानि, सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति, एस धममो सनन्तनो।।"[९]

अर्थात् वैर से कभी वैर शान्त नहीं होता, अवैर से ही शान्त होता है। यही शाश्वत सिद्धान्त है, धर्म है।

समाज में लोगों को पारस्परिक सौहार्द से रहना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति में भगवान् का निवास होता है। कभी किसी का शोषण नहीं करना चाहिए और यदि कोई दूसरा कर रहा है तो उसे रोकना चाहिए। समाज से दूर व्यक्ति का जीवन व्यर्थ है क्योंकि जो देखकर भी लोगों के दु:खों से अनजान बना रहता है वह व्यक्ति न तो समाज का ही भला कर सकता है, न ही राष्ट्र का भला कर सकता है और न ही मानवता का ही उससे भला हो सकता है।

जैसे वर्षा के बिना फसल बेकार जाती है, प्रभु स्मरण के बिना दिन-रात व्यर्थ जाते हैं। प्रभु के भज़न के बिना सारे ही काम निरर्थक हैं क्योंकि ये काम मनुष्य का कुछ भी नहीं सँवारते, जैसे कंजूस का धन उसके किसी काम का नहीं होता। वे मनुष्य भाग्यशाली हैं, जिनके हृदय में प्रभु का नाम बसता है। मनुष्य सामाजिक जीवन यापन करने के कारण तथा समाज का अंग होने के कारण सामाजिक सौहार्द को बनाये रखे यह आवश्यक है। **सुखमनी साहिब** में कहा है-

"बिनु सिमरन दिनु रैनि ब्रिथा बिहाइ।
मेघ बिना जिउ खेती जाइ।
गोबिंद भजन बिनु ब्रिथे सभ काम।
जिउ किरपन के निरारथ दाम।
धंनि-धंनि ते जन जिह घटि बसिओ हरि नाउ।
नानक ता क़ै बलिबलि जाउ।।[१०]

आज से लगभग 400 वर्ष पूर्व एक संत हुए थे, जिनका नाम था स्वामी प्राणनाथ, उस समय उन्होंने केवल हिन्दू मुसलमानों में ही समन्वय स्थापित करने की ही बात नहीं की प्रत्युत ईसाई, पारसी, यहूदी आदि धर्म सम्प्रदायों में भी सामंजस्य सिद्ध करने का विमल प्रयास किया। उनका सम्पूर्ण साहित्य परस्पर धार्मिक सौहार्दपूर्ण भावना से ओत-प्रोत है। स्वामी **प्राणनाथ** जी

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने अपनी रचना में एक स्थान पर कहा है-

विष्णु अजाजील फरिस्ता ब्रह्मा मेकाईल।
जबराइल जोश धनी का, रुद्र तामास अजराईल।
मलकूत कहया बैकुंठ को, मौह तत्त्व अंधेरी पाल।
अक्षर को नूर जलाल, अक्षरातीत नूर जमाल।[११]

इसी प्रकार, सम्पूर्ण भारतीय सूफी, संत और कवियों ने मानव मात्र को परस्पर एकता का सन्देश दिया है। सही कहा गया है कि-

मालिक ने हर इन्सान को इन्सान बनाया।
मजहब ने उसे हिन्दू, मुसलमान बनाया।।[१२]

कवि ने कहा है-

नानक ईसा बुद्ध मुहम्मद सबका यह पैगाम।
पीर दुखी की जो हरै, पीर उसी का नाम।।[१३]

सिक्ख मत के संस्थापक **गुरुनानक देव** ने तत्कालीन सभी मतों को एक शाश्वत मंच पर स्थापित करने के लिए एक नूतन पंथ का सूत्रपात किया। उनके उपदेशों को प्रत्येक धर्म-सम्प्रदाय के लोग दत्तचित्त होकर सुनते थे। तत्कालीन समाज में हर धर्म सम्प्रदाय के लोग उनके शिष्य थे। उनके बार में कहा है-

बाबा नानक शाह फकीर। हिन्दू का गुरु, मुसलमान का पीर।।[१४]

परमात्मा एक है, वही एक तत्त्व है, उसे केशव, ब्रह्म, अल्लाह, कादिर, करीम, राम, रहीम कहो, लेकिन इंगित केवल एक परमेश्वर की ओर है। **गुरु नानक देव** कहते हैं-

अल्लाहु, अलखु, कादरू, अगम करण हारू करीम।
सम दुनी अवण जावणी मुकामु एकु रहीम।।[१५]

वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म में इसे मुक्ति या निर्वाण और इस्लाम में इसे नजात या फनाफिल्लाह कहते हैं। फनाफिल्लाह के ठीक वही मानी हैं जो निर्वाण के हैं यानि अपनी अलहदगी का फना या खतम हो जाना।

यहूदी इस आखिरी हालत को 'प्रेम का महल' कहते हैं। ग्नोस्टिक सम्प्रदाय के लोग इसे 'अनन्त ज्योति (अबदी नूर) का भंडार' कहा करते थे। ईसाई इसे 'किंगडम ऑफ हैविन' यानि स्वर्ग का राज कहते हैं। अलग-अलग धर्मों के सन्तों, सूफियों और महात्माओं ने इसे और भी तरह-तरह से बयान किया है।

ऋग्वेद में एक प्रार्थना आती है-

''यदग्ने स्यामह त्वं त्वं वा धा स्या अहम्''[१६]

हे अग्नि मैं तू हो जाऊँ और तू मैं हो जाय। 'अग्नि' आत्मा के अन्दर की उस रोशनी का नाम है जो आदमी को आगे का रास्ता दिखाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूफी ने इसी हालत को बयान करते हुए कहा है-

''मन तू शुदम तू मन शुदी मन तन शुदम तू जां शुदी।
ता कस न गोयद बाद अर्जी मन दीगरम तू दीगरी।।''[१७]

अर्थात् मैं तू हो गया और तू मैं हो गया, मैं जिस्म हो गया और तू जान हो गया ताकि इसके बाद कोई यह न कहे कि मैं और हूँ और तू कोई और है।

गाँधी जी ने साम्प्रदायिक सौहार्द को बनाये रखने तथा धर्म-सम्प्रदायों को निकटता से जानने का लोगों से आह्वान किया। उनका विचार था कि यदि लोग यह समझ पायेंगे कि दूसरे धर्म सम्प्रदाय भी यही अपने मानने वालों को समझाना चाहते हैं जो उनका धर्म्र-सम्प्रदाय उनको समझाना चाहता है, तब वे दूसरे धर्म-सम्प्रदायों के प्रति संकीर्णता को त्याग देंगे। **गाँधी** जी ने कहा है-

''जब कुरान पढ़ना चाहो तो उसे मुसलमानों के दृष्टिकोण से पढ़ना चाहिए।
जब बाइबिल पढ़नी हो तो ईसाईयों के दृष्टिकोण से पढ़नी चाहिए।
जब गीता पढ़नी हो तो हिन्दुओं के दृष्टिकोण से पढ़नी चाहिए।।[१८]

गाँधी जी साम्प्रदायिक सौहार्द को बनाये रखने के सदैव पक्ष में रहे थे। उनका विचार था कि दूसरा धर्म-सम्प्रदाय तथा उसके मानने वालों से कभी घृणा, उपेक्षा, उदासीनता नहीं रखनी चाहिए। जब किसी दूसरे धर्म-सम्प्रदाय का अपमान हो रहा हो तो समझो कि कभी ऐसा आपके साथ भी हो सकता है। **महात्मा गाँधी** ने कहा है-

''जैसा मैं गीता पर विश्वास रखता हूँ। वैसा ही मैं बाइबिल में विश्वास रखता हूँ। मैं अपने ही धर्म के समान विश्व के सभी महान् धर्मों को मानता हूँ। किसी धर्म विशेष का उसके ही अनुयायियों द्वारा उपहासित देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है।''[१९]

हिन्दी भक्ति साहित्य में कई मुसलमान कवि हुए हैं। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता का सतत विमल प्रयास किया। उनका प्रभाव हिन्दु समाज में प्रचुर था। हिन्दू जनता उनसे अगाध प्रेम करती थी। भक्त कवि **नाभादास** जी अपने प्रिय ग्रन्थ **'भक्तमाल'** में कहते हैं-

अलीखान पठान सुता-सह ब्रज रखवारे।
शेख, नबी, रसखान, मीर अहमद हरि प्यारे।।
निरमलदास कबीर ताज खाँ बेगम पारी।
तानसेन कृष्णदास बिजा पुर नृपति दुलारी।।
परि जादी बीवीरास्ती पद रज निज धारिए।
इन मुसलमान हरिजन पर कोटिन हिन्दुन वारिये।।[२०]

ईश्वर के प्रति आस्था रखते हुए भी आधुनिक कवि धार्मिक वाद-विवादों से सदैव दूर रहे। कविवर **सुमित्रानन्दन पंत** अपनी अमर कृति 'लोकायतन' में कहते हैं-

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मों के विविध नियमों में कर अवगुण्ठित।
प्रभु को दुरूह कर दिया अगम्य तिरोहित।
बहु मंत्र तंत्र वादों पन्थों में खण्डित।
मानव मानव के निकट न आया किंचित्।।[२१]

आधुनिक युगीन भक्त कवि **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र** भारत में विद्यमान सभी धर्म-सम्प्रदायों को उसी तरह एक ही मानते हैं जैसे एक ही शरीर के विविध अंग होते हैं, यथा-

खण्डन जग में काको कीजै।
सब मत तो अपने ही हैं, इनको कहा उत्तर दीजै।
अपुने ही पै क्रोधित बावरे अपुनो काटै अंग।
हरिशचन्द्र ऐसे मतवारने को कहा कीजै संग।।[२२]

राष्ट्रकवि **मैथिलीशरण गुप्त** ने कहा है-

जाति धर्म व सम्प्रदाय का नहीं भेद व्यवधान यहां।
राम रहीम बुद्ध ईसा का सुलभ एक सा ध्यान यहां।।[२३]

भारत में उर्दू साहित्य में देशप्रेम व राष्ट्रीय एकता की कविताएं भरी पड़ी हैं। **मोहम्मद इकबाल** ने कहा-

मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर करना।
हिन्दी है हम वतन हैं, हिन्दूस्तां हमारा।।[२४]

शब्बीर हसन खाँ 'जोश लिखते हैं-

सबसे पहले मर्द बन हिन्दुस्तां के वास्ते।
हिन्द जाग उठे तो, फिर सारे जहां के वास्ते।।[२५]

जमील मजहरी के शब्दों में-

विरादराने नौजवां बढ़े चलो बढ़े चलो।
झुके न हिन्द की निशां बढ़े चलो बढ़े चलो।।
जो राह रोक दे तो, दामन उसका छोड़ दो।
जो मजहब आके टोक दे, तो उसकी कैद तोड़ दो।।[२६]

हाली साहब का वक्तव्य इस प्रकार है-

मिल्लते रस्तों के हैं सब हेर-फेर।
सब जहाजों का है लंगर एक घाट।।[२७]

शम्स तबरेज का सन्देश है-

चे तदबीर ऐ मुसलमानां! कि मन खुद रा नमी दानम्।
न तरसा न यहूदी अम न गब्रम न मुसलमानम्।।[२८]

लगभग सभी धार्मिक सम्प्रदाय एक ही सत्ता में विश्वास करने के कारण एकेश्वरवादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। हिन्दू धार्मिक सम्प्रदाय में मान्य **श्वेताश्वतरोपनिषद्** 6/11 में इसकी व्याख्या इस प्रकार दी है

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥[२९]

वह एक देव ही सब प्राणियों में छिपा हुआ, सर्वव्यापी और समस्त प्राणियों का अन्तर्यामी है।

माण्डूक्योपनिषद् में उस एक सत्ता के स्वरूप की व्याख्या इस प्रकार की गई है-

''नान्तः प्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं ना प्रज्ञम्।
अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं
प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैत चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः।''[३०]

कुरान मजीद में एकेश्वरवाद की ही व्याख्या की गई है-

व इल्ला हुकुम इलाहू जला इलाह इल्लाहुवर्रहमानुर्रहीमु।[३१]

तुम्हारा पूजित एक अल्लाह है। वह बढ़ा दया करने वाला, बेहद मेहरवान है। सिक्ख धर्म सम्प्रदाय में ऐकेश्वरवाद को अपनाते हुए **जपुजी**- 1 में कहा है कि-

एक ओंकार सतिनाम करता पुरख, निरभउ,
निरवैर, अकाल मूरति, अजुनी सैभं, गुरु प्रसादि।[३२]

ईसाई धर्म-सम्प्रदाय परमेश्वर के प्रति अथाह प्रेम प्रदर्शित कर एकेश्वरवाद की व्याख्या **बाइबिल** में करता है-

"For God is the king of all the earth."[33]
"One Lord, one faith, one baptism."[34]
One God and father of all, who is above all,
and through all and in you all.[35]
"God is a spirit and they that worship him must.
Worship him in spirit and in truth."[36]

इस प्रकार हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि सभी धार्मिक सम्प्रदायों में एकेश्वरवाद को ही अपनाया गया है, परन्तु बौद्ध और जैन आदि धर्म-सम्प्रदायों में परमतत्त्व तो स्वीकार नहीं किया है, परन्तु बौद्ध धर्म-सम्प्रदाय में **'पंचशील'** को पालन करने का उपदेश दिया गया है, यथा

पाणाति पाता वैरमणी सिक्खा पदं समादियामि।
आदिन्नादाना वैरमणी सिक्खा पदं समादियामि।
कामेसु मिच्छा चारा वैरमणी सिक्खा पदं समादियामि।
मुंसावादा वैरमणी सिक्खा पदं समादियामि।
सुरा-मेरय-मज्ज-पमाद टठाना वैरमणी सिक्खा पदं समादियामि।[३७]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं प्राणी हिंसा से विरत, चोरी से विरत, पर-स्त्रीगमनादि नीति से विरत, झूठ से विरत, मादक पदार्थों के सेवन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

इसी प्रकार जैन धर्म- सम्प्रदाय में पंचमहाव्रतों के पालन का उपदेश दिया जाता है। जैनों में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के पालन का नियम भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए अनिवार्य है जबकि गृहस्थों में श्रावक व श्राविकायें इन नियमों को पंच अणुव्रतों के रूप में पालन करते हैं।

मानव जाति के इतिहास में चरम-सत्ता के स्वरूप तथा उसकी प्राप्ति के मार्गों के वैभिन्य की स्वीकृति को लेकर अनेक मार्गों का प्रादुर्भाव हुआ है। जैसा कि ऋग्वेद का कथन है, **'एकं' सद्विप्राः बहुधा वदन्ति'**[३८]। एक ही तत्त्व को अलग-अलग रूपों में व्याख्यायित किया है। मानवीय रुचि एवं स्वभाव के वैचित्र्य के कारण यह लोक व्यवहार नैसर्गिक है। परिणामतः इतिहास में अनेक धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ है जो कि अपनी-अपनी रुचि के आधार पर वरणीय एवं अनुकरणीय हैं। परन्तु इतिहास यह भी बताता है कि सभी धर्मों के मौलिक लक्ष्य एवं उद्देश्य को भुलाकर मानव ने धर्म के नाम पर अज्ञान, अंधश्रद्धा एवं अंधविश्वास से प्रेरित होकर भयंकर अत्याचार एवं रक्तपात किया है। जो धर्म मानव-जीवन में सामंजस्य एवं एकता लाने के लिए प्रस्तुत किया गया था, वही धर्मभेद मिटाने की अपेक्षा भेदभाव की स्थापना एवं विस्तार के लिये दुष्प्रयोग में लाया गया है। सही कहा गया है कि-

मालिक ने हर इन्सान को इन्सान बनाया।
मजहब ने उसे हिन्दू, मुसलमान बनाया।।[३८]

कवि ने कहा है-

आये दिन मन्दिर मस्जिद के झगड़े रहते।
दिल में ईंटें हैं भरी, लब पै खुदा होता है।।[३९]

वस्तुतः धर्म के नाम पर भेदभाव एवं हिंसा करने वाले धर्म- विरोधी हैं, धर्म के सही अर्थ से अनभिज्ञ हैं। यदि धर्म को पुनः मानव की सेवा में नियोजित करना हो और उसकी उपादेयता को ग्रहण करना हो तो धर्म के मूल स्वरूप को समझना अनिवार्य होगा।

विश्व के सभी धर्म-सम्प्रदायों को बाह्य स्वरूप रूपी आवरण तो अलग-अलग हो सकते हैं, परन्तु सभी धर्म-सम्प्रदायों की 'आत्मा' एक है। सभी अपने मानने वालें को उचित मार्ग पर चलने को प्रोत्साहित करते हैं। सभी ईश्वर को भिन्न नाम देकर स्मरण करते हैं। क्योंकि उस ईश्वर का कोई नाम नहीं है, उसे जिस नाम से भी पुकारो उसी नाम से वह सर ऊँचा करके जवाब देता है। इस पर सूफी कहता है-

''बनामे आं कि ऊ नाम नदारद
बहर नामे कि ख्वानी सर बर आरद''[४०]

सभी धर्म देश-काल एवं परिस्थिति के अनुसार विभिन्नता को लिये हुए हैं, परन्तु सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उद्देश्य एक ही है- मानव कल्याण। यह विश्व एक परिवार है, इसलिए कहा गया है-

''वसुधैव कुटुम्बकम्''

किसी भी धर्म के व्यक्ति को हम भीड़ में नहीं पहचान सकते। किसी व्यक्ति की पहचान उसका नाम, धर्म तथा निवास के आधार पर ही निश्चित किया जा सकता है। परन्तु यदि हम यह पहचान न करें तो कैसे एक व्यक्ति को पहचान सकते हैं कि वह किसी धर्म-सम्प्रदाय का है? हम उसकी पहचान नहीं कर सकते हैं। क्योंकि बनाने वाले (ईश्वर) ने व्यक्ति को कोई खास पहचान देकर नहीं भेजा है। अतः धर्म-सम्प्रदाय नाम, देश, स्थान का मोहताज है। हम कैसे ऐसी कृत्रिम वस्तु के मोहताज हो सकते हैं? जो जन्म से हमारी थी ही नहीं।

यदि धर्म जोड़ता है तो उसकी उपयोगिता है। एक सामन्जस्य बैठाने के लिए विभिन्न देशों के लोगों में धर्म की उपयोगिता हो सकती है। परन्तु यदि वह धर्म दूसरे धर्म के प्रति संकीर्णता, ईर्ष्या, कट्टरता का माहौल बनाता है तो ऐसे धर्म की कोई उपयोगिता नहीं है। अतः धर्म की उपयोगिता धार्मिक सौहार्द का वातावरण बनाने के लिये ही है।

सन्दर्भ

1. मनुस्मृति 6/92
2. वामन पुराण, 11/23-24
3. स्फुट
4. साम्प्रदायिकता एक चुनौती और चेतना, डॉ. यशवन्त विष्ट, पृष्ठ-488
5. साम्प्रदायिकता एक चुनौती और चेतना, डॉ. यशवन्त विष्ट, पृष्ठ-488
6. सब धर्मों की बुनियादी एकता, डॉ. भगवानदास, पृष्ठ- 32
7. सब धर्मों की बुनियादी एकता, डॉ. भगवानदास, पृष्ठ- 55
8. जागनी, सर्वधर्म सद्भाव एवं समन्वय, पृष्ठ 202
9. वही, पृष्ठ 203
10. सुखमनी साहिब, अष्टपदी- 5/6
11. तदेव, पृष्ठ- 489
12. मानव की सेवा में विश्व के प्रमुख धर्म, डॉ. सिद्धेश्वर भट्ट, पृष्ठ- 10
13. साम्प्रदायिक एक चुनौती और चेतन, डॉ. यशवन्त विष्ट, पृष्ठ- 489
14. तदेव, पृष्ठ- 490
15. तदेव, पृष्ठ 490
16. ऋग्वेद, 8/44/23
17. सब धर्मों की बुनियादी एकता, डॉ. भगवानदास, पृष्ठ- 154

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

18. डॉ. हृदयनारायण मिश्र, धर्म दर्शन परिचय, पृष्ठ- 329
19. सामान्य धर्म दर्शन एवं दार्शनिक विश्लेषण, याकूब मसीह, पृष्ठ- 314
20. साम्प्रदायिकता एक चुनौति और चेतना, डॉ. यशवन्त विष्ट, पृ. 490
21. स्फुट
22. साम्प्रदायिकता एक चुनौति और चेतना, डॉ. यशवन्त विष्ट, पृ. 491
23. तदेव
24. तदेव
25. तदेव
26. साम्प्रदायिकता एक चुनौती और चेतना, डॉ. यशवन्त विष्ट, पृ. 491
27. तदेव, पृ. 497
28. सब धर्मों की बुनियादी एकता, डॉ. भगवानदास, पृष्ठ- 271
29. श्वेताश्वतरोपनिषद् 6/11
30. माण्डूक्योपनिषद्- 7
31. कुरान मजीद 23/163
32. जपुजी साहिब, जपुजी- 1
33. Psalms- 47-7
34. Epesians 4/5
35. Epesians 4/6
36. St. John 4/24
37. बौद्ध धम्म दर्शन, डॉ. आर.पी. सन्त भास्कराचार्य, पृ. 116
38. ऋग्वेद 1/164/46
39. मानव की सेवा में विश्व के प्रमुख धर्म, प्रो. सिद्धेश्वर भट्ट, पृष्ठ- 10
40. सब धर्मों की बुनियादी एकता, डॉ. भगवानदास, पृष्ठ- 112

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेद के कुछ मंत्र और गृहस्थ धर्म

डॉ० हरिहर प्रसाद
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर गणित
पन्तनगर विश्वविद्यालय

जैसा सर्वविदित है कि गृहस्थ धर्म सम्बन्धित शिक्षा यजुर्वेद का मुख्य विषय है। यजुर्वेद, इस संसार में रहते हुए प्राणी को किस-किस परिस्थिति में कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह बताता है। वैदिक शिक्षा के अनुरूप मनुष्य के सब कर्म यज्ञ रूप है। इन कर्मों को दो उद्देश्यों से किया जाता है, एक तो सांसारिक सुख के लिए और दूसरे पारलौकिक सुख के लिए। संसार में अनेक प्राकृतिक दिव्य शक्तियों जैसे अग्नि, वायु, जल पृथ्वी और फिर सूरज, चन्द्र, दिन, रात इत्यादि परमात्मा ने प्राणी मात्र के लाभ के लिए प्रदान किए हैं। यजुर्वेद में जगह-जगह मंत्र दिए हैं जो प्रश्न और उत्तर के रूप में है और इस माध्यम से यह बताया गया है कि इन परमात्मा प्रदत्त वस्तुओं से गृहस्थ किस प्रकार अपना यज्ञ कार्य करें। उन्हीं कुछ मंत्रों पर विचार किया जायेगा।

कः स्विदेकाकी चरति कऽउ स्विज्जायते पुनः।
किं स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत्॥ यज्ञ २३.४५॥

भावार्थ- इस संसार में अकेला बिना सहाय के कौन चलता, कौन बार-बार उत्पन्न होता, शीतकी निवृत्ति कर्त्ता कौन और बड़ा उत्पत्ति का स्थान क्या है। अगले मंत्र में पूर्वोक्ति प्रश्नों के उत्तर दिए हैं।

सूर्य्यऽएकाकी चरति चन्द्रमा जायतेपुनः।
अग्नेभेर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत्॥

भावार्थ- सूर्य अकेला अपनी ही परिधि में घूमता है। चन्द्रादि लोक उसी सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। अग्नि ही शीत का नाशक है। सब चीजों के बोने का बड़ा क्षेत्र भूमि ही है।

परमात्मा प्रकाशस्वरूप है, उसी के प्रकाश से सूर्य भी प्रकाशित है। सूर्य अपने एक निश्चित पथ पर नियम पूर्वक अकेला घूमता है और अपने प्रकाश से संसार को प्रकाशित करता है और ऊर्जा प्रदान करता है। इसी प्रकार मनुष्य इस संसार में अकेला आता हैं। यहां वह अपना कर्म अकेला ही करता है। वेद ने जीवन बिताने के नियम बना रखे हैं। वेद के नियमों के अनुसार कर्म करने से वह कर्म होता है। कर्ता एक याज्ञिक होता है। याज्ञिक इस निश्चित पथ पर अकेला ही चलता है। वेद ज्ञान से याज्ञिक प्रकाशित होता है और नियमानुसार प्रसाद के रूप में अपने से निकट लोगों को प्रकाशित करता है।

मंत्र का दूसरा प्रश्न है कि कौन बार-बार उत्पन्न होता है। इसके उत्तर में बताया है कि चन्द्रादि लोक सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। कृष्ण पक्ष के पहले दिन से चन्द्रमा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश घटना प्रारम्भ हो जाता है। अमावस्या के दिन चन्द्रमा पूर्ण रूप से ढक जाता है और दिखाई नहीं देता, शुक्ल पक्ष प्रारम्भ होते ही चन्द्रमा का थोड़ा मार्ग दिखाई देने लगता है। पूर्णिमा के दिन पूरा चन्द्रमा प्रकाशित रहता है। चन्द्रमा जड़ पदार्थ है। परमात्मा ने उसे ऐसा ही बनाया है इसलिए वह प्राकृतिक नियम के अनुसार पूर्ण रूप से निकलता है और फिर पूर्ण समाप्त हो जाता है। याज्ञिक अपने या कर्म से उज्ज्वल प्रारब्ध के साथ मृत्यु प्राप्त करता है और फिर किसी श्रीमान् के यहां जन्म लेता है। अच्छे संस्कार के कारण वह मनुष्य अपने दूसरे जन्म में भी वेदानुकूल तप कर्म करता है। सांसारिक जीवन में दु:ख और सुख दोनों आते रहते है। दुख के समय मनुष्य का एक प्रकार से कृष्ण पक्ष चलता है। काम में बाधाएं आती हैं। हानि भी उठानी पड़ती है। मनुष्य तो अपना यज्ञ कर्म सदा करता ही रहता है। अच्छे अवसर पर याज्ञिक का ज्ञान और बढ़ेगा। मनुष्य इस प्रकार आवागमन के चक्कर में पड़ा रहता है जब तक उसको मोक्ष न प्राप्त हो जाय।

मंत्र का तीसरा प्रश्न इस प्रकार है- शीत की निवृत्तिकर्ता कौन हैं। उत्तर में बताया गया है कि अग्नि शीत का नाशक है। शीत और इसकी निवृत्तिकर्ता अग्नि का व्यापक अर्थ समझना चाहिए। 'शीत' निष्क्रियता का द्योतक है जैसे किसी प्रकार का आन्दोलन अगर कमजोर पड़ रहा है तब कहा जाता है कि अमुक आन्दोलन ठण्डा पड़ गया। किसी क्रियाशील मनुष्य में शिथिलता रहती है। परमात्मा स्वेच्छा तप करता है, तप से ऊर्जा उत्पन्न होती है और सृष्टि का निर्माण प्रारम्भ होता है। संसार में अपने गृहस्थ जीवन को अनेक बाधायें आती रहती हैं और उसके कर्म में ठन्डापन अर्थात् शिथिलता आने लगती है परन्तु याज्ञिक अपने तप से सदा लीन रहता है और पूर्ण आनन्द प्राप्ति के लिए अपने हृदय में इच्छाशक्ति की अग्नि प्रज्वलित रखता है।

चौथा प्रश्न है कि उत्पत्ति का बड़ा स्थान क्या है? उत्तर में बताया गया है कि सब बीजों के बोने का बड़ा क्षेत्र ही है। परमात्मा ने प्राणियों के लिए यह पृथ्वी बनाई। सभी प्राणी इसी के भूमि पर अपना कर्म-फल भोगते हैं। मनुष्यों की यही कर्म भूमि है। कहा जाता है कि यह भूमि सोना उगलती है यदि उस प्रकार का बीज बोया जाय अर्थात् उस प्रकार का कर्म किया जाय। मनुष्य यहीं अपना कर्म-फल भी भोगते हैं और प्रारब्ध भी बनाते है। मनुष्य के जीवन का लक्ष्य के प्राप्ति के लिए उसे बार-बार यहीं जन्म लेना पड़ता है और इसी भूमि पर अपने यज्ञ-कर्मों से इस लक्ष्य की प्राप्ति करता है। यज्ञ कर्म की कोई सीमा नहीं है और इस कर्म को करने के लिए यह भूमि ही एक विशाल क्षेत्र है।

यजुर्वेद मंत्र 23.47 और 23.48 पर कुछ विचार

किꣳ स्वित्सूर्यसमं ज्योतिः किꣳ समुद्रसमं सरः।

किꣳ स्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते।। यजु. 23.47

भावार्थ-

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य के समान स्वप्रकाश स्वरूप से बडा ब्रह्म है। समुद्र के समान ताल अन्तरिक्ष तथा सूर्यमण्डल है। पृथ्वी से बड़ा इन्द्र तथा सूर्य हैं। वाणी का मान या परिमाण नहीं है।

चार प्रश्न और इनके उत्तर दिये हैं। मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित ये उत्तर क्या सन्देश देना चाहते हैं उन पर विचार किया जायेगा।

पहला प्रश्न है कि सूर्य के समान तेजस्वी कौन है। उत्तर में स्वप्रकाश स्वरूप ब्रह्म को बताया गया है। ब्रह्म तो कई सूर्यो के एक साथ प्रकाश से भी अधिक प्रकाश स्वरूप है। यहां इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि मनुष्य योनि में क्या कोई याज्ञिक इतना ज्ञान प्राप्त कर सकता है कि वह ब्रह्म से निकटता का अनुभव करने लगे। ऐसा ज्ञानी मनुष्य सूर्य के समान प्रकाश स्वरूप है। ऐसा मनुष्य अपने कई जन्मों के तप का, संस्कारों का, इन्द्रिय, निग्रह का, दीर्घोद्योग तथा ध्यान और उपासना के प्रारब्ध की उपलब्धि एकत्रित करता है। तब साधक ज्ञान की परम सीमा तक पहुँचने लगता है। तब वह ब्रह्म में निमग्न हो जाता हैऔर ब्रह्म का अनुभव होने लगता है। एक ऐसी तुरीय अवस्था आ जाती है कि ज्ञाता और ज्ञेय की अलग-अलग समझने की उसकी बुद्धि का लोप हो जाता है। तब वह ज्ञानी मनुष्य सर्वथा ब्रह्म में रम जाता है और इस स्थिति में वह ''अहं ब्रह्म'' में ही ब्रह्म हूँ समझने लगता है। ऐसे मनुष्य सूर्य के समान प्रकाश स्वरूप होते है। वास्तव में मनुष्य योनि में यही जीवन लक्ष्य है। वेद के इस प्रश्न का इसी जीवन लक्ष्य को बताने का ध्येय है।

इस मंत्र के दूसरे प्रश्न के उत्तर में जीवन में क्या सन्देश मिलता है उस पर विचार किया जायेगा। प्रश्न है कि समुद्र के समान जलाधार कौन है और उत्तर है कि समुद्र के समान ताल अन्तरिक्ष है। समुद्र और अन्तरिक्ष के गुणों पर विचार करने की आवश्यकता है। समुद्र एक प्रकार का नगर है जिसमें अनेकों द्वार है जैसे नदियां जो अनेकों प्रकार की वस्तुयें लाकर समुद्र में छोड़ देती हैं। समुद्र में बहुत सी बहुमूल्य वस्तुयें पड़ी हैं जिनमें से कुछ समुद्र लहरों से पृथ्वी पर आती है और गोताखोर भी गोता लगाकर इन वस्तुओ को बाहर निकालते है और उनके गुणों पर अनुसंधान करते हैं। समुद्र में बहुत सी बहुमूल्य वस्तुयें पड़ी है जिनमें से कुछ समुद्र लहरों से पृथ्वी पर आती है और गोताखोर भी गोता लगाकर इन वस्तुओं को बाहर निकालते है और उनके गुणों पर अनुसंधान करते हैं। समुद्र के समान हमारा शरीर ग्यारह द्वारों वाला एक नगर है। उपनिषद् में इस शरीर को 'पुरम् एकादश द्वारम्' कहा गया है। जो वस्तुएं अन्तरिक्ष या सूर्यमण्डल में है वह सब किसी रूप में इस शरीर में भी है। सूर्य, चन्द्र, वायु, आकाश इत्यादि अन्तरिक्ष की वस्तुएं किसी रूप में शरीर रूपी नगर में भी है। आंख, नाक, कान, मुँह इत्यादि शरीर के द्वार है। आंख से संसार के सभी दृश्य दिखाई देते हैं नाक से शरीर में वायु प्रवेश करती है। कान से वेद वाणी और अन्य ज्ञान की बातें सुनी जाती है और मुँह से सुन्दर विचारों को दूसरे तक पहुंचाया जाता है। इस प्रकार अनेकों हलचल और उत्पात समुद्र और शरीर दोनों में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरा प्रश्न है कि पृथ्वी से बड़ा कौन है, उत्तर में बताया गया है कि पृथ्वी से बड़ा सूर्य है। आज के विज्ञान के युग में कहा जाता है कि पृथ्वी बहुत छोटी हो गई है। इसका तात्पर्य समझ लेने से ही पता चल जायेगा की पृथ्वी और इसका पूरा प्रभाव क्षेत्र सब मिलाकर पूरा देश पृथ्वी से बड़ा हो जायेगा. सूर्य तो पृथ्वी से बड़ा है ही। पृथ्वी के चारो ओर इसका गुरूत्वाकर्षण क्षेत्र है। इस क्षेत्र में बहुत से विद्वित चुम्बकीय तरंगे है जिसके द्वारा मनुष्य पूरे संसार का समाचार घर बैठे पाता रहता है। इसी क्षेत्र में प्रभावशाली मिसाइल्स् उड़ाये जा रहे है।

इसी क्षेत्र से जहाज द्वारा उड़ता हुआ व्यक्ति पृथ्वी के किसी कोने में तुरन्त पहुँचता है। अब तो पृथ्वी के क्षेत्र को पार करता हुआ मनुष्य चांद तक पहुंच चुका है और अन्य नक्षत्रों में जाने की तैयारी में है। इसी कारण कहा जाता है कि अब पृथ्वी बहुत छोटी हो गई है। पृथ्वी से बड़ा कौन है? वेद में ऐसा प्रश्न पूछ कर यह संकेत दे दिया है कि इस पृथ्वी के आगे भी कोई विशाल क्षेत्र है उसकी खोज करो और उसे जानो। पृथ्वी के चारों ओर का क्षेत्र है जिस पर वैज्ञानिक अब भी अनुसंधान करते जा रहे हैं।

इस मंत्र के चौथे प्रश्न में पूछा गया है कि किस में (मात्रा) तौल है पर परिमाण नहीं है। उत्तर में बताया गया है कि वाणी तो एक सांकेतिक नाम है। ऐसी बहुत सी वस्तुएं हैं जो अपने में बहुत शक्तिशाली है पर उनका किसी तुला से परिमाण नहीं निकाला जा सकता जैसे 'इच्छा', 'बुद्धि' 'साकारात्मक सोच' मन इत्यादि जिसको लोगों को जानना चाहिए और उसका सदुपयोग करना चाहिए। यजुर्वेद मंत्र 23.53 और 23.54 पर कुछ विचार-

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किꣳ स्विदासीद् बृहद्वयः।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत् पिशँगिला।। 23.53

भावार्थ- इस जगत् में कौन पूर्व अनादि समय से संचित होने वाली है। बड़ा उत्पन्न स्वरूप क्या है। कौन पिलपीली चिकनी है। कौन अवयवों को भीतर करने वाली है। ये चार प्रश्न इस मंत्र में पूछे गये हैं। ऊपर पूछे गये चार प्रश्नों का समाधान अगले मंत्र, यजु० 23.54 में दिया गया है।

द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्वऽऽआसीद् वृहद्वयः।
अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रीरासीत्पिशँगिला।। 23.54

भावार्थ- अतिसूक्ष्म बिजली पहला संचय है। महत्त्व स्वरूप द्वितीय बड़ा उत्पत्ति स्वरूप है। प्रकृति पिलपीली चिकनी सब का मूल कारण परिणाम से रहित है। रात्रि के समान वर्तमान प्रलय सब स्थूल जगत् का विनाशरूप है।

वास्तव में यजुर्वेद का मंत्र 23.54 में पूछे गये चार प्रश्न सृष्टि के रचना के बारे में हैं और मंत्र 23.54 अपने उत्तर में सृष्टि रचना का रूप रेखा बताता है। प्रलय रात्रि में पूरी सृष्टि अव्यक्त रूप में विलीन रहती है। परमात्मा अव्यक्त प्रकृति को अपने सामर्थ्य से भिन्न भिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप देता हुआ स्थूल रूप सृष्टि बनाता है फिर यह स्थूल जगत् अपना सभी चक्र पूरा करने हुए अन्त में प्रलय रात्रि में विनाश रूप लेता है अर्थात् सूक्ष्म रूप में मूल कारण बनकर वर्तमान रहता है।

पहले प्रश्न के उत्तर में बताया गया है कि इस जगत् में पूर्व अनादि समय से संचित होने वाली वस्तु बिजली अर्थात् ऊर्जा है। दूसरे प्रश्न के उत्तर में बताया गया है कि बृहत् उत्पन्न स्वरूप महत्तत्व रूप है। ऋग्वेद म०10 सूक्त 190 मंत्र में दिया है:-

अभीद्धात तपसः अध्यजायत।

ततो रात्र्यऽजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥

सृष्टिकर्ता के अनन्त ज्ञानमय सामर्थ्य और तप्तप्राण से अनन्त ऊर्जा प्रविष्ट होती है जो सदा संचित होने वाली वस्तु है। तदनन्तर मूल अव्यक्त प्रकृति महत्तत्त्व स्वरूप लेती है अर्थात् अव्यक्त से व्यक्त की ओर प्रवृत्ति होती है।

प्रकृति महत् से अहंकार रूप लेती है फिर इस से द्वित्व उत्पन्न होता है जिसे 'रयि' तथा 'प्राण' कहते हैं। रयि ऋणात्मक शक्ति है और प्राण धनात्मक शक्ति है। तत्पश्चात् प्रकृति विकृत रूप लेने लगती है और सत्व, रज तथा तमोगुण युक्त होने लगती है। प्रकृति सूक्ष्म रूप से स्थूल रूप लेती है। इस प्रकार सृष्टि रचना होती है। प्रकृति जिसे पिलपिली चिकनी कहा गया है सृष्टि रचना का मूल कारण है पर प्रकृति का कोई कारण नहीं है, वह 'स्वयंप्रभू' है। तीसरे प्रश्न का यही उत्तर है। अब यह भी स्पष्ट है कि प्रकृति का विकृत रूप ही यह स्थूल जगत् है। परमात्मा द्वारा सृष्टि रचना का अपना महत्व है। इस जगत् में प्राणी अपना कर्मफल भोगते है। मनुष्य कर्मफल भोगने के साथ अपना प्रारब्ध भी बनाते हैं। मनुष्य योनि और यह जगत मोक्ष के साधन हैं। नियमानुसार प्रलय रात्रि का समय आता है और उसमें स्थूल जगत् अपने विनाश रूप में आ जाता है।

सृष्टि रचना फिर प्रलय का क्रम चलता रहता है। इस क्रम का सैद्धांतिक वर्णन यजुर्वेद के दोनों मंत्रों ने प्रश्न और उत्तर द्वारा प्रतिपादित किया है। वेद में दिया गया यह सिद्धांत आज के वैज्ञानिक सिद्धांत के अनुसार है। वैज्ञानिक सिद्धान्त भी यह बताता है कि सृष्टि रचना Big Bang अर्थात् महाविस्फोट से प्रारम्भ हुआ। महाविस्फोट के ठीक पहले पूरी प्रकृति बहुत ही छोटे आयतन में सिमट जाती है जिसमें असीम ऊर्जा थी और महाविस्फोट का कारण बनी। महाविस्फोट से असीम अग्नितत्व उत्पन्न हुआ जिसका तापमान के कम होने पर प्रकृति में द्वित्व पैदा हुआ अर्थात् प्रोटान और इलेक्ट्रान बने फिर नानत्व हुआ अर्थात् न्यूट्रान परमाणु अणु बने। अब प्रकृति स्थूल रूप लेती है अर्थात् सृष्टि रचना होती है। विज्ञान का Black Hole ब्लैक होल सिद्धान्त प्रलय रात्रि के समान है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक समय सारे तारों का प्रकाश समाप्त हो जायेगा। अति छोटे हो जायेंगे, उनका गुरुत्वाकर्षण बल तीव्र हो जायेगा और वे अन्य ग्रहों तथा उपग्रहों को अपने में आकृष्ट कर लेंगे। इस प्रकार एक ब्लैक होल बन जाता हैं। एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय सभी सूर्य चांद का भी प्रकाश समाप्त हो जायेगा और वे ब्लैक होल में चले जायेंगे। यही प्रलय रात्रि है और सब अवयवों को निगल जाती है। यजुर्वेद मंत्र 23.55 और 23.56 पर कुछ विचार

काऽईमरे पिशङ्गिला का ई कुरु पिशङ्गिला।
कऽईमास्कन्दमर्षति कऽई पन्थां वि सर्पति॥ २३.५५॥

भावार्थ- किस से रूप का आवरण होता है? किस से खेती आदि का विनाश होता है? कौन भागता है? कौन मार्ग में पसरता है? मंत्र 23.56 में इन चार प्रश्नों के उत्तर दिये हैं।

अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिला।
शशऽआस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति॥ २३.५६

भावार्थ- जन्मरहित प्रकृति विश्व के रूप को प्रलय समय में निगलने वाली है। ही से किये हुए खेती आदि अवयवों को नाश करती है। खरहा के तुल्य, वेगयुक्त वायु अच्छी प्रकार कूद के चलने वाली है, मेघ मार्ग में विविध प्रकार से जाता है।

प्रकृति सृष्टि रचना का उत्पादन कारण है और स्वयं जन्मरहित है। प्रलय काल में सृष्टि नहीं रहती परन्तु कारण रूप प्रकृति में विलीन रहती है। अर्थात् यह प्रकृति विश्व को निगल जाती है। वैसे भी संसार में ऐसी आपदायें आती ही रहती हैं जिस से संसार का एक विशाल भूभाग नष्ट हो जाता है और ऐसा कहा जाता है कि यहां प्रलय आ गया। ब्रह्माण्ड में तारे नष्ट होते रहते हैं। पृथ्वी पर प्राकृतिक आपदाएं आती रहती हैं जैसे मेघ कहीं वर्षा करती है कहीं नहीं करते। जहां वर्षा नहीं करते वहां खेती नष्ट हो जाती है। वायु भी कभी-कभी तूफान के रूप में आती है जिससे समुद्र में और पृथ्वी पर जान माल का नुकसान होता है। यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी है कि हवा, पानी से बचकर रहना चाहिए चाहे वह हवा में विमान की उड़ान हो या समुद्र में जहाज की यात्रा हो। अब कई प्रकार के वैज्ञानिक उपकरण भी बन गये हैं और बनते जा रहे हैं जो प्राकृतिक आपदाओं से सावधान करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रौतयज्ञों के अनुष्ठान में अपेक्षित विधान

डॉ० मीनाक्षी उपाध्याय (तिवारी)
हैदराबाद

श्रौत यज्ञों के अन्तर्गत हविर्यज्ञ और सोमयागों की गणना होती है। हविर्यज्ञ के अन्तर्गत अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमासेष्टि, चातुर्मास्य, आग्रयणेष्टि और सौत्रामणी ये सात यज्ञ आते हैं, जबकि सोमयागों के अन्तर्गत अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र और अप्तोर्याम आदि सोमयाग आते हैं। इन श्रौतयागों का अनुष्ठान करने के लिए वैदिक वाङ्मय में कुछ विधान विहित हैं, जिनका ज्ञान प्रत्येक यज्ञानुष्ठान कर्त्ता को होना आवश्यक है। ऋग्वेद के शांखायन श्रौतसूत्र और कृष्ण यजुर्वेद के सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र में यह विधान है कि देवकर्म के अनुष्ठान में यज्ञोपवीत धारण करना अपरिहार्य है। जबकि पितृकर्मों के अनुष्ठान में प्राचीनापवीत धारण किया जाता है।[1]

यजमान जिस कार्य में संलग्न हो, उसे पूरा करने के बाद ही उठे, ऐसा सत्याषाढ श्रौत सूत्र में कहा गया है।[2]

1. शांखायन श्रौत सूत्र में कहा गया है कि देवताओं के लिए पूर्व दिशा का तथा पितरों के लिये किए जाने वाले कर्मों में दक्षिण दिशा का विधान है।3
2. जब होता या उसका सहायक ऋग्वेद के मन्त्रों का उच्चारण करे, तब उसे बैठे हुए ही बोलना चाहिए।
3. शांखायन श्रौतसूत्र में कहा गया है कि तीन या तीन से अधिक मंत्रों के होने पर प्रथम और अन्तिम मन्त्र को तीन बार पढ़ना चाहिए।[4]
4. यदि किसी मन्त्र के अन्त में 'ओ' वर्ण हो और उसके बाद 'म्' वर्ण हो, तो ओंकार को त्रिमात्रप्लुत हो जाएगा।
5. यदि किसी मन्त्र के तीन बार उच्चारण करने पर उसके अन्तिम स्वर के स्थान पर प्लुत ओंकार और तुरन्त बाद 'म्' वर्ण आये तो वह प्रणव कहा जाता है। उदाहरण- प्रचोदयात् के स्थान पर 'प्रचोदयोम्'
6. शांखायन श्रौतसूत्र में कहा गया है कि यदि प्रणव को एक साथ मिला कर पूरी ऋचा या चौथाई ऋचा ही पढ़ी जाए, तो उसके बाद ऋचा पहली ऋचा के सम्बन्ध में पढ़ी जानी चाहिए। इस विधि को सन्तत कहते हैं।[5]
7. ऋग्वेद की ऋचाएँ उच्च स्वर से पढ़ी जानी चाहिए।
8. सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र में कहा गया है कि यजुर्वेद के मन्त्र उपांशु स्वर से पढ़े जाने चाहिए।[6]
9. सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र में यह भी वर्णित है कि मन्त्र उच्चारण के बाद कार्य करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए।[7]

10. होता ऋग्वेद के मन्त्रों का उच्च स्वर से, अध्वर्यु यजुर्वेद के मन्त्रों का उपांशु स्वर से उच्चारण करे तथा उद्गाता सामवेद के मन्त्रों का उच्च स्वर से उच्चारण करे।
11. प्रणव का उच्चारण पुरोऽनुवाक्या की अपेक्षा उच्चस्वर से किया जाता है।
12. वषट् का उच्चारण याज्या की अपेक्षा उच्च-स्वर में करना चाहिए या फिर याज्या के समान करना चाहिए।
13. प्रणव में 'ये यजामहे' मन्त्र; वषट्, सम्प्रैष और प्रैष मन्त्रों का उच्चारण उपांशुहविर्यज्ञों में उच्च स्वर से करना चाहिए।
14. जिस देवता के प्रति हवि दी जाती है, उस देवता का नाम उपांशु स्वर से ग्रहण किया जाता है।[8]
15. 'भूः' और 'भुवः' महाव्याहृतियों का उच्चारण याज्या से पूर्व करना चाहिए और 'स्वः' महाव्याहृति का उच्चारण याज्या के अन्त में करना चाहिए।
16. 'भूः' और 'भुवः' महाव्याहृतियों का उच्चारण 'ये यजामहे' वौषट्', 'ओजः सहः' और सहओजः इन चारों से पहले करना चाहिए।
17. अनुयाजों में 'ये यजामहे' मन्त्र नहीं पाया जाता तथा अनुवषट्कारों में भी यह नहीं प्राप्त होता।[9]
18. 'वैदिक साहित्य में दर्शपूर्णमासेष्टि- नामक ग्रन्थ में डॉ० वेदप्रकाश उपाध्याय के द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि याज्या में वषट्कार संयुक्त कर दिया जाता है, चाहे इसके अंतिम मन्त्र का अन्तिम वर्ण दीर्घ करें अथवा नहीं, परन्तु उपांशुयागों में इसे प्लुत नहीं किया जाता।[10]
19. देवताओं के आवाहन के समय 'आवह' के 'आ' को प्लुत हो जाता है।
20. 'ये यजामहे' मन्त्र का आदि स्वर प्लुत कर देना चाहिए।
21. वैदिक यज्ञों में चार मात्राओं का प्लुतीकरण होता है।[11]
22. शांखायन श्रौतसूत्र में कहा गया है कि संध्यक्षरों का तालु प्रयोग करने पर लौकिक प्लुति करने पर आ३इ हो जाता है तथा ओष्ठ्यस्थान में लौकिक प्लुति करने पर आ३इ हो जाता है।[12]
23. रिफित विसर्ग का रेफ हो जाता है। अरिफित विसर्ग लुप्त हो जाता है।[13]
24. शांखायन श्रौतसूत्र में कहा गया है कि मकार का अनुस्वार कर दिया जाता है।[14] वर्ग का प्रथम अक्षर अपने तृतीय अक्षर में परिणत हो जाता है।
25. बृहत्, ह्रस्व और रथन्तर सामों में वषट्कार का उच्चारण प्रारंभ में दीर्घ और समाप्ति में ह्रस्व से करना चाहिए।
26. जब जुहोति का प्रयोग किया जाता है, तब पिघले हुए घी को अग्नि में डाला जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला द्रव्य जानना चाहिए तथा हवन की प्रज्वलित लकड़ियों में डालते समय 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करना चाहिए।[15]

27. पृथक्- 2 मन्त्र पृथक्-2 कर्मों के सूचक होते हैं, क्योंकि एक मन्त्र एक ही कर्म का द्योतक हैं।[16]

28. मन्त्रों के अन्त में इति शब्द का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि यह मन्त्र की सीमा निश्चित करता है।[17]

29. मन्त्र की समाप्ति कर्म के आरम्भ का सूचक है। किसी कर्म को करने से पूर्व उस कर्म से सम्बन्धित मन्त्र बोलना चाहिए।[18]

30. होता अथवा उसका सहायक याज्या और अनुवाक्या मन्त्रों को प्रैष प्राप्त होने पर ही पढ़ता है।

31. याज्ञिक के आसन ग्रहण करने के विषय में काणे का अभिमत है कि अन्य आदेश की प्राप्ति तक याज्ञिक उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठा रहे,[19] किन्तु आश्वलायन श्रौतसूत्र में इससे विपरीत विचार मिलते हैं कि जब तक याज्ञिक को प्रैष मन्त्रों से प्रेरित न किया जाए, जब तक वह पूर्व की ओर मुख करके बैठे।

32. यज्ञिय उपकरणों को पूर्व की ओर रखना चाहिए।

33. निवीत या प्राचीनावीत धारण करने से पूर्व यज्ञोपवीत को उसी अवस्था में धारण करना चाहिए, जिस अवस्था में पहले पहना गया है।

34. 'ददाति' पद का प्रयोग किये जाने पर यजमान ही दानकर्त्ता होता है।

35. आश्वलायन श्रौतसूत्र में विधान है कि प्रायश्चित्त प्रकरण में 'जुहोति' और 'जपति' के कर्त्ता के रूप में बह्मा अभिहित है।[20]

36. जप, अनुमंत्रण, आप्यायन और उपस्थान के मन्त्र मन्दस्वर से पढ़े जाने चाहिए।[21]

37. यदि किसी मन्त्र का केवल एक ही पाद, जो मन्त्र का प्रारम्भ हो, व्यक्त किया गया हो, तो उससे सम्पूर्ण मन्त्र का ग्रहण होता है।[22]

38. सामान्य विधि से विशेष विधि अधिक शक्तिशाली है।[23]

39. होता द्वारा कृत्यों में ऋग्वेद के मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है। अध्वर्यु यजुर्वेद के मन्त्रों का पाठ करता है। जिन कृत्यों में सामवेद के मन्त्रों का प्रयोग होता है, उनमें उद्गाता ऋत्विज् होता है। ब्रह्मा की उपस्थिति सभी वेद-मन्त्रों के प्रयोग के लिए आवश्यक है।[24]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रौतग्रन्थों में विहित ये विधान श्रौत यज्ञों के अनुष्ठान में अपेक्षित है।

सन्दर्भ

1. यज्ञोपवीतीदेवकर्माणि करोचि प्राचीनापवीती पित्र्याणि करोति।
   (1) शां श्रौ. सू. 1.1.6.
   (2) सत्या. श्रौ. सू. 1.1, पृ० 51
2. सत्या. श्रौ. सू. 1.11, पृ० 50
3. प्राङ्न्यायानि देवकर्माणि।
   दक्षिणान्यायानि पित्र्याणि। शां श्रौ.सू. 1,1,13-14
4. शां. श्रौ.सू. 1.1.18
5. शां श्रौ. सू. 1,119
6. उपाशुं यजुर्वेदेन क्रियते।' सत्या श्रौ. सू. 1.1., पृ. 36
7. मन्त्रान्तेन कर्म सन्निपातयेत् वही. 1.1., पृ० 40
8. शां. श्रौ. सू. 1.1, 32-37
9. अनुयाजेषु तु ये यजामहो नास्ति,
   शां. श्रौ. सू. 1.1, पृ०40
10. वै.सा. द.
    डॉ० वेदप्रकाश उपाध्याय, पृ०48
11. चतुर्मात्रा याज्ञिकी शां. श्रौ. सू. 1.2.3
12. सन्ध्यक्षराणाम् तालुस्थाने, आ३इकारीभवतः ओष्ठ्यस्थान आ३उकारी भवतः। वही 1.2.4-5
13. विसर्जनीयो नत्यक्षरोपधो रिफ्यते। लुप्यते रेफो। आ.श्रौ. सू. 1.5.10.12
14. अनुस्वारं मकारः शां. श्रौ. सू. 1.2.11
15. शां. श्रौ. सू.- 1.218-23
16. एकमंत्राणि कर्माणि- सत्या.श्रौ. सू. 1.1, पृ० 42
17. इतिकरणश्च मन्त्रान्ते- शां.श्रौ. सू. 1.1., पृ. 48
18. मन्त्रान्तेन कर्म सन्निपातयेत्।
    सत्या.श्रौ. सू. 1,1 पृ० 40
19. Unlese other wise expressly stated the sacrificer should always face the north, should sit down crosslegged.
20. 'जुहोति-जपतीति प्रायश्चिते ब्रह्माणम्।'
    आश्व.श्रौ. सू. 1.1.16
21. जपानुमन्त्रणाप्यायनोपस्थानान्युपांशु।
22. ऋचं पादग्रहणे आश्व. श्रौ.सू. 1.1.17
23. प्रसङ्गादपवादो बलीयान्। आश्व.श्रौ.सू. 1.1.22
24. यदृचैव होत्रं क्रियते, यजुषाध्वर्यव साम्नोद्गीथं व्यारब्धा
    त्रयी विद्या भवत्यथ केन ब्रह्मत्वं क्रियत इति त्रयया विद्यया। ऐ.ब्रा. 5.5.8

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय नृत्य परम्परा : एक दृष्टि

डॉ० अशोक कुमार शर्मा
एसिसटैन्ट प्रोफेसर,
संगीत एवं नृत्य विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

ऐसा अनुमान है मानव भाषा प्रयोग से पहले संकेतों की सहायता से अपने मनोभावों का प्रकटीकरण करता रहा होगा। यही संकेत विकसित होकर नृत्य मुद्राओं में परिवर्तित हो गए। मानसिक विकास के साथ ही मानव द्वारा मुद्राओं का प्रयोग लय ताल में करने से भाव का निर्माण हुआ होगा जो कला का प्राण है। संगीत कला, काव्य कला, चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला का ही अंग है। कलाएँ अपनी शक्ति से हृदय में निहित भावों को साकार रूप देकर समाज में प्रवाहित करती है तथा अपने लक्ष्यों को सम्पूर्णता प्रदान करती है। प्राचीन साहित्य में नृत्य को ईश्वर प्राप्ति का प्रबलतम साधन माना गया है।

योनृत्यति प्रसन्नात्मा भावैरत्यंतभक्ति।
सर्निर्दहति पापानि जन्मांतर शतैरपि।।

अर्थात् जो प्रसन्नचित होकर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक भावों सहित नृत्य करते हैं, वे जन्मजन्मांतरों के पापों से मुक्त हो जाते हैं।

देवाराधनं कूर्यास्तु नृत्येन धर्मवित्।
सः सर्व कामानाप्नोति मोक्षोपायं च विदन्ति।।[1]

पौराणिक ग्रन्थों में देवी-देवताओं के स्वयं नृत्य निपुण होने के उल्लेख नृत्य कला के आध्यात्मिक आधार को पुष्ट करते हैं।

सृष्टि की रचना, उसकी पालना तथा विनाश में भी नृत्य की गति निहित है। भगवान् शिव का नृत्य इसका प्रमाण है। नृत्य विजय के उल्लास और पराजय के दुःख दोनों को प्रकट करने की सामर्थ्य रखता है। कालियामर्दन के पश्चात् श्रीकृष्ण का नृत्य विजय के उत्साह को प्रकट करता है। एवं कृष्ण का ग्वालिनों के साथ मिलकर किया नृत्य मानवीय आत्मा का दर्पण है।[2]

भगवान् शिव को 'नटराज' कहा जाता है जिसका अर्थ है- नर्तकों का स्वामी या अभिनेताओं का राजा। जिनकी आंगिक गति संसार है जिनकी वाणी समस्त भाषाओं का निष्कर्ष है, चन्द्र और तारागण जिनके आभूषण है। मैं ऐसे सात्विक रूप वाले शिव को नमस्कार करता हूँ। इन पंक्तियों में संसार में नृत्य की घनिष्टता एवं संसार में उसका महत्व स्पष्ट हो जाता है।

साहित्य में शिव की तुलना अभिनेता से की गई है, जो भाव, भंगिमाओं, मुद्राओं एवं ध्वनि से परिपूर्ण है। जो अखिल ब्रह्माण्ड को साथ लेकर चलते हैं और जिनका नृत्य समस्त

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि की अभिव्यक्ति है। भगवान् शिव का नृत्य पांच क्रियाओं का संचार करता है। 1. सृष्टि- रचना करना 2. स्थिति- पालन पोषण 3. त्रिभाव- भ्रम या मोह 4. संहार- विनाश 5. अनुग्रह- मोक्ष या मानसिक सौन्दर्य।[3]

शिव के नृत्य का मुख्य उद्देश्य संसार की क्रियाओं का प्रदर्शन है। नृत्य की संवाद शक्ति के सन्दर्भ में यह तथ्य ग्रहण करने योग्य है जिसमें शिव-नृत्य की तुलना सृष्टि के आरम्भिक कार्य से लेकर अंतिम कार्य तक से की है। सृष्टि रचना का कार्य कम्पन्न से आरम्भ होता है। संरक्षण आशा रूपी हाथ से प्रदर्शित होता है। अग्नि से विनाश की क्रिया बढ़ती है, पांव के आगे बढ़ाना पाप से मुक्ति अर्थात् मुक्ति को दर्शाता है।[4] 'ताण्डव' भगवान् शिव का प्रसिद्ध नृत्य है इसमें समस्त संसार ही उनका नृत्य स्थल होता है। नृत्य में संवाद शक्ति का आधार इसमें प्रयुक्त होने वाले लययुक्त अंग संचालन, मुद्रा, भावभंगिमाएं होते हैं। संवाद की इस क्रिया में सबसे पहले नृत्य की उत्पत्ति को जानना होगा।

'नृत्य' शब्द 'नृत' धातु से बना है जिसका अर्थ है गात्र विक्षेप।[5] पतंजलि ने 'नृ' धातु से 'नृत्य' शब्द की उत्पति मानी है और 'नृत' का अर्थ शरीर के विभिन्न अवयवों को हिलाने डुलाने की क्रिया कहा है। संस्कृत में रूप बताते समय 'नृ' में 'अर्' धातु की संधि हो जाने से 'नाट्य' शब्द की रचना होती है।[6] अभिनय दर्पण में कहा है:- ''नाट्यं तन्नाटकं चैव पूज्य पूर्वकथायुम्'' नाट्य वह कला है जो उत्तम तथा सुन्दर, पूर्व कथाओं पर आधारित हो। दूसरे शब्दों में किसी अर्थ को अभिनय द्वारा प्रकट करके जो रस उत्पन्न किया जाता है उसे 'नाट्य' कहा जाता है।[7] एक अन्य परिभाषा के अनुसार ''नृत्य एवं नाट्य दोनों ही एक दूसरे के पूरक है। 'ताल' और 'लय' के साथ हाथ-पांवों के संचालन को नृत की संज्ञा दी जाती है।[8] 'नाट्यशास्त्र' में नृत व नृत्य को इस श्लोक द्वारा इंगित किया गया है-

विनोदकरणं चैव नृत्येतत् प्रकीर्तितम्।
अंतश्चैव प्रतिक्षेयाः मूतसङ्घैः प्रकीर्तिताः।।
गीतप्रयोगमाश्रित्य नृतमेतत् पुनृत्यताम्।
प्रायेण ताण्डवविविधिर्देवस्तुत्याश्रयो भवेत्।।

(नाट्यशास्त्र, अ.४ श्लोक २६३, पृ. ४८)

'नृत्य' कला अति प्राचीन कला है। इसका इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव जाति का एवं इस तथ्य में कोई सन्देह नहीं मानव के आदिम रूप से लेकर वर्तमान समय तक नृत्य किसी न किसी रूप में मानव जीवन में सम्मिलित है। जहां जीवन की उमंग है, वहीं नृत्य है। अतः हम कह सकते हैं मानव जाति के साथ-साथ नृत्य कला का भी विकास हुआ। नृत्य की उत्पति का इतिहास पौराणिक ग्रन्थों में निहित है। पुराणों के अनुसार नाट्य को पांचवा वेद माना है तथा इसके रचयिता स्वयं ब्रह्मा जी ने ऋग्वेद से 'शब्द', सामवेद से 'संगीत', यजुर्वेद से 'मुद्रा' और अथर्ववेद से 'रस' ग्रहण कर एक पंचम वेद 'नाट्य वेद' की प्रेरणा 'भरतमुनि'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को दी।[9] गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों का अन्तर्भाव नाट्य में होता है और सभी का प्रयोजन मानव चित्त-वृत्तियों को आनन्द की ओर ले जाना है। नाट्यशास्त्र में महर्षि भरत ने लिखा है-

''सर्वोपदेश जननं नाट्यं लोके भविष्यति।
दुखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।।[10]

अर्थात् नाट्य सबको उपदेश देता है और इसके द्वारा शोक, श्रम से उत्पन्न कलान्ति व दु:ख दूर होते हैं तथा तपस्वियों को भी शान्ति मिलती है। नाट्य में गीत वाद्य व नृत्य को समन्वित मानते हुए नृत्य के दो मूल प्रकार ताण्डव व लास्य कहे गए हैं।

ताण्डव नृत्य :-

जिस नृत्य में वीर रस का प्रदर्शन अधिक किया जाए अर्थात् जिसमें उछल कूद अधिक हो उसे 'ताण्डव' कहते हैं। यह नृत्य वीरत्व, क्रोध रौद्र रस आदि की भावनाओं को प्रदर्शित करने के लिए उपयुक्त होता है। इसीलिए इसे पुरुषोचित नृत्य माना गया है।

लास्य नृत्य :-

जिस नृत्य के आधार में श्रृंगार रस हो अर्थात् कोमलता अधिक हो उसे लास्य कहते है। यह नृत्य प्रेम, करुणा, दया आदि की भावनाओं को प्रदर्शित करने के लिए अधिक उपयुक्त रहता है। ताण्डव के सात उपभेद- संहार, त्रिपुर, कालिका, सन्धया, गौरी, उमा और आनन्द है। इसी प्रकार लास्य के विषम, विकट और लघु ये तीन उपभेद माने गए हैं।[11]

सामान्यत: नृत्य के चार वर्ग माने जा सकते हैं, जो निम्नवत् हैं:-

1. **पौराणिक अथवा प्राचीन धार्मिक नृत्य:-**

इसके अन्तर्गत प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों के कथानकों पर आधारित नृत्य, प्राचीन शिलालेखों, मूर्तियों एव चित्रों में अंकित नृत्य, प्राचीन ताण्डव नृत्य, लास्य, ब्राह्मण नृत्य, बौद्ध नृत्य, शास्त्रोक्त नृत्य तथा नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि के 'भरत नृत्य' आदि की गणना की जाती है।

2. **साहित्यिक अथवा काव्य नृत्य:-**

इस वर्ग में भारतीय साहित्य के अनुसार स्थाई भावों, अनुभावों, व्यभिचारी अथवा संचारी भावों से रसों की उत्पति वाले नृत्यों की गणना की जाती है। कथकों के सांकेतिक भाव भी इसी के अन्तर्गत आते हैं।

3. **संस्कृत नृत्य:-**

साहित्यिक पद्य के आधार पर की गई नृत्य रचना को 'संस्कृत नृत्य' कहा जाता है इस प्रकार नृत्यों का प्रचलन प्राचीन काल में था और आज भी यह पुनर्जीवन की ओर अग्रसर है। कत्थक नृत्य की रचना 'संस्कृत नृत्य' के आधार पर ही मानी गई है।

4. **देशी अथवा क्षेत्रीय नृत्य:-**

इस वर्ग में विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित, नृत्यों की गणना की जाती है जैसे मणिपुरी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथकली, टैगोर नृत्य, गरबा नृत्य, देवदासी, बंगाली, पंजाबी, हरियाणवी, राजस्थानी नृत्य आदि, यूरोपियन, जावा, बर्मा तथा अन्य देशों के नृत्य तथा सभी लोकनृत्य इसी श्रेणी में आते हैं।

भारत में नृत्य परमरा वैदिक काल के पहले से ही पाई जाती है। मोहनजोदड़ों की खुदाई से मिली दो नर्तकियों की कांसे की और एक नर्तक की पत्थर की भग्न मूर्तियां इस बात का प्रमाण हैं। नर्तकों की मूर्तियां चूड़ियों आदि आभूषणों से युक्त हैं। नर्तक की भग्न मूर्ति के विषय में विशेषज्ञों का अनुमान है कि यह नटराज शिव का रूप है। इन सबसे यह सिद्ध होता है कि वैदिक काल के पूर्व काल में नृत्य संगीत उन्नत अवस्था में था।[12] वैदिक युग में नृत्य आध्यात्मिक भावनाओं की एवं जनता के मनोरंजन का माध्यम था। नृत्य का प्रयोग पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों द्वारा किया जाता था। तात्कालिक यज्ञों के आयोजनों पर स्त्रियां मस्तक पर कलश रखकर वृताकार नृत्य करती थी।

वैदिक काल के समान ही रामायण काल में भी नृत्य का विकास हुआ। नृत्य के माध्यम से देवी देवताओं की स्तुति की जाती थी। भक्ति, पूजन, वन्दना और अर्चन भिन्न-भिन्न नृत्य शैलियां प्रचलित थी। लोग अपने आराध्य के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने हेतु नृत्य-प्रयोग करते थे। इस काल में उत्सवों, पर्वो व आनन्द के अवसरों पर नृत्य किया जाता था। अयोध्या आदि सुसंस्कृत नगरों में नृत्य गान आदि का प्रचार था। यहां तक लंकानगरी में भी नृत्यादि का प्रचलन था। रावण सीता जी को मनाने के लिए नृत्यगान आदि का प्रलोभन देता है।[13]

'महार्हाणि च पानानि शयनान्यासनानि च।
गीतं नृत्यं च वाद्यं च लभ मां प्राप्य मैथिली।।''

(बार.रा.सुन्दरकाण्ड सर्ग श्लोक 20)

इसके अतिरिक्त जनसाधारण में भी हृदयगत हर्ष आदि भावों के प्रकटीकरण हेतु नृत्य प्रयोग मिलता है यथा-

''गायन्तो नृत्यमानाश्च वादयन्त्स्तु राघव।
आमोदं परमं जग्मुर्वराभरणभूषिता।।''

(बाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 32, 13)

महाभारत काल में नृत्य कला के क्षेत्र में सकारात्मक परिवर्तन हुए। इस युग के प्रवर्तक थे, नटवर श्रीकृष्ण। उन्हीं से 'नटवरी नृत्य' की नवीन शैली का जन्म हुआ। नवीन रसों का नृत्य में प्रादुर्भाव हुआ और नृत्य कला समाज का एक अंग बनकर जनमानस के हृदय में पनपी। इस युग में गोप, ग्वाल, राधिका एवं उसकी सखियां नृत्यकला के प्रवर्तक हुए। इसी काल में रास लीला, बसन्त लीला, होली नृत्य आदि का प्रचलन हुआ। पर्वों, त्योहारों एवं मांगलिक अवसरों पर नृत्य किया जाता था। इस काल में संगीत के अन्य अंगों के समान ही नृत्य का प्रचलन था। 'ततो वादित्रनृताभ्याम्' (आदि पर्व 200, 99) 'वादित्राणित्रगीतानाम्- (शान्ति पर्व, 297, 28) 'नृत्यवादित्रगीतानी' आश्वमेधिक पर्व 40,13) इत्यादि वाक्य इस बात के प्रमाण है कि इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल में लोग गीत, वाद्य के साथ नृत्य से परिचित थे और इसके साथ ही समाज में संगीता का स्थान आदरणीय था। संगीत निपुणता सुशिक्षित और सुसंस्कृत व्यक्ति के लक्षण समझे जाते थे। इनके सन्दर्भ में विराट पर्व में उल्लेख मिलता है-

'गायामि नृत्याम्य च वादयामि।
भद्रोऽस्मि नृत्ये कुशलोअस्मि गीते।।
त्वमुन्तरायै प्रदिशस्च यां स्वयं।
भवामि देव्या नरदेवं नर्तकः।।१४

विराटपर्व अ.11, श्लोक. 8 (पूना संस्करण, नीलकंठी टीका सहित)

यह अर्जुन के संगीत निपुण होने का प्रमाण है। वैदिक काल के समान इस समय भी यज्ञ नृत्याचरण होता था। सभा पर्व में वर्णन है।

'तेष ते न्यवसन्राजन्ब्रह्माणाः नृत्यसत्कृताः।
कथयन्तः कथा बहीः पश्चन्तो नटनर्तकान्।।[15]

(सभा पर्व 33, 49, नी.टी. संस्करण)

इन सब उद्धरणों से सिद्ध होता है कि सम्य समाज में नृत्य जीवन का अभिन्न अंग था। इसके पश्चात् बौद्ध एवं जैन काल में भी नृत्य कला समाज के बीच रहकर अपनी भूमिका का निर्वाह करती रहीं। नृत्य कला विभिन्न कालों, समाज व समाज की गतिविधियों को साथ लेकर अथवा उनके साथ मिलकर लोगों से जुड़ी रही तथा उनको अपने प्रभाव में लेकर अपने साथ जोड़े रखा। मुगलकाल में नृत्यकला की अभिव्यक्ति के विषय में अन्तर आया। इससे पूर्व जिस नृत्य के माध्यम से मुख्यतः भगवान् के प्रति श्रद्धा प्रकट की जाती थी और पारब्रह्म शक्ति को पूजा जाता था, मुगलकाल में ईश्वरोपासना को छोड़कर नरोपासना को माध्यम बनाया। संगीतज्ञ नर्तक, नर्तकियां पराधीन होकर मनोरंजन और विलासिता की अभिव्यक्ति की ओर उन्मुख हुए। इस प्रकार नृत्य की वैषयिक गुणवता में कमी आई।

''अंग्रेजी शासन काल में नृत्य प्रेमियों ने नृत्य कला को समाज में फिर से उचित ढंग से प्रचारित करना आरम्भ किया और नृत्यकला को ईश्वर उपासना के माध्याम के रूप में पुनरुत्थान होने लगा। लोगों ने इसकी अभिव्यक्ति की शक्ति की पहचाना और दैनिक जीवन के क्रिया कलापों में नृत्यों को सम्मिलित किया।''[16] नृत्य साकार और निराकार दोनों की अभिव्यक्ति है। यह अनंतकाल की अभिव्यक्ति है जो नरनारी की आत्मा हैं। यह पुरुष और प्रकृति दोनों है और गति की उत्पति का व्यक्त रूप है। यह सच्ची सृजनात्मक शक्ति है, जो हमें युगों से प्राप्त होती रही है। ध्वनि और लय का संयुक्त रूप जो अभिव्यक्ति के काव्य की रचना करता है, नृत्य कहलाता है।[17] भारतीय परम्परानुसार नृत्य कला लौकिक एवं अलौकिक दोनों लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन मानी गई। सांसारिक उद्देश्यों को नृत्य कला साकार रूप देती ही है। परमपिता परमात्मा अर्थात् अपने आराध्य देव की प्राप्ति के लिए की गई नृत्य साधना परम लक्ष्य की प्राप्ति में सक्षम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ

1. 'नृतसूत्रम्-विष्णुधर्मोत्तपुराण, द्र.ल.ना.गर्ग. भारत के लोकनृत्य, आवरण पृष्ठ हाथरस, (उ.प्र.)
2. आनन्द कुमार स्वामी 'द मिरर ऑफ गैंगचर पृ. 13
3. वाचस्पति गैरोला, भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण (मूल और हिन्दी अनुवाद), अध्याय- 7 पृ.190-191
4. आनन्द कुमार स्वामी, डांस ऑफ शिव, पृ. 70-71
5. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, प्राचीन भारत में संगीत, नृत्य और नाट्य, संगीत, जुलाई 1969 पृ. 6
6. तृप्त कपूर, उत्तरी भारत में संगीत शिक्षा, पृ. 102
7. महालक्ष्मी, भारतीय नृत्य शिक्षा, पृ. 43
8. वही, पृ.14
9. अनवर आगेवान् भारतीय नृत्य कला, संगीत निबन्धावली, ल.ना.गर्ग. पृ. 123
10. भरत का नाट्य शास्त्र, अ. द्वितीय, श्लोक- 111, पृ. 9
11. महालक्ष्मी, भारतीय नृत्य शिक्षा, पृ. 45-46
12. ठाकुर जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ. 13
13. बाल्मीकि रामायण, सुन्दर काण्ड, 11वां सर्ग, श्लोक-20
14. पं. ठाकुर जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ. 187
15. पं. ठाकुर जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, वही. पृ.190
16. पं. जगदीश नारायण पाठक पं. जगदीश नारायण पाठक, प्रश्न पंजिका, पृ. 11-17
17. कलाकुंज, (मासिक) नवम्बर 1991, पु. 2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाण्डुलिपि स्वरूप एवं महत्त्व

डॉ० अर्चना त्रिपाठी
कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, देहरादून

पाण्डुलिपि

'स्वरूप एवं महत्त्व' शोध-प्रपत्र के प्रस्तुत शीर्षक पर विस्तार से विचार करने के पूर्व संक्षेप में इस तथ्य से अभिज्ञ होना अति आवश्यक है कि-पाण्डुलिपि से क्या तात्पर्य है तथा किन सीमाओं के अन्तर्गत उसके स्वरूप का निर्धारण किया जा सकता है? हममें से प्रत्येक व्यक्ति अभिज्ञ है इस तथ्य से कि- मनुष्य ने सहस्राब्दियों पूर्व लेखन-कला का आविष्कार किया था। उस अविष्कार से लेकर अब तक अर्थात् सभ्यता के क्रमिक विकास के इन सोपानों पर आरूढ़ होते हुये मानव के द्वारा लिपिबद्ध सामग्रियाँ अनेक रूपों में मिलती हैं। पाण्डुलिपि से तात्पर्य उस लेखन क्रिया से है जिसमें लिखने का कार्य ईंट पर, पत्थरों पर, शिलालेखों के रूप में या टंकण द्वारा की जाती थी, मोम-पाटी पर या चमड़े पर भी लिखा गया। ताड़पत्र पर नुकीली लेखनी से गोदन द्वारा, ताम्रपत्र तथा अन्य धातु-पत्रों पर टंकण द्वारा या ढ़ालकर छापों द्वारा अपने विचारों को अंकित किया जाता था। जैसा कि स्पष्ट है कि लेखनक्रिया के ये सभी प्रकार विविध रूपों में लिपिबद्ध होने के अनुसार भी लिखने के भाव से ही सम्बन्धित हैं, अतः व्यापक अर्थ में ये विभिन्न प्रकार पाण्डुलिपि विज्ञान के अन्तर्गत आते हैं क्योंकि इस विज्ञान का सम्बन्ध मनुष्य द्वारा लिपिबद्ध की गयी सामग्री से है। संभवतः 'लेखन के भाव' को प्राथमिकता प्रदान करते हुये ही इतिहासकारों ने भी अपने अनुंसधानों में इनको अभिलेख, शिलालेख, ताम्रपत्र-लेख आदि नाम दिये हैं। यह भी एक तथ्य प्राप्त होता है कि इन इतिहासकारों ने लेखों में अभिव्यक्त तथ्यों की प्राथमिकता की दृष्टि से इन लेखों को धार्मिक लेख आदि के द्वारा संबोधित किया है। जैसे कि वासुदेव उपाध्याय ने किन्हीं लेखों को धार्मिक लेख, प्रशंसामय-अभिलेख, स्मारक-लेख, आज्ञा-पत्र एवं दानपत्र के रूपों में प्रस्तुत किया गया बताया है। मुद्राओं पर भी अभिलेख अंकित माने जाते हैं।

इन अभिलेखों से आगे पुस्तक लेखन आता है। अंग्रेजी में इन्हें 'मैन्युस्क्रिप्ट' कहते हैं। 'मैन्युस्क्रिप्ट' शब्द को हस्लेख नाम भी दिया जाता है और पाण्डुलिपि भी।

पं० उदशंकर शास्त्री ने पाण्डुलिपि के परिप्रेक्ष्य में यह लिखा है कि "आजकल हस्तलिखित ग्रन्थों को पाण्डुलिपि कहा जाने लगा है किन्तु प्राचीन काल में पाण्डुलिपि उस हस्तलेख को कहा जाता था जिसके प्रारूप (मसविदा) को पहले लकड़ी के पट्टे या जमीन पर खड़िया अर्थात् पाण्डु से लिखा जाता था फिर उसे शुद्ध करने के लिये अन्यत्र उतार लिया जाता था और उसी को पक्का कर दिया जाता था। हिन्दी में यह अर्थ विपर्यय अंग्रेजी के कारण हुआ है। अंग्रेजी में किसी भी प्रकार के हस्तलेख को 'मैन्युस्क्रिप्ट' कहते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार हस्तलेख को यदि हम पाण्डुलिपि से सम्बद्ध करते हैं तो पाण्डुलिपि अपने व्यापक स्वरूप के साथ हमारे समक्ष उपस्थित होती है क्योंकि उसमें शिलालेख तथा ताम्रपत्र आदि का समावेश माना जाता है। किन्तु अपने विधि प्रकारों के साथ निश्चय ही इसका क्रमिक विकास हुआ होगा जैसा कि- ''विद्वानों का यह अभिमत है कि खोज में जो सामग्री अब तक मिली उसके आधार पर यह माना जा सकता है कि पहले लेखन कार्य आदि मानवों की चित्रकला की भाँति गुफाओं की भित्तियों पर या शिलाश्रयों की भित्तियों पर हुआ होगा। तब पत्थरों या ढ़ोकों का उपयोग किया गया होगा। तदनन्तर मिट्टी की ईंटो पर, ईंटों के बाद पेपीरस का आविष्कार हुआ होगा। पेपीरस के खरड़ों पर ग्रन्थ रहता था। इसी के साथ-साथ लिखने, मिटाने और फिर लिखने की सुविधा की दृष्टि से लकड़ी की पाटी या पट्टी काम में ली जाने लगी। पश्चिम में मोम की पाटी का उपयोग मिलता है। आगे के विकास में यह मोग की पाटी अवरण पटल का रूप लेने लगी। 'पेपीरस' के रौल्स या खरौते बलयिताएँ या कुण्डलियाँ बहुत लम्बे होते थे। ये असुविधाजनक लगे तो इन्हें दुहरा तीहरा कर पृष्ठ या पन्ने का रूप दिया गया और मोमपाटी के आवरण पटल इन पृष्ठों के रक्षक बन गये। ये ऊपर और नीचे के दोनों पटल एक ओर तार से गूंथे जाते थे। बाद में लिप्यासन के लिये पेपीरस के स्थान पर पार्चमेण्ट काम में आने लगा तो पार्चमेण्ट या चर्म पत्र ग्रन्थ के पृष्ठों की भाँति और मोमपाटी या लकड़ी की पट्टियाँ आवरण पटल की भाँति उपयोग में आने लगे। इनको कोडैक्स कहा जाता है। आधुनिक जिल्द बन्द ग्रन्थों के पूर्वज ये 'कोडैक्स' ही हैं। ऐसा माना जाता है कि- पार्चमेण्ट का उपयोग लिप्यासन के लिए प्रथम ई. शती से होने लगा था। इनको कोडैक्सी रूप में प्रचार ईसा की चौथी शताब्दी से विशेष रूप से हुआ। ये सभी पाण्डुलिपि के भेद हैं, जिन्हें विकास क्रम से बताया गया है''।[2]

उपर्युक्त क्रमिक विकास के द्वारा मनुष्य की आदिम अवस्था की संघर्ष कथा का बाह्य साक्ष्य मिलता है। इन बाह्यसाक्ष्यों के सहारे हम इन प्राचीन समस्ताब्दियों का साक्षात्कार कर सकते हैं जिनके विषय में अभी तक अनेकशः तथ्य रहस्य बने हुये हें। 'लेखन' क्रिया का जन्म ही अपनी अभिव्यक्ति को भावी युगों तक सुरक्षित रखने के लिये होता है। अतः लेखन के परिणामस्वरूप प्राप्त ग्रन्थ या पाण्डुलिपि के विचारों को सुरक्षित रखकर भविष्य के कर्णधारों तक पहुँचाना वर्तमान पीढ़ी का कर्त्तव्य बनता है। महत्त्व की दृष्टि से ये सभी पाण्डुलिपियाँ हमारी वह धरोहर हैं जो काल की सीमाओं को लाँघकर सेतु या उपादान का कार्य करते हुए- हमें हमारे पूर्वजों से सम्बद्ध क्रिया कलाप, संस्कृति और जीवन के क्रमिक विकास के इतिहास का परिज्ञान कराती हैं। उदाहरण के लिए ''अल्टा-मीरा''[3] की गुफाओं में दूर भीतर और अन्धेरे में कुछ चित्र बने मिले। जिनके द्वारा अनेकशः तथ्यों पर विचार कर सकते हैं तथा तत्कालीन परिस्थितियों का आकलन भी कर सकते हैं जैसे कि चिन्तन का परिणाम इस प्रकार हो सकता है। मनुष्य ने अभी भवन या झोंपड़ी बनाना नहीं सीखा, अतः वह प्राकृतिक पहाड़ियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या गुफाओं में शरण लेता था। गुफाओं में भीतर की ओर उसने एक अन्धेरा स्थान चुना (यानि उसने निभृत स्थान एकान्त स्थान चुना) क्योंकि वह चाहता था कि वहाँ वह जो कुछ करे वह सबकी दृष्टि में न आवे। उसका वह स्थान ऐसा है, कि जहाँ उसके अन्य साथी भी नहीं आ सकते, इस प्रकार यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वह यहाँ कोई गुह्य कृत्य करना चाहता था। उसने इस गुफा के अन्धेरे में चित्र बनाये, अन्धेरे की दृष्टि से विचार करने पर तार्किक दृष्टि से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निश्चय ही तत्कालीन मानव इस समय तक कृत्रिम प्रकाश करना जान गया था। चूँकि प्रागैतिहासिक काल के लोग टोने में विश्वास करते थे- यदि इस दृष्टि से विचार करते हैं तो पाते हैं कि गुह्य स्थान पर मनुष्य ने जो चित्र बनाये वे टोना आदि के उद्देश्य से भी हो सकते हैं। जैसा कि ''द मीनिंग ऑफ आर्ट''[14] में भी इसी टोना सम्बन्ध तथ्य को स्वीकार किया गया है। ज्ञातव्य है कि तत्कालीन समय में टोना धर्म का ही रूप था जिसका प्रयोग मनुष्य अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिये करता था। इस प्रकार ये प्राचीन चित्र एक शोधकर्ता अथवा पुरातत्त्वविद् की काल्पनिक दृष्टि के लिए वह महत्त्वपूर्ण तथ्य अथवा भाषा है जिनसे वह आदिम युग के मानव जीवन से सम्बन्ध क्रिया-कलापों को पाठकों के संज्ञान के लिये प्रस्तुत कर सकते हैं।

उपर्युक्त दृष्टिकोण से विचार करने पर हम पाते हैं कि पाण्डुलिपि से सम्बद्ध कई पक्ष हमारे समक्ष आते हैं जिनसे हम विविध अवधारणाओं से अवगत हो सकते हैं तथा ज्ञान ले सकते हैं। एक पक्ष ग्रन्थ के लेखन और रचना विषयक हो सकता है जिससे हम ग्रन्थ लेखन की कला से अभिज्ञ हो सकते हैं। लेखन एक जटिल व्यापार है, इसमें एक तत्त्व तो लेखक है, जिसके अन्तर्गत उसका व्यक्तित्व, उसका मनोविज्ञान और अभिव्यक्ति के लिए उसका उत्साह, अभिप्राय और प्रयत्न शरीर, हृदय और मस्तिष्क का परिज्ञान होता है तो दूसरी ओर उसके अन्य तत्व लेखनी, लिखने के लिये पट या कागज, स्याही आदि हैं। विचारणीय है कि पाण्डुलिपि के लेखन पक्ष में विद्यमान इन समस्त तथ्यों का अपना इतिहास है जिन्हें जानना हमारे ज्ञान का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। दूसरा पक्ष पाण्डुलिपि की लिपि परिज्ञान के विषय से महत्त्वपूर्ण है। लिपिक अपना अलग महत्त्व रखता है। लेखक जब ग्रन्थ रचना करता है लेखक के अपने हाथ से लिखे इन ग्रन्थों का ऐतिहासिक महत्त्व है साथ ही यह लेखन कार्य लिपि-विज्ञान की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पाण्डुलिपियों की उपादेयता का तीसरा पक्ष भाषा-विषयक हो सकता है जो भाषा-विज्ञान और व्याकरण के क्षेत्र की वस्तु है। चौथा पक्ष उस ग्रन्थ में की गई चर्चा हो सकती है, वह काव्य ग्रन्थ भी हो सकता है जैसे कि प्रस्तरशिलाओं पर उत्कीर्ण 'हनुमन्नाटक' जिसको महानाटक भी कहते हैं, इसे विद्वानों ने ऐतिहासिक काव्य की ही संज्ञा दी है।

इस प्रकार पाण्डुलिपियों से सम्बद्ध उपर्युक्त सभी पक्ष साहित्यालोचन या विविध ज्ञान-विज्ञान और काव्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। अन्त में 'प्रयोजनमनुदिद्श्य मन्दोऽपि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न प्रवर्तते' इस न्याय से मैं यही कहना चाहती हूँ कि अपने इस अति संक्षिप्त निबन्ध के द्वारा आप सभी की दृष्टि पाण्डुलिपियों की खोज, परिवर्धन और संरक्षण की ओर आकृष्ट करने का मैंने एक छोटा सा प्रयास किया है क्योंकि अध्ययनोपरान्त पाण्डुलिपियों के स्वरूप और महत्त्व से अवगत होने के पश्चात् मुझे ऐसा लगने लगा है कि यह कार्य केवल हम सुधीजनों से सम्बद्ध है अतः इसका सम्यक् निर्वहन करना हमारे प्रमुख कर्त्तव्यों में से एक होना चाहिए।

सन्दर्भ

1. भारतीय साहित्य, जनवरी, 1959, पृ०- 120
2. डॉ० सत्येन्द्र- 'पाण्डुलिपि विज्ञान' पृ० 3, प्रकाशन- राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
3. Much Research in this field has been done in recent years.....Spain are the most important. The meaning of Art, p. 53.
4. There is evience to show that painting have been often repainted and that the places where they are found were in some way regarded as sacred by the Bushmen Read Herbert: The Meaning of Art, p. 54,57.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास रचित ग्रन्थों में वर्णित आभूषण

-डॉ. भावना आनन्द

मानव की शृंगार प्रियता ने उसे अनेक प्रकार से शरीर के विविध अंगों को अलंकृत करने की प्रेरणा प्रदान की। प्राचीन काल से ही मनुष्य अनेक प्रकार के आभूषणों द्वारा स्वयं को सज्जित करता रहा है! मनुष्य द्वारा आभूषण धारण करने के प्रमाण हमें प्रागैतिहासिक युग से लेकर प्राचीन वेदों व ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। तब से आज तक आभूषणों का एक दीर्घ कालीन इतिहास रहा है।[1]

आभूषण लोक जीवन का महत्वपूर्ण अंग होते हैं। इनमें समाज की सांस्कृतिक चेतना, लोक मानस का सौन्दर्य बौद्ध तथा वैयक्तिक अभिरुची सन्निहित रहती है। आभूषणों के उपयोग से जहाँ समाज की आर्थिक व सामाजिक स्थिति का पता चलता है, वहीं ये आभूषण बुरे ग्रहों को भी प्रभावहीन करते हैं।[2]

यह निर्विवादरूपेण कहा गया है कि आभूषण धारण करने के प्रमाण हमें रामायण, महाभारत के अतिरिक्त वेदों व विभिन्न ग्रन्थों से प्राप्त होते हैं, किन्तु जहाँ तक कालिदास जैसे महान् नाट्यकार व महाकवि का प्रश्न है, तो इन्होंने अपनी विभिन्न रचनाओं (ग्रन्थों) में मुख्य रूप से आभूषणों को वर्णित किया है, जिसकी तुलना हम आज के समय में चल रहे आभूषणों से कर सकते हैं।

यद्यपि सर्वप्रथम अमरकोष व रघुवंश नामक दो ऐसे महाकाव्य हैं। जिनमें कालिदास ने अनेकों शिरो आभूषणों का वर्णन किया है। रघुवंश नामक महाकाव्य से ज्ञात होता है कि राजा कुश के पुत्र अतिथि के राज्याभिषेक के अवसर पर पुष्प एवं मुक्तामालाओं से गुंथे उनके सिर पर प्रसाधनों ने ऐसी पद्मरागमणि बांधी जिसकी सुन्दर आभा चतुर्दिक विस्तारित हो रही थी।

तेऽस्य मुक्तागुणोन्नद्धं मौलिमन्तर्गतस्त्रजम्।
प्रत्यूपुः पद्मरागेण प्रभामंडलशोभिना।।[3]

ऐसी मणि को स्वर्णनिर्मित पट्टे पर लगाकर पहनते रहे होंगे।[4] इस प्रकार के आभूषण के लिये शिखामणि का प्रयोग भी रघुवंश में हुआ है।[5] विक्रमोर्वशीयम् में भी विक्रमादित्य संगमनीय नामक लाल मणि को 'शिलामणि' के रूप में धारण करने की बात कहते है। चूड़ामणि[6], चूड़ारत्न[7], मौलिमणि[8] का उल्लेख भी कालिदास ने किया है, इसके अतिरिक्त मुकुट, किरीटि एवं मौलि में संलग्न मणियों का भी उल्लेख कालिदास ने किया है।[9] कालिदास ने स्त्रियों के प्रसंग में भी चूड़ामणि का उल्लेख किया है। विक्रमोर्वशीयम् में संगमनीय मणि को चूड़ामणि, मौलिमणि कहा गया है। इस अद्भुत मणि को पार्वती के चरणों की लालिमा से अद्भुत बताया गया है।[10] इसके अतिरिक्त स्त्रियाँ मुक्ताओं व रत्नों की लड़ियों से निर्मित शिरोभूषण धारण करती थी। इसके लिये कालिदास ग्रन्थों में शीर्षजाल, शिखापाश नामों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उल्लेख प्राप्त होता है। मेघदूत में मुक्ताजलग्रथितमलक नामक शिरोभूषण का उल्लेख भी किया गया है।

यः वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना।
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्॥[११]

शिरोभूषण के अतिरिक्त कालिदास ने अपने ग्रन्थों में कर्णाभूषण का भी उल्लेख किया है। स्त्रियों के प्रसंग में 'ताटक चक्र' का उल्लेख कुमारसम्भव में प्राप्त होता है, जिसकी तुलना रथ के पहियों से की गयी है।

रथस्य कर्णावभि तन्मुखस्य ताटङ्कचक्रद्वितयं न्यधात्सः।
जगज्जिगीषुर्विषमेषुरेष ध्रुवं यमारोहति पुष्प चापः॥[१२]

इसका बहुलांकन शिल्पगत साक्ष्यों में प्राप्त होता है। यह आभूषण पुरुष वर्ग भी धारण करता था। 'कर्णपूर' का उल्लेख भी कालिदास ने किया है। किन्तु जहाँ कहीं भी कर्णपूर का वर्णन आया है। उसे अंकुरित बीजों से निर्मित बताया गया है। कालिदास के ग्रन्थों में विविध प्रकार के पुष्पों को कानों में पहनने के उल्लेख बहुलता से प्राप्त होते हैं। निश्चयतः उस युग में पुष्पों का प्रयोग कर्णाभूषण के रूप में होता रहा होगा। कालिदास के ग्रन्थों में पुरुषों का मुख्य कर्णाभूषण 'कुण्डल' के रूप में वर्णित हैं तथा स्त्रियों के कर्णाभरण 'कर्णपूर', 'कुण्डल', 'कर्णिका' ताटक चक्र आदि थे।

शिरोभूषण व कर्णाभूषण के साथ-साथ कालिदास ने अपने ग्रन्थों में ग्रीवा भूषणों का भी विशेष रूप से उल्लेख किया है। कालिदास ने पुरूषों के सन्दर्भ में रत्नानुविद् प्रालम्बहार तथा लम्बाहार का उल्लेख किया है।

रत्नानुविद्धाडगदकोटिलग्नं प्रालम्बम्,
अर्पित लम्बहारः॥[13]

निष्क से निर्मित हार का उल्लेख भी कालिदास ने पुरुषों के सन्दर्भ में किया है।

कण्ठे निष्कमिवार्पितम्॥[14]

कालिदास के ग्रन्थ में उल्लेखित अधिकांश ग्रीवा आभूषण स्त्रियों के सन्दर्भ में ही प्राप्त होते हैं। विक्रमोर्वशीयम् में उर्वशी नामक अप्सरा को शुद्धएकावली वैजयन्तिका पहने हुए दर्शाया गया है।[15] कालिदास ने अपने सभी ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख किया है कि ग्रीष्म ऋतु में स्त्रियों मुक्ताओं से निर्मित अनेक प्रकार के हार धारण करती थी। इन ग्रीवा भूषण को चन्दन व कुडकुम के घोल में भिगोकर पहनने का उल्लेख भी हुआ है।[16] मुक्ताहार, मुक्तावली, मुक्ताचारू भूषण, मुक्ताफलहारबल्ली तथा हारयष्टि, हारशेख आदि स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त ग्रीष्म कालीन ग्रीवा के आभूषणों के नाम ऋतुसंहार एवं रघुवंश, महाकाव्यम् कुमार सम्भव आदि में प्राप्त होते हैं।[17]

ग्रीवा के आभूषणों के अतिरिक्त कालिदास के ग्रन्थों में हस्ताभूषण के विविध नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त होते हैं। उन्होंने वलय[18], तथा कटक[19] का उल्लेख मणि बन्ध के आभूषण के रूप में किया हे, इसे स्त्री व पुरूष दोनों धारण करते थे। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दुष्यन्त द्वारा धारण किये गये कनक वलय, काच्चन वलय, का उल्लेख हुआ है।[20] अभिज्ञानशाकुन्तलम् में ही मृणावल्लय धारण किए शकुन्तला का उल्लेख किया गया है।[21] यह कमलनाम से बर्न कड़े प्रतीत होते हैं। कुमार सम्भव में विवाह के अवसर पर पार्वती को पहनाये गए हस्तसूत्र का उल्लेख प्राप्त होता है।[22] कालिदास के ग्रन्थों में अङ्गद्[23], कैयूर[24] नामक अनुबन्ध का वर्णन स्त्री तथा पुरूष दोनों के प्रसंग में हुआ है।

अंगूठी के लिए कालिदास ने मुद्रा, अंगुलीय, रत्नाङ्गुलीय, अंगुलयिक, मुद्रिका आदि शब्दों का प्रयोग किया है। मालविकाग्निमित्रम् में महारानी द्वारा रत्नाजठित नाग मुद्रा धारण किये जाने का उल्लेख है।[25] इसको सर्पमुद्रित अंगुलीयक भी कहा गया है।[26] अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी नामांकित मुद्रा तथा अंगुलीयक का उल्लेख है। इसे दुष्यन्त ने शकुन्तला को पहचान के लिये प्रदान किया था।[27] रघुवंश महाकाव्यम् में भी पुरुष के प्रसंग में रत्नाङ्गुलीय का उल्लेख हुआ है।[28]

कालिदास रचित ग्रन्थों में जहाँ विविध प्रकार के आभूषणों का उल्लेख हैं, वहीं कटि प्रदेश व पैर के आभूषण का भी उल्लेख उनके ग्रन्थों में सरलता से प्राप्त होता है। कालिदास के ग्रन्थों में भी स्त्रियों के शृंगार के प्रसंग में अनेक बार मेखला, रशना व कांची का वर्णन आता है। कालिदास के ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि मेखला, शिजितमेखला, मणि मेखला, मनिपंड्क्तिपुनरूक्तमेखला, तपनीय मेखला, हेम मेखला, मेखला गुण आदि मेखला के अनेक भेद थे।[29] हेम मेखला व तपनीय मेखला से तात्पर्य स्वर्णनिर्मित मेखलाओं से था। शिज्जितमेखला का तात्पर्य उन मेखला से था जो चलने पर मधुर ध्वनि करती थी। कुमारसम्भव में मेखला मध्यमणि का उल्लेख हुआ है।[30] इनका समीकरण हम शिल्पाक्ति की उन मेखलाओं से कर सकते हैं जिनके सामने की ओर मध्य बृहरत्नयुक्त पदक लगा रहता था। कटि प्रदेश के साथ-साथ कालिदास के ग्रन्थों में चरणालंकार के हेतु किंकिणी, नुपुर, मणिन पर आदि शब्दों का उल्लेख हुआ है।[31] अन्य आभूषणों की तुलना में चरणालंकार का वर्णन कालिदास के ग्रन्थों में कम मात्रा में मिलता है।

उपरोक्त वर्णित तथ्यों के आधार पर हम इतना ही कह सकते हैं, कि कालिदास के ग्रन्थों में वर्णित आभूषण मुख्यत: राजवर्ग से सम्बन्धित थे। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं था कि जनसाधारण इन आभूषणों का प्रयोग ही नहीं करते थे। राजवर्ग के स्त्री व पुरुष बहुमूल्य धातुओं एवं मणियों से युक्त वलय, कटक, अंगुलीयक, कैयूर, अंगद, आदि धारण करते थे तथा जनसाधारण व्यक्ति स्वर्ण, रजत, ताम्र तथा अपेक्षाकृत निम्नकोटि के पत्थरों से निर्मित मणियों से युक्तआभूषण धारण करते रहे होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ

1. प्राचीन भारतीय आभूषण - तिवारी पुष्पा - पृ0- 205
2. कुमाऊँ महोत्सव पत्रिका - पोखरिया देव सिंह - पृ0- 72,
3. कालिदास ग्रन्थावली - रघुवंशम्, सर्ग 17-23 - पृ0 - 181
4. कालिदास ग्रन्थावली - रघुवंशम - सर्ग - 18-44 पृ0- 192।
5. कालिदास ग्रन्थावली - रघुवंशम - सर्ग - 6-33 पृ0 - 59।
6. कालिदास विक्रमोर्वशीयम् अंक - 4 - पृ0- 233 - श्लोक - 67।
7. कालिदास ग्रन्थावली - रघुवंशम - सर्ग - 17-28 - पृ0- 182।
8. रघुवंशम, सर्ग - 10-75- पृ0 - 111
9. कालिदास ग्रन्थावली - विक्रमोर्वशीयम् - अंक -4, श्लोक - 66
10. मेघदूत - पूर्वमेष, श्लो0- 67, पृ0- 355
11. कालिदास ग्रन्थावली - स0प0 सीताराम चतुर्वेदी, काशी 1950, कुमार, सर्ग - 9-23 पृ0-284
12. कालिदास ग्रन्थावली स0 श्री सीताराम चतुर्वेदी, सं0-2007, काशी, रघु0 6-14, पृ0- 56, 6-60, पृ0- 63
13. कालिदास ग्रन्थावली - कुमार0 - 2-49, पृ0- 216,
14. कालिदास ग्रन्थावली - विक्रमोर्वशीयम् - प्र0 अंक - पृ0- 164
15. कालिदास ग्रन्थावली -ऋतु0, 6-7, पृ0 -392,
16. कालिदास ग्रन्थावली - रघु0 6-28, पृ0- 28, 13-48, पृ0- 142, 16-62, पृ0- 175, 16-69, पृ0-176, 19-45, पृ0- 200, कुमा0- 1-42, पृ0- 208, 9-24, पृ0-284, ऋतु-1-6, पृ0- 372, 2-26, पृ0-379
17. कालिदास ग्रन्थावली - रघुवंश-सर्ग-16-73- पृ0-177
18. कालिदास ग्रन्थावली, माल0, द्वि0अ0, पृ0-286
19. कालिदास, अभि0- तृ0अ0 - श्लो0 -11, पृ0-47
20. कालिदास-अभि0-सर्ग- 3-7- पृ0- 44
21. कालिदास-कुमा0-सर्ग- 5-66, पृ0- 244
21. रघु0 - सर्ग - 6-4, पृ0- 56
22. रघु-सर्ग- 6-8, पृ0- 64
23. कालिदास ग्रन्थावली - रघु0 माल0, प्र0 अ0- पृ0 263
24. कालिदास ग्रन्थावली- रघु0 पृ0- 321
25. कालि0- अभि0- पृ0- 97
26. कालि0- रघु0 - 6-8 - पृ0- 57
27. कालि0- रघु0 - 9-32, पृ0-96, कुमा0- 8-14, पृ0-27, ऋतु0- 1-4, पृ0-371
28. कालि0- कुमार - 1-38, पृ0- 2-8
29. कालि0- रघु0 - 8-63, पृ0- 87

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा: एक निरूपण

प्रो० डॉ० वेदप्रकाश उपाध्याय
आचार्य एवं अध्यक्षचर, एमेरिटस फेलो
संस्कृत-विभाग, पंजाव विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

यजुर्वेद में प्रयुक्त मन्त्र यजु: संज्ञक हैं, जो गद्यात्मक होते हैं तथा जिनमें, अक्षरों की संख्या निश्चित नहीं होती। यजुषों का वाक्य किसी की अपेक्षा न ही रखता।[1] यजुर्वेद आध्वर्यववेद नाम से भी प्रसिद्ध है।[2] यजुर्वेद की एक सौ एक शाखाओं का उल्लेख महाभाष्य में प्राप्त होता है।[3] शुक्लयजुर्वेद की पन्द्रह शाखाएँ और कृष्ण यजुर्वेद की छियासी शाखाएँ हैं। कृष्णयजुर्वेद का प्रवचन वैशम्पायन के द्वारा किया गया था। जयादित्य और वामन ने काशिका में वैशम्पायन का अन्य नाम चरक भी बताया है।[4] इस समय कृष्णयजुर्वेद की छियासी शाखाओं में से केवल चार शाखाएँ एवम् उनका साहित्य उपलब्ध होता है। वे चार शाखाएँ हैं-तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ और कपिष्ठल- कठ शाखा।[5]

तैत्तिरीय शाखा की संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवम् उपनिषद् उपलब्ध हैं। तैत्तिरीय संहिता पर सायण से भी पूर्ववर्ती भट्टभास्कर का भाष्य प्राप्त होता है, जो मैसूर संस्कृत ग्रन्थमाला में प्रकाशित है एवं इस संहिता पर सायणभाष्य भी प्राप्त है, जो आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थमाला में प्रकाशित हैं। इस संहिता पर डॉ० कीथ का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में है, जो हार्वर्ड ओरियण्टल सीरीज में प्रकाशित है।

यह संहिता महाराष्ट्र तथा दक्षिण भारत में प्रचलित रही है। आन्ध्र-द्राविड़ में इस संहिता का पूर्ण रूपेण प्रचार रहा है। इस संहिता का महत्त्व एवं वैशिष्ट्य इस बात से भी है, कि वैदिक साहित्य के संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवम् उपनिषद् के अतिरिक्त इसके श्रौत और गृह्यसूत्र भी उपलब्ध हैं। तैत्तिरीयशाखा तित्तिरि द्वारा प्रोक्त है[6], जो वैशम्पायन का प्रशिष्य एवम् यास्क पैङ्ग का शिष्य था। तित्तिरि के दो शिष्य उख और खण्डिक थे, जिनके प्रवचन के अध्येता क्रमश: औखीय और खाण्डिकेय संज्ञा से विभूषित हुए। बौधायन गृह्यसूत्र में ऋषितर्पण के प्रसंग में उख का उल्लेख किया गया है।[7] आनन्द संहिता में औखेयो का उल्लेख प्राप्त होता है।[8] आत्रेय उख के शिष्य थे। आत्रेय शाखा की संहिता का साम्य तैत्तिरीय शाखा की संहिता से है।[9] खाण्डिकीयों के पांच भेद हैं, जो आपस्तम्ब, बौधायन, सत्याषाढ़, भारद्वाज तथा शाट्यायन नाम से प्रसिद्ध हैं। ये भेद चरणव्यूहों के अनुसार हैं। श्री कुन्दन लाल शर्मा के पाठान्तर के आधार पर भारद्वाज तथा शाट्यायन के स्थान पर हिरण्यकेश तथा औखेय को निर्दिष्ट किया गया है। एक अन्य पाठ सत्याषाढ़ तथा बौधायन के स्थान पर हिरण्यकेश तथा कालेता रूप में खाण्डिकीय भेदों को अभिव्यक्त करता है। उपर्युक्त शाखाओं में से आपस्तम्ब, बौधायन, सत्याषाढ अथवा हिरण्यकेश तथा भारद्वाज आदि को सौत्र शाखा के रूप में स्वीकार किया जाता है। इन शाखाओं की संहिता और ब्राह्मण आदि के विषय में कोई साक्ष्य नहीं है। काशिका में शाट्यायन ब्राह्मण का उल्लेख मिलता है।[10] यह ब्राह्मण ग्रन्थ अनुपलब्ध है, किन्तु इसे प्राचीन ग्रन्थों में उद्धृत किया गया है।[11]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जर्मन विद्वान् डॉ० वेबर ने आपस्तम्बीय संहिता और तैत्तिरीय संहिता का पाठ समान माना है और जो पाठ तैत्तिरीय संहिता में है, वही आपस्तम्बीय संहिता में था।[12] आपस्तम्बीय संहिता का अस्तित्व स्वीकार करने में कोई प्रमाण नहीं हैं, क्योंकि यह सौत्र शाखा है, जिसके अन्तर्गत परम्परागत संहिता को स्वीकार करके सूत्र रचे गए। आपस्तम्बीय शाखा खाण्डिकीयों का ही भेद है, अत: खाण्डिकीय संहिता ही परम्परागत संहिता के रूप में स्वीकर्त्तव्य है। श्री कुन्दन लाल शर्मा[13] तथा कीथ महोदय का भी उपर्युक्त अभिमत है।[14]

तैत्तिरीय संहिता का विभाजन काण्डों, प्रपाठकों तथा अनुवाकों में किया गया है। सम्पूर्ण संहिता में सात काण्ड, चवालिस प्रपाठक और छ: सौ एकतिस अनुवाक हैं। सायण ने अपना भाष्य पहले इस संहिता पर लिखा और बाद में अन्य संहिताओं पर। सायण की अपनी शाखा तैत्तिरीय थी, यही कारण है कि उन्होंने ऋग्वेद संहिता से भी पूर्व इस संहिता पर अपना भाष्य लिखा। इस संहिता में प्राप्त मन्त्र अध्वर्यु नामक ऋत्विज् के कर्मो से सम्बन्धित हैं। यह संहिता मन्त्रब्राह्मणात्मक है।

तैत्तिरीयब्राह्मण कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा से सम्बन्धित है। वास्तव में कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित सभी शाखाओं के ब्राह्मणग्रन्थ उन शाखाओं की संहिताओं में उपलब्ध हैं। तैत्तिरीय शाखा का ब्राह्मण ग्रन्थ पृथक् रूप से मिलता है। स्वराङ्कित होने के कारण तैत्तिरीय ब्राह्मण की प्राचीनता स्वत: सिद्ध है। यह ब्राह्मण काण्डों, प्रपाठकों और अनुवाकों में विभाजित है। भट्टभास्कर और सायण के भाष्य तैत्तिरीय ब्राह्मण पर मिलते हैं, जिससे तैत्तिरीय ब्राह्मण क्लिष्ट होने पर भी सुगम हो जाता है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण के प्रथम काण्ड में अग्न्याधान वाजपेय और राजसूय आदि यज्ञ वर्णित हैं। द्वितीय काण्ड में अग्निहोत्र, सौत्रामणि, वैश्यसव और बृहस्पतिसव आदि निरूपित हैं। इस ब्राह्मण ग्रन्थ में यज्ञ की वेदी को ही पृथिवी का परम अन्त और मध्य स्वीकार किया गया है।[14] तृतीय काण्ड में सबसे पहले नक्षत्रेष्टि निरूपित है। इस काण्ड के अन्तिम तीन प्रपाठकों को काठकब्राह्मण के नाम से जाना जाता है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण के इस काण्ड के दस से बारह तक प्रपाठक काठकशाखीय काठकब्राह्मण के अंश है, जिन्हें यहां उद्धृत किया गया है। यह ब्राह्मण नाचिकेत अग्नि से सम्बन्धित है, जिससे अग्निविद्या के माध्यम से मोक्षप्राप्ति की साध्यता स्पष्ट हो जाती है। कठोपनिषद् में उपलब्ध नाचिकेतोपाख्यान इसी आख्यान का विकसित आकार है। इस ब्राह्मण ग्रन्थ में काठकब्राह्मण के जो अंश मिलते हैं, उन्हें काठकब्राह्मण सङ्कलनम् नाम से डॉ० सूर्यकान्त के द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित किया गया है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में वर्णित समाज में स्त्रियाँ आदर की पात्र थीं। स्त्रियों के लिए उपयोगी जिन आभूषणों का वर्णन इस ब्राह्मण ग्रन्थ में मिलता है, उन्हें यज्ञ की दक्षिणा के रूप में ऋत्विजों द्वारा विशेष महत्त्व दिया जाता था।[16] इस ब्राह्मण ग्रन्थ के अनुसार सामवेद सभी वेदों का शीर्षस्थानीय है।

कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के ब्राह्मण का वर्ण्यविषय जहाँ यज्ञ-यज्ञादि है, वहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके आरण्यक का विषय अध्यात्म है। आरण्यक नामकरण अरण्य में पठित होने के कारण है।[17] आरण्यकों का प्रमुख विषय यागों में विद्यमान तथ्यों का आध्यात्मिक विवेचन है। यज्ञादि तो ब्राह्मणग्रन्थों के विषय है, जबकि यज्ञों के अन्तर्गत विहित दार्शनिक चिन्तन आरण्यकों का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। वैदिक संहिताओं में जिस प्राणविद्या का सङ्केत है, उसका प्रस्फुटन आरण्यक ग्रन्थों में है। महाभारत के आदिपर्व में कहा गया है कि जिस प्रकार औषधियों से अमृत निकाला जाता है, उसी प्रकार अमृतरूप आरण्यक को वेदों के सार के रूप में प्राप्त किया गया है।[18] आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थ का वह भाग है, जिसमें प्रतीकोपासना तथा प्राण विद्या निरूपित है। उपरिनिर्दिष्ट तथ्य से सहमति प्रदान करते हुए बलदेव उपाध्याय ने आरण्यक और रहस्यब्राह्मण से सिद्ध होता है।[21] आरण्यक ब्रह्मविद्या के भी प्रतिपादक हैं, जिसे 'रहस्य' नाम से भी जाना जाता है। आरण्यक के अन्तर्गत ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन होने के कारण इसके 'रहस्य' नाम की सार्थकता है।

तैत्तिरीय आरण्यक वास्तविक रूप में रहस्यग्रन्थ है। इस आरण्यक में काल के पारमार्थिक तथा व्यावहारिक उभयविध रूपों का वर्णन है। इसमें काल को उस महानदी के समान बताया गया है, जिसका स्रोत सनातन और क्षयरहित है और अनेक प्रकार की सहायक नदियों के उसमें मिलने से वह सर्वथा परिपुष्ट बनती है और उसका जल नहीं सूखता।[22] इस आरण्यक में पञ्च महायज्ञों का निरूपण तथा अपने वेद के स्वाध्याय का विधान है।[23] तैत्तिरीय आरण्यक के महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में प्राणविद्या स्वीकृत है, जिसकी उपासना के लिए अरण्य का शान्तिपूर्ण वातावरण अतीव उपयोगी है। प्राणविद्या की परम्परा आदिकाल से है, जिसे आरण्यक स्वीकार करते हैं, इस बात की पुष्टि ऋग्वेद के मन्त्रों से भी होती है।[24]

तैत्तिरीय आरण्यक दश परिच्छेदों में विभाजित है। परिच्छेद का नामकरण किया गया है। भद्र, सहवै, चित्ति, युञ्जते, देव वै, परे, शिक्षा, ब्रह्मविद्या, भृगु और नारायणीय नामों से इस आरण्यक के परिच्छेद क्रमशः अभिहित हैं।

तैत्तिरीयशाखा के आरण्यक की भांति इस शाखा का उपनिषद् सामान्यतया तैत्तिरीय उपनिषद् के नाम से अभिहीत है। यह उपनिषद् तैत्तिरीयारण्यक का ही एक भाग है, जो उक्त आरण्यक के सप्तम, अष्टम और नव खण्डों का ही नाम है। इस आरण्यक का सप्तम प्रपाठक संहितोपनिषद् नाम से जाना जाता है। यह संहितोपनिषद् 'शीक्षावल्ली' नाम से भी विख्यात है। इस आरण्यक का अष्टम और नवम प्रपाठक संहितोपनिषद् नाम से जाना जाता है। यह संहितोपनिषद् 'शीक्षावल्ली' नाम से भी प्रसिद्ध है। अष्टम प्रपाठक को भृगुवल्ली कहा जाता है। चित्तशुद्धि और गुरु कृपा प्राप्त करने के लिए शीक्षावल्ली उपयुक्त है, जबकि ब्रह्मविद्या की दृष्टि से वारुणी उपनिषद् अर्थात् ब्रह्मानन्दवल्ली और भृगुवल्ली का उपयोग है। इस उपनिषद् का वैशिष्ट्य है कि इसमें गुरु और शिष्य से सम्बन्धित शिष्टाचार का निरूपण होने के साथ-साथ ब्रह्मविद्या तथा ब्रह्म प्राप्ति के प्रमुख साधनभूत पञ्चकोशविवेक का वरुण और भृगु के संवाद के रूप में निरूपण है।

तैत्तिरीय आरण्यक के दशम प्रपाठक को महानारायणोपनिषद् कहा जाता है। याज्ञिक्युपनिषद्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
और नारायणोपनिषद् भी इसी उपनिषद् के अन्य नाम हैं। इस उपनिषद् पर सायण और भट्टभास्कर के भाष्य हैं। इस उपनिषद् में विशिष्ट रूप से आत्मतत्त्व निरूपित है। सर्वस्वभूत एक ही परमसत्ता का निरूपण इस उपनिषद् में प्राप्त है।[25]

सन्दर्भ

1. तेषां वाक्यं निराकाङ्क्षम्। कात्यायनश्रौतसूत्र 1.3.2.
2. निरूक्त 7-3
3. एकशतमध्वर्युशाखाः- महाभाष्य, पस्पशाह्निक
4. चरक इति वैशम्पायनस्याख्या- काशिका, (पा. 4.3.104)
5. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- बलदेव उपाध्याय पृ० 131
6. महाभाष्य (पा. 4.3.102)
7. बौधायन गृह्यसूत्र 3.9.6
8. आनन्दसंहिता 8.13
9. वैदिक वाङ्मय का विवेचनात्मक बृहद् इतिहास- कुन्दन लाल शर्मा, द्वितीय खण्ड पृ०, 42
10. काशिका (पा. 4.3.105)
11. वेङ्कट (ऋग्वेदसंहिता 1.51.13)
12. Indische studien III, p. 431-
13. वैदिक वाङ्मय का विवेचनात्मक बृहद् इतिहास, पृ. 43
14. Keith : Translation of Taittiriya Samhita, Introduction, P. 30
15. वेदिमाहुः परमन्तं पृथिव्याः। तैत्तिरीयब्राह्मण 2.7.4.10
16. तैत्तिरीय ब्राह्मण 3.10.4
17. अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यकमितीर्यते।
    अरण्ये तदधीयीतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते।।
    -सायणभाष्य (तैत्तिरीयआरण्यक) श्लोक 6
18. आरण्यकं च वेदेभ्यः ओषधिभ्योऽमृतं यथा। महाभारत 1.265
19. वैदिक साहित्य और संस्कृति- बलदेव उपाध्याय, पृ० 232
20. 'ऐतरेयके रहस्यब्राह्मणे' दुर्ग० (निरुक्त 1.4)
21. गोपथब्राह्मण 2.10
22. नदीव प्रभवात् काचिद् अक्षय्यात् स्यन्दते यथा।
    तां नद्योऽभिसमायान्ति सोरुः सती न निवर्तते- तैत्तिरीय आरण्यक 1.2।।
23. तैत्तिरीय आरण्यक 2.10
24. ऋग्वेदसंहिता 1.164.38
25. यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्। वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्ण पुरुषेण सर्वम्।। - महानारायणीयोपनिषद् 10.20

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामराज्य या मार्क्सवाद- एक अन्तःचिन्तन

डॉ० मंजू अवस्थी
रीडर अर्थशास्त्र विभाग
डी०बी०एस० कॉलेज, कानपुर

डॉ० अर्चना शुक्ला
प्रवक्ता अर्थशास्त्र विभाग
डी०बी०एस० कॉलेज, कानपुर

मार्क्सवादी दर्शन में पाश्चात्य दार्शनिक विचारों का विकास हुआ हैं, जिससे यह पाश्चात्य विचारधारा के साथ दर्शन, राजनीति, संस्कृति, शिक्षा और अर्थ-व्यवस्था आदि के क्षेत्रों में विश्व में फैलता चला गया है। मार्क्सवाद से ही समाजवाद और साम्यवाद जैसी विश्वव्यापी विचारधाराओं का रूप सुख-समृद्धि के लिये साम्यवाद या समष्टिवाद को आवश्यक ही नहीं, अपितु अवश्यम्भावी बताया है। वस्तुतः इस वाद में ईश्वर, आत्मा, धर्म, पाप-पुण्य और अध्यात्म आदि आस्तिक विचारों का खण्डन करके शुद्ध भौतिकवाद का समर्थन किया गया है। इसलिये वेद-उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण तथा मनु-याज्ञवल्क्य आदि के धर्मशास्त्रों पर आधारित भारतीय दर्शन का मार्क्सवाद से मेल नहीं खाता। यही कारण है कि मार्क्सवादी विचारधारा विश्व में और कहीं भी भले ही फली-फूली हो, परन्तु भारतवर्ष में नहीं। वर्तमान युग के महान् मनीषी एवं अविस्मरणीय महापुरुष धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज द्वारा मार्क्सवाद के खण्डन में लिखित 'मार्क्सवाद और रामराज्य' में इस वाद की युक्तियुक्त समालोचना कर रामराज्य-जैसी शासन-प्रणाली तथा भारतीय जीवन-दर्शन को ही विश्व के लिये कल्याणकारी बताया गया है। उस विश्वविख्यात ग्रन्थ के आधार पर ही यहाँ इस विषय में विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

कार्लमार्क्स:-

इनका स्थिति-काल सन् 1818 ई० से सन् 1883 ई० तक माना जाता है। इनका 'दास कैपिटल' नामक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। इनका जन्म एक मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था। पहले इन्होंने वकालत पढ़ी, परन्तु वकालत न करके ये पत्रकार बन गये। इसी दौरान मार्क्सने 'हीगेलवाद का अध्ययन किया और अपने से पूर्ववर्ती कई दार्शनिकों के विचारों से प्रभावित होकर नयी ऐतिहासिक विश्लेषण पद्धति को जन्म दिया। कुछ समय पश्चात् हीगेल के मानवतावाद से प्रेरित होकर वे मजदूरों के आन्दोलन से जुड़ गये और शीघ्र ही उनके नेता बन गये। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले लेखों से अपनी जीविका चलाते हुए भी वे कभी अपने ध्येय से विचलित नहीं हुए। अन्ततः उनकी गणना प्लेटो, अरस्तु और हीगेल आदि दार्शनिकों की श्रेणी में होने लगी। मार्क्स के प्रसिद्ध ग्रन्थों के नाम हैं- 'पॉवर्टी ऑफ फिलॉसफी', 'मेनिफेस्टो ऑफ कम्युनिस्ट पार्टी', 'एटटिन्थ ब्रूमेयर ऑफ लुई बोनापार्ट', 'ए कंट्रिब्यूशन टू द क्रिटिक ऑफ पॉलिटिकल इकॉनामी', 'क्लास-स्ट्रगल इन फ्रांस' और 'रिवेल्यूशन एवं काउंटर रिवेल्युश' आदि। मार्क्स को आर्थिक तथा बौद्धिक सहायता देने वाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एंगिल्स नाम धनी व्यक्ति एक मिल का मालिक था। मार्क्स की मृत्यु होने पर उसने ही कम्युनिस्ट आन्दोलन का नेतत्व किया। बाद में लेनिन इस आन्दोलन के नेता बने। सन् 1917 ई० में उनके नेतृत्व में समाजवादी क्रान्ति हुई और जीवनभर वे सोवियत शासन के सूत्रधार बने रहे। मार्क्स के राजनैतिक दर्शन के आधार पर आज तक रूस की शासन-व्यवस्था चल रही है।

मार्क्सवाद का द्वन्द्वात्मक भौतिकवादः-

मार्क्सवाद दार्शन को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (डाइलेक्टिकल मेटिरियलिज्म) या ऐतिहासिक भौतिकवाद (हिस्टॉरिकल मेटिरियलिज्म) भी कहा जाता है। यह दर्शन द्वन्द्वात्मक दृष्टि से प्राकृतिक घटनाओं की जाँच और पहचान करता है तथा भौतिकवादी दृष्टि से प्राकृतिक घटनाओं की व्यवस्था करके सिद्धान्त की विवेचना करता है। लेनिन के पश्चात् रूस की सत्ता सँभालने वाले स्टालिन के अनुसार मार्क्सवाद न तो अन्ध श्रद्धा है और न ही अन्धविश्वास। अतः उसकी व्याख्या समयानुसार परिवर्तित होती रहती है। यही कारण है कि साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रान्तियुग में लेनिन ने मार्क्सवाद की पुनः व्याख्या की थी। अतः लेनिनवाद को प्रधान रूप से सर्वहारा के अधिनायकत्व का दर्शन कहा जाता है। इतिहास और समाज की आर्थिक व्याख्या, मूल्य एवं अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त, वर्ग संघर्ष और सर्वहारा का अधिनायकत्व उसके दर्शन के मुख्य विषय है।

मार्क्सवाद के सिद्धान्तः-

हीगेल के द्वन्द्ववाद, ब्रिटेन के अर्थशास्त्र और फ्रांस के समाजवादी दर्शन के अध्ययन द्वारा मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नाम से जिस नये दर्शन का प्रवर्तन किया, उसके मुख्य सिद्धान्त ये हैं-

1. वर्गों का अस्तित्व उत्पादन-व्यवस्था के अनुकूल होता है। दासता के युग में वर्गों का अस्तित्व और संघर्ष उस युग की उत्पादन के अनुकूल था। इसी प्रकार सामन्तशाही एवं पूँजीवादी युगों में वर्गों का अस्तित्व और संघर्ष इन युगों की उत्पादन-व्यवस्था के अनुकूल था।
2. वर्ग-संघर्ष अनिवार्य रूप से सर्वहारादल के अधिनायकत्व का मार्ग प्रशस्त करता है।
3. विश्व में दो वर्ग हैं शोषित और शोषक। दोनों में संघर्ष प्रक्रिया सतत रूप से चलती है। शोषित वर्ग बहुसंख्यक और शोषक वर्ग अल्पसंख्यक होता है।
4. शोषित वर्ग को शोषक वर्ग के विरुद्ध क्रान्ति करने के लिए सदैव कटिबद्ध रहने की आज सबसे बड़ी आवश्यकता है।
5. सर्वहारा का अधिनायकत्व संक्रमणकालिक होगा।
6. समाज में सर्वहारा अधिनायकत्व हो जाने पर वर्गों का अन्त हो जाएगा और एक वर्गविहीन समाज का उदय होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7. धर्म, ईश्वर, अध्यात्म और अति प्राकृतिक एवं अलौकिक मन्यताओं का जीवन-जगत् में कोई महत्त्व नहीं है। अतः सबका त्याग करके यथार्थ-चिन्तन करने से ही वास्तविक जीवन-दर्शन का जन्म होगा।

रामराज्यः-

रामराज्य भारतीय दशर्ज्ञन का पर्याय है। यह ऐसा सम्पूर्ण जीवन-दर्शन हैं जिसमें धर्म, संस्कृति, लौकिक एवं पारलौकिक सभी विषयों का उचित समावेश है। भारतीय दर्शन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- ये जीवन के चार पुरुषार्थ माने गये हैं। धर्म और मोक्ष पारलौकिक सुख-शान्ति के लिये तथा अर्थ एवं काम लौकिक सुख-शान्ति के लिये है। अतः भारतीय दर्शन एक ऐसा सर्वाङ्गीण दर्शन है, जिसमें भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास पर पूरा ध्यान दिया गया है। रामराज्य केवल एक शासन प्रणाली ही नहीं है, वरन् वह एक ऐसे जीवन-यापन का ढंग है जिसके विषय में गोस्वामी श्री तुलसीदास जी की ये पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं-

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीति। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।
चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरी रहा सपनेहूँ अघ नाहीं।।
राम भगति रत नर अरू नारी। सकल परम गति के अधिकारी।।
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब बिरूज सरीरा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।
सब निर्दभ धर्मरत पुनी। नर अरू नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।
राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं।।

(रा०च०मा० ७/२१/१-८ ; २१)

अर्थात् रामराज्य में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बतायी हुई नीति (मर्यादा) में तत्पर रहकर अपने-अपने (वर्णाश्रम) धर्म का पालन करते हैं। धर्म अपने चारों चरणों (सत्य, शौच, दया और दान) से जगत् में परिपूर्ण हो रहा है, स्वप्न में भी कहीं पाप नहीं है। पुरुष और स्त्री सभी रामभक्ति में लगे हैं, जिससे सभी परम गति (मोक्ष) के अधिकारी हैं। छोटी आयु में किसी की मृत्यु नहीं होती, किसी को कोई पीड़ा नहीं होती। सभी के शरीर सुन्दर एवं रोगरहित हैं। न कोई दरिद्र है, न दुःखी और न कोई दीन है। न कोई अज्ञानी हैं और न कोई शुभ लक्षणों से हीन है। सभी दम्भरहित, धर्मपरायण और पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री और चतुर एवं गुणवान् हैं। सभी गुणों का आदर करने वाले और पण्डित हैं तथा सभी ज्ञानी हैं। सभी दूसरों के किये हुए उपकार को मानने वाले हैं। कपट और चतुराई (धूर्तता) किसी में नहीं हैं। काकभुशुण्डि जी कहते हैं- हे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
पक्षिराज गुरुडजी! सुनिये, श्रीराम के राज्य में जड़-चेतन समस्त जगत् में काल, कर्म स्वभाव और गुणों से उत्पन्न हुए दुःख किसी को भी नहीं होते (अर्थात् सब इन बन्धनों से मुक्त हैं)।

यह है रामराज्य की आदर्श जीवन-पद्धति। इसलिये भारतवर्ष में रामराज्य सभी के लिये कामनीय रहा है। वस्तुतः धर्मविहीन कोई भी व्यवस्था कभी फलदायी नहीं हो सकती। यही कारण है कि धर्मविरुद्ध होने के फलस्वरूप मार्क्सवाद धीरे-धीरे विश्व से लुप्त होता जा रहा है। आज रूस और चीन में भी मार्क्सवाद अपनी अन्तिम साँस गिन रहा है।

रामराज्य के सापेक्ष मार्क्सवाद की विचार शून्यताः

वह विडम्बना ही थी गरीबी की हालत में आर्थिक कष्ट से पीड़ित मार्क्स को धन के अलावा कुछ और नहीं दिखायी पड़ता था। सच है, सावन के अन्धे को हरा-ही-हरा नजर आता है। जिस प्रकार प्यासे को पानी, भूखे को रोटी और गरीब को धन ही नजर आना स्वाभाविक है, उसी प्रकार मार्क्स की अर्थ-चिन्ता स्वाभाविक थी। परन्तु ब्रह्म, धर्म, आत्मा, पाप-पुण्य और नैतिक मूल्यों-जैसी सभी महत्वपूर्ण वस्तुओं को मार्क्स द्वारा अर्थ के सामने नगण्य माना जाना वस्तुतः उसके दर्शन की विचार-शून्यता ही कही जायेगी। धन का जीवन में अवश्य महत्त्व है। इसीलिये भारतीय धर्मशास्त्रों में धन के महत्त्व को स्वीकार करते हुए इसकी चार पुरुषार्थों में गणना की गयी है, परन्तु धर्म नियन्त्रिक धन को ही श्रेष्ठ माना गया है और उससे पूरी होने वाली कामनाएँ ही प्रशंसनीय हैं। तभी व्यक्ति को अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। धार्मिक, आध्यात्मिक और नैतिक विकास तथा इनके अनुकूल सभी नियमों का आधार धन को समझना एवं धन के लिये सनातन सत्य, शाश्वत न्याय, आत्मा-परमात्मा और पाप-पुण्य के विचार का परित्याग कर देना मार्क्सवाद का दिमागी फितूर ही है। न यह व्यक्ति के लिये कल्याणकारी है और न समाज के लिये ही। भारतवर्ष में अनेक ऐसे राजा, महाराजा, धनवान् और महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने परोपकार के लिये धर्म के लिये, अध्यात्मनिष्ठा के लिये और दूसरों का दुःख दूर करने के लिये धन का ही नहीं, अपने शरीर एवं प्राणों तक का भी परित्याग कर दिया। भगवान् श्रीराम, रन्तिदेव, हरिश्चन्द्र, शिवि और दिलीप आदि इसी के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

धर्मनिरपेक्ष नहीं, धर्मसापेक्ष दर्शनः

मार्क्सवादी दर्शन धर्मनिरपेक्ष होकर भी पक्षपातपूर्ण हैं, जबकि रामराज्यवादी दर्शन धर्मसापेक्ष होकर भी पक्षपातरहित है। यह प्राणिमात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है, जबकि मार्क्सवाद एक विशिष्ट समुदाय (श्रमिकवर्ग)- का ही हित-चिन्तन करता है। काम, क्रोध, मद, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, लूट-मार करना और हिंसा आदि मनुष्य के दोष हैं, गुण नहीं। मार्क्सवादी इन्हीं दुर्गुणों को उत्तेजित करके उनके द्वारा अपना राजनीतिक उल्लू सिद्ध करना चाहते हैं, जो कि सर्वथा गलत है। दूसरे की वस्तुओं का अपहरण करना मार्क्स की दृष्टि में न्याय ही है, अन्याय नहीं। यह सब उसके धर्मनिरपेक्ष दृष्टि में न्याय ही है, अन्याय नहीं। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब उसके धर्मनिरपेक्ष सिद्धान्त का ही कुफल कहा जायेगा। वस्तुतः रामराज्य की धर्मसापेक्ष पक्षपातविहीन राजनीति ही कल्याणकारी है। धर्मनिरपेक्षता कभी भी विश्व के लिये कल्याणकारी नहीं हो सकती। यह एक ऐसा विष है जो देखने और चखने में तो मीठा प्रतीत होता है, परन्तु व्यक्ति, समाज और विश्व को धीरे-धीरे विनाश की ओर ले जाता है। आज इसी धर्मनिरपेक्षतावाद ने भारतीय राजनीति को इनती बुरी तरह से ग्रस रखा है कि देश के राजनीतिक दलों और राजनेताओं को इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं सुझ रहा है। वैसे सब बात तो धर्मनिरपेक्षता की करेंगे, किन्तु सम्पूर्ण राष्ट्र को बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदायों में बाँटकर भी जब यहाँ के राजनेताओं को चैन नहीं पड़ा तो इन्होंने अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिये समस्त देश को जातिगत आरक्षण का नशा कराकर छोटी-छोटी जाति-बिरादरियों में बाँट दिया। वोट-बैंक को मजबूत करने के लिये तुष्टीकरण नीति अपनाकर राजनेताओं ने समस्त समाज को भाषावाद, क्षेत्रवाद और प्रान्तवाद जैसी संकीर्ण भावनाओं की दलदल में फँसा दिया। यह सब मार्क्सवाद के अन्धानुकरण का ही तो दुष्परिणाम है कि आज कहीं भी सम्पूर्ण राष्ट्र के चिन्तन की चर्चा नहीं सुनायी पड़ती। भारत विश्व की आत्मा है। यह अनादिकाल से धर्मप्रधान देश रहा है। इसीलिये धर्म की रक्षा हेतु यहाँ स्वयं श्रीमन्नारायण कभी श्रीराम के रूप में और कभी श्रीकृष्ण के रूप में अवतरित होते रहे हैं। धर्म इस देश की प्राण-शक्ति है। धर्म यहाँ के कण-कण में व्याप्त है। इसलिये भारतभूमि की वन्दना माँ दुर्गा के रूप में करके यहाँ के कवियों ने यह बताया है कि 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अर्थात् जननी और जन्मभूमि- ये दोनों स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है और धर्मधारित तथा धर्मनीति की मर्यादा पर स्थापित रामराज्य ही हमारे लिये महत्वपूर्ण है। महाभारत का यह अनुच्छेद अनुकरणीय है-

अथ येषामधर्मज्ञो राजा भवति नास्तिकः। न ते सुखं प्रबुध्यन्ति न सुखं प्रस्वपन्ति च॥
सदा भवन्ति चोद्विग्नास्तस्य दुश्चरितैर्नराः योगक्षेमा हि बहवो राष्ट्रं नास्याविशन्ति तत्॥

जिनका राजा धर्म को न जानने वाला और नास्तिक होता है, वे लोग न तो सुख से सोते हैं और न सुख से जागते ही हैं; अपितु उस राजा के दुराचार से सदैव उद्विग्न रहते हैं। ऐसे राजा के राज्य में बहुधा योगक्षेम नहीं प्राप्त होते।

सन्दर्भ-

1. महाग्रन्थ रामचरितमानस
2. महाग्रन्थ रामायण
3. महाग्रन्थ महाभारत
4. महाग्रन्थ ऋग्वेद
5. श्रीकरपात्री जी द्वारा रचित 'मार्क्सवाद और रामराज्य'
6. मार्क्स के राजनैतिक दर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वामित्र द्वारा दृष्ट कलायें

श्रीमती रूप माला शर्मा
अंशकालिक प्रवक्ता
मु.ला.एवं ज.ना.खे. कॉलेज, सहारनपुर

विश्वामित्र एक प्रसिद्ध ऋषि माने जाते हैं।[1] इनकी गणना सप्तर्षियों में भी की जाती है। ऋषि शब्द दर्शनार्थक दृश् धातु अथवा गत्यर्थक ऋष् धातु से व्युत्पन्न है।[2] ऋषियों का ऋषित्व इसी में है कि उन्होंने मन्त्रों का साक्षात्कार किया, स्तोत्रों का दर्शन किया। यास्क का कथन है कि तपस्या करते हुए ऋषियों का स्वयंभू ब्रह्मा ने ज्ञान दिया वही ऋषियों का ऋषित्व है। अत: व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ ''मन्त्रद्रष्टा'' है।

राजशेखर ने विश्वामित्र को ब्रह्म तथा क्षात्रतेज का प्रतिनिधि, राजाओं तथा मुनियों का विजेता, हाथों में स्रुवा का धारणकर्त्ता, ब्रह्मर्षि पद प्राप्तकर्ता आदि रूपों में चित्रित किया है।[3] विश्वामित्र दृष्टमन्त्र में विश्व का हित करने वाले को विश्वामित्र या देवपुत्र कहा गया है-

''विश्व का हित करने वाला पुरुष महान् देवों के गुणों से युक्त होने के कारण मानों देवों का पुत्र (विश्वामित्र) कहलाता है'' (ऋ. 3/53/7, 9)।

ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के 30, 33, 53 वें सूक्त में महर्षि विश्वामित्र का परिचायात्क विवरण प्राप्त होता है। जिसके अनुसार ये कुशिक गोत्र उत्पन्न कौशिक थे (ऋ. 3/26/2-3)। महर्षि विश्वामित्र के आविर्भाव का विस्तृत आख्यान पुराणों तथा महाभारत आदि में मिलता है। तदनुसार कुशिक वंश में उत्पन्न चन्द्रवंशी महाराज गाधि की सत्यवती नामक एक श्रेष्ठ कन्या उत्पन्न हुई। पुराणानुसार गाधि की सत्यवती नाम की पुत्री का ऋचीक ऋषि के साथ विवाह हुआ था। ऋचीक ने अपनी पत्नी और सासु माँ के लिये दो अलग-अलग चरु बनायें परन्तु सत्यवती की माता ने सत्यवती वाला चरु खा लिया और सत्यवती ने अपनी माता के निमित्त बना चरु खाया। सत्यवती के पुत्र जमदग्नि हुए, जो ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रिय गुण सम्पन्न थे और महाराज गाधि की पत्नी के गर्भ से यही विश्वामित्र हुए जो क्षत्रिय कुल में होते हुए भी ब्राह्मणों के सदृश गुण वाले थे।[4]

विश्वामित्र को एक दैवीय पुरुष माना गया हैं। विश्वामित्र को ऋग्वेद में अग्नि से सम्बन्धित मानतें हुए कहा गया है कि- ''इनकी आँखें सूर्य के समान लाल तथा मुख अमृत तत्त्व से पूर्ण है (ऋ. 3/26/7)।

ऋषि विश्वामित्र पारिवारिक ऋषियों की श्रेणी में परिगणित किये जाते हैं। इन्होंने तथा इनके परिवार के 12 ऋषियों ने भी मन्त्र साक्षात्कार किया। विश्वामित्र का महत्त्वपूर्ण कर्त्तत्व ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के मन्त्रों के द्रष्टा होने के रूप में माना जाता है परन्तु विश्वामित्र का मन्त्र दृष्टत्व केवल इस मण्डल तक ही सीमित नहीं है अपितु सभी वेदों में उनके द्वारा द्रष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र उपलब्ध होते हैं जिनमें इनके पारिवारिक सदस्यों का भी योगदान रहा है। विश्वामित्र दृष्ट मन्त्रों से ज्ञात होता है कि विश्वामित्र को अनेक कलाओं का ज्ञान था। यद्यपि विश्वामित्र का उद्देश्य इन कलाओं का क्रमबद्ध विवेचन करना नहीं था तथापि संकेत रूप से अनेक कलाओं का ज्ञान इनके द्वारा दृष्ट मन्त्रों से होता है जिनका विवेचन करना यहाँ अपेक्षित है, परन्तु सर्वप्रथम कला शब्द का अर्थ दिया जा रहा है-

कला- किसी वस्तु का एक छोटा खण्ड, छोटा सा कालांश, चन्द्रमा की एक रेखा, उसका सोलहवां अंश आदि अर्थ कोशों से प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त किसी भी रचना के विन्यास की वह असाधारण कुशलता जो उस रचना के माध्यम से सहृदय जन के मानस में सौन्दर्य अनुभूति की ऐसी उमंग पैदा कर देती है कि वह आनन्दतिरेक में वाह-वाह कर उठे कला ही कही जाती है। ऐतरेय ब्राह्मण की ऐसी उमंग पैदा कर देती है कि वह आनन्दतिरके में वाह-वाह कर उठे कला ही कही जाती है। ऐतरेय ब्राह्मण में कला के बारे में दो महत्त्पूर्ण बाते बताई गयी हैं- प्रथम तो कला को कौशल से युक्त होना चाहिए, द्वितीय कला को छोन्दोमय होना चाहिए। कला के छान्दोमय होने का तात्पर्य उसका लालित्य से युक्त होना है (एत. ब्रा. IV,I)।

प्रत्येक देश, काल और समाज के सांस्कृतिक मूल्यांकन के प्राथमिक आधार उसकी कलाएं होती है। ये कलाएं तत्कालीन समाज की परिस्थितियों व अवस्थाओं के अनुकूल विकसित होती हैं। जिनमें समाज अपने समग्र रूप में प्रतिबिंबित होता है। ये कलायें विभिन्न उपकरणों, उनके बर्तन भांडे, वस्त्राभूषण, वसति और शयनासन, आयुध और वाहन आदि में परिलक्षित होती है। जब इन उपकरणों को अधिक से अधिक सुन्दर बनाने की चाह में विभिन्न आकर्षक रूपों में ढाला जाता है, रेखांकन चित्रण या उकेरण आदि शिल्प-कर्म से अलंकृत कर उनमें सौन्दर्य का आधान किया जाता है तब वे केवल उपयोगितावादी ही नहीं रह जाते अपितु मानव की सौन्दर्य पिपासा को सन्तुष्टि प्रदान करने वाली भी बन जाती है।[5]

वैदिक साहित्य में कला के लिये शिल्प शब्द का प्रयोग किया गया है।[6] परन्तु शिल्पी शब्द का नहीं। एक स्थान पर महर्षि विश्वामित्र ने इन्हें कवि कहा है। यथा- 'हे कवि देवगण, तुम्हारा यह प्रभूत कर्म मनोहर है (ऋ. 3/54/18)। ऋग्वैदिक शिल्पी को योगी, साधक, ऋषि, दार्शनिक, चिन्तक और कवि कहा जा सकता है[7], क्योंकि वैदिक कालीन शिल्पी अर्थात् कलाकार निखिल सृष्टि से व्याप्त सौन्दर्य का साक्षात्कार कर स्वयं आनन्द की अनुभूति करता है और अपने अनुभूत आनन्द को कला-रूप में रूपायित कर आनंद की सृष्टि करता है। सृजन करना कलाकार का प्रमुख गुण है और यही गुण-सृजन, निर्माण व शिल्प-कार्य करना प्राय: देवताओं का गुण रहा है। समस्त देवगण शिल्पी हैं। त्वष्टा, ऋभुगण और वास्तोष्पति को भी शिल्पी कहा गया है। त्वष्टा ने लक्षण कला से विविध वस्तुओं की अद्भुत रचनाऐं की हैं। उन्होंने इन्द्र के लिये वज्र का निर्माण किया है (ऋ. 5/31/4)। बृहस्पति के लिये अयस् का परशु बनाया है (ऋ. 10/53/9)। महर्षि विश्वामित्र त्वष्टा के लिये कहते है कि "त्वष्टा अत्यंत कार्यकुशल है।"[8]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देव शिल्पियों में त्वष्टा के शिष्य ऋभुगण को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इन्होंने देवताओं की चुनौती को स्वीकार करते हुए एक चमस के दो बिम्ब के तीन और वाज के चार चमस बनाये। ये चमस अद्‌भुत और ज्योर्तिमय थे। इस प्रकार मरणधर्मा ऋभुओं ने अपने शिल्प सुकृत्य से देवताओं की श्रेणी को प्राप्त किया।[9] अन्यत्र वर्णन मिलता है कि उन्होंने यज्ञ-वेदि की रचना, की दोनों लोकों का निर्माण किया है। (ऋ. 3/53/12)।

महर्षि विश्वामित्र एवं उनके वंशजों द्वारा दृष्ट ऐसे कतिपय सन्दर्भ हैं जिनसे उनके शिल्पी कार्यों का ज्ञान होता है-

नृत्य कला- नृत्य कला का उल्लेख प्राचीन संस्कृत साहित्य में आता है। ऋग्वेद (1/92/4, 6/29/3) में नृत्य-कला प्रवीण स्त्रियों का उल्लेख है, जो अपनी विशेष पोशाक में सज-धजकर नृत्य करती है। यजर्वुेद (30/21) में वंशनर्तिन् का उल्लेख है, जो बाँस पर नाचा करता था। श्री बी.एन. लूनिया का कहना है कि वैदिक युग में त्यौहारों तथा अन्य अवसरों पर नृत्य, गान अनवरत होते थे। स्त्रियाँ वीणा व झाँझ के साथ नृत्य व गान में अपनी दक्षता का प्रदर्शन करना अत्यधिक पसन्द करती थी (भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, पृ. 49)।

बर्तन बनाने का शिल्प- आर्यों के बर्तनों (छेडस)[10] पर विचार करने पर ज्ञान होता है कि उनके पास अनेकानेक उपयोग के लिए तरह-तरह के बर्तन थे। उनके बर्तनों में पात्र[11], यज्ञोपयोगी पात्रों में जुहू, स्रुवा, स्रुच[12], चमस[13] कलश[14], द्रोण आदि प्रमुख थे। यथा- एष देवो अमर्त्य: पर्णवीरिव दीयति। अभि द्रोणान्यासदम्।।[15] अर्थात् ये अमर सोम द्रोण- कलश के सामने बैठने के लिए पक्षी के समान जाते हैं।

मिट्‌टी के बर्तनों में कुंभ[16] प्रमुख होता था। खाना पकाने के बर्तन चरूणा उखा[17] अंगारिका कहलाते थे। अमत्र, आहव, द्विति मणिक[18] आदि बर्तनों के अतिरिक्त तितउना[19] पृथुवुध्न-उलूखल (मूसल)[20], शूप[21], सुषिरा-सुरभि आदि अनेक उपकरण होते थे।

ये विभिन्न प्रकार के बहुविध उपयोगी बर्तन शिल्पियों की दक्षता के साथ ही समाज की कलाभिरूचि का परिचय भी देते हैं।

आभूषण- वैदिक काल में आर्य अपने को अलंकृत करने के लिये अलंकारों का प्रयोग करते थे। इन अलंकारों में शरीर के प्रत्येक भाग में पहने जाने वाले कई-कई आभूषण सम्मिलित हैं। सिर पर धारण किया जाने वाले अलंकार में शिप[22], श्रृंग[23], कुंभ[24], तिरीट[25], मौलि[26], स्तूप[27], सृज[28], तथा महिलाओं में कुरीर[29] ओपश[30] व स्वौपश[31] उल्लेखनीय हैं। कानों में पहने जाने वाले आभूषण में कर्ण शोभना[32], मणि कुण्डल[33] आदि तथा गले व वक्ष पर पहने जाने वाले आभूषणों में रूक्म[34] निष्क[35], कण्ठसूत्र[36] आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।

आर्यों के जीवन में सोने का अत्यन्त महत्त्व था और वे इसका सबसे अधिक प्रयोग करते थे। महर्षि विश्वामित्र दृष्ट मन्त्र से ज्ञात होता है कि रथों को भी सोने के काम से सजाया जाता था। यथा- ''हे मरणधर्मरहित सुवर्णमय रथवाली उषा देवी। तुम प्रिय सत्यरूप वचन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्चारण करने वाली हो (ऋ. 3/61/2, 10/85/2)।''

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि उस युग में स्वर्ण कलाकारों की कलादक्षता उच्च स्तर की थी।

आयुध बनाने की कला- आयुध बनाने की कला से आर्य परिचित थे। आर्यों के अस्त्र-शस्त्रों में तलवार[37] धनुष[38], बाण[39], आदि होते थे। महर्षि शुन: शेप दृष्ट मन्त्र में वक्षस्थल की सुरक्षा के लिए कवच पहनने का वर्णन किया गया है। यथा- ''वरुण सोने का वस्त्र धारण कर अपना पुष्ट शरीर ढकते है'' (ऋ. 1/25/13, 56/3)। एक स्थल पर महर्षि विश्वामित्र कहते हें कि- ''हे इन्द्र! जैसे कुठार (परशु) को पाकर वृक्ष प्रतप्त होता है, वैसे ही हमारे शत्रु प्रतप्त हों (ऋ. 3/53/22)। इसी प्रकार अन्य मन्त्र में कुलिश शब्द का प्रयोग है। (ऋ. 3/2/1)। विश्वामित्र ने एक मन्त्र में सृण्य: (सृणि) शब्द का प्रयोग किया है। मन्त्र से ज्ञात होता है कि यह पकी हुई फसल को काटने वाला उपकरण था (अथर्व. 3/17/12)। ये उपकरण उनके नित्य जीवन के कार्य-व्यवहार में प्रयुक्त होते थे।

संगीतकला एवं वाद्य उपकरण- संगीत कला का प्रारम्भ अत्यन्त ही प्राचीन काल से हुआ है। आर्यों के वाद्य उपकरणों में आडंबर (शत. ब्रा. 14/4/8/1) लबन (बृहदारण्यकोप, 5/12/1) दृंदुभि (इहद्युमत्तमंदव जयतामिवुदुन्दुभि:। ऋ. 1/25/5) और द्रव्य ये चार प्रकार के ढोल, तूणव (तैत्ति सं. 6/1/4/1, कठ सं. 23/4) वेणु, (ऋ. 8/55/3, अथर्व 1/28/3) नाड़ी (ऋ. 10/135/7) ये तीन प्रकार की वंशिया भी उल्लेखनीय है।

काव्य कला- गतिकाव्य का शानदार संकलन जो ''ऋक संहिता'' के नाम से प्रसिद्ध है तथा जिसमें 1017 ऋचाएँ विभिन्न देवताओं की स्तुति के लिये हैं, इसका सबल प्रमाण है कि ऋग्वैदिक काल में काव्य कला पूर्ण रूप में विकसित हो चुकी थी। ऋग्वेद की ऋचाओं में और विशेषकर उनमें जो ऊषा देवी की आराधना के विषय में है, गीतिकाव्य के सुन्दर उदाहरण हैं।

चित्रकला- रूप (ऋ. 3/53/8), प्रतीत (प्रमात्राभीरिचेरोचमान: प्रदेवेभिर्विश्वतोअप्रतीत: ऋ. 3/46/3), प्रमा (ऋ. 3/60/4) आदि शब्दों से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय चित्र की उपस्थिति रही होगी। रंगों के विषय में शोणा (रक्त वर्ण) ऋ. 5/33/9) वभ्रुवर्ण (भूरा रंग) (ऋ. 2/33/9) आदि वर्णों का उल्लेख मिलता है। लोहित (ऋ. 3/39/6) (लाल) तथा आमा (काली या लोहित) (ऋ. 1/62/9), रंग की गाय, घोड़े के पाये जाने के उल्लेख भी है।

देवी देवताओं के रूप का वर्णन मिलता है यथा- 'इन्द्र समस्त देवों में दिव्य नर है'' (ऋ. 3/4/5)। अग्नि देव के हरित केश और हरित श्मश्रु है (ऋ. 5/7/7, 3/78/12-13)। वरुण केशहीन (गंजा), पीत चक्षु, वृद्ध है (शतपथ ब्रा. 13/3/6/5)। वायु देव देखने में रूपवान् है हालांकि वह अदृश्य हैं (ऋ. 1/2/1)। इसी प्रकार उषा के कामनीय सौन्दर्य के मनोहारी चित्र एक नहीं अनेक मिलते हैं जिनमें उसकी सुन्दर गुलाबी आभायुक्त भुजाओं का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णन है, उसकी दैदीप्यमान् देह-यष्टि का वर्णन है उसे प्रकाश से सद्यस्नाता बताया गया है। यथा- ''हे उषा देवी, तुम निखिल भूतजाल के अभिमुख आगमनशीला, मरणधर्मरहिता और सूर्य की केतु स्वरूपा हो। तुम आकाश में उन्नत होकर रहती हो। हे अवतरा उषा, तुम एक मार्ग में विचरण करने की इच्छा करती हुई आकाश में प्रवृत्त होओ (ऋ.3/61/3)।''

इन उल्लेखों से स्पष्ट हैं कि देवी देवताओं का रूप विधान सशरीर है। शारीरिक, वस्त्राभूषण, अस्त्र-शस्त्र व रथ वाहन आदि ये विशेष उल्लेख चित्र और मूर्ति के विषय हैं। इन रूप विधानों से स्पष्टतः अनुमान होता है कि वैदिक काल में चित्र और मूर्तिकला थी। क्योंकि चित्र और मूर्ति के न होने पर इन उल्लेखों का कोई महत्त्व नहीं रह जाता।

मूर्तिकला- वैदिक काल में प्रतिमाओं की उपस्थिति का साक्ष्य देने वाले ऋग्वेद के मन्त्र 4/4/10 को डॉ० जगदीश चन्द्रिकेश ने उद्धृत किया है-

'क इमं दशभिर्ममेंद्र क्रीणाति धेनुभिः।
यदा वृत्राणि जंघनदथैन मे पुनर्ददत।।

अर्थात् कौन इस मेरे इन्द्र को गायों में क्रय करेगा, जब (यह इन्द्र) शत्रुओं को नष्ट कर दें इसे मुझे फिर दे दे। इस मन्त्र से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि इन्द्र की प्रतिमा है क्योंकि क्रय विक्रय का आधार मूर्ति ही हो सकती है।

महर्षि विश्वामित्र द्वारा द्रष्ट एक मन्त्र में उल्लेख मिलता है कि ''हे इन्द्र, तुम जिस दिन उत्पन्न हुए थे, उसी दिन पिपासित होने पर तुमने पर्वतस्थ सोमलता के रस का पान किया था। तुम्हारे महान् पिता कश्यप के गृह में, तुम्हारी युवती माता अदिति ने, स्तन्यदान, के पहले तुम्हारे मुँह में सोमरस का ही सिञ्चन किया था (ऋ. 3/48/2)। महर्षि वामदेव के द्वारा द्रष्ट मन्त्र से ज्ञात होता है कि इन्द्र शिल्पी के घर पर सोम पीता है (ऋ. 4/18/3)। त्वष्टुर्गृहे अपिवत्सोममिन्द्रः मन्त्रांश का स्पष्ट अर्थ है। इस मन्त्रार्थ का आशय यह हो सकता है कि-

इन्द्र जन्म लेता है। जन्मते ही इन्द्र को सोमपान कराया जाना वस्तुतः इस तथ्य का काव्यात्मक कथन है कि उसे (मूर्ति को) सांचे से निकालते ही, जो उस समय गर्म होती है, सोम से बुझाकर ठंडा किया जाता है। गर्म मूर्ति को सोम से भरे पात्र के अन्दर डाल कर ठंडा करने की संभवतः (मूर्ति की) धातु के स्तर में कोई विशेष सुधार होता होगा जिससे उसमें स्थायित्व, कठोरता या चमक आदि आती होगी। आज भी धातुओं से गलाकर ढाले गये उपकरणों को विशेष प्रकार के रसायन के घोल से बुझाया जाता है। सोम में इस प्रकार का कोई विशेष रासायनिक गुण रहा होगा जो धातु में विशेषता पैदा करता था (वैदिक कालीन रूपकर कलाएं, डॉ० जगदीश चंद्रिकेश, पृ०47)।

महर्षि विश्वामित्र द्रष्ट मन्त्र में आये 'धनं वृत्राणां जनयंत देवः' (ऋ. 3/49/1) में वृत्र के बहुवचन वृत्राणि के प्रयोग से ज्ञात होता है कि इन्द्र द्वारा वृत्र के वध के लिए वृत्र की प्रतिमाएं भी बनायी जाती थी।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिमाओं की उपस्थिति के सन्दर्भ में ऋग्वेद के तीन मन्त्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिनमें मरुत देवों को उनकी प्रतिमाओं से स्पष्टतः पृथक् रूप में दर्शाया गया है-

''स्थिरेभिरङ्गैः पुरूरूप उग्रो बभ्रुः पिपिशे हिरण्यैः (ऋ. २/३३/९)।

अर्थात् दृढाङ्क, बहुरूप, उग्र और वभ्रुवर्ण रूद्र दीप्त हिरण्यमय अलंकार से सुशोभित होते हैं। दूसरा मन्त्र महर्षि शुनः शेप द्वारा द्रष्ट है। यथा-

'विभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरूणो वस्त निर्णिजम्। परि स्पशो नि षेदिरे (ऋ.१/२५/१३)।

अर्थात् वरूण सोने का वस्त्र धारण कर अपना पुष्ट शरीर ढकते हैं, जिसके चारों ओर हिरण्यस्पर्शी किरणे फैलती हैं।

इन मन्त्रों का सन्दर्भ देते हुए बालेंसन ने बताया है कि ऋग्वेद में देवों को भावात्मक और काल्पनिक रूप में ही प्रस्तुत नहीं किया गया उन्हें इन्द्रिय ग्राह्य रूप में भी प्रस्तुत किया गया है (ऋग्वेद पर व्याख्यान, घाटे पृ. 194 जर्नल ऑफ द जर्मन ओरिएटल सोसाइटी, वो. 22, बोलेंसन पृ. 587)।

इसी प्रकार यूप के वर्णन में भी इसकी विग्रहवक्ता से मूर्ति कला का संकेत मिलता है। यथा-

विश्वामित्र दृष्ट तृतीय मण्डल में यूप का उल्लेख द्रुप में तथा विग्रहक्ता 'स्वरु' के नाम से उभरी है (ऋ. 3/8/1, 1/24/12, 30/6)। यूप पर घी मलते, उसे उठाते और भूमि में गाड़ते समय मन्त्रों का विनियोग किया जाता था। यूप को खड़े किये जाते समय ऋग्वेद का मन्त्र (ऋ. 3/8/1,3) पढ़ा जाता था। एक स्थल पर कहा गया है-

''युवा सुवासाः परिवीत आगत्स उ श्रेयान्भवति जायमानः (ऋ. ३/८/४)।

अर्थात् सुन्दर वस्त्र पहने (सुन्दर वस्त्रों से परिवेष्ठित) यूप सुन्दर वस्त्र धारण किये आकर्षक युवक की भाँति आ गया (खड़ा हो गया), खड़ा होते ही यूप श्रेयान् होता है। यूप इस प्रकार शोभायमान होता है जिस प्रकार रंग-बिरंगी उषा उदित होती हुई दिखायी देती है (ऋ. 4/51/2)।

उपर्युक्त विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि वेदों में यज्ञ सम्बन्ध उपकरण, अस्त्र-शस्त्र आदि अचेतन पदार्थों में भी देवत्व का आधान कर उन्हें देव-रूप प्रतीत माना गया है। इस प्रकार के संकेतों से विभिन्न विद्वानों ने वैदिक काल में मूर्तिकला का अस्तित्व स्वीकार किया। परन्तु विश्वेश्वरनाथ रेऊ (ऋग्वेद पर ऐतिहासिक दृष्टि, पृ. 46) का कथन है कि काल में न तो देवताओं की मूर्ति का पूजन ही होता था न उसके लिए मन्दिर ही बनाया जाता था।

महर्षि विश्वामित्र दृष्ट मन्त्र में प्रयुक्त 'विदश' (ऋ. 3/39/2) पद से देव पूजा सभी (मंदिर या स्थल) का संकेत प्राप्त होता है। महर्षि मधुच्छन्दा दृष्ट मन्त्र में पाये गये संकेत बतात है कि उस समय शोभा यात्राओं का प्रचलन था (ऋ. 1/10/7)। जिसका समर्थन बेबीलोन में प्राप्त मारूत आदि देवी की प्रतिमाओं से पाया जाता है। 'विदथ' शब्द एक ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्वजनिक उपासना-स्थल की ओर संकेत करता है जहाँ बड़ी संख्या में जन समूह सुविधापूर्वक एकत्रित हाकर यज्ञ और धर्म चर्या आदि उपासनापरक कार्यों में भाग ले सके (वैदिक कालीन रूपंकर कलाएं, डॉ० जगदीश चंद्रिकेश, पृ. 76)।

वास्तुकला- वेदकालीन समाज, जैसा कि वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है, पूर्णतया सुसंस्कृत था। उस समय जीवन को सुखी बनाने के लिये वस्तुनिर्माण कला का विकास था। ऋग्वेद में तत्कालीन गृहों का भी उल्लेख मिलता है। वास्तोष्पति मन्त्रों (ऋ. 7/51/1-3, 7/55/1) में गृह-देवताओं की स्तुति की गई है।' महर्षि विश्वामित्र ने आवास के अर्थ में गृह शब्द का प्रयोग किया है। यथा- हे इन्द्र, सोम पीकर घर जाओ, तुम्हारे रमणीय गृह में मङ्लकारिणी जाया और सुन्दर ध्वनि है। गृह गमन के लिए तुम महान् रथ के ऊपर अवस्थान करो'' (ऋ. 3/4/8, 1/25/10), हर्म्य (ऋ. 9/71/4), शाला (ऋ. 1/25/10) आदि शब्द प्रयुक्त किये हैं।

डॉ० शिवदत्त ज्ञानी का कहना है कि वैदिक काल में छोटे से छोटे व बड़े से बड़े घर बनाये जाते थे। ये घर लकड़ी, मिट्टी, या पत्थर अथव तीनों को मिलाकर बनाये जाते थे (वेद कालीन समाज पृ. 30)। ऋग्वेद में साधारण घर के अर्थ में बाईस शब्द प्रयुक्त हुए हैं (निघण्ट 2/4), इससे सिद्ध होता है कि वैदिक युग में घर बनाने की कला बहुत लोक प्रिय थी, एक स्थान पर वे गृह के लिए 'दुरोण' पद प्रयुक्त है। यथा ''निदुरोणे अमृतोमत्यानां राजा ससादविदथानिसाधन्'' (ऋ. 3/1/18)। अर्थात् राजा अग्नि यज्ञ का साधन करके मनुष्यों के गृह में बैठते हैं। इस उदाहरण में दुरोण पद से ज्ञात होता है कि गृह का मुख्य प्रवेश द्वार (दुर्यः) बड़ा या फाटक होता था जिससे रथ वाहन व पशु आदि सुविधा से आ जा सकते थे तथा जिन्हें बंद करने पर समूची सुरक्षा रहती थी। अतः ऐसे बड़े और सुन्दर सजे-संवरे द्वारों के कारण गृहों को दुरोण कहा जाता था। इनके लिए 'दूर्यः या दुर्या शब्द भी प्रयुक्त हुआ है (ऋ. 3/31/21)। जिससे ज्ञात होता है कि गृह के प्रत्येक कक्ष में द्वार होते थे। यज्ञशाला में चार-चार द्वार होते हैं (ऋ. 7/95/6)।

महर्षि विश्वामित्र द्वारा द्रष्ट मन्त्र में 'कुल्या' (ऋ. 3/45/3, 10/43/7, 8/49/2) शब्द और सिंचाई के लिये प्रयुक्त पानी 'खनित्रिमा आपः' से इस बात का संकेत मिलता है कि खेतों की सिंचाई के लिए नहरें बनायी जाती थी। अतः उन्हें पार करने के लिए पुल भी थे। इन सब उदाहरणों से स्पष्ट होता है विश्वामित्र कालीन समाज उन्नत अवस्था में था तथा गृह निर्माण कला भी अत्युन्नत थी।

निष्कर्ष रूप से कह सकते है कि नृत्य, संगीत, चित्र आदि कलाओं में जो साक्षात् कृतित्व होता है वह जीवन का एक अंग है। कला का कृतित्व जीवन की विभिन्न क्रियाओं में चरितार्थ होता है। विश्वामित्र दृष्ट विभिन्न कलायें सभी संस्कृतियों के लिये एक वरदान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ

1. Encylopaedias of Puranic Beliefs and Practices vol. V.P. 1523
2. ऋषिदर्शनात् स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यवः। तद् यनेनांस्तपस्यामानम्, ब्रह्म स्वयम्भ्यानर्षत् तदृषीणां ऋषित्वमिति विज्ञापते। निरुक्त दुर्गवृत्ति 2/11
3. क्षत्र ब्रह्म महानिधि.....सप्तमः। बाल रामायण, राजशेखर 1/27
4. ब्रह्म पु. 8/88-63, हरिवंश पु. 27/1-44, महा. शान्ति पर्व 49/6-30 (सातवलेकर)
5. वैदिक कालीन रूपंकर कलाएँ, डॉ० जगदीश चंद्रिकेश, पृ. 9
6. ऋक् सामयोः शिल्पेथस्ते, यजु. 4/9 शिल्प 29/58
7. वैदिक कालीन रूपंकर ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात्। ऋ. 3/60/3
8. वैदिक इडेक्स भाग-1, मैक्डॉनल ऐंड कीथ (हिन्दी अनुवाद रामकुमार राय) पृ. 296
11. अथर्व. 10/10/9
12. ऋ. 1/162/17
13. वही. 8/71/7, 10/68/8, अथर्व 7/115/3
14. ऋ. 9/86/47, 8/71/7
15. वही, 9/3/1, अथर्व 9/6/17
16. अथर्व. 1/6/4, 3/12/7, 9/6/17
17. ऋ. 1/162/13
18. इंडियन आर्ट डा. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. 44-45 वाराणसी 1965
19. ऋ. 10/71/2
20. वही, 1/28, अथर्व. 9/6/14-15
21. अथर्व. 9/6/16
22. ऋ. 5/54/11, 8/7/25, 2/34/3, 2/2/3, 6/25/9
23. वही, 1/140/6, 2/39/3, 8/17/13, 1/163/11, 3/8/10
24. अथर्व. 6/138/3
25. वही, 8/6/7
26. कात्यायन श्रौतसूत्र 22/8/16
27. ऋ. 1/24/7, 7/2/1, वाज. स. 2/2, 25/2
28. ऋ. 4/38/6, 5/53/4 आदि
29. ऋ. 10/85/8, अथर्व. 6/138/3
30. वही, 9/71/1, 1/173/6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-निर्माण में आर्य समाज का बहुमूल्य एवं अविस्मरणीय योदान

डॉ० दीपा गुप्ता
एम.ए., एम.फिल, पी-एच.डी.
प्रवक्ताा प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं
पुरातत्व विभाग, कुन्या गुरुकुल महाविद्यालय, हरिद्वार

मनुष्य परमात्मा की एक सर्वोत्कृष्ट कृति है। पर मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने के लिए एक महान प्रयत्न की आवश्यकता है। "**ऋग्वेद**" में मनुर्भव कहकर मनुष्य को मनुष्य बनाने की प्रेरणा दी गई है। यदि वास्तव में मानव-निर्माण का प्रयत्न न किया जाये तो मनुष्य निरा पशु रह जाये। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसी कारण आर्य समाज का लक्ष्य "**कृण्वन्तों विश्वमार्यम्**" निर्धारित करके विश्व के प्रत्येक मानव को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बनाने का संकल्प किया था।

"सद्ज्ञान का दीप जलाया, आर्य समाज का भाग्य जगाया,
संस्कृति का पथ सजाया, गुरुकुलों को तब गले लगाया।"
"हर कली पुष्प में निखरी,
नवचिन्तन की सुगंध गुरुकुल के यज्ञ-समर्पण में,
समिधा बन गये दयानंद"

महर्षि दयानन्द जी ने मानव-निर्माण में आर्य समाज का एक महानतम योगदान स्वीकार किया है। महर्षि दयानन्द मनुष्य का हित उसे धार्मिक बनाकर उसे सच्चा मनुष्य बनाने में ही मानते थे। आर्य समाज का हित उसे सच्चा मनुष्य बनाने में ही मानते थे। आर्य समाज के 10 निमयों में छठां निमय है- संसार (मनुष्य मात्र) का उपकार करना, उसे सच्चा मनुष्य बनाना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। दयानन्द जी समाज का उपकार व्यक्ति की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति में मानते हैं। इतिहास साक्षी है कि महर्षि दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित संस्था आर्य समाज ने मनुष्य को सच्च अर्थों में मनुष्य बनाने का ही प्रयत्न किया।

मानव निर्माण के प्रेरक तत्व :

महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित श्रेष्ठ संस्था आर्य-समाज ने अनेक स्थानों पर मानव निर्माण के कतिपय प्रमुख तत्त्वों पर प्रकाश डाला।

सर्वप्रथम आर्य समाज ने कहा है कि मनुष्य को धीर बनकर न्याय पथ से कभी विचलित नहीं होना चाहिए। दयानन्द जी ने कामी और लोभी को छोड़कर धर्माचरण करने वाले को मानव कहा है। इसी प्रकार "**सत्यमेव जयते**" तथा "**अहिंसा परमोधर्म**" आदि वचनों को उद्धृत करके महर्षि ने सत्य और अहिंसा को मानव-निर्माण के लिए अनिवार्य ठहराया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य की परिभाषा करते हुए दयानन्द जी ने लिखा है कि जो विचार किये बिना किसी काम को न करे उसका नाम मनुष्य है। इस प्रकार मानव-निर्माण के लिए मनुष्य का विचारशील बनना आवश्यक है। महर्षि दयानन्द जी साम्प्रदायिक विद्वेष को मानव-निर्माण के लिए एक घातक तत्व समझते हैं। उन्होंने सभी सम्प्रदायों की मिथ्या बातों का खंडन कर उनके सर्वमान्य तत्वों का उद्घाटन किया। इस प्रकार महर्षि के अनुसार अन्याय का विरोध, साहस, धैर्य, परोपकार, विचारशीलता, सत्य, धर्म, पक्षपात रहित बुद्धि, सबसे धर्मानुसार व्यवहार आदि गुण मानव-निर्माण के अनिवार्य तत्व हैं। इनके बिना मनुष्य, मनुष्य नहीं बनता।

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में पुरुषार्थ- चिंतनः-

महर्षि दयानन्द पुरुषार्थ को मानव-निर्माण के लिए एक सर्वप्रमुख प्रेरक तत्व मानते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने स्वलिखित ग्रन्थों और वेदभाष्य के अन्तर्गत अनेकत्र इस पुरुषार्थ की चर्चा कर पुरुषार्थ के महत्व पर प्रकाश डाला है। उन्होंने पुरुषार्थ की परिभाषा लिखते हुए कहा-

''**पुरुषार्थ**- अर्थात् सर्वथा आलस्य छोड़ के उत्तम व्यवहारों की सिद्धि के लिए मन, शरीर, वाणी और धन से जो अत्यन्त उद्योग करना है, उसी को पुरुषार्थ कहते हैं[1]। समस्त सम्पन्न कर्मों का मूल पुरुषार्थ हैं। यदि प्राणी पुरुषार्थ ही न करे, हाथ पर हाथ धरकर बैठा रहे तो कार्य की सिद्धि कदापि संभव नहीं है। यदि कर्ता का पुरुषार्थ बिगड़ जाता है तो कर्म में सफलता आ ही नहीं सकती। कर्म की सफलता का मूल पुरुषार्थ है। सिर उठाकर किसी कार्य में सम्पृक्त होने का नाम ही पुरुषार्थ नहीं है। अपितु जो वस्तु हमें प्राप्त नहीं है, उसकी इच्छा करनी है, जो हमें जो प्राप्त हो गयी है उसकी रक्षा करनी है। यही नहीं अपितु जिसकी हम रक्षा कर रहे हैं। उसको बढ़ाना भी है, तथा उस बढ़ाये हुए पदार्थ को सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय प्रयोग करने का नाम पुरुषार्थ है। इसीलिए महर्षि दयानंद ने चार भेद दिखाते हुए लिखा है।

पुरुषार्थ के भेदः

1. जो अप्राप्त वस्तु की इच्छा करनी
2. प्राप्त वस्तु का अच्छी प्रकार रक्षण करना।
3. रक्षित को बढ़ाना और
4. बढ़े हुए पदार्थों को सत्य विद्या की उन्नति में तथा सबके हित में खर्च करना है। (इन चार प्रकार के कर्मों को ही पुरुषार्थ कहते हैं[2])

महर्षि दयानन्द ने पुरुषार्थ से ही लक्ष्मी की प्राप्ति दर्शायी है। हे मनुष्यों। पुरुषार्थ से लक्ष्मी और उससे अन्न आदि संचित करके तथा महान सुख प्राप्त करके आप लोग सबकी रक्षा करें[3]! यही कारण है कि महर्षि दयानन्द ने पुरुषार्थ को मानव-निर्माण के लिए एक ऐसा सफलता का सूत्र माना है, जिससे व्यक्ति कम आयु को होने पर भी बड़ी आयु वाले पुरुषों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा सम्मानीय बनता है। अतः महर्षि ने लिखा है "मनुष्यों जिस पुरुषार्थ से विद्वान् होकर युवा भी वृद्ध हो जाते हैं, उसे तुम निरन्तर सिंचित करो[4]।

संस्कार और यज्ञः मानव जीवन के प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य को आरम्भ करने के लिए वैदिक ऋषियों ने 16 संस्कारों एवं यज्ञों की योजना की, और महर्षि ने इनके द्वारा मानव-निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया है। सचमुच वैदिक संस्कृति में मनुष्य का सारा जीवन ही यज्ञमय हैं। उसके जीवन का आरम्भ जातकर्म संस्कार से होता है और जीवन की परिसमाप्ति अत्येष्टि संस्कार से होती है। मध्य में नामकरण, निष्क्रमण, अन्न प्राशन, चूड़ा कर्म, कर्णवेध, उपनयन, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ एवं संन्यास संस्कार होते हैं। प्रत्येक संस्कार के नाम से स्पष्ट है कि ये संस्कार मनुष्य की शारीरिक, बौद्धिक तथा आत्मिक उन्नति की कामना के लिए हैं। यज्ञ के तीन अर्थ हैं- देवूपजा, संगतिकरण है। दान से अभिप्राय विद्यादान से है।

मनुष्य को अपने जीवन में पंचमहायज्ञों का अनुष्ठान प्रतिदिन ही करना होता है। ब्रह्मचारी को ब्रह्मयज्ञ और देवयज्ञ तथा गृहस्थी को पितृयज्ञ और अतिथियज्ञ तथा भूत यज्ञ (पांचों) करने का विधान है। यज्ञ का प्रतीक अग्नि सदा उसके साथ रहता है। इन सबके अतिरिक्त मनुष्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण यज्ञ अध्यात्म साधना है। मनुष्य की आत्मा यजमान है। मन उसका ब्रह्मा है[5]। यज्ञ केवल एक धार्मिक कृत्य ही नहीं है, वरन् परोपकार का एक उपाय है। जो मनुष्य यज्ञ करके शोषण और निष्ठुर रहते हैं वे महा-अज्ञानी और पापी हैं।

आश्रम व्यवस्था और शिक्षा प्रणालीः आश्रम व्यवस्था मानव-निर्माण का एक अत्यन्त उपादेय उपाय है। आश्रम चार हैं। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। ब्रह्मचर्य आश्रम में ही शिक्षा प्रणाली भी अन्तर्भूत हो जाती है। मानव निर्माण की दृष्टि से आश्रमों में ब्रह्मचर्य आश्रम का महत्व सर्वाधिक है। क्योंकि इसी काल में व्यक्ति का समग्र-शारीरिक, बौद्धिक तथा आत्मिक विकास होता है। यदि देखा जाये तो सम्पूर्ण आश्रम प्रणाली में व्यक्ति के जीवन में भोग और त्याग का अद्‌भुत विधान है। व्यक्ति ब्रह्मचर्य काल में धर्म (जिसका एक अंग विद्या है) गृहस्थ में अर्थ और काम तथा वानप्रस्थ और संन्यास में मोक्ष के लिए प्रवृत्त होता है। तभी मानव-निर्माण की प्रक्रिया पूर्ण होती है।

महर्षि दयानन्द जी ने शिक्षा की परिभाषा में अज्ञान को दग्ध करने के साथ उपलब्ध ज्ञान के अनुसार आचरण करने पर बल दिया है। जिसमें विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रियता की बढ़ती होवे और अविद्या आदि दोष छूटें उसी को शिक्षा कहते हैं। साथ ही महर्षि ने व्यवहारिक शिक्षा पर भी बल दिया है। आचार्य ने कहा है कि वह भोजन, बैठने, उठने, बोलने-चालने, बड़े-छोटे से यथायोग्य व्यवहार करने का उपदेश करे[6]। इस प्रकार महर्षि द्वारा प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली मनुष्य का शरीर पुष्ट, मस्तिष्क, उर्वरक तथा आत्मा विशाल बनाती है, एवं मानव निर्माण हेतु एक प्रेरक तत्व सिद्ध होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जागरूकता जीवन का अमूल्य धनः

महर्षि दयानन्द जी ने मानव-निर्माण के लिए जागरूकता को भी एक अहम तत्व माना है। उनके अनुसार वैदिक संस्कृति का जीवन सतत् जागरूक जीवन है। उसमें प्रसाद का कोई स्थान नहीं है। आलस्य और तन्द्रा में पड़े रहना, और तामसिकता में आनन्द लेना मानव की गरिमा के अनुरूप नहीं है[7]। ''जागरूकता ही मनुष्य के जीवन का एक अमूल्य धन है। जो मनुष्य जागकर यज्ञ कर्मों में तत्पर होता है, इसी को देवजन चाहते हैं। देवजन सोने वाले से प्रीति नहीं करते। देवजन स्वयं अंतद्रालु होते हैं, अतः वे तंद्रालु प्रमादी को दण्डित करते हैं[8]।'' ''जो जागता है उसी से ऋचाएं प्यार करती हैं जो जागता है उसी से सोम प्यार करते हैं, जो जागता है उसी को सोमप्रभु सखा बनता है।''

प्रगति मानव-निर्माण की अविरल धाराः वेदों में कहा है कि मानव-शरीर बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है। इसका एक-एक क्षण बहुमूल्य है। जीवन के मूल्यवान क्षणों को यदि हमने आलस्य, प्रमाद और तन्द्रा में व्यतीत कर दिया, तो हमसे अधिक अभागा और कौन होगा। हमें तो त्वरित गति से प्रगति करनी है। इसीलिए वेद मनुष्य को उद्बोधन दे रहा है:-

''हे पुरुष ध्यान रख, तेरी उन्नति हो अवनति नहीं। तुझे मैं जीवन और बल दे रहा हूं। तू इस अमृतमय, सुखदगामी शरीर-रथ पर आरूढ़ हो ओर दीर्घजीवी होता हुआ ज्ञानचर्या कर।''

उद्यानं ते पुरुष नावयानं, जीवातु ते दक्षतति कृणोमि,
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ, जिर्विर्विदथमा वदसि।।[9]

''**अथर्ववेद**'' में कहा गया है कि :- हे मनुष्य तू आध्यात्मिक उन्नति कर, भौतिक उन्नति कर, आर्थिक उन्नति कर, इसी से ही तेरा पूर्ण निर्माण संभव है[10]।

सत्यता मानव-निर्माण का पाथेयः-

महर्षि जी ने कहा है कि सत्य नींव पर ही मानव-निर्माण का भवन खड़ा है। सत्य में मन, वचन और कर्म तीनों का सत्य समावष्टि है। क्योंकि मनुष्य जैसा मन में विचार करता है, वैसा ही वाणी में बोलता है और जैसा वाणी से बोलता है, वैसा ही कर्म करता है। यह भूमि सत्य पर ही अवलम्बित है। ''**सत्येनोत्तभिता भूमिः**''[11]। अतएव वैदिक साधक सत्य का व्रत धारण करता है। ''हे व्रतपति अग्नि, मैं व्रत करूंगा, उसे मैं पूर्ण कर सकूं वह सफल हो! मेरा व्रत है कि मैं असत्य को त्यागकर हमेशा सत्य को प्राप्त होता रहूं।।[12] महर्षि की अनुभूति है सत्य की ही विजय होती है। अनृत की नहीं- ''**सत्यमेव जयते नाऽनृतम**''[13] सत्य ही सच्चा तप है। इसी तप की कसौटी में कसकर मानव जीवन का निर्माण खरा उतरता है।

मानव निर्माण का अभूतपूर्व अंग आध्यात्मिकता :

आध्यात्मिकता मानव जीवन के निर्माण हेतु एक अहम अंग है। मनुष्य को आध्यात्मिकता का पिपासु होना चाहिए। इसके बिना उसका निर्माण असंभव है। मानव का लक्ष्य है कि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तामसिकता से ऊपर उठकर आत्मा की उत्तर ज्योति का दर्शन करते हुए अन्त में परमात्मा रूपी सूर्य का साक्षात्कार करें[14]। आध्यात्मिकता ही वह तत्व है जो मनुष्य के लिए सत्य, अहिंसा, शांति, पवित्रता तथा ज्ञान का सच्चा मार्ग प्रशस्त करती है, और मानव निर्माण के लिए प्रेरक तत्व बनती है। ''महर्षि'' दयानन्द जी ने कहा है कि एक वैदिक साधक के लिए आदित्य वर्ण प्रभु का दर्शन एक सुखद अनुभूति है। वैदिक साधक कह रहा है:-

''मैने इस महान आदित्यवर्ण प्रभु को जान लिया है, जो तमस से परे है, उसी को जानकर, उसी की अनुभूति पाकर, मनुष्य मृत्यु को पार करता है।[15]'' **निष्पापता मानव जीवन के निर्माण की गरिमाः** निष्पापता अर्थात् जीवन में पाप का कोई स्थान नहीं होना ही मानव-निर्माण की गरिमा है। पापों से मुक्त रहने के लिए वेदों में शतशः प्रार्थनाएं मिलती हैं। एक वैदिक साधक पाप भरे जीवन से मुक्त होने के लिए अपनी आतुरता प्रकट करता हुआ कह रहा है। ''अग्नि से, वनस्पतियों से, औषधियों से, लताओं से, इन्द्र से, ब्रहस्पति से हम कहते हैं कि वे हमें पाप से छुड़ायें! ''दिन से, रात्रि से, सूर्य चन्द्रमा से, सब आदित्यों से हम कहते हैं कि वे हमें पाप से छुड़ाये।'' ''वायु से, अन्तरिक्ष तथा सभी दिशायें हमें पाप से छुटकारा दिलाये[16]'' इस प्रकार वास्तव में निष्पाप जीवन ही मानव निर्माण का एक सच्चा मार्ग प्रशस्त करता है।

माधुर्य और सौहार्द्र, तेजस्विता और कीर्ति तथा शान्ति मानव निर्माण के अमूल्य तत्वः

सर्वप्रथम उपरोक्त अमूल्य तत्वों में माधुर्य और सौहार्द्र का नाम प्रमुखतः आता है। किसी भी मनुष्य में जीवन के निर्माण को समुचित बनाने के लिए माधुर्य और सौहार्द्र का होना अत्यन्त अनिवार्य हैं। वैदिक संस्कृति में मानव का जीवन मधुमय और सौहार्द्रमय है एवं वैदिक स्तोता हमेशा यही कामना करता है कि मैं वाणी से मधुमय ही बोलूं, मैं शहद के समान मीठा हो जाऊँ[17] वह अपने दैनिक व्यवहार में माधुर्य और सौहार्द्रता लाना चाहता है। अतएव वैदिक स्तोता माधुर्य और सौहार्द्र की याचना करता हुआ कहता है कि ''अपनो से मेरा माधुर्य और सौहार्द्र हो, अपरिचितों से सौहार्द्र हो, हे देवों तुम मेरे जीवन में मधुरता और सौहार्द्रता की भावना को केन्द्रित करा दो''[18]।

दूसरे, तेजस्विता और यशस्वी जीवन भी मानव-निर्माण को पूर्णता प्रदान करता है। मनुष्य को हमेशा तेज और यश के प्रतीक अग्नि और सूर्य को आदर्श बनाकर सदा अपने सम्मुख रखना चाहिए। ''अथर्ववेद'' में कहा गया है कि जैसे सूर्य यशस्वी है, अग्नि यशस्वी है, चन्द्रमा यशस्वी है, वैसे ही अपने जीवन में मनुष्य को सब भूतों में यशस्वी बनने की सदैव कामना करनी चाहिए[19]।

तीसरे, शान्ति मानव जीवन के निर्माण के लिए परमधाम है। ईर्ष्या, द्वेष, कलह और अशान्ति का वातावरण वेदों को प्रिय नहीं है। सत्य है कि यदि मनुष्य अपने जीवन में नैतिक एवं शाश्वत मूल्यों का सदैव अनुसरण करता है तो उसे चारों तरफ शान्तिमय वातावरण ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखलाई देगा, और वह हमेशा अपने जीवन में शान्तिरूपी रस का पान कर सकेगा। लेकिन यदि वह इनको अपने जीवन का आधार नहीं बनाता है तो उसको अशान्ति का ही सामना करना होगा। सो मनुष्य को अपने जीवन में नैतिक एवं शाश्वत मूल्यों, धारणाओं तथा तथ्यों पर ही अड़िग रहना चाहिए। तभी वह शान्ति जो उसके जीवन का अमिट रस है, उसका पान करके अपने जीवन के निर्माण को पूर्णता प्रदान कर सकता है अन्यथा नहीं।

एक आर्य समाजी का जीवन यज्ञमय, प्रगतिशील जागरूक, सत्यमय, निष्पाप, माधुर्य और सौहार्दता से युक्त यशस्वी और शान्ति का अनुगामी है। वेद हमेशा उसको दानशीलता, कर्मण्यता, आशावाद, तपस्या तथा आसुरी शक्तियों पर विजय प्राप्त करने की निरन्तर प्रेरणा दे रहे हैं।

इस प्रकार उपरोक्त सभी तत्वों के द्वारा मनुष्य जीवन का निर्माण अत्यन्त सहजता एवं सरलता के साथ पूर्णत: संभव हो जाता है। इन सभी के अतिरिक्त प्रजातंत्र पर आधारित सुदृढ़ राज्य एवं दण्डनीति भी मानव-निर्माण के लिए आवश्यक है। क्योंकि सुदृढ़ रक्षा तथा एक सुव्यवस्थित न्याय व्यवस्था एवं दण्डनीति से प्रत्येक मनुष्य को अपूर्व बल प्रदान होता है।

यम नियमों का विधान:

अन्तत: मानव निर्माण हेतु महर्षि दयानन्द ने मनुष्य को पंच यम नियमों अर्थात् सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के पालन करने का निर्देश दिया है। इन सभी यम नियमों में धर्म के प्राय: सभी लक्षण समाविष्ट हैं। तथा इनके द्वारा मनुष्य इन्द्रिय संयम पर भी विजय प्राप्त कर सकता है। इसीलिए महर्षि दयानन्द जी ने इनके विधान पर अत्यन्त दृढ़ता पूर्वक बल दिया है[20]।

नि:सन्देह मानव निर्माण के लिए किये गये प्रयत्न आर्य समाज के लिए गौरव की बात है। किन्तु आज यह स्वीकार करने में थोड़ी सी भी दुविधा नहीं है कि आर्य समाज के इन प्रयत्नों से जिस प्रकार के मनुष्यों का जितनी मात्रा में निर्माण होना चाहिए था, वह नहीं हो सका है। उसका कारण यह है कि आज समग्र विश्व में भौतिकता और नास्तिकता की आंधी चल रही है। उसमें आर्य समाज के नियम एवं सिद्धांत तो अडिग हैं, पर उसके व्यवहारिक रूप में कुछ कठिनाईयां उत्पन्न हुई हैं। यही कारण है कि मानव निर्माण का कार्य जिस गति से होना चाहिए था, वह नहीं हो सका है। अत: आज आवश्यकता है कि हम इस दिशा में अपने संकल्पों और प्रयत्नों को और अधिक तीव्रता प्रदान करे तभी मानव निर्माण का कार्य पूर्णत: संभावित हो सकेगा। जैसे-भौतिकता और नास्तिकता की तीव्र आँधी का मुकाबला करने के लिए हमें विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों-सनातन धर्म, सिख, बौद्ध, जैन आदि को मिलाकर कुछ कार्यक्रम हाथ में लेने होंगे। आर्य समाज सर्व-धर्म सम्मेलन करता है, उनमें धर्म के सर्वमान्य तत्त्वों पर विचार होता रहा है। आज के समय में आवश्यकता इस बात की है कि उन समान तत्वों के प्रचार की कोई सीधी योजना क्रियान्वित की जाये। इसकी पहल आर्य समाज से पूर्णत:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेक्षित है। हमें विश्वास है कि आर्य समाज अपने मानव निर्माण के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति में सतत् सक्रिय रहेगा।

''ओ३म् शान्ति! शान्ति! शान्ति!''

सन्दर्भ

1. आर्योद्देश्यत्नमाला- 56 क्रमांक पर/56 क्रमांक पर एवं स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः- 25 क्रमांक पर
2. आर्योद्देश्यरत्नमाला- 56 क्रमांक पर
3. ऋग्वेद- 5, 49, 5 का दयानन्दकृत का भावार्थ,
4. ''हे मनुष्याः ''येन पुरुषार्थेन विद्धांसो भूत्वा युवानोअपि वृद्धा जायन्ते, तं सततं संचिनुत''- ऋग्वेद- 6, 44,3 का भावार्थ
5. गोपथ उ० - 5,4
6. यजुर्वेद - 40, 14
7. ऋग्वेद- 8, 2, 18
8. ऋग्वेद- 5, 44, 14
9. अथर्ववेद- 8, 1, 6
10. अथर्ववेद- 2, 11, 5
11. ऋग्वेद- 10, 85, 1
12. यजुर्वेद- 1, 5
13. मु०उप०- 3, 1, 6
14. ऋग्वेद- 1, 50, 10
15. यजुर्वेद- 31, 18
16. अथर्ववेद- 11, 6
17. अथर्ववेद- 34, 3
18. अथर्ववेद- 7, 54, 1
19. अथर्ववेद- 6, 39, 3
20. मनुस्मृति- 2, 93

'इति श्री'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निपुराण में आयुर्वैदिक चिकित्सा

डॉ० उमा जैन
रीडर, संस्कृत विभाग
मु.ला.एण्ड जायना. खे. गर्ल्स कॉलेज, सहारनपुर

आयुर्वेद भारतवर्ष का लोकोपयोगी जन जीवन से नित्य प्रति सम्बद्ध प्राचीन चिकित्सा शास्त्र है। जो पुरातन काल से भारतवासियों के स्वास्थ्य की रक्षा करता आ रहा है। अग्निपुराण में विविध विद्याओं के साथ-साथ आयुर्वेद का भी वर्णन मिलता है। जिसमें मानव मात्र के रोग निवारण का ही नहीं वरन् अश्व, गौ, वृक्ष एवं गज आयुर्वेद का भी वर्णन है। सुश्रुत संहिता में आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपांग कहा गया है।[1] आयु की वृद्धि करने वाला वेद आयुर्वेद कहलाता है।[2] सुश्रुत संहिता में- 'आयुस्मिन् विद्यते, अनेन वाऽऽयुर्विन्दन्ति इत्यायुर्वेदः।'[3] अर्थात् जिसमें आयु के हितकर और अहितकर तत्त्वों का विचार हो और जो दीर्घ आयु प्राप्त कराता है, वह आयुर्वेद है।[4] चरक का कथन है- 'आयुर्वेदयति इति आयुर्वेदः।'[5] अर्थात् जो आयु का ज्ञान कराता है, वह आयुर्वेद है।

चरक ने आयुर्वेद का उद्भव ब्रह्मा से माना है, ब्रह्मा से सारी विद्या प्रजापति (दक्ष प्रजापति) ने ग्रहण की और प्रजापति से अश्विनी कुमारों ने और उनसे इन्द्र ने, इन्द्र से भारद्वाज ने और उनसे अन्य ऋषियों ने।[6] स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य की रक्षा करना और रोगी व्यक्ति के रोग को दूर करना आयुर्वेद का उद्देश्य है।[7] चरक ने धातुओं की विषमता को रोग तथा धातुओं की समता को नीरोगता कहा है। आरोग्य का ही नाम सुख है और रोगावस्था का नाम दुःख है।[8] अतएव धातुओं की समवस्था में ही आयुर्वेद है।[9] सुश्रुत ने भी आयुर्वेद का यही प्रयोजन बतलाया है।[10] सुश्रुत तथा चरक संहिता में आयुर्वेद के आठ अंगों का वर्णन मिलता है।11

1. काय चिकित्सा- सर्वांग में रहने वाले ज्वरादि रोगों की चिकित्सा।
2. शालाक्य- जत्रुसन्धि (ग्रीवा) से ऊपर होने वाले रोगों की चिकित्सा।
3. शल्य चिकित्सा- शल्य (चीर फाड़) से सम्बन्धित चिकित्सा।
4. विषगर वैरोधिक प्रशमन- विष चिकित्सा।
5. भूत विद्या- भूत-प्रेत, ग्रहादि की शान्ति हेतु चिकित्सा।
6. कौमार भृत्य- गर्भ विज्ञान एवं बाल चिकित्सा।
7. रसायन- आयु, मेधा, बल, यौवन वृद्धि के रोग।
8. वाजीकरण- वीर्य आदि से सम्बन्धित रोगों की चिकित्सा।

पुराणों में अश्विनी कुमारों की कार्य कुशलता के अनेक उदाहरण अंकित हैं जिनको पढ़कर आज का वैज्ञानिक जगत भी आश्चर्य चकित हो जाता है। पुराणों के अनुसार एक बार क्रुद्ध होकर भैरव ने ब्रह्मा का सिर काट दिया, तब अश्विनीकुमारों ने उसे जोड़कर सी दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था तथा देव-दानव संग्राम में देवताओं के क्षत-विक्षत शरीर को अनेक उपचारों द्वारा अच्छा कर पुनः युद्ध के योग्य बना दिया था। दक्ष के यज्ञ में सती के प्राण त्याग देने पर शिव के गणों द्वारा यज्ञ विध्वंस कर दक्ष का सिर काटकर अग्निकुण्ड में डाल दिया, पूषा के दाँत तोड़ दिये और देवताओं की आँखे फोड़ दी, तब अश्विनी कुमारों ने बकरे का सिर काटकर दक्ष के सिर में जोड़ दिया था। पूषा के बनावटी दाँत लगा दिये तथा देवताओं की आँखें ठीक कर दी थी।[12] असुरों के गुरु शुक्राचार्य देवासुर संग्राम में मरे हुए असुरों को सञ्जीवनी विद्या द्वारा जीवित कर दिया करते थे।

अग्नि पुराण के 279 से लेकर 292 अध्यायों तक रोगों का और 583 अध्याय में नाना रोगों को दूर करने वाली औषधियों का क्रमशः सिद्धौषध, सर्वरोगहर औषध, रसादि लक्षण, वृक्षा यजुर्वेद, नानारोग हर औषध, मृतसंजीवनीकर योग, कल्पसागर, अश्ववाहनसार, गजचिकित्सा, अश्वचिकित्सा, अश्वशान्ति, गजशान्ति, शान्त्यायुर्वेद गन्ध परिभाषा, नागलक्षण, दष्टचिकित्सा, पञ्चाङ्गरूद्रविधान, विषहन्मन्त्रोषध और गोनशादि आयुर्वेद का हस्तमलक वर्णन किया गया है। जो नितान्त व्यवहारोपयोगी होने के साथ प्रामाणिक भी है।[13]

अग्निपुराण में चार प्रकार- 1. शारीरिक ज्वर आदि, 2. मानसिक-क्रोधादि मानसिक रोग 3. आगन्तुक- विधात से उत्पन्न होने वाले आगन्तुक रोग, 4. सहज- भूख और वृद्धता आदि से होने वाले रोगों का वर्णन किया गया है, जो समय पर सभी को होते है।[14] प्रत्येक मनुष्य कभी न कभी वात, पित्त और कफ इन सभी दोषों से ग्रसित हो जाता है। स्निग्ध तथा उष्ण भोजन, तेल की मालिश एवं तेल का पान वायु दोष को नष्ट करता है। घृत, दुग्ध मिश्री एवं चन्द्रमा की किरणों का सेवन पित्त व्यायाम कफ का नाश करता है।[15]

अग्निपुराण में लाजाओ का माण्ड़ पीने, मोथा, शरीर (खसखस), उदीच्य एवं सौंठ का काढ़ा पीने से ज्वर ठीक हो जाता है। वायु से होने वाले ज्वर को बेल की गुद्दी, आलू, अरणी, पाठ व गम्भारी की छाल का काढ़ा पिलाने से ठीक किया जा सकता है पर विवेचन कराना लाभप्रद रहता है।[17] सौंठ रहित षडंग (नागरमोथा) चित्तपापड़ी, खश, लाल चन्दन, सुगन्धवाला का पान करने से रक्त पित्त ठीक हो जाता है।[18] पुराना चावल खाने तथा लॉग की छाल का काढ़ा पीने से अतिसार, गेहूँ, शाली, मूँग, ब्रह्मार्क्ष, खदिर, अभया, पञ्चकोल, जांगल, भिम्बधात्री (नीम के पाँचों अंग जैसे त्वचा, पत्र, पुष्प, फल और सार), मातुलुँग रस (बिजौरे नीम्बू का रस) शुष्क मूलक व सैन्धव नमक का पान करने तथा विडंग, काली मिर्च, मोथा, लौंग, सुवर्चिका, मैनसिल व वचा को गोमूत्र में पीसकर लगाने से कुष्ठ में लाभ मिलता है।[19] गेरू लाल चन्दन, लाख व मालती के पुष्प की कली सभी को पीसकर बत्ती बनाकर उसको समय-समय पर घिसकर लगाने से सम्पूर्ण श्वित्र (सफेद कोढ़) अच्छा हो जाता है।[20]

अग्निपुराण में वर्णित वट का अंकुर, काकड़, सिंगी, इलायची, लोध्र, अनार व मुलहटी के चूर्ण को चावल के पानी में मधु मिलाकर पीने से उल्टी का आना व प्यास का लगना दूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाता है, इसी प्रकार गुर्च, अडूस, लोध्र व पीपरि के चूर्ण को मधु से लेने पर भी तृषा की शान्ति होती है।[21] दूब के रस का नस्य लेने से नकसीर आनी बन्द हो जाती है।[22] जायफल, मैनफर, सौंठ, मिर्च, पिपरि और हल्दी का काढ़ा बनाकर तथा हरड़ का कल्क बनाकर तैल में पकाकर मुँह में रखने से दाँत की पीड़ा दूर हो जाती है।[23] साथ ही लौंग, त्रिफला, चित्रक का चूर्ण शहद के साथ मुख में धारण करने से ग्रीवा और दन्त रोग कम हो जाता है। केशर के बीज को खाने से दांत भी मजबूत हो जाते है। देवदारू, पृश्निपर्णी, सहिजन, त्रिफला व नागरमोथा का काढ़ा मुनक्का व पीपरि का कल्क छोड़कर पीने से तथा वायविडङ्ग का चूर्ण एवं गोमूत्र का पान करने से सभी प्रकार के कृमि नष्ट हो जाते है।[24] करूज, अरिष्ट तथा निर्गुण्डी का रस व्रण कृमियों को नष्ट कर देता है।[25] देवदारू, नागरमोथा, कूठ, खस और सौंठ को कांजी में पीसकर सिर पर लेप करने से शिरोवदना[26] अदरख रस का तेल पकाकर कुल्ला करने से ओष्ठ रोग[27] लहसुन, अदरख व सहिजन का रस अथवा सेंधा नमक जल में पकाकर वस्त्र से छानकर गरम-गरम कान में डालने से कान की पीड़ा समाप्त हो जाती है।[28]

अग्निपुराण के अनुसार त्रिकुटा (सौंठ, मिर्च, पीपल) त्रिफला (आँवला, हरड़ व बहेड़ा), तूतीया व रसञ्जन को जल में बारीक पीसकर आँख में अञ्जन लगाने से, लौंग को घी में भूनकर कांजी तथा सेंधा नमक के साथ पीसकर आँख में लगाने से गेरू व चन्दन को घिसकर नेत्र के ऊपर लेप करने से निरन्तर त्रिफला का सेवन करने से नेत्र रोग दूर हो जाते है।[29] धनिया, नारियल, गोमूत्र, सुपारी, सौंठ का क्वाथ मुँह में कुछ देर रखने से जिह्वा सम्बन्धित बीमारी[30], चित्रक, वायविडङ्ग, सौंठ, मिर्च, पीपल का कल्क दूध में मिलकार पीने से अरूचि (भूखादि न लगना)[31], निसोध, जीवन्ती, जमालगोटे की जड़, मजीठ, हल्दी, दारू हल्दी, गारूड़ी व नीम के पत्तों के लेप से भगन्दर ठीक हो जाता है।[32] व्रण को पकाने के लिए काञ्जी में साधित सत्तु की पिण्डी, पके हुए घाव के भेदन में और भरने में नीम के वल्कल का कल्क लाभदायक होता है। तथा व्रण के उपचार के लिए सूची कर्म अर्थात् सुई से शल्य चिकित्सा करनी चाहिए।[33]

अग्निपुराण में शारीरिक रोगों के उपचार के साथ-साथ मद, उन्माद, पालगपन, मिर्गी आदि मानसिक रोगों का उपचार भी वर्णित है। सौंठ, गुर्च, भटकैया, पुष्कर मूल और भदेसु के काढ़े में पीपरि का चूर्ण मिलाकर पीने से मूर्च्छा और मद, हींग, काला नमक, सौंठ, मिर्च, पीपरि को 8 तोला लेकर चौगुना गोमूत्र तथा 1/4 घृत में पकाकर पीने से पागलपन, शंखपुष्पी, वच, कुठ के कल्क से एवं ब्राह्मी के स्वरस में पकाया गया घृत पुराना मिर्गी रोग एवं पागलपन को नष्ट करता है।[34] अग्निपुराण में विषैले जानवरों के काटने से शरीर में फैले हुए विष का उपचार भी वर्णित किया गया है। नीम के पत्तों को चबाने से सर्पदंश, मयूर पत्री और घृत का धूम देने से बिच्छू दंश, मदार का दूध, तिल का तेल, मांस रस एवं गुड समान मात्रा में देने से विषैले कुत्ते का दंश तथा निसोथ व चौराई की जड़ पीसकर घी में मिलाकर पीने से सांप और बिच्छू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का विष नष्ट हो जाता हे।[35]

अग्निपुराण में विभिन्न व्याधियों की चिकित्सा के साथ-साथ कुछ सिद्ध योगों का वर्णन भी मिलता है जिनसे आयु, बुद्धि आदि की वृद्धि होती है। मुलहठी के रस के साथ त्रिफल का सेवन करने से त्वचा की झुरियाँ एवं बाल का सफेद होना दूर हो जाता है।[36] दो सैर कैवाच का रस तथा दूध में मुलहठी तथा कमल का कल्क बनाकर एक पाव तेल को पकाकर उसका नस्य लेने से बाल का पकना रूक जाता है और पका हुआ बाल काला हो जाता है।[37] मण्डूकपर्णी के चूर्ण को दूध के साथ प्रतिदिन लेने से बलि (मुख की झुरियाँ) तथा पलित (बालों की सफेदी) कम हो जाती है।[38] बचा का सेवन घी, दूध या कडुवे तेल के साथ करने से, मुलहठी या शंख पुष्पी क्षीर के साथ खाने से बालकों की वाणी, स्वरूप, आयु एवं श्री में वृद्धि होती है। वचा, अग्नि शिखा, अडूस, सौंठ, पीपरि हल्दी को मूलहठी व सैन्धव चूर्ण के साथ प्रातः काल जल से लेने पर बुद्धि की वृद्धि होती है।[39]

अग्निपुराण में मानव चिकित्सा के साथ-साथ वृक्ष और पशु-चिकित्सा का भी वर्णन मिलता है। वृक्ष से फलों के झरने पर वृक्ष की जड़ में कुलत्थी, उड़द, मूँग, तिल एवं यव के चूर्ण मिश्रित शीतल जल से सिञ्चन करने पर वृक्ष पुनः पुष्प और फलों से लदा रहेगा। साथ ही भेड़-बकरी के गोबर का चूर्ण, जवा और तिल का चूर्ण घी में सानकर शीतल जल से वृक्ष सिंचने से फल लगते है। वायविडङ्ग का चूर्ण व मछली का मांस सामान्य रूप से सभी वृक्षों के रोगों को नष्ट कर देता है।[40]

अग्निपुराण के अनुसार हाथी का दस्त बन्द करने के लिए छोटे बेल, लोध और आँवलों को कूटकर मिश्री मिलाकर गोला बनाकर हाथी को खिलाना चाहिए।[41] दुर्बल हाथी को दूध पिलाना अच्छा होता है।[42] मजीठ, गुलहठी, दाख, भटकटैया, लालचन्दन, खीरा का बीज, काकड़ासिंही और कसेरू को बकरी के दूध में पकाकर ठंड़ा होने पर शक्कर के साथ पिलाने से घोड़े का रक्तमेह छूट जाता है।[43] गोबर, नमक, मिट्टी इनको गोमूत्र में पकाकर घोड़े के शरीर पर लगाने से मच्छर के डँसने का जहर उतर जाता है तथा सूजन भी दूर हो जाती है।[44] गाय के सींगों के रोगों पर नमक और तेल लगाना चाहिए। अतिसार के रोगी गाय और बैलों को हरदी और पाठा पिलाकर देने से रोग शान्त हो जाता है।[45] अतिसार के रोगी गया और बैलों को हरदी और पाठा मिलाकर देने से रोग शान्त हो जाता है। बिल्वमूल, अपामार्ग, आँवला, पाटल, इन्द्र जौ इन सबका दाँतों की जड़ में लेप करने से दाँत दर्द दूर हो जाता है। उड़द, तिल और गेहूँ को सेंधा नमक के साथ गाय के दूध और घी में मिलाकर पिलाने से बछड़े पुष्ट हो जाते है।[46]

भारतीयों के इहलौकिक और पारलौकि अभ्युद्य का साधन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष शारीरिक आरोग्यता पर ही अवलम्बित होता है; क्योंकि रोगी मनुष्य कुछ भी नहीं कर पाता, किन्तु निरोगी प्राणी सब कुछ कर सकता है। अतः भारतीय आयुर्वेदिक चिकित्सा ही स्थायी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभप्रद हो सकती है और इससे धन, धर्म एवं स्वास्थ्य की उन्नति हो सकती है। आयुर्वेद में केवल तत्काल उपस्थित रोगों की ही चिकित्सा नहीं की जाती है, अपितु उसके मूल कारण का भी निदान करके उसे दूर करने का प्रयास किया जा सकता है। अत: आयुर्वेदिक चिकित्सा पूर्ण वैज्ञानिक है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अत: अनादि परम्परा से प्राप्त, पुराणों से पूर्णतया अनुमोदित आयुर्वेद का सर्वविध प्रचार करना भी हम भारतीयों का प्रमुख कर्त्तव्य है, क्योंकि एलोपैथिक चिकित्सा से तत्कालिक लाभ तो अवश्य हो जाता है परन्तु स्थायी लाभ कम हो जाता है और कभी-कभी उसके प्रयोग से अन्य रोग भी महसूस होने लगते है। जबकि आयुर्वेदिक औषधियों का लाभ धीर-धीरे और स्थायी रूप में दिखलायी पड़ता है। मूल्य में भी कम होने के कारण जनसाधारण इससे अधिक लाभान्वित हो सकती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते है कि अपनी उक्त विशिष्टताओं के कारण आज के वैज्ञानिक युग में आयुर्वेद चिकित्सा अपनी जड़े पूर्ण रूपेण जमाएँ दुए है। एलोपैथिक चिकित्सा के साइड् प्रभाव एवं महंगी होने के कारण अधिकांश जनता आयुर्वेदिक चिकित्सा की ओर अग्रसर हो रही है। अतएव हम सभी को सर्वसुलभ आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति और परमोपकारी एवं दयालु आयुर्वेद के विद्वानों का सम्मान करना चाहिए जो हमारी भारतीय परम्परा की एक अमूल्य धरोहर है।

सन्दर्भ

1. सुश्रुत संहिता, सूत्र स्थान 1/6
2. चरक संहिता, सूत्र स्थान 1/27
3. सुश्रुत सं. सूत्र स्था. 1/15
4. सुश्रुत सूत्र. 1/23
5. चरक सूत्र. 30/23
6. वही 4/5
7. वही 30/26
8. वही 9/4
9. वही 1/53
10. सुश्रुत सूत्र. 1/22
11. वही 1/6-7, चरक. सूत्र. 30/28
12. पौराषिक रहस्यों का समीक्षात्मक अनुशीलन, पृ. 568ण
13. अग्निपुराण 285/10
14. वही 2801-2
15. वही 280/40-48

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

16. अग्नि. में विविध विद्याएँ, पु. 67
17. अग्नि. 279/8
18. वही 279/8
19. वही 279/13-16
20. वही 279/45
21. वही 285/12-14
22. वही 283/7
23. वही 283/9
24. वही 283/5-6
25. वही 285/36
26. वही 279/43
27. वही 283/8, भारत भैषज्य रत्नम्, भाग 2, पृ. 333
28. अग्निपुराण 283/8, 285/72
29. वही 279/46-48
30. वही 283/10
31. वही 283/11
32. वही 283/53
33. वही 279/54-55
34. वही 285/17-19
35. वही 579/56-60
36. वही 579/50-51
37. वही 285/58-59
38. वही 286/5
39. वही 283/3-5
40. वही 282/10-14
41. वही 287/13
42. वही 286/1
43. वही 289/21-22
44. वही 288/56
55. वही 292/53,28
56. वही 292/15, 32

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत के नारीपात्र एक अन्तर्दृष्टि

डॉ० पद्मजा अभित
रीडर, संस्कृत विभाग
मु.ला. जय नारायण खेमका कन्या
महाविद्यालय, सहारनपुर

महर्षि वेदव्यास कृत 'महाभारत विश्व साहित्य भंडार का ऐसा महाग्रंथ है, जो मानव की बुद्धि, आत्मा एवं मन के विविध भावों का ऐसा मंथन प्रस्तुत करता है। जिसके सम्मुख श्रेष्ठ से श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक ग्रन्थ भी बौना दिखलायी देता है। महाभारत में मानव संस्कृति के प्रत्येक पक्ष का चित्रण है। इसमें काव्य है, राजनीति है, दर्शन है, साथ ही यदि धर्म है तो अधर्म भी है, नैतिकता है तो अनैकितता भी है, त्याग है तो लोभ भी है, नीति है तो अनीति भी है। मानव मन के उस प्रत्येक चिन्तन अन्तर्द्वन्द का ऐसा चित्रण है जो प्रत्येक युग का सत्य है। इस ग्रन्थ में सम्पूर्ण मानव जाति का अतीत भी है और वर्तमान भी और इसमें भविष्य के गर्भ में विद्यमान आत्ममंथन और अन्तर्द्वन्द बीज रूप में अवस्थित है। इसका कारण यह है कि महाभारत काव्य का रथचक्र उस द्वारकावासी कृष्ण की धुरी पर घूमता है जो परम्परा और आदर्श के घेरे में कभी नहीं बंधते जैसा कि सुमन जी ने कहा है 'पाण्डवों के सहायक श्रीकृष्ण का धर्म न स्वार्थ है न परार्थ अपितु यथार्थ है।[1]

यूं तो महाभारत के हर पात्र का चरित्र किसी भी प्रबुद्ध अध्ययनकर्त्ता के शोध अथवा विवेचना का आकर्षण केन्द्र हो सकता है चाहे वह स्वयं महानायक श्रीकृष्ण का मानवीय गुणों एवं सोलह कलाओं से परिपूर्ण चकित कर देने वाला व्यक्तित्व हो अथवा चिर प्रतिज्ञ महातेजस्वी भीष्म पितामह का चरित्र हो किन्तु समय सीमा के कारण प्रस्तुत शोध पत्र में महाभारत के उन दो नारीपात्रों के अन्तर्द्वन्द के भीतर मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि से झांकने का प्रयास किया गया है। जिनकी कौरव-पांडव युद्ध की पृष्ठभूमि में निर्णायक भूमिका रही है और वह दो नारीपात्र हैं गांधारी एवं द्रौपदी गांधार नरेश की पुत्री गांधारी अपने पितृगृह में रूपवती धर्मार्थदर्शिनी, बुद्धिमती एवं कृतनिश्चया के रूप में विख्यात थी।[2] गांधारी के इन गुणों की ख्याति से प्रभावित भीष्म पितामह ने अपने अनुज पुत्र जन्मान्ध धृतराष्ट्र से गांधारी के विवाह का प्रस्ताव गांधार नरेश के पास भिजवाया। प्रस्ताव की स्वीकृति में ही अपना हित देखकर गांधार नरेश ने कुमार के साथ गांधारी को हस्तिनापुर भिजवा दिया। धृतराष्ट्र के साथ गांधारी के विवाह का प्रयोजन कदाचित भीष्म पितामह के मन में यह रहा होगा कि इस परिणय से अनुज पुत्र का राजनैतिक भविष्य सुरक्षित एवं व्यवस्थित हो जायेगा तथा दृष्टिहीन कुरुपुत्र को अपने नयनों से सम्पूर्ण विश्व का दृष्टि सुख देकर राजव्यवस्था एवं कुलमर्यादा की रक्षा में ढाल बनाकर गांधारी जैसी सक्षम नारी अपने पति की अक्षमता की पूरक बनकर राज्य संचालन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायिका एवं मार्गदर्शिका की भूमिका वहन करेगी। भीष्म पितामह का ऐसा सोचना अनुज पुत्र के कल्याण की दृष्टि से सर्वथा स्वाभाविक है किन्तु गांधार नरेश का अपनी रूपवती एवं धर्मपरायणा पुत्री का एक अन्धे राजकुमार से विवाह की सहमती देना आश्चर्य में डाल देता है। संभवत: इसके पीछे राजनीति ही रही हो। हस्तिनापुर के विशाल वैभव की साम्राज्ञी पुत्री को बनाना तथा इसके माध्यम से समृद्धि के उपभोग का लाभ पुत्र शकुनि को दिलवाने की इच्छा भी संभवत: कारण रही होगी। धृतराष्ट्र के साथ विवाह के पश्चात् जीवनपर्यन्त आंखों पर पट्टी बांधकर पति की अनुगामनी होने का ऐसा अभूतपूर्व निर्णय गांधारी ने लिया[3] जिससे समस्त कुरुकुल अवाक् रह गया। गांधारी के इस अद्भुत एवं आत्मघाती निर्णय के पीछे संभवत: नारी मन के अवचेतन में दमित अपमान का वह पीडादायक अंश रहा होगा जिसने इस विचित्र निर्णय के लिए उसे प्रेरित किया कि उसके जैसी सुन्दरी गुणी नारी के लिए पिता के द्वारा एक अंधे पति का चयन किया गया और कहीं न कहीं जगविख्यात नीतिवान-भीष्मपितामह के प्रस्ताव से वह आहत हुई होगी।

महाभारत के इस गांधारी विषयक घटनाक्रम के पुनरावलोकन के उपरान्त युग की नारी की उस मनोवृत्ति की पर्तें खुलती दिखलायी दे रही हैं कि नारी के दम्भ को अपमान की ज्वाला सहनी पड़े तो वह प्रतिशोध की उस चरम सीमा तक भी पहुँच सकती है जहाँ वह न केवल राजसमाज को हानि पहुँचाती है बल्कि स्वयं के लिए भी आत्मघाती सिद्ध हो सकती है। सामाजिक इतिहास के पन्ने पलटने पर अनेक सामान्य परिवारों में बुद्धिमती से बुद्धिमती, धैर्यवती नारियों ने भी जीवन के किसी मोड़ पर यदि अपमान के घूंट पिये हैं तो ऐसे ही समाज से उन्होंने प्रतिशोध लिया है।

गान्धारी के चरित का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर उसके अन्त:करण में छिपे एक ओर महत्त्वपूर्ण पक्ष को उजागर करना भी यहाँ सन्दर्भ संगत होगा जहाँ वह अपने भाई शकुनि के पाण्डवों के विरूद्ध षडयन्त्र[4] के कुटिल प्रयासों एवं कुचक्रों का न तो स्पष्टतया विरोध करती है बल्कि धर्म की दुहाई देते हुए अपना मौन समर्थन देती रहती है और यदा दुर्योधन को कलहप्रिय मामा शकुनि का साथ छोड़ने के लिए कहकर[5] अपने कर्त्तव्य की इति श्री मान लेती है।

युद्ध में पांडवों द्वारा समस्त कौरव पुत्रों को मार देने के पश्चात् पुत्र शोक से विह्वल गांधारी पांडवों को शाप देने को जब तत्पर होती है तब व्यास उसे स्मरण दिलाते हैं कि यतोधर्मस्ततोजय: (स्त्री. 17/6) का उद्घोष करना चाहती हो। तुम्हारी सच्चाई ही तो धर्मराज की जीत बनी है, क्रोध पर नियंत्रण कर धर्म का स्मरण करो।[6] व्यास के समझाने पर वह शान्त हुई किन्तु पुन: उसका शोक भड़का और उन्होंने युधिष्ठिर को बुलवाया। युधिष्ठिर ने केवल यही कहा कि मैं ही तुम्हारे पुत्र का हन्ता हूँ, पृथिवी पर नाश का कारण हूँ। गान्धारी धर्मराज की स्वीकारोक्ति के लिए तत्पर न थी ओर वह धर्मराज युधिष्ठिर की विनयशीलता के सम्मुख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरूत्तर हो जाती है (स्त्री. 15/28) किन्तु वही शोकाकुल गांधारी अपने अर्न्तमन के विद्रोह को उस समय रोकने में असमर्थ हो जाती है जब कृष्ण उसके सामने आते हैं। विलापकरती हुई वह कृष्ण को उपालम्भ देती हुई कहती है कि यदि तुम चाहते तो यह युद्ध टल सकता था। शतपुत्रों की माता होते हुए भी मैं आज निपूती बन्नी रो रही हूँ।[7]

कृष्ण तथा पांडवों पर गांधारी के इस विलापयुक्त दोषारोपण से ग्रंथकार ने समस्त नारीजाति के मातृहृदय के उस दुर्बलतम पक्ष का चित्रण किया है जहाँ आदर्श से आदर्श माता भी अपने सन्तान के दोषों को मोहवश प्रायः अनदेखा करती रहती है, उसे कुमार्ग पर चलने से नहीं रोक पाती और दोषी होने पर भी उसका बचाव करती हैं और दोषारोपण के लिए परिस्थिती या किसी अन्य को आधार बनाने का प्रयत्न करती है।

गांधारी के चरित का यह विरोधाभास महाभारत में अनेक स्थलों पर दर्शाया गया है। एक ओर गांधारी युद्ध में विजयश्री का आशीर्वाद मांगने आये पुत्र को धर्म की जय का संदेश देती है तो दूसरी ओर अधर्म की राह के पथिक अपने पुत्र दुर्योधन को कठोरता से आज्ञा देकर उस राह पर चलने का निर्देश भी नहीं देती है। भरी सभा में केशों से पकड़ कर घसीट कर लायी गई कुरुवंश की वधू को निर्वस्त्र कर अपनी जंघा पर बैठाने के अश्लील आचरण की सीमा पर पहुंचे अपने पुत्रों के दुराचरण का न तो कड़ा विरोध करती है और न ही कठोरतापूर्वक रोकने का प्रयत्न करती है। केवल मात्र औपचारिकतावश पुत्र वधु द्रौपदी के साथ सहानुभूति रखती है तथा अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ विलाप करने के अतिरिक्त अन्य कोई ठोस कदम नहीं उठाती।[8]

गांधारी के चरित्र में ममता में अंधी नारी अनेक स्थलों पर नारी के आदर्श रूप का हनन करती हुई प्रतीत होती है। धर्मशीलता का कवच धारण किये हुए गांधारी अन्त तक अपने अधर्मी पुत्र की महत्त्वाकांक्षाओं को प्रश्रय देती है। पांडवों द्वारा धर्म सम्मत युद्ध की जीत को अन्तिम समय में भी अपने अधर्मी पुत्र के पक्ष में करने के लिए वह अपने जीवनभर के सतीत्व के पुण्यफल का कुमार्गी दुर्योधन की देह को वज्र का बनाने में अपव्यय कर देती है।

गांधारी का पुत्रशोक से उपजा अज्ञान उस समय चरम सीमा पर पहुँच जाता है जब वह समस्त युक्ति तर्क छोड़कर कृष्ण को ही युद्ध के लिए दोषी ठहराती है तथा असहिष्णु होकर कृष्ण के साथ-साथ समस्त यदुवंशियों को विनाश का शाप तक दे देती है।[9] श्री कृष्ण इस शाप को हँस कर लेते हैं और गान्धारी को यह कहकर अप्रतिभ कर देते हैं 'चीर्णं चरसि क्षत्रिये' जो बात पहले ही घट चुकी है घटना प्रवाह में आ चुकी हैं, उसको अपने शाप से घटित करने जा रही हो।[10] पाण्डव यह सुनकर निराश हो जाते हैं परन्तु कृष्ण शोक नहीं करते अपितु गान्धारी से ही कहते हैं तुमने दुर्योधन जैसे ईर्ष्यालु दुरात्मा, वैरपुरुष, निष्ठुर ओर वृद्धों का अनादर करने वाले पुत्र को आगे किया 'कथामात्मकृतं दोषं मय्याधातुमिहेच्छसि (स्त्री पर्व 26/3) मुझे दोष देकर स्वयं दोष से मुक्त होना चाहती हो।

तवेव ह्यपराधात् कुरूवो निधनं गताः। स्त्रीपर्व २६/१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार श्रीकृष्ण की इस निष्ठुर फटकार में मोहांध नारी के पुत्र शोक की कहानी का अंत होता है।

प्रस्तुत शोधपत्र की दूसरी महत्वपूर्ण स्त्रीपात्र पांचाल नरेश द्रुपद की यज्ञाग्नि संभवा। पुत्री द्रौपदी है। महाभारत में द्रौपदी एक ऐसी नारी के रूप में प्रतिष्ठित है जो अतुलनीय रूपराशि की स्वामिनी के साथ-साथ तीव्र बुद्धि, स्वाभिमान तथा स्वभाव एवं वाणी की कोमलता के कारण नारी रत्न के रूप में विख्यात है। उसके उत्तम चारित्रिक गुणों का विस्तृत उल्लेख महाभारत के वनपर्व (सत्य माना द्रौपदी संवाद अ० 233-234) में उपलब्ध है, जिससे यह भी प्रमाणित होता है कि पाँच पतियों की पत्नी की विचित्र एवं कठिनतम भूमिका का निर्वाह करते हुए भी वह अपने को कितना संयत, संतुलित रखकर पतिव्रत धर्म का पालन करती है और पाण्डवों से समान रूप से प्रेम एवं स्नेह प्राप्त करने में सफल होती है।[12] यह दुहतर कार्य द्रौपदी जैसी विलक्षण एवं तेजस्विनी नारी के द्वारा ही संभव हो सकता है।

द्रौपदी के चरित्र का वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करने के लिए महाभारत की कथा के उस स्थल पर लौटना होगा। जहाँ द्रौपदी के पिता अपनी रूपवती, कृष्णवर्णा कन्या के लिए स्वयंवर का आयोजन करते हैं। अपने मित्र, शत्रु, द्रौणाचार्य से प्रतिशोध लेने के लिए रचा गया यह स्वयंवर सुन्दरी पुत्री की स्वतंत्रता का हनन करता है। क्योंकि तत्कालीन प्रचलित प्रथा के अनुसार राजपुत्रियों को पति के चयन का स्वयंवर में अधिकार प्राप्त था। पुत्री के कोमल हृदय पर अवश्य ही इसका प्रभाव पड़ा होगा कि यह स्वयंवर स्वाभाविक विवाह पद्धति नहीं थी अपितु प्रतिशोध की भूमिका थी।

महाभारत की मूलकथा में स्वयंवर के माध्यम से आगमन के पश्चात् द्रौपदी के जीवन में इससे भी अधिक विचित्र एवं मानव मष्तिष्क को किंकर्त्तव्य विमूढ बना देने वाला मोड़ आया। जब पतिगृह के द्वार पर सदा की भांति पाण्डव पुत्रों के द्वारा यह कहने पर 'मिक्षेत्यथा वेदयतां नराग्रयौ (आदि पत्र 190/1) तथा माता के अभ्यास वश बिना देखे ही 'मुऽक्ति समेत्य सर्वे (190/2) प्रत्युत्तर देने पर एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी जिसके फलस्वरूप सामाजिक एवं नैतिक विसंगतियों के अनेक 'मिक्षेत्यथा वेदयतां नराग्रयौ (आदिपर्व 190/2) प्रत्युत्तर देने पर एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी जिसके फलस्वरूप सामाजिक एवं नैतिक विसंगतियों के अनेक प्रश्नों ने सर्प की भांति अपने फन उठाकर तत्कालीन नीति विशारदों के सामने एक ऐसा संकट पैदा कर दिया और आज भी वही प्रश्न नारी के मन में मंथन का विषय बना हुआ है कि क्या स्त्री कोई वस्तु है जिसका उपभोग पुरुष समाज का पैतृक अधिकार है। निर्णय लेने में स्त्री की क्या कोई भूमिका नहीं है?

द्रौपदी का पाँच पतियों की पत्नी बनना जैसा उस समय के विद्वानों का निर्णय (आदिपर्व अध्याय 166) इतिहास की कोई सामान्य घटना नहीं है। इस पर अनेक प्रश्न चिह्न लगने चाहिए थे किन्तु खिन्नता होती है कि वाङ्मय में न तो इस घटना के लिए किसी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोषी बताया गया और न ही कुन्ती को इस असावधानी के लिए किसी का कोपभाजन होना पड़ा। इतने बडे अन्याय को पूर्वजन्म की किसी कथा के द्वारा एक मोटे आवरण से ढकने का प्रयास किया गया[13] तथा असमय के राजसमाज को भी अपराधबोध से मुक्त करा दिया गया। वस्तु की भांति पाँच पतियों में बटी नारी की व्यथा का अनुभव हर युग की सामान्य से सामान्य स्त्री भी अनुभव करती है और संभवत: द्रौपदी की यह व्यथा आक्रोश बनकर स्थान-स्थान पर महाभारत के कथाक्रम में समय-समय पर झलकती है।

द्रौपदी के चरित्र का एक साहसी एवं तेजोमय स्वरूप उस समय प्रकट होता है जब जुये में दाँव पर लगायी द्रौपदी को राजसभा में लाने के लिए दुर्योधन का सारथि अन्त:पुर में जाता है। उस समय वह न तो भयभीत होती है न ही विलाप करती है बल्कि अपनी प्रत्युत्पन्नमति का उपयोग करती हुई अपने गरिमामय पद का आश्रय ले प्रश्न करती है-

गच्छं त्वं कितवं गत्वा सभायां पृच्छ सूतज।
किं नु पूर्वं पराजैषीरात्मानमथवा नु माम्। (सभापर्व ६७/७)

ऐसी विकट परिस्थिति में भयरहित होकर नैतिक एवं वैधानिक सत्ता को चुनौति देने वाला प्रश्न द्रौपदी जैसे नारी ही कर सकती है। दुशासन द्वारा बलपूर्वक सभा में लायी गयी एकवस्त्रा द्रौपदी सभा में अग्निपुंज के समाज बारम्बार यही प्रश्न दोहराती है।[13] न्यायदंड धारी धृतराष्ट्र से यह प्रश्न पूछा गया था। इस प्रश्न ने राष्ट्र के नीति नियामक भीष्म पितामह के विवेक को आलोडित किया। नीतिज्ञ विदुर के हृदय को भी इस प्रश्न ने मथ दिया था और सभा में उपस्थित माताओं के लिए भी धिक्कार भरा यह प्रश्न था, जिन्होंने पुत्रों को उनका अधिकार सीमा से परिचित नहीं कराया। तत्कालीन सभा में यह प्रश्न अनुत्तरित ही रहा और आजतक पितृसत्तात्मक समाज में उत्तर की प्रतीक्षा में है।

द्रौपदी विलक्षण व्यक्तित्व का तेज पाठकों के हृदय को उस सीमा तक बरबस खींच लेता है कि उसके हृदय का द्वन्द पाठकों का द्वन्द बन जाता है, उसकी पीडा उनकी पीड़ा बन जाती है उसका अपमान उनका अपमान बन जाता है और द्रौपदी का प्रतिशोध पाठकों का प्रतिशोध बन जाता है।

द्रौपदी का इतिहास प्रसिद्ध चीरहरण मानव इतिहास के पृष्ठों पर एक कभी न मिटने वाले कलंक के रूप में स्थित है। उस लज्जात्मक परिस्थिति में कोई वीर पति उसकी रक्षा के लिए नहीं आया। उसके स्वयं के आत्मबल एवं कृष्णभक्ति की अद्वितीय धरोहर ने उसकी लज्जा की रक्षा की, इस चीरहरण के प्रसङ्ग से आज की नारी को अपने मन में ठान लेना होगा कि पुरुष प्रशासित समाज की अन्याय परम्परा से लोहा लेने के लिए स्वयं को आत्मिक, चारित्रिक, मानसिक रूप से इतना सबल बनाना होगा कि पुन: कोई दुशासन दु:साहसी होकर नारी को अपमानित करने की चेष्टा भी न कर सके। स्वयं के नैतिक एवं आत्मिक बल के कारण ही द्रौपदी मनस्विनी नारियों के मध्य श्रेष्ठ स्थान पा सकी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधारी एवं द्रौपदी के वाङ्मय के इतिहास में ऐसे दो अद्‌भुत चरित्र हैं जिनको जीवन में अनेक असाधारण परिस्थितियों का सामना करना पड़ा किन्तु अपने विलक्षण एवं समृद्ध चारित्रिक गुणों के बल पर उन्होंने अत्यन्त साहस एवं गरिमा से उन परिस्थितियों को ऐसी अग्नि में परिणत कर दिया जिसमें से निकलकर उनका व्यक्तित्व पहले की अपेक्षा अधिक कान्तिमय बन कर उभरा।

महाभारत ग्रन्थ में चित्रित ये दोनों नारीपात्र युगों से चली आ रही पितृसत्तात्मक समाज में निहित पुरुषः स्त्री के मध्य अन्यायपूर्ण शक्तिविभाजन से पीड़ित नारी की व्यथा का प्रतीक हैं।

सन्दर्भ

१. महाभारत के नारीपात्र- पृ. ५ डॉ. अम्बाप्रसाद
२. महाभारत आदिपर्व १०९/१५, स्त्रीपर्व १६/२, आदिपर्व १०९/१२, ११ स्त्रीपर्व १६/२
३. महा0 आदिपर्व १०९/१३-१६
४. सभापर्व ४९/२१
५. स्त्रीपर्व १७/६
६. स्त्रीपर्व १५/१३
७. स्त्रीपर्व २५/२९, ४२-४६
८. स्त्रीपर्व १८/२०-२४
९. वही २५/४२-४६
१०. स्त्रीपर्व २५/४७-५०
११. आदिपर्व १६६/४४
१२. वही १९७/१८
१३. आदिपर्व १९६
१४. सभा पर्व ६७/४२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों में अध्यात्म

डॉ० दीनदयाल वेदालंकार
असि० प्रो० वेद विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वेद मानव मात्र के लिए कल्याणकारी है। विश्व संस्कृति के विकास में वेदों का अद्वितीय योगदान है। भारतीय संस्कृति का तो प्राण ही वेद है। आज भी धर्म आधारित भारतीय समाज वेद ज्ञान से चैतन्य बना हुआ है। वेद ज्ञान को महत्वपूर्ण मानते हुए वेद को सर्वज्ञानमय प्रतिपादित किया है-

य कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे, सर्वज्ञानमयो हि सः॥[1]

'वेद' शब्द 'विद्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है- ज्ञान। प्राचीन ऋषियों ने जो ज्ञान अपनी आर्ष दृष्टि से प्राप्त किया था, उसका संग्रह वेदों में है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार वेद शब्द पांच धातुओं से विभिन्न अर्थों में निष्पन्न होता है-

विद सत्तायाम् (सत्तार्थ में) विद ज्ञाने (ज्ञानार्थ में) विद विचारणे (विचारार्थ में) विद्लृ लाभे (लाभार्थ में) विद चेतनाख्याननिवासेषु (चेतना, आख्यान व निवास अर्थों में)।[2] सायण वेद के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए में लिखते हैं- अभीष्ट को प्राप्त करने और अनिष्ट से छूटने का जो उपायबोध कराये वह वेद है।[3] महर्षि दयानन्द सरस्वती वेदों को सभी सत्य विद्याओं का पुस्तक स्वीकार करते हैं। वेद ज्ञान, कर्म और उपासना के साथ-साथ आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक तीन प्रकार के मन्त्रों से परिपूर्ण हैं। यास्काचार्य इनका विभाजन इस प्रकार करते हैं- तास्त्रिविधः ऋचः।[4] ऋचायें तीन प्रकार की हैं- परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत् और आध्यात्मिक।[5] आध्यात्मिक मन्त्र उत्तमपुरुषयोगी होते हैं, अहम् इस सर्वनाम से संयुक्त होते हैं। आत्मा और परमात्मा से सम्बन्धित ज्ञान को अध्यात्म कहते है- आत्मनः सम्बद्धम्।[6]

आत्मा किसे कहते हैं, ऐसी जिज्ञासा होने पर शास्त्र इसका समाधान करते हुए कहते हैं- जो सबमें व्याप्त है, जो सब कुछ ग्रहण करता है तथा जिसमें सब लीन हो जाता है, उसे आत्मा कहते हैं- अथ कस्मादुच्यते आत्मा इति। यस्मात् सर्वमाप्नोति सर्वमादत्ते सर्वमत्ति च तस्मादुच्यते आत्मेति।[7] यो अतति शरीरमिन्द्रियाणि प्राणाश्च व्याप्नोति सः।[8] स्वयंभूः जीवः।[9] आचार्य यास्क ने निरुक्त में लिखा है- आत्मा अततेर्वा, आप्तेर्वा। अपि वा आप्त इव स्यात्। यावद् व्याप्तिभूत इति।[10] आत्मा के दो प्रकार हैं- परमात्मा और जीवात्मा। जिसकी सर्वत्र गति है, वह तत्त्व परमात्मा कहलाता है- अतति सर्वत्र व्याप्नोति सर्वान्तरयामी परमात्मा स्वस्वभावो वा।[11]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर का स्वरूप

वेदों में जीवात्मा एवं परमात्मा को सुन्दर पंख वाले पक्षी का रूपक माना गया है। वहाँ कहा गया है कि दो सुपर्ण (जीवात्मा एवं परमात्मा) हैं। ये दोनों प्रिय मित्र एक वृक्ष (प्रकृतिरूपी वृक्ष) पर बैठे हैं। इनमें से जीवात्मा पेड़ के स्वादिष्ट फलों का आस्वादन करता है तथा परमात्मा न खाते हुए केवल साक्षी के रूप में देखता है। जीवात्मा इस संसार में निरन्तर कर्म करते हुए अपने कर्मों के फल भोगता है- अतति निरन्तरं कर्मफलानि प्राप्नोति वा स आत्मा।[12] जीव संसार के विषयों का भोग करता है। परमात्मा न कर्म करता है, न भोगों को भोगता है। वह प्रकाशमय है, मार्गदर्शक है और साक्षी के रूप में जीव के अन्दर ज्योति रूप में विद्यमान है। **त्वं हि नः पिता वसोः त्वं माता शतक्रतोः बभूविथ। अधाते सुम्नमीमहे।**[13] वह परमपिता परमेश्वर जीवात्मा के लिए माता और पिता के तुल्य है। ऋग्वेद में भी इसी तरह का भाव अभिव्यक्त करते हुए पिता रूप में जगदीश्वर का स्मरण किया गया है- **यो नः पिता जनिता यो विधाता।**[14] उसी परमात्मा को बन्धु, उत्पादनकर्त्ता तथा विधाता के रूप में स्मरण किया गया है-

सनो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवाऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त।।[15]

अर्थात् हे मनुष्यो! वह परमात्मा अपने लोगों को भ्राता के समान सुखदायक सकल जगत् का उत्पादक वह सब कामों का पूर्ण करने हारा सम्पूर्ण लोक मात्र और नाम, स्थान जन्मों को जानता है और जिस सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त मोक्षस्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त होके विद्वान् लोग स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायधीश है अपने लोग सदा मिल के उसकी भक्ति किया करें।[16]

ऋग्वेद में सभी जीवों को पुत्ररूप में सम्बोधित करते हुए कहा गया है- **श्रृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः।**[17] ईश्वर को जीवात्मा के पिता के रूप में प्रार्थना करते हुए उससे उचित मार्ग दर्शन वा ज्ञान देने की याचना की गई है- इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा।[18]

ईश्वर की सर्वव्यापकता

यजुर्वेद में कहा गया है- ईश्वर सब जगह व्याप्त है- ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।[19]

वह जगत् के सभी पदार्थों तथा सब स्थानों में पूर्व से वर्त्तमान है-

तदेजति तन्नैजति तद्दूर तदवन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।[20]

ओंकार से युक्त अविनाशिनी (भूर्भुवः स्वः) ये तीन महाव्याहृति और त्रिपदा गायत्री को वेद का मुख तथा परब्रह्म की प्राप्ति का हेतु जानना चाहिए-

ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्।।[२१]

यजुर्वेद में परब्रह्म आकाश स्वरूप बताया गया है। वह सारे आकाश में व्याप्त है- **ओ३म् खं ब्रह्म।**[२२]

ईश्वर हिरण्यगर्भ के रूप में सर्वप्रथम सृष्टि से पूर्व विद्यमान था। जिसने पृथिवीलोक, अन्तरिक्षलोक तथा द्युलोक को धारण किया है, वही समस्त ब्रह्माण्ड का एकमात्र स्वामी वा पालनकर्त्ता कहा गया है-

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।[२३]

उस परमपिता परमात्मा को विद्वान् लोग अनेक नामों से व्यवहृत करते हैं- एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।[24] वहीं अग्नि है, वही आदित्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही सूर्य है, वही ब्रह्म है, वही जल है-

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः।।[२५]

यजुर्वेद के एक मन्त्र में परमात्मा को अकाय, अव्रण (लोमरहित) अस्नाविर (स्नायुरहित) शुद्ध एवं पाप से रहित कहा गया है, वही कवि, मनीषी, स्वयंभू तथा सर्वव्यापक है। सबको यथायोग्य ऐश्वर्य प्रदान करने वाला है- स पर्यगात् शुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।

कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू.....।।[२६]

ईश्वर से प्रार्थना करते हुए जीवात्मा कहता है कि सबके पथप्रदर्शक सब ज्ञानों के जानने वाले हैं। इसीलिए हम आपकी बहुत बहुत स्तुति करते हैं। आप धन सम्पत्ति के लिए ठीक मार्ग से ले चलिए, हमसे कुटिल आचरण को दूर कीजिए-

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।।[२७]

जीव का स्वरूप

सभी दर्शनकार जीवात्मा को नित्य[28] अल्पज्ञ, ज्ञानादि गुणों से युक्त एकदेशीय तथा कर्मफल भोक्ता मानते हैं।[29] आचार्य दयानन्द भी आर्योद्देश्यरत्नमाला में जीव के स्वरूप को निरूपित करते हुए लिखते हैं- ''जो चेतन, अल्पज्ञ, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख दुःख और ज्ञान गुणवाला तथा नित्य है, वह जीव कहलाता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार जीवात्मा हृदय में रहता है- आत्मा हृदये श्रितः।[30] हृदय पर शरीर आश्रित है- शरीरं हृदये श्रितम्।[31] हित की प्राप्ति तथा अहित के परिहाररूप चेष्टा, इन्द्रिय एवं अर्थ विषयों के आधार को शरीर कहते हैं- अथ यत्सर्वमस्मिन्नाश्रयन्त तस्मादु शरीररम्।[33]

कुर्वन्नेवेह कर्माणि मा जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयिमान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।[३४]

अर्थात् मनुष्य इस संसार में कर्मों को करता हुआ ही सौ वर्ष तक जीवित रहना चाहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह त्यागपूर्वक कर्म करने से जीव कर्म में न लिप्त होगा। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। जीवात्मा को आदेश रूप में कहा गया है-

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्[३५] अर्थात् हे जीव तू ईश्वर प्रदत्त पदार्थों वा धन का प्रयोग कर, किसी अन्य के धन की कभी कामना न कर।

ऋग्वेद के अक्षसूक्त के माध्यम से जीवात्मा को उपदेश दिया गया है- अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्तैरमस्व बहुमन्यमानः। अर्थात् जुआ मत खेलो।

जीव की स्वाभाविक इच्छा सुख की है, अतः वह सुखस्वरूप परमपिता परमेश्वर की उपासना प्रतिदिन करता है, उस परम सुख की चाह में वह प्रतिदिन अग्निस्वरूप परमेश्वर की प्रार्थना वा नमस्कार की भेंट से उसके निकट आता है-

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि॥

सुख की पराकाष्ठा मोक्ष है, अतः प्रतिदिन सन्ध्योपासना के अन्तर्गत ईश्वर से याचना करते हुए जीवात्मा प्रार्थना करता है-

हे ईश्वरदयानिधेः .....धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः॥[३६] मोक्ष की इच्छा करने वाले को ईश्वर को जानना आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है, जब वह उसे मानने लगता है, मृत्यु से निर्भय हो जाता है-

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभूः रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः। तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥[३७] जो भक्ति स्तुति करने वाला स्वयं तृप्त आनन्दमग्न पुरुष होता है, वह तर जाता है- तरत्स मन्दी धावति।[३८]

वेद में जीवात्मा परमात्मा से प्रार्थना करते हुए कहता है- हे परमेश्वर हम सन्मार्ग को छोड़कर न चले, ऐश्वर्ययुक्त होते हुए हम यज्ञ को छोड़कर न चले। अदानभाव हमारे अन्दर न ठहरे- मा प्र गाम पथो वयम्।[३९] देवलोक यज्ञ कर्म करने वालों की इच्छा करते है, निद्राशीलों को नहीं चाहते, स्वयं आलस्य रहित ये देवलोक भूल करने वाले का नियमन करते हैं- **इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति। यन्ति प्रमादमतन्द्राः॥**[४०]

संसार में प्रेयमार्ग के अभिलाषी अपनी कामनाओं की प्राप्ति के लिए वेदमाता की स्तुति करते हुए उससे आयु, प्राण, प्रजा, पशु, धन, और ब्रह्मवर्चस की याचना करते हैं-

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥[४१]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ

१. मनुस्मृति २/७

२. सत्तायां विद्यते ज्ञाने, वेत्ति विन्ते विचारणे।
विन्दति विन्दते प्राप्तौ, श्यन्लुक्नम्शेष्विदं क्रमात्।।

३. इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारस्यालौकिकमुपायं यो वेदयति स वेदः। तैत्तिरीय संहिता भाष्यभूमिका

४. नि. ७/१

५. (क) परोक्षकृताः- तत्र परोक्षकृताः सर्वाभिर्नामविभक्तिभिर्युज्यन्ते प्रथमपुरुषैश्चाख्यातस्य। यथा- इन्द्रो दिवः, इन्द्रमिद्, इन्द्रेणैते, इन्द्राय साम गायत। (ख) अथ प्रत्यक्षकृताः मध्यमपुरुषयोगाः। यथा- त्वमिन्द्र बलादधि, वि न इन्द्र मृधो जहि। (ग) अथाध्यात्मिक्य उत्तमपुरुषयोगाः। यथा- अहमिन्द्रो न पराजिग्ये, अहं रुद्रेभिर्वसुभिः। नि. ७/१

६. वामन शिवराम आप्टे, नाग प्रकाशन, पृ० २८

७. शाडिल्य उपनिषद् ३/१

८. द्र) यजुर्वेदभाष्य दयानन्द सरस्वती १८/२१

९. द्र) यजुर्वेदभाष्य दयानन्द सरस्वती २०/७

१०. नि. ३/१५

११. द्र) यजुर्वेदभाष्य दयानन्द सरस्वती ४/१५

१२. उणादिकोष ४/१५३

१३. ऋग् ८/१८/११

१४. ऋग् १/३१/१०, १/१६४/३३, ५/४/२, यजु, १७/२७, अथर्व. २/१/३, ७/६/१

१५. यजु. ३२/१०

१६. म.दया.भा. यजु. ३२/१०

१७. ऋग् १०/१३/१

१८. ऋग् १०/१३/१

१९. यजु. ४०/१

२०. यजु. ४०/५

२१. मनुस्मृति २/८१

२२. यजु. ४०/१७

२३. ऋग् १०/१२१/१ यजु. १३/४

२४. ऋग् १/१६४/४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२५. यजु. ३२/१
२६. यजु. ४०/८
२७. यजु. ५/३६, ७/४३, ४०/१६
२८. नात्माश्रुतेर्नित्यत्वाच्च तभ्यः। वैशेषिक २/३/१७
२९. इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुः खज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्। न्यायदर्शन १/१/१०
३०. तै. ब्रा. ३/१०/८/९
३१. वही, ३/१०/८/७
३२. न्यायदर्शनम् १/११
३३. श.ब्रा. ६/१/१/४
३४. यजु. ४०/२
३५. यजु. ४०/१
३६. महर्षि दयानन्द, संस्कार विधिः ब्रह्मयज्ञ
३७. अथर्व० १०/८/४४
३८. ऋग् ९/४८/१, सामवेद पूर्वा. ६/१/२४
३९. ऋग् १०/४७/१, अथर्ववेद १३/१/४९
४०. ऋग् ८/२/२८, अथर्व. २०/१८/३
४१. अथर्व. १९/७१/१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतोक्त 'स्वधर्म' का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में चिंतन

डॉ० सुनीता सैनी
असिस्टेण्ट प्रोफेसर संस्कृत-विभाग,
महर्षि दयानन्द वि०वि० रोहतक।

यद्यपि अष्टादशाध्यायी गीता के मात्र चार श्लोकों में स्वधर्म शब्द का उल्लेख है, परन्तु गीता का केन्द्रिय विचार बिन्दु 'स्वधर्म पालन' का उपदेश देना ही है। महाभारत युद्ध क्षेत्र में दोनों पक्षों की सेनाओं में अपने ही सगे-सम्बन्धियों को देखकर अर्जुन विषादग्रस्त हो उठा और 'न योत्स्य इति गोविन्दम्' कहकर शस्त्रों का त्याग कर दिया। इस पर श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया कि कर्म न करना किसी समस्या का समाधान नहीं है क्योंकि 'शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः।' यद्यपि खाना, पीना, उठना, बैठना, चलना, सोना, जागना आदि क्रियाएँ भी कर्म ही हैं परन्तु गीता में 'कर्म' शब्द 'स्वधर्म' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कर्म से तात्पर्य स्वधर्माचरण से है- स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि। धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।। अर्थात् स्वधर्म को देखकर भी तुझे भय नहीं करना चाहिए क्योंकि क्षत्रिय के लिए धर्मयुक्त युद्ध से बढकर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्त्तव्य नहीं है।

गीता में स्वभावनियत तथा सहज कर्म के अर्थ में भी स्वधर्म शब्द का प्रयोग हुआ है- श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्।। अर्थात् अच्छी प्रकार आचरण किए हुए दूसरे के धर्म से गुण रहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ है क्योंकि स्वभाव से नियत किए हुए स्वधर्म रूप कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को प्राप्त नहीं होता।

स्वयं गीता में स्वभावज (सहज अथवा स्वभाव नियत) कर्मों के अन्तर्गत वर्णानुसार निर्दिष्ट कर्मों का ही उल्लेख किया गया है।

यह विचारणीय विषय है कि गीता में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को जन्म पर आधारित माना है अथवा कर्म पर।

'चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः'- गीता के इस श्लोक में चारों वर्णों के समूह को गुण और कर्मों के विभागपूर्वक रचा हुआ कहा गया है। परन्तु गीता के प्राचीन भाष्यकारों यथा शंकाराचार्य- 'सहजं सह जन्मनैवोत्पन्नं' तथा रामानुज ने 'ब्राह्मण क्षत्रिय विशां स्वकीयो भावः स्वभावः (ब्राह्मणादिजन्म हेतुभूतं प्राचीनं कर्म इत्यर्थः।' कहकर वर्णव्यवस्था को जन्म पर आधारित सिद्ध किया है।

इन व्याख्याओं के अनुसार जिस वर्ण में व्यक्ति का जन्म हुआ है, उस वर्ण के लिए शास्त्र निर्धारित कर्म ही व्यक्ति का सहज कर्म, स्वधर्म अथवा स्वकर्म होता है। उसे उसी कर्म को करना चाहिए जो जन्म से उसके वर्णानुसार उसके लिए निर्धारित हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि स्वधर्म निर्धारण की इसी व्याख्या को स्वीकार कर लिया जाए तो गीता में वर्णित स्वधर्म पालन का सिद्धान्त भी अप्रासंगिक हो जाएगा क्योंकि वह वर्णव्यवस्था जिस पर कभी भारतीय समाज व्यवस्थित था, आज पूर्णतया ध्वस्त हो चुकी है। आधुनिक भारतीय समाज का स्वरूप अत्यन्त जटिल हो गया है। समाज असंख्य जातियों में विभक्त हो चुका है। अगर जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था को माना जाए तो यही निर्धारित करना कठिन है कि कौन सी जाति किस वर्ण के अन्तर्गत है और अगर व्यक्ति का वर्ण निर्धारित हो भी जाए तो उसके लिए शास्त्र द्वारा निर्धारित कर्मों का पालन कटिन है। इसी प्रकार स्वधर्म निर्धारण का आधार यदि कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था को माना जाए तो आज के सन्दर्भ में तो वह भी सम्भव नहीं क्योंकि जिस समय समाज वर्णाश्रम व्यवस्था के तहत सुचारु ढंग से चल रहा था, उस समय का जीवन सरल था। आजीविका के लिए कार्यों का स्वरूप सरल और सीमित था। आधुनिक जीवन अत्यन्त जटिल है। आजीविका के लिए किए जाने वाले कार्यों की संख्या असीमित है। वृत्ति कर्मों की संख्या इतनी अधिक है और कर्मों का प्रारूप इतना जटिल है कि उन्हें चातुर्वर्ण्य विधान के अन्तर्गत लाना ही कठिन है। जैसे यदि कोई व्यक्ति देश की सेना में नियुक्त हो तो उसे क्षत्रिय वर्ण का कह सकते हैं परन्तु यदि कोई किसी के घर अथवा दुकान की रक्षा के निमित्त दरबान के पद पर तैनात हो तो उसे रक्षा करने के कारण क्षत्रिय वर्ण के अन्तर्गत रखें अथवा व्यक्ति विशेष के लिए सेवा करने के कारण शूद्र वर्ण में? इसी प्रकार लोकंतन्त्र में जनता के सेवक कहे जाने वाले नेता गण सेवा वृत्ति से शूद्र होंगे अथवा राज्य संचालन व्यवस्था को संभालने के कारण क्षत्रिय? इस प्रकार समाज और कर्मों के प्रारूप की जटिलता के कारण कर्म आधारित वर्ण विभाजन कठिन ही नहीं, असम्भव भी है।

अनेक व्याख्याकारों ने अपने विश्वासों व युगानुकूल परिस्थितियों के आधार पर गीता के सिद्धान्तों की व्याख्या की है। बंकिम चन्द्र चैटर्जी के अनुसार -'वर्तमान काल की परिस्थितियों के प्रकाश में प्राचीन ग्रन्थों की व्याख्या करना व्याख्याकार का कर्त्तव्य है।' इसलिए आधुनिक संदर्भ में बिना वर्णव्यवस्था को बीच में लाए स्वधर्म निर्धारण करने की महती आवश्यकता है। रामानुज ने गीता भाष्य में स्वधर्म का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसे वर्ण व्यवस्था के बंधन से मुक्त करने का संक्षिप्त प्रयास किया है- 'एवं व्यक्त कर्तृत्वादिको मदाराधनरूपः स्वधर्मः स्वेन एव उपादातुम योग्यो धर्मः।'' अर्थात् कर्त्तापन आदि के त्यागपूर्वक होने वाला मेरा आराधन रूप कर्म स्वधर्म है, अपने आप ही किए जाने योग्य है। स्वधर्म की व्याख्या करते हुए बालगंगाधर तिलक का भी यही मानना है कि जो भी व्यवसाय किसी व्यक्ति ने अपनाया है वह चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के अनुसार हो या अपनी स्वतन्त्र इच्छा के अनुसार, वह उसका धर्म बन जाता है।

अरविंद घोष अपनी त्रिगुणात्मक प्रकृति के अनुसार अपनाए गए कर्म को स्वधर्म मानते हैं। आचार्य विनोबा भावे के अनुसार-'स्वधर्म सहज होता है। उसे खोजने की कल्पना ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र मालूम होती है। मनुष्य के जन्म के साथ ही उसका स्वधर्म भी जन्मा है। हम सब इस प्रवाह में किसी एक परिस्थिति को साथ लेकर जन्में हैं इसलिए स्वधर्माचरण रूपी कर्त्तव्य स्वत: ही हमें प्राप्त रहता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विचारकों के मत में जिस कर्म को करने के लिए जो अपेक्षित गुण होते हैं, वही उसका सहज कर्म है अर्थात् मनुष्य को अपने स्वाभाविक गुणों के अनुसार ही अपना कार्यक्षेत्र निर्धारित करना चाहिए, यही मनुष्य का स्वधर्म है।

स्थूल रूप से देखने पर यह तथ्य अत्यंत उदात्त प्रतीत होता है, पर आज विश्व के अधिकांश समाजों में बेरोजगारी की समस्या बड़ी भयावह है। जहॉ पेट भरने के लिए आजीविका की तलाश है वहॉ अपने स्वाभाविक गुणों के अनुसार कार्यक्षेत्र चुनने का अवसर कितनों को उपलब्ध है? संभवत: नाम मात्र को ही। स्थिति बड़ी विकट है तो क्या स्वधर्म की सत्ता पर ही संकट है?

के.एम. मुंशी के अनुसार- एक शूद्र सेना में नौकरी कर सकता है। एक ब्राह्मण को व्यापार करना पड़ सकता है, तब वह अपने स्वधर्म को कैसे जाने? उसके लिए उसका स्वधर्म वही है जो उस क्षण उसके सामने है। सभी कार्य केवल कार्य हैं, न कोई बड़ा, न कोई छोटा। गीता में कहा गया है- **''स्वे स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्धिं लभते नर:। स्व कर्म निरत: सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु।। यत: प्रवृतिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव:।।''**

एक बार जिस कर्म को व्यक्ति ने अपना लिया है, उसको पूरी निष्ठा से, शारीरिक-मानसिक शक्ति से सम्पन्न करना ही स्वधर्म है।

सहज और स्वाभाविक कर्म के सन्दर्भ में जो बात विशेष ध्यातव्य है वो यह कि तामसिक प्रवृत्ति के व्यक्ति का सहज कर्म चोरी, चकारी, लूट, डकैती हो तो क्या स्वीकार्य है। अतएव यह आवश्यक है कि मनुष्य लोक संग्रहार्थ कार्य करे- ''कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय:। लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यत्कर्तुमर्हसि।।''

यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने कर्त्तव्यों का ईमानदारी और दक्षता के साथ पालन करे और ऐसे कार्य करे जिससे समाज का अधिक से अधिक कल्याण हो सके। प्रत्येक मनुष्य समाज का अभिन्न अंग है और इस दृष्टि से उसे समाज के हित की बात सर्वोपरि रखनी चाहिए। व्यक्ति कई स्तरों पर स्वधर्म का निर्वाह करता है, यथा- व्यक्तिगत धर्म, परिवार धर्म, वर्ग धर्म, राष्ट्र धर्म और मानव धर्म। मनुष्य के स्वधर्म में टकराव होने पर संशय की स्थिति में लोकसंग्रहार्थ किया गया कार्य स्वधर्म का निर्धारक हो सकता है- लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषय: क्षीणकल्मषा:। छिन्नद्वैधा यतात्मान: सर्वभूतहिते रता:।।

जो ज्ञानी अपने को सम्पूर्ण भूतों में स्थित और सम्पूर्ण भूतों को अपने में स्थित देखता है, वह अपने से बढ़कर परिवार की, परिवार से आगे वर्ग की, वर्ग से आगे राष्ट्र की, राष्ट्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से आगे बढ़कर मानव की व प्राणीमात्र की भलाई सोचता है।

गीता के स्वधर्म -परधर्म विषयक जिस श्लोक की व्याख्या में सर्वाधिक मतभेद दृष्टिगत होते हैं, वह है- **श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।** अर्थात् अच्छी प्रकार आचरण में लाए हुए दूसरे के धर्म से विगुण स्वधर्म अति उत्तम है, अपने धर्म में तो मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है। आचार्य शंकर के मत में व्यक्ति दूसरे वर्ण के कर्मों को सुसम्पादित करने योग्य हो तो भी गुणरहित अपना कर्म ही करणीय है। जबकि आचार्य रामानुज के अनुसार कर्म योग ही जीव का स्वधर्म है जो कि ज्ञान योग रूपी परधर्म से श्रेष्ठ है। बालगंगाधर तिलक के अनुसार चुना गया व्यवसाय ही मनुष्य का स्वधर्म है, अतः उसमें दोष निकालना ठीक नहीं। आचार्य विनोबाभावे स्वधर्म- परधर्म को स्पष्ट करते हुए कहते हैं- जो कर्म सहज प्राप्त हैं, उन्हीं के फल का त्याग हो सकता है, यदि मनुष्य इस लोभ से यह कर्म भी अच्छा है और वह कर्म भी अच्छा है, चारों ओर दौड़ने लगे तो फिर कैसा फल त्याग? उससे तो सारा जीवन ही बरबाद हो जाएगा।

वस्तुतः आधुनिक परिप्रेक्ष्य में श्लोक की पुनःव्याख्या की जाए तो अपने लिए निर्धारित हुए कार्यक्षेत्र में पूर्ण निष्ठा से कर्त्तव्यपालन करना ही स्वधर्म पालन है। स्वधर्म का पालन करते हुए प्राणों का त्याग भी करना पड़े तो श्रेयस्कर है। कई स्थितियों में स्वधर्म विगुण मालूम होता है। उदाहरण के लिए जैसे- न्यायाधीश किसी के घोर अपराध के कारण दोषी को संविधान के नियमानुसार प्राणदण्ड देता है। उसका आदेश किसी की मृत्यु का कारण बनता है। परन्तु यह उसका स्वधर्म है। विगुणता का आभास कराते हुए भी मोक्षदायक है बशर्ते कि मृत्युदण्ड सकाम भाव से न देकर निष्काम भाव से दिया गया हो। परधर्म की व्याख्या में कहा जा सकता है कि जो स्वधर्म नही वही परधर्म है- **स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः।** अर्थात् परधर्म को स्वधर्म के परिप्रेक्ष्य में ही समीचीन रूप से समझा जा सकता है। अपने कर्म का पूरी निष्ठा से, ईमानदारी से पालन करना स्वधर्म है और लोभ के वशीभूत भ्रष्टाचार में लिप्त होना तथा प्रमादवश करणीय कर्मों को न करना ही परधर्म है। यह परधर्म भयावह है और लोक कल्याण की भावना के प्रतिकूल है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि गीता चिंतन का ऐसा शाश्वत स्रोत है, इसकी प्रामाणिकता सार्वकालिक है। युगानुरूप परिस्थितियों के अनुसार गीता का पुनर्पाठ वर्तमान काल की महती आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ

1. श्रीमद्भगवद्गीता- 2/31, 2/33, 3/35,18/47
2. वहीं- 2/9
3. वहीं- 3/8
4. वहीं- 2/31
5. वहीं- 18/47
6. वहीं- 18/42-44
7. वहीं- 4/13 पूर्वार्द्ध
8. शांकर भाष्य- 18/48 का भाष्य, पृ. 411
9. रामानुज भाष्य- 18/41 का भाष्य,
10. श्रीमद्भगवद्गीता- चैटर्जी, पृ. 28
11. श्रीमद्भगवद्गीता- रामानुज भाष्य- 18/47 का भाष्य,
12. गीता रहस्य- बालगंगाधर तिलक, 3/35 का भाष्य,
13. द मैसेज ऑफ गीता- अरविंदो, पृ. 259
14. गीता प्रवचन- विनोबाभावे, पृ. 218
15. वहीं- पृ.220
16. भगवद्गीता एण्ड मॉडर्न लाइफ- के.एम. मुन्शी पृ.103
17. श्रीमद्भगवद्गीता- 18/45-46
18. वहीं- 3/20
19. वहीं- 5/25
20. वहीं- 6/29
21. वहीं- 5/18
22. वहीं- 3/35
23. श्रीमद्भगवद्गीता- शांकर भाष्य 3/35 का भाष्य पृ. 89
24. श्रीमद्भगवद्गीता- रामानुज भाष्य 3/35 का भाष्य
25. गीता रहस्य- पृ. 935
26. गीता प्रवचन- पृ. 286
27. श्रीमद्भगवद्गीता- 18/45

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''गीता के निष्काम कर्म की आधुनिक युग में प्रासंगिकता''

डॉ० आशा
प्रोफेसर, संस्कृत-विभाग
महर्षि दयानन्द वि०वि०, रोहतक

इस संसार में मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह निरन्तर वचसा, मनसा तथा शारीरिक रूप से किसी न किसी कर्म में व्यस्त रहता है। प्राचीन ऋषियों का उद्घोष है ''चरैवेति-चरैवेति'' गीता में कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन अत्यन्त सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है। कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए निष्काम कर्म करने के लिए प्रेरित किया गया है। जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को इस प्रकार से अपने कर्मों का संपादन करना सीखना चाहिए जो केवल अपने स्वार्थ अथवा हित से प्रेरित न होकर सर्वहित अथवा जगत् के कल्याण के लिए हों। आज के समय में इस भाव का होना अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य की यह मानसिक प्रवृत्ति हो गई है कि वह अपने स्वार्थ को ऊपर रख कर किसी भी कार्य को करता है।

कार्य के किसी भी क्षेत्र पर दृष्टिपात किया जाए तो सर्वत्र भ्रष्टाचार, अनुशासनहीनता, कामचोरी, साधनों का दुरुपयोग, अपेक्षित लक्ष्य को प्राप्त न कर पाना जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। दिन प्रतिदिन समाचार पत्रों व दूरदर्शन के माध्यम से करोड़ों रुपये के घोटालों का पर्दाफाश होता है। एक छोटे से छोटा कर्मचारी भी अपने कार्य के प्रति जागरुक नहीं रहता है। अपने कार्य स्थल पर कार्य करने वाले कर्मचारी भी अपने कार्यों के प्रति सचेत नहीं हैं। राष्ट्र की उन्नति के लिए जिस प्रकार राजा व्यवहार करेगा, प्रजाजन या उसके अधीनस्थ व्यक्ति भी वैसा ही व्यवहार करेंगे। कहा भी गया है ''यथा राजा तथा प्रजा'' यदि कोई मुखिया अपने कर्मचारियों या अधीनस्थ व्यक्तियों में अच्छे आचरण की अपेक्षा रखता है। तो यह आवश्यक है कि वह भी अच्छा आचरण करे। गीता में कहा भी गया है- यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

आज कल कार्य को महत्व न देते हुए चाटुकारिता को महत्त्व दिया जाता है। जो जितनी चाटुकारिता करता है उसे उतनी ही उन्नति प्राप्त होती है। कार्य क्षेत्र के प्रमुख को चाहिए कि वह किसी भी चाटुकार की बात को सुन कर, अपनी आंखों से देखे बिना विश्वास न करे। विवेक के साथ गुणों का तथा अवगुणों का निश्चय करें। गीता में एक स्थल पर कहा गया है- ''विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरू।

राष्ट्र के मुखिया अथवा कार्य क्षेत्र के मुखिया के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह मोह रहित हो सुनी सुनाई बात को तटस्थ भाव से ग्रहण करे। अन्यथा वह सच को झूठ तथा झूठ को सच मान लेता है। आधुनिक युग में झूठ को सच तथा सच को झूठ मानने वालों की संख्या अधिक है। जहाँ प्रायः घोर से घोर अपराध करने वाला दण्ड मुक्त हो सुखी जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यापन करता है वहीं सर्वथा निर्दोष व्यक्ति कठोर दण्ड का भागी होता है। किसी भी संस्था के प्रमुख भेद भाव करने से परहेज नहीं करते हैं। उनके लिए यह आवश्यक है कि वे अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्य व उनकी कर्त्तव्य परायणता का मूल्यांकन करते हुए उनके हित का ध्यान रखें। गीता में इसी भाव के समर्थन में कहा गया है- **विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पंडिता सम्दर्शिनः।।**

पक्षपात करने वाले मुखिया के लिए प्रायः दोषी कर्मचारी की अपेक्षा निर्दोष कर्मचारी अपनी गलती पर कोप का पात्र बनता है। जबकि उसे चाहिए कि वह गलती करने वाले को अपनी गलती सुधरने का अवसर दे। गीता में भी इसी भाव को पुष्ट करते हुए कहा गया है- **''तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।''**

आज के समय में किसी को नौकरी प्राप्त करनी है या किसी को अच्छे विद्यालय व कालेज में प्रवेश प्राप्त करना है तो बिना किसी रिश्वत के प्राप्ति नहीं होती है। जो कि समाज की उन्नति के लिए अभिशाप है। मनुष्य की यह प्रवृत्ति हो गई है कि वह जिस भी लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है उसकी प्राप्ति के लिए वह हर सम्भव गलत तरीके अपनाता है। जबकि लक्ष्य की प्राप्ति सही तरीके से भी की जा सकती है। यदि सभी मनुष्य यह धारणा बना लें कि कोई भी कार्य करना है या लक्ष्य प्राप्त करना है तो सही मार्ग से प्राप्त करना है तो कोई भी समाज या राष्ट्र उन्नति के पथ पर अग्रसर होता हुआ शीर्ष स्थान को प्राप्त कर सकता है।

आज के समाज में जहाँ भी देखो सर्वत्र आन्दोलन व हड़ताल दिखाई देती हैं। कर्मचारी वर्ग व श्रमिक वर्ग अपने कर्तव्य के प्रति उदासीन व अधिकारों के प्रति अधिक जागरुक दिखाई देते हैं। उन्हें चाहिए कि वे गीता की पंक्ति-**''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।** को ध्यान में रखते हुए अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरुक रहते हुए कार्य को महत्त्व दे ताकि उत्पादन में वृद्धि होने से लाभ होगा तथा लाभ होने से आर्थिक लाभ भी होगा। सबसे बड़ी बात है कि समाज की भी उन्नति होगी।

समाज व राष्ट्र की उन्नति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि आलस्य रहित, धैर्य पूर्वक निष्काम भाव अर्थात् स्वार्थ हित का त्याग कर दत्तचित्त होकर तथा अहंकार भाव से रहित हो कर कार्य को पूरा किया जाना चाहिए। इसी बात का समर्थन करते हुए गीता में कहा गया है- **यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः। मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।**

आज के समाज में प्रत्येक व्यक्ति परिश्रम बिना फल प्राप्त करना चाहता है। शीघ्रातिशीघ्र करोड़पति बनना चाहता है। दूसरे के हक को भी प्राप्त करना चाहता है। बिना किसी बाधा के अच्छे व बुरे किसी भी प्रकार से अपने स्वार्थ को सिद्ध करना चाहता है। उसका अपनी इच्छाओं व इन्द्रियों पर कोई भी नियन्त्रण नहीं है। इसी अन्धाधुन्ध व विषयानुगामी जीवन शैली के कारण सर्वत्र चोरी, डकैती, जाल-साजी, रिश्वतखोरी, चोरबाजारी, कालाबाजारी व घोटाले आदि अनेक प्रकार के अपराधों का वर्चस्व है। समाज के कर्णधारों की कथनी व करनी में पर्याप्त अन्तर है।

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में इन सभी समस्याओं का मूल कारण है कि व्यक्ति में आत्मानुशासन व आत्ममन्थन का अभाव है। समाज की इस विषम परिस्थिति को दूर करने के लिए गीता के निष्काम कर्म योग की शिक्षा अत्यन्त उपयोगी है। यदि प्रत्येक मनुष्य इस शिक्षा को ग्रहण कर इस बात पर विश्वास करे कि "अपने कर्मों का फल मुझे ही भोगना पड़ेगा। अतः मैं अच्छे कार्य करूं तो वह पाप कर्म में लिप्त नहीं होगा। जीवन का कटु सत्य है- "बीज बोए बबूल के बेर कहाँ से होए।"

निष्काम भाव से अर्थात् फल की चिन्ता से रहित हो अपना कार्य करना ही निष्काम कर्म है। यदि कोई कार्य आसक्ति पूर्वक किया जाता है तो कर्त्ता उसका फल भोगने के लिए बाध्य होता है लेकिन निष्काम भाव से किया गया कर्म उसी प्रकार फल नहीं देता है जिस प्रकार भुजा हुआ बीज न तो कभी अंकुरित होता है तथा न ही फल देता है। मनुष्य को जीवन में दत्तचित्त हो काम करना चाहिए उसका फल अनुकूल होगा या प्रतिकूल होगा इस चिन्ता का त्याग करना चाहिए। कर्म का जो भी फल हो उसे सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए श्रीकृष्ण ने कहा है- **सुखे दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।**

यदि मनुष्य के जीवन में कर्म फल की इच्छा न हो तो कर्म करने की क्या आवश्यकता है? इस के संदर्भ में श्री कृष्ण का कथन है **"मा संगोऽस्त्वकर्मणि।"** गीता में यह भी कहा गया है कि मनुष्य को अपने वर्णाश्रम निर्दिष्ट कर्मों तथा अन्य सभी सांसारिक तथा कार्यालय, व्यापारादि से सम्बन्धित गृहस्थी के कार्यों को पूरी ईमानदारी के साथ, शारीरिक, मानसिक शक्ति के साथ, एकाग्रता व समर्पण भाव के साथ आलस्यरहित कर्म करना चाहिए। चंचल चित्तवाले, संस्कारविहीन, आलसी व कार्य को टालने वाले व्यक्ति को तामस वृत्ति का कहा गया है।

निष्काम कर्म करने वाले को जब आत्म ज्ञान की प्राप्ति होती है तो उसके लिए सारा संसार आत्मा के समान हो जाता है। तथा सारी पृथ्वी उसके लिए **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** हो जाती है।

निष्काम कर्मयोगी के कार्मों को दो वर्गों में विभक्त किया गया है- (क) लोक संग्रहार्थ कर्म (ख) सहज कर्म। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत निष्काम कर्म करने वाला अपने निर्दिष्ट वर्णाश्रम के निर्दिष्ट कर्म तथा लोक कल्याण के कर्म पूरी निष्ठा व ईमानदारी से करता है। निष्काम कर्म को ऐसा यज्ञ माना गया है जिसमें- **"यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।"**

निष्काम कर्मयोगी अपने कर्त्तव्य कर्मों को करता हुआ समाज में अपने कर्मों द्वारा उदाहरण स्थापित करता है। दूसरे वर्ग के अन्तर्गत आने वाले कर्मों का भी त्याग नहीं करना चाहिए, चाहे वह दोष पूर्ण ही क्यों न हो। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि जिस कार्य को करने की शक्ति इच्छा व जन्मजात गुण हो, व जो वर्ण धर्म हो वह उसे ही करे। अपनी रुचि स्वभाव तथा गुणधर्मिता के अनुरूप कर्म को फलशक्ति त्याग पूरी निष्ठा व शक्ति के साथ करना ही निष्काम कर्मयोग है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राय: यह देखने में आता है कि माता-पिता अपने बालक को उसकी रुचि के अनुसार कार्य क्षेत्र के चयन की अनुमति न दे अपनी रुचि के अनुसार देते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि यदि बालक मैडिकल में रुचि नहीं रखता है तो भी माता-पिता उसे अपनी रुचि के अनुसार मैडिकल में अध्ययन करने के लिए विवश करते हैं। जिसके फलस्वरूप बालक केवल अनमने मन से कर्म तो करता है लेकिन उसका परिणाम सुखद नहीं होता है। कई बार ऐसा होता है कि मनुष्य को अपनी रुचि के अनुसार कार्यक्षेत्र तो प्राप्त हो जाता है लेकिन अपेक्षाकृत निम्न स्तर का होता है तो भी मनुष्य उस कर्म को रुचि से करता हुआ शिखर तक पहुँच जाता है।

निष्काम कर्म करना कहने में तो बहुत ही सरल लगता है। लेकिन इस पर चलना उतना ही दुष्कर है। इस मार्ग पर चलने वाले के लिए आत्म संयम अत्यन्त आवश्यक है। आत्मसंयम अर्जित करने के लिए ध्यान साधना अत्यन्त सहायक है। गीता के षष्ठ अध्याय के 11-13 श्लोक में ध्यान साधना की विधि का प्रतिपादन किया गया है। निष्काम कर्मयोग की साधना व्यवहारिक जीवन में अत्यन्त उपयोगी है।

व्यवहारिक जीवन में सफलता व उन्नति प्राप्त करने के लिए निष्काम कर्म योग का सिद्धान्त तर्क संगत व सर्वोत्तम उपाय है। वास्तविकता तो यह है कि मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने में है फल पाने में उसका अधिकार नहीं है।

जैसे एक कृषक के वर्ष में फसल प्राप्त करने के लिए बीज बोना है उसका फल प्राप्त करना नहीं है। किसी भी कार्य का फल प्राप्त होने अथवा प्राप्त न होने में कई कारण हो सकते हैं। कई बार देखने को मिलता है कि एक कृषक बीज बोता है लेकिन उगने से पहले पक्षी बीज को खा जाते हैं। या फिर पानी के बहाव के कारण बह जाते हैं। यदि बीज उग भी आता है तो अति वृष्टि या अनावृष्टि के कारण आगे बढ़ नहीं पाता है। यदि फसल पूरी लहलहा उठती है तो वह किसी अन्य के द्वारा काट ली जाती है या पूरी तैयार फसल अग्नि की भेंट चढ़ जाती है। फसल रूपी फल की प्राप्ति कृषक अधीन नहीं है। लेकिन इन सब से उसे निराशा ही हाथ लगती है।

इसी प्रकार समाज के अन्य प्राणियों के साथ भी यही होता है कि वे अपनी इच्छानुसार कर्म तो करते हैं लेकिन उसका फल उसकी इच्छा के अनुरूप प्राप्त नहीं होता है जिससे वे डिप्रेशन, तनाव, दबाव आदि अनेक मानसिक रोगों से ग्रस्त होते हैं। इस स्थिति में उनके लिए यह जानना नितान्त आवश्यक है कि वे कर्म के अध्किारी हैं फल उनके अधिकार क्षेत्र में नहीं है। गीता में कहा भी गया है- कर्म करो (निष्काम भाव से करो। "तत्स्वयं योगसंसिद्धि: काले नात्मनि विदन्ति!" (गी. 5.38)

गीता में एक स्थल पर कहा गया है कि जिस प्रकार सूर्य आदि दूसरों के लिए अपना-अपना कार्य करते हैं उसी प्रकार मनुष्य को भी दूसरों के लिए कर्म करना चाहिए। गीता के अनुसार कर्म योगी इस बात की परवाह नहीं करता कि समाज उसे क्या कहता है? फल का अच्छा या बुरा होना उसे सुख या दु:ख नहीं देता है। वह इस संसार में उसी प्रकार कार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है जिस प्रकार एक दाई बालक को खिलाती है तथा माँ की भाँति उसे प्यार करती है तथा नौकरी से निकल जाने पर भी अपना मार्ग खोज लेती है।

निष्कर्ष रूप में अन्त में कहा जा सकता है कि निष्काम कर्म ही सर्वोत्तम कर्म है। आत्मानुशासन, आत्मप्रबन्धन में अत्यन्त सहायक व कार्य करने की अद्भुत विधि है जिसके अनुसार व्यक्ति शान्तिपूर्ण जीवन यापन कर सकता है। आत्म संयम का समाज के प्रत्येक प्राणी को सुख दु:ख में समत्व भाव का अभ्यास, जीवन में दैव योग के कारण प्राप्त विपत्तियों में समायोजन करने की व स्वयं को संभालने की क्षमता प्रदान करता है। इन सबसे अहम् बात यह है कि मनुष्य के लिए आत्मसंतुष्टि सबसे प्रमुख है। यदि कोई मनुष्य अपने कार्य क्षेत्र में पूर्णतया संतुष्ट है तो वह अपने कार्य को संतोषजनक रूप से करने में समर्थ है। किसी भी राष्ट्र व समाज का प्रत्येक मनुष्य स्वार्थ भावना से ऊपर उठ कर कार्य करता है तो उस राष्ट्र व समाज को समृद्धशाली होने से कोई नहीं रोक सकता है।

सन्दर्भ

1. श्रीमद्भगवद्गीता- 3/21
2. श्रीमद्भगवद्गीता- 18/63
3. यथा ते मोह कलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति, तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।
4. श्रीमद्भगवद्गीता- 5/18
5. श्रीमद्भगवद्गीता- 5/38
6. श्रीमद्भगवद्गीता- 2/47
7. श्रीमद्भगवद्गीता- 3/23
8. श्रीमद्भगवद्गीता- 2/38
9. श्रीमद्भगवद्गीता- 2/47
10. अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृततिकोऽलसः।
    विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्चते।। वहीं- 18/28
11. सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।,
    ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।। वहीं- 6/29
12. वहीं- 4/23
13. यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
14. स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।। वहीं- 3/21
15. वहीं- 18/48
16. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। वहीं- 2/47
    वहीं- 3/11-12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों में पर्यावरण चिन्तन

प्रो० सत्येदव निगमालंकार चतुर्वेदी
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष- श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

परि उपसर्गपूर्वक आवरण से 'पर्यावरण' शब्द निष्पन्न होता है। हमारे चारों तरफ के वातावरण को अर्थात् जिससे हम आच्छादित हैं उसको पर्यावरण नाम दिया गया है। जो मानव को चारों ओर से घेरे हुए है और मानव की जीवनीय गतिविधि पर अपना प्रभाव डालती रहती है, उसे प्रभावित करती है उस स्थिति का नाम पर्यावरण है। यद्यपि लगभग 40-50 वर्ष पूर्व **पर्यावरण** पद से हम अपिरिचत से थे, किन्तु जब भी यह हमारे ऊपर अपना प्रभाव डालता रहता था। अब सर्वप्रथम प्रश्न यह समुपस्थित होता है कि जब कुछ वर्षों पूर्व तक भी पर्यावरण शब्द से हम अनभिज्ञ थे, फिर सृष्टि के आदि में सहस्त्रों वर्ष पूर्व प्रादुर्भूत वेदों में पर्यावरण विषयक सिद्धपान्त चिन्तन कहाँ से आ गया। इसके लिये हमें महर्षि मनु के इन शब्दों को ध्यानपूर्वक पढ़ना होगा जिनमें वे कहते हैं[1]-

उस परमात्मा ने सब पदार्थों के नाम और भिन्न भिन्न कर्म तथा पृथक्-पृथक् सृष्टि के प्रारम्भ में वेदों के शब्द से ही बनाये।

वेदों में कहीं नाम द्वारा, कहीं कर्म द्वारा तथा कहीं विभाग द्वारा बातें कही गयी हैं। आचार्य यास्क ने मन्त्रों के तीन प्रकार बताये हैं। परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत और आध्यात्मिक[2], जो अप्रत्यक्ष रूप में किसी अर्थ का प्रकाश करते हैं वे मन्त्र सातों नाम विभक्तियों और आख्यातों के प्रथम पुरुषों से युक्त होते हैं, वे परोक्षकृत हैं।[3] जो अप्रत्यक्षरूप में किसी अर्थ को बतलाते हैं, वे मध्यमपुरुष योगी होते हें, और त्वम् इस सर्वनाम से संयुक्त होते हैं वे प्रत्यक्षकृत मन्त्र होते हैं[4], और जो जीवात्मा अथवा परमात्मा को अधिकृत करके उनका प्रतिपादन करते हैं, उत्तम पुरुषयोी होते हैं और 'अहम्' इस सर्वनाम से संयुक्त होते हैं उन्हें आध्यात्मिक मन्त्र कहा जाता है।[5] इन वेदों में प्रार्थना, शपथ, अभिशाप, भावविवक्षा, विलाप, निन्दा, प्रशंसा आदि विषय भी हैं, जिनमें व्यक्ति जीने की कला सीखता है। अतः वेदों में पर्यावरण पद अवश्य न हो किन्तु पर्यावरण सम्बन्धी सैकड़ों मन्त्रों में चर्चा की गयी है। वस्तुतः वेदों में ईश्वर ने अपने सौरमण्डल को विशुद्ध बनाये रखने के लिये निर्देश दिये हैं। इसी कारण जहां आचार्य शंकर ने इन वेदों को अनेक विद्याओं से परिपूर्ण तर्था प्रदीप के समान सब पदार्थों का प्रकाशक माना है[6] वहीं दयानन्द सरस्वती ने इन्हें सब सत्यविद्याओं का पुस्तक[7] घोषित ही नहीं किया अपितु ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में ब्रह्मविद्या, सृष्टिविद्या, पृथिव्यादि-लोकभ्रमण, आकर्षणानुकर्षण, प्रकाश्यप्रकाशक, गणितविद्या, नौविमानादिविद्या, तारविद्या, वैद्यकशास्त्र, पुनर्जन्म आदि विषयों को वेदों में सप्रमाण दिखाया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों में पृथिवी, जल, वायु और आकाश की परिशुद्धि एवं इनके संरक्षण हेतु अनेक मन्त्रों में निर्देश दिया गया है। अपने श्रेष्ठ जीवन एवं दीर्घजीवी होने की याचना सूर्यदेव से की गयी है।[8] प्राण, पृथिवी, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, पानी, आंख, कान, मेद, मांस, स्नायु, मज्जा, वीर्य, रेतस् आदि के परिपुष्ट होने की प्रार्थना यजुर्वेद में प्राप्त होती है।[9]

अथर्ववेद में जल, वायु और ओषधियों को पर्यावरण के संघटक तत्वों में माना है।[10]

अभिप्राय यह है कि जैसे ऋग्वेद, सामगान और याजुषकर्म ये तीनों ही उस परमेश्वर के आश्रित हैं उसी प्रकार जल, वायु और औषधियाँ ये तीनों इस भुवन को घेरे हुए हैं। ये छन्दस् (छन्द) अर्थात् इसके रखक हैं। इनके नाम और रूप होने के कारण इन्हें 'पुरुरूपम्' कहा गया है। वे विश्व के दर्शक और इनसे सारा विश्व देख रहा है, गति कर रहा है और प्रसन्नता का भाव ले रहा है।

सब जानते हैं कि हमारे जीवन में जल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये जल औषधियाँ हैं। हमें इनका विनाश नहीं करना चाहिये। ये न विनाश करने योग्य हैं। ऐसी प्रतिज्ञा हमें करनी चाहिये। ये जल हमारे मित्र हैं। हमें इनसे द्वेष नहीं करना है। इन जलों से जो द्वेष करता है ये उनके लिये दु:खदायी बन जाते हैं।[11]

ये जल हमेशा प्राणियों के द्वारा गृहणीय एवं रस के विस्तारक तथा अन्न को देने वाले होते हैं।[12] जलप्राप्ति का स्त्रोत नदी भी है और समुद्र भी। इन्हें हमें शुचि बनाना है। तभी ये हमारा कल्याण करेंगे और हमें मधुवान् बनायेंगे।[13]

ये जल समुद्र में आकर विश्राम करते हैं, पुन: यहीं से प्रस्थान करते हैं। ये हमारे रक्षक हैं। ये दिव्य हैं। यदि हम समुद्र में भी इन्हें पवित्र बनाकर रखेंगे तो ये हमारी रक्षा करते हैं।[14]

यह सम्पूर्ण सूक्त जलों के संरक्षण, उनकी शुचिता एवं लाभों का वर्णन कर रहा है। जो निरन्तर पानी के साथ गति कर रहा है और जो वर्तमान में पानी से रहित हो गयी है जैसे वर्षाती नदी। उन सबकों हमें पवित्र रखना है, क्योंकि वे हमें आशीर्वाद प्रदान कर जीवन देती हैं।[15]

वेदों में पृथिवी की परिशुद्धि के लिये अनेक निर्देश मिलते हैं। यदि द्युलोक अथवा अन्तरिक्ष दूषित हो जाये तो मानव जीवन संकट में पड़ सकता है। इसलिये वेद में पृथिवी को माता कहा है एवं स्वयं उसका पुत्र माना है।[16] पृथिवी के प्रदूषण से भयंकर भूकम्पों की आशा बनी रहती है। किन्तु पृथिवी को प्रदूषित करने वाले तत्त्व मानव का असत्य व्यवहार, प्राकृतिक नियमों न पालन करना, दीक्षित न होना, तपस्या न करना अर्थात् **तपो द्वन्द्वसहनम्** जिसका अर्थ है शुभ कार्य के लिये किसी भी प्रकार के कष्टों को सहन करना, कुमार्ग पर न जाना, विशाल चिन्तन न करना अर्थात् केवल स्वार्थ की सोचना तथा जीवन में यज्ञ को न अपनाना इत्यादि हैं। अथर्ववेद कहता है कि यदि जीवन में सत्य आदि नियमों को अपनाया जाये तब भूकम्प आदि से बचा जा सकता है। तभी मनुष्य की उन्नति हो सकती है। तभी भूत सुखकारी होगा और भविष्य की कल्पना की जा सकती है।[17]

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमि तभी हमारी रक्षा कर सकती है जब हम भूमि की रक्षा करें। अथर्ववेद का ऋषि अथर्वा स्पष्ट शब्दों में कहता है कि इस भूमि का ग्रहण यज्ञवेदी करती है। संसार को सुखी बनाने की कामना से इसमें यजमान लोग यज्ञ करते हैं। सुख के भाव प्रार्थी लोग सोचते हैं तथा विस्तृत आहुतियां प्रदान करते हैं। इन कार्यों से यह भूमि वृद्धि को प्राप्त होती है। तब वह प्राणियों को बढ़ाती है।[18]

जिस प्रकार माता-पिता की सेवा करना, उनको अनेक कष्टों से बचाना, व्याधि आदि से उनकी रक्षा करना सन्तान का कर्त्तव्य होता है उसी प्रकार इस भूमि को बचाना प्रत्येक जीवधारी का कर्त्तव्य है।[19]

पृथिवी की परिशुद्धि हेतु विभिन्न प्रार्थनायें एवं उपायों पर विचार किया गया है। पृथिवी को माँ के समान सुख-शान्तिदायक मानते हुए कहा है- कि पृथिवी हमारे लिये सुखकारिणी है। कांटों, बाधक शत्रुओं, दुष्ट पुरुषों रहित एवं बसने योग्य है। हमें शरण और सुख प्रदान करती है। इसे हम पवित्र रखें और यहाँ हम पाप न करें।[20]

इस प्रकार पाप करना भी पृथिवी के प्रदूषणों में वेद ने स्वीकार किया है।

मानवजीवन का प्रमुख आधार वायु है। अथर्ववेद में **आपो वाता ओषधयः** कहकर यही कहा गया है कि वायु औषधि हैं। यहीं वायु और सूर्य के महत्त्व का भी वर्णन है, जिसमें इन्हें संसार के रक्षक बताया गया है। इन्हें अन्तरिक्ष में व्याप्त रोगहर्ता के नाम से पुकारा गया है। वायु को रोगनाशक और दोषनाशक के रूप में चित्रित किया गया है और इसकी परिशुद्धि हेतु यज्ञ का वर्णन प्राप्त होता है। वायु को औषधि, कल्याणकारक, हृदय को शक्ति देने वाली और आयु प्रदान करने वाली कहा है। यह पिता, भ्राता और सखा है जो जीवन देती है। जिस घर में वायु शुद्ध होती है, वहाँ अमृत का खजाना होता है। क्योंकि वह उन्हें जीवन देती है।[21]

आकाश की शुद्धि के लिये भी वेदों में मुख्य रूप से निर्देश दिया गया है। उसकी परिशुद्धि विशुद्ध विचारों के द्वारा सम्पन्न हो सकती है। बहुत ऊंची ध्वनि आकाश की क्षमता को विषम कर देती है। सामान्य ध्वनि प्राणियों के स्वास्थ्य के लिये उपयुक्त है। ऊँची ध्वनि आकाश के प्रदूषण में महनीय कार्य करती है। ध्वनि नापने के यन्त्र साऊण्ड मीटर ईकाई को डेसीबल कहा जाता है। हमारे कानों की संरचना इस प्रकार ही है कि वे 60-70 डेसीबल तक के शोर को सरलता से सहन कर सकते हैं। इससे ऊँचा शोर कानों के लिये घातक सिद्ध होता है। जब मनुष्य सामान्य रूप से बातचीत करता है तब 20-30 डेसीबल तक की ध्वनि होती है। मोटर साईकिल चलते समय 90 डेसीबल, बिजली की कड़क ध्वनि, जैट विमान के उड़ते समय की ध्वनि 150 डेसीबल होती है। 85 डेसीबल से ऊपर की ध्वनि सभी साधन आकाश मण्डल की समस्थता को प्रदूषित करते हैं। जिनके कारण से रक्तचाप में वृद्धि होती है। आहार-नली में गड़बड़ी पैदा हो जाती है, मांसपेशियों में तनाव आने लगता है, व्यक्ति की नींद समाप्त हो जाती है। उसे कम सुनाई देने लगता है। माईग्रेन जैसे सिरदर्द पैदा हो जाते हैं। न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल स्त्रियों के अपितु अनेक पशु-पक्षियों के भी गर्भपात सदृश रोग उत्पन्न हो जाते हैं। वेदों में इस आकाश की परिशुद्धि के लिये विभिन्न स्थानों पर वर्णन है। अम्बरम्। वियत्। व्योम। बर्हिः। धन्व। अन्तरिक्षम्। आकाशम्। आपः। पृथिवी। भूः। स्वयम्भूः। अध्वा। पुष्करम्। सगरः। समुद्रः। अध्वरम्-ये सोलह नाम वेदों में आकाश के उपलब्ध होते हैं। वेद मन्त्रों में बताया गया है कि इस आकाश को समत्व रखा जाये तथा यज्ञ आदि के माध्यम से इसके परिमण्डल को निरन्तर शुद्ध किया जाये। **अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः (यजु० २३.६२)** इस यज्ञ को समस्त भूमण्डल का नाभि स्थान बताया गया है। यज्ञ से मेघ एवं मेघ से वर्षा होती है। तब आकाशमण्डल शुद्ध होता है।[22]

शब्द शक्ति शुभ और अशुभ दो प्रकार की होती है। ऊंची ध्वनि हानिकारक तथा पर्यावरण को प्रदूषित करती है। यही ध्वनि यदि शान्ति पूर्वक समगति से उच्चारित की जाये तब शुभ और शान्ति को देती है। अथर्ववेद में कहा है कि यह वाणी भयंकर विनाश को उत्पन्न कर सकती है और शान्ति को भी दे सकती है।[23] यह वाणी समस्त ब्रह्माण्ड की संस्थापिका है एवं विस्तृत है।[24] ऋग्वेद का तो यहाँ तक कथन है कि यह आकाशमण्डल इस वाणी को धारण करता है। अतः वाणी का सदुपयोग एवं उच्चारण स्थिति उत्तम होनी चाहिये।[25]

वेदों में संसार के उपकार के लिये सहस्रो मन्त्र प्राप्त होते हैं जो इस प्रदूषण से मनुष्य को बचाने का उपदेश देते हैं। ये मन्त्र न केवल जल, पृथिवी, आकाश, वायु के प्रदूषण तक ही सीमित हैं अपितु ये तो पारिवारिक प्रदूषण को भी बचाने का संकेत करते हैं। भाई-भाई से द्वेष न करे, बहन-बहन से द्वेष न करे। इन भावनाओं का चिन्तन वेदों में सृष्टि के प्रारम्भ में हुआ, जिस प्रदूषण का विचार अभी हमारे समाज में हुआ भी नहीं है।

सन्दर्भ

१. **सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।**
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे॥ मनु० १.२१॥

२. **तास्त्रिविधा ऋचाः, परोक्षकृताः, प्रत्यक्षकृता, आध्यात्मिक्यश्च। निरु०दै० कां० ७.१.२॥**

३. **तत्रपरोक्षकृताः सर्वाभिर्नामविभिक्तिभिर्युज्यन्ते प्रथमपुरुषैश्चाख्यातस्य। निरु०दै० कां० ७.१.२॥**

४. **अथ प्रत्यक्षकृता मध्यमपुरुषयोगास्त्वमिति चैतेन सर्वानाम्ना। निरु० दै० कां० ७.१.२॥**

५. **अथाध्यातिमक्य उत्तमपुरुषयोगा अहमिति चैतेन सर्वनाम्ना॥ निरु०दै०का० ७.१.२॥**

६. **महत ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेकाविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थावद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म हि॥ वेदान्तशांकरभाष्य १.१.३॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है।। आर्यसमाज का तृतीय नियम।

८. इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम्। सर्वमायुर्जीव्यासम्। अथर्व०१९.७०.१॥

९. स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः। पृथिव्यै स्वाहाऽग्नये स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा। दिवे स्वाहा। सूर्याय स्वाहा॥ यजु० ३९/१॥
वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा।
चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा॥ यजु० ३९/३॥
लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा। माꣳसेभ्यः स्वाहा माꣳसेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा सनावभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा। रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा॥ यजु० ३९/१०॥

१०. त्रीणिच्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन् आर्पितानि॥ अथर्व० १८.१.१७॥

११. मापो मौषदीर्हिꣳसीर्धाम्नोधाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च।
यदाहुरघ्न्याऽइति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च।
सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रयास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥ यजु० ६.२२॥

१२. हविष्मतीरिमाऽआपो हविष्माँ२॥ ऽआविवासति।
हविष्मान्देवोऽअध्वरो हविष्माँ२॥ ऽअस्तु सूर्यः॥ यजु० ६.२३॥

१३. आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुशं मधुमन्तं वनेम॥
तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य॥
शतंपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत॥
याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद्गातुमूर्मिम्।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ऋग्० ७.४७.१-४॥

१४. समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविमानाः।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥
या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यासु राजा वरुझ्णो यासु सोमेविश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥ ऋग्० ७.४९.१-४॥

१५. तर अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपदा भवन्तु।
सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु॥ ऋग्० ७.४०.४॥

१६. यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु॥ अथर्व० १२.१.१२॥

१७. सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥ अथर्व० १२.१.१॥

१८. यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यां तन्वते विश्वकर्माणः।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्या पुरस्तात्।
स नो भूमिर्वर्धयद्वर्धमाना॥ अथर्व० १२.१.१३॥

१९. आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम्॥ ऋग्० ५.४३.२

२०. अस्मात्त्वमिधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा॥ यजु० ३५.२२॥

२१. महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः। दुराधर्षं वरुणस्य॥
नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु। ईशे रिपुरघशंसः॥
यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय। ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम्॥ ऋग्० १०.१८६.१-३॥

२२. समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः॥ ऋग्० १.१६४.५१॥

२३. इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरसतु नः॥ अथर्व० १९.९.३॥

२४. सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी तावदित्तत्।
सहस्रधा महिमानः सहस्रं यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्॥ ऋग्० १०.११४.८

२५. अहमेव वातइव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव॥ ऋग्० १०.१२५.८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक साहित्य में वर्णित पर्यावरणविषयक अवधारणा

डॉ० नरेश कुमार,
अतिथि प्रवक्ता- धर्म दर्शन संस्कृति,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वेद भारत के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व साहित्य के सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। संसार का कोई भी ऐसा ज्ञान अथवा विद्या नहीं है जिसका विश्लेषण वेद में नहीं हुआ हो। **सर्वज्ञानमयो हि सः, वेदे सर्वं प्रतिष्ठिम्** इत्यादि सूक्तियाँ भी इसी तथ्य की ओर संकेत करती हैं कि वह ज्ञान चाहे प्राणविज्ञान हो, सृष्टिविज्ञान हो मनोविज्ञान हो, रसायनविज्ञान हो, जन्तुविज्ञान हो, पादपविज्ञान हो, जीवविज्ञान हो, गणितविज्ञान हो, आयुर्विज्ञान हो, कृषिविज्ञान हो, चाहे पर्यावरण विज्ञान ही क्यों न हो; इन सभी विज्ञानों का मूल वेदों में निहित है। यहाँ पर्यावरण शब्द किस प्रकार बना है इसके विषय में जानना आवश्यक है। पर्यावरण शब्द परि एवम् आङ् उपसर्गपूर्वक वृ-आवरणे धातु से ल्युट् प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। पर्यावरण का सामान्य अर्थ है- हमारे चारों ओर का वातावरण, जिसमें हम आवृत्त हैं, वह पर्यावरण कहलाता है। हमारे चारों ओर विद्यमान जल, वायु, पृथिवी, आकाश, वृक्ष इत्यादि पर्यावरण के ही घटक हैं। ये सभी घटक जीवनधारक अवयव हैं। एतद्विपरीत प्रदूषण से अभिप्राय जल, वायु एवं पृथिवी आदि में अवाञ्छित भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन से है। मानवजाति के लिये यह प्रदूषण स्वास्थ्य- कल्याण एवं सुरक्षा की दृष्टि से अत्यन्त हानिकारक है।

वेद में विशुद्ध पर्यावरण में रहते हुए मनुष्य के लिये दीर्घायु अर्थात् सौ वर्ष की आयु की कामना की गयी है। वेद द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक, पृथिवी लोक, आपः, विश्वदेव, ओषधि, वनस्पति इत्यादि की तो शुभ कामना चाहता ही है वह शान्ति को भी शान्ति के रूप में देखना चाहता है। अर्थात् मनुष्य के जिस प्रकार के वचन होवें उसी प्रकार का चिन्तन होवे तथा उसी प्रकार के उसके कर्म भी होने चाहियें तभी शान्ति स्वयं शान्तिमय बन सकती है।[1] यह वेदों का समाज को प्रदूषण रहित बनाने का एक मूलमन्त्र है। वायु, जल, पृथिवी इत्यादि की परिशुद्धि के लिये वेदों में जहाँ अनेक मन्त्र हैं वहीं परिवार और समाज को प्रदूषण से मुक्त करने के लिये निर्देश प्राप्त होते हैं। भाई-भाई से द्वेष न करे, बहन-बहन से द्वेष न करे। सभी सुन्दर व्रत वाले बने। एवं कोई किसी को कठोर वाणी न बोले। सब भद्र वाणी का प्रयोग करें।[2] आज मनुष्यों के जीवन में हृदय सम्बन्धी अनेक रोग व्याप्त हैं। हार्ट-अटैक की बीमारी आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व वृद्धजनों को हुआ करती थी, किन्तु आज कम आयु के बच्चों में भी यह रोग देखा जाता है। इसलिये वेद में हृदय की पवित्रता की बात कही गयी है। हृदय को द्वेष से रहित रखना चाहिये। संसार के सभी प्राणियों से उसी प्रकार स्नेह करना चाहिये जिस प्रकार सद्यः उत्पन्न बच्चे से गाय किया करती है एवं उसे बच्चे की पवित्रता को स्वयं समाप्त कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देती है।[3] परिवार में पिता और पुत्र में तथा माता में एवं पति-पत्नी में वैमनस्य फैला रही है। अथर्ववेद का ऋषि के अनुसार इस वैमनस्यता अर्थात् प्रदूषण से बचने का एकमात्र उपाय है- द्वेष को दूर भगाना। यह द्वेष हमारे चारों ओर की शान्ति को विनष्ट कर देता है। मन में क्षोभ उत्पन्न करता है। इन्द्रियाँ विकृत हो जाती हैं।[5]

वेदों में जहाँ इस प्रकार के पर्यावरण को सुरक्षित रखने के उपाय बताये गये हैं वहाँ राज्य की परिधि को सुरक्षित रखने की भी दिशा निर्दिष्ट है। आज नेतृत्व पद पर पहुँच कर व्यक्ति सामान्य जनता का दोहन करना चाहता है। जिससे समाज प्रदूषित होता है। ऊँच और नीच की भावना जागृत हो जाती है। इस विक्षोभ से क्रान्ति की उत्पत्ति होती है एवं क्रान्ति से द्वेष की भावना एक दूसरे के प्रति जागृत होती है। इसको समाप्त करने के लिये समान रूप से सबको देखने का निर्देश है। राजा प्रजा में अपने पुत्र की भावना का निरीक्षण करे, उसके सुख दु:ख को पहचाने, उसकी पीड़ा को अपनाये।[6]

वनस्पतियों के दोहन से तथा उसके अन्धाधुंध विनाश से पृथिवी चलायमान हो जाती है। उस पर भूकम्प आते हैं। बड़े-बड़े भवन भूमिसात हो जाते हैं। त्राहि-त्राहि मच जाती है, अनेक प्राणी असमय में ही मौत के मुँह में समा जाते हैं। उनसे बचने का एकमात्र उपाय है। वृक्षों का विनाश न करें।[7]

वृक्षों के विनाश के कारण से वायु की परिशुद्धि असम्भव होती है। वायु की परिशुद्धि न होने से वायुजनित अनेकों रोग उत्पन्न हो जाते हैं। दमा, श्वास रोग, मूर्च्छा, नस एवं नाड़ियों में पीड़ा शुद्ध वायु के अभाव से उत्पन्न होते हैं। अत: वृक्षों का विनाश प्राणियों के विनाश का कारण बनता है।[8] शुद्ध वायु मनुष्य के लिये न केवल वायु है अपितु वह औषध है। वेद ने शुद्ध वायु को विश्व-भैषज एवं देवताओं का दूत कहा है, जिससे स्वास्थ्य संरक्षित होता है।[9] वेद का मन्त्र स्पष्ट निर्देश देता है कि सभी कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को इन वृक्षों की रक्षा करनी चाहिये क्योंकि ये वृक्ष अपनी शुद्ध हवा के द्वारा मरुतों को उत्पन्न करते हैं। प्राणियों की रक्षा करते हैं एवं पानी को लाते हैं।[10]

ये वृक्ष प्राणियों को शान्ति देते हैं, होने वाली विपत्ति से बचाते हैं, समृद्धि देते हैं, धन देते हैं एवं स्वास्थ्य प्रदान करते हैं।[11] ये वृक्षा केवल वृक्ष न होकर प्राणियों की रक्षा करने के कारण से वेदों में इन्हें स्वामी बताया गया है। ये सहस्रों शक्ति वाले हैं एवं स्वयं में ओषधियाँ हैं, जो प्राणियों के दु:खों का नाश करती है।[12] जो कोई नहीं कर सकता वह लाभ ये वनस्पतियाँ कर देती हैं। मनुष्य का कल्याण एवं मनुष्यों को जीवन ये ही देते हैं।[13] वेद का निर्देश है कि सौ प्रकार से इन वनस्पतियों की रक्षा करे। सहस्र प्रकार से इन वनस्पतियों को बचाये क्योंकि ये वनस्पतियाँ प्राणियों में ओज प्रदान करती हैं।[14]

वायु प्रदूषण से बचने के लिये वेदों में अनेकों मन्त्र उपस्थित हैं। यह वायु मनुष्यों का रक्षक है, समस्त भूण्डल को अपने परिधि से घेरा हुआ है एवं एक स्थान से दूसरे स्थान तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याप्त रहता है, जिससे प्राणी जीवित रहते हैं।[15] प्रदूषित वायु मनुष्य की चिन्तन शक्ति को कम करता है। सल्फर डाईऑक्साइड फेफड़ों को रोगों से व्याप्त कर देता है, जिससे दमा एवं खांसी रोग उत्पन्न होते हैं। आँखों में जलन, छींक, कैंसर, फेंफड़े के रोग, बेहोशी, दम घुटने जैसे रोग, विषैली गैसों के सूक्ष्म कण जैसे रोग आदि अशुद्ध वायु के कारण उत्पन्न होते हैं यह अशुद्ध वायु रेडियाधर्मी पदार्थों के कण ऊतकों (Tissues) को मृत कर देते हैं जिनके कारण से वंशानुगत रोग उत्पन्न हो जाते हैं। वेदों में वायु के संरक्षण के लिये अनेक विचार बताये गये हैं। इसे विश्वभेषज कहा गया है क्योंकि शुद्ध वायु सभी रोगों और दोषों को समाप्त करता है।[16] पर्यावरण को शुद्ध करने वाले तत्त्व पर्वत, जल, वायु, वर्षा और अग्नि हैं। ये प्रदूषण को नष्ट करते हैं एवं पर्यावरण को शुद्ध करते हैं।[17] वेद में पर्यावरण के लिये परिधि शब्द का प्रयोग हुआ है एवं पूर्ण शुद्धि के लिये ब्रह्म शब्द का प्रयोग है। मन्त्र में बताया गया है कि जहाँ पर्यावरण शुद्ध रहता है, वहाँ न केवल मनुष्य अपितु गौ, अश्व तथा पशु आदि सभी सुखपूर्वक रहते हैं।[18] भूमि के चारों ओर विद्यमान ओजोन परत है जिसका वर्णन ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में प्राप्त होता है। ओजोन परत के लिए महत् उल्ब पद का प्रयोग हुआ है। उसे स्थविर कहा गया है। स्थविर से अभिप्राय स्थूल, या मोटी परत से है। अथर्ववेद ने तो ओजोन की परत का रंग हिरण्य अर्थात् सुनहरा दिखाया है। उल्व शब्द गर्भ में स्थित शिशु के ऊपर ढकी हुई झिल्ली के लिये प्रयोग होता है। वेद मन्त्र में पृथिवी को एक गर्भस्थ शिशु मानते हुए उसकी रक्षा के लिये चारों ओर विद्यमान ओजोन की परत को महान् तथा स्थूल उल्ब का नाम दिया गया है।[19] मन्त्र का स्पष्ट भाव है कि यह ओजोन की परत पृथिवी की रक्षा करती है। इस परत को हानि से बचाने के लिये वृक्षों का होना बहुत आवश्यक है, इसको संकट में डालना उसी प्रकार खतरनाक है जैसे गर्भस्थ बालक की झिल्ली को अस्त-व्यस्त करना है।

वेदों में जल को नष्ट न करने की बात है। इन जलों को भी ओषधि बताया गया है, जो मनुष्यों को सुख प्रदान करते हैं।[20] समुद्र और नदियाँ मनुष्य को सुख देते हैं इनसे छेड़खानी करना घातक सिद्ध होता है। ये घृत के तुल्य प्राणियों को परिपुष्ट करते हैं। धन तथा मधुर जल भी देते हैं।[21]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदों में जहाँ विभिन्न प्रकार का पर्यावरण संरक्षण के उपाय बताये गये हैं वहाँ परिवार, समाज, राष्ट्र तथा व्यक्ति को भी संरक्षित होने की चर्चा की गयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ

१. द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्वि श्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शानितः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ यजु० ३६/१७॥

२. मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्ता स्वसारमुत स्वसा।
समयञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥ अथर्व० ३.३०.३॥

३. सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥ अथर्व० ३.३०.१

४. अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवान्॥ अथर्व० ३.३०.२

५. येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥ अथर्व० ३.३०.४

६. भूतो भूतेषु पय आ दधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव।
तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनु मन्यतामिदम्॥ अथर्व० ४.८.१॥

७. परि ग्राममिवाचितं वचसा स्थापयामसि।
तिष्ठा वृक्षइव स्थाम्नयभ्रिखाते न रूरुपः॥ अथर्व० ४.७.५

८. द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद्रपः॥ अथर्व० ४.१३.२

९. आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे॥ अथर्व० ४.१३.३

१०. त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुां गणाः।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत्॥ अथर्व० ४.१३.४

११. आ त्वामगं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभिः।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते॥ अथर्व० ४.१३.५

१२. ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे।
चक्रे सहस्त्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा॥ अथर्व० ४.१७.१

१३. यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम्।
चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः॥ अथर्व० ४.१८.६

१४. शतेन पाहि परि पाहि सहस्त्रेणाभि रक्ष मा।
इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दुधत्॥ अथर्व० ४.१९.८

१५. वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद्विशथो यौ च रक्षथः।
यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमंहसः॥ अथर्व० ४.२५.१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६. आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे॥ अथर्व० ४.१३.३

१७. ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः।
वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यामदशीशमन्॥ अथर्व० ३.२१.१०

१८. सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम्॥ अथर्व० ८.२.२५

१९. महत्तदुल्बं स्थविरं तदासीद्येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः।
विश्वा अपश्यद्यहुधा ते अग्ने जातवेदस्तन्वो देव एः॥ ऋग्० १०.५१.१
आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन्।
तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद्धिरण्ययः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ अर्थव० ४.२.८

२०. मापो मौषधीर्हिꣳ सीर्धाम्नो धाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च। यदाहुरघ्न्याऽइति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च। सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥ यजु० ६/२२॥
प्राणम्मे पाह्यपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्मऽउर्व्या विभाहि श्रोत्रम्मे श्लोकय।
अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय॥ यजु० १४/८॥

२१. इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव॥ ऋग्० ६.५२.६
याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरद्गातुमूर्मिम्।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ऋग्० ७.४७.४
सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणीः।
देवीरापो मातरः सूदयित्नवो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत॥ ऋग्० १०.६४.९

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Gurukul Kangri Vishwavidyalaya

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक वाङ्मये प्राचीनशिक्षाविमर्शः

रवीन्द्र कुमार
असि.प्रो० वेद विभाग
गुरुकुल कांङ्गी विश्वविद्यालय, हरिद्वारम्

वैदिकजीवनव्यवस्थानुसारं मानवस्य जन्मत्रयं भवति। एतेषां त्रिविधानां जन्मनां शतपथे निरूपणमेवंविधं वर्तते यद् **'त्रिर्ह वै पुरुषो जायते। एतन्नु एव मातुश्चाधि पितुश्चाग्रे जायते, अथ यं यज्ञ उपनयति स यद् यजते तद् द्वितीयं जायते, अथ यत्र मियते यत्रैनामग्नावभ्यादधति स यत्ततस्सम्भवति तत्तृतीयं जायते।'**[१] अर्थात् प्रथमं जन्म मातुर्गर्भाद् भवति। एतद् हि साधारणं जन्म सर्वेषां च सम्भवति। द्वितीयं यज्ञद्वारा भवति। तृतीयं च जन्म पुनर्जन्म भवति, यद् हि मृत्योरन्ते अग्निसमर्पणोपरान्तं मानवो लभते। बृहन्नारदीयपुराणे एतानि त्रीणि जन्मानि किञ्चिद् भेदेन कथितानि। यथा **''ब्राह्मणः, क्षत्रियो, वैश्यो द्विजाः प्रोक्तास् त्रिजास्तथा। मातृतश्चोपनयनाद् दीक्षाया जन्म वै क्रमात्।''**[२] एतत् तृतीयं जन्मापि सर्वसाधारणम्। एतेषु तृतीय जन्म वाच्यार्थतो जन्मान्तरमेव। अस्य जीवनस्य पश्चाद् भाव्यम्। अतो मानवजीवने प्रारम्भिक जन्मद्वयं महत्वं भृशं भजते। एतेषां येषामपि जनिजुषां एते जन्मनी सिद्धे भवतः, ते द्विजा आहोस्विद् द्विजातिरुच्यत्ते शेषाश्चैकजातिरेव। शास्त्रसम्मतौ तु ब्राह्मण क्षत्रियवैश्यास्तु द्विजाः, शूद्रश्चैकजः। उच्यतेऽपि मनुस्मृतौ-

ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः।।[३]

प्रथमं जन्म तु सर्वेषामपि भवत्येव। द्वितीयं जन्मैव मानवकारकं वास्तविकं स्थायिमहत्वं च। उच्यते खलु-

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद् वेदपरागः।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साऽजराऽमरा।।[४]

अस्यै द्वितीयजन्मविषये ब्रह्मवेदे प्रोच्यते-

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति। तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।।[५]

आचार्यो हि ब्रह्मचारिण उपनयनं कुर्वाणो निशात्रये स्वगर्भे ब्रह्मचारिणं धारयति। इत्थं समुद्भूतं ब्रह्मचारिणं वीक्षितुं देवा अपि समायान्ति।

द्वितीयस्य जन्मन्स्तुलनात्मकेऽध्ययने प्रथमस्य जन्मनोऽत्यन्तं न्यूनं महत्वं वर्तते। शतपथे वर्ण्यते यत् **''अनद्धेव वा अस्यातः पुरा जानं भवति। इदं ह्याहुः रक्षांसि योषितमनुसचन्ते, तदुत रक्षांस्येव रेत आदधतीति। अथात्राद्धा जायते यो ब्रह्मणो या यज्ञाज्जायते।''** अर्थादुपयननस्य दीक्षायाः पूर्वं यज्जन्म भवति, वस्तुतस्तु तदेवाविनिश्चितं भवति। तस्मिन् जन्मनि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तु रक्षसां वीर्यस्यापि सम्मिश्रणं भवति। अतो वास्तविकं जन्म तदेव यद् वेदाद् यज्ञाच्च सम्पन्नम्। ब्रह्मणाः क्षत्रिया वैश्याश्च ब्रह्मणो यज्ञादपि समुत्पन्ना, अतः क्षत्रिया वैश्या अपि च ब्राह्मणा एव।

छात्रस्थ माहात्म्यमथर्ववेदस्योपर्युदाहृतयोक्त्या व्यक्तवाचा प्रकट्यते। उपनीतोऽसौ ब्रह्मचारी देवैरपि स्तूयतेऽवलोक्यते च। भारद्वाज गृह्यसूत्रे तु एतावत् प्रोक्तं यत् समावर्तनसंस्कारस्य पूर्वं ब्रह्मचारी प्रातस्समये कस्मिंश्चित् कक्षे तिरोहितः कार्यते स्म, येन तज्ज्योतिस्सहस्रांशुज्योतिरपमानं न कुर्यात्।[7] असौ उपनीतो ब्रह्मचारी तु यदि पथ्यपि क्वचित् समागच्छेत्, तदानीं नृपोऽपि पन्थानं विजहाति स्म।[8]

प्रथमं जन्म प्रकृतौ भवति द्वितीयं च जन्म संस्कृतौ। प्रथमं जन्म प्राकृतिकं भवति द्वितीयं जन्म सांस्कृतिकम्। संस्कृतिरेव मानवमन्येभ्यः प्राणिभ्योऽपाकरोति। वैदिकपरम्परानुसारं मानवस्य संस्कृतौ जन्म उपनयनसंस्कारेण भवति। संस्कारोऽयं संस्कृतौ शिक्षायामाचार्यकुले गुरुकुले च प्रवेष्टुं हि योग्यतापत्रम् अस्ति। एतत् पत्रं न व्रतहीनाय। तदर्थमेव ये संस्कृतये व्रतं गृहीतुमुद्यताः। संस्कृति प्रति प्रतिश्रुताः प्रतिबद्धाश्च। अनृतः सत्यं प्रति सङ्क्रमणनिष्ठा येषाम्। एतेषां सङ्केतस्तु वेदेऽपि दृश्यते यद्-

अग्ने व्रतपते! व्रतं चरिष्यामि तच्छकेय तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि।[9]

व्रतेनैव दीक्षा लभते। दीक्षया दक्षिणा, दक्षिणया श्रद्धा, श्रद्धया च सत्यम्। श्रुतौ समाम्नातमपि-

व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते॥[10]

विद्यया व्रतं प्राचीनकाले ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां द्विजानां कृते एव प्रतिपादितम् आसीत्। वस्तुत उक्तेषु त्रिषु वर्णेषु उपनयनं भवति स्म। अत एव एतदर्थं द्विजपदं प्रोच्यते। बौधायने रथकाराय अपि उपनयनं प्रोक्तम्।[11] महाभारते प्रोच्यते यद् प्राचीनकाले चण्डालानां कृतेऽपि वेदश्रवणाधिकार आसीत्। तद्यथा-

"पुरा वेदान् ब्राह्मणा ग्राममध्ये घुष्टस्वरा वृषलान् श्रावयन्ति।[12]

महाभारतस्य निम्नलिखितपद्येनापि एवमेव सिध्यति-

सर्वे वर्णा ब्राह्मणा ब्रह्मजाश्च सर्वे नित्यं व्याहरन्ते च ब्रह्म।
तत्वं शास्त्रं ब्रह्मबुद्ध्या ब्रवीमि, सर्वं विश्वं ब्रह्म चैतत् समस्तम्॥[13]

अहिर्बुध्न्यसंहितायां चतुर्णामपि वर्णानां कृते वेदाध्ययनाधिकारः। तद्यथा-

ये हि ब्रह्ममुखादिभ्यो वर्णाश्चत्वार उद्गताः।
ते सम्यगधिकुर्वन्ति त्रय्यादीनां चतुष्टयम्॥[14]

जैमिनिपूर्वो मीमांसा सूत्रकारो बादरिरपि वैदिके धर्मे कर्मणि च शूद्रस्य अधिकारोऽस्तीति प्राह- **निमित्तार्थेन बादरिः, तस्मात् सर्वाधिकारं स्यात्।**[15] भारद्वाजश्रौतसूत्रानुसारेण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केषाञ्चिदाचार्याणां मतं यद् शूद्रोऽपि वैदिकाग्नित्रयं ज्वालायितुं शक्नोति।[16] लघुविष्णुस्मृतौ पञ्चमहायज्ञस्याधिकारश्शूद्रायापि प्रदीयते-

पञ्चयज्ञविधानं तु शूद्रस्यापि विधीयते।[17]

वृद्धहारीतस्मृतिरपि शूद्राय मन्त्राधिकारं ददाति-

मन्त्राधिकारिणः सर्वे ह्यन्नन्यशरणा यदि।[18]

महाभारतेसशूद्राय वर्णचतुष्टयाय वेदाधिकारसम्बन्धे विधिवाक्यमेकं लभते-

श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणामग्रतः।
वेदस्याध्ययनं हीदं तच्च कार्यं महत् स्मृतम्॥[19]

यजुर्वेद व्यक्तवाचोदीर्यते यन्मन्त्राधिकारश्शूद्रायापि। तद्यथा-

यथेमां वाचं कल्याणवीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।[20] एवं सिध्यति यद्यपि एतादृशा बहव आचार्यास्सन्ति, ये वेदाध्ययनद्वारं शूद्रायापि उद्घाटयन्ति। स्वामिनो दयानन्दप्रवरा अपि एकत्र लिखन्ति यद् यो हि कुलीनः शुभलक्षणः शूद्रः, तं मन्त्रसंहितां परिहाय अन्यत् सर्वशास्त्रं पाठयेत्। शूद्रः पठेत्, परन्तु तस्योपनयनं न कुर्यात्। एतन्मतं ह्यनेकेषाम् आचार्याणाम्।[21]

स्त्रीणां वेदाध्ययनायापि प्राचीनेषु आचार्येषु मतविभेदो लभते। पुराणादिषु शूद्रैस्सह स्त्रीरपि वेदाध्ययनं न कुर्यादिति निषेधः।

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्॥[22]

अतिप्राचीने काले स्त्रीरपि यज्ञोपवीतं धारयति स्म। सा गायत्रीं वेदं च पठति स्म। तद्यथा-

पुराकल्पेषु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा।[23]

स्कन्दपुराणस्याङ्गभूतायां सूतसंहितायामपि कण्ठतस्स्वीक्रियते यद् वेदाभ्यासाधिकारो द्विजस्त्रीणां कृतेऽति वर्तते-

द्विजस्त्रीणामपि श्रौतज्ञानाभ्यासेऽधिकारिता।[24]

क्वचित् क्वचित् यज्ञोपवीतिनी कन्येत्यस्यापि उल्लेखोऽस्ति।[25] पत्या सह पत्नी अपि वेदपाठं कुर्यादिति वर्ण्यते।[26] अथर्ववेदे कन्यायै ब्रह्मचर्यस्य पश्चाद् विवाहविधानं कृतम्। यथा- **"ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।**[27] गोभिलगृह्यसूत्रेऽपि स्पष्टतया वर्ण्यते यत् पत्नी पठनमन्तरेण हवनं न कर्तुं शक्नोति- **नहि खलु अनधीत्य शक्नोति पत्नी होतुम्।**[28] मध्वसम्प्रदायेऽधोलिखितः श्लोकः प्रचलितोऽस्ति-

आहुरप्युत्तमस्त्रीणामधिकारं तु वैदिके।
यथोर्वशी यमी चैव शच्याद्योश्च तथाऽपराः॥[29]

हारीतस्मृतौ द्विविधाः स्त्रियः प्रोक्ताः ब्रह्मवादिनी सधोवधूश्च। ब्रह्मवादिन्यै उपनयनमग्नीन्धनं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वगृहे भिक्षाचर्याधिकारश्चास्ति। तथा च सद्योवध्वा नोपयनं भवति। यथा- **द्विविधा हि स्त्रियः। ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मदिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं स्वगृहे भिक्षाचर्यं च। सद्योवधूनामुपनयनमकृत्वा विवाहः कार्यः।**[३०] इत्थं वयं पश्यामो यद् शूद्राणां स्त्रीणां च कृते प्राचीने काले परस्परविरोधिमतानि प्रचलितान्यासन्। अयं मतभेदस्तु केवलं वेदाध्ययने नाध्ययनमात्रे। अध्ययनमात्रे तु सर्वेषां कृते एवाधिकारस्सैद्धान्तिकरूपेण। ब्रह्मविद्यामपि सर्वे पठन्ति स्म। यः शङ्कराचार्यः शूद्रार्थं वेदाध्ययनं बलान्निषेधयति। वेदश्रवणमात्रकारणादेव शूद्रस्य कर्णो जत्वादिभिः पूरणीयः।[३१] एते एव मनीषिणो विदुरधर्मव्याधादीनां कृते आत्मज्ञानी[३२], रैक्चवाचक्नव्यादीनां कृते ब्रह्मज्ञानीति माऱ्थतां प्रतिपादयन्ति।[३३] एते च सर्वेऽपि शूद्रजा अज्ञातजन्मानश्च सन्ति।

सम्पूर्णे भारतीये निगमागमे सहशिक्षाया न काचित् कल्पना विद्यते। वस्तुतस्तु पुरुषाणामाचार्यकुलानां गुरुकुलानां वा सूचना प्राप्यते। आचार्यपदात् स्त्रीलिङ्गे- पदद्वयं निष्पन्नं भवति- आचार्यानी आचार्या च। आचार्यानीति पदस्य आचार्यपत्नीति अर्थः।[३४] आचार्या आचार्यसमाना अश्वयमेव भवति स्म। वैयाकरणास्तु वदन्ति यद् **''आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी। आचार्या स्वयं व्याख्यात्री।**[३५] उपर्युक्तश्लोकस्य वर्णनं कुर्वाणा भाषन्ते यद् या ब्रह्मवादिन्यः स्त्रियः, ता लक्ष्यीकृत्यैव उपाध्यायी आचार्या चेति पदद्वयं व्यवहतम्।[३६] अनेन स्पष्टं यत् कदाचित् स्त्रियोऽपि आचार्या भवन्ति स्म। आचार्यपरिभाषामाचक्षते मनुः-

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते।।[३७]

अर्थात् वेदस्याध्यापकः आचार्यः कथ्यतेऽतो वेदाध्यापिका आचार्या प्रोच्यते। तथापि पुरातनेषु शास्त्रेषु स्त्रीणां कृते कस्याश्चिद् अध्यापनसंस्थाया अथवा अध्यापनप्रक्रियाया उल्लेखो न मिलति। अत्र परम्पराऽस्मदीया मौनमाकलयति। नैवं श्रूयते यत् काचित् कन्या यज्ञोपवीतिनी उपवीता वा भूत्वाऽऽचार्यकुलमध्ययनाय गता। एषैव दशोपध्यायीपदस्यास्ति। उपाध्यायविषये मनुर्लिखति-

एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः।
योऽध्यापयति वृत्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते।।[३८]

अर्थाद् यो हि वेदस्यैकांशमाहोस्विद् वेदाङ्गानि पाठयेत्। योऽपि वृत्तिं गृहीत्वाऽध्यापयति। एतादृशोऽध्यापक एवोपाध्यायो भवति। अत्र प्रसङ्गतोऽदोऽप्युल्लेखनीयं यद् वृत्तिमादाय विद्यादानं प्राचीनकाले निन्दनीयमासीत्। शास्त्रविक्रयिणो निन्दा सर्वत्रास्ति। कालिदासोऽपि शास्त्रविक्रयिणं मनुजं वणिजं घोषयन्ति-

यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपव्यं वणिनं वदन्ति।[३९]

प्राचीने काले विद्यार्थिनोऽपि द्विविधा भवन्ति स्म। (1) अन्तेवासी[४०] अथवाऽऽचार्यकुलवासी[४१] (2) दण्डमानवः[४१] यो हि दैनन्दिनमागच्छति। प्राचीने पाठ्यक्रमस्य प्रकारत्रयमासीद्। वेदविद्या/त्रयीविद्या, धर्मशास्त्रमोक्षशास्त्रादिकम्, (3) लोकायतम्। वेदाध्ययनं चरणेषु शाखासु वा भवति स्म। वेदस्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैकानि चरणानि नैकाश्शाखा श्चासन्। एव प्रत्येकं शाखासम्बद्धयुतं विशालकायं वाङ्मयमभवत्। अनुशाखा, ब्राह्मणाः, अनुब्राह्मणाः, आरण्यकाः, निषद्, उपनिषद्, कल्पः, अनुकल्पः। शाखाध्यायिन्यः स्त्रियोऽपि भवन्ति स्म। तद्यथा- कठशाखा ध्यायिनी कठी।[43] वेदविद्यायाः प्रचारो मुख्यत्वेन ब्राह्मणेषु अभवत्। राजभ्योऽपि एतस्या विद्याया अध्ययनं शास्त्रतोऽनिवार्यमेवासीत्। व्यवहारे तु राजन्यवर्गेऽस्याः प्रचारः क्षीणत्वं गतः। धर्मशास्त्रस्य प्रचारो ब्राह्मणे क्षत्रिये चापि आसीत्। मोक्षशास्त्रस्य शिक्षायां तु राजन्या एकस्मिन् समये उपनिषत्काले ब्राह्मणेभ्योऽप्यग्रगण्या आसन्। छान्दोग्योपनिषदि ब्रह्मविद्याविशेषसम्बन्धे नृपः प्रवाहणो जैबलिमुखाद् ब्रह्मर्षिगौतमं प्रति कथयति- **इयं न प्राक् त्वन्तः पुरा विद्या ब्राह्मणान् गच्छति।**[44] बृहदारण्यकेऽपि प्रोच्यते- **इयं विद्येत्तः पूर्वं न कस्मिंश्चन ब्राह्मण उवास।**[45] गीतायां कृष्णवचो वर्तते यन्मदुपदिष्टः कर्मयोगो राजर्षिपरम्परायामेव प्रसारतां प्रयातः।[46] अस्यामेव विद्यायां तदन्तरं श्रमणा अप्यलं परिश्रमं कृतवन्तः। अस्यामेव परम्परायाम् आन्वीक्षिकी, दर्शनशास्त्रम्, तर्कशास्त्रं च विकासं प्राप्तानि, येन प्रारम्भे ब्राह्मणाः सशङ्किताः पश्यन्ति स्म। काश्यपं प्रति शृंगालत्वापन्नशक्रस्योक्तिर्महाभारते एवं वर्तते-

अहमासं पण्डितको हैतुको वेदनिन्दकः।
आन्वीक्षिकी तर्कविद्यामनुरक्तो निरर्थिकाम्।।
हेतुवादान् प्रवदिता वक्ता संसत्सु हेतुमत्।
आक्रोष्टा चाभिवक्ता च ब्रह्मवाक्येषु च द्विजान्।।
नास्तिकः सर्वशङ्की च मूर्खः पण्डितमानिकः।
तस्येयं फलनिर्वृत्तिः शृगालत्वं मम द्विजः।।[47]

लोकायतो हि किञ्चित्समयानन्तरं चार्वाकपर्यायः, परञ्च मूलतोऽसौ लौकिकविद्यात्मकशास्त्रसम्भाररूपे समुद्भूतः। वैदिक ब्राह्मणानां धर्मदर्शनब्राह्मणानां क्षत्रियाणां श्रमणानां समतायां लोकायतिक ब्राह्मणानामपि एकः समूह आसीत्। रामायणे रामो भरतं प्रजामङ्गलं पृच्छन् लोकायतिकं ब्राह्मणानामपि कुशल क्षेमं पृच्छति, यद्यपि एवं प्रतीयते यत्तस्मिन् सन्दर्भे तान् प्रति निन्दास्वरमपि मिश्रयति-

कच्चिन्न न लोकायतिकान् ब्राह्मणान् तात! सेवसे?
अनर्थकुशला ह्येते बालाः पण्डितमानितः।।[48]

तदानी या विद्याः पाठ्यमाना आसन्, तासां स्थूलसूची प्राप्यते। राजन्यवर्गाय आन्वीक्षिकी अर्थात् तर्कशास्त्रम्, वेदत्रयी, वार्ताऽऽर्थादर्थशास्त्रम्, दण्डनीतिरर्थाद् राजनीतिः, एताश्चतस्रो विद्या निर्धारिता आसन्।[49] विद्यानां सूचीद्वयं वर्तते। एकस्यां चतुर्दशानां वर्णनं द्वितीयस्यां च अष्टादशानाम्। चतुर्दशानां गणना शास्त्रे एवं प्राप्यते-

पुराण न्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्ग मिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।।[50]

अर्थात् पुराणानि, न्यायमीमांसे, धर्मशास्त्राणि, शिक्षाकल्पव्याकरणनिरुक्तछन्दोज्योतिषात्मकानि

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदाङ्गानि, चत्वारो वेदाश्चेति चतुर्दश विद्याः। एतासु उपवेदचतुष्टयं सम्मेल्य सङ्ख्यैषा अष्टादश भवति-

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसान्यायविस्तरः।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः।
अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टादशैव ताः॥[51]

नारदो यासां विद्यानामध्ययनं कृतवान्, तासां सूची एवमासीत्- **ऋग्वेदं भगवो! ध्येमी, यजुर्वेदं सामवेदमाथर्ववणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्य- मेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्याम्।**[52]

प्राचीनशिक्षाया विषये महत्वपूर्णमिदमस्ति यद् वेदविद्याया धर्मशास्त्रस्य मोक्षशास्त्रस्य च शिक्षाया उद्देश्यं केवलं बुद्धेरेव संस्कारो नासीत्, परञ्च समस्तव्यक्तित्वस्य विकास आसीत्। निरुक्ते उदाहृतानि संहितोपनिषद्ब्राह्मणस्य वसिष्ठस्मृतेश्च वचांसि सन्ति-

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम, गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि।
असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया, वीर्यवती यथा स्याम्॥[53]

ब्रह्मविद्याप्राप्तये आचार्यादेशे वर्षाणि ब्रह्मचर्यवासं कुर्वन्ति स्म जिज्ञासवः। तपसा श्रमेण च जीवनं यापयन्ति स्म। वेदान्तबोधाय शङ्कराचार्योऽपि साधनचतुष्टयस्य विधानं कृतवान्- षट्क सम्पत्तिः (शमदमोपरतिवितिसमाधिश्रद्धाः), नित्यानित्यवस्तु विवेकः, इहामुत्रार्थभोगविरागः, मुमुक्षुत्वं च।[54]

वैदिक शिक्षा सदा मौखिकी भवति स्म। लिखितपाठकस्य तु निन्दा भवति स्म-

गीती शीघ्री शिरस्कम्पी तथा लिखितपाठकः।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः॥[55]

वैदिकग्रन्थराशिं कण्ठस्थीकुर्वन् अध्येतृवृन्दानामायुषो महान् भागस्तु व्यलीयत। प्राचीनग्रन्थानां सन्दर्भेण परिचीयते यल्लोके त्वयमपि प्रवादः प्रचलित आसीद् यदनेन प्रकारेण मतौ दुष्प्रभावो भवति। युधिष्ठिरं प्रति भीम उवाच-

श्रौत्रियस्येव ते राजन्! मन्दकस्याविपश्चितः।
अनुवाकहता बुद्धिर्नैषा तत्वार्थदर्शनी॥[56]

कालिदासोऽपि पुरुरवाननद्वारा उर्वशीलावण्यं वर्णयन्नुवाच यदेतादृशं मनोहरं रूपं वेदाभ्यासजडो ब्रह्माऽपि न निर्माणे समर्थः।

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच् चन्द्रो नु कान्तिप्रदः।
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनः! मासो नु पुष्पाकरः।
वेदाभ्यास जडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्मातुं प्रभवेन् मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः।[57]

एतादृश एव श्लोकोऽत्र श्रीमद्भागवतेऽपि वर्तते-

प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयम्,
देव्या विमोहितमतिः बत माययाऽलम्।
त्रय्यां जडीकृतमतिः मधुपुष्पितायाम्,
वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः॥५८

एतासु स्थितिषु वैदिकज्ञानविज्ञानस्य लोपस्य स्थितिरागता। धर्मशास्त्रस्य मोक्षशास्त्रस्य चाध्ययनमपि प्रायेण मौखिकमेव। तदनु सूत्रादीनां प्रणयमभूत्। लिपिबद्धस्य प्रचलनं न्यूनमासीत्, अत एव अनेकानि शास्त्राणि तदध्येतृजनैस्सहैव कालकवलितानि। साम्प्रतं तु अल्पज्ञानराशिरेव समुपलब्धा भवति। बहवोऽतिमहत्वं गता ग्रन्था अपि लोपं गताः। उपवेदास्तु सम्प्रति केवलं नाम एव। अत्रदमप्युल्लेख्यं यदत्र कदाचित् कर्णीसूतकरण्टकप्रणीतं स्तेयशास्त्रं भवति स्म।[59] एवमन्यानि अपि लोकोत्तराणि शास्त्राणि अत्रासन्।

बौद्धोत्कर्षयुगे नालन्दाविक्रमशिलोदन्तपुरीसदृशानां विश्वविद्यालयानां परम्पराया अपि परिचयो लभते। नालन्दाविश्वविद्यालये तु प्रखरपाण्डित्यमनिवार्यमासीत् प्रवेष्टुम्। प्रवेशार्थी द्वारपण्डितैस्सह शास्त्रार्थं प्रकृत्य स्वार्हतां संसिद्ध्यैव प्रविशति स्म। अद्यत्वे यानि उच्चशिक्षाकेन्द्राणि सन्ति, तेभ्यः परमश्रेष्ठास्तु पुरातना विश्वविद्यालया आसन्। अस्मदीया प्राचीना शिक्षा तु सर्वोत्कृष्टा, संस्कारदा, व्यक्तित्वविकासार्हा चासीत्। एवमितोऽप्यग्रे अनुसन्धेयम्।

सन्दर्भ सूची

1. शतपथब्रा०- 11.2.11
2. बृहन्नारदीयपुराणम्- 22.8
3. मनुस्मृतिः- 10.4
4. मनुस्मृतिः - 2.148
5. अथर्ववेदः - 11.5.3
6. शतपथ ब्रा०- 3.2.140
7. भारद्वाजगृह्य०- 2.18
8. मनुस्मृतिः -2.138, 139
9. यजुर्वेदः - 1.5, तु0 2.28
10. यजुर्वेदः- 19.30
11. बौधायन गृह्य०- 2.5 8-9
12. महाभारतम्, अनुशासनपर्व, 94.11
13. तत्रैव शान्तिपर्व- 318,89

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

14. अहिर्बुध्न्यसंहिता- 15.20-21
15. मीमांसासूत्रम्- 6.1.7.27
16. भारद्वाज-श्रौतसूत्रम्- 5.2.8
17. लघुविष्णुस्मृतिः- 5.9
18. वृद्धहारीतस्मृतिः- 6.257
19. महाभारतं शान्तिपर्व- 327.49
20. यजुर्वेदः 26.2
21. सत्यार्थप्रकाशः, तृतीयसमुल्लासः
22. श्रीमद् भागवतम्- 1.4.25
23. मनुपरिशिष्टः, पृ० 14
24. अथर्ववेदः, 11.5.18
25. सूतसंहिता, शिवमाहात्म्यखण्डम्- 7.20
26. गोभिल, प्रपा० 1, खण्डम्-1
27. आश्वालायन श्रौत० 1.2, गोभिल० 1.3, 2.3, पारस्कर० 9.2.1, आपस्त० 12.3.12
28. गोभिल० 1.3
29. मध्व० ब्रह्मसूत्रभाष्यम् 1.1.1
30. हारीतस्मृतिः 31.23
31. शारीरिकभाष्यम्- 1.3.9
32. शारीरिक भाष्यम्- 1.3.39
33. तत्रैव 3.4.36
34. पाणिनीः, अष्टा0 4.1.49
35. भट्टोजिदीक्षितः, अष्टा० 4.1.49
36. वासुदेवदीक्षितः, बालमनोरमा, तत्रैव
37. मनुस्मृतिः- 2.140
38. तत्रैव 2.141
39. कालिदासः मालविकाग्निमित्रम् 1.17
40. अष्टाध्यायी 4.3.130, छान्दोग्यो० 4.10.1
41. छान्दोग्य० 2.23.1
42. अष्टा0 4.3.130
43. पतञ्जलिः, महाभाष्यम् 4.1.63
44. छान्दोग्यो० 5.37
45. बृहदारण्य० 6.2.8

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

46. श्रीमद्भगवद्गीता- 4.1-2
47. महाभारतं शान्तिपर्व- 180.47-49
48. वाल्मीकिरामा० 2100.38
49. मनुस्मृतिः 7.43
50. याज्ञवल्क्य०- 1.3
51. विष्णुपुराणाम्- 3.6, 28-29
52. छान्दोग्यो० 7.1.2
53. संहितोपनिषद्ब्राह्मणः, निरु० 1.2.4, वसिष्ठस्मृ० 2.14
54. शारीरिक भाष्यम्- 1.1.1
55. पाणिनीय- 32
56. महाभारतं शान्ति० 10.1
57. कालिदासः विक्रमोर्व० 1.10
58. श्रीमद्भाग० 6.3.25
59. "कबीरसुतः करण्टकः स्तेयशास्त्रप्रवर्तकः" इति बृहत्कथायाम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक वाङ्मय में लोकसंगीत एक चिन्तन

डॉ० निशा पाठक
वरिष्ठ प्रवक्ता संगीत (सितार)
कानपुर विद्यामन्दिर महिला महाविद्यालय
स्वरूप नगर, कानपुर - 208002

भारत का सबसे प्राचीन, नियमित और सुसम्बद्ध संगीत वैदिक काल से प्राप्त होता है। वैदिक काल तक संगीत की दो स्पष्ट धाराएं हो चुकी थी। (1) शास्त्रीय संगीत (2) लोक संगीत। शास्त्रीय संगीत में गान की कलात्मकता एक विशेष पद्धति से सम्बद्ध होती है तथा इसमें देश तथा समाज की सांस्कृतिक एवं धार्मिक अस्मिता का विशेष महत्त्व होता है। वैदिक शास्त्रीय संगीत में 'सामगान' शास्त्रीय संगीत का प्राचीनतम रूप है। लोक संगीत का अभिप्राय ऐसे गीतों से है जो व्यक्ति विभिन्न सामाजिक अवसरों पर स्वयं या सबके मनोरंजन के लिए या अपने सुखात्मक एवं दुखात्मक भावों की अभिव्यक्ति के लिए स्वेच्छा से गाया करता है। इसमें गान की सुगतमा, सरलता एवं भावों की सहज अभिव्यिक्ति होती है। वैदिक काल में लोक संगीत के रूप में जो भी गान प्रचलित रहे होंगे, उनका कोई संकलन या परम्परा प्राप्त न होने के कारण आज हमें उनकी पूरी जानकारी उपलब्ध नहीं होती। किन्तु उस काम में लोक संगीत के अर्न्तगत गाथा नारांशी, रैभी आदि गीत प्रकारों को उल्लेख मिलता है जिसमें आर्यों के युद्ध विजय से सम्बन्धित कथायें रहती थी। वैदिक साहित्य में लोक संगीत के जो विभिन्न संदर्भ मिलतें हैं, उनसे हम तत्कालीन लोक संगीत के स्वरूप का अनुमान लगाने का प्रयत्न करते हैं। वैदिक लाल में भी गीत को अधिक आकर्षक एवं रोचक बनाने के लिए साथ वाद्य एवं नृत्य की संगति से संगीत को पूर्णता प्रदान की गई।

लोक संगीत का आयोजन सामाजिक तथा धार्मिक अवसरों पर किया जाता था। कात्यायन श्रौतसूत्र में लौकिक संगीत के अन्तर्गत नृत्य, गीत तथा वादित्र का एक साथ उल्लेख हुआ है।[1] ऋग्वेद के दशम मंडल में गीत तथा वाद्य के मंजुल संयोग की बात उल्लिखित है। जहाँ यम का सदन नानाविध गीतों से तथा नाड़ी नामक वाद्य की ध्वनि से परिपूर्ण बताया गया है।[2]

ऋग्वेद् में गीत तथा वाद्य के साथ नृत्यकला का भी प्रचुर अस्तित्व पाया जाता है। नवोदित ऊषा की स्वर्णिम आभा को देखकर वैदिक ऋषि को सुसज्जित नर्तकी के विभ्रम का स्मरण हो आर्ता है।[3] गीत वाद्य तथा नृत्य के सामूहिक संगीत का उल्लेख अथर्ववेद के प्रसिद्ध 'पृथ्वी सूक्त' के एक मन्त्र में हुआ है।[4]

नृत्य का कार्यक्रम खुले प्रांगण में तथा उन्मुक्त वातावरण में एकत्रित जनता के सम्मुख होता था, जिसमें नर तथा नारी दोनों भाग लेते थे। सामूहिक नृत्य से उत्थित होने वाली धूल का उल्लेख ऋग्वेद के 10/76/6 में पाया जाता है। ऋग्वेद के एक अन्य मंत्र में विविध गति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रमों से युक्त लोकनृत्य का उल्लेख मिलता है।[5] कृष्ण यजुर्वेद में 'तूणवध्मं ग्रामण्यं पाणिसंघातं नृत्याय' इन शब्दावलियों के द्वारा सुषिर वाद्य वादन के साथ ताली बजाते हुए ग्रामीणें के नृत्य का उल्लेख किया गया है। शाखायन गृहसूत्र (1/22/11) से सीमन्तोन्नयन विधि में पति वीणावादकों से सामवेद के सम्बन्ध में वादन युक्त गान करने को प्रेरित करता था। विवाह विधि में पत्नी के द्वारा गायन किए जाने का उल्लेख वैदिक वाङ्मय में यत्र तत्र पाया जाता है।[6] 'शाखायन गृहसूत्र' (1/11/5) में एक से लेकर आठ सुहागिनी स्त्रियों को सुरा पिलाकर नृत्य तथा गाने के लिए प्रेरित करने का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद में गंधर्व तथा अप्सराओं का दैवीकरण विशद रूप से पाया जाता है। अप्सरागण गंधर्वो की पत्नियाँ हैं तथा सदैव नृत्यशील एवं तेजस्विनि होती हुई सर्वत्र प्रमोद का प्रसार करती हैं।[7] ये जातियाँ सदैव गीत, नृत्य, गन्ध तथा कामिनि जैसी विलास वस्तुओं में लिप्त बताई गई हैं।[8]

शुक्ल यजुः की वाजसनेयी संहिता में तत्कालीन व्यवसाय तथा कला कौशल का पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है। इसके अन्तर्गत सूत शैलूष नर्तक गायक, वीणा वादक, वंशी वादक, शंखध्म, काहलवादक, दुन्दभि वादक तथा वीणा के लिए वस्त्रावरण बनाने वालों का उल्लेख है, जो संगीत के विभिन्न व्यवसायी वर्गों का स्पष्ट संकेत करते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण में तालधारी व्यक्तियों के स्वतंत्र वर्ग का उल्लेख 'गणक' नाम से पाया जाता है।[9]

सूत तथा शैलूष जाति के लोगों का सम्बन्ध संगीत के साथ माना गया।[10] ये जातियाँ संगीत का व्यवसाय करती थी। यद्यपि ये जातियाँ जन्मतः श्रेष्ठ नहीं मानी जाती थी, किन्तु कला कौशल के साथ सम्बन्ध होने के कारण समाज में उनको सादर प्राप्त था। नटों के लिए शैलूष संज्ञा थी।[10] वाजसनेयी संहिता में 'वंशनर्तिन' अथवा वंश पर नृत्य करने वाले वर्ग का उल्लेख है।[11] शैलूष नट नर्तक तथा वंश पर नृत्य करने वाले लोगों के उल्लेख से स्पष्ट है कि नृत्य तथा नाटक की कला उस समय अंकुरित हो चुकी थी।

लोकसंगीत के कार्यक्रम दिन या रात कभी भी आयोजित किए जाते थे। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (21/19-20) में वीणा तथा तूणव की ध्वनि से गान करते जनसमूह के रात्रि के जागरण का उल्लेख मिलता है। इन धार्मिक जागरणों में आज भी जगरातों का मूल रूप देखा जा सकता है।[12]

अथर्ववेद में लोकगीतों के अन्तर्गत 'गाथा' नाराशंसी, रैभी आदि प्रकारों का उल्लेख किया गया है।[13] गाथा एक विशिष्ट तथा परम्परागत गीत प्रकार है जैसे आज प्रचलित लोकगीत, जिनका गायन धार्मिक तथा लौकिक समारोहों पर किया जाता था। डॉ० परांजपे के अनुसार 'गाथादि गीतों का स्वरूप परम्परागत वीरकाव्यों के सदृश था तथा इन गीतों के व्यवसायी गायकों को यज्ञयाग तथा लौकिक समारोहों पर आमंत्रित किया जाता था। सूत नामक जाति ऐसे ही गीत तथा नृत्य का व्यवसाय करती थी तथा राजसभाओं में उनका गौरवपूर्ण स्थान था। गाथागान के वैदिक एवं लौकिक दो प्रकार थे।[14] लौकिक गाथा में लौकिक व्यक्ति किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा, अमात्य, वीर या यशस्वी व्यक्ति की स्तुति की जाती थी। वैदिक गाथा गान में देवताओं की प्रशंसा स्तुति की जाती थी। लौकिक गाथाओं को सूत मागध आदि भी गा सकते थे। प्राचीन परंपरा पर अधिष्ठित होने के कारण इन गाथाओं को ऋचाओं से तुल्य माना जाता था। इन गाथाओं के गायक 'गाथिन' कहलाते थे।[16] ऐसे गीत के लिए 'गायत्र' शब्द का प्रयोग भी ऋग्वेद में प्राप्त होता है।[17] ऐसे गीत के गायक गायत्रिन कहलाते थे।[18] गायक के लिए गातुवित्तम शब्द का प्रयोग भी देखा जा सकता है। गाथादि गीतों का गान विवाहादि अवसरों पर भी किया जाता था। अथर्ववेद में इस बात का उल्लेख है कि सूर्या के विवाह के अवसर पर इस गाथा, नाराशंसी, रैभी आदि का गान किया गया था।[19]

वैदिक यज्ञों में भी कुछ विशेष अवसरों पर यजमान तथा अन्य लोगों के मनोरंजन के लिए संगीत के आयोजन किए जाते थे। ब्राह्मण तथा श्रौतसूत्रों के अनुसार ब्राह्मण द्वारा किए गए गाथागान में राजा द्वारा किए गए यज्ञों तथा उसके द्वारा किए गए दान तथा उसकी उपलब्धि से सम्बन्धित विषय का गान होता था। क्षत्रिय गायक अपनी गाथा द्वारा राजा के जय तथा युद्ध विक्रम का गान करते थे।[20] तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा शतपथ ब्राह्मण में इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि ब्राह्मण गायक दिन में गान करें तथा क्षत्रिय रात्रि के समय।[21] इन दोनों के गायन से अश्वमेघ करने वाले राजा को ब्रह्म तथा क्षत्र दोनों प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त होती है, ऐसी मान्यता उस काल में प्रचलित थी।[22]

अश्वमेघ यज्ञ के अन्तर्गत जिन अनेक इष्टियों का सम्पदान होता है, उनमें एक 'सावित्रि' नामक इष्टि है। इसमें 'प्रयाज' संज्ञक देवताओं के लिए जब यजन किया जाता है तब यज्ञमण्डप में दक्षिण की ओर बैठा हुआ ब्राह्मण गायक यजमान के यज्ञ तथा दान की प्रशंसा में तीन स्वरचित गाथा गाता है। इस गाथा का गान उत्तरमंद्रा मूर्च्छना में बताया गया है।[23] शतपथ ब्राह्मण (13/4/3-5) में होता द्वारा 'परिप्लव' गाथागान करने का उल्लेख है। अवश्मेधादि यज्ञों में जो प्राचीन कथाएं गाथा गान के रूप में गायी जाती थी, उन्हें 'परिप्लव' कहा जाता है। अश्वमेघ यज्ञ में राजाओं को गाथागान सुनाने का नियम इस प्रकार है- प्रथम प्रहर में मनु वैवश्वत राजाओं, द्वितीय प्रहर में यज्ञ वैवश्वत राजा और तृतीय प्रहर में वरूण आदित्यादि देवताओं की गाथा 'ब्राह्मण गायक' सुनाते थे।[24] यही वैदिक गाथाएं हैं।

अश्वमेघ यज्ञ के अन्तर्गत सामगान के साथ ही गाथागान भी प्रचलित रहा है। साम संगीत विशुद्ध रूप से मन्त्रात्मक अथवा देवस्तुति परक संगीत है, गाथा संगीत देवता तथा वीर पुरुष दोनों की स्तुति के लिए गाया जाने वाला मन्त्र बाह्य संगीत है।[25] प्रथम विशुद्ध रूप से वैदिक तथा दूसरा लौकिक एवं देशी संगीत है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में गाथा के अन्य भेदों का उल्लेख मिलता है, उसको नाराशंसी के नाम से जाना जाता था। वहाँ ऐसा उल्लिखित है कि देवताओं ने वेदों के तथा अन्न के मलिन भाग को दूर कर दिया। वेदों से निकला हुआ मलिन भाग 'नाराशंसी गाथा' के नाम से जाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया।[26] गाथाएं वे गीत थे जो प्राचीन परंपरा से सम्बद्ध थे तथा नाराशंसी तत्कालीन राजा की स्तुति में गाए गए गीत थे। डॉ० परांजपे ने नाराशंसी गीतों का अभिप्राय ऐसे गानों से लिया है, जो संभवत: गीत के निकृष्ट रूप माने जाते थे जबकि गाथाएं उच्च श्रेणी की मानी जाती थी।[27] डॉ० परांजपे का यक मत उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि ऋग्वेद में गाथा और नाराशंसी ये दोनों शब्द वैदिक स्तुति प्रकारों के रूप में उल्लिखित हैं। अत: गाथा और नाराशंसी ये दोनों काव्य की दो विधाएं हैं, जिनका प्रयोग प्राय: लौकिक पुरुषों के स्तवन में किया जाता था।

यजुर्वेद के वाङ्मय से स्पष्ट है कि संगीत का प्रसार तत्कालीन दास वर्गों में भी था। महाव्रत नामक सोमयाग में कलशधारिणी दासियों का वर्तुलाकार नृत्य होता था, जिसका पदक्रम गीत के लयानुकूल हुआ करता था। ये गीत गाथा नामक गीत हुआ करते थे। सूत्र वाङ्मय में इन गाथाओं के निम्न अभिधान पाए जाते हैं- हिल्लिका, हिम्बिनी, हस्तवारा, संवत्सरगाथा, भिल्लुका इत्यादि।[28] नृत्य के समय प्रत्येक गीत का गान युग्म के द्वारा होता था और सभी गाथाओं के अंत में 'है' महाइदंमधुहिल्लहिल्ल' इस पंक्ति का एक स्वर से सामूहिक गान किया जाता था।[29] आपस्तम्ब श्रौतसूत्र में इस नृत्य के साथ किए जाने वाले गाथा गान का स्पष्ट उल्लेख है।[30]

ऐतरेय आरण्यक में नृत्य करते समय दाहिनी जांघ में हाथ से आघात करते हुए गान करने तथा द्राहयायण श्रौतसूत्र में इस क्रिया में 'ताम्य: वीणा वादयेयु:' गान व नृत्य के साथ वीणा वादन करने का भी उल्लेख है। कुछ विद्वानों के अनुसार इस नृत्य को लोकनृत्य व गान को लोकगीत कहा गया है। परन्तु इसमें स्पष्ट विशिष्ट गाथाओं के गान का उल्लेख हैं, जिनकी परम्परा रही है।

यज्ञों के अतिरिक्त विभिन्न व्यवसायों के अवसर पर व्यवसायी लोग मनोविनोद के लिए तत्सम्बन्धी गीत गाया करते थे। बुनाई के असवर पर स्त्रियों के द्वारा किए जाने वाले गान का संकेत अथर्ववेद 10/7/42,43 में मिलता है।[31] इन नारियों की तरलगति को देखकर मंत्रकर्त्ता को वर्तुलाकार नृत्य करने वाली नर्तकियों के चपल पदक्षेप का स्मरण हो जाता है।[32]

अथर्ववेद के मन्त्र में क्लीबों (हिजड़ों) के द्वारा किए गए गान व नृत्य का वर्णन है।[33] ऐसे व्यक्तियों द्वारा किए गए कोलाहलयुक्त नृत्य को तथा गर्दभस्वर के साथ किए गए सायंकालीन नृत्य को तत्कालीन जनता अनर्थकारक मानती थी।[34]

वैदिक गाथाओं के अनेक भेद को देखते हुए ये अनुमान प्रमाण सम्मत है कि ये गाथाएं ही 'गांधर्व' में विविध रूपों में विस्तार प्राप्त कर गीतों की विधाओं की जन्मदात्री बनी। देवताओं की प्रशंसा प्रधान गाथाओं से देवस्तुति रूप गीत, मानव प्रशंसात्मक गाथाओं से नायक की प्रसंशा युक्त गीतों की परंपरा चली। प्रबंधों में प्रमुख अंग पद, विरूद के पद में प्रशंसात्मक गाथाओं का प्रभाव परिलक्षित होता है। जातियों में प्रयुक्त देव स्तुतियाँ, देवस्तुति प्रधान गाथाओं से प्रभावित जान पड़ती है। प्रबंधों से ध्रुपद की परंपरा चली जिनमें देव स्तुतियाँ, व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशंसात्मक गीत आदि सभी प्रकार के पद गाए जाते हैं।

वैदिक साहित्य में उपलब्ध उपरोक्त विवरणों के आधार पर निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि वैदिक काल में शास्त्रीय संगीत (सामगान) के साथ-साथ लोग संगीत की सुदृढ़ परम्परा पुष्पित तथा पल्लवित हो रही थी। वेदों में अन्य विषयों की भांति वैदिक कालीन लोक संगीत के विषय में और भी अनेक रहस्य होने की संभावना है। अत: आज आवश्यकता इस बात की है कि इस विषय पर और अधिक जानकारी प्राप्त करने हेतु गहन अध्ययन तथा शोध किया जाये।

सन्दर्भ

1. 'नृत्तगीतवादित्रवच्च'- कात्यायन श्रौतसूत्र, 21/42
2. इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते
   इयमस्य धम्यते नालीरियं गीर्भि: परिष्कृत:। ऋग्वेद 10/135/7
3. 'अधि पेशांसि वपते नृतुरिवा। ऋ० 1/92/4
4. यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मृर्त्या व्यैलवा:
   युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभि:। अथर्ववेद 12/1/41
5. 'प्रान्चो अगान नृतये हसाय' ऋग्वेद 10/18/3
6. तुलनार्थ·दृ० शाखायन गृहसूत्र 1/22/16
7. अथर्ववेद 4/38/1-5 4/39/3
8. अथर्ववेद 8/10/5-8 12/1/23
9. 'वीणा वादकं गणकं गीताय' तैत्तिरीय ब्राह्मण अ० 15
10. 'नृत्ताय सूतं/गीताय शैलूषम्', वाजसनेयी 30 कं० 6
11. भारतीय संगीत का इतिहास, शरचन्द्र परांजये पृ० 32
12. दृ० 30/21 उद्घृत भारतीय संगीत का इतिहास पृ० 32
13. सामगान- पंकज माला शर्मा पृ० 20
14. 'तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुत्यचलन्।' अर्थ० 15/6/11
15. भारतीय संगीत शास्त्र, तुलसी राम देवांगन पृ० 29
16. भारतीय संगीत का इतिहास- शरचन्द्र परांजये। पृ० 20
17. स न: स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा। ऋ० 1/12
18. ऋग्वेद 1/10/1
19. रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी
    सूर्याया भद्रभिद्वासो गाथयैति परिष्कृता:। अर्थ० 14/1/7
20. इत्यददा इत्ययजथा इत्ययं च इति ब्राह्मणा गायेत्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्यजिना इत्ययुध्यथा इत्यमुं संग्राममहन्नितिं राजन्यः। तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/9/14
अथैप ब्राह्मणों वीणागाथी.....इत्यददा इति त्रिस्त्रोगाथाः।
अथैप राजन्यो.....इत्यजिना इति त्रिस्त्रो गाथाः। बौधायन श्रौतसूत्र 14/8/9

21. ब्राह्मणौ वीणागाथिनौ गायतः। दिवा ब्राह्मणौ गायेत्। नक्तंराजन्यः। तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/9/14
22. 'अपवा एतस्माच्छ्री.....परिगृहीतं भवति। 'तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/9/14, दृ० शतपथ ब्राह्मण 13/1-5
23. तस्यै प्रयाजेषु तायमानेषु ब्राह्मणो वीणागाथी दक्षिणत्
उत्तरमंद्रा मुदाध्नंस्तिस्त्रः स्वयम् संभृता गाथा गायती। शतपथ ब्राह्मण 13/4/3-5
24. शतपथ ब्राह्मण 13/4/3 के ब्रह्मसूत्र कल्पतरू में 3/4/23 उद्धृत।
25. वैदिक साहित्य- बलदेव उपाध्याय, पृ० 300
26. देवा वै ब्रह्मणश्चान्नस्य च शमलमपाघ्नन्। यद् ब्रह्मणः शमलमासीत्। सा गाथा नाराशंस्य भवत्। यदन्नस्थ सा सुरा। तस्माद्रायतश्च मत्तस्य च न प्रतिगृहम यत् प्रतिगृहणीयात्। शमलं प्रतिगृहणीयात्। तैत्तिरीय ब्राह्मण 1/3/2
27. भारतीय संगीत का इतिहास, शरतचन्द्र श्रीधर परांजपे, पृ० 38
28. द्र० आपस्तम्ब श्रौतसूत्र 21/19-20; सत्याषाढ़ हिरण्य श्रौतसूत्र 16/6/39-41 बौधायन श्रौतसूत्र 16/22-23 तथा कात्यायन 13/3
29. उदकुम्भानधिनिधाय दास्यों मार्जालीयं परिनृत्यन्ति पदो निध्नन्तीरिदं मधुगायन्त्यो मधु वै देवानां परममन्नाद्यं परमेवान्नाद्यमवरून्धते पदो निध्नन्ति महीयामेवैषुददधति। तैत्तिरीय संहिता 7/5/10
30. अष्टौदासकुमार्य उदकुम्भानधिनिधाय त्रिः प्रदक्षिणं मार्जालीयं परिनत्यन्ति दक्षिणान्यदो निध्नन्तिरिदन्मधु गायन्ति। हिल्लिका द्वै गायेतां हिम्बिनी द्वै हस्तवारा द्वै संवत्सरगाथां द्वै. ...है महाइदम्मधुहिल्लवति सर्वासां ऋगन्तेषु।'' दृ० लाट्टयायन श्रौ०सू० 4/5 द्राहमा० 11/3/17-19 इस सम्बन्ध में दृष्टव्य
31. तन्त्रमेकुवतीविरूपे अभ्याक्रमं वयतः षण्मयूरपम प्रान्यातन्तूस्तिरते धत्ते अन्या नाप वृज्जाते न गमातो अन्तम्। अथर्ववेद 10/7/42-43
इमे मयूरवा उपतस्तभुर्दिवं सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे। अथर्ववेद 10/7/42-44
32. तयोरहं परिनृत्यन्तोरिव न वि जानामि यतरा पुरस्ताता। अथर्ववेद 10/7/43
33. क्लीबा इव परिनृत्यन्तो वने कुर्वते घोषं तनितो नाशयामसि। अथर्ववेद 8/6/11
34. ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभानादिनः कुसूला ये च कुक्षिलाः कुकुमाः करूमाः स्त्रिमाः तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान वि नाशय। अथर्ववेद 8/6/10

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Soft drinks consumption and human health

Vipin K. Sharma1*, B.Mazumdar2

1Department of Pharmaceutical Sciences, Faculty of Ayurved and Medical Sciences
Gurukul Kangri University, Haridwar-249404 (Uttarakhand, India)
2Department of Pharmaceutical Sciences,
Dibrugarh University, Dibrugarh-786004 (Assam, India)

Abstract: Soft drinks gained the top rank globally amongst the beverages consumed in daily life. These are considered as the quick energy reliever for boosting up the tired body and up to a level, for the chilling effect in gastric problem due to their carbonated nature. Each age group of the society (both male and female) is associated with soft drink consumption and the number of the consumers is increasing drastically. Due to incorporation of various chemical entities during their production, these play a major role for body nutrition and affect the health. The present study is emphasized to assess the significance of soft drinks on well being of human life.

Key Words: Body nutrition, obesity, osteoporosis, soft drink additives.

Introduction

The life style at global level is changing drastically due to uninterrupted working culture for growing and enhancing the income per capita. The persons living in such system have less time to spend for their entertainment as well as for their nutritional intake and searching the substitutes even for food. All of these circumstances are creating the best opportunities of development for fast food and soft drink industries. Gargantuan quantities of carbonated soft drinks are consumed in developing as well as developed countries which ultimately causes the consumers to suffer from untoward health consequences. Carbonated soft drinks provide large amounts of sugars (mostly high-fructose corn syrup) to many individuals diets. Heavy soft drink consumption is associated with lower intake of numerous vitamins, minerals, and dietary fibre.

The empty calories of soft drinks create health problems, particularly overweight and obesity. The weight gain is a prime risk factor for type 2 diabetes mellitus which is becoming a problem for teens as well as adults that ultimately contributes to heart attacks, strokes, and cancer as people get older.

Frequent consumption of soft drinks may also increase the risk of osteoporosis- especially in people who drink soft drinks instead calcium-rich milk. Dental experts advise the persons to drink less soft drink, especially between meals, to prevent tooth decay (due to the sugars) and dental erosion (due to the acids).

Soft drinks consumption may also cause a higher risk of kidney stones and a slightly higher risk of heart disease. Besides the sugars and acids, other soft drink ingredients are of major concern relating to human health. Caffeine, which is added to many of the most popular soft drinks, is a mildly additive, stimulant drug. It also

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

increases slightly the excretion of calcium. Artificial colorings are also added in soft drinks having their detrimental effects on the human body.

The presence of agents of nutritive categories in soft drinks may vary the systemic ratio of various nutrients already available in the body due to heavy consumption of carbonated/non-carbonated soft drinks. Regular soft drinks provide with sturdy amounts of refined sugars, usually in the form of high-fructose corn syrup to youths and young adult. According to dietary surveys, soda pop provides the average American with 7 teaspoons of sugars per day, out of a total of about 20 teaspoons. Teenage boys get 4 percent of their 34 teaspoons of refined sugars a day from soft drinks. Teenage girls get 40 percent of their 24 teaspoons of sugars from soft sugars. Among 12-to 19-year olds, soft drinks provide the average boy with about 15 teaspoons of refined sugars a day and the average girl with about 10 teaspoons a day[1].

Consuming large amounts of soft drinks means consuming a lot of sugars (in the form of high-fructose corn syrup) and a lot of calories. Among 12- to 19-year-olds, carbonated soft drinks provided 9 percent of boy's calorie and 8 percent of girl's calories2. In 1999-2000, carbonated soft drinks and fruit drinks/ provided 13 percent of teenagers' calories3.

As teens have doubled or tripled their consumption of soft drinks, they have cut their consumption of milk by more than 40 percent. Calcium sufficiency continued to be a particular problem for girls who consumed soft drinks4. A study of a large sample of non-pregnant, non-lactating women found that high intake of soft drinks is associated with low calcium intakes5. Drinking more soft drinks has been correlated with children of all ages consuming too little vitamin A, children younger than 12 consuming too little calcium, and children 6 and older consuming too little magnesium[6].

Effects of soft drinks consumption on health

Obesity

Being overweight or obese increases the risk of diabetes, heart disease, stroke, cancer, and other diseases and causes severe social and psychological problems[7]. Numerous factors-from lack of exercise to eating too many calories to genesis- contribute to obesity. Soft drinks add unnecessary, non-nutritious calories to the diet. Nutritionists and weight-loss experts routinely advise overweight individuals to consume fewer calories, especially from such nutrient- free foods as soft drinks. The National Institutes of Health recommends that people who are trying to lose weight or control their weight should drink water instead of sugar-containing soft drinks[8]. All these calories from empty-calorie beverages certainly could contribute to significant weight gain[9].National Cancer Institute scientists found that soft drinks provide a larger percentage of calories to overweight youths than to other youths[10]. The excess calories from soft drinks are directly contributing to the epidemics of obesity and type 2 diabetes and also that reducing sugar-sweetened beverage consumption may be the best single opportunity to curb the obesity epidemic[11]. One

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

way that soft drinks might contribute to weight gain is by increasing dietary intakes of fructose that comes from either high-fructose corn syrup or sugar (sugar molecules are made up of fructose and glucose). Fructose appears to affect blood levels of such hormones as insulin, leptin, and ghrelin. Because of fructose's effect on hormones, "prolonged consumption of diets high in energy from fructose could lead to increased caloric intake and contribute to weight gain and obesity[12].

Bones and Osteoporosis

People who drink soft drinks instead of milk or other dairy products likely will have lower calcium intakes. Low calcium intake contributes to osteoporosis, a disease leading to fragile and broken bones. The risk of osteoporosis depends in part on how much bone mass is built up early in life. Girls build 92 percent of their bone mass by age 18, but if they don't consume enough calcium in their teenage years they cannot catch up later[13]. Although osteoporosis takes decades to develop, but the lower calcium intake that may result from drinking soft drinks instead of milk can contribute to broken bones in children. Over a two-year period during adolescence (the peak period for building bone mass), the girls who drank more soft drinks and other beverages with few nutrients (fruit drinks, coffee, tea) built up less mass[14].

Tooth Decay and Erosion

Refined sugars are one of several important factors that promote tooth decay (dental caries). Regular soft drinks promote caries because they bathe the teeth of frequent consumers in sugar-water for long periods of time during the day. Caries remains a problem, however, especially for low-income and minority children. Besides tooth decay, dentists are concerned about erosion caused by the acids in soft drinks, including sugar-free diet drinks[15,16].

Heart Disease

Some of the most important causes are diets high in saturated and trans fats and cholesterol, cigarette smoking, and a sedentary life style. High-sugar diets may contribute to heart disease in people who are "insulin resistant" or have "syndrome X". Those people, an estimated one-fourth of adults, frequently have high levels of triglycerides and low levels of HDL ("good") cholesterol in their blood, abdominal obesity, and elevated blood pressure and blood sugar. When they eat a diet high in carbohydrates, their triglyceride and insulin levels raise. In many studies, sugar has a greater effect than other carbohydrates[17].

Kidney stones

Kidney stones are one of the most painful disorders to afflict humans and one the most common disorders of the urinary tract several times more man (frequently between ages of 20 and 40) are affected than women. After consumption large volumes of soft drinks for one or several days, the urine concentration of oxalate, magnesium and citrate changes that ultimately may contribute to kidney stone formation[18, 19]. National Institute of Diabetes and Digestive and Kidney Diseases (NIDDK) recommends that people trying to avoid more stones should limit their

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

consumption of these beverages as well as of coffee and tea[20].

Additives (e.g. psychoactive drugs, allergens, and more)

Several additives in soft drinks raise health concerns. Caffeine, a mildly additive stimulant drug, is present in most soft drinks. Caffeine free drinks are also available, but account for only about 5 percent of the volume of colas made by Coca-Cola[21]. Companies say that they add caffeine as flavoring. Coca-Cola says "Flavor is the only reason for using caffeine in these products"[22]. However, most regular cola-drinkers cannot detect caffeine's flavor when the substance is consumed in soft drinks[23]. In some soft drinks, caffeine is added mainly for its stimulatory effects[24]. Generally, caffeine increases the excretion of calcium in urine[25]. The amount of caffeine in soft drinks can have distinct pharmacological and behavioral effects. It can increase alertness, an effect that many people desire. The children who normally do not consume much caffeine, caffeine cause them to be restless a twitchy, develop headaches, and have difficulty going to sleep[26, 27]. Also, caffeine's addictiveness may keep people hooked on soft drinks (or other caffeine-containing beverages)[28]. The amount of caffeine in one or two cans of caffeinated soft drink can affect performance and mood, increase anxiety in children, and reduce the ability to sleep, though the threshold dose for possible behavioral effects in children remains unclear. Also, typical doses of caffeine may lead to withdrawal effects and some physical dependence in adults but with little evidence for adverse cardiovascular effects[29]. Quinine, a natural occurring alkaloid, is a bitter tasting powder extracted from the bark of the cinchona tree. Due to its bitter taste, it is used as additive in soft drinks, such as tonic water and bitter lemon[30, 31]. Quinine side effects include ringing in the ears, vertigo, disturbed vision, nausea, diarrhoea, abdominal pain, headache and fever, renal failure, chest pain, and asthma. As a consequence, some countries, such as the United States and Germany, order that quinine concentration must be declared on food labels (with an upper limit 83 and 85 mg/kg, respectively). In other countries, like China, quinine is not legally permitted to be added to drinks. Greek legislation decrees that the upper limit of quinine content in alcohol free drinks must be 100mg/L[32, 33].

Several other additives as colors and sweeteners used in carbonated and noncarbonated soft drinks may cause various problems e.g. allergic reactions with coloring agents. Yellow 5 dye causes asthma, hives, and a runny nose[34]. The red colorings cochineal and carmine, which are extracted from insects, cause rare life-threatening reactions[35]. Dyes can cause attention deficit hyperactivity disorder (ADHD) in sensitive children[36, 37]. Certain artificial sweeteners as saccharin, which has been replaced by other chemicals in all but a few brands, is linked in a human study to urinary bladder cancer[38] and in numerous animal studies to cancers of the bladder and other organs[39]. Another questionable artificial sweetener is acesulfame, which was approved in 1998 for use in soft drinks also creates the signs of increased cancer risks in animals[40].Aspartame, for two decades the most used artificial sweetener, may cause occasional adverse reactions (including headaches) and should be better tested in animals to provide greater assurance that it does not

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

promote cancer[41,42].

Conclusion

Soft drinks are much more popular and various flavors of these increase their favorability. These are sold by aggressive marketers in the world through all ethical and non-ethical means. Universal availability, low price, and the use of a wildly additive ingredient (caffeine) are the factors which have made soft drinks, the routine snake and a standard component of meals. The soft drinks provide enormous amounts of refined sugars to a nation that already does not meet national dietary goals and generally resulting in obesity. The consumption of soft drinks may contribute osteoporosis, dental problems, kidney stones, heart diseases and the used additives may lead to insomnia, behavioral problems, allergic reactions and cancer. Therefore to avoid the large consumption of soft drinks, FDA should set a Daily Value (daily limit) for refined sugars. The number of grams of those sugars and the percentage with daily value should be included on nutrition facts labels. As the consumption of soft beverages is associated with greater harm with least beneficial effects, the consumers of all age groups should avoid with high intake. Also, the Federal agencies should sponsor more scientific research to further explore the effects of soft drinks (and refined sugars) consumption on nutrient intake, obesity, dental caries and erosion, osteoporosis, kidney stones, heart diseases etc.

REFERENCES

1. U.S. Department of Agriculture (USDA). The food Guide. Home and Garden Bulletin No.252, Oct. 1996.
2. Guenther PM. Beverages in the Diets of American Teenagers. J Am Dietetic Assoc 1986; 86: 493-499.
3. Murphy M, Douglass J, Latulippe M, et al. Beverages as a source of energy and nutrients in diets of children and adolescents. Exp Biol 2005; Abstract #275.4.
4. Ballew C, Kuester S, Gillespie C. Beverage choices affect adequacy of children's nutrient intakes. Arch Pediatr Adolesc Med. 2000; 154(11):1148-52.
5. Guthrie JF. Dietary patterns and personal characteristics of women consuming recommended amounts of calcium. Family Econ Nutr Rev 1996; 9(3):33-49.
6. Ballew C, Kuester S, Gillespie C. Beverages choices affect adequacy of children' nutrient intakes. Arch Peditr Adolesc Med 2000; 154:11448-52.
7. U.S. Surgeon General. U.S. Department of Health and Human services. The Surgeon General's Call to action to prevent and decrease overweight and obesity. 2001.
8. National Heart, Lung, and blood Institute and office of research on minority health. Embrace your health! Lose weight if you are overweight. Sep.1997. NIH Pub.No.97-4061.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

9. Rosenbaum M, Leibl RL, and Hirsch J. Obesity. Using a conversion ratio of 3,500 calories per pound of weight, calories translate into about 23 pounds. New Eng J Med 1997; 337:396-407.
10. Troiano RP, Briefel RR, Caroll MD, et al. energy and fat intakes of children and adolescents in the United States: data from the National Health and Nutrition and Nutrition Examination Surveys. Am J Clin Nutr. 2000; 72:1343S-53S.
11. Apovian CM. Sugar sweetened soft drinks, obesity, and type 2 diabetes. J Am Med Assoc 2004; 292:978-9.
12. Teff KL, Elliott SS, Tschop M, et al. Dietary fructose reduces circulating insulin and leptin, attenuates postprandial suppression of ghrelin, and increase triglycerides in women. J Clin Endocrinol Metab 2004; 89:2963-72.
13. Institute of Medicine, National Academics. Dietary Reference Intakes: Calcium, Phosphates, Magnesium, Vitamin D, and Fluoride. Washington, DC: National Academics press. 1997. Pp.4-28.
14. Whiting SJ, Healy A, Psiuk S. Relationship between carbonated and other low nutrient dense beverages and bone mineral content of adolescents. Nutr Res 2001; 21:1107-15.
15. Canadian Soft Drink Association.www.softdrink.ca
16. American Dental Association (ADA) Weights in on school vending machines. Press release. Feb. 2003.
17. Hollenbeck CB. Dietary fructose effects on lipoprotein metabolism and risk for coronary artery disease. Am J Clin Nutr. 1993; 58:800s-9S.
18. Liu G, Coulston A, Hollenbeck C, et al. The effect of sucrose content in high and low carbohydrate diets on plasma glucose, insulin, and lipid response in hyper triglyceridemic humans. J Clin Endocrin Metabol 1984; 59:636-42.
19. Weiss GH, Sluss PM, Linke CA. Changes in urinary magnesium, citrate, and oxalate levels due to cola consumption. Urology.1992; 39:331-3.
20. Rodgers A. Effect of cola consumption on urinary biochemical and physicochemical risk factors associated with calcium oxalate urolithiasis. Urol Res1999; 27:77-81.
21. National Kidney and Urologic Diseases information clearinghouse, National Institute of Health. What I need to know about kidney stones. NIH Pub. No. 04B41554.2004.
22. Beverage Digest. www. Beverage-digest.com/editorial/990212s.html
23. Coca-Cola Co.www.coca-cola.com/ourcompany/columns_bitter.html.
24. Griffiths RR, Vernotica EM. Is caffeine a flavoring agent in cola soft drinks? Arch FAM Med 2000; 9:727-344.
25. Tompett A. Product formulation. In. Ashurst PR (Ed.). The chemistry and technology of soft drinks and fruit juices. Boca Raton: CRC Press.1998.pp.75.
26. Barger-Lux MJ, Heany RP. Caffeine and the calcium economy revised. Osteoporosis Int 1995; 5:97-102.
27. Rapoport JL, Berg CJ, Ismond M, Elkins R, et al. Behavioral and cognitive

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

effects of caffeine in boys and adult males. J Nerv Ment Dis 1981; 169:726-32.

28. Rapoport JL, Berg CJ, Ismond Dr, et al. Behavioral effects of caffeine in children. Arch Gen Psychiat 1984; 41:1073-9.

29. Juliano LM, Griffths RR, Caffeine. In. Lowinson JH, Ruiz P, Milman RB, et al. (Eds.). Substance Abuse: A Comprehensive Text Book, 4th ed. Baltimore: Lippincott, Williams, & Wilkins. 2004. Pp.403-21.

30. Australia New Zealand Food Authority. Report from the expert working group on the safety aspects of dietary caffeine.2000.www.anzfa.gov.au/documents/pub044-0.asp.

31. http://www.chem.ox.ac.uk/mom/quinine/Quinine.htm.

32. http://www.chm.bris.ac.uk/webprojects2002/Jeffrey/intersecting.htm

33. Chen QC, Wang J. Determination of quinine in drink by reversed-phase ion-pair chromatography. J Liq Chromatogr Relat Technol 2001, 24(9): 1341-1352.

34. Chmurzynski I. High performance liquid chromatographic determination of quinine in rat biological fluids. J Chromatogr B Biomed Appl1997, 693 (2): 423-429.

35. U.S. Food and Drug Administration. FD&C Yellow No.5; Labeling in food and drugs for human use. Federal Register.1979; 44372:12-21.

36. Badwin JL, Chou AH, Soloman WR. Popicle-induced anaphylaxis due to carmine dye allergy. Ann allergy Asthma Immunol.1997; 79:415-9.

37. Weiss B, Williams JH, Margen S, et al. Behavioral response to artificial food colors. Sci 1980; 207:1487-8.

38. Jacobson MF, Schardt D. Diet, ADHD and behavior: a quarter-century review. CSPI, Washington, D.C., 1999.

39. Hoover RN, Strasser PH. Artificial sweeteners and human bladder cancer: preliminary results. Lancets.1980; 837-40.

40. Reuber MD, Carcinogenicity of saccharin. Evn Health Perspectives. 1998; 25:173-200.

41. Associated Press. Consumer group attacks artificial sweeteners. Aug. 1, 1996.

42. Van den Eeden SK, Koepsell TD, Longstretch WT Jr, et al. Aspartame ingestion and headaches: a randomized crossover trail. Neurol 1994; 444:1787-93.

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

श्री स्वामी श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र के प्रकाशन

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	मूल्य रु.
1.	स्वामी श्रद्धानन्द	500 रु.
2.	वेद का राष्ट्रिय गीत	200 रु.
3.	श्रुतिपर्णा	95 रु.
4.	वैदिक साहित्य संस्कृति एवं समाज दर्शन	500 रु.
5.	वेद और उसकी वैज्ञानिकता	300 रु.
6.	शोध सारावली	220 रु.
7.	भारतवर्ष का इतिहास (दो खंडों में)	350 रु. प्रति खंड
8.	क्लासिकल राइटिंग ऑन वैदिक एण्ड संस्कृत लिट्रेचर	80 रु.
9.	दीक्षालोक	500 रु.
10.	स्वामी श्रद्धानन्द के सम्पादकीय लेख	500 रु.
11.	स्वामी श्रद्धानन्द की सम्पादकीय टिप्पणियां	450 रु.
12.	कुलपुत्र सुनें	300 रु.
13.	ग्लिम्पस आफॅ इनवायरमेन्टल परसेप्ट्स ऑफ वैदिक लिट्रेचर	50 रु.
14.	स्वामी श्रद्धानन्द समग्र मूल्यांकन	300 रु.
15.	पं0 इन्द्रविद्यावाचस्पति कृतित्व के आयाम	300 रु.
16.	बातें मुलाकातें	125 रु.
17.	वेदों की वर्णन शैलियां	50 रु.
18.	हिन्दी काव्य को आर्यसमाज की देन	400 रु.
19.	श्रुति विचार सप्तक	500 रु.
20.	स्तूप निर्माण कला	55 रु.
21.	ईशोपनिषद्भाष्य	40 रु.
22.	इन्द्रविद्यावाचस्पति	40 रु.
23.	भारतवर्ष का इतिहास (तृतीय खंड)	55 रु.
24.	अग्निहोत्र	25 रु.
25.	वेद विमर्श	25 रु.
26.	आधुनिक भारत में वक्तृत्व कला की प्रगति	25 रु.
27.	आहार	35 रु.
28.	वैदिक वन्दना गीत	25 रु.
29.	ऋषिदेव विवेचन	25 रु.
30.	विष्णु देवता	25 रु.
31.	सोम	20 रु.
32.	ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार	25 रु.
33.	अध्यात्म रोगों की चिकित्सा	40 रु.
34.	गुरुकुल की आहुति	12 रु.,
35.	ब्राह्मण की गौ	25 रु.
36.	ऋषि-रहस्य	25 रु.
37.	धर्मोपदेश (भाग प्रथम और द्वितीय)	25 रु. प्रति खंड
38.	वैदिक कर्त्तव्य शास्त्र	40 रु.
39.	मेरा धर्म	500 रु.
40.	गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय कलेण्डर भाग-1	250 रु.

विश्वविद्यालय से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं का विवरण

1.	गुरुकुल पत्रिका	वार्षिक मूल्य 100 रु.
2.	वैदिक पॉथ	वार्षिक मूल्य 100 रु.
3.	प्राकृतिक एवं भौतिकीय शोध विज्ञान पत्रिका	वार्षिक मूल्य 500 रु.
4.	आर्य भट्ट	वार्षिक मूल्य 100 रु.
5.	गुरुकुल बिजनेस रिव्यू (GBR)	वार्षिक मूल्य 100 रु.

नोट :-ये सभी पुस्तकें कुलसचिव, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के नाम ड्राफ्ट भेजकर निम्न पते से प्राप्त की जा सकती है। क्रमांक १ से १२ एवं क्रमांक १८ तथा १९ पर ५० प्रतिशत तथा अन्य सभी पुस्तकों पर २० प्रतिशत की छूट देय है।

पुस्तकें मंगाने का पता :- पुस्तकालयाध्यक्ष/व्यवसाय प्रबन्धक, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार-२४९४०४ (उत्तरांचल)

मुद्रक : किरण ऑफसैट प्रिंटिंग प्रेस, कनखल, हरिद्वार फोन : 983700722

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ISSN 0976-8017

॥ ओ३म् ॥

गुरुकुल पत्रिका

(इन्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ इण्डोलॉजी)

वर्ष 63

अप्रैल-जून 2012

प्रधान सम्पादक

डॉ. महावीर

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार-249404

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vol

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ISSN 0976-8017

ओ३म्

गुरुकुल - पत्रिका

(प्राच्य विद्याओं की अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

Vol : 63

अप्रैल, मई, जून - 2012

सम्पादक

डॉ. महावीर

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार-२४९४०४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक मण्डल

संरक्षक मण्डलः

श्री सुदर्शन शर्मा
कुलाधिपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पद्मश्री देवेन्द्र त्रिगुणा
परिद्रष्टा, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रो. स्वतन्त्र कुमार
कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आचार्य रामनाथ जी वेदालङ्कार
भूतपूर्व आचार्य एवं उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रधान सम्पादकः

डॉ. महावीर
अध्यक्ष- संस्कृत विभाग, गुरुकुल कांगड़ी वि०वि०, हरिद्वार

सम्पादक मण्डलः

डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री, अध्यक्ष - वेद विभाग
डॉ० सत्यदेव निगमालंकार, अध्यक्ष- वैदिक शोध संस्थान
डॉ० ब्रह्मदेव विद्यालंकार, अध्यक्ष- संस्कृत विभाग

प्रकाशकः

प्रो. ए. के. चोपड़ा
कुलसचिव, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वित्त अधिकारीः

श्री आर०के० मिश्रा
वित्ताधिकारी, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

		पृष्ठ संख्या
❖ वेदमञ्जरी	आचार्यः रामनाथ वेदालङ्कारः	-(v)
❖ सम्पादकीय	प्रो0 महावीर	-(vi)
1. अथ चतुर्दशोध्यायः	डॉ. विजयवीर विद्यालंकार	1
2. अथ पञ्चदशोऽध्यायः		8
3. उपनिषदों में अध्यात्मबोध	प्रो0 महावीर	22
4. वेदों में प्रतिपादित पारिवारिक जीवन मूल्य	डॉ0 रामचन्द्र	25
5. आयुर्वेदीय दृष्टि से पञ्महाभूत सिद्धान्तों का विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ0 शालिनी त्रिपाठी	30
6. सामवेदीय ब्राह्मणों का साहित्यिक सौन्दर्य	डॉ0 विजय इन्दु	34
7. नाटककार कालिदास की राष्ट्रीय भावना	डॉ. राकेश शास्त्री	42
8. कालिदास एवं प्रसाद के काव्य में उदात्त बिम्ब	डॉ0 सत्य प्रकाश शमा	48
9. "स्वामीदयानन्दस्य वेदार्थदिक् तदाधारश्च"	जितेन्द्र कुमारः	55
10. ऋग्वेद में वर्णित ओषधियाँ : समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ0 श्रीमती शालिनी शुक्ला	64
11. उत्तर आधुनिकतावाद : चिन्तन के क्रमिक आयाम	डॉ0 गीता शुक्ला	70
12. महाराजा अनूपसिंह का संस्कृतसाहित्य को अवदान	डॉ. नन्दिता सिंघवी	76
13. स्वामी श्रद्धानन्द की मुम्बई यात्रा	डॉ0 चन्द्रकान्त गज	83
14. कृषि विज्ञान की दृष्टि में वेदों का महत्व	डॉ. सुषमा देवी गुप्ता	88
15. भारतीय संस्कृति के शाश्वत एवं नैतिक मूल्यों का एक समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ0 दीपा गुप्ता	105
16. सौन्दर्य और कालिदास	डॉ0 विजय इन्दु	111
17. वैदिक साहित्य में वर्णित मनोरंजन के साधन	डॉ0 रेखा सिंह	117
18. कालिदास का पर्यावरण-चिन्तन	डॉ. पूनम घई	121
19. मूल्याधारित शिक्षा एवं भारतीय संस्कृति	आचार्य डॉ. सहदेव शास्त्री	127
20. डॉ0 शिवप्रसाद सिंह जी के उपन्यासों में सांस्कृतिक विवेचना	डॉ० निर्मला देवी	131
21. महर्षि दयानन्द की लेखन प्रतिभा	डॉ. वेदप्रकाश उपाध्याय	136

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

22. वैदिक वाङ्मय में वर्णित शिक्षा का स्वरूप महर्षि दयानन्द प्रतिपारित गुरुकुलीय-शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में	डॉ. योगेश शास्त्री	142
23. मातृत्व-नारी का गरिमा मय पक्ष	डा0 सान्त्वना द्विवेदी	149
24. वैदिक वाङ्मय में राष्ट्रिय भावना की आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता	डॉ0 प्रदीप कुमार दीक्षित	152
25. संस्कृत व्याकरण में माधुर्य	डा0 आशा रानी पाण्डेय	158
26. प्राचीनसंस्कृतवाङ्मये कृषिविज्ञानमभियान्त्रिकी च	डॉ0 विनीत घिल्डियाल	164
27. ''वैदिक यज्ञ- वायु प्रदूषण का प्रबल समाधान''	डॉ0 सुरचना त्रिवेदी	171
28. महर्षि दयानन्द के हिन्दी गद्य का शैलीगत विश्लेषण	डा० रीना रानी	179
29. भारतीय नृत्य परम्परा : एक दृष्टि	डॉ. अशोक कुमार शर्मा	185

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेदमञ्जरी

गां न दोहसे हुवे

। ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मियम्।

गां न दोहसे हुवे।। ऋ0 ६,४५,७

ऋषिः- शंयुः बार्हस्पत्यः। **देवता**- इन्द्रः। **छन्दः**- गायत्री।

(ब्रह्माणं) ज्ञानिनं, **(ब्रह्मवाहसम्)** ज्ञानस्य वाहकम्, (ऋत्वियम्) ऋग्वन्तम्, अर्चनीयं, यद्वा पूजनीयम् इन्द्रं परमेश्वरं तम्, अहं **(हुवे)** आह्वयामि, कथम्? **(न)** यथा **(गाम्)** धेनुम् **(दोहसे)** दोग्धुम् जनाः आह्वयन्ति।

गोदोहनवेलायां गोपालकाः दुग्धं दोग्धुं गाम् आह्वयन्ति। कृष्णा, पीता, लोहिता, बभ्रुः श्वेता, कपिला, इत्यादीनि नामानि गृहीत्वा आकारयन्ति, ता अपि नामश्रवणसमकालमेव धावन्त्यो गोपालकस्य समीपे समागच्छन्ति। ऊधस्सु पयः पूर्णा स्ताः वत्सम् पयः पाययितुं दोहयितुं नतास्तिष्ठन्ति। यथा गवाम् अमृतोपमेन दुग्धेन गोपालकस्तृप्तिमधि गच्छति, तथैवाहं जगदम्बाया दुग्धेन संतृप्तो भवितु मिच्छामि।

अहं वाग्भिः स्वकीयम् इन्द्रं प्रभु माह्वयामि। असौ (ब्रह्म) वर्तते, स्वयं ज्ञानसम्पन्नो ऽस्ति, तथैव ब्रह्मवाहाः अपि विद्यते, अस्यभ्यं ज्ञानधाराया वाहको ऽपि भवतीत्यर्थः। यथा गोः मातुः स्तनयो र्दुग्धं पूरितं भवति, सा च तद् दुग्धम् अन्येभ्यः प्रयच्छति, तथैव मम प्रभोरभ्यन्तरं ज्ञानदुग्धस्य धारा भरिताः सन्ति, स च ज्ञानपिपासुभ्यास्ताः प्रस्तौति। 'ब्रह्मा' यज्ञस्य सञ्चालकोऽपि भवति। होता, अध्वर्युः, उद्गाता, ब्रह्मा च- यज्ञस्यैतेषु चतुर्षु, ऋत्विक्षु ब्रह्म प्रमुखत्वेन विराजते।, यो ऽन्येषाम् ऋत्विजां गतिविधौ निरीक्षणं रक्षन् यज्ञस्य सफलतासहितं समाप्तेरुत्तरदायित्वं स्वोपरि गृह्णाति। अस्माकमात्मापि यजमानो भूत्वा अध्यात्म यज्ञम् प्रयुङ्क्ते, यम मनो होतृपदं वृणुते, बुद्धिरध्वर्युपदम्, प्राणः उद्गातृपदं, परमेशश्च ब्रह्मपदं गृह्णाति। परमेशो ब्रह्मपदं वृत्वाऽस्माकमिमम् अध्यात्मसाधना यज्ञं निर्विघ्नं संपूरयति ब्रह्मवाहाश्च भूत्वा अस्मभ्यं ब्रह्मज्ञानं वितरति। मम प्रभुः सखा वर्तते, संकटकाले, सहायकः सन्मित्रं विद्यते। सांसारिकाः सखायस्तु समये वञ्चनामपि कुर्वन्ति, किन्तु मम प्रभुः कदापि वञ्चनां न विद्यते। असौ पूर्णं सखित्वं निर्वहति, विपद्भ्य उद्धरति व्रणान् पूरयति, कष्टाद् व्याकुलीभवन्तं सान्त्वयति। मम प्रभुः ऋग्मियोऽप्यस्ति, स ऋचां गायको वर्तते, अमरस्य वेदकाव्यस्य कविर्विद्यते, अर्चनीयो ऽस्ति, पूजनीयो ऽस्ति।

आगच्छत, ईदृशं स्वपरमदेवं वयं तन्मया भूत्वा स्तुतिवाग्भिराह्वयेम। यथा गामाहूय वयं ततो रसं प्राप्नुमः, तथैव प्रभुसकाशादपि दिव्यमानन्दरसं वयं पिबेम, तत्पानात् तृप्ति लाभं कृत्वा स्वात्मानं कृतार्थयेम। प्रभुः कामधेनुर्भूत्वा ऽ स्मान् नित्यं स्वकीयं पयः पानं कारयेत्।।

आचार्यः रामनाथ वेदालङ्कारः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

परम पूज्य गुरुदेव को शत-शत नमन

मार्च १९०२ में महात्मा मुंशीराम ने गंगा के पावन तटपर कांगड़ी ग्राम की भूमि मे निर्जन, निर्मल, एकान्त स्थान में गुरुकुल रुपी चन्दन वृक्ष लगाया था। महात्मा जी की अखण्ड साधना, तपस्या और संकल्प शक्ति से यह वृक्ष बड़ी तेजी से बृहद आकार प्राप्त करता गया। इस वृक्ष की सुगन्ध सब ओर फैलने लगी, आचार्य चरणों मे बैठकर श्रद्धापूर्वक विद्या मधु का पान करने वाले गुरुकुल के स्नातको ने राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अद्‌भूत कार्य किये। भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम मे गुरुकुछ के उपाध्यायों और स्नातकों का प्रशंसनीय योगदान रहा। योग और आयुर्वेद के प्रचार प्रसार मे गुरुकुल का स्थान बहुत ऊँचा रहा, पत्रकारिता और राजनीति के क्षेत्र में भी गुरुकुल ने ऐतिहासिक कार्य किये। इन सबसे बढ़कर संस्कृत साहित्य के लेखन, प्रचार-प्रसार मे तथा विलुप्त होती हुई वेद-विद्या के उन्नयन मे गुरुकुल के आचार्यो एवं स्नातको ने जो कुछ किया वह भारत वर्ष के तथा वैदिक वाङ्‌मय के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। गुरुकुल को भारत सरकार ने गुरुकुल शिक्षा पद्धति के उन्नयन एवं प्राचीन वैदिक विद्याओ के प्रचार-प्रसार के लिये विश्वविद्यालय का सम्मान प्रदान किया, आज हम उन्हीं स्वनामधन्य आचार्यो एवं विद्वान स्नातकों की विद्वत्ता एवं साधना का फल प्राप्त कर रहे हैं।

गुरुकुल के महान स्नातको एवं आचार्यो की प्रथम पंक्ति में हमारे पूज्य गुरुवर **डॉ० रामनाथ जी वेदालंकार** का स्थान बहुत ऊँचा है। आज 98 वर्ष की आयु में भी आपकी लेखनी वेदोद्यान के सुन्दर-सुन्दर पुष्पों से माँ भारती के मन्दिर को सजा रही है। हरिद्वार ज्वालापुर मार्ग पर स्थित वेद-मन्दिर मे जाकर वेद विद्यानुरागी आपके दर्शन कर और आपका आशीर्वाद पाकर अपने जीवन को धन्य समझते हैं।

आइये। उत्तर प्रदेश के फरीदपुर (जिला बरेली) में 6 जुलाई 1914 को स्वतंत्रता-संग्राम सेनानी पूज्य पिता लाला गोपाल रामजी एवं धर्मप्राण पूज्या माता श्रीमती भगवती देवी जी की वात्सल्यमयी गोद में जन्म लेने वाले महान आचार्य की जीवन गाथा संक्षेप में लिखकर और पढ़कर स्वयं को पवित्र करते हैं।

आपके पिताजी 'सादा जीवन -उच्च विचार' के मूर्त्त रुप थे। वे मोटा जुलहु खद्दर का सादा कुर्ता, वैसी ही चार हाथ ही ऊँची धोती, कन्धे पर अंगोछा धारण करते थे। महर्षि दयानन्द एव आर्यसमाज के प्रति उनकी अटूट श्रद्धा थी। वे प्रति वर्ष नियमपूर्वक गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर जाया करते थे। एक बार वहाँ से लौटकर उन्होंने गुरुकुल की विशेषताओं एवं कार्यकलापों का वर्णन करते हुए आपसे पूछा-' गुरुकुल पढ़ने जाओंगे?' आपके 'हाँ' कहने पर उन्होंने प्रवेश फार्म मँगाकर भर दिया और उसे डाक से भेज दिया। चूँकि गुरुकुल मे आठ वर्ष से अधिक आयु के बालक प्रविष्ट नही होते थे और आपकी आयु नौ

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष की हो गई थी, इसलिए गुरुकुल से अस्वीकृति का पत्र आ गया। पर आपके पिता जी ने हिम्मत नही हारी। वे बरेली के प्रतिष्ठित आर्यसमाजी नेता डॉ0 श्यामस्वरुप जी के पास गये और उनसे परिचय पत्र लेकर गुरुकुल गये। उस समय गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता पं0 विश्वम्भरनाथ जी थे, जो नियमों का कठोरता से पालन करते थे। जब आपके पिताजी आपको लेकर उनसे मिले तो पं0 विश्वम्भरनाथ जी ने पुनः प्रवेश देने से मना कर दया।। परिणामतः वे चिन्तित एवं निराश मुद्रा मे मुख्यद्वार के निकट खड़े कुछ विचार कर ही रहे थे कि सभा के पूर्व प्रधान श्री रामकृष्ण जी प्रबन्ध समिति की बैठक में भाग लेने के लिए उधर आये। उन्होंने पिता-पुत्र दोनों को उस दशा में देखकर पूछा- आपको क्या किसी से मिलना हैं?' इस पर आपके पिता जी ने अश्रुपूरित नेत्रों से अपने गुरुकुल आने का कारण तथा मुख्याधिष्ठाता जी द्वारा प्रवेश से इन्कार करने की जानकारी उन्हें दी। पं0 रामकृष्ण जी उनकी बातचीत आदि से प्रभावित हुए और प्रवेश फार्म लेकर प्रबन्धसमिति की बैठक में चले गए। जद्दोजहद के बाद पंडित जी ने मुख्याधिष्ठाता जी को मना लिया और आपको प्रवेश की स्वीकृति मिल गई। यह है आपके गुरुकुल प्रवेश की कहानी

गुरुकुल में शिक्षा

आप प्रारम्भ से ही मेधावी एवं प्रतिभा-सम्मान छात्र थे तथा अपनी असाधारण योग्यता के कारण आपने गुरुजनों का मन मोह रखा था। न केवल अध्ययन में, वरन् लेखन एवं भाषणादि में भी आपको विशेष रुचि थी। छात्र-जीवन में आप महाविद्यालय के छात्रों द्वारा निकाली जाने वाली हस्तलिखित संस्कृत-पत्रिका 'देवगोष्ठी' के सम्पादक, संस्कृतोत्साहिनी परिषद्' के मंत्री और कुलमन्त्री रहे। चौदह वर्ष तक अनुशासित एवं नियमपूर्वक रहते हुए सन् 1936 मे आपने विशेष योग्यता के साथ प्रथम श्रेणी में वेदालंकार की उपाधि प्राप्त की। स्नातक परीक्षा में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करने के कारण आपको अनेक स्वर्णपदक प्राप्त हुए।

उच्च शिक्षा- यह वह समय था, जब गुरुकुल की उपाधियों की कहीं मान्यता नही थी, यहाँ के स्तानक किसी भी विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त नहीं कर सकते थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम आगरा विश्वविद्यालय ने गुरुकुल के स्नातकों को अपने यहाँ से एम0ए0 करने की स्वीकृति प्रदान की। जिन स्नातकों ने सर्वप्रथम इस सुविधा का लाभ उठाया उनमें आप भी थे। आपने सन् 1950 में आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत साहित्य में प्रथम श्रेणी में एम0ए0 की उपाधि प्राप्त की और विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया।

आपको प्रारम्भ से ही वेदों के प्रति अगाघ श्रद्धा तथा वैदिक विषयों पर शोध करने में विशेष रुचि थी। अतः आपने पी-एच0 डी0 उपाधि के लिए शोध का विषय - 'वेदों की वर्णन शैलियाँ' चुना और आगरा विश्वविद्यालय में पंजीकरण करवाया। 1966 में आपने डी0ए0वी0 कालेज देहरादून में संस्कृत-विभागाध्यक्ष डॉ0 धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री के निर्देशन में शोधपूर्ण प्रबन्ध प्रस्तुत करके पी-एच0 डी0 की उपाधि प्राप्त की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यक्षेत्र- स्नातक बनने के बाद जयपुर रियासत के अंतर्गत ठिकाना खूँड के ठिकाने पर तथा महाराजा जयपुर के ए0डी0सी0 ठाकुर जय सिंह द्वारा शिक्षा प्रसार हेतु आश्रम खोलने के लिए किसी स्नातक को भेजने का अनुरोध किये जाने पर गुरुकुल की ओर से आपको भेजा गया, जहाँ आपने **आश्रम की स्थापना** की और उसके **प्रधानाध्यापक** रहे। आपने लगभग डेढ़ वर्ष तक इस आश्रम का सफलतापूर्वक संचालन किया, परन्तु बाद में अनुकूलता न रहने के कारण आप वापस आ गये। सन् १९३८ में आप गुरुकुल कांगड़ी के **विद्यालय-विभाग** में **शिक्षक** पद पर नियुक्त हो गये। तदनन्तर कुछ समय **वेदानुसन्धानकर्ता** के रुप में कार्य किया। १९३९ में आप वेद महाविद्यालय मे **वैदिक साहित्य** के **प्राध्यापक** नियुक्त हुए तथा १८ वर्ष तक वेदाध्यापन करते रहे। १९५८ मे आप **संस्कृत-विभाग** के **अध्यक्ष** तथा **कुलसचिव** नियुक्त हुए। १९६२-६३ में आपने कुलसचिव पद से त्याग-पत्र दे दिया तथा पूर्णरुपेण अध्ययन -अध्यापन मे व्यस्त हो गये। आप वेद तथा संस्कृत जैसे नीरस एवं दुर्बोध समझे जाने वाले विषयों को इतने सरस, रोचक एवं सुबोध ढंग से पढ़ाते थे कि छात्रों में उनके प्रति अनायास ही रुचि उत्पन्न हो जाती थी।

अप्रैल १९७४ में आप वेद एवं कला महाविद्यालय के अध्यक्ष, आचार्य एवं उपकुलपति चुने गये। यद्यपि आप प्रशासनिक दायित्वों से दूर रहकर अपना समय केवल अध्ययन-अध्यापन मे ही लगाये रहना चाहते थे, परन्तु सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा तथा गुरुकुल की विद्यासभा/सीनेट के अधिकारियों एवं सदस्यों के आग्रह को दृष्टिगत रखते हुए इसे स्वीकार करना पड़ा। जुलाई १९७६ तक आप इस पद पर कार्य करते रहे। इस अवधि में अपने प्रशासनिक दायित्वों को आपने इस कुशलता से निभाया कि जनसामान्य की यह धारणा निर्मूल सिद्ध हो गई कि एक अच्छा शिक्षक **'कुशल प्रशासक'** नही हो सकता है।

आपकी विद्वत्ता, योग्यता एवं वैदिक शोध मे अभिरुचि को दृष्टिगत रखते हुए १९७६ में आपको पंजाब विश्वद्यिालय चण्डीगढ़ में नवस्थापित महर्षि दयानन्द वैदिक अनुसन्धान पीठ के प्रथम प्रोफेसर एवं अध्यक्ष के रुप मं मनोनीत किया गया। आपने इसी वर्ष अगस्त मास में गुरुकुल की सेवा से निवृत्त होकर उक्त पद का कार्यभार संभाल लिया और अक्टूबर १९७९ तक वहाँ कार्य करते रहे। इस अवधि मे आपने जहाँ एक ओर महर्षि दयानन्द की वेदार्थ-प्रक्रियाओ, उनके शिक्षा, राजनीति और कला-कौशल सम्बन्धी विचारों आदि पर स्वयं अनुसन्धान करके शोधपूर्ण कृतियाँ तैयार कीं, वहीं दूसरी ओर अनेक छात्रों को वैदिक वाङ्मय से सम्बन्धित विषयों पर शोध-कार्य करने में निर्देशन भी प्रदान किया।

साहित्य-साधना

डॉ0 वेदालंकार को प्रारम्भ से ही अध्यापन के साथ-साथ लेखन में भी विशेष अभिरुचि रही है। आपने वैदिक वाङ्मय के गम्भीर अध्ययन, विस्तृत अनुशीलन, निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र चिन्तन के आधार पर अनेक उच्च कोटि के शोधपूर्ण ग्रन्थो का प्रणयन किया है जिनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवरण निम्नवत् है :

1. **वैदिक वीर गर्जना** :- आपकी प्रथम कृति **'वैदिक वीर गर्जना'** है जिसमें वीरता की तरंगों से तरंगित करने वाले वेद मन्त्रों का अर्थ सहित संकलन किया गया है। इस पुस्तक की रचना एवं प्रकाशन सन् १९४६ मे उस समय किया गया था जब देश मे स्वतंत्रता आंदोलन जोरों पर था। यह पुस्तक पाठकों मे इतनी लोकप्रिय हुई कि इसके दो संस्करण प्रकाशित हुए।

2. **वैदिक सूक्तियाँ**- यह पुस्तक सन् १९४९ में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुई थी। इसमें अथर्ववेद से विविध विषयों पर चुनी गई एक हजार सूक्तियाँ अर्थ सहित दी गई हैं। इसका दूसरा संस्करण सन् २००६ में श्री घूड़मल प्रहलाद कुमार आर्य धर्मार्थ न्यास हिण्डौन सिटी से प्रकाशित हुआ।

3. **वेदों की वर्णन शैलियाँ** :- कालान्तर में आप द्वारा वेदार्थ की विविध शैलियों-प्रहेलिकात्मक, आत्मकथात्मक, आशीर्वादात्मक, अर्थवादात्मक, अभिशापात्मक तथा भर्त्सनात्मक, स्तुत्यात्मक, प्रार्थनात्मक तथा आशंसात्मक का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करने के उद्देश्य से 'वेदों की वर्णन शैलियाँ' लिखी गई। इसका प्रथम संस्करण सन् १९७६ मे श्रद्धानन्द शोध प्रतिष्ठान गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से तथा द्वितीय/तृतीय संस्करण सन् २००८ में श्री घूड़मल प्रहलाद कुमार आर्य धर्मार्थ न्यास हिण्डौन सिटी से प्रकाशित हुआ था

4. **वेद भाष्यकारों की वेदार्थ-प्रक्रियाएँ** :- वेदार्थ की विविध प्रक्रियाओं का प्रामाणिक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर वेदार्थ-प्रक्रियाओं की दृष्टि से महर्षि दयानन्द की वेदार्थ को क्या देन है? यह प्रदर्शित करने वाली यह कृति सन् १९८० मे महर्षि दयानन्द वैदिक अनुसन्धान पीठ पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ के तत्वावधान में विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु संस्कृत भारती शोध संस्थान होशियारपुर से प्रकाशित हुई थी। इसका द्वितीय एंव तृतीय संस्करण सन् २००७ एवं २००८ में श्री घूड़मल प्रह्लाद कुमार आर्य धर्मार्थ न्यास हिण्डौन सिटी द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं।

5. **महर्षि दयानन्द के शिक्षा, राजनीति और कला-कौशल सम्बन्धी विचार** :- महर्षि दयानन्द वैदिक अनुसंधान पीठ पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ के अध्यक्ष पद पर कार्यरत रहते हुए लिखी गई इस पुस्तक मे महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में उल्लिखित शिक्षा, राजनीति और कला-कौशल सम्बन्धी विचारों का संकलन करते हुए उनका विशेष विवेचन किया गया है। इसका प्रकाशन वर्ष १९९२ में विश्वेश्वरानन्द- विश्वबन्धु संस्कृत भारती शोध संस्थान होशियारपुर से हुआ।

6. **वैदिक शब्दार्थ विचार** :- संस्कृत भाषा में लिखी गई पुस्तक मे लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि सामान्यतया एक ही अर्थ मे प्रयुक्त होने वाले **'अज', असुर' वृषभ'** आदि शब्द वेदों मे भिन्न-भिन्न अर्थो मे प्रयुक्त हुए हैं। पूर्वोक्त दो पुस्तकों की भांति यह कृति भी होशियारपुर से सन् १९९१ में प्रकाशित हुई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7. **वैदिक प्रार्थना पुष्पाञ्जलि :-** यह लेखक के विविध वैदिक विषयों पर १५ प्रेरक निबन्धों का संग्रह है। इसका प्रकाशन वर्ष १९८० में जनज्ञान प्रकाशन दिल्ली से हुआ था।

8. **यज्ञमीमांसा (अग्निहोत्रदर्पण) :-** इसमें वैदिक यज्ञ चिकित्सा, अग्निहोत्र के प्रेरक तथा लाभ-प्रतिपादक वेदमन्त्रों की व्याख्या, आत्मिक अग्निहोत्र एवं अग्निहोत्र के भावात्मक लाभ आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसका प्रकाशन वर्ष १९८१ में हुआ और यह उत्तर प्रदेश संस्कृत ग्रन्थ अकादमी द्वारा १९८१ में पुरस्कृत भी हो चुकी है।

9. **वेद मञ्जरी :-** इसमें चारों वेदों से संकलित ३६५ मंत्रों की भावभीनी प्रवाहमय, मनोरम व्याख्या प्रस्तुत की गई हैं। ग्रन्थ की प्रारम्भिक भूमिका मे वैदिक भाषा की अर्थ-गरिमा, वेदमन्त्रों के ऋषि, वेदमन्त्रों के देवता, वैदिक छन्द, ऋषि देवता और छन्द के ज्ञान का महत्व तथा वैदिक भाषा के कुछ सामान्य नियम आदि पर प्रकाश डाला गया है। इसका प्रकाशन वर्ष १९८३ में समर्पण शोध संस्थान, साहिबाबाद से हुआ था।

10. **वैदिक नारी :-** इसमें वैदिक नारी के प्रकाशवती, वीरांगना, वीर प्रसवा, विदुषी, स्नेहमयी मां, धर्मपत्नी, सद्गृहिणी आदि विविध रुप वेदमन्त्रोल्लेख पूर्वक वर्णित किये गये हैं। नारी के विषय मे स्वामी दयानन्द के विचार भी संकलित है। इसमें नारी-विषयक विविध वैदिक मान्यताओं पर प्रकाश डालते हुए, प्रतिपक्षियों के वैदिक नारी पर किये गये आक्षेपों का प्रमाणपूर्वक उत्तर दिया गया है। इसका प्रकाशन वर्ष १९८४ में समर्पण शोध संस्थान, साहिबाबाद से हुआ था।

11. **वैदिकमधुवृष्टि :-** यह ३२ निबन्धों का संग्रह है। ये निबन्ध परमेश्वर के गुण कर्म के महत्व, आचार्य-शिष्य, आश्रम-व्यवस्था, विश्वबन्धुत्व, मानवता, अर्थव्यवस्था आदि कई विषयों से सम्बन्ध रखते हैं। इसका प्रकाशन वर्ष 1999 में विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली से हुआ था।

12. **आर्षज्योति :-** इसमें लेखक के 'वैदिक योगार्थ प्रक्रिया एवं दयानन्द की तद्विषयक सूक्ष्म-दृष्टि, वेद व्याख्या के प्रयास तथा स्वामी दयानन्द का महान योगदान, अथर्ववेद के कौशिककृत विनियोगों पर एकदृष्टि, वेद के अनेक देवों मे एक ईश्वर की झांकी, वेदों में पुनरुक्ति की समस्या, वेदों मे व्यत्यय का प्रश्न', 'वैदिक वृष्टि यज्ञ ', 'पर्यावरण वेद की दृष्टि में' आदि विषयों पर १७ निबन्ध संकलित हैं। इसका प्रकाशन वर्ष १९९९ में विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली से हुआ था।

13. **सामवेद-भाष्यम् :-** अगस्त १९९९ मे समर्पण शोध संस्थान साहिबाबाद से दो खण्डों (पूर्वार्चिक एवं उत्तरार्चिक) में प्रकाशित यह भाष्य महर्षि दयानन्द की शैली का आधार बनाकर संस्कृत और आर्यभाषा में किया गया है। पाठकों को स्वतः भान हो जायेगा कि मन्त्र-मन्त्र मे पद-पद में किस प्रकार ऋषि के भावों को प्रतिष्ठित किया गया है। स्थान-स्थान पर यथावश्यक विभिन्न भाष्यकारों द्वारा किये अर्थों का उल्लेख, उनका विवरण और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाद्-टिप्पणियों मे निर्देश तथा पदों की व्याख्या ने निष्पत्ति दर्शाना इस भाष्य की विशेषता कही जा सकती है। यही नहीं मंत्रो के ऋषि, देवता, छन्द और स्वर-विषयक जानकारी एक ही स्थान पर उपलब्ध करा दी गई है

14. **ऋग्वेद -ज्योति :-** इस पुस्तक मे ऋग्वेद के दस मण्डलों से चुने गये २०० मन्त्रों की व्याख्या की गई है। इसका प्रकाशन समर्पण शोध संस्थान साहिबाबाद द्वारा किया गया है।

15. **यजुर्वेद ज्योति :-** सन् २००९ में श्री घूडमल प्रह्लाद कुमार आर्य धर्मार्थ न्यास हिण्डौन सिटी से प्रकाशित इस कृति मे वाजसनेयि माध्यन्दिन शुल्क यजुर्वेद संहिता के चुने हुए २०० मन्त्रों की संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

16. **अथर्ववेद ज्योति :-** इस कृति मे अथर्ववेद के २० काण्डों में से प्रत्येक काण्ड में से चुने हुए २०० मन्त्रों की भावभीनी व्याख्या प्रस्तुत की गई है। मन्त्रों के चयन मे इस बात का अवश्य ध्यान रखा गया है कि इस वेद मे जितने भी विषय आते हैं, उनका सबका कोई न कोई प्रतिनिधि मंत्र ले लिया जावे। पूर्व 'ज्योतियों' के भांति इसमें भी प्रत्येक मन्त्र का शीर्षक देकर ऋषि, देवता, छन्द का उल्लेख करते हुए अन्वयार्थ एवं व्याख्या दी गई है।

सम्मान/पुरस्कार

वैदिक एवं संस्कृत साहित्य की सेवा के उपलक्ष्य मे आप कई सम्मानों एवं पुरस्कारों से सम्मानित हो चुके हैं जिनमें प्रमुख निम्न हैं :

1. सन् १९८८ मे अनवरत वेद-सेवा के लिए आर्यसमाज सान्ताक्रूज बम्बई द्वारा इक्कीस हजार रुपये के वेद वेदाङ्ग सम्मान से सम्मानित।
2. सन् १९९९ में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की विद्यमार्तण्ड की मानद उपाधि से सम्मानित।
3. भारत सरकार द्वारा संस्कृत विद्वान के रुप मे ५० हजार रुपये वार्षिक के राष्ट्रपति सम्मान से सम्मानित।
4. संस्कृत के प्रचार-प्रसार एवं विकास कार्य हेतु की गई दीर्घकालीन विशिष्ट सेवा तथा वैदिक साहित्य के शोधपूर्ण ग्रन्थों के प्रणयन के लिए उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी लखनऊ द्वारा सन् १९९० में पच्चीस रुपये के विशिष्ट पुरस्कार से सम्मानित।
5. सन् १९९९ मे स्वामी समर्पणानन्द जी सरस्वती के जन्म दिवस पर 'समर्पण शोध संस्थान' द्वारा 'सामवेद-भाष्य' के लिए पच्चीस हजार रुपये के पुरस्कार से सम्मानित।
6. सन् २००१ मे भारतीय विद्या भवन बैंगलूर द्वारा एक लाख रुपये के श्री गुरु गंगेश्वरानन्द वेदरत्न पुरस्कार से सम्मानित।
7. सन् २००३-२००४ मे उत्तरांचल संस्कृत अकादमी द्वारा एक लाख रुपये के राष्ट्रीय बदरीश संस्कृत सम्मान से सम्मानित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

8. सन् २००४-२००५ मे घूड़मल प्रह्लाद कुमार आर्य धर्मार्थ न्यास हिण्डौन सिटी (राजस्थान) द्वारा वेद-सेवा के लिए श्री घूड़मल प्रहलाद कुमार आर्य साहित्य सम्मान से सम्मानित।

9. सन् २००६ मे नागपुर के राव हरिश्चन्द्र आर्य धर्मार्थ न्यास द्वारा एक लाख रुपये के आर्य रत्न पुरस्कार से सम्मानित।

10. सन् २००७ में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा राष्ट्रीय विद्या रत्नाकर सारस्वत सम्मान से सम्मानित।

11. मई २००१ में अग्निहोत्री धर्मार्थ न्यास नई दिल्ली द्वारा समर्पित वेद-सेवक के रुप में सम्मानित।

ऐसे विविध विद्या विभूषित, गुणीगणगणनीय, शिष्य वृन्द वन्दनीय, ऋषिकल्प आचार्य प्रवर को 'जीवेम शरदः शतम्' का संकल्प पूर्ण करते हुए १८ वर्ष पूर्ण करने पर मेरा शत-शत नमन ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ चतुर्दशोध्यायः

डॉ. विजयवीर विद्यालंकार

ध्रुवक्षितर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणां अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा।।1।।

पाक शास्त्र प्रवीण स्त्री, गृहकार्य में भी दक्ष हो।
दृढ धर्म में संयुक्त, निश्चल वास उसका कक्ष हो।।
रक्षणीय गृहस्थ आश्रम, यज्ञादि उसके इष्ट हों।
कुमारी कन्याओं को शिक्षा दें, जो भी धर्म-निर्दिष्ट हों।।1।।

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः।
अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा।।2।।

कुल शील शिक्षा धनैश्वर्य, समानता को देखकर।
अपने सदृश वर से ही स्त्री तू, सोचकर के विवाह कर।।
सुखद ऋतु-अनुकूल, योग्य निवास होवे तेरा घर।
सत्संग विद्वानों का और शास्त्रों का नित अभ्यास कर।

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानाꣳ सुम्ने बृहते रणाय।
पितेवैधि सूनवऽआसुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा।।3।।

रणक्षेत्र में वीरांगना, अपने पति के संग हो।
भृत्य पुत्र पशु आदि की, रक्षा में कभी न तंग हो।।
परिधान वस्त्राभूषणों से युक्त सारे अंग हों।
आदान और प्रदान हित, विद्वज्जनों का संग हो।।3।।

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे ऽ अभिगृणन्तु देवाः।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्वाश्विनाध्यर्यू सादयतामिह त्वा।।4।।

गृहस्थाश्रम-पूर्व स्त्री, विद्या विविध सम्पन्न हो।
पदार्थ-ज्ञान सन्तान-पालन-योग्यता निष्पन्न हो।।
आरोग्यवर्धक घृतादिक, घर में सदा आसन्न हो।
नित सत्य का व्यवहार हो और मत कभी आपन्न हो।।4।।

अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्री विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम्।
ऊर्भिर्द्रप्सो ऽ अपाममसि विश्वकर्मा त ऽ ऋषिरश्विनाध्यर्यू सादयतामिह त्वा।।5।।

सत्याचरण-परायण पति से, प्रियाचरण पत्नी करना।
सूर्य किरणवत् वास स्थान को, कीटादिक से रहित करना।।
जल-तरंगवत् पुलकित हो, याज्ञिक जन को हर्षित करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंगलप्रद इस यज्ञ गृहाश्रम को, मन से पूरित करना।।5।।

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू ऽ अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् ज्यैष्ठयाय सव्रताः। ये ऽ अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे ग्रैष्मावृतू ऽ अभिकल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्।।6।।

ज्येष्ठ आषाढ ऋतु-जन्य रोग-निवारण हेतु प्रयत करना।
नाना विध औषध प्रयोग से, तन-मन दोष रहित रहना।।
सत्याचरण नियम पालन कर, ओज तेज धारण करना।
पृथिवी प्रकाश को जान, अवयवों के कारण रस को गहना।।6।।

सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधेरग्ने त्वा वैश्वानरायाश्विननाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजू रुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिही त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा।।7।।

सद् गृहस्थ को ऋतु-अनुकूल, व्यवहार करना चाहिए।
विद्या-ग्रहण शिक्षाचरण पर, ध्यान देना चाहिए।।
स्वयं शुभ गुण-कर्म में प्रवृत्त हों, औरों को भी करना चाहिए।
परमेश से सृष्टि तलक, हर ज्ञान गहना चाहिए।।7।।

प्राणम्मे पाह्यपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्मऽउर्व्या विभाहि श्रोत्रम्मे श्लोकय। अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय।।8।।

प्राणापान व्यान की गति को, सद् गृहस्थ संयमित करे।
प्रियाचरण शास्त्रानुसरण, औषधि-सेवन वर्षेष्टि करे।।8।।

मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विबलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोऽनाधृष्टं छन्दः सिँहो वयश्छदिश्छन्दः पष्ठवाड् वयो बृहती छन्द ऽ उक्षा वयः ककुप् छन्द ऽ ऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः।।9।।

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र, सब ही स्वतन्त्र निर्वाह करें।
सच्छास्त्र पठन-पाठन-प्रचार, नित शत्रु-नाश की चाह करें।।9।।

अनड्वान् वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाड् वयो विराट् छन्दः पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिसवत्सो वय ऽ उष्णिक् छन्दस्तुर्य्यवाड्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वयोऽनुष्टुप् छन्दः॥10॥

जैसे कृषक बैल आदि, साधन को नित्य जुटाता है।
उनकी रक्षा करके उनसे, अन्नादि पदार्थ उगाता है॥
उसी भाँति विद्वज्जन भी, विद्या-प्रचार में लीन रहें।
जिससे समाज में कोई भी, अति दीन न विद्याहीन रहे॥10॥

इन्द्राग्नी ऽ अव्यथमानामिष्टकां दृँहतं युवम्। पृष्ठेन द्यावापृथिवी ऽ अन्तरिक्षं च विबाधसे॥11॥

विद्युत्-सूर्य-समान स्त्री-पुरुष, युक्ति-युक्त व्यवहार करो।
ईंट-समान इस गृहस्थाश्रम को, सदैव तुम मजबूत करो॥
ज्यों प्रकाश और पृथिवी सुख-साधक, दुःख दूर भगाते हैं।
शत्रु-नाश कर त्यों गृहस्थ, नित सुख-समृद्धि बढ़ाते हैं॥11॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृँहान्तरिक्षं मा हि ँसीः। विश्वस्मैप्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। वायुष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद॥12॥

सदैव पति-पत्नी दोनों, एक दूजे को प्रेरित किया करें।
शरीरस्थ वायु को स्थिर कर, सच्चरित्रता से जिया करें॥
प्राण-समान और देव-तुल्य, पति को निज सम्मति दिया करें।
प्राणनाथ भी प्राणेश्वरी को, आनन्दान्वित नित किया करें॥12॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक्॥13॥

विद्यायुता विनयान्विता, स्त्री हो सदा सुखकारिणी।
कर्तव्यनिष्ठा सेवासमेता, गृह में हो मंगलकारिणी॥13॥

**विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ।
वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद॥14॥**

नियम-निबद्धाकार्य-प्रवीण, स्त्री गृह कार्यों में विचरे।
सन्तान ज्ञान-विज्ञान पूर्ण हो, ऐसा कोई उपाय करे॥14॥

नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू ऽ अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठया सव्रताः। येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे वार्षिकावृतू ऽ अभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्॥15॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावन भादो में श्रुति-श्रावणशील जनों का संग करो।
सावधान होकर रोगों से, डटकर के तुम जंग करो।।
नाना-विध औषधियाँ खोजो, उनका सदैव उत्संग करो।
सुख पूर्वक मिल-जुलकर रहलो, कभी किसी को न तंग करो।।15।।

इषश्चोर्जश्च शारदावृतू ऽ अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवीं कल्पन्तामाप ऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठया सव्रताः। य ऽ अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे शारदावृतूऽअभिकल्पमाना ऽइन्द्रमिव देवाऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्।।16।।

शरद् ऋतु के आश्विन कार्तिक, शंस्य और हितकारी हैं।
स्वास्थ्य प्रदायक औषधि-गुणवर्धक और अतीव बलकारी हैं।।
यम-नियमादिक का पालन कर, परमैश्वर्य को प्राप्त करें।
सेव्य पदार्थ का सेवन कर, उत्तम स्वास्थ्य सम्प्राप्त करें।।16।।

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचम्मे पिन्व मनो म जिन्वात्मानम्मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ।।17।।

हे स्त्री-पुरुषों शरद् ऋतु यह, सच्चा सबका रक्षक है।
प्राणापान व्यान का तक्षक, श्रोत्र नेत्र का रक्षक हैं।।
सद्वाणी सच्ची शिक्षा को, यही शरद् ऋतु देता है।
मन आत्मा को तृप्ति देता और विज्ञान का दाता है।।17।।

मा च्छन्दः प्रमा च्छन्दः प्रतिमा च्छन्दो ऽ अस्रीवयश्छन्दः पङ्क्तिश्छन्द ऽ उष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्द स्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः।।18।।

प्रमाण और परिमाण हेतु, बुद्धि-बल स्वतन्त्रता पाओ।
योग-क्षेम सुख-भोग विविध हित, परमेश्वर के गुण गाओ।।
त्रिविध सुखाश्रय आनन्दस्वरूप से ही, जग सारा चलता है।
विद्या-प्रकाश और परम पराक्रम, उस सुखस्वरूप से मिलता है।।18।।

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजाच्छन्दोश्वछन्दः।।19।।

पृथिवी का ज्ञान-विज्ञान जानकर, पृथिवी को ज्ञानी जोते।
उससे सुवर्ण रत्नादि बहुत मात्रा में, नित्य प्राप्त होते।।
आनन्द हेतु सुखदायी, गौ बकरी अश्वादि को पालो।
विद्या-विनय-सम्पन्न बनो, धर्माचरण में निज को ढालो।।19।।

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता।।20।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो दिव्य गुण वाले पदार्थ, वे जग में देव कहाते हैं।
देवाधिदेव जो महादेव हैं, कर्ता धर्ता हैं, बचाते हैं।।
वही व्यवस्थापक हैं जग के, वही तो प्रलयंकारी हैं।
सर्वशक्तिमय और दयालु, वही परम न्यायकारी हैं।।
उत्पत्ति धर्म से रहित हैं वह तो औ सबके अधिष्ठाता हैं।
ऐसे प्रभु का जो ध्यान करेगा, वही समझ लो ज्ञाता हैं।।20।।

मूर्द्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी।
आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा।।21।।

उत्तमांग सिर से जीवन औ राज्य से लक्ष्मी मिलती हैं।
खेती से अन्नादि पदार्थ औ निवास से रक्षा मिलती है।।
जो सबका आधारभूत, यह मातृ-तुल्य ज्यों पृथिवी है।
वैसे ही स्त्री मान्य सभी को, भली भाँति जो विदुषी है।।21।।

यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री।
इशे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा।।22।।

स्त्री होती पृथिवी समान है, क्षमायुक्त ऐश्वर्यवती।
आकाश तुल्य निश्चल होती औ यन्त्र तुल्य कुल शीलवती।।22।।

आशुस्त्रिलन्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुण ऽ एकवि ँ्शः प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभीवर्त्तः सवि ँ्शो वर्चो द्वावि ँ्शः सम्भरणस्त्रयोवि ँ्शो योनिश्चतु र्वि ँ्शः। गर्भाः पञ्चवि ँ्शः ऽ ओजस्त्रिरणवः क्रतुरेकत्रि ँ्शः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रि ँ्शो ब्रघ्नस्य विष्टपं चतुस्त्रि ँ्शो नाकः षट्त्रि ँ्शो विवर्त्तोऽष्टाचत्वारि ँ्शो धर्त्र चतुष्टोमः।।23।।

ऋतु- अनुकूल मनुष्य जी सके, इसका ज्ञान सभी को हो।
तदनुकूल व्यवहार करे, निरोग-चाह जीने की हो।।23।।

अग्नेर्भागोऽसि दीक्षाया ऽ आधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिपृत्स्तोमः।
इन्द्रस्य भागोऽसि विष्णोराधिप्रत्यं क्षत्र ँ् स्पृतं पञ्चदश स्तोमः।
नृचक्षसां भागोऽसि धातुराधिपत्यं जनित्र ँ् स्पृत ँ् सप्तदश स्तोमः।
मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वात स्पृतऽएकवि ँ्श स्तोमः।।24।।

सत्यासत्य करणीय कर्म का, भेद विवेकी ही जाने।
विद्युत् तेजस्वी होकर, मन वचन कर्म से पहचानें।।
ऐसे ही मनुजों को सभी जन, नित सम्मानित करते हैं।
परमपिता की उपासना करके, ये जग से तर जाते हैं।।24।।

वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात् स्पृतं चतुर्वि ँ्श स्तोमः।
आदित्यानां भागोऽसि मरुतामाधिपत्यं गर्भाः स्पृताः पञ्चवि ँ्श स्तोमः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदित्यै भागोऽसि पूष्ण ऽ आधिपत्यभोज स्पृतं त्रिणव स्तोमः।
देवस्य सवितुर्भागोऽसि बृहस्पतेराधिपत्य ँ समीचीर्दिश स्पृताश्चतुष्टोम स्तोमः॥25॥

वसु संज्ञक विद्वान् रुद्र, विद्वान् का नित सम्मान करें।
रुद्रादित्य का मान करें, आदित्य परम कल्याण करे।।
ईशभक्त योगज्ञ वेद-विद्या का, नित्य प्रसार करे।
चतुर्वेदविद् ईश-स्तुति कर, प्राणि मात्र -उद्धार करें।।25।।

यवानां भागोऽस्ययबानामाधिपत्यं प्रजा स्पृताश्चतुश्चत्वारि ँश स्तोमः।
ऋभूणां भागोऽसि विश्वेषां देवानामाधिपत्यं भूत ँ स्पृतं त्रयस्त्रि ँश स्तोमः॥26॥

शरद्-तुल्य विद्वत्स्वभाव हो, जो सबका मन भाता हो।
है विद्वान् वही जो हरपल, सबके हर काम आता हो।।
सबसे मिल-जुलकर जो रहता, सब पर प्रेम लुटाता हो।
ऐसा ही बुध सत्कृत होता, जो सबके हर ताप मिटाता हो।।26।।

सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू ऽ अग्रेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी।
कल्पन्तामाप ऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठया सव्रताः।
ये ऽ अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे हैमन्तिकावृतू ऽ अभिकल्पमाना।
ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्॥27॥

शीतकाल हेमन्तऋतु यह, स्वास्थ्य प्रदायक होता है।
बलकारी आहार-विहारी को, सुखदायक होता है।।
इस ऋतु में जो स्वस्थ रहें, सम्पूर्ण वर्ष तक रहता है।
आसन-प्राणायाम-नियन्त्रित, दिव्य शक्तिमय होता है।।27।।

एकयास्तुवत प्रजा ऽ अधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत्।
तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत्।
पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत्।
सप्तभिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त धाताधिपतिरासीत्॥28॥

परमेश्वर पालक है प्रजा का, प्रजापति कहलाता है।
ब्रह्मणस्पति नाम है उसका, वेद-ज्ञान का दाता है।।
मन-वाणी से रोम-रोम से, उसकी ही महिमा ध्याओ।
उसकी ही स्तुति करो निरन्तर, उसकी ही गरिमा गाओ।
हेमन्त ऋतुवत् साधक तुम, नित शान्तिशील होकर जीना।
जीवन सुखमय हो जायेगा, धन्य-धन्य होगा जीना।।28।।

नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीत्।
एकादशभिरस्तुवतऽऋतवोऽसृज्यन्तार्त्तवा ऽ अधिपतय ऽ आसन्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रयोदशभिरस्तुवत मासा ऽ असृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत्।
पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत्।
सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीत्।।29।।

वह परमेश्वर जगत् रचयिता, पालकों का पालक है।
ग्रह-नक्षत्रों ऋतु आदि का, एकमात्र वह मालिक है।।
ईश-रचित यह सूर्यदेव, सब ऐववर्यों का कारण है।
इससे ही सब दोष, दुःख, रोग क्षयादि निवारण है।29।।

नवदशकभरस्तुवत शूद्रार्य्यावसृज्येतामहोरात्रे ऽ अधिपत्नी ऽ आस्ताम्।
एकवि ँशत्यास्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत्।।
त्रयोवि ँशत्यास्तुवत क्षूद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत्।
पञ्चवि ँशत्यास्तुवताऽऽरण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत्।
सप्तवि ँशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्राऽआदित्याऽअनुव्यायँस्त ऽ एवाधिपतय ऽ असान्।।30।।

जिसने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य, शूद्रादिक को बनाया है।
जिसने उपयोगी अश्वादि, आरण्यक पशु भी बनाया है।
सकल चराचर का वह कर्ता, देवों को भी बनाया है।
उसने ही निज योग्य उपासक को, स्तुति-योग्य बनाया है।।30।।

नवदशकभरस्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमोऽधिपतिरासीत्।
एकत्रि ँशतास्तुवत प्रजा ऽ असृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतय ऽ आसन्।।
त्रयस्त्रि ँशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत्।।31।।

वृक्ष वनस्पति औषधि आदि, उसने ही उत्पन्न किया।
रोग-निवारक सोमादिक को, हम सबको उसने ही दिया।।
सर्व व्याप्त वह परमेश्वर तो, प्राणिमात्र का रक्षक है।
सबकी देखभाल वह करता, सबका वही अधीक्षक है।।31।।

!! इति चतुर्दशोऽध्यायः !!

!! चौदहवाँ अध्याय समाप्त !!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

अग्ने जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान्नुद जातवेदः।
अधि नो ब्रूहि सुमनाऽअहेडँस्तव स्याम शर्मंस्त्रिवरूथ ऽ उद्भौ॥1॥

राज्यकर्ता न्यायकर्ता को, सदा यह ध्यान हो।
शत्रुओं का दमन कर, धार्मिक जनों का त्राण हो॥
न किसी अधर्मी का कभी, निज राज्य में सत्कार हो।
सज्जन रहे आश्वस्त होकर, कभी न हाहाकार हो॥1॥

सहसा जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व।
अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयꣳ स्याम प्रणुदा नः सपत्नान्॥2॥

राज्याधिकारी-राजकर्मी, जो भी लापरवाह हो।
शत्रु-वारण में उपेक्षाभाव या न निगाह हो॥
उनको परख कर कठिन से अति कठिन हो दण्डित करे।
राज्य के जो सहाय हों, उन्हें सत्कार से मण्डित करे॥2॥

षोडशीस्तोमऽओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिꣳशस्तोमोवर्चो द्रविणम्।
अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे ऽ अभि गृणन्तु देवाः।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व॥3॥

सोलह कलायुत जगत् में, विद्या बलादि प्राप्त कर।
पूर्ण स्वस्थ पराक्रमी बन, गृहाश्रम में प्रवेश कर॥
अपने ही बलबूते पे तू, अपना जीवन-निर्वाह कर।
सन्तान उत्तम हों तेरे, पर-पदार्थ की मत चाह कर॥3॥

एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्चछन्द ऽ आच्छच्छन्दो मनश्छन्दो
व्यचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरं छन्दः ककुप् छन्दस्त्रिककुप्
छन्दः काव्यं छन्दो ऽ अङ्कुपं छन्दोऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दो
विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः क्षुरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः॥4॥

तुम लोग उत्तम यत्न से, आनन्ददायक ज्ञान को।
सत्य सेवन-रूप सुखदायक स्वसौख्यज भान को॥
आनन्दकारी परम पुरुषार्थी प्रकाशक सत्यता।
दोषहर्ता जीवन-प्रचेता मन, शुभ गुणों को व्यापता॥
आनन्दकारक नद-नदीवत्, स्वतन्त्रता गम्भीरता।
नित प्रयोजन सिद्धकारी, जल-समान सुस्निग्धता॥
त्रिसुखदायक प्रतिष्ठाप्रद, आनन्द को विस्तारता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीर्घदर्शक कवि प्रकाशक, विज्ञानदायक सर्वथा।।
वक्र गति जल उपकारी बन, धरा पे पाँव पसारता।
आनन्दकारी लोक और परलोक का सुख साधता।।
हर दिशा सुख की साधक, सम्यक्तया यह जानना।
छुरा-समान पदार्थ छेदक सूर्य से, सुख साधना।।4।।

आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तरञ्छन्दो निकायश्छन्दो विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः सꣳस्तुप् छन्दोऽनुष्टुप् छन्दऽएवश्छन्दो वरिवश्छन्दोवयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विष्पद्धश्छिन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रं छन्दो ऽ अङ्काङ्कं छन्दः।।5।।

स्वतन्त्रता है परम सुख, इसकी रक्षा परम पुरुषार्थ है।
समुद्र-रूप संसार से, पार कराने वाला पदार्थ है।।
पाप से नित दूर रहकर, दुष्ट स्वभाव को त्यागना।
मनेन्द्रियों को वश में करके, उत्साहयुत हो जागना।।
इससे निरन्तर उन्नति, भव-दुःख से मुक्ति मिले।
उन्मुक्त वायु की तरह, सर्वत्र गतिमय हो चले।।
अग्निवत् शब्दार्थयुत, परमानन्द विद्यार्जन करे।
प्राप्ति विद्या के अनन्तर, श्रवण और मनन करे।।
विद्वत्-प्रसेवन आयुवर्धक, साधनों का संचय करे।
विघ्ननाशक सुख प्रवर्धक, स्वतन्त्रता निश्चय करे।।5।।

रश्मिना सत्याय सत्यंजिन्व प्रेतिना धर्म्मण धर्मं जिन्वान्वित्या दिवं जिन्व सन्धिनान्तरिक्षेणन्तरिक्षं जिन्व प्रतिधाना पृथिव्या पृथिवीं जिन्व विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व प्रवयाऽह्नाहर्जिन्वानुया रात्र्या रात्रीं जिन्वोशिजा वसुभ्यो वसून् जिन्व प्रकेतेनादित्येभ्य ऽ आदित्याञ्जिन्व।।6।।

विद्वानों का परम धर्म, सुख--साधन का सन्धान करें।
इसके निमित्त पदार्थ विद्या की, प्राप्ति का नित ध्यान धरें।।
सूर्य किरण ज्यों अन्धकार का, प्रतिदिन भेदन करती हैं।
सत्यासत्य विवेकी हो, विज्ञता सत्य को धरती है।।
न्यायाचरण धर्म कार्यरत, सत्य-प्रकाश को प्राप्त करो।
आकाश और पृथिवी के मध्य के, सन्धि-स्थान सन्धान करो।।
वर्षा आतप दिन-रात आदि, बारह मासों का सद्ज्ञान गहो।
तदनुकूल व्यवहार करो, अन्यों को भी परिज्ञान कहो।।6।।

तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व सꣳसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्वैडेनौषधीभिरोषधी-जिंन्वोत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व वयोधसाधीतेनाधीतं जिन्वाभिजिता तेजसा तेजो जिन्व।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद् गृहस्थ विस्तारयुक्त धन से, शरीर को पुष्ट करे।
प्राप्त ज्ञान से शास्त्र श्रवण कर, नित्य आत्म-सन्तुष्ट करे।।
संस्कृत अन्नों औषधियों से, नित्य शरीर नीरोग करे।
आयु-प्रवर्धक जीवनधारण, शक्ति-योग-संयोग करे।।
सभी ओर से प्राप्त ज्ञान को, शत्रु-पराजय प्रयोग करे।
तीक्ष्ण कर्म से दृढता को गह, दुर्व्यसनों का वियोग करे।।7।।

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा संपदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा।।8।।

सब विध सुख-समृद्धि-प्राप्ति हित, स्वयंवरों का चयन करें।
तुल्य गुणों और तुल्य कर्मयुत, सम स्वभाव का मिलन करें।।8।।

त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि विवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वाऽऽक्रमोऽस्याक्रमाय त्वा संक्रमोऽसि संक्रमाय त्वोत्क्रमोऽस्युत्क्रमाय त्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वाधिपतिनोर्जोर्ज जिन्व।।9।।

प्रकृतिजन्य विज्ञान जानकर, विमान-यान निर्माण करो।
करके नित आविष्कारों को, संसाधन सर्व प्रदान करो।।
प्रकृति-पदार्थ के गुण-धर्मों को, सम्यक्, प्रकार से पहचानो।
कौन-कौन समानधर्मा हैं और कौन विरोधी-गुण जानो।।
इस पदार्थ-विज्ञान-ज्ञान से, मनुज त्रिविधा गति कर सकता है।
कार्य-कारण सम्बन्ध जानकर, विद्वान् तिमिर हर सकता है।
ज्यों सेना सेनापति के संग, विजय प्राप्त कर लेती है।
त्यों स्त्री जन विज्ञान सीख, निज स्वामी-संग सुख से जीती हैं।।9।।

राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा ऽ अधिपतयोऽग्निर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिवृत् त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु रथन्तरꣳ साम प्रतिष्ठित्याऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठेस्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु।।10।।

पूर्व दिशा-समान स्त्री, गृह-कार्य में तत्पर रहे।
पुरुष अग्नि-समान, विद्या से गुणी होकर रहे।।
वज्र धारक विद्युत्, वृष्ट्यादि से ज्यों नित स्तुत्य है।
बली प्रशंसित हो पुरुष, पालक स्त्रियों का नित्य है।।
सुगन्ध प्रापक वायु ज्यों, सब के लिए अति प्रेय है।
विद्वान् का आदर प्रथमतः, हर किसी को श्रेय है।।
विद्वत्प्रदर्शित मार्ग का, अनुसरण सभी किया करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् भी सुख हेत नित, सज्ञान-दान दिया करें।।10।।

विराडसि दक्षिणा दिग्गुद्रास्ते देवा ऽ अधिंपतय ऽ इन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्ता पञ्च-दशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु प्रउगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु बृहत्साम प्रतिष्ठित्या ऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य प्रष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु।।11।।

स्त्री विविध पदार्थ- शोभित, दक्षिण दिशा के समान है।
पुरुष पालक सुप्रसन्न, गतिमान वायु-समान है।।
वज्रधर तेजस्वी पुरुष, स्त्रियों को नित निर्भय करे।
विद्वद्वचन से स्थैर्य गह, सामोक्त कार्यान्वय करे।।
विद्वान् अग्रज अग्निवत्, नित ज्ञान-प्रकाश किया करे।
स्त्री-पुरुष व्यवहारशील, जीवन-विकास किया करे।।11।।

सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवा ऽ अधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्त्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैरूपꣳ साम प्रतिष्ठित्या ऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु।।12।।

पश्चिम दिशा-समान स्त्री, विद्यादि से सन्दीप्त हो।
पुरुष विद्युतवत् सुतेजस्, दिव्य सुखप्रद दीप्त हो।।
वरुणवत् दुष्टों के बन्धक, वज्रादि को धारण करे।
जग-प्रतिष्ठा-प्राप्ति हित, विद्वद्वचन-पालन करे।।
अग्रज समुन्नत विद्यादि गुणयुत, ऋषि-तुल्य का सेवन करे।
सुखकर प्रजापालक अधिपवत्, सुख-लोक-आसेचन करे।।12।।

स्वराडस्युदीची दिङ् मरुतस्ते देवा ऽ अधिपतयः सोमो हेतीनां प्रतिधर्त्तैक-विꣳशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैराजꣳ साम प्रतिष्ठित्या ऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु।।13।।

स्त्री-पुरुष दोनों ही, विद्यादि गुणों से द्योत हों।
दिव्य सुखप्रद स्तोम-साधक, चन्द्रवत् सुख-स्रोत हों।।
साम-प्रोक्त सुकर्मरत, इन्द्रिय विनिग्रह नित करे।
जीवन समुन्नत ग्रहण कर, सर्व जन का हित करे।।13।।

अधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवा ऽ अधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्वा स्तौमौ पृथिव्याꣳ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुते ऽ उक्थे ऽ अव्यथायै स्तभ्नीताꣳ शाक्कररैवते सामनी प्रतिष्ठित्या ऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु॥14॥

गृहाश्रम में स्त्री गुण के कारण, सर्वोपरि होकर के रहे।
पुरुष देव-समान प्रकाशक, सूर्य-समान पालन को गहे।
स्तोमों के साधक व्याख्याता, विद्वानों के उपदेश सुनें।
सदा प्रतिष्ठा स्थिरता हित, ऐश्वर्य-शक्ति के तार बुनें।।
अग्रज विद्वान् धनंजय आदि, दस वायु-उपदेश करे।
सूर्य-समान अज्ञान-तिमिर को, तत्पर हो निःशेष करे।।
जो विद्वान् दुःखों से बचाकर, जीवन को सुखमय करते हैं।
स्त्री और पुरुष व्यवहारनिष्ठ हो, सब का हर दुःख हरते हैं।।14।।

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ। पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो ऽ अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥15॥

सूर्य-किरण हरितादि वर्ण की, सूर्य-रथ को चलाती हैं।
अन्धकार पर विजय प्राप्त कर, दिशा कर्मों को बताती हैं।।
सूर्य-किरण के आने पर ही, मनुष्य क्रिया-तत्पर होते।
हिंसक रोग-कारण कीटाणु, नष्ट-विनष्ट सत्त्वर होते।।
सूर्य-किरणवंत् सेनापति आदि भी जगकर उग्र रहे।
प्रजा-दुःखदायक हिंसक प्राणी के वध-हित नित व्यग्र रहे।।
इसी भाँति राज्यों के विघातक, द्वेषी शत्रु को निर्मूल करे।
उन्हें पराजित करके राजागण, सदा अपने अनुकूल करे।।15।।

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ। मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षाꣳसि प्रहेतिस्तेभ्यो नमो ऽ अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यंद्विष्मोयश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥16॥

दक्षिण दिशा से ग्रीष्म ऋतु में, प्रचण्ड हवाएँ चलती हैं।
रथ के शब्दों के समान, साँय-साँय शब्दों को करती हैं।।
रथ में बैठे सेनापति और ग्रामणी-समान ये हवाएँ हैं।
अन्तरिक्ष में चलने वाली, मेनका सहजन्या अप्सराएँ हैं।।
अपने सामने आने वाले पदार्थों को, हवा उड़ा ले जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायाधीश-राजपुरुष की नीति, निरपराध को छुड़ा ले जाती है।
प्रजा-प्रपीड़क दुष्ट-स्वभाव, राक्षसों का नित संहार करें।
प्रजा-विद्वेषी शत्रुजनों की वृद्धि रोक, उनका भय-परिहार करें।।16।।

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ।
प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो ऽ
अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु तेयं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः।।17।।

वर्षा ऋतु में चारों ओर से, भारी वर्षा होती है।
भीषण गर्मी कम करके, यह वर्षा हर्षा देती है।।
वर्षा का निमित्त व्यापक, यह विद्युत-अग्नि होती है।
इसमें प्रचण्डता होने से, सम सेनानी ग्रामणी होती है।।
जल के कारण इस ऋतु में, औषधियाँ अधिक उपजती हैं।
नवीन बीज भी स्वयं प्रस्फुटित, पल्लवित होकर सजती हैं।।
हिंसक मच्छर, सर्प आदि से, जीवन-रक्षा नित किया करे।
विद्वान् वैद्य रोगों से बचने, सब उत्तम शिक्षा दिया करे।।17।।

अयमुत्तरात् संयद्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ।
विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो ऽ अस्तु
ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः।।18।।

उत्तर दिशा में यज्ञ-समान, सबका हितकारी शरद्ऋतु है।
समशीतोष्ण होने से, सुखमय आनन्दप्रद सबका हितु है।।
स्वास्थ्यप्रदायक होने से, इस ऋतु में शुभ आरम्भ करें।
तीक्ष्ण तेज-प्रद आश्विन में इस, कभी न स्वास्थ्य आलम्भ करें।।
दुःखों को दूर कराने वाला, यह मास दूसरा कार्तिक है।
यज्ञादि कर्म से शुद्धि करो, सब पूरी हो इच्छा हार्दिक है।।
दोनों मास सेनानी और ग्रामणी के समान होते हैं।
विजयोन्नतिदायक होकर के ये, गुणावरोध को धोते हैं।।
घृत आदि पदार्थों का सेवन कर, परिपुष्ट प्राण-गति-दीप्त करें।
शारीरिक बल-वृद्धि करें अरु जठराग्नि को सन्दीप्त करें।।18।।

अयमुपर्यर्वाग्वसुतस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ।
उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसावावस्फूर्जन् हेतिर्विद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमो ऽ अस्तु ते
नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः।।19।।

अगहन पौष मास ये दोनों, हेमन्त ऋतु कहलाते हैं।
मार्गशीर्ष सेनानी-सम और पौष पराक्रम लाते हैं।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोग-रूप शत्रु-संहरण हेत, नित्य व्यायाम करो।
भोजन सीमित करो, साथ ही दिन में कम आराम करो।।19।।

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या ऽ अयम्। अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति।।20।।

मन्दाग्नि जब होती है, सब ओर रोग आजाते हैं।
जठराग्नि जागृत करदो, सब रोग दूर हो जाते हैं।।
हेमन्त ऋतु में जठराग्नि यह, स्वतः तीव्र हो जाती है।
क्षुधा भयंकर लगती है, खाये सब हजम हो जाती है।।
इससे बल की वृद्धि होती, यह प्राणि-मात्र का पालक है।
सिर के समान यह अग्नि है, सबका जीवन-संचालक है।।20।।

अयमग्निः सहस्त्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः। मूर्धा कवी रयीणाम्।।21।।

ज्यों अग्नि के सत्प्रयोग से, विविध प्रयोजन बनते हैं।
सत्पुरुषों के सत्सेवन से, बिगड़े काम सुधरते हैं।।21।।

त्वमग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः।।22।।

ज्यों विद्वान् पुरुष की वाणी, सदा अहिंसक होती है।
नाश अविद्या का करती, सबकी सत्प्रेरक होती है।।
वैसे ही विद्युत्-मन्थन कर, विविध कार्य सम्पन्न करें।
आश्चर्ययुक्त कर्मों को कर, अन्नादि से आपन्न करें।।22।।

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम्।।23।।

अग्नि लौह आदि पदार्थ को, तुरत गलाने वाली है।
विविध धातु को अलग-अलग कर, उन्हें मिलाने वाली है।।
इसका प्रयोग यज्ञादि मंगलकारी कार्यों में होता है।
भोजनादि का पाचक होने से, प्राणिमात्र का नेता है।।
इसी तरह विद्वान् जगत् में, जन-जन के हितकारी हैं।
इसीलिए जन-जन विद्वानों के प्रति अति कृतकारी हैं।।
विद्वान् पुरुष की विद्या वाणी, दोनों ही सुख देती हैं।
विद्वानों की सद् विद्या, सबके हर दुःख हर लेती है।।23।।

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतामुषासम्।
यह्वा ऽइव अवयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ।।24।।

समिधा से प्रज्वलित द्योतित, पोषक भौतिक अग्नि है।
प्रभात समय के किरणों के सम, दुःख-निवारक अग्नि है।।
धार्मिक महान् जन के समान, उत्कृष्ट प्रकाशक अग्नि है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् आप्त की विद्यावत्, अति उन्नतिकारक अग्नि है।।24।।

अबोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत्।।25।।

विद्वान् सूर्यवत् ज्ञान-प्रकाशक, अग्नि रूप उद्बोधक है।
शिष्यों का शुभ लक्षणदाता, दुर्गुणों दुरित का शोधक है।।
व्यावहारिक विद्या देता है, जिससे जग को पहचान सके।
घट-पट-ज्ञान-प्रवीण विवेकी, विद्यार्थीगण जान सके।।25।।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽ अध्वरेष्वीड्यः।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे।।26।।

हिंसा रहित यज्ञ कर्मों में, अन्वेषणीय यह अग्नि है।
ग्रहण यजन करने वाली अरु धारणीय यह अग्नि है।।
सब देवों में प्रथम देव, हव्यादि देय यह अग्नि है।
अद्भुत कार्यों का साधक, व्यापक प्रकाश्य यह अग्नि है।।26।।

जनस्य गोपाऽअजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः।।27।।

विद्युदग्नि सबका रक्षक, वृष्ट्यादि अन्न का साधक है।
जागरूक उत्तम बलशाली, जलवाली शुचिकारक है।।
ऐश्वर्य-प्राप्ति हित इसको साधे, यह आकाश-प्रकाशक है।
इसे जानकर नित प्रयोग कर, यह जीवन-परम विकासक है।।27।।

त्वामग्ने ऽअङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत् त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः।।28।।

बाह्याभ्यन्तर दो प्रकार की, भौतिक अग्नि होती है।
भीतर की जठराग्नि और बाहर व्यावहारिक होती है।।
विद्वान् पुरुष अग्नि-समान, विद्या का मन्थन करते हैं।
बाह्याग्नि से आहार हेतु, सब षड्रस व्यंजन बनते हैं।।28।।

सखायः सं वः सम्यञ्चमिषꣳ स्तोमं चाग्नये। वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते।।29।।

कारीगर शिल्पी हितकारी बनकर कार्यों को साधे।
विद्वानों का कथन मानकर, पदार्थ विद्या को आराधे।।
कारण-रूप बल से उत्पन्न, विद्युत् को पुत्र-समान कहो।
सूर्य-किरण-उत्पन्न अग्नि को, सौख्यद पौत्र-समान गहो।।29।।

सꣳसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य्य ऽ आ। इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर।।30।।

हे बलवान प्रकाशमान तू वैश्य, वस्तु का मेल करे।
पदारूढ सम्यक् शोभित तू, धनैश्वर्य सम्मेल करे।।30।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः।
शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय बोढवे।।31।।
विद्वान् शिल्पी अग्नि विद्या जान आविष्कार कर।
भारवाहक वाहनों को, रश्मिवत् स्वीकार कर।।31।।
एना वोऽ अग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे।
प्रियं चेतिष्ठमरतिꣳ स्वध्वरं वि श्वस्य दूतममृतम्।।32।।
विद्युदग्नि सृष्टि का कारण, वृष्टि अन्न का कारण है।
अग्नि जगत् में गति करने से, नित्य सर्वत्र सचेतन है।।
पतन रहित विद्युत् का, हिंसा रहित कार्य में योग करो।
ऐश्वर्य प्राप्ति हित इस शक्ति का, सदैव सदुपयोग करो।।32।।
वि श्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम्।
स योजतेऽअरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः।।33।।
सूक्ष्म स्थूल दोनों प्रकार की, दिव्य अग्नियाँ होती हैं।
इनके आश्रय से आविष्कार और नित्य सिद्धियाँ होती हैं।
उत्तम कार्यों में इस अग्नि का, सदैव सद् उपयोग करो।
स्फूर्ति प्राप्ति हित मूर्त पदार्थों में भी गति-संयोग करो।।33।।
स दुद्रवत् स्वाहुतः स दुद्रवत् स्वाहुतः।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनांदेवꣳराधो जनानाम्।।34।।
यह अग्नि आमन्त्रित मित्रवत्, सर्वत्र सदैव विचरती है।
चतुर्वेद ज्ञाता के यज्ञों को, सम्यक् यह करती है।।
पाक-कार्य में सहाय बनकर, यह क्षुधा-निवारण करती है।
पार्थिव धन को प्रदान कर, यह पूर्ण कामना करती है।।34।।
अग्ने वाजस्य गोमत ऽ ईशानः सहसो यहो।
अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः।।35।।
बलवान वायु के पुत्र समान, पश्चात् जात यह अग्नि है।
अन्नादि पदार्थों का साधक, गो-स्वामी-सहायक अग्नि है।।
धनैश्वर्य-प्राप्ति का कारण, विज्ञानयुक्त यह अग्नि है।
नित नव आविष्कार विधायक, अति उपकारक अग्नि है।।35।।
स ऽ इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा।
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि।।36।।
सकल पदार्थों के निवास का कारण भौतिक अग्नि है।
निखिल धनों को देने और बढाने वाली अग्नि है।।
विद्वान् अग्नि-विद्या को खोजे और उसे अति दीप्त करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि प्रचालित यन्त्रों के, आविष्कारों से सन्तृप्त करे।।36।।

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषतः।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति।।37।।

प्रातः - सायं रूप काल का, कारण भौतिक अग्नि है।
अन्धकार नाशक व सुतेजस प्रकाशकारक अग्नि है।।
विद्या-प्रकाश और न्याय-प्रकाश राजन् सदैव तुम किया करो।
अग्नि-भाँति दुष्टों को नष्ट कर, शान्ति प्रजा को दिया करो।।37।।

भद्रो नोऽअग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रोऽअध्वरः।
भद्राऽउत प्रशस्तयः।।38।।

अग्नि-विद्या-विद्वान नये नित, साधन का सन्धान करे।
धर्म-समान अग्नि बनें और मित्र-समान कल्याण करे।।38।।

भद्रा ऽ उत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्य्ये। येना समत्सु सासहः।।39।।

ऐश्वर्यवान् विद्वान प्रजा-पालन-तत्पर नित राजा हो।
संग्रामों के अनुकूल प्रजा हो, शूर-वीर अधिराजा हो।।39।।

येना समत्सु साहोऽव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम्।
वनेमा ते ऽ अभिष्टिभिः।।40।।

संग्राम-समय में सहनशील हो, कार्यों में संलग्न रहे।
सैन्य वृद्धि कर स्थिरता से, निज लक्ष्य-पूर्ति में मग्न रहे।।40।।

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः।
अस्तमर्वन्त ऽ आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन ऽ इषꣳस्तोतृभ्य ऽ आ भर।।41।।

अध्यापकगण शिष्यों के प्रति, सदैव सद् व्यवहार करे।
विद्यार्थी विद्यालय जाकर, गृहवत् सद् आचार करे।।
ज्यों गौएँ बलवान् अश्वनित, घूम-घूम घर आते हैं।
त्यों विद्यार्थी विद्यालय में, सानन्द सुशिक्षा पाते हैं।।41।।

सो ऽ अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सꣳ सुजातासः सूरय ऽ इषꣳ स्तोतृभ्य ऽ आ भर।।42।।

ज्यों गौएँ अपने बछड़ों को, दुग्धादि से प्रसन्न रखती हैं।
वैसे ही ज्ञानामृतमय अध्यापक की शिक्षा दिखती हैं।।
शीघ्र गति वाले घोड़े ज्यों, गन्तव्य त्वरित पहुंचाते हैं।
इसी तरह अध्यापकगण, शिष्यों को पार लगाते हैं।।42।।

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष ऽ आसनि।
उतो न ऽ उत्पुपूर्या ऽ उक्थेषु शवसस्पत ऽ इषꣳ स्तोतृभ्य ऽ आ भर।।43।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे ऋत्विज घृत को शोध, अग्नि में आहुति देते हैं।
वायु तथा वर्षा-जल को, निर्मल कर सुखमय करते हैं।।
वैसे ही अध्यापकगण, विद्यार्थी का मन-शोध करें।
उत्तम विद्या से पवित्रकर, उनकी आत्मा में बोध करें।।43।।

अग्ने तमद्या श्वं न स्तोमैः ऋतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम्। ऋध्यामा त ऽ ओहैः।।44।।

अध्येतागण शिक्षित घोड़ों के समान गन्तव्य गहे।
शीघ्रातिशीघ्र ले जाने को, अभीष्ट स्थांन की ओर बहे।।
जैसे विद्वान् सब शास्त्र-बोध से, पुरुषार्थ-चतुष्टय' पाते हैं।
वैसे ही अध्यापक पूर्ण विद्या, अन्यों को नित्य पढाते हैं।।44।।

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः। रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ।।45।।

विद्वान् जन आनन्दकारक, शरीर-आत्मा-बलयुक्त हों।
सन्मार्ग-तत्पर सत्यव्रत, अज्ञान-मति से मुक्त हों।।
शंसित रमण-साधन, सुयानों से सदा संयुक्त हों।
शास्त्र-योगोत्पन्न बुद्धि से सभी आयुक्त हों।।45।।

एभिर्नोऽअर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः। अग्ने विश्वेभिः सुमना ऽ अनीकैः।।46।।

राजा ज्यों शिक्षित सेना से, सुख और सफलता पाता है।
वैसे ही विद्यादि गुणों से, क्लेशों को मिटाया जाता है।।46।।

अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुꣳ सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्
य ऽ ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः।।47।।

ऊर्ध्व गति के साथ अहिंसित कर्म सदा विद्वान् करे।
विद्या ज्योति से ज्योतित हो, अन्यों को ज्योतिर्मान करे।।
बलवान् पुरुष के पुत्र-समान, धनदाता दानी विख्यात बनें।
तेजस्वी अग्नि-समान, सत्कृत होकर विज्ञात बनें।।47।।

अग्ने त्वं नो ऽ अन्तम ऽ उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।
वसुरग्निर्वसुश्रवा ऽ अच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिन्दाः।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिव्रः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः।।48।।

धन-धान्य प्रदायक अग्नि ज्यों, पात्रों को सब धन देती है।
वैसे ही विद्वानों की विद्या, सब क्लेशों को हर लेती है।।
विद्वज्जन का व्यवहार सदा, मित्रों के नित्य समान रहे।
विद्वद्वर होकर कार्य करे, जिससे सब में सम्मान रहे।।48।।

येन ऽ ऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धाना ऽ अग्निꣳ स्वराभरन्तः।
तस्मिन्नहं निदधे नाके ऽ अग्निं यमाहुर्मनव स्तीर्णबर्हिषम्।।49।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदपारग विद्वान् लोग, सत्यानुष्ठान-क्रिया-रत हों।
धर्मानुष्ठान-रूप कर्म-रत, सत्यविज्ञान युक्तियुत हों।।
विद्युदग्नि विज्ञात विचारित, दु:खरहित आच्छादित हों।
धारण मननशील विवेकी, धनैश्वर्य- सम्पादित हों।।49।।

तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः।
नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे ऽ अधि रोचने दिवः।।50।।

यजनशील याज्ञिक का जीवन, वेदोक्त कर्म-अनुकूल रहे।
वृद्धावस्था में दु:ख-रक्षक, पुत्र नहीं प्रतिकूल रहे।।
पत्नी पुत्र पुत्री अरुबान्धव, मिल-जुलकर सब साथ रहें।
धर्मात्मा पुरुषार्थी सन्तोषी बनकर संगात रहें।।50।।

आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पति श्चेकितानः।
पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः।।51।।

जैसे ईश्वर ब्रह्माण्ड-मध्य में, सूर्य प्रकाशित करता है।
वैसे ही राजा विद्वान् श्रेष्ठजन का, नित पोषण करता है।।
विद्या-प्रकाश से अविद्यादि, क्लेशों का सदा विनाश करें।
शत्रु-समान विद्या अवरोधी को तज, सौख्य-विकास करें।।51।।

अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्त्रियो द्योततामप्रयुच्छन्।
विभ्राजमानः सरिरस्य मध्य ऽ उप प्र याहि दिव्यानि धाम।।52।।

धार्मिक में धार्मिकता का बल इतना हो, वह दब न सके।
धारणीय जीवन हो ऐसा, फिर उसकी छवि छिप न सके।।
धर्म-युक्त कार्यों में तत्पर, जीवनभर तल्लीन रहे।
सत्कर्मों के कारण उत्तम, जन्म कर्म अरु स्थान गहे।।52।।

सम्प्रच्यवध्वमुप संप्रयातागने पथो देवयानान् कृणुध्वम्।
पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वाताछंसीत् त्वयि तन्तुमेतम्।।53।।

विद्वान् स्त्री-पुरुष यौवन में, करके विवाह शुभ धर्म धरें।
धार्मिक जन का अनुसरण करें अरु धर्म-विरुद्ध न कर्म करें।।
माता पिता दादा परदादा की सेवा प्रति नित्य करें।
उत्तम सन्तानों को पैदा करके, योग्य सुकृत्य करें।।53।।

उद् बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳ सृजेथामयं च।
अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत।।54।।

विद्या-प्रकाशित स्त्री-पुरुष, उत्कृष्ट रीति-व्यवहार करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान-प्राप्ति में तत्पर हो, अन्यों की अविद्या दूर करें।।
इष्ट-सिद्धि हित यत्नशील हो, सत् जीवन निर्वाह करें।
लोक और परलोक सुखी, विद्वान् और यजमान करें।।54।।

येन वहसि सहस्त्रं येनाग्ने सर्ववेदसम्। तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे।।55।।

सद् गृहस्थ कर्तव्यनिष्ठ, वेदोक्त कर्म का ध्यान रखें।
देव तुल्य पितरों आचार्यों विद्वत् अतिथि का मान रखें।।
उन्हें पूर्ण सन्तृप्त करें, आशीष उन्हीं का लिया करें।
यज्ञ-रूप पावन गृहस्थ को, सफलता से कर लिया करें।।55।।

अयं ते योनिर्ऋत्वियोयतोजातोऽअरोचथाः। तं जानन्नग्नऽआरोहाथा नो वर्धया रयिम्।।56।।

पठन-पाठन से स्वयं स्त्री-पुरुष, विदुषी और विद्वान् बनें।
ऋतु-अनुकूल बने घर उनका अरु उत्तम सन्तान बनें।।56।।

तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू ऽ अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये ऽ अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे शैशिरावृतू ऽ अभिकल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्।।57।।

ताप बढाने का हेतु यह, माघ महीना होता है।
फाल्गुन मास भी शिशिर ऋतु में, बहुत पसीना लाता है।।
ये दोनों अपने लक्षण सें, अति सुखदायक होते हैं।
यम-नियमादि-व्रत-पालन से, ये फलदायक होते हैं।।57।।

**परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्।
विश्वस्मैप्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ।
सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद।।58।।**

प्रज्ञा स्त्री कर्तव्य-बुद्धि से, विद्या-प्रकाश नित किया करे।
प्राणापानव्यान को जान, पति के संग स्थिर हो जिया करे।।58।।

**लोकं पृण छिद्रं पृणार्थो सीद ध्रुवा त्वम्।
इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन्।।59।।**

समझदार स्त्री गृह-साधन को जोड़, कार्य सब सिद्ध करे।
विदुषी स्त्री विद्वान् पुरुष, कर्त्तव्य-कर्म अविरुद्ध करे।।59।।

**ता ऽ अस्य सूददोहसः सोमꣳश्रीणन्ति पृश्नयः।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः।।60।।**

प्रजा विद्या और शिक्षा से सम्पन्न हो, ऐसा उपाय करे।
वेदोक्त कर्म में लीन रहे, उनका सब ओर सहाय करे।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बिना कर्म, ज्ञान और उपासना भी हो न सके।
सोमादिक से पके पदार्थों को, जी भरकर खा न सके।।60।।

इन्द्रंविश्वाअवीवृधन्त्समुद्रव्यचसंगिरः। रथीतमꣳरथीनां वाजानाथꣳसत्पतिं पतिम्।।61।।

राजधर्म से युक्त प्रजाजन अरु राजा आसीन रहे।
सतर्क न्यायाधीश सभापति, न्याय में ईश-समान रहे।।61।।

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणद्व्यस्थात्।
आदस्यवातो ऽअनु वाति शोचिरघ स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति।।62।।

रक्षा करने से अश्व पुष्ट हो, कार्य-सिद्धि ज्यों करते हैं।
न्याय से रक्षित प्रजा तुष्ट हो, राज्य-वृद्धि त्यों करते हैं।।62।।

आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छायायाथꣳ समुद्रस्य हृदये।
रश्मीवतीं भास्वतीमा या द्यां भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम्।।63।।

सम्यक् पालक आश्रय-रूप, पति के साथ स्त्री रहा करे।
समुद्र-समान अचंचल होकर, पति के अनुरूप स्त्री हुआ करे।।
निज व्यवहार से क्षोभ रहित, पति के तू हृदय में वास करे।
तेरे भी हिय में पति निश्चल होकर, नित्य निवास करे।।63।।

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं दिवं यच्छ दिवंदृꣳह दिवं मा हिꣳसीः।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय।
सूर्यस्त्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्।।64।।

परमेश्वर की परम कृपा से, गृहस्थाश्रम सम्पन्न रहे।
शिशिर ऋतुवत् सुखदायी हो, जीवन न कभी आपन्न रहे।।
सर्वत्र मिले सत्कार सुरक्षा, सत्कर्मों का अनुष्ठान रहे।
न्यायप्रकाश विद्याप्रकाश अरु धर्मप्रकाश-अनुदान रहे।।64।।

सहस्त्रस्य प्रमासि सहस्त्रस्य प्रतिमासि सहस्त्रस्योन्मासि साहस्त्रोऽसि सहस्त्राय त्वा।।65।।

मनुष्यों के व्यवहार सिद्धहित, तीन प्रकार के साधन हैं।
यथार्थ विज्ञान, तोल-साधन, तीसरा तुलादि साधन हैं।।
इनको जान-पहचान, ईश-कृपया सब कार्यों को साधो।
वही सत्य-व्यवहार सुप्रेरक, उसको ही तुम आराधो।।65।।

।इति पञ्चदशोऽध्यायः।।

।पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषदों में अध्यात्मबोध

प्रो0 महावीर, उपकुलपति, गुरुकुल कांगडी वि०वि०,
उपाध्यक्ष, उत्तराखण्ड संस्कृत आकादमी

कठोपनिषद् में कहा है -

तं दुर्दर्श गूढ़मनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं, मत्वा धीरो हर्षशोकँ जहाति।।

ज्ञानी जीवात्मा, उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म, अतीन्द्रिय, सर्वव्यापी, घर-घर में विद्यमान अनादिदेव ब्रह्म को अध्यात्म योग से भलीप्रकार जानकर हर्ष और शोक से मुक्त हो जाता है। ध्यान से देखें तो हमें इस एक उपनिषद् वाक्य में मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन का सांगोपांग चित्र खिंचा हुआ दिखाई देता है। हमें इसके प्रत्येक शब्द पर गहरा विचार करने से , मनुष्य जीवन के अन्तिम लक्ष्य, उसकी प्राप्ति के उपाय और प्राप्ति के परिणामों का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

सब के प्रथम लक्ष्य के सम्बन्ध में विचार कीजिये। वाक्य के अन्तिम पद है-

'हर्षशोकौ जहाति'

ज्ञानी मनुष्य हर्ष और शोक दोनों से मुक्त हो जाता है, हर्ष और शोक दोनों से मुक्त होने की दशा का दूसरा नाम आनन्द है। ब्रह्म सत् चित् और आनन्द है। मनुष्य जब ब्रह्म को भली प्रकार समझने और उसकी सत्ता का अनुभव करने लगता है, तब वह भी ब्रह्म के सुख-दुःख विहीन आनन्द का अनुभव करने लगता है। उस दशा के सम्बन्ध में तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा है-

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन।।

जिस स्थान पर मन और वाणी का पहुँचना सम्भव नहीं, वहाँ ज्ञानवान् पुरुष ब्रह्म के आनन्द के सम्पर्क में आकर निर्भय हो जाता है, उसे किसी का डर नही रहता उस स्थिति में पहुँच कर मनुष्य सुख और दुःख दोनों से परे हो जाता है। सुख और दुःख का एक जोड़ा है। जब दुःख नहीं रहता तब हम सुख का अनुभव करते हैं। दोनों एक दूसरे से बँधे हुए हैं। जिस दशा में दुःख का सर्वथा अभाव हो जाय वह ही आनंद कहलाता है। उसी को उपनिषद्कार ने **'हर्ष शोकौ जहाति'** इस सरल वाक्य में वर्णन किया है। ज्ञानी मनुष्य का वही लक्ष्य है।

यह तो जान लिया कि मनुष्य का लक्ष्य क्या है? अब यह देखना चाहिये के उस लक्ष्य तक पहुँचने का उपाय क्या है? लेख के प्रारम्भ में उद्धृत उपनिषद् वाक्य में उपाय का निर्देश प्रथम पदों में किया गया है।

तं दुर्दर्शं गूढ़मनुप्रविष्टं, गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य उस दुर्दर्श, गूढ़, अनुप्रविष्ट, गुहाहित, गह्वरेष्ठ और पुराण ब्रह्म को जान कर हर्ष और शोक से मुक्त होता है। रत्न, रत्नों की खान में ही मिलेंगे, अन्यथा नहीं सुख-दु:ख आदि द्वन्द्वों से रहित आनन्द, ब्रह्म के सम्पर्क से ही प्राप्त हो सकता है- नान्य: पन्था: विद्यते और आनन्द की प्राप्ति का अन्य कोई उपाय नहीं है।

आनन्द को प्राप्त करने का उपाय है- बह्म की प्राप्ति अब ज्ञातव्य यह है कि ब्रह्म की प्राप्ति का साधन क्या है? इस प्रश्न का उत्तर भी उपनिषत्कार ने प्रस्तुत वाक्य में ही दे दिया है। कहा है- अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं, मत्वा; ब्रह्म को भली प्रकार जानने का उपाय अध्यात्म योग है।

इस प्रकरण में अंतिम प्रश्न यह उठता है कि अध्यात्म योग का क्या रूप है? इस प्रश्न का उत्तर मुण्डकोपनिषद् में दिया गया है। **सत्येन लभ्यस्तपसाहृयेषआत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।** यह परमात्मा, सत्य, तप, सम्यज्ञान और नित्य ब्रह्मचर्य से प्राप्त किया जा संकता है।

सत्यमेव जयते नानृतम्, सत्येन पन्था विततो देवयान:।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा: यत्र तत्सत्यस्य परमंनिधानम्।।

सत्य ही सफल होता है, असत्य नहीं। सत्य का मार्ग विस्तृत और श्रेष्ठ है। ऋषि योगी योग संतोष प्राप्त करके जिस स्थान पर पहुँच जाते हैं। वही सत्य का निवास स्थान है। ब्रह्म सत्य स्वरूप है, उस तक पहुँचने के लिये सत्य की साधना आवश्यक है।

अध्यात्म योग के चार अंग है सत्य, तप, सम्यग्ज्ञान और नित्य ब्रह्मचर्य ये सब अपने आप में पूर्ण होते हुए भी परस्पराश्रित हैं। उपनिषत्कार ने सत्य को उन सब में से प्रथम स्थान दिया है। **'सत्यमेवजयते नानृतम्'** सत्य और असत्य के संघर्ष में अतिम विजय सत्य की ही होती है। वह संघर्ष चाहे फिर मनुष्य के अंदर हो अथवा बाह्यजगत् में हो मन वाणी और कर्म में सत्य का अभाव हो तो मनुष्य के लिये जीवन को ऊँचाई की ओर ले जाना असम्भव हो जाता है। अंधकार से तेज की ओर जाना तभी हो सकता है जब सत्य का देवयान-पथ अंगीकार किया जाए।

जीवन में सत्य की साधना हो जाय तो तप करने की योग्यता प्राप्त हो जाती है। तप शब्द की व्याख्या अनेक प्रकार से की गई है। किसी व्याख्याकार ने शारीरिक तप को मुख्य स्थान दिया है तो किसी ने मानसिक तप का जो रूप कठोपनिषद् के निम्नलिखित मन्त्र में दिया गया है, उसमें प्राय: सब प्रकार के तप का समावेश हो जाता है।

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीर:।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते, प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते।।
अन्यच्छ्रेयो अन्यदुतैव प्रेयस्ते उभें नानार्थे पुरुषं विनीत:।
तयो: श्रेय आददानस्य साधु भवति, हीयतेअर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेय (कल्याण मार्ग)और प्रेय (भोग मार्ग) दोनों मनुष्य के सामने आते हैं। उनमें से बुद्धिमान् मनुष्य ही विवेकपूर्वक अपने लिये चुनाव करता है। समझदार व्यक्ति श्रेय मार्ग को और मन्दबुद्धि सुख की लालसा से प्रेय मार्ग को चुनता है। श्रेय का फल अन्य होता है और प्रेय का फल अन्य, पुरुष को दोनों अपनी- अपनी ओर खींचते हैं उनमें से जो श्रेय को चुन लेता है उसका भला होता है और जो प्रेय को अंगीकार करता है वह वास्तविक सुख को प्राप्त नहीं कर सकता।

श्रेय मार्ग पर चलने का दूसरा नाम तप है और प्रेय मार्ग पर चलने का नाम भोग।

श्रेय के उपासक की सबसे पहली अभिलाषा यह होती है कि वह संसार की सब वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करे। **'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'**। ज्ञान के बिना मनुष्य मुक्ति तक नही पहुँच सकता। केवल ज्ञानी ही प्रेय के प्रलोभन से बच सकता है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा है-

नाना तु विद्या चाविद्या च, यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति॥

विद्या (ज्ञान) और अविद्या (अज्ञान) दोनों के भिन्न-भिन्न रूप और फल है। जो कार्य ज्ञान श्रद्धा और चिन्तन द्वारा किये जाते हैं वही दृढ़ होते हैं- वही सफल होते हैं।

अध्यात्म योग का सब से अंतिम परन्तु सब में से महत्वपूर्ण अंग नित्य ब्रह्मचर्य है।

यहाँ **'ब्रह्मचर्य'** और **'नित्य'** ये दोनों शब्द बहुत विस्तृत और विशिष्ट अर्थो के द्योतक है। यों तो ब्रह्मचर्य शब्द मनुष्य के प्रथम आश्रम का वाचक है और नित्य शब्द अजर-अमर का वाचक, परन्तु इस प्रकरण में दोनो शब्दों का साथ-साथ और सम्बद्ध प्रयोग विशेष अभिप्राय का सूचक है। वह अभिप्राय क्या है?

प्रथम आश्रम के लिये **'ब्रह्मचर्य'** शब्द का प्रयोग योग रूढ़ि अर्थो में होता है। यहाँ इस शब्द का प्रयोग यौगिक है। ब्रह्मचर्य शब्द का यौगिक और व्यापक अर्थ है, **'इन्द्रिय संयम पूर्वक अपने कर्तव्य का पालन।'**

''बह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।''

ब्रह्मचर्य और तप द्वारा श्रेष्ठजन मृत्यु के पाश से मुक्त होते है।

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते।

गुरू ब्रह्मपर्य द्वारा शिष्य को (विद्याध्ययन के लिए) ग्रहण करता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।

ब्रह्मचर्य और तप से क्षत्रिय राष्ट्र की रक्षा करता है। इत्यादि मन्त्रों के ध्यानपूर्वक अनुशीलन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ब्रह्मचर्य शब्द का व्यापक अर्थ **''इन्द्रियसंयमपूर्वक धर्म का पालन''** करना है। वह अध्यात्मयोग का चतुर्थ और सबसे आवश्यक अंग है।

जो मनुष्य सत्य, तप, सम्यग्ज्ञान और बह्मचर्य इन चार अध्यात्मयोग के अंगों को सिद्ध कर लेता है, वह घट- घट में विद्यमान ब्रह्म को जानकर आनन्द को प्राप्त कर लेता है। परमात्मा आनन्दमय है, उसके सम्पर्क में आकर जीव भी आनन्द अर्थात् युक्त हो जाती है। **''सा काष्ठा सा परा गतिः।''** वह मनुष्य-जीवन की सीमा है, वही उसका परम लक्ष्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों में प्रतिपादित पारिवारिक जीवन मूल्य

डॉ0 रामचन्द्र
संस्कृत विभाग, हंसराज कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-07

वेदों के गम्भीर अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वेद समस्त ज्ञान-विज्ञान के मूल स्रोत हैं।[1] उनमें मानव जीवन के उन्नयन की सम्पूर्ण सामग्री विद्यमान है। वेद सम्पूर्ण मानव जाति के उत्थानपरक मूल्यों के संवाहक हैं। अत एव महर्षि मनु द्वारा कथित सम्पूर्ण धर्म मूलतः वेदों में कहा गया है और वेद सर्वज्ञानमय है-

यः कश्चित्कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः।।[2]

सर्वज्ञानमय वेद में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक, व्यावहारिक, धार्मिक, पारिवारिक आदि सभी जीवन मूल्यों का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। इस शोधलेख में वेदों में प्रतिपादित पारिवारिक जीवन मूल्यों की विवेचना प्रस्तुत है।

वेदों में परिवार का स्वरूप

'सांमनस्य सूक्त' के रूप में प्रसिद्ध अथर्ववेद के तीसरे काण्ड के तीसवें सूक्त में स्वस्थ पारिवारिक जीवन के अमूल्य सूत्र मिलते हैं। वैदिक ऋषि का सन्देश है कि उत्तम समाज के व्यक्तियों को समान हृदय, समान मन एवं परस्पर विद्वेष नहीं करने वाला होना चाहिए। समाज/परिवार के लोग परस्पर इस प्रकार प्यार करें जैसे कि अघ्न्या गौ अपने नवजात वत्स से करती है-

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्योऽन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।।[3]

आगे वैदिक ऋषि कहते हैं कि परिवार में पुत्र पिता का आज्ञाकारी एवं श्रेष्ठ कर्मों का अनुपालक हो। माता के साथ भी अनुकूलता पूर्वक व्यवहार करे। पत्नी पति के लिए सदा शान्ति एवं सुख सम्पन्न मधुमती वाणी का प्रयोग करे-

अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।।[4]

भाई एवं बहिन के पारस्परिक व्यवहार का भी उदात्त निदर्शन इस सूक्त में प्राप्त होता है। वेद कहता है कि भाई-भाई से एवं बहिन-बहिन से विद्वेष न करें। भाई-बहिन परस्पर भी विद्वेष न करें अपितु समान व्रत एवं समान हृदय वाले होकर परस्पर कल्याणकारी वाणी का प्रयोग करें -

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।[2]

कुटुम्ब के आन्तरिक सदस्यों के अतिरिक्त समाज के लोगों को भी सहृदयता एवं पवित्रता का उपदेश देते हुए वेद कहता है कि समाज के लोगों का पेय जल स्थान समान हो। सभी प्रेम से मिलकर एक साथ भोजन करें। सबको सनातन वैदिक मूल्यों को अपनाकर सामाजिक कर्त्तव्यों का इस प्रकार निर्वहन करना चाहिए जैसे एक चक्र के केन्द्र के चारों ओर आरे लगे रहते हैं।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः।।[3]

वस्तुतः इस सूक्त के सभी मन्त्र सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक पारिवारिक जीवनमूल्यों का अपूर्व निदर्शन प्रस्तुत करते हैं।

यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में श्रेष्ठ परिवार की संकल्पना मिलती है। यहाँ प्रार्थना की गई है कि यजमान के निवास पर गायों की निरन्तर उपस्थिति रहे और गायें भी यजमान एवं उसकी प्रजा को निरोग बनाकर रखें -

आप्यायध्वमघ्न्याः .....अस्मिन् गोपतौ स्यात।[1]

यजुर्वेद पिता, पितामह एवं प्रपितामह के आशीर्वचनों से सुसमृद्ध परिवार की प्रार्थना उपस्थापित करता है। वैदिक गृहस्थ ईश्वर से प्रार्थना करता है कि मेरे पिता, दादा एवं परदादा सौ वर्ष की आयु प्राप्त करके मुझ पर कृपावृष्टि बनायें रखें -

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः। पवित्रेण शतायुषा।

वर्तमान भौतिकवादी एवं विलासितामय युग में, जहाँ एकल परिवारों की संख्या बढ़ रही है, यह कथन अवश्यमेव पुनरनुसन्धेय है। जिसके फलस्वरूप तनाव, किंकर्त्तव्यमूढता तथा असहिष्णुता के कारण सामाजिक वातावरण कलुषित हो रहा है, और छोटे-छोटे बच्चे मातृ-पितृ स्नेह प्राप्ति के अपने जन्म-सिद्ध अधिकार से वञ्चित हो रहे हैं।

पति-पत्नी का पारस्परिक सम्बन्ध

वैदिक युग में नारी का स्थान अत्यन्त गरिमामय था। अत एव सृष्टि के आदि पुरुष मनु ने नारी के महत्व का सर्वोच्च गान करते कहा था -

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।[3]

ऋग्वेद में पति एवं पत्नी को गृहस्थ रूपी रथ के दो सुदृढ़ चक्र की उपमा देते हुए कहा गया है-

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम्।[4]

वेद कहता है कि स्त्री पति के साथ अविरोधीभाव से रहकर वीर पुत्रों की माता बने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा समस्त परिवार एवं पशुओं के लिए कल्याण की कामना से युक्त हो -

अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।
वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो द्विपदे शं चतुष्पदे॥[2]

एक मन्त्र में पत्नी अपने पुत्रों के प्रति गौरवपूर्ण भावों से कहती है कि मेरे पुत्र शत्रुओं का विनाश करने में सक्षम हैं। मेरी पुत्री विराट् है। पति के प्रति मेरे मन में उत्तम भाव है अतः मैं सम्पूर्ण सफल गृहस्थ जीवन वाली हूँ-

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि सञ्जया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः॥[3]

आदर्श पत्नी की परिकल्पना करते हुए कहा गया है कि वह अपने उत्तम एवं यथायोग्य व्यवहार से सास, श्वसुर, ननद और देवरों का भी मन जीत ले और उनकी सम्राज्ञी बनकर रहे -

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु॥[4]

माता पिता का सन्तान से सम्बन्ध -

वैदिक संहिताओं में माता-पिता का अपनी सन्तान से मधुर सम्बन्ध का रोचिष्णु वर्णन मिलता है।

ऋग्वेद के अनुसार सन्तान के प्रति माता-पिता अनन्य प्रेम पूर्ण व्यवहार करते हैं तथा उनके लिए पुत्र एवं पुत्री में कोई भेद नहीं है। दोनों उनके लिए सुवर्ण के समान है।[1] पुत्र स्पर्श माता के लिए आनन्द एवं सुख प्रदायक होता है अतः वह उसे अनन्य प्रेम से अपनत्व प्रदान करती है।[2] ऋग्वेद कहता है कि बालक को बचपन में माँ का सम्पूर्ण प्यार मिलना चाहिए। उसे किसी भी स्थिति में माँ से पृथक् नहीं रखा जाना चाहिए-

समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम्।[3]

पुत्र के लिये समुचित स्थान की व्यवस्था पिता का कर्तव्य है। मित्र, वरुण एवं अर्यमा से प्रार्थना करते हुए एक मन्त्र में कहा गया है कि पुत्र सहित हमारे परिवार के लिए स्थान प्रदान करें।

नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु।[4]

प्रत्येक शिशु का भरण पोषण माता का प्रथम कर्तव्य था -

मातेव यद् भरसे पप्रथानो जनं जनं धायसे चक्षसे च।[5]

ऋग्वेद के मन्त्र में संकेत मिलता है कि सभी सन्तान को साथ बुलाकर भोजन कराना चाहिए।[6]

इस प्रकार वेद के शतशः मन्त्र माता-पिता एवं सन्तान के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में उदात्त सन्देश प्रस्तुत करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार में नारी का महत्व -

वेद में नारी के विविध पक्षों का सुललित वर्णन प्राप्त होता है। जिनमें नारी विषयक मूल्यों का परिज्ञान होता है। परिवार में नारी का स्थान सर्वोच्च माना गया है। ऋग्वेद के अनुसार जाया का नाम घर है - **जायेदस्तम्।**[1] पत्नी को पुरुष का भाग माना गया है। इसके द्वारा वैदिक ऋषियों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण जीवन मूल्य की स्थापना की है कि वही समाज सन्तुलित रूपेण विकसित होगा जहाँ पर नारी को समान रूप से अभिनन्दित किया जाएगा। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार जाया की प्राप्ति से पूर्व व्यक्ति अपूर्ण ही रहता है-

अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया तस्माद् यावज्जायां न विन्दते नैव तावत्प्रजायते असर्वो हि तावद्भवति। अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ प्रजायते तर्हि सर्वो भवति।[2]

महाभारत में भी भार्या को श्रेष्ठतम सखा कहा गया है-

अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः।।[3]

नववधू के लिए उपदेश किया गया है कि अपने घर में प्रवेश करके सब पर शासन करो -

गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि।[4]

नारी को सदैव प्रसन्नचित्त रखने का उपदेश दिया गया है -

अभिप्रवन्त समनेव योषाः कल्याणः स्मयमानासो अग्निम्।[5]

एक स्थान पर कहा गया है कि जिस प्रकार पुत्र माँ के प्रति आकृष्ट होते हैं उसी प्रकार हम उषा के प्रति आकर्षित होते हैं।[6]

विवाह संस्कार के मन्त्रों में पति स्पष्ट रूप से उद्घोषणा करता है कि मैं सौभगत्व अर्थात् सम्पूर्ण सुख, समृद्धि, आनन्द आदि प्रदान करने के लिए वधू का पाणिग्रहण करता हूँ और यह निर्वहन सम्पूर्ण जीवन पर्यन्त बना रहेगा।

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।[1]

नारी शिक्षा का भी समुचित उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद के अनुसार कन्याएँ विद्याध्ययन करती हैं तथा ब्रह्मचर्य के द्वारा युवा पति को प्राप्त करती हैं -

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।[2]

एक मन्त्र में कहा गया है कि वर एवं वधू अपने पुत्र पौत्रों के साथ खेलते हुए जीवन यापन करें -

इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे।।[3]

इस प्रकार उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वेद एवं तदनुगामी वाङ्मय में उदात्त पारिवारिक जीवन मूल्यों का विवेचन प्राप्त होता है। परिवार समाज की इकाई है। आदर्श

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार के निर्माण से समाज का स्वरूप सुन्दर एवं समृद्ध होता है। जहाँ पर परस्पर हृद्य भाव से मानवता से ओतप्रोत नागरिक निवास करते हैं। वैदिक परिवार में मानवीय जीवनमूल्य पूर्ण रूपेण विकसित दिखाई देते हैं। वर्तमान युग जीवन मूल्यों के क्षरण का युग बन रहा है। अत: इन वैदिक विचारों के पुनर्मन्थन की महती अवश्यकता है।

पाद-टिप्पणियाँ

1. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। आर्यसमाज का तीसरा नियम, महर्षि दयानन्द
2. मनुस्मृति 2.7
3. अथर्ववेद 3/30/1
4. अथर्ववेद 3/30/2
5. वही 3/30/3
6. वही 3/30/6
7. यजु0 1/1
8. यजुर्वेद 19/37
9. मनुरूमृति 3/56
10. ऋग्वेद 5/37/3
11. वही 10/85/43
12. ऋग्वेद 10/159/3
13. वही 10/85/46
14. पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुत:। उभा हिरण्यपेशसा। ऋग्वेद 8/31/8
15. प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात्। सुनूं न माता हृद्यं सुशेवम्। ऋग्वेद 5/42/2
16. ऋग्वेद 9/104/2
17. वही 7/62/6
18. ऋग्वेद 5/15/4
19. ऋग्वेद 10/35/12
20. ऋग्वेद 3/53/4
21. शतपथ0 5/2/1/10
22. महाभारत आ0प0 74/40
23. ऋग्वेद 10/85/25
24. ऋग्वेद 3/58/8
25. वही 7/81/4
26. ऋग्वेद 10/85/36
27. अथर्व0 11/5/18
28. ऋग्वेद 10/85/42

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेदीय दृष्टि से पञ्महाभूत सिद्धान्तों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ0 शालिनी त्रिपाठी
''पोस्ट डॉक्टोरल फैलो (PDF)
बी एस0 एम0 (पी0जी0) कॉलेज
रुड़की (उत्तराखण्ड़)

यजुर्वेद के अट्ठारहवें अध्याय में प्राण-अपान-व्यान-उदान-समानादि शब्द आयुर्वेद के पञ्चमहाभूतो के सिद्धान्तों को इंगित करते हैं। यह समस्त ब्रह्माण्ड, तथा समस्त जीवों के शरीर पञ्चमहाभूतों से ही निर्मित हैं। सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ पञ्चमहाभूत है। प्रत्येक पदार्थ में वायु-अग्नि-जल-अग्नि ये तत्व जीव शरीर में वात-पित्त एवं कफ के रूप में क्रियात्मक हैं। ऐसा आयुर्वेद का सिद्धन्त है।

आयुर्वेद में पृथ्वी-जल-तेज-वायु और आकाश इन पांच द्रव्यों को पञ्चमहाभूत माना गया है। आयुर्वेद में चिकित्सा की दृष्टि से पञ्चमहाभूतों का विशेष महत्व है। आयुर्वेद का पञ्चमहाभूत सिद्धान्त अपनी विशेषताओं के आधार पर ही आयुर्वेद में अपनी विशिष्टता को बनाए रक्खे हैं। अर्थात् द्रव्यों की उत्पत्ति महाभूतों से मानी गयी है। आयुर्वेदानुसार सभी द्रव्य पाँच भौतिक है।

दोष - धातु -मलमूलं हि शरीरम् । ये दोष - धातुमल भी पाँच भौतिक ही है। इसी प्रकार अन्य द्रव्यों पर यह सिद्धान्त लागू है। द्रव्यों में महाभूतों की प्रधानता उनके गुण - कर्मो के आधार पर लगाते है। आयुर्वेद में महाभूतों की स्थूल रचना की व्यापकता नहीं है। अतः मूल महाभूत तत्व सूक्ष्म एवं गुणकर्मानुमेय होते हैं। आयुर्वेद में महाभूतो की गणना एवं गुणों का निर्देश देते हुए लिखा है।

महाभूतानि सं वायुरग्निरापः क्षितिस्तया।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च तदगुणाः।।[1]

अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पाँच महाभूत हैं। तथा शब्द स्पर्श-रूप-रस एवं गन्ध ये उनके लक्षण प्रतिपादक गुण कहे जाते हैं। आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार उनके भौतिक गुणों पर ही ये पञ्चमहाभूत आश्रित रहते हैं। तथा सृष्टि - प्रक्रिया में मिलकर कार्य करते हैं। आयुर्वेद का यह सिद्धान्त इन पञ्च भौतिक गुणों पर ही आश्रित बताया गया है।-

खर द्रवचलोष्णत्वं भूजलानिलतेजसाम्।
आकाशस्या प्रविधातो दृष्टं लिङ्ग यथाक्रमम्।।[2]

अर्थात् पृथ्वी का खरत्व जल का द्रव्यत्व वायु का चलत्व, अग्नि का उष्णत्व तथा आकाश का अप्रतिघात ये महाभूतों के विशेष चिह्न होते हैं। अर्थात् महाभूतो के साधारण गुण स्पर्शनेन्द्रिय गोचर होते है। आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार यह मानना युक्तिसंगत होगा। पञ्चमहाभूतों के सिद्धान्त के अनुसार इनके लक्षणात्मक गुणों के विवेचनार्थ आचार्यो ने अपने-अपने मन्तव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत किए है:-

''खस्याप्रतिषेधो लिंङ्गं, वायोश्चलन, तेजस औष्ण्यं, अपां द्रवत्व, पृथिव्या स्थैर्यम्।''[3]

अर्थात आकाश का लक्षण अप्रतिषेध, वायु का लक्षण, चलन, अग्नि का लक्षण उष्णता, जल का लक्षण द्रव्यता और पृथिवी का लक्षण स्थिर है।

अन्य आचार्यो के मन्तव्यानुसार :-

लघु, गुरू, स्निग्ध, रूक्ष और तीक्ष्ण ये क्रमशः आकाश, पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि के गुण कहे गये है।[4]

चिकित्सा की दृष्टि से इन गुणों की उपयोगिता होने से आयुर्वेद में इनका गुण समन्वित किया जाता है। प्रत्येक महाभूतों की उत्पत्ति अपने पूर्व महाभूतो से होती है **महर्षि सुश्रुत** ने इस तथ्य का प्रतिपादन करते हुए इसके सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है।:-

अन्योन्यानुप्रविष्टानि सर्वाण्येतानि निर्दिशेत।
स्वे स्वे द्रव्ये तु सर्वेषां व्यक्तं लक्षणर्मिष्यते।।[5]

अर्थात् ये पांचों महाभूत एक दूसरे में अनुप्रविष्ट समझने चाहिए । किन्तु इन महाभूतो के अपने विशिष्ट लक्षण अपने -अपने द्रव्य में ही व्यक्त होते हैं।

तन्मयान्येव भूतानि तद्गुणान्येव चादिशेत् ।
तैश्च तल्लक्षणः कृत्स्नो भूतग्रामो व्यजन्यत्।।
तस्योपयोगी ऽ मिहितशिचिकित्सां प्रति सर्वदा।
भूतेभ्यो हि पर यस्मान्नास्ति चिन्ता चिकित्सते।।[6]

इस प्रकार महाभूतों की उत्पत्ति मूल प्रकृति से होती है। सृष्टि - उत्पत्ति के क्रम में प्रकृति से महद्तत्व की उत्पत्ति होती है, महद् से अहंकार, अहंकार से पञ्चतन्मात्र तथा तन्मात्र से पञ्च महाभूतों की उत्पत्ति होती है।[7]

अतः प्रकृति के अनुसार गुणक्रमानुसार उससे समुत्पन्न समस्त तत्वो में संक्रमित होते है। इस सिद्धान्तानुसार सर्वप्रथम आकाश महाभूत की सिद्धि मानी गयी है । तत्पश्चात् **''आकाशाद्वायु''** आकाश से वायु । **''वायोरग्नि''** वायु से अग्नि/अग्नेरापः अग्नि से जल महाभूत उत्पन्न होता है। इस प्रकार जल महाभूत शब्द - स्पर्श रूप और रस इन चार गुणों से समन्वित है। इसके बाद अन्त में **''अद्भ्यः पृथ्वी''** जल से पृथ्वी महाभूत की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार महाभूतो की उत्पत्ति उनमें स्थित गुणों की दृष्टि से विशेष महत्व रखती है । भाव द्वारा व्यक्त है।:-

तेषामेक गुणः पूर्वो गुण वृद्धिः परे परे।
पूर्वः पूर्वगुणश्चैव क्रमशो गुणिषु स्मृतः।।[8]

उपरोक्त तथ्य के स्पष्टीकरण गुणवृद्धि क्रम को कहते है।:-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश - शब्द।
वायु - शब्द, स्पर्श।
अग्नि - शब्द, स्पर्श, रूप।
जल - शब्द, स्पर्श, रूप, रस।
पृथिवी - शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध।

जब शरीर में सन्तुलित वायु रहती है, तब शरीर स्वस्थ रहता है। शरीर में अपेक्षित वायु के अधिक या न्यून होने से 'वातज' रोग उत्पन्न होते हैं, जैसे **गृध्रसी, पक्षाघात** आदि। संतुलित अग्नि तत्व जब शरीर में कार्य करता है तब शरीर स्वस्थ रहता है। जब शरीर में अग्नि तत्व कम हो जाता है या बढ़ जाता है तब पित्तज रोग उत्पन्न होते हैं जैसे **भ्रम, दाह, वमन, अम्लक** आदि। अपेक्षित जल व पार्थिव तत्व जब शरीर में रहते है जब शरीर में अधिक स्वस्थता बनी रहती है परन्तु इन तत्वों के न्यूनाधिक्य से कफज रोग उत्पन्न होते है। जैसे **गलगण्ड,आमदोष, मलाधिक्य, मुख संस्राव** आदि। अतः वात-पित्त और कफ को सम रखना ही स्वास्थ्य है। जिसके लिए युक्ताहार-विहार आवश्यक है।

सन्तुलन वात-पित्त और कफ की शरीर में जो जीवनदायी क्रियाएं हैं, वे इस प्रकार है:-

शरीर में चेष्टा, चेतनता, ज्ञान, विचार-शक्ति को प्रदान करने वाला तत्व वायु है। ताप, उष्णता, चमक, तेज आदि को देने वाला तत्व 'पित्त' है। चिकनाई, रसमय कार्य को शरीर में क्रियान्वित कर पुष्टता प्रदान करने वाला तत्व 'कफ' है। वात-पित्त और कफ में वात का कार्य प्रधानतम माना गया है। वात ही पित्त और कफ को गति प्रदान करने का कार्य करता है और उनके कार्यो को सम्पन्नता प्रदान करता है। इसी का समर्थन **महर्षि चरक** ने भी करते हुए लिखा है।-

वायुः सर्वतन्त्रयन्त्रधरः प्राणोदानसमान व्यानापान प्रवर्तकश्चेष्टानाम्
उच्चावचनां नियन्ता प्रणेता च मनसः सर्वेन्द्रियाणां उद्योतकः सर्वेन्द्रियार्थानाम् अभिबोढः।[9]

वायु, शरीर के सब आशय और यन्त्रों को धारण करके इनकी क्रियाओं को चलाता है।

प्ररुस्यन्दनेद्वहन- पूरणविवेक-धारण-लक्षणो वायुः पञ्चधा प्रविभक्तः शरीरम् धारयति।[10]

इस वायु को कार्यानुसार स्थान भेद से पांच भेदों में बांटा गया है। जैसे **प्राण-उदान-समान-व्यान** और **अपान**। प्राण वायु का स्थान कण्ठ से ऊपर का भाग है, यह वायु प्राण शक्ति उत्पन्न करती है प्राण शक्ति को विष्णु - पदामृत भी कहा जाता है। उदान-वायु वक्षस्थल में रहती है। समान वायु हृदय में रहता है तथा रक्त की गति को समान रखने का कार्य करता है एवं हृदय की रक्षा करता है। समान वायु आमाशय में रहता है तथा उदर के निम्न भाग में रहने के कारण शुक्र, आर्त्तव, मूत्र, पुरीष, गर्भ आदि के बाहर निष्क्रमण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सहायक होता है।[11]

इसलिए वायु के सम्बन्ध में आयुर्वेद जगत् में मान्यता है कि पित्त - कफ - मल तथा धातु सब लंगड़े है - जहाँ वायु ले जाता है वहाँ मेघ के समान चले जाते हैं । जितना भी गतिमय कार्य है, वह वायु के द्वारा ही सम्पन्न होता है। अतः वायु को आधुनिक शरीर विज्ञान के अनुसार 'नर्वससिस्टम्' में रखा जा सकता हैं । शब्द -स्पर्श -रूप-रस और गन्ध को मन के पास पहुंचाना तथा पेशियों में वेग उत्पन्न करके उनके द्वारा चेष्टायें करवाना यह सब वायु का ही कार्य है।[12]

शीत - स्पर्श वाला जल होता है, यह दो प्रकार का होता है : **नित्य** और **अनित्य** परमाणु रूप नित्य है और कार्यरूप अनित्य पुनः कार्यरूप जल तीन प्रकार का होता है: **शरीर, इन्द्रिय** और **विषयभेद से** । शरीर वरुण लोक में है। रस का ग्रहण करने वाली इन्द्रियों का नाम रसना है। जो जिह्वा के अग्र भाग में रहती है। नदी और समुद्रादि विषय रूप जल है।

इस प्रकार आयुर्वेद में पञ्चमहाभूतों के सिद्धान्तों को उसके भौतिक द्रव्यों प्रकृति एवं गुणों के आधार पर प्रतिपादित करके अनेक आचार्यो ने अपने-अपने विश्लेषण प्रस्तुत करके इसके सिद्धान्त को सर्वसम्मति से सहर्ष मान्यता प्रदान की है।

पाद-टिप्पणियाँ -

1. चरक संहिता, शरीर स्थान - 1/27
2. चरक संहिता, शरीर स्थान - 1/29
3. काश्यप संहिता, शरीर स्थाना -पृष्ठ 79
4. लघुर्गुरुस्तथा स्निग्धो रुक्षस्तीक्ष्ण इति क्रमात्।
   नभोभूवारिवातानां वह्नेरेते गुणाः स्मृताः ।। भाव प्रकाश।।
5. सुश्रुत संहिता शरीर, स्थान - 1/21
6. सुश्रुत संहिता, शरीर स्थान - 1/12-13
7. सांख्यकारिका - आ0 जगन्नाथ शास्त्री - मोतीलाल बनारसी दास वाराणसी। पृष्ठ-7,8
8. चरक संहिता, शरीर स्थान - 1/28
9. चरक सूत्र स्थान अध्ययन -12.8
10. तर्कसंग्रह, वायुलक्षण - प्रकरण।
11. तर्कसंग्रह, वायुलक्षण - प्रकरण
    टिप्पणी - तर्कसंग्रह - वायुलक्षण पदकृत्य
    मुखनासिकाभ्यांनिर्गमनप्रवेशवात् प्राणः
    जलस्य अधोनात् अपानः
    अन्नादेः उर्ध्वनयनात् उदानः
    भुक्तपरिणामाय जाठरानलस्य समुननयतान् समानः
    नाडीमुखेषुवितननतात् व्यानः
12. वायु सर्वतन्त्र धन्त्रधरः प्रणोदानसमान व्यानापानं प्रवर्तकश्चेष्टानाम् उच्चावचनां नियन्ता
    मनसः सर्वेन्द्रियाणाम्भिवोढः।। चरक सूत्र स्थान उध्याय-12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामवेदीय ब्राह्मणों का साहित्यिक सौन्दर्य

डॉ० विजय कु
गुड़गांव

वैदिक वाङ्मय में सामवेद का सर्वाधिक महत्व सदैव सर्वमान्य रहा है। छान्दोग्य उपनिशद् के अनुसार जैसे वाक्य रचना में छन्द, छन्दों में काव्य, काव्यों में गीत, गीतों में तान-संलाप प्रशंस्य है, वैसे ही समस्त वाङ्मय में वेद, वेदों में सामवेद और सभी सामों में उनके सर्वस्वभूत गान प्रशंसित है।[1] एक स्थान पर सामश्रुतियों की मधुकररूपता तथा सामवेदविहित कर्मों की पुष्परूपता का उल्लेख कर कहा गया है कि अभितप्त सामवेद से ही यश, तेज, ऐन्द्रिक सामर्थ्य और अन्नाद्यरूप रस उत्पन्न हुआ।[2] महाभारतान्तर्गत भगवद्गीता में सामवेद का उल्लेख भागवत-विभूतियों के अन्तर्गत हुआ है- ''वेदानां सामवेदोऽस्मि'' (10.22)। छान्दोग्य एवं बृहदारण्यक उपनिषदों से प्राप्त उक्तियों से ज्ञात होता है कि साम ऋगाश्रित होता है।[3] ''साम'' शब्द का निर्वचन भी यही प्रदर्शित करता है- सा च अमष्य तत् साम: सामत्वम्।।[4] तात्पर्य यह है कि सामवेद गानस्वरूप है।

संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एवं सूत्र ग्रन्थों को मिलाकर सामवेद का विस्तृत साहित्य उपलब्ध होता है। सामवेद की प्रभूत शाखाओं के साक्ष्य उपलब्ध होने पर भी सम्प्रति केवल तीन शाखाएँ ही उपलब्ध होती हैं- कौथुमी, राणायनीया और जैमिनीया। कौथुम-राणायनीय से सम्बन्द्ध आठ ब्राह्मणग्रन्थ उपलब्ध एवं मान्य हैं, तलवकार सहित जैमिनीय शाखा के अब तक केवल तीन ब्राह्मण ही प्रकाशित हो सके हैं, वे है- जैमिनीय ब्राह्मण, जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मण और जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण। अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से वेदों में मनोरम काव्य-सौन्दर्य सन्निहित है। मन्त्र काव्य में यदि ऋषि-कवि की प्रातिभ प्रवर्हता से प्रसूत अप्रतिम भाव-विभूति विद्यमान है, तो ब्राह्मण ग्रन्थों में अभिव्यक्ति की रमागीयता सहृदय के हृदय को पुलक-पल्लवित कर देती है। यद्यपि ब्राह्मणग्रन्थ पूर्णतया काव्यात्मक रूप में प्रणीत नहीं हुए हैं और उनका प्रमुख प्रतिपाद्य भी काव्य नहीं, याग हैं, किन्तु इनके रचयिताओं का अन्त:करण कलात्मक चेतना से नि:सन्देह अनुप्राणित रहा है। याग के सुनिश्चित व्यापारों की प्रस्तुति करते समय भी कल्पना-प्रवणता का उन्होंने परिचय दिया है। उनकी दृष्टि केवल पुण्य-लाभ पर ही स्थिर नहीं थी, अपितु यह ध्यान भी रखा गया कि गानों की प्रस्तुति में कलात्मकता रहे, परिवेश श्रुति-मधुर हो, पुनरुक्ति न हो और किया जाने वाला साम-गान सम्पूर्ण वातावरण को सरस बना दे। साम-गान के मध्य वीणा-वादन की झङ्कार और नृत्य का विधान भी इसी दृष्टि से है। नाट्य में गीत का ग्रहण भरतमुनि ने भी इसी कारण सामवेद से किया- ''सामभ्यो गीतमेव च''। गान-योजना में मूल प्रयोजन नीरसता का परिहार ही है- यथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मण्ड्क आट् करोति एवं निधनमुपयन्त्ययातयामतायै।[5] ताण्ड्यादि सामवेदीय ब्राह्मणकारों का लालित्य और माधुर्य के प्रति अनवरत आकर्षण दिखलाई देता है। प्रारम्भ में ही काव्य की अधिष्ठात्री वाग्देवी से प्रार्थना की गई है कि हे देवि! तुममें जो कुछ मधुमय हो, उसमें मुझे स्थापित करो-

देवि बाग्! यते मधुमत् तस्मिन् माधाः।[6]

कवि और काव्य शब्दः ता. ब्रा. के प्रथम अध्याय में ही एक बार 'कवि' और दो बार 'काव्य' शब्द आया। ऋत्विग्विशेष को 'उशिक्' कवि कहा गया है।[7] स्तुति योग्य विषय के लिए 'कव्य' शब्द का प्रयोग है।[8] इसी अर्थ में आगे 'काव्य' शब्द व्यवहृत है।[9] जिसका अभिप्राय क्रियमाण स्तुति में काव्यात्मक लालित्य का सन्निवेश प्रतीत होता है।

काव्यात्मक सौन्दर्य की रूपरेखाः-

मानवीय मनोभावों की ब्राह्मण ग्रन्थकारों को गहरी पहचान है। चेतना के निगूढ़ स्तरों में सुप्त अथवा अर्द्धसक्रिय संस्कारों से अनुस्मुत विभिन्न कामनाओं- प्रिय, पत्नि, वशंवद पुत्र, सामाजिक प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य, अप्रिय शत्रुओं के विनाश, मरणोत्तर सुखद जीवन और अन्त में वासनाओं के उपशय-को ध्यान में रखकर ही अर्थवाद का समानान्तर संसार रचा गया है, जिसके मूल में उपर्युक्त काम्य भाव-संसार है। साहित्य में स्थायी भावों की योजना जिन मूल मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों-राग, क्रोध, भय, विस्मय, घृणा और विराग के आधार पर की गई है, उनकी ब्राह्मण ग्रन्थकारों को गहरी प्रतीति है। याज्ञानुष्ठान के प्रयोजनों के निरूपण में अर्थवादात्मक स्थल इस प्रतीति के प्रामाणिक आलेख हैं। काव्यात्मक रमणीयता का दूसरा पक्ष अभिव्यक्ति मूलक है, जिसमें निम्न तत्व उपलब्ध होते हैं- लाक्षणिकता, उपमा एवं रूपक-विधान, पदावृति और अक्षरावृत्तिजन्य लालित्य, सरस और प्रांजल गद्य-बन्ध, संश्लिष्ट प्रस्तुति।[10] अतएव मुख्यतया काव्यग्रन्थ न होने पर भी इनकी वर्णन-शैली में साहित्यिक सौष्ठव है। कोई कृति गद्य में है या पद्य में, इसका विशेष महत्व नहीं है।- महत्व केवल कथ्य की समर्थ अभिव्यक्ति का है।

लाक्षणिकताः-

ब्राह्मणग्रन्थों में लाक्षणिकता पर सर्वप्रथम यास्क ने ध्यानाकर्षण किया- "बहुभक्तिवादीनि हि ब्राह्मणानि"[11] अभिप्राय यह है कि ब्राह्मणों ने देवताओं के विषय में भक्ति अथवा गुण-कल्पना के माध्यम से बहुविध तात्विक अन्वेषण किया है। अर्थवाद के तीन भेद हैं- गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थवाद। इनमें से गुणवाद लक्षणा के अत्यन्त निकट है। परवर्ती मीमांसकों और काव्यशास्त्र के आचार्यों ने दोनों को एक मानकर ही विवेचन किया है। गुणवाद के संदर्भ में प्राप्य वैदिक उदाहरण इस प्रकार है- स्तेनं मनः, आदित्यो भूपः, शृणोत ग्रावाणः, इत्यादि। इनकी सीधी-सीधी अमिधा शक्ति के द्वारा व्याख्या नहीं की जा सकती। 'पत्थर सुनें' यह कथन आपाततः उन्मतः प्रलाप सदृश लगता है- यदि केवल अमिधा पर निर्भर रहा जाए तो, इसी कारण इस प्रकार के वाक्यों में मीमांसकों ने लक्षणा का आश्रय लिया है, जिसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिप्राय प्रातरनुवाक् की मार्मिकता का द्योतन है, जिसे प्रस्तर भी तन्मयता से सुनते हैं, फिर विद्वानों और सहृदयों की बात ही क्या ? नदी की स्तुति के सन्दर्भ में प्राप्त विशेषणों-चक्रवाकस्तनी, हंस-दन्तावली, काशवस्त्रा और शैवालकेशिनी- की व्याख्या शावरभाष्य में भी लाक्षणिक दृष्टि से की गई है। उनका कथन है- असतोऽर्थस्य अभिधायके वाक्ये गौणस्य अर्थस्य उक्तिर्द्रष्टव्या।[12] ताण्ड्य एवं शड्विंश ब्राह्मणों में भी अन्य ब्राह्मणों के समान पुष्पकल लाक्षणिक प्रयोग प्राप्त हुए हैं। उनमें से कतिपय ये हैं- 'मनुष्यदेवा'[13] यजमानो वै प्रस्तरः[14] पषवो वै बृहद्रथन्तरे[15] इत्यादि।

उपमा और रूपकादि अलंकारों का प्रयोगः-

वैदिक वाङ्मय में उपमा और रूपक प्रभृति अलङ्कारों का प्रचुर प्रयोग दिखलाई देता है। वेद से लेकर आज तक इतने व्यापक रूप और परिमाण में उपमा का व्यवहार हुआ है कि राजशेखर ने उसे अलंकार शिरोरत्न, काव्य निधि की प्राण और कवि-वंश की माता की गरिमा से उत्पन्न सम्पन्न बतलाया है-

अलंकारशिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पादम्।
उपमा कविवंशस्य मातैवेति मूर्तिमय।।[16]

उपमा को परिभाषित करते हुए यास्क ने पहले गार्ग्य का मत दिया है, जिनका कथन है कि उपमा का विषय ऊपर से भिन्न होने पर भी उसके सदृश होता है- यद् उतत् तत्सदृशं तदासां कर्म इति गार्ग्यः।[17] इसके अनन्तर यास्क का अपना अभिमत है- उपमा में अधिक गुण अथवा अत्यन्त प्रख्यात उपमान के साथ न्यून गुण वाले अथवा अल्प प्रसिद्ध उपमेय का सादृश्य प्रदर्शित किया जाता है-

ज्यायसा वा गुणेन प्रख्यातमेन।
व कनीयांसं वा अप्रख्यातं वा उपमिमीते।[18]

निरुक्तकारं ने उपमा के कर्मोपमा, भूतोपमा, रूपोपमा, सिद्धोपमा और लुप्तोपमा संज्ञक भेदों का उल्लेख किया है। भूतोपमा का अर्थ है रूप परिवर्तनः यथा 'तुम भेड़ का रूप बनकर आए हो।' कर्मोपमा में वाचक शब्द 'यथा' होता है- यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति। लुप्तोतमा वस्तुतः रूपक है, जिनका नामान्तर अर्थोपमा भी है।

छान्दोग्य ब्राह्मण में यज्ञ के दो भागों की उपमा परुष के दो पैरों और रथ के दो चक्रों से देते हुए कहा गया है कि जैसे एक चरण से चलने वाला पुरुष अथवा एक चक्र से गतिमान रथ नष्ट हो जाता है।[19] वैसे ही ब्रह्मा के द्वारा मात्र एक मार्ग के संस्कार से यज्ञ नष्ट हो जाता है। षड्विंश में दोनों चक्रों से युक्त रथों की ही उपमा भाग के एक अन्य सन्दर्भ में भी की गई है। तदनुसार जैसे दोनों चक्रों से युक्त रथ से अभीष्ट दिशा में गमन किया जा सकता है, उसी प्रकार वाणी और मनोयुक्त यज्ञ से समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।[20] अग्निहोत्र साध्य उपासना में लोक-प्रवृत्ति को उपमित करते हुए कहा गया है कि जैसे क्षुधित बालक माता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास जाते हैं, वैसे (कष्ट में पड़े हुए) प्राणी अग्निहोत्र करते हैं।[21] ताण्ड्य में प्रस्तर खण्डों पर द्रोणकलश को रखने की उपमा प्रजा के मध्य अन्न-समृद्ध राज्य की स्थापना करने से दी गई है। इसी प्रकार विश्वजित् याग में सर्वस्वदान के अनन्तर किसी से कुछ याचना करना वैसा ही है, जैसे कच्चे फल खाना।[22]

साम-गान अथवा स्तोत्रादि के सन्दर्भ में व्यवहृत उपमाएँ-

ताण्ड्य में कहा गया है कि विष्टुति परिवर्तन से उद्गाता यज्ञ वाहक स्तोमों को वैसे ही सन्तृप्त कर देता है, जैसे गाड़ी ढोने से थके बैलों अथवा अश्वों को बदलकर उन्हें तुष्टि दी जाती है।[23] ब्राह्मणकार का कथन है कि जैसे कोई व्यक्ति वृक्ष पर चढ़ते समय समीपस्थ टहनी को पकड़ता है, फिर उसके निकट की, इस प्रकार क्रम से ऊपर चढ़ जाता है, ठीक उसी प्रकार उद्गाता विष्टिविशेष से स्तोमविशेष तक पहुँच जाता है।[24] उद्गीथ भक्ति की व्यापकता के विषय में छान्दोग्यगत वचन है कि ओङ्कार से सम्पूर्ण वाणी इसी प्रकार परिव्याप्त है, जैसे शङ्कुओं (नसों) से पत्ते व्याप्त रहते हैं।[25]

आध्यात्मिक प्रसंगों में उदाहृत उपमाएँ-

ऐसी अधिकांश उपमाएँ छान्दोग्य ब्राह्मण के उपनिषद्-भाग में आई हैं। ब्रह्मवेत्ता के निष्पाप होने के सम्बन्ध में कहा गया है कि पापकर्म से वह वैसे ही असम्पृक्त रहता है, जैसे कमल-पत्र जल से आश्लिष्ट नहीं होता-

यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्ते।
एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते।।[२६]

कमल-पत्र वाली यह उपमा यहीं से परवर्ती साहित्य में गई है जहाँ से विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में संक्रमण करती हुई युग-युगान्तर से आध्यात्मिक निर्लिप्तता को यथावत् सम्प्रेशित कर रही है। भटकते हुए मन को प्राण में प्राप्त होने वाले आश्रय का साम्य ब्राह्मणकार को उड़ते हुए पक्षी में दिखा। तदनुसार जैसे सूत्र में निबद्ध बन्धन को ही स्वीकार कर लेता है, उसी प्रकार हमारा मन भी विभिन्न दिशाओं में भटक कर अन्त में अपने प्राणों में ही आश्रय खोजता है-'यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं पतित्वा अन्यत्रायत-मलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत एवमेव सोम्य! तन्मयो दिशं-दिशं पतित्वा अन्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते।[27] नित्यप्रति बह्मलोक-गमन करते हुए भी लोक उससे कैसे अपरिचित रह जाता है, इसे उपमित करते हुए उपनिषद् के ऋषि-कवि का कथन है-जैसे पृथिवी में गड़ी हुई सुचर्ण-शेवधि को अनभिज्ञ सालोक्य-लाभ करते हुए भी व्यक्ति अनृत से आच्छन्न होने के कारण उसका प्रत्यभिज्ञान नहीं कर पाता- यथापि हिरण्यनिधिं निहितमक्षेत्रज्ञाः, उपर्युपरि संचरन्तो न विन्देयुरेवेमाः सर्वाः अहरहर्गच्छन्त्य एवं ब्रह्मलोकं न विन्दन्ति अनृतेन हि प्रत्यूढा।[28]

उपमाओं का वैशिष्ट्य-

ऊपर सामवेदीय ब्राह्मणों से जो उपमाएँ उदाहृत हैं, उनके विश्लेषण से प्रतीत होता है

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उपमानों का चयन ब्राह्मणग्रन्थकारों ने लोक-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से किया है। प्राय: सभी उपमान अनुभूति और लोकावेक्षण के निकषग्राव पर परीक्षित हैं। उपमेय को प्रभावोत्पादक रीति से अभिव्यक्त करने की क्षमता से वे पूर्णतया सम्पन्न हैं। इन उपमानों के प्रयोग से प्रतिपाद्य सरलता से स्पष्ट ही नहीं हो जाता, वह मन में गहराई से बैठ भी जाता है, क्योंकि प्राय: सभी उपमान मानवीय-हृदय के साथ सामरस्य स्थापित करने वाले हैं। उपमानों का पृष्ठभूमि में ब्राह्मणकारों के मस्तिष्क में कहीं वर्ण्यविषय को चारुत्व प्रदान करने की भावना भी निहित प्रतीत होती है।[29]

उपमान-चयन की दृष्टि से ब्राह्मणग्रन्थकार का यह वैशिष्ट्य है कि उसके द्वारा प्रयुक्त उपमान परवर्ती साहित्यिकों के द्वारा पौन: पुन्येन अनुवर्तित होते हुए जनमानस के अविच्छिन्न अंग बन गये। रथ-चक्र, कमल-पत्र और भटके हुए पक्षी वाले उपमान इसी श्रेणी के हैं, जिन्हें भारत की प्राय: सभी क्षेत्रीय भाषाओं के कवि-कालाकारों और सन्त-साधकों ने बहुत प्रकार से समय-समय पर दोहराया है। वैदिक उपमाओं की इस समीचीनता, रमणीयता और प्रासंगिकता को ध्यान में रखकर ही म.म. काणे, हरि राम दिवेकर, कान्तिचन्द्र पाण्डेय और वी. राघवन सदृश मनीशियों ने इनकी समवेत स्वर से श्लाघा की है और विशिष्टता का उद्घाटन किया है।[30]

रूपक-विधान-

ब्राह्मण-ग्रन्थों में रूपक-विधान की क्या उपादेयता है, इस पर प्रकाश डाला है शबरस्वामी ने मीमांसा-सूत्र 'अभिधानऽर्थवाद:'[31] की व्याख्या के प्रसंग में कुमारिल भट्ट का कथन है कि रूपक के द्वारा यज्ञ की स्तुति अनुष्ठान-काल में ऋत्विजों और यजमानों तथा अन्य समवेत जनों में भी उत्साह भाव का संचार करती है-

रूपकद्वारेण याग-स्तुति: कर्मकाले दृढोत्साहं करोति।

सामवेदीय ब्राह्मणकारों में दीर्घ और लघु उभयविध रूपकों के विधान दृष्टिगोचर होते हैं। प्रमुख रूपक मानव-शरीर, नर-नारी सम्बन्ध, संवत्सर पक्षि-देह, देव-मधु और विश्वसृष्टि के उपादानमूलक तत्वों के आधार पर निबद्ध है।

संवत्सर का रूपक-

ताण्ड्य ब्राह्मण में पक्षिस्वरूप महाव्रत संवत्सरूप निरूपित करते हुए कहा गया है कि वसन्त ऋतु उसका मुख, ग्रीष्म और वर्षा दो पक्ष, शरद् ऋतु मध्यभाग और हेमन्त पुच्छ है।[32] छान्दोग्य ब्राह्मण में आदित्य का निरूपण देवमधु के रूप में है। द्युलोक उसका तिरछा बांस है, अन्तरिक्ष छत्ता है और किरणें मधुमक्षिका-शिशु हैं।[33] इस प्रकार रूपकों की यह विराट् सृष्टि, जिसके कतिपय अंश ही निदर्शनस्वरूप ऊपर प्रस्तुत किये गये, ब्राह्मण ग्रन्थों के रचयिताओं के जीवन और जगत् के सूक्ष्म निरीक्षण, प्रभूत कल्पना-शक्ति तथा गहरी अन्तदृष्टि की परिचायिका है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में यद्यपि कृत्रिम रूप से किसी प्रकार की चारुता प्रकट करने की चेष्टा परिलक्षित नहीं होती, तथापि वे पदावृत्ति और अक्षरावृत्तिजन्य लालित्य से सुपरिचित प्रतीत होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षरावृतिजन्य वह चारुत्व, जिसे परवर्ती आलंकारिकों ने अनुप्रास नाम दिया, **ब्राह्मणग्रन्थों में प्राचुर्येण समुपलब्ध है। ऐसा ही एक अंश निदर्शनस्वरूप प्रस्तुत है-**

पाड्क्तः पुरूषः पांक्ताः पशवस्तया पुरुषश्च पशूश्चांप्नोति।३४

अक्षरावृत्ति और पदावृत्तिजन्य यह लालित्य ब्राह्मण ग्रन्थों के रचना-सौष्ठ्व को अनायास अभिवृद्ध कर देता है।

प्राञ्जल गद्य-

सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों का गद्य सहज प्रसन्न, मधुर और मनोहर है। दीर्घ समासों और श्रुतिकटुसन्धियों का इसमें आभाव है। वाक्य रचना प्रसादगुण सम्पन्न है। प्रवाह में कहीं भी अवरोध नहीं आने पाया है। इनमें भी ताण्ड्य ब्राह्मण का गद्य संभवतः गद्यात्मक आलेखन की पराकाष्ठा है। परवर्ती काल में जब काव्यात्मक दृष्टि प्रमुख हो गई तब भी इतना सुन्दर गद्य-लेखन सम्भव नहीं हो पाया। सायण ने अपने भाष्यों की गद्य-योजना सम्भवतः ताण्ड्यादि ब्राह्मणों के गद्य को आदर्श मानकर ही की। सरलता और स्वाभाविकता इस गद्य-रचना के सर्वोपरि गुण हैं। इस गद्य के उदाहरण स्वरूप दो अनुच्छेदांश प्रस्तुत हैं-

कुले-कुलेऽन्नं क्रियते, तद् यत् पृच्छेयुः- किमिदं कुर्वन्ति इति,

इमे यजमाना अन्नम् अत्स्यन्ति-इति बूयुः।[३५]

तथा

वाणं वितन्वन्ति, अन्तो वै वाणोऽन्तो महाव्रतम् तेनैव तदन्तमभिवादयते।[३६]

प्रो. बटकृष्ण घोष ने भी ब्राह्मणग्रन्थकारों के द्वारा वर्ण्यविषय के अनावश्यक विस्तार की जहाँ आलोचना की है, वहीं इनकी भाषा के लयात्मक सौन्दर्य की उन्मुक्तकण्ठ से प्ररोचना भी की है। उन्होंने इसकी तुलना पालि भाषा के धर्मग्रन्थों से की है। उनके कथनानुसार बिना किसी सुविचार्य साहित्यिक संस्कृति के गद्य-रचना की इतनी प्रौढ़ काव्यात्मक शैली का विकास असंभव है।[37]

ताण्ड्य महाब्राह्मण की रचना अत्यन्त संश्लिष्ट रूप में हुई है। श्रोदर प्रभृति पाश्चात्य पंडितों ने ब्राह्मणों पर जिस अरुचिकर विस्तार का आरोप लगाकर उन्हें असामान्य मस्तिष्क और विकृत मनोविज्ञान वाले लोगों की रुचि का विषय बतलाया है, उसका ताण्ड्य ब्राह्मण में पूर्णतया अभाव है। इसके विपरीत कालन्द ने जैमिनीय ब्राह्मण से इसकी तुलना करते हुए ताण्ड्य के वर्णनों को रूपरेखा मात्र कहा है। सत्य इन दोनों के परे है। वस्तुतः ताण्ड्य ब्राह्मण में न अनावश्यक विस्तार है और न अधिक संक्षिप्तता। उसमें विषय का सन्तुलित, व्यवस्थित और संश्लिष्ट रूप में प्रस्तवन है जो उसका विशिष्ट गुण है।

निष्कर्ष-

उपर्युक्त विवेचन से सुव्यक्त है कि ताण्ड्यादि सामवेदीय ब्राह्मण आकर्षक काव्य गुणों से मण्डित हैं। इनमें जहाँ लक्षणाजन्य वचन-विदग्धता है, वहीं उपमा और रूपकों की मनोरम

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि भी, जो निरन्तर नवीनता से हमें आप्यायित करती रहती है। अक्षरों और पदों की आवृति से उत्पन्न लालित्य, संश्लिष्ट प्रस्तुति तथा प्राञ्जल गद्य-बन्ध, ब्राह्मणों की अभिव्यक्ति को नितान्त आकर्षक बना देते हैं। अतएव यह निर्विवाद है कि इसके रचयिता साहित्यिक रुचि से सुसम्पन्न थे।[37]

ब्राह्मणों में निहित साहित्यिक सौष्ठव का अभी तक समीचीन रूप से उद्घाटन नहीं हो सका है। राजशेखर ने इसकी आवश्यकता बहुत पहले अनुभव की थी। संभवत: इसीलिए उन्होंने एक नये वेदाङ्ग का प्रस्ताव भी रखा था।[38] किन्तु राजशेखर का प्रस्ताव किन्हीं कारणों से कार्यन्वित न होने पाया और इसीलिए वेद-काव्य का सौन्दर्य अपने सम्पूर्ण सन्दर्भों में हम अब तक न पहचान सके।

संभव है, भविष्य में काव्यात्मक दृष्टि से ब्राह्मणों का विस्तार से अनुशीलन करने पर कतिपय नयी विशेषताएँ सामने आयें, जिनकी और हमारा ध्यान नहीं जा सका क्योंकि वैदिक वाङ्मय कलेवर ही नहीं, गुणात्मक दृष्टि से भी अनन्त है।

संदर्भ

1. छा. उप. 1.1.2.
2. छा. उप. 3.3.1.2
3. ऋचि अध्यूढं साम गीयते (छा.उप. - 1.6.1)
4. बृहदा. उप. - 1.3.22, जैनि, उप. ब्रा. - 1.53.5
5. त. ब्रा. - 22.4.16
6. त. ब्रा. - 1.3.1
7. त. ब्रा. - 2.4.7
8. त. ब्रा. - 2.5.14
9. त. ब्रा. - 1.5.9
10. प्रो. ओमप्रकाष पाण्डेय- सामवेदीय साहित्य, संस्कृति, कला और धर्म-दर्शन-पृ.- 301
11. निरुक्त - 7.24
12. ऋग्भाष्य भूमिका में सायण द्वारा उद्धृत - पृ० 21
13. शड् ब्रा. - 1.1.29
14. तां. ब्रा. - 6.7.17
15. तां. ब्रा. - 7.7.1
16. अलंकार शेखर - पृ. 32
17. निरुक्त 3.3.13
18. निरुक्त 3.3.13

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

19. छां. उप. 4.16.3
20. शङ् ब्रा. - 1.5.4
21. शङ् ब्रा. - 5.24.5
22. तां. ब्रा. - 16.6.11
23. तां. ब्रा. - 2.16.3
24. तां. ब्रा. - 3.4.2
25. छां. उप. 2.23.3
26. छां. उप. 4.24.3
27. छां. उप. 6.8.2
28. छां. उप. 8.3.2
29. डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय - साम्वेदीय - पृ. 316
30. P.V. Kane : History of Sans. Poetics, Part II, Early Poetic Efforts:- H.R. Divekar : Les Fleurs de Rhetorique del' Inde (Chapter II), 1930 Paris डॉ कान्तिचन्द्र पाण्डेय, स्वतंत्र कलाशास्त्र, प्रथम भाग, पृ. 11 Dr. V. Raghavan : Sanskrit Literature, Page 13
31. (जैमिनीय) मीमांसा सूत्र 1.2.46 - तन्त्रवार्तिक
32. तां. ब्रा. - 21.15.2
33. छां. ब्रा. 3.1.1
34. तां. ब्रा. - 5.4.2
35. तां. ब्रा. - 5.6.9
36. तां. ब्रा. - 5.6.12
37. The prolixity of the Brahmana-authors is sikening, and yet ----------and is possible only after considerable literary culture. - B.K. Ghosh: The Vedic Age, Page 420
38. उपकारकत्वात् अलंकारः सप्तममङ्म् - इति यायावरीयः।
ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानात् वेदार्थानवगतिः (काव्यमीमांसा, द्वितीय अध्याय)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाटककार कालिदास की राष्ट्रीय भावना

डॉ. राकेश शास्त्री
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
श्री गोविन्द गुरु राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बांसवाड़ा (राज.)

भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों के पश्चात् आविर्भूत नाटककार कालिदास अपनी भाव-सम्पत्ति एवं कल्पना के कारण अनेक परवर्ती कवियों के लिए अनुगामी एवं उपजीव्य बन गए हैं। यही कारण है कि उनकी गणना उन प्राचीन नाटककारों में की जाती रही है, जिनकी कीर्ति देश, काल की सीमाएँ लाँघकर लगभग 2000 वर्षो से भी अधिक समय से दिग्दिगन्त को आज भी आलोकित कर रही है। राष्ट्रीय भावना की दृष्टि से नाटककार कालिदास की नाट्य कृतियों का अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि यहाँ वे हमें राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत प्रतीत होते हैं, क्योंकि उन्होंने जिस तन्मयता और अपनत्व के साथ राष्ट्रीय सौन्दर्य एवं भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित बिन्दुओं का चित्रण अपनी तीनों ही कृतियों में किया है, उसके आधार पर वे पूर्णतया राष्ट्रीय व्यक्तित्व सिद्ध होते हैं।

इस प्रसंग में उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि शृंगार प्रधान होने के कारण अपनी तीनों ही कृतियों में उन्होंने नायिकाओं के माँसल सौन्दर्य के चित्र प्रस्तुत किए हैं। पुनरपि भारतीय संस्कृति के महत्व पूर्ण अंग वर्णाश्रम व्यवस्था, संस्कार, यज्ञ, प्राकृतिक सम्पदा आदि के वर्णन पूर्णरूप से तन्मयता पूर्वक करने के कारण निश्चय ही उन्हें राष्ट्रीय महाकवि की श्रेणी में रखा जा सकता है। साथ ही यह भी चिन्तनीय है कि इस विषय की गहनता इतनी अधिक है कि एक विषय के एक-एक बिन्दु पर विचार करते हुए स्वतन्त्र ग्रन्थ की संरचना सम्भव है, किन्तु स्थानाभाव की दृष्टि से हम यहाँ इसका संकेत मात्र ही कर रहे हैं।

हम देखते हैं कि नाटककार ने अपनी प्रथम नाट्य कृति में ऐतिहासिक पात्र शुंगवंशीय ब्राह्मण अग्निमित्र को नायक बनाकर अपने राष्ट्रीय प्रेम को अभिव्यक्ति प्रदान की है। यहाँ उन्होंने आदर्शवाद की अपेक्षा अपनी नाट्य कला का प्रभावशाली प्रदर्शन करते हुए भारतीय संस्कृति के प्राणभूत नृत्य, संगीत और गान विद्या जैसी प्राचीन ललित कलाओं की जीवन्त प्रस्तुति करके स्वयं को राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त सिद्ध किया है।

इसके अतिरिक्त देवताओं को भी आनन्द प्रदान करने वाले नाट्य वेद को उन्होंने 'यज्ञ' की संज्ञा प्रदान करते हुए महादेव और उमा के शरीर में स्थित ताण्डव और लास्य को इसमें सुन्दर ढ़ंग से नियोजित किया है, जिसे उनकी राष्ट्रीय भावना की ही द्योतक कहा जा सकता है। इसी प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि दार्शनिक दृष्टि से उन्होंने सत्त्व, रजस् और तमस्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणों की भी चर्चा की है, जो उन्हें इस दृष्टि से प्रंशसनीय श्रेणी में खड़ा करते हैं -

देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वांगे विभक्तं द्विधा।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम्।।[1]

इसी प्रकार सुन्दर आभूषणों से सजी धजी महारानी धारिणी और संन्यासिनी कौशिका की उपमा देते हुए इन्हें अध्यात्म विद्या के साथ तीनों वेदों की देवी बताना भी वेदों एवं अध्यात्म विद्या के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण नाटककार को राष्ट्रीय श्रेणी में ला खड़ा करते हैं -

मंगलालंकृता भाति कौशिक्या यतिवेषया।
त्रयी विग्रहवत्येव सममध्यात्मविद्यया।।[1]

इसके पश्चात् सहन शक्ति की दृष्टि से महारानी धारिणी की तुलना पृथ्वी के साथ करते हुए वैदिक वाक्य 'जीवेम शरदः शतम्' के अभिप्राय को परिव्राजिका की मंगल कामना में नियोजित करना भी कवि की राष्ट्रीय भावना का ही द्योतक रहा है-

महासारप्रसवयोः सदृशक्षमयोर्द्वयोः।
धारिणीभूतधारिण्योर्भव शरच्छतम्।[2]

इसके अलावा भारतीय संस्कृति के प्रबल प्रतीक गुरु शिष्य सम्बन्धों की गम्भीरता का विवेचन,[3] शास्त्रार्थ पद्धति[4], वसन्त वर्णन[5], आदि प्रसंगों में राष्ट्रीय प्राकृतिक आम्र मंजरी[6], कोयल, भ्रमर, दक्षिण पवन[7], प्रमद वन[8], और तिलक के पुष्पों का हृदय स्पर्शी वर्णन[9], भारतीय संस्कृति की प्रतीक महावर[10], अशोक वृक्ष, वृक्ष एवं उसे पुष्पित करने के लिए सुन्दर स्त्री द्वारा नूपुर[11], आदि पहनकर पूर्ण शृंगार करके किया गया पाद प्रहार[12], ज्योतिषियों में विश्वास[13], विदिशा वर्णन[14], विदर्भराज पर विजय[15] और इन सबसे महत्वपूर्ण इसी कृति में अश्वमेध का आयोजन एवं योग्य ब्राह्मणों को दान आदि मालविकाग्निमित्रम् में वर्णित अनेक घटनाएँ नाटककार को राष्ट्रीय कवि सिद्ध करने में सहायक कही जा सकती हैं।

इसके पश्चात् उनकी द्वितीय कृति विक्रमोर्वशीयम् के मंगलाचरण में प्राणायाम, ईश्वर मोक्षादि तत्वों का उल्लेख, चंद्रवंशी राजा पुरुरवा और अप्सराओं में अग्रणी उर्वशी को नायिका बनाना, भगवान् सूर्य की उपासना, हेमकूट वर्णन, पुरुरवा द्वारा इन्द्र की सहायता और उसका प्रजावत्सल स्वरूप[16], सम्पूर्ण चतुर्थ अंक में सभी प्राकृतिक उपादान हाथी, सिंह, मृग, मोर, पर्वत, भ्रमर, नदी आदि का गम्भीरता से वर्णन, सुख-दुःख के विषय में भारतीय मान्यता का प्रतिपादन इत्यादि अनेक तत्व नाटककार को राष्ट्रीय कवि की श्रेणी में ला खड़ा करते हैं।

इसी प्रकार एक स्थल पर उन्होंने पुरुरवा की प्रजावत्सलता की तुलना सूर्य से की है, जो आदर्श राज्य की स्थापना में सहायक होने से राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत कही जा सकती है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ लेकान्तात् प्रतिहततमोवृत्तिरासां प्रजानां
तुल्योद्योगस्तव च सवितुश्चाधिकारो मतो नः।
तिष्ठत्येकः क्षणमधिपतिर्ज्योतिषां व्योममध्ये
षष्ठे काले त्वमपि लभसे देव विश्रान्तिमह्नः।।[1]

इसी प्रकार नाटक के अन्त में प्रयुक्त भरत वाक्य के अन्तर्गत सज्जनों के कल्याण के लिए लक्ष्मी और सरस्वती के एक साथ रहने की कामना[2] साथ ही सभी की आपत्तियाँ दूर होकर फलने-फूलने की मनोकामनाओं के पूर्ण होने की कल्याणमयी नाटककार की दृष्टि भी उन्हें राष्ट्रीय कवि का दर्जा दिला देती है-

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।[3]

इसके अतिरिक्त महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि नाटककार ने अपनी सर्वोत्कृष्ट नाट्य कृति शाकुन्तलम् में राष्ट्रीय भावनाओं को अपेक्षाकृत अधिक विस्तार प्रदान किया है। इस नाटक में हमारे राष्ट्रीय महत्त्व के पशु कृष्णसार मृग और मयूर का संरक्षण परिवर्धन और सुन्दर वर्णन करना, आश्रम, हिमालय, मालिनी नदी, यज्ञ, अतिथि सत्कार, प्रजा वत्सलता, गृहस्थ संदेश एवं करुणामय हृदय का सभी पशु-पक्षियों और लता पादपों के प्रति आत्मीय भाव और अन्त में सर्वदमन के भगवान् मारीच द्वारा किये गए जातकर्म आदि संस्कार, सभी कुछ तो यहाँ राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत प्रतीत होता है।

आचार्य मनु ने कृष्णसार मृग की महत्ता मुक्तकण्ठ से वर्णित करते हुए उसके स्वच्छन्द विचरण को यज्ञिय प्रदेश की पहचान बताया है-

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्रस्वभावतः।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो .....।[4]

अतः इसकी रक्षा के लिए आश्रम के तपस्वियों का अपने प्राणों को दाँव पर लगाते हुए राजा के रथ के सामने खड़े होकर दृढ़ एवं कठोर शब्दों में 'आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः' का आदेश प्रदान करना।[5] निश्चय ही जीव हिंसा का निषेध करते हुए 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' विषयक उत्कृष्ट मानवीय एवं राष्ट्रीय भावना की ही अभिव्यक्ति कहे जा सकते हैं।

इसी प्रकार आश्रमवासियों एवं तपस्वियों के प्रति नाटककार की आदर एवं सम्मान की भावना भी वस्तुतः उनकी राष्ट्रीय भावना का ही एक अंग कहा जा सकता है -

सूत, विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम। इदं तावद् गृह्यताम्। (इति सूतस्याभरणानि धनुश्चोपनीयार्पयति)

भारतीय मान्यता वस्तुतः राजा के शस्त्रों को पीड़ितों की रक्षा के लिए स्वीकार करती रही है, निरपराध को मारने की स्वीकृति वह इसे किसी भी स्थिति में प्रदान नहीं करती है, जिसे नाटककार ने मुखर स्वर प्रदान करके अपने राष्ट्रीय भावनाओं से ओत प्रोत होने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण प्रस्तुत किया है।[2] इसके अतिरिक्त इसी प्रसंग में अतिथि सत्कार हेतु दुष्यन्त का आमन्त्रण-

राजन्, समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम्। एष खलु कण्वस्य कुलपतेरनुमालि नीतीरमाश्रमो दृश्यते। न चेदन्यकार्यातिपातः तत्प्रविश्य प्रतिगृह्यतामातिथेयः सत्कारः।[3]

आश्रम विस्तार में मृग, वृक्ष, यज्ञादि का मन भावन वर्णन[4], दुष्यन्त का राजर्षि के रूप में चित्रण[5], इन्द्र के पौरुष की तुलना[6], पुरुवंशियों की शरणागत वत्सलता[7], दुष्यन्त की माता की व्रत परायणता प्रदर्शित करते हुए राजा के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वहण[8], दुष्यन्त की उपस्थिति मात्र से आश्रम का उपद्रव रहित होना[9] आदि सभी विषय नाटककार को राष्ट्रीय महाकवि की श्रेणी में लाने में सहायक हैं।

उसके पश्चात् चतुर्थ अंक में प्रतिपादित सम्पूर्ण विषय, अतिथि सत्कार की महत्ता[10], संसार को सूर्य एवं चन्द्रमा रूप दो तेजों के उदयास्त के माध्यम से संसार को दिया गया आध्यात्मिक संदेश11, कण्व आश्रम में स्थित यज्ञशाला का पवित्र वातावरण12, शकुन्तला की विदाई के अवसर पर प्रकृति के उपादानों द्वारा की गई सेवा13, प्रकृति कन्या शकुन्तला के साथ आश्रम की प्रकृति की अन्तरंगता और कारुण्य पूर्ण अभिव्यक्ति आदि भी सम्पूर्ण जगत् के सहृदयों के अन्तस्तल को स्पर्श करने के कारण उक्त कथ्य की पुष्टि में सहायक कहे जा सकते हैं -

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुंचन्त्यश्रूणीव लताः।[14]

पुनः सार्वभौमिकता लिए हुए राजा और शकुन्तला को क्रमशः प्रदान किया गया महर्षि कण्व संदेश एवं उपदेश[15] आदि अनेक प्रसंग भारतीय राष्ट्रीय विचारधारा के अनुरूप होने से नाटककार की राष्ट्रीय स्थिति को परिपुष्ट करते प्रतीत होते हैं। पंचम अंक में राजा को षष्ठांश वृत्ति बताकर उसके कर्त्तव्यों[16] एवं अधिकारों का निर्देश[17], प्रजा के प्रति सन्तति भाव, कण्वाश्रम के तपस्वियों का राजपुरोहित द्वारा वैदिक रीति से किया गया सत्कार, अपने स्थान से उठकर राजा द्वारा उनके प्रति आदर भाव की अभिव्यक्ति तथा वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति आदर-सम्मान भी राष्ट्रीय दृष्टि से दर्शनीय है -

भो, भोस्तपस्विनः असावत्रभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनो वः प्रतिपालयति।[1]

इसके अतिरिक्त शकुन्तला प्रत्याख्यान के अवसर पर कण्वाश्रम के तपस्वियों द्वारा क्रोध की अभिव्यक्ति करने पर भी दुष्यन्त द्वारा शान्त भाव से अपनी बात कहना[2], परस्त्री के प्रति अनुत्सुकता का प्रदर्शन[3], पुनः षष्ठ अंक में अपनी पत्नी शकुन्तला के परित्याग से उसका पश्चात्ताप प्रदर्शन, मालिनी तटादि प्रकृति के उपादानों के प्रति अपनी आत्मीय भावना[4], दुष्यन्त की प्रजा के प्रति बन्धुत्व की घोषणा[5], स्वयं राजकार्य न सम्भाल पाने की स्थिति में अमात्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिशुन को कार्यभार सौंपने की सचेष्टता6 आदि स्थल भी राष्ट्रीय भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से अवलोकनीय रहे हैं-

त्वन्मतिः केवला तावत् परिपालयतु प्रजाः।
अधि ज्यमिदमन्यस्मिन् कर्मणि व्यापृतं धनुः।[7]

इसकें अतिरिक्त शाकुन्तलम् के अन्तिम अंक में उच्च भावभूमि पर चित्रित कृतज्ञ इन्द्र का दुष्यन्त के प्रति किया गया आदर सत्कार, दुष्यन्त का सर्वदमन के प्रति वात्सल्य, मारीच एवं अदिति की शकुन्तला और दुष्यन्त के प्रति पितृ वात्सल्य भाव की अभिव्यक्ति, साथ ही इन दोनों का आदर्श दाम्पत्य प्रेम आदि सभी बिन्दु नाटककार को राष्ट्रीय कवि की श्रेणी में खड़ा करने के लिए पर्याप्त प्रतीत होते हैं।

इसके अतिरिक्त भरत वाक्य में प्रयुक्त भावना भी उक्त कथ्य की पुष्टि के प्रमाण रूप में प्रस्तुत की जा सकती है, क्योंकि भारतीय संस्कृति का मूलभूत सिद्धान्त ही पुनर्जन्म से मुक्ति प्राप्त करने का रहा है-

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः
सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्।
ममापि य क्षपयतु नीललोहितः
पुनर्भव परिगतशक्तिरात्मभूः।[8]

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि यद्यपि नाटककार की प्रथम दोनों नाट्य कृतियों में भी राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति हुई है, किन्तु उनकी अन्तिम नाट्य कृति शाकुन्तलम् तो भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्वों से ओतप्रोत होने के कारण राष्ट्रीय भावना का खुला दस्तावेज ही कहा जा सकता है। वस्तुतः उनकी यह अकेली नाट्य कृति ही उन्हें राष्ट्रीय महाकवि सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रतीत होती है। साथ ही उल्लेखनीय यह भी है कि यहाँ हमने इस विषय में संकेत मात्र किया है। इसके विस्तृत विवेचन के लिए काव्यकार कालिदास के साथ राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति की तुलनात्मक समीक्षा करते हुए एक सम्पूर्ण ग्रन्थ लेखन की महती आवश्यकता है।

पाद-टिप्पणियाँ

1. माल - 1/4
2. माल - 1/14
3. माल - 1/15
4. माल - 1/16, 17, 2/9
5. माल - 1/20
6. माल - 3/5
7. माल - 3/12 के बाद, 3/14 से पूर्व
8. माल - 3/4, 9

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

9. माल - 5/4 से पूर्व
10. माल - 3/4-5
11. माल -3/11
12. माल - 3/17
13. माल - 3/16
14. माल - 4/5 के बाद, 5/12 के बाद।
15. माल - 5/1
16. माल - 5/1
17. विक्रमो - 2/1
18. विक्रमो. - 2/1
19. विक्रमो. - 5/24
20. विक्रमो. - 5/25
21. मनु. - 2/23
22. शाकु. - 1/9 के बाद।
23. क्षातात् त्रायते, इति क्षत्रियः।
24. आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि। शाकु. - 1/11
25. शाकु. - 1/13 से पूर्व।
26. शाकु. - 1/14, 15।
27. शाकु. - 2/14
28. शाकु. - 2/15
29. शाकु. - 2/16
30. शाकु. - 2/17 से पूर्व।
31. शाकु. - 3/1
32. शाकु. - 4/1
33. शाकु. - 4/2
34. शाकु. - 4/48
35. शाकु. - 4/6
36. शाकु. - 4/12
37. शाकु. - 4/17, 18।
38. स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवं विधैव। शाकु. - 5/7।
39. नियमसि विमार्गप्रस्थिता नात्तदण्डः प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय। शाकु. - 5/8।
40. शाकु. - 5/11 के बाद।
41. शाकु. - 5/4-6
42. अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्। शाकु. - 5/13 के बाद।
43. शाकु. - 6/17।
44. शाकु. - 6/23।
45. शाकु. - 6/32।
46. शाकु. - 6/31।
47. शाकु. - 7/35

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास एवं प्रसाद के काव्य में उदात्त बिम्ब

डॉ० सत्य प्रकाश शर्मा
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
लोहाघाट, चम्पावत (उत्तराखण्ड)

महान् नाटककार एवं महाकवि कालिदास एवं जयशंकर प्रसाद-भारतीय साहित्य की महान् विभूति हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं से साहित्य को समृद्ध किया है। साहित्य इनसे गौरवान्वित हुआ है। दोनों महान् नाटककार हैं, अप्रतिम कवि हैं तथा प्रेम और सौन्दर्य के अमर गायक हैं। इनके लिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निम्न उद्‌गार उल्लेखनीय हैं- 'वाल्मीकि और व्यास की कविता के समान ही उनकी कविता भी शक्तिशाली और महनीय चरित्रों की सृष्टि करने में समर्थ हुई है। सुकुमारता के साथ सुशीलता का मानसिक मृदुता के साथ चारित्रिक दृढ़ता का, अपार वैभव के साथ विपुल वैराग्य का-सौन्दर्य के साथ धर्म का-ऐसा मणिकांचन योग संसार के साहित्य में विरल है।'[1] यही मत प्रसाद के काव्य के लिए भी सत्य है।

बिम्ब पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र का एक सशक्त प्रतिमान है। अतः वहाँ के आलोचना शास्त्र में बिम्ब का अत्यन्त सूक्ष्म, विस्तृत एवं अनेकशः प्रतिपादन होना स्वाभाविक है। बिम्ब सम्बन्धी कुछ प्रमुख पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों के विचार निम्नवत् हैं-

ड्राईडन के मत से- 'बिम्ब विधान कविता की उत्कृष्टता का परिचायक ही नहीं, प्रत्युत उसका प्राण तत्व है।'[2]

सी० डी० लेविस के अनुसार- 'काव्यबिम्ब न्यूनाधिक परिमाण में ऐन्द्रियता के तत्व से समंजित कुछ अंशों में अलंकृत शब्द-चित्र है, जिसके सन्दर्भ में किसी मानवीय संवेदना की अन्तर्ध्वनि रहती है तथा जो एक विशिष्ट काव्यात्मक अनुभूति पाठकों में उद्‌दीप्त कर सकता है।'[3]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार- 'काव्य में बिम्ब स्थापना प्रधान है।'[4]

डॉ० नगेन्द्र के मत से- 'बिम्ब एक प्रकार का चित्र है जो किसी पदार्थ के साथ विभिन्न इन्द्रियों के सन्निकर्ष से प्रमाता के चित्त में उद्‌बुद्ध हो जाता है।'[5]

डॉ० भगीरथ मिश्र के अनुसार- 'वस्तु, भाव या विचार को कल्पना या मानसिक किया के माध्यम से इद्रियगम्य बनाने वाला व्यापार ही बिम्बविधान है।'[6]

डॉ० केदारनाथ सिंह के अनुसार- 'बिम्ब वह शब्दचित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है।'[7]

उपर्युक्त पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों की परिभाषाओं का अध्ययन करने के उपरान्त हम कह सकते हैं कि विचारों, भावनाओं या अनुभूतियों को ऐन्द्रिय अनुभूतियों के आधार पर पुनः

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्यक्ष करने वाले शब्द चित्र को ही बिम्ब कहते हैं। बिम्ब एक प्रकार का शब्द चित्र है जिसका निर्माण कल्पना के द्वारा होता है तथा जिसके निर्माण का आधार ऐन्द्रिय अनुभव होता है।

यद्यपि भारतीय काव्यशास्त्र में बिम्ब के नाम से चिन्तन नहीं किया गया है, तथापि उसमें काव्य के तत्व एवं रूप का सूक्ष्म गम्भीर विवेचन विद्यमान है। चूँकि मूर्त्तन प्रक्रिया काव्य में अनिवार्य होती है और मूर्त्तन प्रक्रिया का अनिवार्य सम्बन्ध बिम्ब से भी है। इसलिए यहाँ बिम्ब चिन्तन विद्यमान है। इस सम्बन्ध में डॉ0 नगेन्द्र के विचार महत्वपूर्ण हैं- 'कल्पना की सृष्टि होने के कारण बिम्ब का सम्बन्ध अलंकार, ध्वनि, वक्रता के साथ अधिक घनिष्ठ है और रीति के साथ अपेक्षाकृत कम है। अलंकार विधान में सादृश्यमूलक अलंकार प्रायः बिम्बात्मक होते हैं, जिनसे सादृश्य प्रतीयमान रहता है। उनमें बिम्ब की स्थिति और भी निश्चित रहती है।'[8] दृष्टान्त एवं निदर्शना अलंकारों के लक्षणों में बिम्ब शब्द का प्रयोग हुआ है-

(क) **दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।**[9]

(ख) **यत्र बिम्बानुबिम्बत्वमं बोधयेत् सा निदर्शना।**[10]

भारतीय काव्यशास्त्र में बिम्बों का अनेक प्रकार से विवेचन हुआ है, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप में बिम्ब सादृश्यमूलक अलंकार, लक्षणा, ध्वनि तथा वक्रोक्ति के अधिक निकट हैं।

काव्य में सौन्दर्य का सन्निवेश करने वाले साधनों में बिम्ब का स्थान महत्वपूर्ण है। किसी बात को समझने के लिए हम उसे कल्पना द्वारा मानस में प्रत्यक्ष करते हैं। गूढ़ से गूढ़ एवं दुरूह से दुरूह विषय भी रूपायित कर देने पर स्पष्ट हो जाते हैं। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कविता में बिम्बग्रहण की अनिवार्यता पर जोर दिया है- 'कविता में अर्थग्रहण से जोर नहीं चलता है, बिम्बग्रहण अपेक्षित होता है।'[11] बाह्य जगत् का बोध हमें ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से होता है। कविता के मानस-प्रत्यक्षीकरण में इन ज्ञानेन्द्रियों का योग रहता है। काव्य में शब्दार्थ के अवलम्ब से रूप, ध्वनि, प्राण, रसना तथा स्पर्श की सजीव अनुभूतियाँ चित्रांकित हो जाती हैं। डॉ0 फतह सिंह का कहना है कि 'चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, नासिका तथा त्वचा के माध्यम से जिस सौन्दर्य की अनुभूति होती है, उसकी तुलना हम उस सौन्दर्य से भी कर सकते हैं, जो हमें काव्य के माध्यम से प्राप्त होती है और प्रायः जिसे रसानुभूति की संज्ञा दी जाती है। कालिदास आदि कवियों के काव्य में हमें जिस सौन्दर्य की प्राप्ति होती है, वह चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, नासिका तथा त्वचा से ग्राह्य सौन्दर्य तो नहीं है, परन्तु तत्त्वतः उससे भिन्न भी नहीं है, क्योंकि वस्तुतः विश्लेषण करने पर काव्य जिस मानस प्रत्ययों अथवा चित्रों के माध्यम से सहृदय पाठक को सौन्दर्यानुभूति प्रदान करता है, वे चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, नासिका तथा त्वचा द्वारा प्रदत्त रूप, शब्द, रस, गन्ध एवं स्पर्श के मानस प्रत्यय अथवा चित्र ही होते हैं। अस्तु काव्य का सौन्दर्य मानस-ग्राह्य है।'[12] इस प्रकार काव्य के सौन्दर्य के लिए बिम्ब योजना का महत्त्व असंदिग्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिम्बों का वर्गीकरण

कुछ विद्वानों ने बिम्बों को वर्गीकृत करने के लिए विषयवस्तु को आधार बनाया है, कुछ ने भाव को आधार बनाया है तो कुछ विद्वानों ने शैली को। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कल्पना की तीन कोटियाँ निर्धारित की हैं- प्रत्यक्ष रूप विधान, स्मृत रूप विधान, तथा कल्पित रूप विधान। डॉ0 नगेन्द्र ने ऐन्द्रिय आधार पर बिम्बों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है- 1. दृश्य, 2. श्रव्य, 3. स्पृश्य, 4. घ्रातव्य एवं रस्य या आस्वाद।[13] डॉ0 केदारनाथ सिंह, डॉ0 कुमार विमल आदि विद्वानों ने बिम्बों को अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया है। इन सभी विद्वानों द्वारा प्रदत्त परिभाषाओं के अध्ययन के उपरान्त बिम्बों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है-

(क) अमिश्र ऐन्द्रिय बोधों पर निर्भर बिम्ब

1. चाक्षुष् बिम्ब, 2. श्रावण बिम्ब, 3. घ्रातव्य बिम्ब, 4. स्पर्श बिम्ब, 5. गत्वर बिम्ब।

(ख) कलात्मक अभिव्यक्ति भंगिमा पर निर्भर बिम्ब

1. शब्द बिम्ब, 2 वर्ण बिम्ब, 3. व्यंजनाप्रवण सामासिक बिम्ब, 4. असंवेष्टित या प्रसृत बिम्ब, 5. व्यापार विधायक बिम्ब, 6. विशेषण निर्भर बिम्ब, 7. कल्पनाश्रयी तिर्यक बिम्ब।

(ग) मिश्र ऐन्द्रिय बोधों पर निर्भर बिम्ब

1. वेगोद्भेदक बिम्ब, 2. सह संवेदनात्मक बिम्ब।

(घ) उदात्त बिम्ब

कालिदास एवं प्रसाद के काव्य में उदात्त बिम्ब- कालिदास एवं प्रसाद के काव्य में उदात्त बिम्बों की भी प्रतिष्ठा की गई है। पं0 सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने उदात्त बिम्ब के लिए 'विराट चित्र' का प्रयोग किया है तथा कहा है कि 'काव्य में साहित्य के हृदय का दिगन्त व्याप्त करने के लिए विराट रूपों की प्रतिष्ठा करना अत्यन्त आवश्यक है।'

उदात्त के प्रतिष्ठापक लोंगिनुस ने भी बिम्बों की चर्चा अपने ग्रन्थ 'पेरिहुप्सुस' के 15वें अध्याय में की है। डॉ0 निर्मला जैन के अनुसार 'काव्य में बिम्ब की सार्थकता लोंगिनुस इस बात में मानता है कि वह वर्ण्य विषय का 'मानस चित्र' श्रोता की आँखों के सामने प्रत्यक्ष करता है। यानी विषयवस्तु को अधिक मूर्त और सचित्र रूप प्रदान करता है।[14]

उदात्त को परिभाषित करते हुए लोंगिनुस कहते हैं- 'उदात्त अभिव्यंजना का अनिर्वचनीय प्रकर्ष और वैशिष्ट्य है।'[15] यही वह साधन है जिसके द्वारा कवि अविनश्वर कीर्ति अर्जित करते हैं। लोंगिनुस के औदात्य एवं विराटता के विषय में डॉ0 निर्मला जैन का मत है-'काव्य वस्तु के रूप में विराट प्रकृति को लोंगिनुस उदात्त समझता था। वस्तुतः लोंगिनुस की दृष्टि मानव-कल्पना में निहित विराटता की ओर थी और प्रकृति उस विराट् कल्पना का आलम्बन मात्र है। उसकी दृष्टि में विराट् प्रकृति इसलिए उदात्त है कि अपनी विराटता के द्वारा वह मानव को अनेक प्रकार की क्षुद्रताओं से ऊपर उठाती है। इस प्रकार लोंगिनुस का उदात्त उस बुनियादी विराटता पर आधारित है जिसमें मनुष्य और प्रकृति दोनों ही युगपत् भाव से हिस्सा लेते हैं।"[16]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः कहा जा सकता है कि मानव या प्रकृति में विराट सत्ता के दर्शन कराने वाली कविता में उदात्त बिम्ब होता है। उदात्त बिम्ब के दो स्तर होते है-दिव्योदात्त एवं सौन्दर्योदात्त। कालिदास के काव्य में उदात्त बिम्ब के इन दोनों स्वरूपों के दर्शन होते हैं। कवि ने कई देवी-देवताओं की विराटता के बिम्ब अंकित किए हैं इनमें कुछ प्रमुख हैं-इन्द्र, अग्नि, वरुण, सूर्य, यम, त्वष्टा, पृथ्वी, रुद्र और विष्णु। रघु की सेना की विराटता प्रदर्शित करने वाला बिम्ब प्रस्तुत है जिसमें कवि ने चित्रित किया है कि रघु की विशाल सेना उसी प्रकार है मानो शंकर जी की जटा से निकली हुई गंगाजी को साथ लिए हुए भगीरथ जी चले जा रहे हों-

स सेनां महतीं कर्षन्पूर्वसागरगामिनीम्।
बभौ हरजटाभ्रष्टां गंगामिव भगीरथः।।[१७]

सौन्दर्य के महान कवि होने के कारण कालिदास के काव्य में सौन्दर्योदात्त बिम्बों की प्रचुरता है। ब्रह्मचारी वेशधारी शिव पार्वती के पुनीत सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं- हे पार्वती! ठीक ही कहा जाता है कि रूप कभी पाप की ओर नहीं झुकता हे सुन्दरी! आप के निकलुश शील को देखकर बड़े-बड़े तपस्वी भी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। सप्तर्षियों के हाथों से चढ़ाये हुए पूजा के फूल और आकाश से उतरी हुई गंगा की धाराएँ हिमालय पर गिरती ही रहती हैं, लेकिन इन सबसे हिमालय उतना पवित्र नहीं हुआ जितना आपके आचरण से हुआ है। सौन्दर्य एवं सदाचार के मणिकांचन संयोग से युक्त यह सौन्दार्योदात्त बिम्ब प्रस्तुत है-

यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः।
तथा हि ते शीलमुदारदर्शने तपस्विनामप्युपदेशतां गतम्।।
विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिस्तथा न गांगैः सलिलैर्दिवश्च्युतैः।
यथा त्वदीयैश्चरितैरनाविलैर्महीधरः पावित एष सान्वयः।।[१८]

सौन्दर्य समग्र संसार में बिखरा हुआ है। कालिदास उस बिखरे हुए सौन्दर्य को अपनी नायिकाओं में एकत्रित कर देते हैं। यक्ष अपनी प्रिया के सौन्दर्य को प्रकृति-राज्य में एकत्र देखना चाहता है परन्तु उसे गहरी निराशा हुई। यक्ष-प्रेयसी सर्वश्रेष्ठ 'तिलोत्तमा' है और विधाता की पूर्ण सौन्दर्य-सिसृक्षा का प्रकिल है। यक्ष अपनी वेदना प्रकट करता हुआ कहता है-

श्यामास्वंङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति।।[१९]

प्रसाद जी का काव्य भी उदात्त बिम्बों की दृष्टि से समृद्ध है। समुद्र एवं आकाश के भव्य संगम का यह उदात्त बिम्ब उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

हे सागर संगम अरुण नील!
अतलान्त महा गम्भीर जलधि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तज कर अपनी यह नियति अवधि
लहरों के भीषण हासों में
आकर खारे उच्छ्वासों में
युग युग्र की मधुर कामना के
बन्धन को देता जहाँ ढील।[२०]

यहाँ क्षितिज के निकट दृश्यमान समुद्र और आकाश के भव्य संगम का एक विराट् फलक और अधिकरणगत औदात्य के साथ चित्र प्रस्तुत किया गया है।

कामायनी के दर्शन सर्ग के अन्त में एक बहुत ही प्रभावशाली दियोदात्त बिम्ब अंकित हुआ है। यह बिम्ब शंकर के ताण्डव नृत्य का है, जो भव्य एवं विराट है। शंकर आलोक पुरुष हैं, सत्ता एवं शक्ति के अखण्ड पुंज हैं। उनका नृत्य मधुर लोल लहरियों से मुक्त प्रकाश का कल्लोल है-

बन गया तमस था अलक जाल, सर्वांग ज्योतिमय था विशाल;
अन्तर्निनाद ध्वनि से पूरित, थी शून्य-मेदिनी सत्ता चित्;
नटराज स्वयं थे नृत्यनिरत, था अन्तरिक्ष प्रहसित-मुखरित,
स्वर लय होकर दे रहे ताल, थे लुप्त हो रहे दिशा-काल।
लीला का स्पन्दित आह्लाद, वह प्रभापुंज चितिमय प्रसाद;
आनन्दपूर्ण ताण्डव सुन्दर, झरते थे उज्ज्वल श्रम सीकर,
बनते तारा, हिमकर दिनकर, उड़ रहे धूलि कण से भूधर,
संहार सृजन से युगल पाद,गतिशील अनाहद हुआ नाद।

उस शक्ति शरीरी का प्रकाश, सब शाप पाप का कर विनाश-
नर्तन में निरत, प्रकृति गल कर, उस कान्ति सिन्धु में घुलमिलकर,
अपना स्वरूप धरती सुन्दर, कमनीय बना था भीषणतर;
हीरक गिरि पर विद्युत् विलास, उल्लसित महा हिमधवल हास।[२१]

आनन्दपूर्ण नर्तित शंकर के शरीर से गिरने वाले स्वेद कणों से चन्द्र, सूर्य एवं तारों का निर्माण, चरण-चाप से भूधरों का धूलिवत् उड़ना, असंख्य ब्रह्माण्डों का अन्तरिक्ष में बिखर जाना, विद्युत्-कटाक्ष से सृष्टि का कम्पायमान होना, शिव की शाश्वत सत्ता की प्रकाशमयता एवं शक्तिमान की विराटता का उदात्त बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। उक्त बिम्ब के विषय में डॉ0 रमाशंकर तिवारी की टिप्पणी है-'लेकिन, ऐन्द्रियता से बढ़कर इस विराट् बिम्ब का महत्त्व इस बात में सन्निहित है कि दर्शन की सूखी अस्थियों में रक्त-मज्जा का संचार कर, कवि ने सृष्टि के सृजन एवं संहार का ऐसा चित्र प्रस्तुत किया है जिसमें आस्तिक बुद्धि वाला पाठक जल्द असहमत नहीं होगा और हम भी यह सोचने के लिए तत्पर हो जाते हैं कि यदि चेतन शिव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्व से सृष्टि का आविर्भाव अथवा तिरोभाव होता है, तो वह ऐसी ही उल्लासपूर्ण नृत्य शैली से होता होगा जिसमें कमनीयता एवं भीषणता का प्रभावकारी ग्रन्थिबन्धन रहता होगा।'[22]

कवि ने हिमालय का अत्यन्त चित्ताकर्षक एवं प्रभावशाली वर्णन किया है। हिमालय की शैल-श्रेणियाँ तुषार के किरीट तथा सन्ध्या-घनमाला की रंग बिरंगी छींट पहने हुए है। डॉ0 रमेश कुन्तल मेघ का कहना है- 'इस भाँति कवि ने अनन्त रमणीयता के सौन्दर्योदात्त बोध को स्वप्न एवं हास एवं गान के द्वारा अभिव्यक्त किया है। यह विश्व सौन्दर्य का उल्लास भाव है।'[23] प्रसाद-काव्य में सौन्दर्योदात्त बिम्बों की न्यूनता नहीं है। लज्जा एक महत्तर 'सौन्दर्य' का अभिधान करती हुई कहती है-

उज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमें अनन्त अभिलाषा के सपने सब जगते रहते हैं।'[24]

अपने औदात्य के आधार पर श्रद्धा 'कामायनी' की प्रमुख नायिका के रूप में आई है। वह अपनी महनीयता से नायक को भी दबा देती है। उसके सौन्दर्यांकन में कवि ने उदात्त उपमाओं का प्रयोग किया है। उसके अन्तर्बाह्य दोनों वैभव को प्रकट करता है-

नित्य यौवन छवि से ही दीप्त विश्व की करुण कामना मूर्ति,
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।[25]

'कामायनी' के उदात्त बिम्ब भी प्राय: वस्तु-प्रधान ही हैं। पर प्रसाद ने एक नाटकीय पृष्ठभूमि देकर उनकी व्यंजकता को और अधिक बढ़ा दिया है। मृत्यु की भयानकता और विराटता के लिए यह अछूती उपमा देखिए-

अन्धकार के अट्टहास-सी
मुखरित सतत, चिरन्तन सत्य।'[२६]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आलोच्य कवियों के काव्य में उदात्त बिम्बों की सफल नियोजना हुई है। प्रकृति की विराटता के भव्य बिम्ब अंकित हुए हैं। हिमालय, मेघ, ऋतुओं, समुद्र आदि के बिम्बों के साथ-साथ मानवीय सौन्दर्य के उदात्त बिम्ब बनाने में भी ये कवि सिद्धहस्त हैं। इनकी नायिकायें (शकुन्तला, श्रद्धा) सौन्दर्यलुब्ध हैं, विरह की अग्नि में जलकर कंचन बनी हैं, त्याग, समर्पण, सेवा, तपस्या आदि भावों से सर्वथा आपूरित रही हैं। यही कारण है कि इनके सौन्दर्य चित्र मानस में मात्र कौंध कर गायब नहीं हो जाते हैं अपितु सहृदय के मानस एवं चित्त पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ जाते हैं।

पाद-टिप्पणियाँ

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली-8 (कालिदास की लालित्य योजना), पृ0-125
2. दि पोइटिक इमेज, पृ0-17
3. कामायनी महाकाव्य का दर्शन: डॉ0 रमाशंकर तिवारी, पृ0-408 से उद्धृत
4. चिन्तामणि,भाग-1, पृष्ठ-292

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5. काव्यबिम्ब, पृ0-5
6. काव्यशास्त्र, पृ0-252
7. आधुनिक कविता में बिम्बविधान, पृ0-232
8. आस्था के चरण, पृ0-176
9. साहित्यदर्पण, 10/50
10. साहित्यदर्पण, 10/50-51
11. चिन्तामणि,भाग-1, पृ0-45
12. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, पृ0-5
13. काव्य बिम्ब, पृ0-9
14. उदात्त के विषय में ,पृ0-41
15. पाश्चात्य काव्यशास्त्र: डॉ0 देवेन्द्र नाथ शर्मा, पृ0-83
16. उदात्त के विषय में, पृ0-68
17. रघुवंश, 4/32
18. कुमारसम्भवम्, 5/36-37
19. उत्तरमेघ/46
20. सम्पूर्ण काव्य (लहर), पृ0-124
21. वही (कामायनी), पृ0-89
22. कामायनी: प्रेरणा और परिपाक, पृ0-421
23. कामायनी और उसकी मनस्सौन्दर्य एवं सामाजिक भूमिका, पृ0-66
24. सम्पूर्ण काव्य (कामायनी), पृ0-37
25. वही, पृ0-21
26. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बबिधान: डॉ0 केदारनाथ सिंह, पृ0-255

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"स्वामीदयानन्दस्य वेदार्थदिक् तदाधारश्च"

जितेन्द्र कुमारः[1]

पुराकालतो वेदस्याध्याययनमर्थान्वेषणञ्च मुनिभिः विद्वद्भिश्चाजस्रमद्य यावत् क्रियते। वेदभाष्यपरम्परायां बंहवो वेदज्ञाः स्व स्वभाष्यैः वेदार्थं प्रतिपेदिरे इदानीमेकोनकविंशतेः वेद भाष्यकराणां नामान्युपलभ्यन्ते तेषु वेदभाष्येषु विंशतितमशताब्द्यामन्यतं ऋषिभिः दयानन्द कॉलेज, प्रशस्यतमञ्च भाष्यं स्वामिनो दयानन्दस्य वेदभाष्यम् । आचार्योऽयं पूर्वाचार्याणामाधारं स्वीकृत्याग्रेसरति, अथ चाधुनिकसमाजेऽपि बहूपयोगिनी व्यावहारिकीं च वेदव्याख्यां प्रस्तौति। केषुचित् स्थलेषु भाष्यकारोऽयं पूर्वभाष्यकाराणां सायणादीनां मन्तव्यानि सप्रमाणं सोदाहरणं खण्डयति । यतो हि ताः व्याख्याः विरोधाभासत्वेन, कर्मकाण्डमात्रत्वेन, कालदोषप्रसङ्गत्वेन खप्रतिज्ञाभङ्गत्वेन च दूषिताः कलुषिताश्च तस्मात्ता अश्रद्धेयाः । स्वामिदयानन्दः आचार्ययास्क प्रमुखाधाररूपेणाङ्गीकृत्य स्वमन्तव्यानां वेदभाष्ये दाक्षिण्येन प्रतिपादयाम्बभूव। तथापि बहव एतादृशाः मन्त्राः सन्ति येषां मन्त्राणां भाष्यमाचार्ययास्केनापि निजे निरुक्तनाम्नि ग्रन्थे विहितं किन्तु स्वामिना तेषामेव मन्त्राणां तेभ्योऽतिरिक्तो भिन्नो वार्थः प्रस्तुतः परन्तु तस्य वेदभाष्यस्य पद्धतिः सैव वर्त्तते या ऋषिभिर्मुनिभिचानुमोदिताभिनन्दिता च । स्वामिदयानन्दस्य वैशिष्ट्यमिदं विद्यते यदसौ भाष्यकारः व्यावहारिकमर्थमधिकं विदधाति । स ह्रीश्वरस्य सर्वपदार्थानां कर्तृत्त्वं स्वीकृत्य तेषां प्रयोजनं प्रमुखत्वेन प्रतिपादयति। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायां स्वामिदयानन्दः प्रतिजानीते - "अत्र चत्वारो वेदविषयाः सन्ति, विज्ञानकर्मोपासनाज्ञानकाण्डभेदात्। तत्रादिमो विज्ञानविषयो हि सर्वेभ्यो मुख्योऽस्ति तस्य परमेश्वरादारभ्य तृणपर्य्यन्तपदार्थेषु साक्षाद्बोधान्वयत्वात् । तत्रापीश्वरानुभवो मुख्योऽस्ति। कुतः ? अत्रैव सर्वेषां वेदानां तात्पर्यमस्तीश्वरस्य खलु सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यः प्रधानत्वात्।[2]

स्वामिदयानन्दस्यैषा सुदृढ़ा बलवती च धारणा विद्यते यद् वेदस्योभे प्रयोजने स्तः । एतयोर्मध्ये अन्यानि सर्वाणि प्रयोजनानि समाहितानि सन्ति । प्रमाणरूपेणोपनिषद्वाक्यमुद्धरति स्वामी-"(तत्रापरा.) वेदेषु द्वे विद्ये वर्तेते, अपरा परा चेति । तत्र यया पृथिवीतृणमारभ्यप्रकृतिपर्य्यन्तानां पदार्थानां ज्ञानेन यथावदुपकारग्रहणं क्रियते सा अपरोच्यते। यया चादृश्यादि विशेषणयुक्तं सर्वशक्तिमद्ब्रह्म विज्ञायते सा परा अर्थादपरायाः सकाशाद् अत्युत्कृष्टास्तीति वेद्यम्"।[3] अनेनोपनिषदुद्धरणेन विशदं प्रतिभाति यत् स्वामिमहोदयस्य वेदभाष्यप्रसङ्गे व्यावहारिक्याः पारमार्थिक्याश्च व्याख्यायाः पूर्वपीठिकात्वेन वाक्यमिदं पुष्णाति प्रमाणयति च। व्यावहारिकीव्याख्यायां कृत्स्नस्य जगतः पदार्थानां, गुणानां, ज्ञानं, प्रयोगः, परिचालनं, निर्माणञ्च सर्वं समागतम्। इतोऽतिरिक्तं नास्ति किञ्चित् वेद्यं वस्तुजातमिह। तथा च अपरः ईश्वरः यस्य ज्ञाते सति न किमप्यवशिष्टं भवति परिज्ञातव्यम्। उपनिषदपि तथ्यमिदं सत्यापयति। ईश्वरज्ञानेन सर्वज्ञानं स्वत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं भवति - ''भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥'' मुण्डकोपनिषद् - (2.2.8)

स्वामिमहोदयस्य वेदभाष्यदिक् सप्रमाणा, सार्थवती, सोद्देश्या, वेदानुकूला च वर्त्तते। तेषां प्रामाणनि वैदिकसाहित्यसमन्वितानि सन्ति। तेषामुद्घोषणा वर्त्तते यत् - नाहं किमपि नूतनं लिखामि, परं पूर्वाचार्यैः या दिक् प्रदर्शिता तामेव सरणिम् अनुसृत्य स्ववेदभाष्यं लेखिष्यामि।[1] अत्र अधोलिखितेनोद्धरणेन अवधेयं वर्त्तते येषां ग्रन्थानां मन्तव्याः प्रकाशं नेतुं स्वामिमहोदयेन घोषणा कृता ते सर्वे ग्रन्थाः आर्षाः प्रामाणिकाश्च विद्यन्ते। एते सर्वे ग्रन्थाः सर्वैः वेदज्ञैः वेदव्याख्याभिश्च भाष्यकारैश्च प्रामाणिकरूपेणोररीक्रियन्ते। एतेन इदमपि स्पष्टं यत् ब्राह्मणग्रन्थान् वेदनाम्नाऽपि नैव सम्बोधयति आचार्यः। ते हि वेदव्याख्यानग्रन्थाः सन्ति न तु वेदाः।[2]

स्वामिदयानन्दः मध्यवर्त्तिनां पूर्वाचार्याणां सायणोव्वटमहीधरप्रभृतीनां वेदभाष्यकाराणां विषये स्वाभिमतं सप्रमाणेनोल्लिलेख - ''यानि रावणोव्वट - सायणमहीधरादिभिर्वेदार्थविरुद्धानि भाष्याणि कृतानि, यानि चैतदनुसारेण इङ्गलेण्डशर्मण्यदेशोत्पन्नैर्यूरोपखण्डदेशनिवासिभिः स्वदेशभाषया स्वल्पानि व्याख्यानानि कृतानि, तथैवार्य्यावर्त्तदेशस्थैः कैश्चित्तदनुसारेण प्राकृतभाषया व्याख्यानानि कृतानि वा क्रियन्ते च तानि सर्वाण्यनर्थगर्भाणि सन्तीति सज्जनानां हृदयेषु यथावत्-प्रकाशो भविष्यति। टीकानामधिकदोषप्रसिद्धया त्यागश्च''[3]

स्वामिमहोदयेन उपर्युक्तप्रकरणे आचार्यसायणमहीधरयोः भाष्ययोः उद्धरणानि प्रदर्श्य तेषां सप्रमाणं विवेचनं यथायथं विहितम्। इह सायणाचार्यस्योदाहरणपुरस्सरमेकस्यमन्त्रस्यालोचनामुपस्थाप्यते महीधराचार्यस्य तु नात्र प्रदर्शनमर्हति अश्लीलत्वात्। आचार्य सायणास्यावधारणा वेदानां विषये ''सर्वे वेदाः क्रियाकाण्डतत्पराः सन्ति'' इति वर्तते। स्वामिदयानन्दः एनां धारणामपाकरोति। यतो हि एतेषां मते ''वेदानां सर्वविद्यान्वितत्वात्'' सर्वाः विद्याः वेदेषूपलभ्यन्ते। स्वामिचरणैर्विवेचितमेकं वेदमन्त्रमत्र प्रस्तौमि।

''(इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निम्) अस्य मन्त्रस्यार्थोप्यन्यथैव सायणेन वर्णितः। तद्यथा''दइअ तेन अत्र इन्द्रशब्दो विशेष्यतया गृहीतो मित्रादीनि च विशेषणतया। अत्र खलु विशेष्योऽग्निशब्द इन्द्रादीनां विशेषणानां सङ्गेऽन्वितो भूत्वा, पुनः स एव सद्वस्तुब्रह्मविशेषणं भवति। एवमेव विशेष्यं प्रति विशेषणं पुनः पुनः अन्वितं भवतीति, न चैव विशेषणम्। एवमेव यत्र शतं सहस्रं वैकस्य विशेष्यस्य विशेषणानि भवेयुः तत्र विशेष्यस्य पुनः पुनरुच्चारणं भवति, विशेषणस्यैकवारमेवेति। तथैवात्र मन्त्रे परमेश्वरेणाग्निशब्दो द्विरुच्चारितो विशेष्यविशेषणाभिप्रायत्वात्। इदं सायणाचार्येण नैव बुद्धमतस्तस्य भ्रान्तिरेव जातेति वेद्यम्। निरुक्तकारेणाप्यग्निशब्दो विशेष्यविशेषणत्वेन एव वर्णितः। तद्यथा- ''इममेवाग्निं महान्तमात्मानमेकमात्मानं बहुधा मेधाविनो वदतीन्द्रं मित्रं वरुणमित्यादि''॥ (निरुक्त- 7.18) स चैकस्य सद्वस्तुनो ब्रह्मणो नामास्ति। तस्मादग्न्यादीनीश्वरस्य नामानि सन्तीति बोध्यम्। एवमेव सायणाचार्यकृतभाष्यदोषा बहवः सन्ति''॥[4]

स्वामिमहोदयस्य विवेचनेन ज्ञायते यत् इन्द्राग्निमित्रवरुणादीनि ईश्वरस्यापि नामानि सन्ति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमेतादृशं डिण्डिमघोषं न केऽप्यन्यः भाष्यकारः कथमपि कर्त्तुं शशाक किन्तु बहुषु स्थलेषु सर्वे भाष्यकाराः एभिः पदैः ईश्वरमपि विदाञ्चक्रुः। महीधराचार्यस्य भाष्ये महर्षिणा याः अश्लीलताः संकेतिता दिग्दर्शनमप्यत्र नावश्यकम्। एतत् सर्वमन्वीक्ष्य स्वामिना एतेषां भाष्यकाराणां व्याख्यानं नैव श्रद्धेयमिति भणितम्।

-"नैवैतेषां व्याख्यानानामाश्रयं कर्त्तुमार्य्याणां लेशमात्रोऽपि योग्यता दृश्यते। तदाश्रयेण वेदानां सत्यार्थस्य हानिरनर्थप्रकाशकश्च। तस्मात्तद्व्याख्यानेषु सत्याबुद्धिः केनापि नैव कर्त्तव्या। किन्तु वेदाः सर्वविद्याभिः पूर्णाः सन्ति। नैव किञ्चित्तेषु मिथ्यात्वमस्ति"।।[2]

प्रायः वेदभाष्यकारैः याज्ञिकप्रक्रियायां वेदमन्त्राणामर्था अन्यूनीकृताः। अनल्पीयस्सु स्थलेषु व्याख्याकाराः यत्र - तत्र मन्त्राणामध्यात्मिकानप्यर्थान् चक्रुः। आचार्ययास्कोऽपि वेदमन्त्राणाम् आध्यात्मिकाधिदैविकादिव्याख्याः अङ्गीचकार। असौ तु सर्वेषु वेदमन्त्रेषु आध्यात्मिकादयः त्रिविधाः प्रक्रियाः मन्यते, तद्यथा - "अर्थं वाचः पुष्पफलमाह याज्ञदैवते पुष्पफले देवताऽध्यात्मे वा"। प्रब्रुवन् यास्कः कृत्स्नाः देववाण्याः अधियज्ञाधिदैविकाध्यात्मिकांश्चार्यान् वाचः पुष्पं फलस्थानीयम् इति कृत्वा उररीकरोति। अस्य निरुक्तप्रकरणस्याभिप्रायोऽयं स्वमतेनोपस्थापयामि, वार्तेयं न तथ्यं सङ्गच्छते परं पञ्चशतमेकसहस्रसंवत्सरं प्राग् आचार्यस्कन्दस्वामी लिखति यत् यास्कस्य मते प्रतिवेदमन्त्रं तिसृषु प्रक्रियासु अर्थः प्रभवति। यथा - "सर्वदर्शनेषु च सर्वे मन्त्रा योजनीयाः। कुतः? स्वयमेव भाष्यकारेण सर्वमन्त्राणां त्रिप्रकारस्य विषयस्य प्रदर्शनाय "अर्थ वाचः पुष्पफलमाह" इति यज्ञादीनां पुष्पफलत्वेन प्रतिज्ञानात्"।[2]

स्वामिदयानन्दस्यापि त्रिविधप्रक्रियाविषये यदभिमतं तदत्र प्रस्तौमि। "अत्र वेदभाष्ये कर्मकाण्डस्य वर्णनं शब्दार्थतः करिष्यते परन्त्वेतैर्वेदमन्त्रैः कर्मकाण्डविनियोजितैर्यत्र - यत्राग्निहोत्राद्यश्वमेधान्ते यद्यत् कर्त्तव्यं तत्तदत्र विस्तरतो न वर्णयिष्ते। कुतः? कर्मकाण्डानुष्ठानस्यैतरेयशतपथब्राचणमीमांसाश्रौतसूत्रादिषु यथार्थं विनियोजितत्वात्। पुनः तत्कथनेनानृषिकृतग्रन्थवत् पुनरुक्तपिष्टपेषणदोषापत्तेश्चेति। तस्माद् युक्तिसिद्धो वेदादिप्रमाणानुकूलो मन्त्रार्थानुसृतस्तदुक्तोऽपि विनियोगो ग्रहीतुं योग्योऽस्ति। .....अथात्र यस्य-यस्य मन्त्रस्य पारमार्थिकव्यावहारिकयोर्द्वयोरर्थयोः श्लेषाङ्करादिना सप्रमाणः सम्भवोऽस्ति, तस्य द्वौ द्वावर्थौ विधास्येते, नैवेश्वरस्यैकस्मिन्नपि मन्त्रार्थे अत्यन्तं त्यागो भवति"।[3]

अर्थात् पदार्थेषु याज्ञिकार्थाणां निर्देशमात्रं स्थास्यति। सर्वे याज्ञिकार्थान् न प्रदर्शयिष्यामः। केषाञ्चिदपि मन्त्राणामर्थेषु परमात्मनः परित्यागो न कदापि भवितुमर्हति। प्रत्येकं मन्त्रस्यार्थः परमेश्वरपरकोऽपि भविष्यतीति स्वामिवर्यस्य विशदं मन्तव्यमस्ति। अनेन स्पष्टमाभाति यत् स्वामिना पूर्ववर्त्तिवेदभाष्यकाराणां सुष्ठुरूपेणाध्ययनमर्थाणामन्वीक्षणं विश्लेषणं विवेचनञ्च विहितम्। एतावदेव न अपितु यत्र-यत्र सप्रमाणं समीक्षणमपि वेदार्थं यथायथं परिज्ञातुं प्रस्तुतं स्थालीपुलाकन्यायात्। अन्ये वेदभाष्यकाराः वेदानां पारम्परिकमर्थमेव चक्रुः परन्तु स्वामिमहाभागः पारम्परिकमर्थं तावन्न जग्राह यावदसौ अर्थः युक्तियुक्तो व्यावहारिको निरुक्तब्राह्मणारण्यकोपनिषदादिप्रामाणिकग्रन्था-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नुमोदितो न प्रतिभासते। अन्यथा पदानां वेदमन्त्रेष्वागतानामर्थाः यौगिका इति एव व्याख्याञ्चकार।

अनया पद्धत्या भाष्यमिदं प्राचीनवैदिकग्रन्थानां सन्निकटतामधिकं भजते। वेदस्य शब्दानां विषये स्वामिमहोदयस्य सुव्यक्ता घोषणा वर्त्तते यत् वैदिकशब्दा उभयविधा यौगिकाः योगरूढाश्च। न रूढयः। मन्मतेऽपि एकोऽपि वेदभाष्यकारः एतादृशो न प्रतिभाति यो वैदिकान्-शब्दान्-रूढ़ीनङ्गीकरोति। अतः स्वामिमहाभागस्य मतं समीचीनं दृश्यते। स्वामिदयानन्देतरवेभाष्यकारैः बहुधा वैदिकशब्दाः त्रिप्रकारकाः यौगिकाः योगरूढाः रूढयश्चेति प्रतिपादिताः। रूढ्यर्थकरणे सति वेदाः पौरुषयाः कालसीम्नः प्रतिबद्धाः भवन्ति, एतन्न न्यायोपेतम्। एतादृश्यामवस्थायां वेदाः सार्वदेशिकाः, सार्वकालिकाः अपौरुषेयाश्च कथं भवितुमर्हन्ति?

अस्मिन् त्रिविधप्रक्रियाविषये दुर्गाचार्यस्य निरुक्तटीकायां प्रस्फुटो आधारः प्राप्यते तत्राचार्यदुर्गो भाषते- विनियोगभेदेन मन्त्राणामर्थेषु वैविध्यं भविष्यति। एते मन्त्राः वक्तुरभिप्रायभेदेन भिन्नतां प्राप्नुवन्ति। अस्य मन्त्रस्य इयानेवार्थः इति नैवं वक्तुं शक्यते। एते मन्त्राः महदर्थैः समविन्ताः सन्ति। ते हि महता प्रयत्नेन, अत्यन्तदुष्परिज्ञानेन, विद्यया योगादिभिश्च ज्ञेयाः। यथा-अश्वः अश्वारोहभेदेन तीव्रं तीव्रतरञ्चाधिगच्छति, सुष्ठु सुष्ठुतरञ्च धावति तथा वक्ता यावानधिकयोग्यः तपस्वी च भविष्यति तथैव वेदार्थेनापि तावानेवाधिकः साधूनां साधुतराणामर्थाणां च प्रकाशो भविष्यति। एवं प्रकारेण निरुक्तशास्त्रे लक्षणप्रदर्शयितुं संकेतमात्राय एकैकस्य शब्दस्य निर्वचनं प्रदर्शयामास। क्वचिद् - क्वचिदाध्यात्मिकाधिदैविकाधियज्ञानामर्थान् बोधयितुं पदानां निर्वचनमपि चकार। अतः एषु मन्त्रेषु यावन्तोऽर्था उपपन्नाः स्युः ते आधिदैविकाधियज्ञाध्यात्मिकादयः भवेयुः तेषां सर्वेषां योजनं करणीयम्। नात्र दोषावसरः लवलेशोऽपि।[2]

आचार्ययास्कानुसारेणापि सर्वाणिनामपदानि धातुजानि भवन्ति। सर्वेषां नैरुक्तानामपि अयमेव सिद्धान्तः। एषा मान्यता बद्धपरिकराः दृश्यते।[3] पतञ्जलिमुनिरपि महाभाष्ये इदमेव स्वीकरोति।[4] अनेन ज्ञायते यत् स्वामिदयानन्दस्य उपर्युक्ता मान्यता यास्कपतञ्जलिप्रभृतिभिः ऋषिभिरनुमोदिताऽभिनन्दिता वेदानुकूला च वर्त्तते। स्वामिना यदुक्तं तत् सर्वं पूर्वाचार्यैः वेदव्याख्याकारैश्च परिपुष्टमाभाति।

वेदार्थमवगन्तुं वैदिकभाषापरिज्ञानं परमावश्यकं वर्त्तते। लौकिकभाषाज्ञानात् वैदिकभाषाज्ञानं न कदापि भवितुमर्हति। वैदिकशब्दाः लौकिकशब्देभ्यः भिन्नार्थका अपि भवन्ति। वार्त्तेयं सततं निजहृदि निधायावधेया विद्वद्भिः। लौकिकवैदिकशब्दयोः भेदो महाभाष्यकारपतञ्जलिमुनिः महाभाष्यस्यारम्भे प्रदर्शयाञ्चकार ''केषां शब्दानाम्? लौकिकानां वैदिकानाञ्च'' इतोप्यग्रे - ''नैगमरूढिभवं हि साधु। नैगमाश्च रूढिभवाश्च''। इत्युक्त्वा लौकिकवैदिकशब्दयोः भिन्नत्वमभिव्यञ्जितम्। अर्थात् नैगमः वेदस्य शब्दाः रूढयो न भवन्तीति तेषां मतं निश्चप्रचम्। वैदिकनिघण्टुकोषे ''कण्वशब्दः'' मेधावी अर्थात् बुद्धिमतो नाम परन्तु बहवो जना एव नापितु वेदभाष्यकाराः अपि ''कण्व'' पदस्यार्थः कश्चिदृषिरिति चक्रुः। ''अहि'' शब्दः वेदे मेघवाचकः ''पुरीष शब्दः निघण्टुकोषे जलवाचकः किन्तु लौकिकभाषायामहिः सर्पवाचकः तथा पुरीष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलवाचकः प्रसिद्धः। निघण्टौ कण्व-वेन-उशिक्-गृत्सादयः वेदे मेधावी नामसुपठिताः परन्तु लोके एते संज्ञावाचिनः शब्दाः सन्ति। कुरवः'' ऋत्विक्नामसु वर्त्तते कुरुवंशोत्पन्नाः राजानः न सन्ति। ''उशिक्'' कर्मनामसु पठितम्। नश् धातुः वेदे व्याप्त्यर्थबोधकः लोके च विनाशार्थे विद्यते।

स्वामिदयानन्दः तामेव सरणिमनुसृत्य स्ववेदभाष्यं प्रणीतवान्। तेषां मन्तव्यमस्ति वेदे लौकिकानां पुरुषाणामृषीणां, मुनीनां, पूर्वजानां यानि नामान्युपलभ्यन्ते तानि सर्वाणि नामानि वेदाल्लोके प्रसिद्धानि जातानि न तु लोकस्य नामानि वेदे प्राप्नुवन्ति।

''सर्वेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।।'' मनुस्मृति - (1.21)

उपर्युक्तेषु प्रमाणेषु स्वामिमहाभागस्य विश्वासो बहु वर्त्तते। एतेषां वाक्यानामाधारं मत्वैव महर्षिणा स्ववेदभाष्यस्य दिक् सुनिश्चिता। महर्षेः वेदभाष्यम् आम्नायमपौरुषेयं, सार्वकालिकं, सार्वदेशिकं सार्वभौमिकञ्च प्रमाणीकरोति।

अत्र केषाञ्चिद् भाष्यकारणां भाष्येषूपलब्धान् वैदिकपदानां यौगिकार्थान् द्योतयन्ती एका कनिष्ठा सूची प्रस्तोतुमीहते मे मनः। अस्मात् स्पष्टीभविष्यति यत् यौगिकार्थेन विना वेदार्थः कथमपि यथायथं नैवोद्घाटितुं शक्यते।

1. अग्निः : एष परमात्मा अग्नि (अथर्व. भाष्य. - 2.1.4) सायण
   : ब्राह्मणः। (शतपथ ब्राह्मण भाष्य -1.4.2.2) सायण
2. आपः : अप् शब्दो व्याप्तिवचनः आप्नोतेः, नोदकवचनः (ऋ.भा. 1.91.1) स्कन्द
   : बहुवचनान्तोऽपशब्दोऽन्तरिक्षनामसु पठितः। (ऋ.भा. 1.52.12) स्कन्द
   : आपो वृत्तयः, अप्सु व्यापनशीलासु धीवृत्तिषु। (अथर्व. भा. 4.30.7) सायण
3. इन्द्रः : परमैश्वर्यवान् मरुद्गणः (ऋ.भा. 1.6.7) स्कन्द। पर्जन्यः (ऋ.भा. 1.164.33) सायण। परमेश्वरः (ऋ.भा. 10.92.8) सायण
4. इन्द्रम् सायण : परमैश्वर्यापेक्षं देवं, वणिजम्, वाणिज्यकर्त्तारम्। (अथर्व.भा. 3.15.1)
5. इन्द्रस्य
6. आदित्यः : परमात्मनः, परमेश्वरस्य। (ऋ.भा. 10.92.8) सायण।
7. भ्राता : परमेश्वरः। (ऋ.भा. 1.164.21) सायण।
8. वसिष्ठः : परोपकारकः। (ऋ.भा. 1.170.4) सायण।
9. रथः : सर्वस्य वासयितृतमः। (ऋ.भा. 2.9.1) सायण।
10. बभ्रुः : यज्ञः। (ऋ.भा. 2.18.1) सायण।
    : भर्त्ता सर्वस्य। (ऋ.भा. 2.33.5) सायण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11. वायवः : गन्तारः। (ऋ.भा. 10.46.9) सायण।
12. मनुः : मनुष्यो यष्टा माननीयो राजा वा। (ऋ.भा. 10.51.5) सायण।
13. बृहस्पते : परमेश्वर। (ऋ.भा. 10.98.4) सायण।
14. इन्द्रतमा : सर्वस्येश्वरतमा। अङ्गिरस्तमा = गन्तृतमा। (ऋ.भा. 7.79.3) सायण।

अनया संक्षिप्ततालिकाया ज्ञायते यत् सायणाचार्यप्रभृतिवेदभाष्यकारा अपि यौगिकार्थं विना स्वभाष्यं कर्त्तुन्न शेकुः। यद्यपि एतेषां भाष्यकाराणाम् एतादृशी काचन उद्घोषणा नासीत् तथापि अल्पीयस्सु स्थलेषु एव ते पदानां यौगिकार्थान् प्रदर्शयामासुः। मन्मते तु स्वामिदयानन्देनाचार्यसायणस्य वेदभाष्यादपि यौगिकपद्धतिः गृहीता इति स्वीकारणेऽपि नास्ति काचिद् विप्रतिपत्तिः। यतो हि पूर्ववर्तिभ्यः आचार्येभ्यः परिवर्त्तिनः आचार्याः गृह्णन्त्येव। अयमपि स्वामिनः गुण एव वर्त्तते न तु दोषः। अत एव स्वामिमहोदयः स्वस्मिन् ग्रन्थे यां प्रतिज्ञामकरोत् सा वेदभाष्यादपि यौगिकपद्धतिः गृहीता इति स्वीकरणेऽपि नास्ति काचिद् विप्रतिपत्तिः। यतो हि पूर्वर्त्तिभ्यः आचार्येभ्यः परिवर्त्तिनः आचार्याः गृह्णन्त्येव। अयमपि स्वामिनः गुण एव वर्त्तते न तु दोषः। अत एव स्वामिमहोदयः स्वस्मिन् ग्रन्थे यां प्रतिज्ञामकरोत् सा वेदभाष्यार्थं यथार्थमर्थमवगन्तुमनितरसाधारणमहत्त्वञ्च प्रतिपादयितुमत्यन्तमावश्यकी चासीत्। साम्प्रतमपि तस्या आवश्यकता तथैव वर्त्तते यथा तदाऽसीत्। अथ चाग्रेऽपि तत् वेदार्थं वेदितुं स्थास्यति। इयमेव पूर्वाचार्याणामृषिणां परम्परा आसीत्। तां परम्परामनुवर्त्य स्वामिनाऽपि स्ववेदव्याख्यानं प्रणीतम्। न कश्चिद् लवलेशोऽपि सन्दिग्धावसरोऽत्र दृश्यते।

स्वामिमहाभागेन जडपदार्थानां विषये मन्त्रेषु मध्यमपुरुषक्रियास्थाने प्रथमपुरुषक्रियाः सर्वत्र वेदभाष्ये व्यत्ययेन विहिताः। अस्य नियमस्यापि घोषणा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायाम् ऋषिणा सुव्यक्ता प्रागेव। तस्मान्नात्रास्ति कश्चनाक्षेपविषयः। अस्माद् विपरीते तु कृते स्यात् तत्र आक्षेपस्यावसरः।

''व्याकरणरीत्या प्रथममध्यमोत्तमपुरुषाः क्रमेण भवन्ति। तत्र जडपदार्थेषु प्रथमपुरुष एव, चेतनेषु मध्यमोत्तमौ च। अयं लौकिकवैदिकशब्दयोः सार्वत्रिको नियमः। परन्तु वैदिकव्यवहारे जडेऽपि प्रत्यक्षे मध्यमपुरुषप्रयोगाः सन्ति। तत्रेदं बोध्यं जडानां पदार्थानामुपकारार्थं प्रत्यक्षकरणमात्रमेव प्रयोजनमिति। इमं नियममबुद्ध्वा वेदभाष्यकारैः सायणाचार्यादिभिस्तदनुसारतया स्वदेशभाषया अनुवादकारकैर्यूरोपारव्यदेशनिवास्यादिभिर्मनुष्यैर्वेदेषु जडपदार्थानां पूजाऽस्तीति वेदार्थोऽन्यथैव वर्णितः।''[1]

तदिमं नियमं स्वामी स्ववेदभाष्ये सर्वथा सर्वदा चानुकुर्वन् दृष्टिपथमायाति। यजुर्वेदीय प्रथमाध्यायस्य द्वितीये मन्त्रे ''वसोः पवित्रमसि .....[2]।'' इत्यत्र ''असि'' इत्यस्य पदस्य ''भवति'' इत्यर्थो विहितः। अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः इत्युक्त्वा महर्षिरसौ निजमर्थं चकार। स्वामिमहोदयेस्यैषा सुदृढ़ा मान्यता वर्त्तते यत् जडपदार्थस्योपासना न कदापि कथमपि कर्त्तव्या। यतो हि जडपदार्था अस्मभ्यं सन्ति न तु वयं जडपदार्थेभ्यः। जडपदार्थाः हि अस्माकमेव सन्ति। तेभ्यः उपयोगोऽस्माभिः गृहीतव्यः सुखञ्च प्राप्तव्यम्। ईश्वरादतिरिच्य कदापि कोऽपि पुरुषो महापुरुषो वा जडपदार्थो उपासरनीयो न भवति। ईश्वरस्तु निराकारः, निर्विकारः, देहरहितः,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्व्रणः, स्नायुहीनः, शुद्धः, पूतः, सृष्टिकर्त्ता च। स हि स्थावरजडजङ्गमस्य कृत्स्नस्यापि निर्माता वर्त्तते। स एव सर्वैः मनुष्यैर्विद्वद्भिश्च पूजनीयः।[3]

नैकस्थलेषु स्वामिदयानन्देन वेदमन्त्राणां या देवता यजुः सर्वानुक्रमण्यां विद्यते सा देवता परिवर्त्तिता। साऽपि न कथमप्यनुपयुक्ता। यतो हि पूर्वेषामाचार्याणामपि एषा पद्धतिः विलोक्यते। सैव सरणिः स्वामिनाऽपि अनुसृता। तद्यथा - ''इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ .....।''[4] स्वामी दयानन्दः सवितारम् अस्य मन्त्रस्य देवतामाह। परं यजुः सर्वानुक्रमणीकारेण तु शाखा वायुरिन्द्रश्चेति देवता निर्दिष्टा। अस्मिन् मन्त्रे सर्वानुक्रमणीकारेण शाखादयो देवताः उक्तास्ता आचार्यदयानन्दवत् दुर्गस्कन्दयोरप्यनभिमताः। यथा ''तद्येऽनादिष्टदेवता मन्त्रास्तेषु देवतोपपरीक्षा'' इत्युपक्रम्य ''यद्देवतः स यज्ञो वा यज्ञाङ्गं वा तद्देवता भवन्ति''। (निरुक्त - 7.4) यास्केनोच्यते। अत्र दुर्गो लिखति - ''यद्देवतः स यज्ञः यद्देवतं प्रधानं हविः, तद्यथा प्रकतावैन्द्रं सान्नाय्यं माहेन्द्रं वा, तत्संस्कारपरा ''इषे त्वादयः'' (यजु. 1.1) तेऽनाविष्कृत देवतालिङ्गा ऐन्द्रा एव भवन्ति माहेन्द्रा वा''।।

स्कन्दोऽपि तृतीयभागे संकेतयति - ''यद्देवत इति'' ऐन्द्रं पयोऽमावास्यायाम्'' (तै.सं. 2.5.3.4) इति श्रूयते ''माहेन्द्रं वा''। इति तच्छेषभूताः शाखाछेदनादिषु सान्नाय्यसंस्कारत्वेन विनियुक्ताः ''इषे त्वादयस्तद्देवत्याः'' अत एवमन्यत्रापि देवताभेदः प्राचीनर्षिमुनिसम्मत एव। यास्कादिभिः परमर्षिभिर्बृहददेवतासर्वानुक्रमण्यादिनिर्दिष्ट देवतावादमनपेक्ष्य भिन्नदेवतावादस्यप्रदर्शित-त्वात्। ''पारोवर्य्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्यो भवतीति'' (निरुक्त- 13.12) इत्यादिशास्त्रवचनस्याश्रयणाच्च।।

अत एव स्वामिदयानन्दस्य वेदभाष्ये देवताविषयको यो भेदो दृश्यते सोऽपि ऋषिप्रोक्तत्वात् विषयभेदत्वात् पूर्वाचायार्णां निर्देशत्वात् यास्केनोक्तत्वात् च प्रामाणिको युक्तिसङ्गतश्च। अस्मिन् विषये आचार्य उव्वटोऽपि यजुर्वेदभाष्यारम्भे लिखति-

''गुरुतस्तर्कतश्चैव तथा शातपथश्रुतेः। ऋषीन् वक्ष्यामि मन्त्राणां देवता छान्दसं च यत्''।। अत्राचार्य उव्वटोऽपि देवताविषयमधिकृत्य यजुस्सर्वानुक्रमण्या नैव प्रतिबद्धः। स तु गुरुतः तर्कतः ब्राह्मणग्रन्थात् श्रुतितो वा वदिष्यामि देवता इत्युवाच। ऋषीन् छन्दांसि च सः स्वविवेकेन पूर्वर्षिपरम्पराप्राप्तेन लेखिस्यामीति प्रतिपेदे। स्वामिमहाभागेनाऽपि एतादृश्यामवस्थायां यजुर्वेदभाष्यस्य प्रथमाध्यायस्य एकत्रिंशन्मन्त्राणां मध्ये एकोनत्रिंशन्मन्त्राः देवताभेदेन प्रतिपादिताः तदपि नायुक्तम्।

इदानीमेकतादृशमिह मन्त्रं दर्शयितुमभिलषामि यमाचार्ययास्कः यज्ञपरकत्वेन व्याचक्षे। महर्षिपतञ्जलिः स्वमहाभाष्ये शब्दविषयत्वेन निर्दिदेश। दयानन्दश्चोभयोः तयोः भाष्ययोः मिश्रणं विधाय इतोऽप्यग्रे विविधार्थं चकार। अत्र यास्कदयानन्दयोः द्वयोरर्थयोः तुलनां प्रस्तौमि।

''चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एत उक्ताः। त्रयो अस्य पादा इति- सवनानि त्रीणि द्वे शीर्षे प्रायणीयोदनीये। सप्त - हस्तासः सप्त छन्दांसि। त्रिधा बद्धस्त्रेधा बद्धो मन्त्र-ब्राह्मण-कल्पैः। वृषभो रोवीति। रोरवणमस्य सवनक्रमेण। ऋग्भिः यजुर्भिःसामभिः। यदेनमृग्भिः शंसन्ति, यजुर्भिर्यजन्ति,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामभिः स्तुवन्ति महादेव इति। एष हि महान्देवो यद्यज्ञो, मर्त्या आविवेशेति - एष हि मनुष्यानाविशति यजनाय, तस्योत्तरा भूयसे निर्वचनाय''।[1] इति यास्कः।

अथेश्वरविज्ञानमाह -

पदार्थः - ''(चत्वारि) चत्वारो वेदाः (शृङ्गा) शृङ्गाणीव (त्रयः) कर्मोपासनाज्ञानानि (अस्य) धर्मव्यवहारस्य (पादाः) पत्तव्याः (द्वे) अभ्युदयनिःश्रेयसे (शीर्षे) शिरसि इव (सप्त) पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि वा कर्मेन्द्रियाणि अन्तः करणमात्मा च (हस्तासः) हस्तवद्वर्तमानाः (अस्य) धर्मयुक्तस्य नित्यनैमित्तिकस्य (त्रिधा) श्रद्धापुरुषार्थयोगाभ्यासैः (बद्धः) (वृषभः) सुखानां वर्षणात् (रोरवीति) भृशमुपदिशति (महः) महान् पूजनीयः (देवः) स्वप्रकाशः सर्वसुखप्रदाता (मर्त्यान्) मरणधर्मान् मनुष्यादीन् (आ) समन्तात् (विवेश) व्याप्नोति''।

भावार्थः - ''हे मनुष्या अस्मिन् परमेश्वरव्याप्ते जगति यज्ञस्य चत्वारो वेदा नामाख्यातोपसर्गनिपाता विश्वतैजसप्राज्ञतुरीयधर्मार्थकाममोक्षाचेत्यादीनिशृङ्गाणि त्रीणि सवनानि त्रयः कालाः कर्मोपासनाज्ञानानि मनोवाक्छरीराणि चेत्यादीनि पदाः द्वौ व्यवहारपरमार्थौ नित्यकार्यौ शब्दात्मानावुदगायनप्रायणीयौ अध्यापकोपदेशकौ चेत्यादीनि शिरांसि गायत्र्यादिनी सप्त छन्दांसि सप्त विभक्तयः सप्त प्राणाः पञ्च कर्मेन्द्रियाणि शरीरात्मा चेत्यादयो हस्ताः त्रिषु मन्त्रब्राह्मणकल्पेषूरसि कण्ठे शिरसि श्रवणमननिदिध्यासनेषु ब्रह्मचर्य्यसुकर्मसुविचारेषु सिद्धोऽयं व्यवहारो महान् सत्कर्त्तव्यो मनुष्येषु प्रविष्टोऽस्तीति सर्वे विजानन्तु।।''[2] इति दयानन्द उवाच।

''चत्वारि'' इत्यस्य पदस्याचार्ययास्केन 'वेदा' इति अयमर्थो निर्दिष्टः। स्वामिदयानन्देन पदार्थे तु 'चत्वारो वेदा' इत्ययमेवार्थोऽनुकृतः परन्तु भावार्थे चत्वारो वेदा, नामाख्यातोपसर्गनिपाताः विश्वतैजसप्राज्ञतुरीयाः, धर्मार्थकाममोक्षाश्चेत्येतेऽतिरिक्ता अर्थाः विहिताः। आचार्ययास्केन ''त्रयो अस्य पादाः'' इत्येषां पदानां ''सवनानि त्रीणि'' इति अर्थो निगदितः। स्वामिना तु ''त्रयः'' इत्यस्य कर्मोपासनाज्ञानानि, अर्थः कृतः। भावार्थे च तेन त्रीणि सवनानि, त्रयः कालाः कर्मोपासनाज्ञानानि, मनोवाक्छरीराणि इत्यादयः अर्थाः कृताः।

उक्तरीत्यां सम्पूर्णं मन्त्रं वीक्ष्यं एवं प्रतिभाति यद् आचार्ययास्केन या पद्धतिः प्रतिपादिता तां पद्धतिमनुसृत्यैवः स्वामिना स्ववेदभाष्यं विहितम्। बहुषु स्थलेषु स्वामिना अद्यतनीये युगे यास्कप्रोक्ताः वेदमन्त्राणां संक्षेपास्पष्टार्थाः स्वभाष्ये स्पष्टीकृताः विशदीकृताश्च।

तदेवं स्वामिदयानन्दस्य वेदार्थस्य दिक् तदाधारश्च नैकैः प्रमाणैः अन्तःसाक्ष्यैश्च स्पष्टीकर्तुं मयैको लघुतरः प्रयासो विहितः। स्वामिनः वेदभाष्यविषये एतावदेव वक्तुं शक्नोति यद् भाष्यमिदं विविधार्थबोधकः, वैदिकसाहित्येनप्रमाणितः, ऋषि परम्परायाऽनुमोदितः, व्याकरणेन पुष्टः, वैदिककोषवद् व्यवहारणीयः, ज्ञानविज्ञानकर्मोपासनानां प्रसारकः, परमार्थिकव्यावहारिकयोरर्थयोरुद्घाटकश्च वर्त्तते।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाद-टिप्पणियाँ

1. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका - वेदविषयविचारप्रकरणम्। (स्वामी दयानन्दः)
2. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका - वेदविषयविचारप्रकरणम्। (स्वामी दयानन्दः)
3. पूर्वाचार्यैः कृतं प्रकाश्यते। तद्यथा- यानि पूर्वैर्देवैर्विद्वद्भिर्ब्रह्मणमारभ्य याज्ञवल्क्य वात्स्यायनजैमिन्यन्तैर्ऋषिभिश्चैतरेयशतपथादीनि भाष्याणि रचितान्यासन् तथा यानि पाणिनिपतञ्जलियास्कादिमहर्षिभिश्च वेदव्याख्यानानि वेदाङ्गाख्यानि कृतानि, एवमेव जैमिन्यादिभिर्वेदोपाङ्गाख्यानि षट्शास्त्राणि एवमुपवेदाख्यानि च रचितानि सन्ति। एतेषां संग्रहमात्रेणैव सत्योऽर्थः प्रकाश्यते। न चात्र किञ्चिदप्रमाणं नवीनं स्वेच्छया रच्यत इति। वही- भाष्यकरणशंकासमाधानादि विषयः। स्वामी दयानन्दः
4. ब्राह्मणानि तु वेदव्याख्यानान्येव सन्ति नैव वेदाख्यानीति।। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका।
5. वही - भाष्यकरणशंकासमाधानादि विषयः। स्वामी दयानन्दः
6. इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान्।
   एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।। ऋग्वेद - (2.3.22)
   ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका - भाष्यकरणशंकासमाधानादिविषयः। (स्वामी दयानन्दः)
7. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका - भाष्यभूमिकरणशंकासमाधानादिविषयः। (स्वामी दयानन्दः)
8. निरुक्त - (1.20) (आचार्ययास्कः)
9. निरुक्त - (7.5) भाग - 3 स्कन्द स्वामी। पृ. 36-37
10. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका - प्रतिज्ञाविषयः। (सवामी दयानन्दः)
11. निघण्टु की भूमिका - (स्वामी दयानन्दः)
12. तत्रैवं सति प्रतिविनियोगमस्यान्येनार्थेन भवितव्यम्। त एते वक्तुरभिप्रायवशादन्यत्वम् अपि भजन्ते मन्त्राः। न ह्येतेषु अर्थस्येयत्तावधारणमस्ति, महार्था ह्येते दुष्परिज्ञानाश्च। यथाऽश्वारोहवैशिष्ट्यादश्वः साधुः साधुतरश्च वहति, एवमेते वक्तृवैशिष्ट्यात् साधून् साधुतरांश्चार्थान् स्रवन्ति।
    तत्रैवं सति लक्षणोद्देशमात्रमेवैतस्मिञ्छास्त्रे निर्वचनमेकैकस्य क्रियते। क्वचिद् चाध्यात्मिककाधिदैवाधियज्ञोपदर्शनार्थम्। तस्मादेतेषु यावन्तोऽर्था उपपद्येरन् आधिदैवाध्यात्माधियज्ञाश्रया सर्व एव ते योज्या नात्रापराधोस्ति।। निरुक्त - 2.8 दुर्गटीका।
13. तत्र नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमचश्च।। निरुक्त - (1.12)
14. नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम्।।
    अष्टाध्यायी - (3.3.1) महाभाष्य (पतञ्जलिः)
15. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायाम्। वैदिकप्रयोगविषयः। (स्वामी दयानन्दः)
16. वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो धर्मोऽसि विश्वधाऽअसि।
    यजुर्वेद - (1.2) स्वामी दयानन्दभाष्यम्।
17. स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्।
    यजुर्वेद - (40.7) (दयानन्द भाष्यम्)
18. यजुर्वेद - (1.1) स्वामी दयानन्दः।
19. चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
    त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आ विवेश।।
    (ऋ. 4.58.3) निरुक्त - (13.1.7) (यास्काचार्यः)
20. ऋग्वेद - (4.58.3) (स्वामिदयानन्दभाष्यम्)

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद में वर्णित ओषधियाँ : समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० श्रीमती शालिनी शुक्ला
एसोसिएट प्रोफेसर संस्कृत विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोटद्वार

ओषधियों की रोगनिवारक क्षमता से हमारे पूर्वज भलीभाँति परिचित थे। ऋग्वेद में एक पूरा सूक्त 'ओषधि स0000क्त'[1] है। वेदकालीन आर्यों का जीवन वनस्पतिमय था। दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति, शृंगार प्रसाधन, उपकरण निर्माण, आहारादि में वनस्पतियों का व्यापक प्रयोग होता था। यज्ञादि में वनस्पतियों का प्रयोग सर्वविदित ही है। अनेक जनपदों के नाम वनस्पतियों के आधार पर हुये यथा वरुणावती, शिग्रु, कारस्कर, मुंजवान् आदि। प्रकृति के साहचर्य से ही तत्कालीन मनुष्यों को वनस्पतियों का ज्ञान प्राप्त था।

वैदिक वाङ्मय विशेषकर ऋग्वेद एवम् अथर्ववेद में वनस्पतियों का वर्गीकरण प्राप्त होता है। पत्र, पुष्प, फल काण्ड, विशेषताओं एवं गुण कर्मों के आधार पर वनस्पतियों को विभिन्न वर्गों[2] में स्थापित किया। सामान्य रूप से इनके चार वर्ग प्राप्त होते हैं-वनस्पति, वानस्पत्य, वीरुध् तथा ओषधि। ऋग्वेद में वानस्पत्य शब्द नहीं मिलता इसके स्थान पर वनिन्[3] शब्द प्रयुक्त हुआ है। प्रारम्भ में वनस्पतियों के दो ही विभाग रहे होंगे-वनस्पति एवं ओषधि। वनस्पति का पुनः वानस्पत्य तथा ओषधि का वीरुध् भेद हो गया।

वनस्पति शब्द का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक बड़े वृक्षों के लिए किया जाता है। यास्क[4] ने इसका अर्थ वनों का पालक अथवा स्वामी किया है। सायण ने इसी आधार पर[5] इसका अर्थ 'वनस्पतिः वनस्य पालयिता वृक्षसमूहः' किया है। अथर्ववेद में इसको सारवान वृक्ष कहा गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों[6] में वनस्पति के विषय में व्यापक प्रकाश पड़ता है। सोम को वनस्पति कहा गया है। बसन्त ऋतु में वनस्पतियाँ परिपक्व होती हैं। वनस्पतियों से रथचक्र, उलूखल आदि बनते हैं। पणिनि ने भी वनस्पति शब्द का उल्लेख किया है।

अपेक्षाकृत छोटी वनस्पतियों के लिए वानस्पत्य शब्द का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद में वानस्पत्य के स्थान पर वनिन् शब्द प्रयुक्त है। ऋग्वेद में एक स्थान पर आये वृक्ष शब्द का अर्थ सायण ने मेघ किया है। अथर्ववेद में वानस्पत्य शब्द मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में वनस्पति विकार के अर्थ में वानस्पत्य शब्द का उल्लेख मिलता है।

वीरुध् शब्द ऋग्वेद[7] में अनेक स्थानों में आया है। सायण ने वीरुध् से ओषधि, वनस्पति एवं लता सभी को ग्रहण किया है। परवर्ती साहित्य में इसका अर्थ लता, गुल्म आदि अर्थ किया गया है।

वनस्पतियों का नामकरण प्राचीन-काल से ही चला आ रहा है। निरुक्त तथा सायणभाष्य के आधार पर कतिपय ओषधियों का विश्लेषण किया जा सकता है। भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनस्पतियों के अनेक नाम असीरियन नामों से मिलते हैं। प्राचीनकाल से ही अनेक देशों के साथ भारत का सम्पर्क रहा है। अतः संस्कृतियाँ एक दूसरे को प्रभावित करती रही होंगी। वैदिक काल से कुछ नाम आज तक चले आ रहे हैं यथा-अश्वत्थ। कुछ नाम परिवर्तित हैं यथा-काष्मर्य-काश्मर्य। कुछ नाम ऐसे हैं जो बिल्कुल विलुप्त हो गये यथा-खलकुल आदि। अनेक ऐसे शब्द हैं जो वर्तमान समय में ओषधियों के लिए प्रयुक्त होते थे ऋग्वेद में उसका दूसरा अर्थ है। अर्थसाम्य न हो किन्तु शब्द साम्य के आधार पर भी ऋग्वैदिक शब्दों का यथावसर वानस्पतिक विश्लेषण एवं चिकित्सकीय प्रयोग वर्णित किया गया है।

ऋग्वेद में ओषधि एवं वनस्पति विषयक शब्द अत्यल्प हैं। ऋग्वेद में प्रयुक्त अनेक शब्द परवर्ती साहित्य में ओषधि के रूप में वर्णित है। परवर्ती साहित्य में ओषधि रूप में वर्णित शब्दों एवम् ऋग्वेद में वर्णित शब्दों को ध्वनि साम्य के आधार पर गृहीत किया गया है।ऋग्वेद में ये पद वनस्पतिवाचक, वर्णवाचक संज्ञा एवं विशेषण वाचक आदि रूप में प्रयुक्त है। इस आधार पर गृहीत इन शब्दों का विस्तृत विवरण इस प्रकार है-

संज्ञा विशेषण वाचकः- अक्ष (पासा), उक्षा (जल-सेचक), उत्तमा (उत्तम, श्रेष्ठ), उम्बल (अत्यन्त बलशाली), ऋद्धि (वृद्धि प्राप्ति), ऋषभ (श्रेष्ठ), ककुत्मान (तेजस्वी, श्रेष्ठ) कन्या (सुन्दर स्त्री), कपर्दिन् (जटाधारी), करञ्ज (असुरविशेष), कर्कन्धु (व्यक्ति विशेष), कर्मार (लोहार), काशि (प्रसिद्ध, मुट्ठी), कितव (जुआरी), कुमारक (किशोर, कुमार), कुरीर (छन्द विशेष), कुहा (माया), कूप (कुआँ), केत (तेजस्वी), क्षुद्राऽइव (निर्धनों के सदृश), क्षुरा (तीक्ष्ण धारायें), क्षेत्र (कल्याण), गन्ध (सुगन्धि), गायत्र (गायक), गायत्री (छन्द विशेष), गृध (सुखाभिलाषी), गौरी (वाणी), घोष (ध्वनि, गर्जना), चित्रा (पूजनीय), छर्दिष (घर), जया (विजय), जीमूत (मेघ), जीर (सत्वर कर्म करने वाले), जीव (प्रकाश, आत्मा, अमर्त्य), जीवा (जीवित), ज्योतिष्मत् (तेजस्वी), तरणि (त्वरा से कर्म करने वाला), तरुणी (तरुणावस्था), तिल्विले (रसयुक्त), तेज (क्रान्ति, ज्वाला), तेजन (तीक्ष्णधार वाले), त्रायमाण (रक्षक), त्वक् (बाह्य आवरण, तेजस्वी, छाननी), त्वक् (चर्म, त्वाचा), देविऽतमे (अत्यन्त तेजस्वी), परुष (अङ्ग, कठोर), पाक (पवित्र, देवता), पितृ (देव, पितर), पिपील (क्रीड़ा), पियान (पुष्ट करता हुआ), बृहत् (व्यापक) मंदिर (आनन्ददायक), मद्य (आनन्ददायक), मधु (मधुर), यवऽअदः (यव खाने वाले), रोहिणी (लाल), लक्ष्मण्य (व्यक्ति विशेष), लोध (लोभी शत्रु) वेत (तेजस्वी अग्नि) गिरिजा (वाणी), पृषती (रंग बिरंगी, धब्बे वाली) शेवारे (सुखदायक कर्म करने वालो), सत्वा (बलवान्, शत्रुनाशक) सौम्या (शान्त), हर (तेज), होत्र (देवों को बुलाने वाले), अन्नकाम (अन्न की इच्छा), अपराजिता (पराजित न होने वाले), अभया (निर्भय) अमृण (नासिका रहित), अमृत (अमर), अरिष्ट (अहिंसित, कष्टरहित), अरिष्टि (निरोगता), अयजित (घोड़े जीतने वाले), आखु (शत्रु), आपीन् (जीतने वाले), आरु (उर्ध्वगामिनी) आसुति (अभिषुत), इभ (निर्भय)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्षीवाचकः- हंस (पक्षीविशेष), पक्षिण (पक्षी के सदृश उड़ने वाले) पर्ण (पंख) कपोत (पक्षी विशेष)।

औषधि विशेष वाचकः- मूल (जड़), दर्भ (कुशाघास), वंश (बाँस), सोम (लता विशेष), उत्तानपर्णा (ओषधि विशेष), काष्ठा (लकड़ी), खदिर (खैर की लकड़ी), दारु (लकड़ी), दूर्वा (दूब) अपरा (नवीन वनस्पतियाँ), अश्वत्थ (वृक्ष विशेष) मधुला (औषधि विशेष) शाल्मलि (शलमलि वृक्ष)।

वर्णवाचकः- हरे (हरितवर्ण सोम) हरिद्रव (हरितवर्ण सोम) अर्जुन (श्वेत)।

खाद्य एवं पेय पदार्थ वाचकः- सुरा (मद्य), ओदन (मेघ, भात) अन्ना, अभ्र (जल), अमृत (दिव्य पेय) अम्भ (जल), अर्ण (जल), अपस् (जल), उद्रक (जल), क्षीरपाल, (दूध में पका चावल, खीर) क्षीर (दूध, पानी), दुग्ध (दूध, जल) धाना (भुना जौ, खील), धान्य (अनाज) पयः (दूध, जल), पिप्पल (फल, जल), पीयूष (पीने योग्य), फेन (झागयुक्त जल), यव (जौ, अन्न विशेष)।

क्रियावाचकः- सर्जि (छाना जाता है, बैठता है), पारिषत् (पार करे), मंशीष्ठ (प्रदान करे), एरिरे (प्रदान करते हैं) धातु (प्रदानकरे), हर (चलो, लाओ), हिङ् (रँभाती है) असन् (रहें) असारयन्त (प्रभावित किया है) आममत् (कष्ट न दें), ऊचि (वर्णन करें) चक्रुधम् (क्रुद्ध किया), तिल्विलायध्वम् (स्नेहयुक्त करें), तेजते (संतृप्त करता है)।

देवता वाचकः- अर्क (आदित्य), इन्द्राणी (इन्द्र की पत्नी सोम) इन्द्रवरुणा (इन्द और वरुण) केत (सूर्य)।

नदी वाचकः- सरयु, सिन्धु, गंगा (नदी विशेषण), यमुना (नदी विशेष)।

जनपद-वाचक- शिग्रु (जनपद विशेष)।

ऐतिहासिकः- इक्ष्वाकु (इक्ष्वाकु वंशीय राजा)।

कर्मकाण्डीय महत्त्व के यज्ञवाचकः- सवन (यज्ञ), हया (यज्ञगामी), अर्क (पूज्य, हव्य, आदित्य), कारव (स्तोता यज्ञकर्ता) चमस (चमसपात्रविशेष)।

पशुवाचकः- जलचर-मत्स्य (मछली) छाग (निष्क्रिय अश्व) सालवृक (भेड़िया), अजाऽइव (बकरों के समान), गौ (गाय) अनड्वाह (बैल) अवि (बकरी) गौर (हिरण) अश्व (घोड़ा), उरण (मेष), ऋश्य (मृग) क्रोष्टा (शृगाल)।

कतिपय ओषधियों का संक्षिप्त चिकित्सीय विश्लेषण निम्नवत् है :-

अक्ष

हिन्दी - बड़ेडा, निनास, भैरा।

संस्कृत - विभीतक, अक्ष, कर्षफल, कलिद्रुम, भूतवास।

अंग्रेजी - Beleric Myrobalans Beddanut.

लैटिन - *Terminalia belerica Roxb.*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुण व प्रयोग - इसका प्रयोग विशेष रूप से त्रिफले के रूप में किया जाता है। इसका अर्ध पक्व फल विरेचक एवं पूरा पका फल या सूखा फल संकोचक माना जाता है।

अतसी

हिन्दी - तीसी, तिसी, अलसी, मसीना।
अंग्रेजी - Common Flax, Linseed.
लैटिन - *Linum usitatissimum Linn.*

गुण व प्रयोग- इसका बीज स्नेहन, मार्दवकर, बल्य वेदनास्थापन, मूत्रजनन एवं वातहर हैं।

अपराजिता

हिन्दी - अपराजिता, कोयल, कालीजर।
संस्कृत - आस्फोता, गिरिकर्णी, विष्णुक्रान्ता।
अंग्रेजी - Winged-leaved clitoria.
लैटिन - *Clioria ternatea Linn.*

गुण व प्रयोग - इसकी जड़ भेदक, मूत्रल एवं वेदना स्थापक है। इससे वमन होता है साथ ही पेट दर्द होकर विरेचन भी होता है।

उत्तानपर्ण

हिन्दी - अरण्ड, एरण्ड, एरण्डी, रेण्डी।
संस्कृत - रक्तैरण्ड, रूबूक, उरुबूक, व्याघ्रपुच्छ, वातारि, उत्तनपत्रक, चम्रा।
अंग्रेजी - Castor-Oil Plant.
लैटिन - *Ricinus Communis..*

गुण व प्रयोग- उत्तानपर्ण शूल, शोध एवं कीट, बस्ति तथा शिर की पीड़ा उदररोग, ज्वर, श्वास, कफ, अनाह, खांसी की कुष्ठ और आमवात इन सबों को दूर करते हैं। कीटशूल गृध्रसी पार्श्वशूल, हृदयशूल आमवात एवं संधिशूल में इसके मूल का क्वाथ सोंठ के साथ देते हैं। अर्श में एरण्ड तैल के साथ धृतकुमारी का प्रयोग करते हैं।

काश

हिन्दी - कास, कासी, कांस।
संस्कृत - कासेक्षु, इक्षुरस, इक्ष्वालिया, पोटगल।
अंग्रेजी - Thactch Grass.
लैटिन - *Saccharum Spontaneum Linn.*

गुण व प्रयोग - इसकी जड़ स्तन्य जनन एवं मूत्रल होती है।

खदिर

हिन्दी - खैर, कत्था।
संस्कृत - खदिर, रक्तसार, गायत्री दन्तधावन, कण्टकी, बालपत्र, बहुशल्य यज्ञिय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेजी - Black Catechu.

लैटिन - *Acacia Catechu Wild Cutch Tree .*

गुण व प्रयोग- यह शीत, ग्राही, कफ, शुक्र को सुखाने वाला, रक्तपित्त-प्रशमन एवं पाचन है।

जीवा

हिन्दी - जीवन्ती, डोडी।

संस्कृत - जीवन्ती जीवनी, जीवा, जीवनीया, मधुस्रावा, मांगल्यनामधेया।

लैटिन - *Leptadenia reticulata W. & A. .*

गुण व प्रयोग- यह शीतल, मधुर, लधु, त्रिदोष-नाशक चक्षुष्य, स्वर्य, बल्य एवं वृष्य है इसका उपयोग रक्तपित, क्षय दाह-ज्वर, अतिसार, विषदोष एवं व्रण में किया जाता है।

दर्भ

हिन्दी - कुशा, दाभ, कुश घास।

संस्कृत - दर्भ, कुश, बर्हि, सूच्यग्र, यज्ञभूषण।

लैटिन - *Eragrostis cynosuroides Beauv. .*

गुण व प्रयोग- यह शीतल मूत्र-विरेचन स्तन्य-जनन एवं पिपास हर है।

पिपरो

हिन्दी - चीता, चित्रा, चित्रक, चितउद।

संस्कृत - चित्रक, अनलनामा, पाठी, व्याल, ऊषण।

अंग्रेजी - Ceylon Leadwort, White Leadwort.

लैटिन - *Plumbago Zeylanica Linn..*

गुण व प्रयोग- चित्रक में रहने वाला प्लम्बैंजिन अल्पमात्रा में केन्द्रीय वातनाड़ी संस्थानको उत्तेजित करता है।

मधु

हिन्दी - शहद

संस्कृत - मधु, माक्षिक, माध्वीक, क्षौद्र, सारघ, मक्षिकावान्त, वरटीवान्त, भृद्मवान्त।

अंग्रेजी - Honry.

गुण व प्रयोग- मधु शीतल, लघु, स्वादिष्ट, रूक्ष ग्राही, विलेखन, नेत्रों केलिए हितकर, स्वर में उत्तम बनाने वाला, व्रण का शोधन, सुकुमारता करने वाला, शरीर के वर्ण को उत्तम करने वाला, मेधा शक्ति को उत्पन्न करने वाला, वीर्य वर्धक, रोचक, योगवाही, थोड़ा वातजनक, कुष्ठ अर्श, कास पित्त रक्त विकार कफ प्रमेह, क्लान्ति, मेद तृषा वमन श्वास हिचकी, अतिसार, दाह, क्षत और क्षय को नष्ट करने वाला है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोध्र

हिन्दी - लोध।

संस्कृत - लोध्र, तिल्व, तिरीट शावर गालव।

अंग्रेजी - Lodh; Symplocos Bark.

लैटिन - *Symplocos racemosa.*

गुण व प्रयोग - लोध्र की छाल ग्राही, शीतल रक्तस्तम्भकम श्लेष्मघ्न, व्रण रोपक, बल्य एवं चाक्षुष्य है। इससे छोटी रक्तवाहीनीयों, का संकोच होकर रक्तस्राव बन्द होता है।

वर्तमान समय में अनेक प्राचीन चिकित्सकीय ग्रन्थों की पुनर्व्याख्या हो रही है। वेदों में भी अनेक अनुसन्धान के कार्य किये जा रहे हैं। वेदविषयक पुस्तकों की समीक्षा एवं व्याख्या उनकी उपादेयता ही सिद्ध करती है। अनेक वनस्पति शास्त्रीय एवं आयुर्वैदिक ग्रन्थों में वेदोक्त औषधियों की व्याख्या दी गयी है जो उनके गुण, स्वरूप एवं चिकित्सकीय प्रयोगों को स्पष्ट करती है। ओषधियों के माध्यम से अनेक शारीरिक एवं मानसिक कष्टों से निवृत्ति हो सकती है। वस्तुत: ओषधियाँ मानव के लिये सर्वरूपेण कल्याणकारिणी हैं।

पाद-टिप्पणियाँ

1. ऋग्वेद 10।97।1-23
2. ऋग्वेद 10।97।15
   ऋग्वेद 10।97।3
3. ऋग्वेद 7।4।5
4. निरुक्त 8।3
5. ऋग्वेद 1।91।6
6. कौषीतकि ब्राह्मण 10।6
   कौषीतकि ब्राह्मण 12।7
   ऐतरेय ब्राह्मण 2।4, 10।1
   कौषीतकि ब्राह्मण 10।6।1
   तैत्तिरीय ब्राह्मण 3।9।1।1
   कौषीतकि ब्राह्मण 6।5।1
   शतपथ ब्राह्मण 3।7।1।8।1
   शतपथ 3।2।2।9।1
   शतपथ ब्राह्मण 7।5।1।1।5
7. ऋग्वेद 1।67।5, 2।35।8, 10।40।9, 10।45।4, 10।91।6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर आधुनिकतावाद : चिन्तन के क्रमिक आयाम

डॉ० गीता शुक्ला
एसो0 प्रो0 संस्कृत विभाग
भ0दी0आ0क0स्नातकोत्तर महावि0
लखीमपुर-खीरी

उत्तरआधुनिकता की प्रथम परिकल्पना ऑर्नल्ड टायनबी ने की थी। उन्होंने अपनी एक पुस्तक[1] में 1850 से 1857 ई0स0 के बीच आधुनिक युग की समाप्ति की घोषणा की थी तथा 1918-1939 के बीच के समय के लिये उत्तर आधुनिक शब्द का प्रयोग किया था। टॉयनबी के अनुसार इसके मसीहा फेडरिक नित्से थे।

उत्तरआधुनिकता आधुनिकता का चरमोत्कर्ष है। उत्तराधुनिकता एक प्रवृत्ति अधिक है अपेक्षाकृत एक निश्चित विचार या दर्शन के। पृथक्-पृथक् क्षेत्रों में उत्तर आधुनिकता की चेतना के साथ पूर्व आधुनिकता की ओर देखना इसकी पहचान बनी रही।

औद्योगिक क्रान्ति के इस अद्भुत युग में समग्र मानव विचारधारा का परिवर्तन चक्र जिस तीव्र गति से घूमा है उस परिस्थिति की ओर जो ध्यानाकृष्ट करता है वह है उत्तरआधुनिकतावाद। यह शब्द परिभाषित होने की दृष्टि से अत्यन्त विवादास्पद है। चूंकि उत्तरआधुनिकता अनेक चिन्तकों के चिन्तन को अपने में समेटे हुए है अत: इसे परिभाषित करना असम्भव है।

उत्तर आधुनिकता की परिभाषा इसलिए भी नहीं हो सकती क्योंकि यह कोई दत्त वस्तु नहीं है। यह कला तथा साहित्य, वास्तुकला तथा नृत्य, दर्शन तथा भाषा खेलों में एक नहीं है। यदि सांख्य दर्शन[2] की शब्दावली का प्रयोग करें तो यह अदृष्ट या अव्यक्त, अव्याकृत तथा अप्रस्तुत की प्रस्तुति का प्रयास है।

उत्तर आधुनिकता के सूत्रों को समझे बिना हम अपने को नहीं समझ सकते क्योंकि वह न चाहने पर भी हमारे बोध में क्रियाशील है। अनेक विद्वान् उत्तरआधुनिकता को तकनीक के दबाव से आगे मनुष्य के पराजय बोध का पर्याय मानते हैं तो कुछ पश्चिम का नया वैचारिक अस्त्र।

उत्तर आधुनिकता अन्त:सांस्कृतिक तथा अन्तसांस्कृतिक सम्बन्धों का मिश्रण है। उत्तर आधुनिकता में आधुनिक शब्द एक समाजशास्त्री[3] के अनुसार इस प्रकार है- ''आधुनिक बनने का अर्थ है विज्ञान को दुनिया को समझने का सर्वाधिक मान्य स्रोत मान लेना तथा पारंपरिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और प्रजातीय समुदायों के बीच के अन्तर को समाप्त कर देना।'' उत्तरआधुनिकता की स्थिति में किसी भी आदर्श एवं ज्ञान का आधार मानवता की आधुनिक चेतना होती है और यही उसे वैधता प्रदान करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्नल्ड टॉयनबी के द्वारा लगभग 1925 तथा इहाव हसन के द्वारा 1920 के लगभग पूरे यूरोप में उत्तर आधुनिकतावाद को स्वीकार किया गया है। तत्पश्चात् ल्योतार, मिशन, फूको रोलवर्थ, जां बोद्रीला, ज कि देरिदा, पॉल डि मान तथा नीत्शे आदि विद्वानों के विचारों से अमेरिका में चर्चित होकर अमेरिकी विद्वानों के साहित्य माध्यम से भारत में आ गया है। बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में यह सभी भारतीय भाषाओं के केन्द्र में हो गया।

मेरे विचार से पाश्चात्य संस्कृति का भारतीय संस्कृति पर प्रभूत प्रभाव से होने वाला परिवर्तन ही उत्तरआधुनिकता है और इसका सूत्रपात तो बहुत पहले हो गया था परिवर्तन का तो यह नियम है कि वह संचीभूत होकर दृष्टिगत होता है।

'आधुनिक भारत उत्तर विद्रोह (Revolution of 1857) कालीन कृति कहा जाता है' परन्तु वस्तुत: आधुनिक युग का आरम्भ यदि भारत में रानी विक्टोरिया की घोषणा (1858) के उपरान्त ही माना जाय तो उचित रहेगा, जबकि भारतीय इतिहास में आधुनिक युग का आरम्भ अंग्रेजों के आगमन से माना जाता है। महात्मा गाँधी ने पहले ही कहा था कि- 'अंग्रेज चाहे भारत में रह सकते हैं पर अंग्रेजी भाषा व अंग्रेजी वातावरण भारत से जाना चाहिए।' अंग्रेजों ने जो भी परिवर्तन किए बड़ी कूटनीति से किए परन्तु लार्ड मैकाले ने भारत में अंग्रेजी भाषा का बीजारोपण किया क्योंकि वह तो चाहता था कि- "भारत में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न किया जाय जो रक्त में और रंग में तो भारतीय हो परन्तु रूचि, विचार, नीति और मेधा में अंग्रेज हो।"[5] और इस प्रकार अंग्रेजी भाशा का प्रसार, यातायात के साधनों का विकास ईसाइ धर्म का प्रचार, सरकारी नौकरियों का प्रलोभन, भारतीयों का पश्चिमी देशों से सम्पर्क तथा औद्योगिक व तकनीकी विकास जैसे साधनों ने पाश्चात्य सभ्यता का विधिवत् प्रसार किया।

कुछ विद्वानों के अनुसार भारत में अभी उत्तरआधुनिकता नहीं आई है परन्तु ऐसा नहीं है बहुत से ऐसे लक्षण विद्यमान हैं जो उत्तरआधुनिकता की दस्तक दे रहे हैं। मानव इतिहास के प्राचीन युग का लोप होने को है। आफिस, बैंक, सुपर मार्केट, हॉस्पिटल, स्कूल-विश्वविद्यालय, घर, धर्म, दर्शन सभी के पुराने पैटर्न चरमरा जाने से हमारी जीवनशैली बदल गई है जिसका कारण 'ग्लोबल पावर स्ट्रक्चर' है।

उत्तर आधुनिकतावाद - एक ऐसा आकस्मिक परिवर्तन है, जिस की चाकचक्य में हर कोई भौचक्का है। भारत में तो समृद्ध पूँजीवाद देशों के द्वारा आद्योगिक, तकनीकी, कम्प्यूटरीकृत, इलेक्ट्रॉनिक तथा इन्फॉर्मेशन बायोटेक्नालॉजी के साथ एक ऐसा आर्थिक तन्त्र नियुक्त किया जा रहा है जो समाज, संस्कृति, राज्य, राष्ट्र व राजनीति में परिवर्तन कर रहा है और इस परिवर्तन चक्र को मीडिया बल प्रदान कर रहा है। बाजारवादी, नीति के पश्चिमी देशों द्वारा राष्ट्र की समूची व्यवस्था बदलने वाले इस तन्त्र की पोल जब एक पत्रकार और समाजशास्त्री[6] ने एक पुस्तक' लिखकर खोलनी चाही तो उस पुस्तक को कुछ देशों ने प्रतिबन्धित कर दिया गया परन्तु भारत ने नहीं क्योकि भारत उत्तरआधुनिकता के इस युग में नव औपनिवेशिक गुलामी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैयार है परन्तु यह चिन्तनीय है कि भूमण्डलीकरण, वैश्वीकरण, उदारीकरण आदि के पीछे सुपर-पावर देश आखिर चाहते क्या हैं? विकेन्द्रीकरण का शक्तितन्त्र इस धरती पर रक्त पात रहित अधिकार करने का एकाएक उत्पन्न नहीं हुआ है। बल्कि इसका एक कार्यकारण सम्बन्धों से युक्त श्रृंखलाबद्ध इतिहास है। अल्विन टॉलर ने तीन पुस्तकें लिखकर आधुनिकतावाद को समग्रता में प्रस्तुत कर दिया है।[8] तीनों का विषय एक ही है। नवीन परिवर्तन।

परिवर्तन की प्रथम लहर कृषि क्रान्ति से, द्वितीय औद्योगिक क्रान्ति से और तीसरी तकनीकी एवं सामाजिक परिवर्तन से आ रही है। निश्चय ही गाँधीवादी विचार और स्वदेशी को समाप्त करने का प्रयास चल रहा है। कम्प्यूटर क्रान्ति क्या सन्देश दे रही है? ग्लोबलाइजेशन उदारीकरण के पीछे हाई टेक्नॉलॉजी वाले देशों का इरादा क्या है? चिन्तन का विशय हैं।

उत्तरआधुनिकता वाद के प्रवर्तक[9] के अनुसार उत्तरआधुनिकता वाद एक नया अर्थ अवश्य ग्रहण किए हैं परन्तु यह आधुनिकता के युग का ही नया विस्तार है। आधुनिकता की पुनर्व्याख्या ही उत्तरआधुनिकता है। एक अन्य विद्वान्[10] के अनुसार शब्द परम्परा तथा अर्थ परम्परा को संस्कृति का सहारा चाहिये अर्थात् शब्द या लेखन सांस्कृतिक कर्म का स्रोत है पर इस स्रोत तक पहुँचना कठिन काम है।

उत्तरआधुनिकतावाद ने संरचनावाद, प्रतीकवाद, फ्रायडवाद, मार्क्सवाद, सौन्दर्यशास्त्र, नई समीक्षा, अस्तित्वादी, विचार-दृष्टि, तथा मिथकीय आलोचना को नकार दिया है। जिसका पर्याय प्रभाव सिद्धान्त चिन्तन तथा साहित्य सृजन पर पड़ा है। उत्तर आधुनिकतावाद इन पूर्व सिद्धान्तों का विरोध करता हुआ अपने सिद्धान्त का निर्माण करता है।

उत्तरआधुनिकतावाद, एक व्यापक संष्टिलष्ट अवधारणा है। मूलतः यह बींसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की नव पूँजीवादी, नवसाम्राज्यवादी, विचारधारा है। एक ऐसी चुनौती पूर्णविचारधारा है जो समस्त मानवीय चिन्तन, साहित्य व्यवस्था, विचाराधारा, धर्म, दर्शन, इतिहास, आन्दोलन, प्रवृत्तिवाद, सभ्यता, संस्कृति, मूलव्यवस्था सभी को 'उत्तर' घोषित कर रही है।

उळारआधुनिकतावाद के आधारभूत लक्षणों पर चिन्तन करने से निष्कर्ष निकलता है कि उळारआधुनिकतावाद के दशक के मुक्ति आन्दोलनों से उत्पन्न रेडिकल आन्दोलन है जो सभी पुरानी विचारधाराओं संस्थाओं, व्यवस्थाओं पर न केवल प्रश्नचिन्ह लगाता है। प्रत्युत् उन्हें आप्रासंगिक प्रमाणित कर दिया है। पुराने चिन्तन, साहित्य, कला, की शास्त्रीयता को महत्वहीन सिद्ध कर रहा है। मेडिकल ज्ञान की विशेशज्ञता को समाप्त कर भगवान माने जाने वाले डाक्टर को व्यावसायिक बना रहा है।

नव उपनिवेशवाद से हमारी स्मृतिभ्रंश की सम्भावना है और स्मृति को नष्ट करके ही किसी को स्थाई रूप से गुलाम बनाया जा सकता है।

भारत में आधुनिकतावाद भी ठीक से आ पाये उससे पहले ही उत्तरआधुनिकतावाद का तूफान आ गया और इतना अनन्त विस्तार लिया कि फिल्म, फैशन, विचार, विज्ञापन, संस्कृति,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास, धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, मीडिया आदि सभी उत्तरआधुनिकतावाद का शिकार हो गये तथा गाँधीदर्शन का अन्त। परिणाम यह हुआ कि भारत में श्री भीमराव अम्बेडकर के दर्शन का उदय हुआ।[11]

उत्तरआधुनिकतावाद में प्रत्येक अवधारणा, अनिश्चयवादी है। एक प्रकार से उत्तरआधुनिकतावाद आधुनिकता पर ही पुनर्चिन्तन है। उत्तरआधुनिकतावादी दृष्टि सभी पुरानी समीक्षा दृष्टियों को अर्थहीन मानती है और समग्र शक्ति से अभिजात्यवादी चक्रव्यूह को भेदना चाहती है जिसमें अभिजात्य वर्ग द्वारा निर्मित वर्णव्यवस्था, मानवमूल्य आदि सार्वभौमिक प्रतिमान प्रतिष्ठित है।

हमें ग्लोबल बनाने का चक्रव्यूह रचता हुआ उत्तरआधुनिकतावाद पूर्व सिद्धांत दृष्टियों का विरोध कर अपने सिद्धान्त बना रहा है। इसने साहित्य चिन्तन की नवीन वैचारिक प्राविधियां, शैलियाँ एवं पद्धतियाँ पल्लवित की हैं। आज ललित कलायें इसी की नूतन प्रवृत्तियों को प्रदर्शित कर रही हैं और भारत में तहे दिल से इसका स्वागत किया जा रहा है मल्टीमीडिया, मल्टीचैनल व मल्टीनेशनल्स के माध्यम से।

उत्तरआधुनिकतावाद बाजारवाद के माध्यम से नई कम्पनियाँ खोलकर नौकरियों के नये अवसर प्रदान कर रहा है पर क्या हमने कभी सोचा है कि इसके पीछे इसका मतलब क्या है?

वर्तमान समय में हमारी राजनीति ने लोकतन्त्र की बहुलतावादी नीतियों को संकटापन्न कर दिया है। सब ओर जनतन्त्र राजनैतिक प्रदूषण से व्याकुल है चिन्तनीय है कि यह बहुलतावाद अराजकतावाद के रूप में प्रस्तुत हो रहा है।

उत्तरआधुनिकतावाद में दमित और दलित समूह चिन्तन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि उत्तरआधुनिकतावाद की यात्रा केन्द्र से परिधि की ओर है इसका कारण है केन्द्र वाद का विरोधी होना। पुराने एकीकृत केन्द्रों की जगह नए समीकरण ले रहे हैं संस्कृत और संस्कृति दोनों ही बाजार की वस्तु बन चुके हैं।

विकेन्द्रीयता का विभिन्नता से एक क्रियात्मक सम्बन्ध है अतः विभिन्नता अलग चिन्तन का एक विषय नहीं है। प्रत्येक श्वास के साथ 'कर्ता का अन्त'[12] करता हुआ उत्तर उत्तरआधुनिकतावाद इलेक्ट्रॉनिक मानव को यथार्थ रूप प्रदान कर रहा है। उक्त दोनों से सम्बन्ध ही एक और तत्व चिन्तनीय है और वह है स्थानीयता। मध्यप्रदेश और बिहार की जनजातियों पर ध्यानाकृष्ट होना इसका उदाहरण है।

उत्तरआधुनिकतावाद के इस दौर में मानव आणविक विनाश की ओर अग्रसर है। प्रकृति से नाता तोड़कर उसे अपनी इच्छापूर्ति हेतु क्रीतदासी बनने में सफलता प्राप्त करना चाहता है।

इसी प्रकार अंतवाद अर्थात् प्राचीन महान् आदर्शों महान् आख्यानों तथा महान् मूल्यों का अन्त चिन्तन का मुद्दा है क्योंकि 'अन्तवाद' एक स्थाई मनःस्थिति है यह वह मनोभूमिका है, जिसने पूरे युग पर अपना कब्जा बना लिया है।"[13] सभी महान् आख्यानों का अन्त, वाद,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार, इतिहास, तथा रुपये की आत्मा का अन्त। यहाँ तक कि प्रतीकवाद, पूँजीवाद, मार्क्सवाद, आधुनिकतावाद, संरचनावाद आदि सब 'पोस्ट' (उत्तर) हो गये हैं और इतना बड़ा रूपान्तरण हमारी संस्कृति सहन कर रही है।

युगलविपरीतता से अभिप्राय है- दो विपरीत समूहों का एक-दूसरे से इस प्रकार जुड़ा होना कि उन्हें एकाएक पृथक् न किया जा सके और इस युगल सम्बन्ध में एक दूसरे पर प्रभुत्ववाद को समाप्त करके नारीवाद को प्रतिष्ठा प्रदान कर रहा है। नारी-नारी के साथ रह सकती है अर्थात् समलैंगिकता को मान्यता देकर प्रकृति के साथ खिलवाड़ करना यह भी एक आयाम है उत्तरआधुनिकतावाद पर चिन्तन का क्योंकि 'नारी' आज अपनी अस्मिता बनाने पर आमादा है। इसे स्वायत्तता भी कह सकते हैं।

उत्तरआधुनिकतावाद अभिजात्यवादी कला-संस्कृति को लोकप्रिय संस्कृति से कमतर आँकता है तथा ज्ञान-विज्ञान की पूर्वनिश्चित सीमाओं से पूरे अन्तर्विषयीय चिन्तन को बढ़ावा देता है साथ ही किसी प्रकार के पूर्णतावाद को नहीं मानता। इन्द्रिय सुख को सर्वोपरि सिद्ध कर रहा है। उपभोक्तावाद भारत को लालच दे रहा है। उत्तरआधुनिकतावाद यथार्थ को चिह्नवाद के रूप में परिभाषित करता है क्योंकि हम यथार्थ को चिन्हों से पहचानते हैं।'

इस प्रकार उत्तरआधुनिकता ने सांस्कृतिक सीमाओं में घुसपैठ कर तकनीकी और भूमण्डलीकृत पूँजीवाद के द्वारा दुनिया के तमाम देशों की भौगोलिक सीमाओं को हिलाना आरम्भ कर दिया है। हमारे ज्ञान के उपकरण पुराने होने लगे हैं। धन एक भाषा या संवाद बन रहा है।

कुछ भी हो उत्तरआधुनिकता का एक सापेक्षिक महत्व है क्योंकि उत्तर आधुनिकता एक तुलनात्मक धारणा है। उत्तरआधुनिकता न तो अंग्रेजी शब्द पोस्टमार्डर्निज्म का पर्याय है और न ही आधुनिकता का विलोम। यदि हम इसे पूर्वमीमांसा व उत्तरमीमांसा[14] से तुलना के आधार पर समझें तो उत्तरआधुनिकता आधुनिकता के बाद की स्थिति है। इसने लोगों को प्रकृति और पारिस्थिति की ओर लौट चलने की स्थिति में ला दिया है। उत्तरआधुनिकता ने ज्ञान की समस्याओं से सत्तामीमांसाक समस्याओं का महत्व बढ़ जाने की स्थिति को बड़ी नाटकीयता से सामने रखा है।[15] उत्तर आधुनिकता ने भारतीय होने की भावना जगा दी है।

पाद-टिप्पणियाँ

1. ए स्टडी आफॅ हिस्ट्री।
2. भारतीय षड्दर्शन में एक। इसके प्रवर्तक आचार्य कपिल हैं।
3. अभिजित पाठक
4. ओमाली के शब्दों में।
5. लार्ड मैकाले।
6. ऑल्विन टॉफलर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7. द वर्ड वेब
8. यूचर शॉक, दि वर्ड वेब, पावर शिट।
9. जी फंसुवाँ ल्योतार।
10. ज कि देरिदा।
11. अम्बेदकर और भारतीय समाज व्यवस्था डॉ0 कृश्ण दत्त पॉलीवाल।
12. मानव और मानव संवदेना को निरर्थक सिद्ध करना।
13. फ्रेंक कर्मोड।
14. भारतीय षड् दर्शनों में से एक युगल।
15. पोस्ट मॉडर्निस्ट फिक्शन पृ0 10

CC-0. Gurukul Kangri Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराजा अनूपसिंह का संस्कृतसाहित्य को अवदान

डॉ. नन्दिता सिंघवी
अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर डूंगर महाविद्यालय,
बीकानेर (राज.)

राजस्थान के उत्तर-पश्चिम में स्थित बीकानेर नगर की स्थापना राव बीका ने 1488ई. में की। तत्पश्चात् प्रायः सभी शासक साहित्यानुरागी हुए। इन्होंने या तो स्वयं काव्य रचना की अथवा इनके आश्रय में विद्वानों ने काव्य रचना की। संस्कृत साहित्य रचना की यहाँ विशेष परम्परा रही है। राव बीका के पुत्र राव लूणकर्ण के ज्येष्ठ पुत्र राव जैतसिंह (1526-1542ई. के समय में पंडित चुन्नीलाल ओझा ने 'कर्ण-कुतूहल' पर 'बाल-बोधिनी' टीका लिखी। तत्पश्चात् राव कल्याण जी (1542-1574ई.) के समय हर्ष कवि द्वारा 'ललितांग कथा', सदाशिव भट्ट द्वारा 'रामविनोद', पं. हीराचन्द आचार्य द्वारा 'पंचदशी प्रयोग' लिखा गया। राव कल्याण के पुत्र राजा रायसिंह (1574-1612ई.) संस्कृत ग्रंथों के रचयिता और संस्कृत विद्वानों के संरक्षक थे।

राजा रायसिंह ने, रायसिंह महोत्सव और ज्योतिष रत्नाकर नामक दो ग्रंथों की रचना की। इन ग्रंथों पर बाल-बोधिनी टीका लिखी। उनके समय में 'गायत्री निर्णयाक्षरम्', 'प्रश्नोत्तर शतकवृत्तिः', 'नेमिदूतवृत्तिः', 'रघुवंशवृत्तिः', जन्म-पूजा पद्धतिः आदि अनेक ग्रन्थ रचे गये।

राजा रायसिंह के पौत्र कर्णसिंह (1631-1669 ई.) स्वयं विद्वान् और विद्वानों के संरक्षक थे। आपके कार्यकाल में काव्य डाकिनी, कर्ण भूषण, कर्ण-वितंस, कर्ण-संतोष, काल निर्णय आदि अनेक संस्कृत ग्रंथों की रचना हुई। 'साहित्यकल्पद्रुम' नामक ग्रन्थ बहुत से विद्वानों की सहायता से राजा कर्णसिंह ने लिखा। कर्णसिंह के पुत्र एवं बीकानेर के दसवें महाराजा अनूपसिंह (1669-1698ई.) ने संस्कृत रचना परम्परा को चरमोत्कर्ष पर पहुंचा दिया। अनूपकाल बीकानेर में संस्कृत साहित्य का स्वर्णकाल कहलाता है। महाराजा अनूपसिंह के समय में नाना विषयों व शास्त्रों से संबंधित ग्रन्थों की रचनाएं हुईं। महाराजा अनूपसिंह उच्च कोटि के संस्कृतज्ञ एवं विद्वानों के आश्रयदाता थे। उनके संस्कृतानुराग एवं वैदुष्य के प्रभाव से उनका दरबार कांशी, दिल्ली, जयपुर और सुदूर दक्षिण के विद्वानों से परिपूर्ण रहता था।

महाराजा अनूपसिंह का समय विषम परिस्थितियों से युक्त था। बादशाह औरंगजेब की कट्टरता के कारण हिन्दू धर्म और धर्मशास्त्र का निरन्तर ह्रास हो रहा था। हिन्दू धर्मग्रन्थों, पाण्डुलिपियों एवं देवताओं की मूर्तियाँ मुसलमानों द्वारा नष्ट होने लगी थी। औरंगजेब के दक्षिण भारत पर आक्रमण के समय ब्राह्मणों को अपने धर्मग्रन्थ व अन्य पाण्डुलिपियों के नष्ट किये जाने का भय रहता था, अतः वे उन्हें नदियों में बहा देना श्रेयस्कर समझते थे। ऐसी स्थिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में महाराजा अनूपसिंह ने उन ब्राह्मणों को प्रचुर धन देकर उनसे धर्मग्रन्थ एवं पाण्डुलिपियां खरीदकर बीकानेर के अपने दुर्ग स्थित पुस्तक भण्डार में भेज दी। इन पुस्तकों का भण्डार आज भी 'अनूप संस्कृत पुस्तकालय' के नाम से प्रसिद्ध है। इस पुस्तकालय के प्रकाशित व अप्रकाशित ग्रंथ सूची के अनुसार कुल ग्रंथ संख्या 11264 है, जिनमें से 9521 ग्रंथ संस्कृत के हैं। संस्कृत ग्रंथों का प्रकाशित सूची पत्र केवल 6682 ग्रंथों का है। अनूप संस्कृत पुस्तकालय में महाराजा अनूपसिंह कृत एवं उनके आश्रय में रचित विद्वानों के हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्त होते हैं। महाराजा अनूपसिंह ने निम्नलिखित ग्रंथों की रचना की है-

1. अनूप विवेक - इस ग्रंथ में शालिग्राम विषयक नाना प्रश्नों एवं शंकाओं समाधान प्रस्तुत किया गया है, अत: इसका अपर नाम 'शालिग्रामविवेक' भी प्राप्त होता है। इस पाण्डुलिपि में 177 पृष्ठ हैं तथा 12 ग 4 इंच का है। इस ग्रंथ का निर्माण कार्तिक बदी छठ संवत् 1749 में अर्थात् 1692 ई. में किया गया था। अनूपसिंह कृत एकमात्र इसी ग्रंथ का समय प्राप्त होता है।
2. श्राद्धप्रयोग चिन्तामणि - इस ग्रंथ का निर्माण पितृ कार्यों (श्राद्ध इत्यादि) के करने के लिये समस्त स्मृतियों से निर्णीत सिद्धान्तों द्वारा किया गया है। श्राद्धविषयक सर्वांग विवेचन इस ग्रंथ में प्राप्त होता है। इस ग्रंथ में 161 पृष्ठ हैं तथा यह 12 ग 5 इंच का है।
3. अनूपरत्नावली - यह धर्मशास्त्र सम्बन्धी संग्रहात्मक ग्रन्थ है। यह निम्न पांच प्रकाशों में विभक्त है - 1. काल निर्णय 2. संवत्सर कृत्य 3. संस्कार 4. समय

5. प्रकीर्णक। इस ग्रंथ में कुल 233 पत्र हैं तथा 12 ग 5 इंच का है।

4. जयाभिषेक पद्धति - इस ग्रंथ में लिंग पुराण के अनुसार नरेशों के राज्याभिषेक की पद्धति दी गई है। इसके 1000 पत्र हैं।
5. प्रतिष्ठाप्रयोगशिरोमणि - इसमें प्रतिष्ठा के उपांगभूत 500 अवान्तर विषयों का सविस्तार प्रयोग प्रतिपादित किया गया है। इस ग्रन्थ के 820 पत्र हैं तथा 12 ग 7 इंच का है। इसमें नाना स्मृतियों, धर्म सूत्रों, पुराणों एवं संहिताओं के वचन उद्धृत किये गये हैं। इस ग्रंथ में वर्णित विषयों को मुख्य रूप से निम्न पांच भागों में विभक्त किया जा सकता है - 1. देव पूजा 2. प्रतिष्ठा 3. उत्सर्ग 4. राजधर्म

5. शक्ति।

इन विषयों में से सर्वाधिक वर्णन प्रतिष्ठा से संबंधित है। इसमें प्रतिष्ठा से सम्बन्ध रखने वाले 17 विषयों का वर्णन किया गया है, जो निम्न हैं - 1. विष्णु 2. रुद्र

3. वाप्याराम 4. भुवन 5. सर्वदेवप्रतिष्ठा 6. प्रासाद 7. तडाग 8. लघुचलार्चा 9. लिंग 10. गौरी 11. सूर्य 12. द्वार 13. समुदाय 14. आराम 15. वापी 16. विनायक 17. स्कन्ध।

6. संगीत विनोद - महाराज अनूपसिंह संगीतज्ञ थे। जब औरंगजेब ने धर्मान्धता के कारण संगीतज्ञों को राज्य से निकाल दिया तब अनेक संगीतज्ञ बीकानेर आये। अनूपसिंह ने उनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ससम्मान राज्याश्रय दिया। शाहजहां के दरबार में प्रसिद्ध संगीताचार्य 'जनार्दन भट्ट' के पुत्र भाव भट्ट ने भी अनूपसिंह का राज्याश्रय ग्रहण किया व अनेक संगीत से संबंधित ग्रंथों की रचना की। स्वयं महाराजा अनूपसिंह ने संगीत विषयक 'संगीत विनोद' नामक ग्रंथ की रचना की, जिसके साथ नृत्याध्याय भी लिखा। इस ग्रंथ का प्रारम्भ व विभाग संख्या 27 व 309 प्राप्त है।

7. कौतुक सारोद्धार - ऐन्द्रिक जाल सिद्धों की प्रतिपत्ति के लिये अनूपसिंह ने 15 उल्लासों में ''कौतुक सारोद्धार'' नामक ग्रंथ की रचना की।
8. स्तोत्र साहित्य - आपके द्वारा रचित निम्न दो स्तोत्र उपलब्ध होते हैं। 1. लक्ष्मीनारायण स्तुतिः 2. हरिहराष्टकम् (अनूप वाग्विलास)
9. आपने गीतगोविन्द पर 'अनूपोदय टीका' भी लिखी है। महाराजा अनूपसिंह के आश्रय में विद्वानों ने संस्कृत के नाना विषयों पर ग्रन्थ रचना की, जिसका संक्षिप्त परिचय निम्न है-

क. धर्मशास्त्र

	ग्रन्थनाम	लेखक
1	पाण्डित्य दर्पण	मुनि उदयचन्द्र
2	व्यवहार निर्णय	शिवानंन्द गोस्वामी
3	आचार सिन्धु	शिवानन्द गोस्वामी
4	तिथि निर्णय	शिवानन्द गोस्वामी
5	संक्षेप प्रायश्चित	शिवानन्द गोस्वामी
6	आन्हिक रत्नम्	शिवानन्द गोस्वामी
7	अनूप मेघमाला	होसिंग भट्ट
8	दान रत्नाकर	होसिंग भट्ट
9	तीर्थ रत्नाकर	अनन्त भट्ट
10	शान्ति सुधाकर	विद्यानाथ सूरि
11	अनूपरत्नाकर	विद्यानाथ सूरि
12	अयुतलक्षकोटि होम प्रयोग	भद्रराम
13	राज्याभिषेक	कमलाकर भट्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख. ज्योतिष

	ग्रन्थनाम	लेखक
1	अनूपमहोदधि	वीरसिंह गणंक
2	अनूपव्यवहारसागर	मणिराम दीक्षित
3	अनूप विलास	मधुसूदन पुरोहित
4	अनुपद्धतिकल्पवल्ली	त्रयम्बक भट्ट
5	ज्योत्पतिसार	विद्यानाथ
6	मुहूर्त मंजूषा	हरिद्विज
7	सूर्यारुण दीधिति	वीरेश्वर भट्ट
8	सिद्धान्त संहिता सार समुच्चय	सूर्य पंडित
9	खेचर तुंगादि प्रकाशिका	शिवानन्द गोस्वामी
10	बाल विवेक	शिवानन्द गोस्वामी
11	मुहूर्त रत्नम्	शिवानन्द गोस्वामी
12	आख्यान विवेक	शिवानन्द गोस्वामी

ग. आयुर्वेद एवं कामशास्त्र

	ग्रन्थनाम	लेखक
1	चिकित्सामालतीमाला	होसिंग राम
2	सन्तानकल्पलता	होसिंग राम
3	अमृत मंजरी	होसिंग राम
4	हंसराज	रसराज संस्कार
5	वैद्यक सन्तान कल्पलता	भट्टराम
6	सन्तानकल्पलता	त्र्यम्बक राय
7	वैद्य रत्नम्	शिवानन्द गोस्वामी
8	कामप्रबोध	जनार्दन व्यास
9	कन्दर्प चूड़ामणि	वीरभद्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घ. साहित्य शास्त्र

	ग्रन्थनाम	लेखक
1	अनूप विलास	मणिराम
2	अलंकारकारिका	जनार्दन सुत
3	अनूप यशोवर्णन	पेरु शास्त्री
4	अनूपसिंह गुणावतार	विट्ठल कृष्ण
5	अमरकोश बाल-बोधिनी टीका	शिवानन्द गोस्वामी
6	महाविद्या प्रमोद लहरी	शिवानन्द गोस्वामी
7	ललितार्चन दीपिका	शिवानन्द गोस्वामी
8	ललितार्चन कौमुदी	शिवानन्द गोस्वामी
9	कार्तवीर्य विधिरत्नम्	शिवानन्द गोस्वामी
10	सिंहसिद्धान्त सिन्धु	शिवानन्द गोस्वामी
11	विद्यार्चन दीपिका	शिवानन्द गोस्वामी
12	सिंह सिद्धान्त पद्धति	शिवानन्द गोस्वामी
13	शिव रहस्य	शिवानन्द गोस्वामी
14	अमरुकशतक टीका (रसिक संजीवनी)	अर्जुनवर्म देवी
15	काव्यप्रकाश टीका (तिलक)	जयराम भट्टाचार्य
16	काव्यप्रकाश टीका (दीपिका)	विद्यावागीश जयंत
17	कादम्बरी टीका (विषमपद वृत्ति)	बालकृष्ण
18	वीरमित्रोदय	मित्र मिश्र
19	अजित विज्ञप्ति लेख (अजितविलास)	हरिदेव व्यास
20	विचित्र पत्र (प्रथम)	हरिदेव
21	विचित्र पत्र (द्वितीय	श्री गंगाराम
22	महाराज अनूपसिंह एवं जिनचन्द्र सूरि के पत्र व्यवहार	
23	स्वरलक्षण	जनार्दन भट्ट
24	महाभारत सुभाषित श्लोक संग्रह	शिवानन्द गोस्वामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ङ. वेद भाष्य व स्तोत्र साहित्य

	ग्रन्थनाम	लेखक
1	कात्यायन श्रौतसूत्र भाष्य	अनन्त भट्ट
2	ईश्वर स्तुति	शिवानन्द गोस्वामी
3	गंगास्तुति	शिवानन्द गोस्वामी
4	जालपाष्टकम्	शिवानन्द गोस्वामी
5	दुर्गास्तुति	शिवानन्द गोस्वामी
6	प्रातः स्मरणम्	शिवानन्द गोस्वामी
7	सपर्याक्रम दर्पण	शिवानन्द गोस्वामी
8	सौन्दर्य लहरी	शिवानन्द गोस्वामी
9	त्रिपुरा स्तुति	शिवानन्द गोस्वामी

च. दर्शन एवं व्याकरण शास्त्र

	ग्रन्थनाम	लेखक
1	तर्करत्नाकर सेतु	दामोदर
2	सिंह सिद्धान्त दीपिका	शिवानन्द गोस्वामी
3	कारक कोश	शिवानन्द गोस्वामी
4	विभक्त्यर्थ विवरण	शिवानन्द गोस्वामी
5	तद्धित कोश	शिवानन्द गोस्वामी
6	समास कोश	शिवानन्द गोस्वामी
7	स्त्री प्रत्यय कोश	शिवानन्द गोस्वामी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	ग्रन्थनाम	लेखक
1	अनूपसंगीतरत्नाकार	भावभट्ट
2	अनूपसंगीत विलास	भावभट्ट
3	गमकमंजरी	भावभट्ट
4	कुतुपाध्याय	भावभट्ट
5	भावमंजरी	भावभट्ट
6	अनूपराग सागर	अर्जुनवर्म देव
7	अनूपसंगीत वर्तमान	अर्जुनवर्म देव
8	अनूपोदेश	अर्जुनवर्म देव
9	रागचन्द्रोदय	पुण्डरीक

इस प्रकार महाराजा अनूपसिंह के काल में विपुल साहित्य-सर्जन हुआ, जो सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. कैटेलॉग ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर।
2. अनूपकालिन संस्कृत कवियों का संस्कृत साहित्य को अवदान - डॉ. पुष्पा सोढ़ी, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
3. बीकानेर राज्य का इतिहास, पहला भाग, डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, वि. सं. 1996, वैदिक यंत्रलय, अजमेर।
4. संस्कृत साहित्य सृजन के विकास बीकानेर क्षेत्र का योगदान (1472-1965 ई.), अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, 1967, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी श्रद्धानन्द की मुम्बई यात्रा

डॉ0 चन्द्रकान्त गर्जे
11 भोसले इलायट
भोसले नगर, शिवाजी नगर
पुणे- 4110011, (महाराष्ट्र)

महर्षि दयानन्द ने मुम्बई की पांच बार यात्रा की थी। उनकी प्रथम यात्रा थी 20 अक्टूबर से 9 दिसम्बर 1874 पांचवी और अन्तिम यात्रा थी, दि० 30 दिसम्बर से जून 1882 तक इन यात्राओं के उद्देश्य थे स्थानीय ख्याति प्राप्त व्यक्ति, बुद्धिजीवी महानुभावों, विभिन्न संस्था के पदाधिकारियों के परिचय हो, उनके साथ सम्पर्क बना रहे, विचारों का आदान प्रदान हो। मुम्बई के प्रथम यात्रा में, स्वामी जी के विचारों से प्रभावित हो, स्थानीय कुछ व्यक्तियों ने स्वामी दयानन्द से आग्रह किया था कि उनके विचारों की एक संस्था स्थापित होनी चाहिए। महर्षि की दूसरी यात्रा में उन्होंने इस मांग की पूर्ति की और दिनांक 7 अप्रैल 1875 को काकडबाड़ी में आर्य समाज की स्थापना की। 'आर्य समाज' की स्थाना कर ही वे थमे नहीं, वे महाराष्ट्र के पु000णे सातारा पहुंचे। वहां के बुद्धिजीवियों के सम्मुख वैदिक सिद्धान्तों से सम्बन्धित प्रवचन, व्याख्यान भी दिये। परिणामत: महाराष्ट्र में भी वैदिक गर्जना की गूंज फैल गयी।

महर्षि दयानन्द के विचारों से प्रभावित हो, युवक मुंशीराम ने अपने सारे व्यसन त्याग दिये, इतना ही नहीं उन्होंने अपना व्यवसाय वकालत को भी ठुकरा दिया इसलिए कि- ''वकालत और सच्चाई का मेल दुस्तर है''। आर्य समाज की ओर इतना रूझान बढ़ा। इस वैदिक विचार के धुन के मुंशीराम सन्यास की दीक्षा लेकर (अप्रैल 1947) स्वामी श्रद्धानन्द बन गये। स्वामी श्रद्धानन्द देश की राजनीति से जुड़े रहे किन्तु उन्हें राजनीति भायी नहीं, इसके कई कारण हैं। वे गुरुकुल शिक्षा प्रणाली से अन्त तक जुड़े रहे। उससे अधिक जुड़े रहे- देश के सामाजिक प्रश्नों से।

महर्षि दयानन्द की तरह ही उन्होंने वैदिक प्रचार हेतु महाराष्ट्र की यात्रा की। पुणे शहर में आयोजित 'महाराष्ट्र प्रान्तीय राष्ट्रीय परिषद' के अध्यक्ष पद को उन्होंने सुशोभित किया था और भाषण दिया था। दिनांक 2,3 मई 1924। मुम्बई से दिनांक 15/3/1922 को उन्होंने अपने पुत्र इन्द्र को पत्र भेजा था, जिसमें अपने अगले कार्यक्रम विदित किए थे। अकेला दि० 14/1/1922 अमरावती दि० 16/1/1922 आमोट दि० 17/1/1922 फिर दिल्ली। वे अपने निर्धारित दिन पर, शहरों में पहुंचे भी थे।

स्वामी श्रद्धानंद ई.स. 1924 के अक्टूबर महीने में मुम्बई शहर पहुंचे थे और ऋषि द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापित काकडबाडी के आर्य समाज में ठहरे थे। स्वामी श्रद्धानन्द की यह मुम्बई यात्रा एक निराले उद्देश्य को दर्शाती है। वे सुदूर दक्षिण में -मोयला' की यात्रा कर मुम्बई पहुंचे थे। स्वामी श्रद्धानन्द के सार्वजनिक जीवन का यह अन्तिम अध्याय था।

स्वामी श्रद्धानन्द के अन्तिम समय में सार्वजनिक क्षेत्र में बहुत ही निराशा उत्पन्न हुई थी। इसके मूल में अंग्रेजों की राजनीति कारणीभूत थी। उन्होंने मुसलमानों को थपथपाया। मुसलमानों को एक दूसरे से लड़ाने की योजना बनायी। फिर क्या था देखते ही देखते देश के कोने-कोने में मुसलमान दंगे मचाते रहे। दक्षिण भारत में मालाबार में दंगे हुए। 1921-22 में मोयला में मुसलमानों ने हिन्दुओं पर भयंकर अत्याचार किये। असंख्य हिन्दुओं की हत्या की गई। अनेक हिन्दू महिलाओं की लज्जा लूटी गयी। उनका सुहाग सिंदूर मिट गया। उनकी गोद सुनी हुई कई महिलाएं मुसलमान हरम में दाखिल हुई। विवश होकर हिन्दू इस्लाम मजहब में परिवर्तित हुए।

स्वामी श्रद्धानन्द ने अनुभव किया कि बिना हिन्दू संगठन आर्य हिन्दू जाति की रक्षा न हो सकेगी। उन्होंने 1923 में 'शुद्धि सभा' की स्थापना की थी। वे स्वयं इस सभा के प्रधान बने। इस संस्था के माध्यम से मुसलमान बने हुए हिन्दुओं को उनके अपनाये मार्ग से रोकने का प्रयास किया जो भटककर विवश अवस्था में मुसलमान बने थे। उन्हें अपने मूलधर्म में पुनश्च वापिस लाने का मार्ग उन्होंने खोला। इसी उद्देश्य से वे हिन्दुओं के संगठन को सशक्त करने में लगे रहे। उन्होंने 'सो विपर ऑफ ए डाइंग रेस' तथा हिन्दू संगठन इन ग्रंथों की रचना भी की (1924) दूसरी तरफ मुसलमान भी अधिक अग्रसर हुए परिणामत: अनेक दंगे हुए। कांग्रेस ने इस सब की गहराई में जाकर सच्चाई जानने के लिये श्री मोतीलाल जी नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति स्थापित की, अबुल कलाम आजाद उस समिति के एक सदस्य थे। इस समिति का निर्णय यह रहा कि स्वामी श्रद्धानन्द ही इन सब घटनाओं के मूलकारण हैं।अल्पसंख्यकों के तुष्टिकरण का यह एक भयानक चित्र था।

स्वामी श्रद्धानन्द अत्यधिक व्यग्र हुए। फिर भी उन्होंने मोपला में घटित घटनाएं, वहां के हिन्दुओं के समाचार को प्रत्यक्ष देखने, सुनने के लिये वे मोपला पहुंचे थे। अनेक पीड़ित हिन्दुओं से संपर्क स्थापित कर सारी बाते सुनीं। घटनाओं को समझने का प्रयास किया। समूची जानकरी प्राप्त करने के बाद वे निवशता की भावना लिये 1924 वर्ष के अक्टूबर महीने में मुम्बई पहुंचे थे और ऋषि दयानंद द्वारा स्थापित काकड़बाडी के आर्य समाज में ठहरे हुए थे।

स्वामी श्रद्धानन्द मुंबई (अक्टूबर 1924 ई.स.) पहुंचने के दूसरे दिन संध्या 5 बजे आर्य समाज में ही स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा बुद्धिजीवियों की एक सभा आयोजित की। आमंत्रितों में बाल गंगाधर रबेर, मुंकदराम जयकर, बेलजी, लखमनी नप्पू, लक्ष्मीदास गोवर्धन दास तेजपाल, जगजीवनराम मूल जी, राजनारायण, रामेश्वर दास जी बिर्ला, उस समय आर्य समाज के जयकर की माता जी सोनाबाई तथा यमुनाबाई काकडवाड़ी के प्रधान कल्याणदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने सब आमंत्रितों का स्वागत किया। उस समय के आर्य समाज का चित्र भी स्पष्ट होता है। आमंत्रित प्रथम यज्ञ वेदी के समीप पहुंचे। पिछली दीवार पर केसरिया रंग से लिखा था ''अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि'', निचली पंक्ति थी ''कृण्वन्तो विश्वमार्यम्''। सभी लकडी से बनी हुई सीढ़ियां चढ़कर पहले मंजिल पर पहुंचे। उनकी दृष्टि दानदाताओं की सूची पर पड़ी। अग्रक्रम पर नाम था 'हाजी उल्लारखान रहेमतुल्ला सोना बाला। खां साहब ने 5000 रुपये की धनराशि दान में दी थी। आमंत्रितों को लगा कि ऋषिवर दयानन्द का वैदिक तत्वावधान मुसलमानों तक पहुंच चुका हैं। उपरी मंजिल पर अलमारियों में वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण, आरण्यक, भगवद् गीता, न्यायमीमांसा आदि प्राचीन शास्त्रों से सम्बन्धित पुस्तकें रखी थीं। एक दीवार पर लिखा था 'इन्द्रवर्धन्ते अप्तुर, कृण्वन्तो विश्वर्मायम, साथ ही आर्य समाज के दस नियम संस्कृत, हिन्दी, मराठी और गुजराती भाषा में लिखे थे।

स्वामी श्रद्धानन्द जी जिस आसन पर विराजित थे, पिछली दीवार पर लिखा हुआ था 'सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। (यजुर्वेद) स्वामी जी ने सबको बड़ी विनम्रता से हाथ जोड़कर अभिवादन किया। उन्होंने अपने मन्तव्य को प्रारम्भ किया। उन्होंने भोपला हत्याकांड को सबके सम्मुख रखा। यह प्रश्न भी उपस्थित किया कि हिन्दुओं को मुसलमान के चंगुल से कैसे छुड़वायें। हिन्दु संगठन को सशक्त कैसे करो। हत्याकाण्ड में हुई विधवाओं तथा निराश्रित महिलाओं को फिर से कैसे बचाएं। उन्हें पूर्व जीवन की अवस्था में कैसे पहुँचाए। प्रथम इन प्रश्नों की भूमिका निवेवित करने के बाद वे आमंत्रितों की प्रतिक्रिया सुनने के लिये थम गये।

बाबा साहेब खेर की प्रतिक्रिया थी कि वे भी शुद्धिकरण प्रक्रिया के पक्ष में हैं। हिन्दू धर्म की सुरक्षा होनी चाहिए पर हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये 'शुद्धि कार्य एक मात्र मार्ग नहीं है। उसके लिये लोक शिक्षण हो। शिक्षण के माध्यम से 'लोकजागृति' होगी. अनिष्ट परम्पराओं पर कानून की पाबंदी हो। बेटींग ने कानूनन 'सतिप्रथा' पर रोक लगायी थी तब कहीं धार्मिक प्रश्न सुलझता गया। रबेर के इस प्रतिक्रिया पर स्वामी जी ने अपनी सहमति दर्शायी। एक गंभीर समस्या पर जोर देते हुए उन्होंने कहा बेघर, निराश्रित, परितक्ता, धर्म परिवर्तित महिलाओं को समाज में कैसे प्रतिष्ठा प्राप्त हो।

श्री जांगेकर जी की प्रतिक्रिया थी ऐसी समस्याएं मुम्बई, पुणे शहरों में नहीं है। दूसरी प्रतिक्रिया तेजपाल की थी जो अपने मर्जी से धर्म परिवर्तन कर रहे हैं तो ये सभी प्रश्न उपस्थित नहीं हो सकते। उन्होंने श्री शेषाद्री के कोर्ट केस का स्पष्टीकरण किया शेषाद्री के दो पुत्रों ने अपनी मर्जी से धर्म परिवर्तन किया। उस समय के बाल शास्त्री जांगेकर और जगन्नाथ शंकर सेठ ने मुम्बई उच्च न्यायालय के दरवाजे खटखटाए तब कहीं से बन्धुओं को हिन्दू धर्म में पुत्र दीक्षित होने में सफलता मिली।

स्वामी श्रद्धानन्द शेषाद्री परिवार की समस्या से परिचित थे। शेषाद्री का एक पुत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अल्पायु का था, दूसरा बालिग। दोनों पुत्रों की भावनिक आधार प्राप्त होना चाहिए पर प्राप्त नहीं हुआ। यदि भावनिक आधार प्राप्त हुआ होगा तो धर्म परिवर्तन की नौबत ही नहीं आती। अपने मन्तव्य में उन्होंने कहा कि मनुष्यों को अपने धर्म के प्रति लगाव न होते हुए अन्य ध र्म की ओर रुझान क्यों होता है? यह एक समस्या है इसकी गहराई में जाना आवश्यक है।

स्वामी जी के मंतव्य के पश्चात् श्री तेजपाल ने घोंड़ो केशव कर्वे द्वारा पुणे में निराश्रित महिलाओं के लिये स्थापित 'आश्रम' की पूरी जानकारी दी। इसी तरह पंढरपुर में विगत पच्चीस वर्षो से कार्यरत आश्रम की जानकारी दी। उनका प्रश्न था फिर से इस दिशा में प्रयास क्यों? स्वामी जी को इन आश्रमों के कार्यो की कल्पना ही थी। कर्वे जी के आश्रम में अनाथ महिलाएं प्रवेश पा सकती थी किन्तु अन्य बालकों के लिये कोई व्यवस्था नहीं थी। पंढरपुर के आश्रम में केवल गर्भवती विधवा ही प्रवेश पा सकती थीं। अन्य महिलाओं के लिये वहां जगह नहीं थी। महिला जीवन की अन्य समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए महिला सोमाबाई ने संयुक्त परिवार में उत्पन्न प्रश्नों को सामने रखा। एक परिवार में महिलाओं को अनेक प्रश्नों के सम्मुख जाना पड़ता है। उनके प्रश्नों को समझना भी आवश्यक है।

स्वामी जी ने सज्जनों द्वारा उपस्थित किये हुए प्रश्नों समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए कहा कि विभिन्न समस्याओं से घिरी हुई महिलाओं के हल के लिये एक ही मार्ग है स्थान स्थान पर महिला आश्रमों की स्थापना हो विवेकानन्द जी का मानना है कि विधवा महिलाओं के आंसू पौंछने के लिये निराश्रित भूखे बालकों के लिये एक व्यवस्था का होना नितांत आवश्यक है यही धर्म है, यही ईश्वर का कार्य है। मुम्बई शहर में इस संबंध में प्रयास अवश्य ही होना चाहिए यहां भी आवश्यकता है। सामाजिक संस्था की, और उसकी स्थापना हो। यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' इस श्लोक को सुनाने के पश्चात् स्वामी जी ने अपने विचारों को विश्रान्ति दी।

उपस्थितियों में विचारों की हलचल होने लगी। स्वामी जी के विचारों पर गहन चिंतन प्रारंभ हुआ। किसी ठोस निर्णय पर पहुंचने की आवश्यकता पर बल दिया जाने लगा। उपस्थितियों को लगा कि 'शुद्धि कार्य' आर्य हिन्दू जाती के लिये अमर बुटी है। इसे बार बार सींचने की आवश्यकता है। सींचते रहना चाहिए, फल जरूर प्राप्त होंगे। स्वामी जी ने मुम्बई में 'शुद्धि कार्य' के बीज बोकर अपने अगले गंतव्य स्थान की ओर चल पड़े।

स्वामी जी पूर्व की तरह 'शुद्धि कार्य' में जुट गये। स्थान-स्थान पर जा पहुंचे वहां धर्म परिवर्तित हिन्दुओं को बद्ध श्रृंखला से मुक्ति दिलाने के कार्य में जुड़ गये। उनका 'शुद्धि का कार्य' किसी एक प्रान्त तक सीमित न रहा भारत के अन्य प्रांतों में भी उन्होंने अपना शुद्धि कार्य प्रारम्भ किया। उनका यह कार्य मुसलमानों को खलता गया परिणाम वही हुआ जो होना चाहिए था। अब्दुल रसीद नामक मुसलमान युवक ने दिनांक 23 दिसम्बर 1926 को स्वामी जी पर गोली चलाकर उनकी हत्या कर दी। यह दुखद समाचार समूचे भारत को शोकाकुल कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। यह दुख समाचार मुम्बई तक पहुंचा। वहां के आर्य सज्जन तथा बुद्धिजीवी प्रतिष्ठित वर्ग शोक में डूब गया। मुम्बई शहर का यह विशेष वर्ग स्वामी जी के कार्यों विचारों से काफी परिचित था। स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा आमंत्रित जो सज्जन थे उन्होंने मुम्बई के गिरगांव स्थित मारवाड़ी विद्यालय में शोक सभा का आयोजन किया। शोक सभा के अध्यक्ष थे श्री जयकर। इस शोक सभा में दु:खद घटना की निंदा करनते हुए स्वामी जी के कार्यों का स्मरण किया गया और यह प्रण किया गया कि स्वामी जी के विचारों की एक संस्मरणीय संस्था स्थापित होनी चाहिए। शोक सभा समाप्त हुई। पर यह समाप्ति नहीं थी। यह तो प्रारम्भ था स्वामी जी के विचारों की संस्था स्थापित करने का स्वामी जी के प्रथम पुण्यतिथि के अवसर पर दिनांक 23 दिसम्बर 1928 को सर्वे कार्येषु सर्वदा 'शुभस्य शीघ्रम्' तत्व के अनुसार श्री नप्पू के घर पर एक सभा का आयोजन किया गया। इस सभा में परलकर राजानारायण लाल, बंशीलाल श्रीपाद नवरे, डॉ0 उदगावंकर, श्वेर आदि महानुभाव उपस्थित थे। स्वामी श्रद्धानन्द की स्मृति में श्रद्धानन्द महिला आश्रम की स्थापना की घोषणा की गयी। 1928 में स्थापित हुआ श्रद्धानन्द आश्रम मुम्बई के माटुंगा क्षेत्र में आज भी उसी तत्परता से अनाथ परित्यक्ता विधवा तथा बालक बालिकाओं को आश्रय देते हुए खड़ा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषि विज्ञान की दृष्टि में वेदों का महत्व

डॉ. सुषमा देवी गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर
संस्कृत-विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू- 180006

वैदिक साहित्य के सर्वप्रथम ग्रन्थ वेद हैं। भारतीय संस्कृति के इतिहास में इनका अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं गौरवमय स्थान है। वेद मानव मात्र के लिए प्रकाश स्तम्भ है। ज्ञानार्थ ''विद'' धातु से निष्पन्न वेद भारत में ही नहीं अपितु विश्व के समस्त मनीषियों के लिये ज्ञान-सेतु एवं अनन्त ज्ञान-राशि के अक्षय भण्डार हैं, जैसे कहा भी गया है - ''वेदात् सर्वं प्रसिद्धयति'' अर्थात् वेद से ही सब विकसित हुआ है अथवा 'वेदे सर्वं प्रतिष्ठतम्' अर्थात् वेद में ही सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान प्रतिष्ठित है। वह ज्ञान विज्ञान चाहे यज्ञ, ज्योतिष, सृष्टि, मनोविज्ञान, रसायन, जीव, वनस्पति, गणित, वास्तु, आयुर्वेद इत्यादि से सम्बद्ध हो अथवा कृषि से सम्बद्ध हो - इन सभी का मूलाधार वेद हैं। इनमें आधुनिक विज्ञान से भी कहीं अधिक उच्चतर वैज्ञानिक तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं।

वैदिक ऋषियों ने सहस्राब्दियों पूर्व मानवीय सभ्यता के शुभ चरण में प्रकृति प्रदत्त संसाधनों के महत्त्व एवं मूल्य को समझ लिया था। प्रकृति से उपहार में मिले पदार्थों को उन्होंने मानवजाति के कल्याण हेतु संसाधनों के रूप में, संतुलित उपयोगिता एवं प्रतिदाय के आधार पर पारस्परिक निर्भरता के संकल्प के साथ ग्रहण किया। उन्होंने जान लिया था कि पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश जो निरन्तर स्वयं को प्रस्तुत कर रहे हैं उनमें सहज ग्राह्य तेज, प्राण, वायु एवं अमृत स्वरूप जल विद्यमान हैं। प्राचीन मनीषियों ने पंचमहाभूतों के पारस्परिक समन्वय से उत्पन्न वन्य शस्य उत्पादों को संस्कारित करते हुए व्यवस्थित रूप से भूमि पर उगाना प्रारम्भ किया।

इस प्रकार भारतवर्ष वैदिक काल से ही कृषि प्रधान देश रहा है तथा प्राचीन भारतीय आर्यों की आर्थिक सम्पन्नता में कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ऋग्वैदिक काल में कृषि का पूर्ण विकास हो गया था। इस काल में 'कृष्टि' एवं 'चर्षणि' शब्द का प्रयोग केवल किसानों हेतु ही नहीं वरन् मानव मात्र के लिए किया जाता था। यह निश्चित रूप से कृषि की प्रधानता का द्योतक है। इतना ही नहीं, ऋग्वैदिक आर्य वर्षा की नियमितता एवं नदियों द्वारा भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए प्रकृति के दूतों (Factors governing the climate) की प्रार्थना एवं भान्ति-भान्ति के यज्ञादि किया करते थे जो निश्चित रूप से कृषि की प्रधानता एवं महत्त्व को उजागर करते हैं।[1] अतः स्पष्ट है कि वैदिक काल में कृषि-विज्ञान अत्यन्त उन्नत अवस्था में था। वैदिक साहित्य के आलोचनात्मक अध्ययन से विदित होता है कि तत्कालीन

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्थिक एवं सामाजिक जीवन नितान्त व्यवस्थित एवं सुसंचालित था तथा उत्पादन, वितरण, विनिमय एवं उपभोग के साधन विद्यमान थे। कृषि जीवनयापन के साधन के अतिरिक्त व्यवसाय का भी महत्वपूर्ण अंग था। पृथ्वी एवं भूमि की महत्ता की उन्हें अनभूति थी इसी कारण इसे वसुधा या वसुन्धरा कहा गया।

मानव जीवन अन्न पर निर्भर है। अन्न की प्राप्ति कृषि से होती है, अत: कृषि मानव जीवन का आधार है। कृषि को मानवीय कल्याण का साधन माना गया है। यजुर्वेद में राजा का प्रमुख कर्त्तव्य कृषि की उन्नति करना, जनकल्याण करना एवं धन-धान्य की वृद्धि करना बताया गया है। अथर्ववेद में कहा गया है कि अन्न मनुष्य जीवन का आधार है। इसके बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता है। इसीलिए वेद में अन्न को विश्व की प्रमुख समस्या भी बताया गया है। इसी समस्या के निवारण हेतु कृषि का आविष्कार हुआ।

1. **कृषि का इतिहास** - वैदिक काल में कृषि अत्यन्त गौरवपूर्ण कार्य माना जाता था। इसीलिए इन्द्र एवं पूषा दोनों देवो को इसमें योजित किया गया - इन्द्र: सीताम् निगृहणातु'।[2] अथर्ववेद में वर्णन है के विराट् ब्रह्म जब मनुष्य के निकट पहुँचे तो उन्होंने इसे इरावती या अन्न समृद्धि का संबोधन दिया। इस इरावती के दोहन से ही कृषि और सस्य प्राप्त किये गए थे। कृषि एवं अन्नय से ही मानव जीवन संचालित होता था।[3] इसी प्रकार ऋग्वेद के क्षेत्रपति, पर्जन्य, पृथ्वी, गो, आप:, अक्ष, नदी, विश्वेदेवा तथा आरण्यानी सूक्तों में कृषि की महत्ता का विवेचन है तो अथर्ववेद के कृषि सूक्त, अन्न सूक्त, अन्न समृद्धि सूक्त, ओदन सूक्त, ब्रह्मोदन सूक्त एवं वृष्टि सूक्त में कृषि के गौरव का गुणगान हुआ है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में लिखा गया है कि अश्विन् देवताओं ने मनु को हल चलाना सिखाया तथा यव की खेती करने की शिक्षा दी।[4] अथर्ववेद के अनुसार कृषि प्रारम्भ करने का श्रेय राजा पृथुवैन्य को जाता है।[5]

2. **कृषि** - वैदिक काल में कृषि का विकास ही नहीं हो रहा था वरन् यह एक वृत्ति के रूप में विकसित हो गया था। ऋग्वेद के दशम मण्डल[6] में कहा गया है कि 'हे जुए में आसक्त मानव! तू जुए के पासों से मत खेल प्रत्युत तू कृषि किया कर, परिश्रम से भूमि में कृषि कर तथा उसी को बहुत मानता हुआ प्राप्त धन में आनन्द प्राप्त कर। उसी कर्म में तुम्हारी पत्नी सुखी रहेगी। कृषि के अतिरिक्त वानप्रस्थ जीवन का उल्लेख भी ऋग्वेद में मिलता हैं, जिनका व्यवसाय गोपालन करना था। वनों से लकड़ियों को काट कर शकटी या गाड़ी पर लाया जाता था जो निश्चित रूप से एक व्यवसाय था। ऐसे व्यवसायों को आकृषिबल कहा जाता था। वानप्रस्थ जीवन बिताने वाले भी हिंसा नहीं करते थे। यह इस बात को प्रमाणित करता है कि वानप्रस्थी भी जीवनयापन हेतु अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर ही निर्भर थे। इस प्रकार वैदिक ऋषियों ने जान लिया था कि सुरक्षा हेतु कृषि ही एकमात्र उपाय है।

3. **कृषि योग्य भूमि** - कृषि हेतु सर्वप्रथम आवश्यकता भूमि ही है। यजुर्वेद में एक प्रश्न किया गया है कि बोने हेतु सर्वोत्तम स्थान क्या है? इसका उत्तर दिया गया है कि भूमि ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीज बोने हेतु सर्वोत्तम स्थान है।[7] यजुर्वेद में कहा गया है कि - कृषि की सेवा पुरुषार्थ चतुष्ट्य की सिद्धि होती है। इसी भूमि पर अपने पुरुषार्थ का वपन करने से हमें ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। वैदिक ऋषियों ने पृथिवी को माता कहा है। उसे प्रणाम करते हुए कहा गया है कि हम कृषि के लिए, अपनी रक्षा के लिए, पोषण के लिए, ऐश्वर्य के लिए तुम्हारी वंदना करते हैं -

नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्याऽइयन्ते राडयन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि धरुण:।
कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा।[8]

यजुर्वेद में एक स्थल पर कहा गया है कि ईश्वर ने हमें कृषि के लिए उत्पन्न किया है अत: सब पृथ्वी पर उत्तम अन्नों की कृषि करें व करावें।[9]

भूमि के प्रकार - वैदिक काल में भूमि को मुख्यत: दो भागों में बाँटा गया था - कृष्य एवं अकृष्य।

कृष्य - कृषि योग्य भूमि को कृष्य कहा गया है।[10] बौधायन धर्मसूत्र में इस भूमि को दो प्रकार का सीत्या एवं कौदाली हल्या अर्थात् जो हल की जोत में हो तथा जो कुदाल की जोत में हो बताया गया है। जोतने योग्य भूमि को शुना सीरिया भी कहा जाता था। अकृष्य उस भूमि को कहा गया है जिस भूमि पर कृषि संभव न हो। उत्पादन क्षमता के आधार पर कृष्य भूमि को तीन श्रेणियों में बाँटा गया है - 1. आर्तना, 2. अप्नस्वती एवं, 3. उर्वरा या क्षेत्र।

1. आर्तना (Unfertile Land) - परती या अनुर्वर भूमि को आर्तना कहा गया है जो अत्यन्त कंकरीली, पथरीली, जलहीन एवं उपजाऊ होती है।

2. अप्नस्वती (Medium Fertile Land) - यह वैसी भूमि होती थी जो उर्वरा होती है। इसमें कम परिश्रम द्वारा अधिक उपज होती है।

3. उर्वरा या क्षेत्र (Fertile Land) - यह कृषि योग्य अच्छी भूमि का द्योतक है। ऋग्वेद के अनुसार ऐसी भूमि में उत्साह से कृषि कर्म करने पर उजाड़ वन में इष्ट पदार्थ की उत्पत्ति होती है।[11] एक अन्य स्थल पर ऋग्वेद में कहा गया है कि उर्वरा भूमि (में उगे पौधों) हेतु जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश हितकारी है, राजा एवं मन्त्री उसी प्रकार शीघ्र उत्पन्न हुए पुत्र की तरह हमारी रक्षा करें।[12] इसे उर्वर या क्षेत्र भी कहा गया है। इसमें नियमित खेती होती है। बौधायन धर्म सूत्र में इस प्रकार की भूमि को 'इरीण' कहा गया है।[13]

अकृष्य- (Non Agriculture Land) अकृष्य भूमि को भी तीन भागों में बांटा गया है 1. ऊसर, 2. खिल्य या खिल अर्थात् बंजर भूमि या परती तथा 3. अरण्य या जंगल। इनमें से लवणयुक्त भूमि जो मवेशियों के चारे के लिए उपयुक्त मानी जाती थी, को 'ऊष' कहा जाता था जो कालान्तर में ऊसर का पर्याय बन गयी।[14] सामान्यता कृषि योग्य भूमि के चारों ओर घासयुक्त भूमि (Agripastoral system) को खिल या -खिल्य' (Follow Land) कहा जाता था। यह भूमि पशुओं की चराई के लिए रखी होती थी। तथा जिस भूमि में बड़े-बड़े वृक्ष पाये जाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे उसे अरण्य (Forest Land) कहा जाता था। यह गांव के बाहर की आकृषित भूमि होती थी किन्तु इसे बंजर नहीं कहा जा सकता क्योंकि अनेक प्रकार के खाद्यान्नों औषधियों की प्राप्ति भूमि के अतिरिक्त अरण्यों से भी की जाती थी।[15] जिस भूमि में अन्न नहीं बोते थे उसे खल कहते थे। यह बिना जुती हुई भूमि खलिहान का काम करती थी। इसमें कृषि से उत्पन्न अन्न को साफ किया जाता है तथा भूसा आदि हटाकर भण्डारण के योग्य बनाया जाता है।[16]

गव्यूति (Pasture Land) - ऋग्वेद में एक स्थान पर घास के मैदान या जानवरों के चरागाह के लिए गव्यूति शब्द का प्रयोग हुआ है[17] तथा एक अन्य स्थान पर दो कोस की दूरी के लिए इस शब्द का प्रयोग हुआ है।[18] घास के मैदान की विशालता को देखते हुए संभवत: ऐसा प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में ही प्रयुक्त इस शब्द का अर्थ गेल्डनर[19] ने सड़क[20] एवं भूमि[21] माना है। उत्तरकालीन संहिताओं में इसे गोचर या ब्रज कहा जाने लगा।

क्षेत्र-जय (Alluvial Soil) - ऋग्वेद के अनुसार नदी द्वारा लाई गई मिट्टी से क्षेत्र का निर्माण होता था जिसे क्षेत्र जय कहते थे।[22]

पहाड़ी खेती (Hill Agriculture) - अथर्ववेद के एक सूक्त से विदित होता है कि पहाड़ी क्षेत्रों में भी कृषि होती थी किन्तु वहाँ दुर्गम परिस्थितियों को देखते हुए लोग मैदानी भागों की ओर जाना पसन्द करते थे :-

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्यं प्रतरता सखाय:
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान्।।[23]

अर्थात् हे मित्रों! यहां बहुत पत्थरों वाली नदी बहती है। मिलकर उत्साह करो, वीर बनों तथा पार हो जाओ। जो यहां दुर्गम मार्ग हैं उन्हें छोड़ो और रोगरहित अन्न आदि भोगों की तरफ उतरो।

उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मंन्वती नदी स्यन्दत इयम्।
अत्रा जहीत ये असन्नशिवा: शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान्।।[24]

अर्थात् हे मित्रों! उठो और उतर चलो। यहां बहुत पत्थरों वाली नदी बहती है। यहां जो कुछ भी अमंगलकारी वस्तु है, उसे छोड़कर आनन्दकारी भोगों की ओर उतरो।

कृषि के साधन - वैदिक काल में कृषि की बड़ी महिमा थी। उत्तम कृषि के लिए नए-नए साधनों का उपयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था। हल, बैल आदि की जुताई में बहुत मूल्य था तथा कुदालों इत्यादि से भी हाथों से जुताई होती थी। खेतों की जुताई कृषि का एक आवश्यक अंग माना जाता था।

हल - हल का साधारण नाम लांगल या सीरा था। हल को पकड़ने का दस्ता होता था जिसे वेदों में 'तसरु'[25] कहा गया है। कृषि जोतने का हल बड़ा तेज, कल्याण करने वाला एवं मूठ से युक्त होता था। भूमि में प्रविष्ट होकर जमीन उखाड़ने वाले उपकरण को ऋग्वेद में 'फाल'[26] कहा गया है। गाँव में आज भी इसे फाली कहा जाता है। फाल के लिए वेदों में 'स्तेग'[27] शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रयोग भी हुआ है। हल चलाने से क्षेत्र में जो मिट्टी खुद जाती थी उसकी कतार बन जाती थी उसे ही 'सीलता'[28] कहते थे। किसान हलों (Plough) से खेतों की अच्छी जुताई करते थे एवं उसके बाद ही बुआई करते थे।[29] ऋग्वेद में कहा गया है कि कृषि कर्म में कुशल जन खेतों को निरन्तर जोतकर एवं बीज बोकर अन्न एवं धनों को पाते हैं।[30] शतपथ ब्राह्मण में जोतने के लिए 'कृषन्त:'[31] शब्द का प्रयोग हुआ है तथा गोभिलगृह्यसूत्र में भूमि को जोतने को 'निवर्तन'[32] कहा गया है।

ऋग्वेद में कहा गया है कि किसान खेत जोतने के साधन हल आदि को चलाते हैं एवं नाना प्रकार के जुओं को फैलाते हैं।[33] यहाँ युगा शब्द से यह अर्थ निकलता है कि भिन्न-भिन्न कृषि कार्यों हेतु विभिन्न प्रकार के जुए प्रयुक्त होते थे। पारस्करगृह्य सूत्र में बैलों के कन्धे पर रखकर हल जोतने की क्रिया को हलाभियोजन कहा गया है।[34]

अथर्ववेद में कहा गया है कि हमारे हल (लांगल) मजबूत हों, हल की लम्बी लकड़ी या हरस (ईषा) मजबूत हो, एवं जुआ मजबूत हो।[35] यहां हल, जुओं एवं हरस ग्रामीण में **'हलस'** कहते हैं। की मजबूती के लिए प्रार्थना करने का यह तात्पर्य निकलता है कि खेत की मिट्टी संभवत: कडी (Heavy Clay Soil) रही होगी तथा खेत जोतने के समय हल प्राय: टूटता रहा होगा। ऋग्वेद से ही स्पष्ट होता है कि हलों के फाल शुद्ध लोहे से बने होते थे, एवं टूटने पर उनको फिर-फिर बनाया जाता था। यथा - हल के फाल जमीन के अन्दर जाएं, भूमि जल से युक्त हों तथा हमारे शुद्ध फाल जो बनाए गए हैं वे सुदृढ़ हों।[36] ऋग्वेद में ही फाल को अर्वाची अर्थात् नीचे की ओर जाने वाला भी कहा गया है।[37] यहां नीचे जाने वाली सीता का तात्पर्य गहरी जुताई से है तथा इसी कारण इसको सौभाग्य एवं सफलता देने वाली कहा गया है। हल की लीक या रेख को कार्ष्मन् (Furrow) कहा जाता था। वैदिक सभ्यता के आरम्भिक काल में 'हल' के 'फाल' को 'सीता' कहा जाता था किन्तु बाद के साहित्यों में एवं सूत्र काल में 'सीता' जुती हुई 'भूमि' को कहा जाने लगा।[38] ऋग्वेद से ही ज्ञात होता है कि वैदिक काल में कृषि कार्य में प्रयुक्त श्रमिकों के प्रति प्रेम भावना बरती जाती थी एवं सुखपूर्वक कार्य करने की कामना की जाती थी यथा - बैल आदि पशु सुख को प्राप्त करें, कृषि कार्य करने वाले मनुष्य सुख को प्राप्त करें, हल सुखपूर्वक पृथ्वी में प्रविष्ट हों, बैल को रस्सी से सुखपूर्वक बांधा जाए खेती के साधन आदि सुखपूर्वक वृद्धि को प्राप्त हों। तथा फाल सुखपूर्वक भूमि को खोदें, कृषि कार्य करने वाले किसान सुख को प्राप्त करें, बैल सुखपूर्वक चलें, मेघ आदि मधुर जल को वर्षावें और कृषि कार्य करने वाले भृत्य सुख को प्राप्त करें।[39]

वैदिक काल में खेत की जुताई करने के बाद उसमें हेंगा या चौकी देने की परम्परा भी थी। ऋग्वेद में कहा गया है कि किसान हल (सीरा) को जोतें, जुओं (युग यानि Yoke) को फैलाएं, सुसम्पादित खेत में यानि Pulvarised field बीज को बाएं, हमारे अन्न खूब पुष्ट हों एवं हमारे पके हुए अन्न दातरी या हँसुओं के पास आवें।[40] बौधायन धर्मसूत्र में कहा गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि जोती हुई भूमि को समतल बनाने हेतु अथवा उसके लोष्ठ का मर्दन करने हेतु निकष (Plank) का प्रयोग होता था। इसके दोनो छोर पर रस्सी बांध कर खींचा जाता था तथा एक व्यक्ति इस पर बैठा रहता था। इसे बैलों द्वारा भी खींचा जाता था तथा कर्षक इस पर खड़ा रहता था।[41]

बैल - वैदिक काल में कृषि का समस्त कार्य बैलों द्वारा किया जाता था। वैदिक काल में कृषि कार्य बैलों द्वारा किया जाता था। अत: बैल को बधिया नहीं किया जाता था इसीलिए बैलों को अनड्वा अर्थात् (अण्ड सहित) या ''ऋषभ अनड्वान'' कहा जाता था। बैलों को बलीवर्द, वृषभ, धूर्यवाह या गो भी कहा जाता था। हल में एक लम्बा-मोटा बाँस बांधा जाता था, जिसके ऊपर जुआ रखा जाता था। गले में बांधा जाता था। हल खींचने वाले बैलों की संख्या छ:, आठ, बारह अथवा चौबीस तक होती थी, जिससे हल के बृहदाकार एवं भारी होने का अनुमान लगाया जा सकता है। अथर्ववेद[42] एवं काठकसंहिता[43] में इस बात का उल्लेख है कि हलों में आठ, दस एवं बारह तक बैल जोड़े जाते थे। हल से बैल चलाने हेतु एक चाबुक की आवश्यकता होती है। चाबुक चलाने से बैल कार्य करते हैं। वेदों में इसके 'वरत्र' 'तोद' एवं 'अष्ट्रा' नाम उल्लिखित हैं।[44]

हाथ से खेत की खुदाई के लिए वैदिक काल में भी कुदाल, लचा, फावड़ा अथवा खरपा आदि का प्रयोग किया जाता था। बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार खेत को कुदालों द्वारा भी जोता जाता था।[45] वेदों में इसको ''खनिज'' कहा गया है।[46] 'हंसिया' का प्रयोग काटने हेतु होता था जिसे 'दात्र' कहा गया है। ऋग्वेद में 'दात्र'[47] को सृणि' भी कहा गया है। फसलें बोने, जोतने तथा काटने की प्रक्रियाएं वैज्ञानिक ढंग पर चल चुकी थीं।[48] दात्र या सृणि नामक हंसिये से काटकर पुले बनाए जाते थे। पुले को 'पर्ष'[49] कहा जाता था। भूसे अथवा डण्ठल से अन्न को वायु के वेग से चालन से अथवा सूप से पृथक किया जाता था।[50] अन्न को 'अंदर' नामक पात्र से नापा जाता था। कृषि करके धान्य का संग्रह किया जाता था तथा यह कार्य जो स्वयं करता उसे 'धान्यकृत' नाम से कहा गया है।[51]

बीज एवं उसकी बुआई - ऋग्वेद के अनुसार कृषि में प्रयुक्त बीजों की गुणवत्ता का ध्यान रखा जाता था। कृषक जंगल को काट कर क्षेत्र का निर्माण करते थे।[52] शतपथ ब्राह्मण में बुआई हेतु 'वपन्त:'[53] शब्द का तथा गोभिलगृह्यसूत्र में 'प्रवपण'[54] शब्द का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद के अनुसार खेतकी अच्छी तरह तैयारी के पश्चात् बीजों को बोया जाता था; तथा ध्यान रखा जाता था कि बीज समान रूप से फैलें। खेतों में बीज की एक निश्चित मात्रा ही दी जाती थी एवं पौधों की एक निश्चित संख्या ही बरकरार रखी जाती थी। बीज के आकार का भी ध्यान रखा जाता था तथा यह कोशिश की जाती थी कि खड़ी फसल के आकार एक समान हों। फसल को झाड़ने, सुखाने एवं भण्डारण आदि में हुए कुव्यवहार द्वारा नष्ट बीजों से भी यह कामना की जाती थी कि वे भी अंकुरित हो जाएं यथा - मैं इस पृथ्वी के भीतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीज का प्रवेश करता हूँ। यह तेरी भिन्न-भिन्न रूप वाली आकृति एक समान हो जाए। जो-जो बीज कुव्यवहार द्वारा जल गया या खरोंच गया उस कारण से तू मत बह जा। वेद विज्ञान द्वारा में उस बीज को समान रूप से फैलाता हूँ।[55] इससे स्पष्ट है कि वैदिक काल में कृषि में प्रयुक्त बीजों की गुणवत्ता का ध्यान रखा जाता था। ऋग्वेद में बीज की उत्तम किस्म के लिए 'अक्षितम् बीज' का प्रयोग हुआ है[56] बीजों को बोते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था कि बीज जुती हुई हलाई अर्थात् पंक्ति या नालि के बीज में पड़ें[57] गन्ने की बुआई हेतु विशेष रूप से बनाई जानी वाली नालियों के लिए 'अधिगर्त' शब्द का प्रयोग किया जाता था।[58]

बीज बोने वाले, धान्यों को काटने वाले एवं अन्नों को स्वच्छ करने वाले को धान्याकृत् (Farmers) कहा जाता था। अधिकतर मनुष्यों का व्यवसाय कृषि होने के कारण धान्याकृत् का प्रयोग मनुष्य के लिए किया गया है।

बीज उत्पादन (Seed Production) - वैदिक काल में खाद्यान्नो के उत्पादन के साथ ही किसानों द्वारा उत्तम भूमि पर बीजों का भी उत्पादन किया जाता था। किसान फसल चक्र भी अपनाते थे (Crop rotation) तथा हल द्वारा खेत की अच्छी जुताई करके बीज बोते थे। यथा अथर्ववेद[59] में एक स्थल पर कहा गया है कि जैसे बीज उपजाऊ धरती में फाल द्वारा जोतने से उपजता है और अन्न के ऊपर अन्न उपजते हैं उसी प्रकार मुझे सन्तान एवं पशु आदि उत्पन्न हों। यहाँ अन्न या धान्य के बदले बीज शब्द का प्रयोग बीज उत्पादन की ओर तथा अन्न के बाद अन्न फसलचक्र की ओर संकेत करता है।

वैदिक कालीन कृषि विज्ञान का मूल्यांकन करते समय सिंचाई विज्ञान पर विचार करना अत्यावश्यक है। अन्न-उत्पादन की अपेक्षा जल सिंचन-व्यवस्था से कृषि की वास्तविकता का बोध होता है। कृषि कार्य की समृद्धि एवं सम्पन्नता हेतु कृषि योग्य भूमि की समय-समय पर आवश्यकतानुसार सिंचाई होना अनिवार्य है। आज के सहस्रों वर्ष पूर्व वैदिक काल में भी सिंचाई के उन्हीं साधनों का प्रयोग किया जाता था जिन-जिन साधनों का वर्तमान काल में किया जाता है। ऋग्वेद में कृषि के लिए चार स्रोतों से जल प्राप्त करने की बात कही गई है यथा -

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥[60]

अर्थात् जो शुद्ध जल चूते हैं अथवा जो खोदने से उत्पन्न होते हैं जो अपने आप उत्पन्न होते हैं, अथवा जो समुद्र के लिए हैं या जो जल शुद्ध करने वाले हैं, वे हमारी रक्षा करें। इस प्रकार चार प्रकार के स्रोत हैं। प्रथम दिव्य अर्थात् वर्षा का जल, द्वितीय खनित्रिमा कूएं इत्यादि का जल, तृतीय 'स्वयंजाः' अर्थात् स्रोत आदि का जल चतुर्थ समुद्रार्था अर्थात् समुद्र से मिलने वाली नदियों का जल।

अथर्ववेद में जल के विषय में वर्णित है कि "हमारे लिए निर्जल देश के जल, जल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले देश के जल, खनती या फावड़े से निकाले गए जल, घडों द्वारा उठाए गए जल एवं वार्षिकी जल सुखदायी हो।''[61] तात्पर्य यह है कि अथर्ववेद में धन्वन्या: अर्थात् अनावृष्टि (Droght) एवं अनूप्या अर्थात् अतिवृष्टि (Heavy Downpour) तथा खनित्रिमा अर्थात् कृत्रिम जलाशय नहर, डेम आदि की ओर संकेत किया गया है।[62]

इसी वेद के अन्य स्थल पर हेमवती जल अर्थात् हिमनदी से प्राप्त (Water received from Glaciers) एवं वर्षा के पश्चात् बहने वाले जल (Surface Runoff) की भी चर्चा है।[63] इतना ही नहीं अथर्ववेद में विदित होता है कि भूमि के गर्भ में स्थित गहरे जल (Deep underground water) का एवं उसके गुणों का भी तत्कालीन लोगों को ज्ञान था तभी तो कहा गया है कि 'गहरे स्थानों से खोदकर निकाले गए जल कभी हानि करने वाले नहीं होते हैं एवं वे वैद्यों के भी वैद्य होते हैं।[64]

यजुर्वेद में भी पतली नालियों, पोखरों, तालाबों एवं नदियों से कृत्रिम उत्तोलन द्वारा ऊँचे क्षेत्रों के लिए उठाए जाने वाले जलों, झरनों, कृत्रिम नालों के पानी, वृष्टि से प्राप्त जलों का उल्लेख हुआ है। इनके उल्लेख का कारण इन स्रोतों से प्राप्त जल से बड़ी सुगमता से कृषि कार्य को किया जाना है।[65] सिंचाई के अनेक साधन होने पर भी वर्ष को सिंचाई का प्रमुख साधन माना गया है तभी तो वेदों में अनेक स्थानों पर वर्षा होने की प्रार्थनाएं की गई हैं।[66] किन्तु अतिवृष्टि उपज के लिए हानिकारक है अत: अधिक वृष्टि के बंद होने के लिए की गई प्रार्थनाओं के भी उल्लेख उपलब्ध होते हैं।[67]

इस प्रकार जल विषयक विस्तृत वर्णनों से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में जल प्राप्ति के अनेकानेक साधन तत्कालीन मानव के पास कृषि हेतु उपलब्ध थे। यथा- वर्षा, नदियाँ, कुऐं, तालाब, नहरें, झीलें (ह्रदों), सजल धाराऐं, नलिका इत्यादि।

सिंचाई जल के गुण - (Quality of Irrigation water) - वैदिककालीन कृषकों को सिंचाई के विभिन्न साधनों के प्रयोग के अतिरिक्त जल के गुणों का भी ज्ञान था जैसा कि ऋग्वेद के चौथे मण्डल से ज्ञात होता है कि - ''हे क्षेत्र के स्वामी एवं भृत्य! आप दोनों इस कृषि विद्या को प्रकाश करने वाले ज्ञान से इस जल को जानें तथा इससे इस भूमि को सींचे।''[68] जल की गुणवत्ता के विषय में अथर्ववेद का कथन है कि - ''आकाश से गिरने वाले जल एवं स्रोतों से निकलने वाले फैलते जलों के पोषण सामर्थ्य का निश्चय करके ही तुम वेग वाले बलवान् पुरुष या घोड़े के समान तेज वाले हो सकते हो।[69] इसी कारण से वेदों में जल के विभिन्न स्रोतों का नामकरण भी उनके गुण के आधार पर किया गया है यथा - नाद करने वाला जल को 'नदी' नाम से, प्राप्त करने योग्य जल को 'आप' नाम से, वरण करने योग्य जल को 'वारि' नाम से तथा ऊपर की ओर चढ़ने वाले जल को 'उदक' नाम से अभिहित किया गया है।[70]

खाद (Fertilister) - कृषि हेतु भूमि विज्ञान सिंचाई विज्ञान के साथ-साथ खाद विज्ञान पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी यथोचित ध्यान दिया गया था। वैदिक काल में खादों को 'शकन्' कहा जाता था। खेतों में दिए जाने वाले प्राकृतिक खाद हेतु जानवरों/पशुओं के गोबर का प्रयोग किया जाता था जिसे 'करीष'[71] कहा जाता था। इसकी महत्ता के विषय में अथर्ववेद में कहा गया है कि - इस गोशाला में रहने वाली गाएँ निर्भय रहती हैं, अमृतमय रस को धारण करती है, नीरोग (अनमीवा) है तथा गोबर देने वाली है।[72] स्पष्ट है कि गोबर देने वाली गाय को अच्छा मानना गोबर की महत्ता को दर्शाता है। अथर्ववेद में अन्यत्र उदुम्बर वृक्ष की विशेषता के सन्दर्भ में कहा गया है कि इस उदुम्बर वृक्ष के तेज से हमारी गाय बहुत गोबर देने वाली, हमारे वृक्ष अधिक फल देने वाले तथा हमारी भूमि बहुत अन्न देने वाली हों।[73] अथर्ववेद के एक स्थल से विदित होता है कि अन्न के छिलकों को भी खाद रूप में प्रयुक्त किया जाता था। वहां कहा गया है कि- 'सुवर्ण क्षेत्रों से उत्पन्न अमृतमय अन्न को ग्रहण करें, भूसों को अग्नि के बीच फैला दें तथा छिलकों या अवशिष्टों (कम्बूकान्) को धोकर दूर फेंक दें। इसे गार्हपत्य अग्नि का या पृथ्वी का भाग समझना चाहिए।[74] यहां अवशिष्टों (कम्बूकान्) छिलकों को पृथ्वी का भाग समझने का तात्पर्य उसका खाद बनाकर पृथ्वी की उर्वरा-शक्ति को बनाए रखने से ही है।

सस्य अर्थात फसल की कटाई, झड़नी एवं दमाही (Harvesting, Threshing and Winnowing) - 'शतपथ ब्राह्मण' में सस्य अर्थात् फसल को काटने की क्रिया हेतु 'लुनन्त:'[75] शब्द का प्रयोग हुआ है तो 'गोभिल गृह्यसूत्र' में 'प्रलवन'[76] शब्द का प्रयोग। पकी हुई फसल को हंसिया (दात्र या सृणि) से काटा जाता था एवं उन्हें गठ्ठरों (पर्ष) में बाँधा जाता था। ऋग्वेद के अनुसार खलिहान[77] में पड़े सूखे जौ, गेहूँ एवं अन्य फसलों को पटक-पटक कर झाड़ा जाता था। इस क्रिया को शतपथ ब्राह्मण में 'मृणन्त:' कहा गया है। तत्पश्चात् इस अन्न को सूप (शूर्पम) द्वारा ओसा कर या फटक कर भूसा (तुषम्) एवं तिनकों (पलावान्) आदि को अनाज से अलग किया जाता था। अन्नों को चलनी (तितउ) से चाला जाता था। ओसाने वाले को धान्याकृत[78] कहा जाता था। अन्न को साफ करने के बाद ऊर्दर में रखकर मापा जाता था।[79] अनन्तर अन्न को ओखली (उलूखल) में रखकर मूसल से कूटा जाता था[80], तथा इसे सूप (शर्प)[81] द्वारा फटक-फटक कर भूसी (तुष)[82] को साफ किया जाता था। इस भूसे का प्रयोग जलावन[83] के लिए किया जाता था।

कृषि यन्त्र - वैदिक काल में कृषि की कटाई के लिए विभिन्न प्रकार के कृषि यंत्रभी निर्मित कर लिए गये थे। यथा - अरणी, सृणी, स्वधिति, क्षत्रोण, हरस, शम्या, दृषद, एवं फलक आदि जिनमें से **अरणी** एक प्रकार का यंत्र था जिससे यज्ञादि में अग्नि उत्पन्न किया जाता था। ऊपर की लकड़ी जिसे **उत्तरा** कहा जाता था, अश्वत्थ या पीपल का बना होता था। यह बर्गे के आकार का होता था। नीचे की लकड़ी जिसे अधरा कहते थे, शमी का बना हुआ तख्ता होता था। ऊपर वाली लकड़ी के हाथों से या रस्सी से कसकर आगे पीछे किया जाता था जिससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि उत्पन्न होती थी। **सृणी** हँसिए को कहा जाता था तथा इससे सस्य काटने का काम किया जाता था। मोटी डण्ठलों को काटने के लिए पर्शु[84] या दातृ का प्रयोग किया जाता था। **स्वधिति** एक प्रकार के कुठार का द्योतक है जिससे लकड़ी को काटा जाता था। **क्षणोत्र** हथियारों को तेज करने के लिए सान का प्रयोग किया जाता था एवं इसके पत्थर को क्षणात्र कहा जाता था। **हरस** - एक प्रकार की चलनी थी जिससे सोम को छाना जाता था। **शम्या** एक प्रकार की लकड़ी होती थी, जिस पर चक्की के दो पत्थरों जिसे दृषद् कहा जाता था, में से निचले पत्थर को रखा जाता था। **दृषद्**[85] से चनों को पीसा जाता था तथा फलक[86] सोम को दबाने के लिए जिस पटरे का प्रयोग किया जाता था, उसे फलक कहते थे।

कृषि उपज - कृषि से उत्पन्न होने वाले अन्न को तैत्तिरीय संहिता[87] में कटने के हिसाब से चार वर्गों में विभाजित किया गया है यथा प्रथम ग्रीष्म में कटने वाली, इसमें जौ, गेहूँ मुख्य हैं, द्वितीय वर्षा ऋतु में कटने वाली, तृतीय शरद् में कटने वाली, इसमें मुख्य धान हैं। धान के तीन मुख्य प्रकार बताये गये हैं - कृष्ण (काला), आशु (जल्दी पकने वाला), तथा महाव्रीहि (बड़े दानों वाला)। इन भेदों में आशु "साठी" नामक धान को लक्षित करता है, क्योंकि यह धान साठ ही दिनों में पक कर तैयार हो जाता था - "षष्ठिका षष्टि रात्रेण पच्यते।" धान का साहचर्य सदा यव के साथ बताया गया है, चतुर्थ हेमन्त और शिशिर में कटने वाली।

इनमें माष (उड़द) एवं तिल मुख्य हैं। इसी संहिता में एक अन्य स्थान पर मुख्य दो फसलों का उल्लेख है।[88] इन्हें रबी और खरीफ की सस्य या फसल समझना चाहिए।

यजुर्वेद के एक प्रसिद्ध मन्त्र में व्रीही (धान), यव (जौ), माष (उड़द), तिल, मुद्ग (मूंग), खल्ब, प्रियंगु, अणु श्यमाक, नीवार, गोधूम तथा मसूर का उल्लेख है।[89] यजुर्वेद में चावल की पांच किस्मों - महाव्रीहि, कृष्णव्रीहि, शुक्लव्रीहि, आशुधान्य तथा हायन का उल्लेख हुआ है। महाव्रीहि इनमें सबसे अच्छी किस्म मानी जाती थी एवं इसके चावल बड़े आकार के होते थे। कृष्णव्रीहि का रंग काला होता था। आशु-व्रीहि को शष्टिका या साठ (साठ दिनों में पकने वाला कहा गया है)। हायन नामक चावल लाल रंग का होता था तथा यह एक वर्ष में पकता था। ऋग्वेद में कृषि उपज के रूप में केवल धान्य एवं यव का उल्लेख हुआ है तथापि इसका अर्थ यह नहीं ग्रहण किया जाना चाहिए कि वैदिककालमें केवल धान्य एवं यव की ही उपज हुआ करती थी। अपितु ऋग्वेद में 'यव' शब्द सभी प्रकार के अन्नों का द्योतक है। ऋग्वेद में पके हुए भात के रूप में चावल का स्पष्ट वर्णन है।[90] अथर्ववेद में अन्न फसलों के लिए सस्य शब्द का प्रयोग किया गया है, तथा ईख या ईक्ष, यव, तिर्य या तिल, खल्व अर्थात् चना, उदड़, आबथु/सरसों तथा ब्रीहि का उल्लेख है।[91]

उपरोक्त फसलों के अतिरिक्त वैदिक काल में अन्य अनेक फसलें भी कृषि कर्म द्वारा उपजाई जाती थी, यथा - अण अर्थात् चीना या चीनक, प्रियंगु, श्यामाक अर्थात् कौनीधान, श्यामा एवं साँवा, आम्ब या नाम्ब, उपवाक जिससे करम्भम् तथा सत्तू बनते थे, अक्षत या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षित, एरण्ड, खलकुल, धान्य-वल्लरी, गोधूम, तार्ष्टाध, सर्षप या सरसों, ताजद या सन/सनई तथा शण आदि। इसके साथ ही वैदिक काल में असंख्य प्रकार के फलों, सब्जियों, औषधियों आदि की भी कृषि की जाती थी; जो सृष्टि के आदिकाल से मानव जीवन के लिए अनिवार्य रही है।

पशु-पालन - वैदिक काल में विज्ञान के उच्चस्तर पर विकसित कृषि के लिए पशुपालन सम्बन्धि भी विकास हो चुका था। पशुसंपदा का कृषि के लिए उपयोगी होने की दृष्टि से ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में पशुपालन एवं पशु-सवंर्धन पर विशेष बल दिया गया है। अथर्ववेद में तो पूरे दो सूक्त पशु-संवर्धन एवं गोशाला से ही सम्बद्ध हैं।[92]

ऋग्वेद का कथन है कि पशु-संवर्धन के लिए व्रज (गोशाला) बनावो।[93] इनमें ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे गाय, अश्व आदि पशु इनमें पूरी सुविधा के साथ रह सकें।[94] व्रज मनुष्यों की दुग्ध आदि की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं, अत: ''नृपाणो''[95] कहा गया है। अथर्ववेद में गोशाला के लिए गोष्ठान शब्द भी आया है।[96]

अथर्ववेद में गोशाला के विषय में मुख्य रूप से बातें कही गई हैं - 1. इनमें गाय, बैल आदि के बैठने हेतु सुन्दर स्थान हो, अन्न-जल की व्यवस्था हो, प्रकाश की व्यवस्था हो तो दिन में जो सुविधाएं प्राप्त हैं, वे रात्रि में भी हों।[97] 2. वे एकत्रित होकर चारागाह में घूम सकें, उन्हें किसी प्रकार का भय न हो। उन्हें कोई रोग न होने पावे। वे मधुर दूध दें।[98] 3. गोशाला में नई गाये भी आती रहें। गोशाला में सभी पशु हृष्ट-पुष्ट हों। वे बच्चों को जन्म दें। गोशाला उनके लिए सुखद हो।[99] 4. गोशाला में उनके पालन-पोषण की पूर्ण सुविधा हो जिससे निरन्तर वृद्धि हो। जिसके फलस्वरूप कृषि कार्य में हमें पशुओं का पूर्ण योगदान मिलता रहे तथा हमारी कृषि उन्नत हो।[100]

वेदों में गाय के तो सहस्रों संदर्भ हैं, गाय अर्थ-व्यवस्था का सशक्त आधार थी। गाय के अतिरिक्त अश्व, अजा, अविका आदि अन्य पालतू पशु थे। इस भान्ति उपरोक्त से स्पष्ट है कि कृषि की सहायतार्थ कृषि के साथ-साथ पशु-पालन का उद्योग भी वैदिक काल में सफलतापूर्वक चलता था। इन दोनों उद्योगों की पारस्परिक संगति देखकर ही तत्कालीन समाज ने इनको अपनाया होगा। कृषि से केवल मनुष्य का भोजन ही नहीं उत्पन्न होता था, अपितु पशुओं का भी भोजन उत्पन्न होता था। पशुओं में सबसे बढ़कर महिमाशाली बैल है। वह हल खींचकर कृषि के कार्य के लिए अत्यधिक लाभकारी है। कृषि के अन्तर्गत अन्न के साथ ही औषधियों, फलों, सब्जियों तथा विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों के उत्पादन क्षेत्र, उनका मनुष्य के लिए उपयोग एवं महत्त्व वैदिककालीन ऋषियों को भली-भाँति विदित था तथा उस काल में इन सभी की कृषि की जाती थी।

इस प्रकार कृषि कर्म को वेद में सर्वाधिक महत्त्व दिया गया तथा वैदिक प्रार्थनाओं में कृषि समृद्धि तथा प्रक्रिया के निर्बाध रहने की प्रार्थनायें की गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुनं नः फाला विकृषन्तु भूमिं
शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः
शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम्।।[101]

वेदों में कहा गया है कि जिसके पास अन्न की बहुलता है वही समाज में प्रतिष्ठित है - ''यस्यैः वै ह भूयिष्ठान्नं भवति स एव भूयिष्ठं लोके विराजति''।[102] उस समय जो कृषि विद्या में निपुण होते थे उन्हें कृष्टराधि तथा उपजीवनीय (सकल आजीविका वाला) कहा गया है - कृष्टराधि रूपजीवनीयो भवति।[103] कृषि विशेषज्ञों को अन्नविद[104] नाम दिया गया है।

वेद में कृषि को पवित्र कार्य कहा गया तथा कृषक का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण रहा।

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामासि।
गामश्व पोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे।।
क्षेत्रस्यपते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु।।
मधुमतीरोषधीर्द्यव आपो यधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम।।[105]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि वैदिक काल में कृषि वैज्ञानिक अवस्था को प्राप्त कर चुकी थी। अन्न उत्पन्न करने के कारण किसान के लिए अन्नपति, अन्नाद जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है। अथर्ववेद में कृषि को श्रेष्ठ उद्योग के रूप में प्रशस्त माना गया, जिसका उपयोग विद्वज्जन सुख प्राप्त करने के लिए करते हैं - 'सीरा युञ्जन्ति कवयो'।[106] इससे एक ओर तो तत्कालीन समाज की भौतिक आवश्यकताएं पूरी होती थीं तथा दूसरी ओर राष्ट्र सम्पन्न होता था। जैसे उस समय कृषि राष्ट्र की सम्पन्नता, समृद्धि एवं महिमा के साथ ही साथ स्वास्थ्य एवं श्रेष्ठ सामाजिक जीवन की प्रतीक थी, वैसे ही आज भी भारत की अर्थव्यवस्था बड़े-बड़े बांधों, नहरों, उद्योगों, कृषि उपकरण उद्योगों तथा कृषि उत्पादन प्रसंस्करण एवं कृषिजन्य उत्पादों से सम्बन्धित उद्योगों पर टिकी हुई है। अतः स्पष्ट है कि कृषि विज्ञान की दृष्टि से वेदों का सर्वोपरि महत्त्व है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाद-टिप्पणियाँ

1. इकोनॉमिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस इन एंशियंट इन्डिया, नारायण बन्दोपाध्याय, पृ. 126
2. ऋग्वेद, मण्डल-4, अध्याय-17, सूक्त-57, मन्त्र-7
3. ते कृषिम् च सस्यम् च मनुष्याः उपजीवन्ति।। - अथर्ववेद, काण्ड-8, सूक्त-10, मन्त्र-24
4. यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा।
   अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय।।-ऋग्वेद, मण्डल-1, सूक्त-117, मन्त्र-21
5. तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रं।
   तां पृथी वैन्योऽधोक् तां कृषि च सस्यं चाधोक् - अथर्ववेद, काण्ड-8, सूक्त-10, मन्त्र-(4) 10-11
6. अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः।
   तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः।। -ऋग्वेद, मण्डल-10, अध्याय-3, सूक्त-34, मन्त्र-13
7. किंम्वावपनं महत्। भूमिरावपनं महत्। -यजुर्वेद, अध्याय-23, मन्त्र-45-46
8. यजुर्वेद, अध्याय-9, मन्त्र-22
9. सुसस्याः कृषीस्कृषि, यजुर्वेद, अध्याय-4, मन्त्र-10
10. अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः - अथर्ववेद, काण्ड-2, सूक्त-4, मन्त्र-5
11. स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिरत्नस्वतीषूर्वरा। -ऋग्वेद, मण्डल-1, सूक्त-127, मन्त्र-6
12. तोके हिते तनय उर्वरासुसूरोदृशीके वृषणश्च पौंस्ये।
    इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम्। - वही, मण्डल-4, सूक्त-41, मन्त्र-6
13. बौधायन धर्मसूत्र, 3/2/3
14. तैत्तिरीय संहिता, 5/2/3/12, ऐतरेय ब्राह्मण 4/27
15. शणश्च मा जंगिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम्।
    अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः।। - अथर्ववेद, काण्ड-2, सूक्त-4, मन्त्र-5
16. खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः।। - ऋग्वेद, मण्डल-10, सूक्त-48, मन्त्र-7
17. परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु। - ऋग्वेद, मण्डल-1, सूक्त-25, मन्त्र-16
18. आ नो मित्रा वरुणा धृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्। -वही, मण्डल-3, सूक्त-62, मन्त्र-16
19. वेदिशे स्टूडियन, 2/290-291
20. ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम्।
    रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक्स्तोमैर्मनामहे।। -ऋग्वेद, मण्डल-5, सूक्त-66, मन्त्र-3
21. अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः। -ऋग्वेद, मण्डल-7, सूक्त-77, मन्त्र-4
22. जयन्क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप उरुं नो गातुं कृणु सोममीढवः। -ऋग्वेद, मण्डल-9, सूक्त-85, मन्त्र-4
23. अथर्ववेद, काण्ड-12, सूक्त-2, मन्त्र-26
24. अथर्ववेद, काण्ड-12, सूक्त-2, मन्त्र-27
25. लाङ्गलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु- अथर्ववेद, काण्ड-3, सूक्त-17, मन्त्र-3
26. शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभियन्तुवाहैः।
    शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम्।। -ऋग्वेद, मण्डल-4, सूक्त-57, मन्त्र-8

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषन्नित्फाल आषितं कृणोति यन्नध्वानमपवृङ्क्ते चरित्रैः। -वही, मण्डल-10, सूक्त-117, मन्त्र-7

27. स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वीं मिहं न वातो विह वाति भूम। -ऋग्वेद, मण्डल-10,सूक्त-31, मन्त्र-9
स्तेगो नक्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूयौ। अथर्ववद, काण्ड-10, सूक्त-1, मन्त्र-39

28. अर्वाची सुभगे भवसीते वन्दामहे त्वा।
यथा नः सुभगार्ससि यथा नः सुफलाससि।।

इन्द्रः सीता न गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु। -ऋग्वेद, मण्डल-4, सूक्त-57, मन्त्र-6/7

29. युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ बपतेह बीजम्।
गिरां च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात्।।
सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नया।
-ऋग्वेद, मण्डल-10, सूक्त-101, मन्त्र-3/4

30. तस्मिन्ना वंशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम्।
अनु स्वधा यमुप्यते यवे न चर्कृषद्वृषा।। -ऋग्वेद, मण्डल-1, सूक्त-176, मन्त्र-2

31. शतपथ ब्राह्मण, 1/6/1/3

32. गोभिलगृह्यसूत्र, 4/4/29

33. 'सीरां युंजन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नया।। -ऋग्वेद, मण्डल-10, सूक्त-101, मन्त्र-4

34. पारस्करमृह्यसूत्र, 2/13/9

35. नमस्ते लांगलेभ्यो नम ईषायुगेभ्यः। वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यर्पक्षेत्रिर्मुच्छतु।। -अथर्ववेद, काण्ड-2, सूक्त-8, मन्त्र-4

36. इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानु यच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्।। -ऋग्वेद, मण्डल-4, सूक्त-57, मन्त्र-7

37. अर्वाची सुगंणे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा नः सुभगससि यथा नः सुफलाससि।। -ऋग्वेद, मण्डल-4, सूक्त-57, मन्त्र-6

38. बौधायन धर्मसूत्र, 3/2/3

39. शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लांङ्गलम्।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रा मुदिङ्गय।।
शुनं नः फालाः वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम्।। -ऋग्वेद, मण्डल-4, सूक्त-57, मन्त्र-4/8

40. युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात्।। -वही, मण्डल-10, सूक्त-10.1 मन्त्र-3

41. बौधायन धर्म सूत्र, 3/2/3

42. इमं यवमष्टायोगैः षड्योगेभिरचर्कृषुः।

43. तेना ते तन्वो। रपोऽयाचीनमप व्यये।। -अथर्ववेद, काण्ड-6, सूक्त-91, मन्त्र-1

44. काठकसंहिता, 15/2
इष् कृताहावमवत् सुवरत्रं सुषेचनम्। उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम्।
निराहांवान्कृणीतन सं वरत्रा दधातन।
सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेकमनुपक्षितम्।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय। -ऋग्वेद, 10/101-5/6, अथर्ववेद, काण्ड-3, सूक्त-17, मन्त्र-6

45. बौधायन धर्मसूत्र, 3/2/3
46. अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः। -ऋग्वेद,मण्डल-1, सूक्त-179, मन्त्र-6
47. तवेदिन्द्राहमाशसा हस्ते दात्रं चनाददे।
दिनस्य वा मघवन्त्संभृतस्थ वा पूर्धि यवस्य काशिना।। -ऋग्वेद, मण्डल-8, सूक्त-78, मन्त्र-10
48. शतपथ ब्राह्मण, 1/6/1-3
49. ऋग्वेद, मण्डल-10, सूक्त-74, मन्त्र-13
50. सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत। -ऋग्वेद, मण्डल-10, सूक्त-71, मन्त्र-2
51. ऋग्वेद, मण्डल-10, सूक्त-94, मन्त्र-13
52. वही, मण्डल-10, सूक्त-23
53. शतपथ ब्राह्मण, 1.6.1.3
54. गोभिलगृह्यसूत्र, 4.4.29
55. पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता तद् एषा।
यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन तेन मा सुस्रोर्बह्मणापि तद् वपामि।। -अथर्ववेद, काण्ड-12, सूक्त-3, मन्त्र-22
56. येन तोकाय तनयाय धान्यं बीजं वहध्वे अक्षितम्। -ऋग्वेद, मण्डल-5/53/13
57. युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेहबीजम्।। -ऋग्वेद, 10/101/3
58. ऋग्वेद, मण्डल-5, सूक्त-62, मन्त्र-6
59. यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति।
एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु।। -अथर्ववेद, काण्ड-10, सूक्त-6, मन्त्र-33
60. ऋग्वेद, ण्मण्डल-7, सूक्त-49, मन्त्र-2
61. शं न आपो धन्वन्याः शमु सन्त्वनूप्याः
शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः
शिवा नः सन्तु वार्षिकीः।। -अथर्ववेद, काण्ड-1, सूक्त-6,मन्त्र-4
62. वैदिक इन्डेक्स, मैक्डोनेल एवं कीथ।
63. शं त आपो हैमवतीः शमं ते सन्त्स्याः।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते वर्ष्याः।। -अथर्ववेद, काण्ड-19, अध्याय-2, मन्त्र-1
64. अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि।। -अथर्ववेद, काण्ड-19, सूक्त-2, मन्त्र-3
65. नमः स्रुत्याय च पथ्या च नमः काठ्याय च नीप्याय च।
नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च।
नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्रयाय चातप्याय च नमो मेध्याय च
विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च।। -यजुर्वेद, अध्याय-16, मन्त्र-37/38
66. ऋग्वेद, महर्षि दयानन्द भाष्य, मण्डल-5, सूक्त-53, मन्त्र-5/6
67. अवर्षीर्वर्षमुदु षू गभायाऽकर्धन्वान्यत्त्येतवा उ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजीजन ओषधीर्भोजनायकमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम्।। -ऋग्वेद, मण्डल-5, सूक्त-83, मन्त्र-10

68. शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः
तेनेमामुप सिञ्चतम्। -ऋग्वेद, मण्डल-4, सूक्त-57, मन्त्र-5

69. अपामह दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम्।
अपामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः।। -अथर्ववेद, काण्ड-19, सूक्त-2, मन्त्र-4

70. यददः संप्रयतीरहावनदता हते।
तस्मादा नद्योऽ३ नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः।।
यत प्रेषिता वरुणेनाच्छीमं मवल्गत।
तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनुष्ठान।।
अपकामं स्यन्दमाना अवीवरत वो हि कम्।
इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद् वार्नाम् वो हितम्।।
एको वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम्।
उदानिषुर्महीरिति तसमादुद्कमुच्यते।। -अथर्ववेद, काण्ड-3, सूक्त-13, मन्त्र-1-4

71. शतपथ ब्राह्मण 2/1/1/7

72. संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः।
बिभ्रती सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन।। -अथर्ववेद, काण्ड-3, सूक्त-14, मन्त्र-3

73. करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे।। -अथर्ववेद, काण्ड-19, सूक्त-31, मन्त्र-3

74. अथर्ववेद, काण्ड-11, अध्याय-1, मन्त्र-28/29

75. शतपथ ब्राह्मण, 1/6/1/3

76. गोभिलगृह्यसूत्र, 4/4/29

77. 'खले न पर्षान्' -ऋग्वेद, मण्डल-10, सूक्त-48, मन्त्र-7

78. "वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः" - ऋग्वेद, मण्डल-10, सूक्त-94, मन्त्र-13

79. वही, मण्डल-2, सूक्त-14, मन्त्र-11

80. यद्यत् कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद।
यद्वादास्या द्रंहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः।

81. यान्युखलमुसलमानि ग्रावाण एव ते।। - अथर्ववेद, 12-3-13, 9/6/15
विश्वव्यचा धृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुपयाद्येत्तम्।
वर्ष वृद्धमुप यच्छ शूपं तुषं पलावानप तद् विनक्तुं।।
त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्यऽन्तरिक्षम्।

82. अंशून गृभीत्वान्वारमेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तुशूर्पम्।। अथर्व 12/3/19-20

83. शंपूं पवित्रं तुषा ऋजीषाभिषवणीरापः।। -अथर्ववेद, काण्ड-9, सूक्त-6, मन्त्र-16
अग्रौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकाँ अप मृड्ढि दूरम्।

84. एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विघ्न र्निऋतेर्भागधेयम्।। -अथर्ववेद, काण्ड-11, सूक्त-1, मन्त्र-29
प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषमहिंसन्तऔषधीर्दान्तुपर्वन्।

85. यासां सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु।। -अथर्ववेद, काण्ड-12, सूक्त-3, मन्त्र-31
इन्द्रस्य या महीं दृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तया विनष्मि सं क्रियान् दृषदा खल्वाँ इव। -अथर्ववेद, काण्ड-2, सूक्त-31, मन्त्र-1

86. ऐतरेय ब्राह्मण, 7/30

87. यवं ग्रीष्माय, व्रीहीन् शरदे। -तैत्तिरीय संहिता, 7/2/10/2

88. द्वि संवत्सरस्य सस्यं पच्यते। -वही, 5/1/7/2

89. व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् -यजुर्वेद, अध्याय-18, मन्त्र-12

90. निः अविध्यत् गिरिभ्यः आधारयत् पक्व ओदनम्।
महिषान् क्षीरपाकं ओदनं वराहं इन्द्र एमुषम्।। -ऋग्वेद, मण्डल-8, सूक्त-77, मन्त्र-10

91. परि त्वा परितत्नुनेक्षुणागामविद्विषे। -अथर्ववेद, काण्ड-1, सूक्त-34, मन्त्र-5

92. अथर्ववेद, काण्ड-2, सूक्त-26 एवं काण्ड-3, सूक्त-14, मन्त्र-1-6

93. व्रजं न पशुवधनायमन्म। -ऋग्वेद, मण्डल-9, सूक्त-94, मन्त्र-1

94. ऋग्वेद, मण्डल-8, सूक्त-30, मन्त्र-4

95. व्रजं कृणुध्वं सहि वो नृपाणो, ऋग्वेद मण्डल -10, सूक्त-101, मन्त्र-8

96. अथर्ववेद, काण्ड-3, सूक्त-14, मन्त्र-1 एवं
अस्मश्यं शमं स प्रथो गवेऽश्वाय यच्छत।
सं वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या स सुभूत्या।।
संजग्माना अविभ्युपीरस्मिन् गोष्ठठे करीषिणीः।
शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यता।
मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः।।
तानं गोष्ठे सविता नियच्छतु।
इमं गोष्ठं यशवः सं स्रवन्तु। - अथर्ववेद, काण्ड-2/3, सूक्त-26/14, मन्त्र-1/2, 1/3/5/6

97. -वही-, -वही-, मन्त्र-2

98. -वही-, -वही-, मन्त्र-3

99. -वही-, -वही-, मन्त्र-4

100. -वही-, -वही-, मन्त्र-5-6

101. ऋग्वेद, 4/47/8

102. ऐतरेय ब्राह्मण 2/2

103. अथर्ववेद, काण्ड-8, सूक्त-10, मन्त्र-24

104. -वही-, काण्ड-6, सूक्त-116, मन्त्र-1

105. ऋग्वेद, मण्डल-4, सूक्त-57, मन्त्र-1-2-3

106. अथर्ववेद, काण्ड-3, सूक्त-17, मन्त्र-100

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय संस्कृति के शाश्वत एवं नैतिक मूल्यों का एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ0 दीपा गुप्ता
एम0फिल0,पी--एच0डी0
प्रवक्ता-प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं
पुरातत्व विभाग, कन्या गुरूकुल महाविद्यालय
हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

आज के इस भौतिकवादी मशीनी युग में सारे संसार मे घोर असंतोष व्याप्त है। आज मानव सांसारिक ऐश्वर्य और सुख के लिए इतना लालायित है कि अपने विवेक की अवहेलना कर मानवीय गुण और मानवता को तिलांजलि देकर बडे वेग से विनाश के गर्त्त की ओर भागा जा रहा है। आज मुनष्य का लक्ष्य मात्र भौतिक सुख है। आध्यात्मिक, पुण्य, दान, तप, सत्य, अहिंसा, उदारता आदि भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्य उसके लिए नगण्य हो चुके हैं। उसको लोभ और मोह ने, धन पिपासा ने, प्रतिष्ठा की भूख ने इतना उन्मत्त बना दिया है कि वह विनाश को ही आत्म कल्याण और मृत्यु को ही जीवन समझ बैठा है। उसने भौतिक सुख को ही अपने जीवन का परम प्रयोजन मानकर अपने चारों ओर भौतिकता की ऐसी सुदृढ़ दीवार खड़ी कर ली है कि निकट भविष्य में इस दीवार के प्राचीर को वह लांघ सकेगा, इसकी आशा बड़ी धूमिल हैं।

वास्तव में यह सत्य है कि एक मात्र सत्वगुणी आध्यात्मिकता एवं भारतीय संस्कृति के नैतिक मूल्य ही आज की रजोगुणी तमोगुणी भौतिकता पर विजय प्राप्त कर मानव जीवन को विनाश के दलदल से उबारकर कल्याण पथ में प्रवृत्त कर सकते हैं। भारतीय संस्कृति की विशेषताओ में मानवीय नौतिक मूल्यों या तत्वों को प्रमुखता दी गयी है। भारतीय संस्कृति मे जीवन की उन्नति एवं विकास के लिए मानवीय तत्वों और मानवीय दृष्टिकोण को जीवन का आवश्यक अंग माना गया है। जो राज्य एवं समाज इन गुणों को अपनाता हैं उसका निरन्तर विकास होता हैं। भारतीय सस्कृति का उद्घोष रहा हैं।

''वसुधैव कुटुम्बकम्''

संसार एक कुटुम्ब है और विश्व बंधुत्व ही हमारी प्रेरणा का स्रोत है। हमारी भारतीय संस्कृति का मूल सार है, सभी सुखी हों सभी निरोगी सबमें हो सद्भावना, नित्पल नित्य हिंदू करते सबकी मंगल कामना

''सर्वे भवन्तुसुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुख भाग्-भवेत्''॥

यह मानवीय गुणों से परिपूर्ण हमारी संस्कृति की विशिष्टता रही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संतोष

भारतीय संस्कृति के नौतिक मूल्यों में सर्वप्रथम संतोष का नाम प्रमुखत: आता है। संपूर्ण संस्कृत के वाङ्मय में इस गुण की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। संतोष की जड़ सत्य एवं न्याय में छिपी होती है जहां सत्य एवं न्याय है वहीं सतोष है। आज के इस भौतिकवादी युग मे मनुष्य को संतोष रूपी नौतिक मूल्य की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके माध्यम से वह अपने जीवन को विनाश के गर्त्त से निकाल कर कल्याण पथ की ओर ले जा सकता है तथा एक सुखी एवं शान्तिपूर्ण जीवन जी सकता है।

''महाभारत'' में संतोष की छाया अधिकाधिक प्रतिबिम्बित होती है। ''महाभारत'' मे कहा गया है कि ''काम के वशीभूत होने पर मनुष्य के हृदय मे विषय भोग की लालसा जागृत हो जाती है, उसकी तृष्णा निरंतर बढ़ती जाती है। यह तृष्णा ही समस्त पापों की जड़ है। जहां तृष्णा है, वही अधर्म है, वहीं पाप है। मूढ़ पुरुष कभी इस तृष्णा का त्याग नही कर सकते। यह तृष्णा मनुष्य का प्रणान्तक रोग हैं। इसका त्याग करके ही मनुष्य सुख एवं संतोष को प्राप्त कर सकता है। अन्यथा नहीं। इस संसार में मूर्ख व्यक्ति ही असंतोष की अग्नि में सदा जलते रहते हैं। किन्तु पण्डित जन संतोष रूपी अमृत को पीकर सदा के लिए तृप्त हो जाते हैं। इस संसार की माया ही कुछ ऐसी है कि यहां धन की प्यास कभी बुझती नहीं है। धनपिपासा की शान्ति का एक ही उपाय है संतोष। संतोष ही सुख और शान्ति का मूल है। इसीलिए पण्डितजन संतोष को ही परमधन मानते हैं।[3]

मधुर वचन -

संस्कृत में एक सूक्ति है।

सत्यं वदेत् प्रियं वदेत्, न वदेत् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः॥

अर्थात् मनुष्य सदा सत्य और प्रिय भाषण करे। कभी भी अप्रिय सत्य न बोले, अप्रिय सत्य की अपेक्षा मौन रहना श्रेयस्कर हैं। यही सनातन धर्म हैं, यही भारतीय संस्कृति हैं। ''तुलसी दास जी'' ने कहा है-

तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहूँ ओर,
वशीकरण इक मंत्र हैं, तजि दे वचन कठोर

''कबीर दास जी'' ने भी कहा है-

ऐसी वाणी बोलिये मन का आपा खोय ।
औरन को शीतल करें, आपहु शीतल होय ॥

यदि मनुष्य अच्छी तरह से सान्तन्त्वनापूर्ण, मांगलिक, मुधर, वचनों का प्रयोग करे तो उसके समान वशीकरण का साधन नि:सन्देह इस संसार में दूसरा नहीं है।[4]

''महाभारत'' में वर्णित है कि ''जो सदैव अपने वचन- बाणों से दूसरों के हृदय को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridw

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंधता रहता है, वह पुरुष इस संसार में अति दरिद्र और अभागा हैं। वह कटुवाणी के रूप में सदा एक पिशाचिनी को मुख में ढोता है, अतएव उसका दर्शन भी अशुभ है।[6] संपूर्ण प्राणियों के प्रति दया और मैत्री की भावना यथाशक्ति, दान और सबके प्रति मुधर वाणी का प्रयोग तीनों लोकों में इससे बढ़कर वशीकरण मंत्र दूसरा नहीं है।[6]

प्रतिज्ञा- पालन -

प्रतिज्ञा पालन भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग हैं। रामायण और महाभारत दोनों ग्रन्थों मे प्रतिज्ञा पालप के अनेक अवसर आयें हैं। उदाहणार्थ राम ने पिता दशरथ के वचनों का पालन करने के लिए राज्य का त्याग और चौदह वर्ष वन में निवास करने की प्रतिज्ञा की लक्ष्मण ने 14 वर्षो तक भाई के साथ वन में रहने की प्रतिज्ञा की। भरत ने चौदह वर्ष तक राम की प्रतीक्षा में संपूर्ण सांसारिक भोगों से विराग की प्रतिज्ञा की।

"महाभारत" तो प्रतिज्ञाओं का भण्डार है। जैसे मामा शकुनि की पाण्डवों को नष्ट करने की प्रतिज्ञा, भीष्म की जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा, कर्ण की अर्जुन वध की प्रतिज्ञा इत्यादि, सज्जन जो प्रतिज्ञा करते हैं उसका अन्त तक निर्वाह करते हैं। उनकी प्रतिज्ञा सत्य और न्याय का पोषण करती है, भारतीय संस्कृति को पुष्ट करती हैं। धर्म की रक्षा और अधर्म के विनाश के लिए प्रत्येक युग में भगवान् ने अवतार लेने की घोषणा की है, उनकी प्रतिज्ञा है-

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे।।

अतिथि सत्कार तथा आत्म संयम -

अतिथि सत्कार भारतीय संस्कृति का विशेष गुण रहा है। "अतिथि देवोभवः" अर्थात् अतिथि देवता के समान है यह कहा गया हैं एक गृहस्थ का धर्म है कि वह रोग पीड़ित मनुष्य (अतिथि) के सोने के लिए शैय्या, थके-मांदे व्यक्ति को बैठने के लिए आसन, प्यासे को पानी और भूखे को भोजन दे।[7] अतिथि को घर मे आता हुआ देंखकर तुरन्त उठकर उसकी अगवानी करे, और यथोचित रीति से उनका आदर सत्कार करें।[8] जो गृहस्थ अपरीचित, थके, मांदे पथिक को प्रसन्नता पूर्वक भोजन देता है उसे महान् कल्याण की प्राप्ति होती है।[9]

आत्मसंयम सदाचार का ही एक अंश हैं काम, लोभ, अभिमान, क्रोध, निंद्रा, आत्म प्रशंसा मान, ईर्ष्या तथा शोक ये सभी दुर्गण आत्मसंयमी पुरूष के पास फटक भी नहीं सकते। कुटिलता और शठता का अभाव, तथा आत्मा की पवित्रता यह एक आत्मसंयमी पुरुष का लक्षण हैं।[10] जिसका ह्रदय लोभ रहित है, जो समुद्र के समान गंभीर है, वही महापुरुष आत्मसंयमी है।[11]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार, शीलता, विनय, सच्चरित्रता -

भारतीय संस्कृति के नौतिक तत्वों मे आचार,शील, विनय, सच्चरित्रता को विशेष महत्व दिया गया है।[12] मनुष्य का कथन है कि सदाचार सर्वोत्तम धर्म है मनुष्य को सदा आचार शील होना चाहिए। यदि वह आचारहीन है तो उसको वेदादि का फल नही मिलता है। सदाचार का महत्व बताते हुए कहा गया है कि इससे मनुष्य दीर्घायु होता हैं और सांसारिक सुखों को प्राप्त करता है।[13] ''मनुस्मृति'' में वृद्धों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाने का तथा उनकी सेवा का फल आयु, विघा यश और बल की वृध्दि करने वाला कहा गया है।[14] उचित दान के विषय में भी हमारी भारतीय संस्कृति मूक नहीं है। ''याज्ञवल्म्य स्मृति'' में कहा गया है कि अपना कल्याण चाहने वालो को उचित है कि गौं,भूमि, सोना आदि जो कुछ भी दान देना हो वह सुपात्र को दे, कुपात्र को नहीं।[15] ''दक्षस्मृति'' मे कहा गया है कि दीन, अनाथ और सज्जन को दान देना चाहिए।[16]

दक्षस्मृति में एक अन्य स्थान पर कहा गया है-माता-पिता, गुरु, मित्र, नम्र मनुष्य, उपकारी मनुष्य, दीन, अनाथ और सज्जन को दान देना सफल है।[17]

परोपकार -

दान के अतिरिक्त परोपकार की भावना भी हमारी भारतीय संस्कृति में निहित है। हमारी भारतीय संस्कृति परोपकार एवं कल्याण की भावना से परिपूरित है। यह सत्य है, कि प्रकृति की सभी वस्तुएं परोपकार करती हैं। जैसे परोपकार के लिए पेड़ फल देते हैं, नदियाँ बहती है, गाय दूध देती है। इसी प्रकार मानव जीवन भी परोपकार के लिए ही हैं।

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकारार्थमिदं शरीरम्॥

''महाकवि कालिदास'' ने ''अभिज्ञान शाकुन्तलम्'' में भी यही भाव प्रकट किया गया है कि परोपकार की भावना मनुष्य मे विमलता लाती है। अतएव फल आने पर वृक्ष झुक जाते हैं। जल से भरे हुए बादल, नीचे आ जाते हैं, सम्पन्न व्यक्ति धन पाकर विनम्र हो जाते हैं।[18] मानवीय संवेदनाओं से हीन परोपकार न करने वाले व्यक्ति को पशु भी निम्न श्रेणी का माना गया है ''मनुस्मृति'' मे मानवीय संवेदनाओं से पूर्ण उपकार करने वाले व्यक्ति से राजा द्वारा कर न लिये जाने का निर्देश है।19

सत्य अहिंसा -

भारतीय संस्कृति के जितने भी नैतिक मूल्यों का उपरोक्त विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उन सबका मूल सत्य अहिंसा ही है। ऐसा कोई नौतिक मूल्य नहीं है। सत्य और अहिंसा के आधार पर ही संपूर्ण भारतीय गुणों की प्रतिष्ठा है। ऐसा कोई नौतिक मूल्य नही है जो इन दो गुणों से अपनी पृथक् सत्ता रखता हो स्वयं वास्तव में यदि देखा जाये तो सत्य और अहिंसा एक दूसरे के पूरक हैं। सत्य के बिना सत्य की कल्पना या संभावना ही नही हो सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridw

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय सस्कृति में सृष्टि के प्रारंभ से ही अहिंसा और अहिंसा के बिना प्रशंसा और हिंसा की निंदा हो गई है। हमारे सबसे प्रचिनतम ग्रंथ वेदो मे (ऋग्वेद में) बार-बार ''अध्वर'' शब्द का प्रयोग किया हुआ है।

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि[20]
राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिवम्[21]

वेद मे ''ध्वर'' का अर्थ हिंसा है अध्वर का अर्थ है हिंसा रहित। यह अध्वर शब्द प्राय: यज्ञ शब्द का विशेषण बन कर आया है। अर्थात् हिंसा रहित यज्ञ के ऊपर के प्रथम मंत्र का अर्थ यही है। अर्थात् अग्निदेव हमारे जिस हिंसा रहित यज्ञ की रक्षा करेगे, वह यज्ञ देवताओ को प्राप्त होगा। हिंसा प्रधान यज्ञ देवताओं को प्राप्त नहीं होता।

जैन एवं बौद्ध धर्म की मूल शिक्षा अहिंसा ही है। दोनों धर्मो में कहा गया है कि ''मन,वचन,कर्म से किया गया हिंसा रहित आचरण ही अहिंसा है।''

अहिंसा शस्त्र जानिये भगाये पाप।
शुद्ध हृदय धारण करें, जाय शिवपथ आप॥

हिंसा के तीन रूप हैं-

1. कटुवाणी द्वारा दूसरे के मर्म पर प्रहार करना।
2. दूसरों का बुरा सोचना।
3. दूसरों पर शस्त्र प्रहार करना इत्यादि।

इन तीनों रूपों का जिसने निश्चय पूर्वक त्याग कर दिया यथार्थ में वही सच्चा अहिंसावृत्ति है।

सत्य एक ऐसा गुण है जिसमें संसार के समस्त गुणों का समावेश हो जाता है। मानवीय जीवन के उत्थान में सत्य का बहुत महत्त्व बताया गया है।

सत्य से बढ़कर इस संसार में दूसरा कोई धर्म नही है अर्थात् सत्य ही धर्म है और असत्य ही अधर्म है। जहां सत्य नहीं है वहां धर्म की कोई स्थिति ही नहीं है। इस जगत में धर्मज्ञ व्यक्ति वही है जिसमें सत्य और असत्य का निर्णय कर सत्य पालन की क्षमता हो।

सत्य ही सनातन धर्म है। मनुष्य को सदा सत्य का ही पालन करना चाहिए। सत्य ही प्राणी की परमगति है।[22] सत्य ही धर्म,तप,योग है। सम्पूर्ण विश्व सत्य में ही प्रतिष्ठित है।[23] ''महाभारत'' के शान्तिपर्व मे कहा है कि मनुष्य को कभी भी अपने जीवन मे सत्य का लोप नही कहना चाहिए क्योंकि यही परम धर्म है। यही शाश्वत नैतिक मूल्य है।[24] कबीर जी ने कहा है -

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय सांच है, ताके हृदय आप।

इस प्रकार सत्य और अहिंसा परम नैतिक शाश्वत मूल्य हैं। ये दोनों ही संसार में धर्म,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश और सुख है। तथा इनसे विहीन संसार मे अधर्म, अंधकार और दु:ख ही दु:ख उपर्युक्त सभी भारतीय संस्कृति के नैतिक मूल्यों के अतिरिक्त न्याय, उपदेश, सेवा भाव, सौहार्द्र, श्रद्धा त्याग, उद्योग, सहिष्णुता, भक्ति, इत्यादि भी भारतीय संस्कृति के नैतिक मूल्यों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

अन्तत: भारतीय संस्कृति के समस्त नैतिक मूल्यों की समग्र विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय संस्कृति में मानव जीवन की उन्नति एवं विकास के लिए नैतिक तत्वों और मानवीय दृष्टिकोण को जीवन का आवश्यक अंग माना गया है। जो राष्ट्र एवं समाज इन तत्वों को अपनाता है, उसका निरन्तर विकास होता है। हमारे यहां सार्वजनिक प्रार्थना के रूप में कहा गया है कि सभी सुखी हों, निरोगी हों सबका कल्याण हो, और संसार में कोई दु:खी न हो, यह मानवीय एवं नैतिक, शाश्वत गुणों या मूल्यों से परिपूर्ण हमारी संस्कृति की विशिष्टता है।

पाद-टिप्पणियाँ

1. महाभारत /वनपर्व,2/36,38,39
2. महाभारत/वनपर्व,2/40,45,46,4
3. अन्तो नास्ति पिपासाया:संतोष:परमं सुखम्
   तस्मात् संतोषमेवेह परं पश्यन्ति पण्ड़िता:।।
   महाभारत वनपर्व,2/40,45,46,47
4. महाभारत/शान्तिपर्व,84/7,10
5. महाभारत/वनपर्व, 87/9
6. महाभारत/आदिपर्व,87/11,12
7. महाभारत/वनपर्व,2/55-56,59,60
8. वही
9. वही
10. महाभारत/उद्योगपर्व,63/16-17
11. वही
12. मनुस्मृति-1,108,109
13. मनु0-4,156
14. मनु0-2,121
15. याज्ञवल्क्य स्मृति 1,201
16. दक्षस्मृति अध्याय-2,38
17. दक्षस्मृति-3,16
18. अभिज्ञान शाकुन्तलम्5,12
19. मनुस्मृति-8,394,395
20. अग्निसूक्त-1,1,4
21. अग्निसूक्त-1,1,8
22. महाभारत/शान्तिपर्व,162/4/5
23. वही
24. महाभारत/शान्तिपर्व, 162/24

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौन्दर्य और कालिदास

डॉ० विजय इन्दु
गुड़गांव

माँ सरस्वती के वरदपुत्र, कविकुलगुरु, महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के ही नहीं वरन् सम्पूर्ण साहित्य-भण्डार की अमूल्य निधि हैं। अपने स्थितिकाल से आजतक अपनी रस-प्रवाहिनी साहित्य सर्जना से सहृदयों के अन्तः को रसासिक्त करते रहे। उनकी नित्य नवीन सौन्दर्य-धारिणी वाणी वस्तुतः सत्यं शिवं और सुन्दरम् की अपूर्व त्रिवेणी है। उन्होंने अपने समय की सम्पूर्ण सांस्कृतिक चेतना को उसके सुन्दरतम स्वरूप में अपनी सर्जना में मूर्त रूप दिया है। परम्परया देश में विचार-शृंखला जहाँ तक पहुँची, विभिन्न विषयों में जहाँ तक चिन्तन हुआ। धर्म, संस्कृति, विज्ञान, दर्शन, राजनीति, कला अथवा कोई भी विषय रहा हो कालिदास ने अपने समय तक के हर तथ्य का सुन्दरतम स्वरूप समक्ष रख दिया है। सर्वोच्च मानवीय अभिव्यक्ति को मनोहारी वाणी प्रदान की है।

उनकी वर्ण्य भारतभूमि ''अस्त्युतरस्याम् ''से लेकर आसमुद्रक्षितीशानाम्'' तक विस्तृत है। विपुल एवं विचित्र ऐतिहासिक परम्परा वाले देश की संस्कृति को अपनी मर्मभेदिनी, तीक्ष्ण, सतर्क व सौन्दर्यग्राही दृष्टि से परख कर कालिदास ने साहित्य का रूप दिया।[1]

कालिदास सर्जना का मूल भाव ही सौन्दर्यग्राही प्रवृत्ति द्वारा प्रेरित है, अतः समान रूप से उनकी रचना सर्वकाल, सर्वदेश सुन्दर है। पार्वती के सौन्दर्य के प्रति कही गई उक्ति-

सर्वोपमा द्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नदिकस्थ सौन्दर्यदिदृक्षयेवा। कुमार सम्भव 1/49

उनकी सर्वोष्कृष्ट अन्वेशिणी दृष्टि ने सम्पूर्ण सौन्दर्य को यत्नपूर्वक उनके कार्य में विनिवेशित किया। साहित्य की सम्पूर्ण सरसता, लावण्य, सौन्दर्य, कोमलता और मानवीय संवेदना का उत्कृष्टतम रूप कालिदास की रचनाओं में प्रयत्नपूर्वक एकत्रीकृत है।

कालिदास रूप और सौन्दर्य के अद्भुत चितेरे थे। प्रसंगानुकूल शब्द-चयन में कालिदास की कोई समता नहीं है। शब्द की भी अपनी अलग सामर्थ्य होती है। कालिदास ने सौन्दर्यवाची अनेक शब्दों का प्रयोग किया। यथा- सुन्दर, रम्य[2], सुभग, सुकुमार, ललित, शोभन, रमणीय, प्रसादन, अभिराम, मधुर, मनोहर अभिनव, मनोज्ञ, लोभनीय[3] आदि। इन शब्दों की संरचना के अनुसार कोमल, मोहक अथवाशृंगारिक प्रसंग में इनका प्रयोग दृष्टव्य है।

साहित्य के क्षेत्र में प्रत्येक कवि का अपना व्यक्तित्व होता है। कालिदास की विशेषता संवेदनशील सौन्दर्यपरक दृष्टि है। उनके द्वारा वर्णित प्रत्येक वस्तु अपने यथार्थ स्वरूप से भी अधिक सुन्दर हो गई है। इस सुन्दरता के पीछे कारण है, वही कालिदास की सौन्दर्य की सूक्ष्म-पकड़।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास किसी भी रचना के पूर्व उसके चतुर्दिक वातावरण से लेकर उस वस्तु की सम्पूर्ण संरचना का गहन अध्ययन करके ही अपनी कृति को पूर्ण करते हैं। मानवमन के अद्भुत पारखी कालिदास ने सौन्दर्य-वर्णन को इतना सफल, उच्चकोटि एवं हृदयग्राही बना दिया कि सौन्दर्य को और महिमामंडित कर दिया।

उनकी भावनाओं, कल्पनाशक्ति और दैव-प्रदत प्रतिभा ने जहाँ सर्जना का कार्य किया वहीं उनको विविध विषयों और शास्त्रों के बृहद् ज्ञान ने अपूर्व बना दिया।[5] रूप, रस, रंग, आकार, आचरण, अध्यात्म और अन्ततः प्राप्त होने वाला आनन्द इन्हें हम सौन्दर्य के तत्व कहते हैं और वस्तुनिष्ठ, व्यक्तिनिष्ठ या इनके समन्वित स्वरूप को सौन्दर्य का रूप कह सकते हैं। कालिदास की सौन्दर्य तन्वत्वान्वेषिणी दृष्टि बड़ी व्यापक और विशाल थी।

सौन्दर्य के सम्बन्ध में कालिदास की अवधारणा बड़ी स्पष्ट और प्रभावशाली थी। यह अनुकूल परिस्थितयों में अनुकूलता से और विपरीत परिस्थितियों में विरोध से शोभायमान होता है। डॉ॰ दास गुप्ता- ''कालिदास के मन में यह बात बैठ चुकी थी कि सुन्दरता यदि अनित्य उपकरणों से बनाई हुई नहीं है, स्वाभाविक है तो वह नित्य और अपरिवर्तनीय है। वह स्वतः पूर्ण है और पूर्ण होने के कारण ही सभी अवस्थाओं में अतिस्कृत ही नहीं रहती बल्कि शोभाधिक्य से और-और जगमगाती रहती है।''[6]

शकुन्तला के सौन्दर्य को निरूपित करते हुए उन्होंने इसी तथ्य को स्पष्ट किया है कि सौन्दर्य किसी अलंकरण पर आश्रित नहीं। तपस्यारत अपूर्व सुन्दरी पार्वती का मुख जटाओं में भी उतना ही सुन्दर लगता है जितना कि वेणियों से-

न शट्पद श्रेणिभिरेव पंकज सशैवलासंगमणि प्रकाशते।

वास्तविक रूप में सुन्दर वस्तु हर अवस्था में सुन्दर और रमणीय ही रहेगी और कोई भी वस्तु उसकी चारुता में वृद्धि कर सकती। इसी कारण पर्युत्सुक होने पर भी दुष्यन्त के सौन्दर्य में किसी प्रकार की कोई न्यूनता नहीं आई, वरन् और बढ़ गई-

सर्वास्वस्थासु चारुता शोभान्तरं पुष्णति।।[8]

महर्षि अरविन्द लिखते हैं- ''Kalidasa is the great, the supreme poet of senses, of aesthetic beauty, of sensuous emotions. In continuous gift of seizing an object and creating it to eye, he has no rival in literature.''

कालिदास इन्द्रिय- जगत् के, सौन्दर्य के तथा ऐन्द्रिय भावों के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। वे पदार्थों को देखने में और उन्हें प्रस्तुत करने में अनुपम हैं। वे सौन्दर्य को इतना गंभीर एवं महत्वपूर्ण कार्य मानते थे जैसे कि तपस्वी के समान समाधि आवश्यक है। सौन्दर्य-सर्जना के कई चरण थे। इसीलिए कवि में प्रतिभा कल्पना और मर्मभेदिनी दृष्टि आवश्यक है। सौन्दर्य के लिए पहले चित्त को एकाग्र करके मन में उसका काल्पनिक चित्र बनाना होता है। पुनः उसमें अपनी समस्त भावनाओं और सहृदयता का रंग भर के प्राणप्रतिष्ठा की जाती है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के मध्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाधि शिथिल नहीं होनी चाहिए। ध्यान की एकाग्रता के अंश मात्र चापल्य से सौन्दर्य में स्वाभाविक जीवन्तता और प्रभावोत्पादकता नहीं रह जाती।

कालिदास की शकुन्तला के सौन्दर्य पर डॉ० रामलखन शुक्ल- ''विधाता की रचना में इतना सौंदर्य संभव भी कहाँ है? केवल कवि के चित्र में ही इस प्रकार की सृष्टि हो सकती है। मानो विधाता द्वारा सर्षित रूप की कोई सीमा है, किन्तु कवि के चित में ध्यान द्वारा गृहीत सुन्दरता असीम है।[10]

भारतीय परम्परा में नैसर्गिक सौंदर्य को आदर्श माना गया है। मानवीय रूप आकार को सौंदर्य का मापदण्ड न मानकर प्रकृति के प्रभाव से प्रभावित सौंदर्य स्वीकार किया गया है। पार्वती के सौन्दर्य के संबंध में कहा है कि निष्कलुष सुन्दरी पार्वती का शरीर नवयौवन के स्पर्श से निखर कर उसी प्रकार नैसर्गिक सौन्दर्य को प्राप्त हुआ जिस प्रकार तूलिका के संस्पर्श से चित्र का सौन्दर्य उन्मीलित हो उठता है-

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम।
वभूश तस्याश्चतुरवशोभि वपुर्विभक्तं नवयोवनेन।।[11]

''मेघदूत'' में यक्षिणी की सुन्दरता के विषय में यक्ष कहता है कि विभिन्न प्राकृतिक उपमानों में तुम्हारे विभिन्न गुणों का साम्य देखता हूँ, लेकिन कहीं एकत्र तुम्हारा समग्र सौन्दर्य नहीं देख पाता हूँ।

कालिदास ने जिस प्रकार बाह्य रूपाकृति, आन्तरिक सौन्दर्य को आवश्यक माना है उसी प्रकार सौन्दर्य की असाधारणता को आध्यात्मिक स्पर्श से मण्डित किया है। आध्यात्मिका से मंडित करने का एक ओर कारण हो सकता है- सौंदर्य की प्रभावशीलता को स्थापित करना। सौन्दर्य जैसी अलौकिक वस्तु के निर्माण के लिए हाथों का स्पर्श भी कालिदास को स्वीकार नहीं। उस तरल आभा की सर्जना तो मन से की जा सकती है। शाकुन्तलम् में शकुन्तला के रूप को देखकर दुष्यन्त को विश्वास हीं नहीं होता है कि ऐसा रूप पृथ्वी पर भी संभव है। जब अनुसूया बताती है कि शकुन्तला विश्वामित्र एवं मेनका की पुत्री है। तब कहते हैं-

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्।।[12]

हजारी प्रसाद द्विवेदी अनुसार- ''एकत्र सौन्दर्य - दिदृक्षा कालिदास की अपने हृदय की व्याकुलता और कातर अभिलाषा है।[13] इसीलिए कालिदास ने सौन्दर्य को इतना महत्वपूर्ण माना है, क्योंकि उसके निर्माण में अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है। डॉ० रमाशंकर तिवारी के शब्दों में- कालिदास जानते हैं कि मानव-शरीर को आलोकित करने वाली प्रभा उसी व्यापक प्रभा की अंशीभूत हैं जिससे विश्व के सम्पूर्ण पदार्थ चमक रहे हैं, यद्यपि वह उतना ही क्षणभंगुर है जितना आकर्षक भी।[14]

आध्यात्मिकता के स्पर्श से ही सौन्दर्य गरिमामण्डित और पवित्र होता हैं। कालिदास ने

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस सौन्दर्य की रचना के लिए सौन्दर्य के रसास्वादन का अनुभव, यौवनोचित मनोवृति एवं विषयोन्मुखता को आवश्यक माना है। जब तक सृष्टा ने अलौकिक सौन्दर्य का स्वयं उपभोग न किया हो, उस ओर उसकी प्रवृत्ति न हो तब तक भला केवल सैद्धान्तिक ज्ञान के आधार पर सौन्दर्य का सर्जन कैसे संभव है।

पवित्रता एवं आध्यात्मिकता परस्पर अभिन्न है। यदि सौन्दर्य अनवद्य है, पवित्र है तो आध्यात्मिकता स्वत: अनुभव होने लगती है। ऐसे ही आलौकिक और आध्यात्मिक सौन्दर्य का चित्रण कालिदास ने किया। तभी तो उस सौन्दर्य को प्राप्त करना अखण्ड फल को प्राप्त करने के समान है-

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररूहै-
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रुपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यतिविधि:।[१५]

किसी भी आलौकिक प्राप्ति के लिए तप और पुण्य की अपेक्षा होती है इसीलिए दुष्यन्त शकुन्तला के अपूर्व सौन्दर्य की आध्यात्मिक अलौकिकता से अभिभूत हो जाता है। इस अलौकिक सौन्दर्य का उपभोक्ता भी आलौकिक होता है। यही अलौकिकता सौन्दर्य की गरिमा के लिए आवश्यक होती है।

सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व-साहित्य में कोई भी कवि ऐसा नहीं है जिसकी दृष्टि कालिदास के समान सौन्दर्यदर्शी हो। कालिदास ने सौन्दर्य को इतने व्यापक रूप में ग्रहण किया हैं किसी भी क्षेत्र में जिसमें लेशमात्र भी सौन्दर्य हो, कालिदास की दृष्टि से बच नहीं पाया। सम्भवत: यह भी हुआ हो कि जिस विषय को कालिदास ने वर्ण्य-विषय बनाया, उसी पर सौन्दर्य की छाप लग गई। उनके काव्य संसार में पृथ्वी, आकाश, पवन, जल, समीर, समस्त इन्द्रियाँ और उनके विषय सभी सौन्दर्यमय हैं । कथावस्तु, पात्र-परिचय, प्राकृतिक-चित्रण, कवित्व, नाटकत्व, आस्थाएँ, आदर्श, भाषा, शैली सभी कुछ तो सौन्दर्य के रंग में रंगा हुआ है।

कालिदास ने सौन्दर्य के संसार में भावकों की भावना के लिए सहज, निरलंकृत अव्याज, मनोहर रूप लक्ष्मी का इन्द्रजाल उपन्यस्त किया है। वनलताओं द्वारा उद्यानलताओं को परास्त कराया है, मधुर आकृतियों के लिए प्रत्येक वस्तु अथवा परिवेश को मण्डन रूप में स्वीकार किया है। जब वे अपनी कविता कामिनी की रूपछटा का वर्णन करने लगते हैं तब उनकी अनुभूतियाँ इतने कुशल शिल्प का परिधान ग्रहण में बह जाता है।[16]

कालिदास का आविर्भाव जिस काल में हुआ था, वह भारतीय संस्कृति के चरम वैभव और उन्नति का स्वर्णिम युग था। इस युग में साहित्य, कला, विज्ञान, संगीत, नृत्य, संस्कृति, सभी का अभूतपूर्व विकास हुआ। ऐसे युग में कालिदास ने अपनी रचनाओं से सम्पूर्ण चेतना को प्रभावित किया। अवश्य ही उनकी प्रतिभा दैव-प्रदत रही होगी। हजारी प्रसाद द्विवेदी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दों में- ''इस बहुविचित्र जनमण्डली के सर्वोत्तम को रूप-लिखित रूप देना बड़ी मर्मभेदिनी दृष्टि और अर्थग्राहिका शक्ति का परिचायक है। कालिदास में यह शक्ति पूरी मात्रा में थी। इसलिए वे सम्पूर्ण राष्ट्रीय चेतना को ललित रूप देने में कृतकार्य हुए।''[17] वास्तव में कालिदास ने अपनी मर्मभेदिनी दृष्टि का भरपूर उपयोग सौन्दर्य-निरूपण में किया।

कालिदास का प्रकृति के साथ तादातम्य का वर्णन भी इस प्रकार से अलौकिकता को ही स्पर्श करता है। प्रकृति का मानव के सुख-दुख में हाथ बाँटना, आवश्यकता पड़ने पर मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति करना, इसी श्रेणी का कवित्व कौशल है। सानुमति का अन्तर्हित होकर रहना और गुप्त रूप में राजा को शोकातुरता को देखना, ये ऐसा ही कार्य है, जो सामान्य मानव के लिए असंभव है। इन वर्णनों के माध्यम से कालिदास ने अपराधों के प्राप्त सिद्धियों को चित्रित किया है। इस प्रकार कालिदास ने अलौकिक तत्व का समावेश करके अपने नाटकों और काव्यों को भव्यता, विस्मय और रोचकता के साथ भी गतिमान हो गया और घटनाओं में मनोरम वातावरण की सृष्टि हुई। ये सब कालिदास के उच्चकोटि के कवित्व सौन्दर्य का प्रमाण है।

कालिदास मानव की सूक्ष्म अनुभूतियों को पकड़ते हैं। परम्परा एवं सांस्कृतिक उन्मषों की विभावना करते हैं और उन्हें ध्यान में रखकर सामरस्य के धरातल पर आकलन करते हैं। इसलिए परमसौन्दर्यानुभूति की रश्मियाँ उनके काव्य जगत को आलोकित करती है।

वस्तुतः कालिदास सौन्दर्यवादी कवि थे। सौन्दर्य के अनुभव को अभिव्यक्ति प्रदान करना और उस अनुभव तक जनसामान्य को पहुँचा देना किसी साधारण प्रतिभा का कार्य नहीं हो सकता। दैवी प्रतिभा, असाधारण मेधा, व्यापक संवेदना का परिणाम है । क्रालिदास की सौन्दर्य-ग्राहिका और सौन्दर्य प्रकाशिका दृष्टि। उन्होंने प्रत्येक कोण से, प्रत्येक बिन्दु से सौन्दर्य पर विचार किया और उस गहन अनुभव को सहृदय के गहन अनुभव से प्रमाणित भी कराया। जिसके फलस्वरूप ''प्रियेषु सौभाग्य फला ही चारुता'' किमिव ही मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् 'यदुच्यते पार्वति, पापवृतये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः-''अहो'! सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाः- कृतीविशेशाणम्' जैसे सौन्दर्य विषयक अनेकानेक सिद्धान्तों व मान्यताओं का प्रतिपादन हुआ। सौन्दर्य की वस्तुनिष्ठता सौन्दर्य की व्यक्तिनिष्ठता सौन्दर्य का सभी अवस्थाओं में रमणीय होना, सौन्दर्य की पूर्णता हेतु आचरण व तपश्चर्या की अनिवार्यता, सौन्दर्य का आध्यात्मिक स्पर्श से मंडित होना, सौन्दर्य की रचना प्रकिया पर सूक्ष्म प्रकाश, सर्जना हेतु चित की एकाग्रता, अशिथिल समाधि के प्रति पक्षपात तथा अन्ततः 'प्रियेषु सौभाग्यफला ही चारुता' के रूप में सौन्दर्य की आनन्द के रूप में महान् परिणति इत्यादि अनेक ऐसे तथ्य हैं जो कालिदास की सौन्दर्य-दृष्टि की अनुपमेयता व व्यापकता के स्वतः सिद्ध प्रमाण है। कालिदास के जीवन अथवा कृतियों से सम्बन्धित कोई भी पक्ष सुधीजनों की लेखनी व दृष्टि से अछूता नहीं रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाद-टिप्पणियाँ

1. डॉ० अर्चना उपाध्याय - कालिदास की सौन्दर्य दृश्टि - पृ० 44
2. कालिदास - कुमारसंभवम - 1/47
3. कालिदास - अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5/2
4. कालिदास - अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/21
5. डा० अर्चना उपाध्याय - कालिदास की सौन्दर्य दृश्टि - पृफ्र 48
6. डा० सुरेन्द्र नाथ दास गुप्ता - सौंदर्य तत्व - पृ० 40
7. कालिदास - कुमारसंभवम - 5/9
8. कालिदास - अभिज्ञानशाकुन्तलम् - द्वितीय अंक ।
9. ।हम वि ज्ञंसपकेंण
10. डा० रामलखन शुक्ल - भारतीय सौंदर्यशास्त्र का तात्विक विवेचन - पृ० 57
11. कालिदास - कुमारसंभवम् - 1/32
12. कालिदास - अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/24
13. हजारी प्रसाद द्विवेदी - ग्रन्थावली -8 पृ० 265
14. डाफ्र रमाशंकर तिवारी - महाकवि कालिदास पृ० 260
15. कालिदास - अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2/10
16. डा० अर्चना उपाध्याय - कालिदास की सौन्दर्य दृश्टि - पृ० 63
17. हजारी प्रसाद द्विवेदी - कालिदास की लालित्य योजना - पृ० 124

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक साहित्य में वर्णित मनोरंजन के साधन

डॉ0 रेखा सिंह

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखण्ड़)

सृष्टि के अन्य जीवधारियों की अपेक्षा मानव अधिक विनोदप्रिय है। मनोरंजन मानव जीवन का एक आवश्यक अंग है। वैदिक काल में भी सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक क्षेत्र में उन्नति के साथ ही मनोरंजन के क्षेत्र में भी पर्याप्त उन्नति की गयी। इसका ज्ञान हमें ऋग्वेद के अध्ययन से प्राप्त होता है। वैदिक ऋषि-मुनियों के द्वारा प्रत्येक कार्य को सुन्दर व उत्तम बनाया गया, लेकिन साथ ही जीवन को सुखमय बनाने, जीवन के गाम्भीर्य व भार, को हल्का बनाकर, उसे आनन्दमय बनाने के लिए मनोरंजन के साधनों को भी उपलब्ध कराया गया। वैदिक काल से ही आर्यो में म0नोरंजन की स्वस्थ परम्परा विद्यमान थी। ऋग्वेद, अथर्ववेद, ऐतरेयब्राह्मण, शतपथब्राह्मण में हमें घुड़दौड़, रथदौड़ आदि का स्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है। आखेट, पाश में चिड़िया पकड़ना, गड्ढा खोदकर हिरण और शेर पकड़ना भी वैदिक काल में मनोरंजन के महत्वपूर्ण साधनों में से एक थे। ऋग्वेद में न केवल गवैया का वर्णन प्राप्त होता है, बल्कि वीणा, चर्चरी, दुन्दुभि आदि वाद्य यन्त्रों का भी उल्लेख मिलता है। जादू दिखाने वाले **जातुधान** कहे जाते थे। शतपथब्राह्मण में जादू का तमाशा दिखाने वालों को **जातुविद** कहकर पुकारा गया है। बाँस पर चढ़ कर खेल दिखाने वालों को वाजसनेयी संहिता में वंशवर्तिन कहा गया है। इस काल में मेलों का भी आयोजन किया जाता था। इन मेलों को समन कहा जाता था। वैदिक काल में मनोरंजन के अनेकानेक साधन उपलब्ध थे, जिनका आयोजन करना राज्य का आवश्यक कर्तव्य था। समय-समय पर राजाओं द्वारा विशेष कला प्रदर्शनियों का आयोजन भी किया जाता था। जिनमें कलाकार तन्मय होकर प्रदर्शन करते थे तथा जनता इन प्रदर्शनों का मंत्र-मुग्ध होकर आनन्द भी लेती थी। सार्वजनिक मनोरंजन के साथ लोग व्यक्तिगत रूप से भी अनेक क्रीडाओं के द्वारा मनोविनोद करते थे।

1. रथदौड़ और घुडदौड़ -

वैदिक काल में आर्यो के द्वारा रथ दौड़ और घुडदौड़ को अपने मनोरंजन का प्रमुख अंग बनाया गया। ऋग्वेद के चौथे मण्डल में घुड़दौड का वर्णन प्राप्त होता है।[1] विशेष अवसरों पर रथ दौड व घुड़दौड होती थी। उसके लिए प्रत्येक गांव में एक निश्चित मैदान होता था तथा इन दौड़ों में जीतने वाले को विशेष पुरस्कार भी दिया जाता था। ऐतरेयब्राह्मण से ज्ञात होता है कि देवताओं की दौड़ प्रतियोगिता का आयोजन सिर्फ इस समस्या का समाधान करने के लिए हुआ था कि पहले सोमरस का पान कौन करेगा। इस समस्या के समाधान के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस दौड़ का आयोजन हुआ, उसमें वायु प्रथम व इन्द्र द्वितीय स्थान पर रहे।[2] इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि यज्ञ में हवि किसे मिले, इस समस्या के समाधान हेतु देवताओं की दौड़ प्रतियोगिता का आयोजन हुआ, जिसमें बृहस्पति को प्रथम स्थान प्राप्त हुआ।[3] इस काल में कन्याओं के विवाह के लिए भी घुड़ व रथदौड़ का आयोजन किया जाता था तथा इन दौड़ों में प्रथम आने वाले व्यक्ति को कन्या अपना वर चुन लेती थी। सूर्य की पुत्री सूर्या ने रथदौड़ में ही अश्वनी कुमार का वरण किया था।[4] इन दौड़ों में विजय प्राप्त करने के लिए विभिन्न देवताओं से प्रार्थना भी की जाती थी। ऋग्वेद के एक मन्त्र से ज्ञात होता है कि प्रतिभागी इन्द्र से प्रार्थना करता है कि हमारा रथ पीछे रह गया है, आप उसे सबसे आगे कर दो, हमारे रथ को प्रथम स्थान प्राप्त कराओ।[5] हमें विजय प्राप्त कराओ।[6] स्पष्ट है कि वैदिक काल में आर्यजन रथ व घुडदौड़ के प्रति विशेष रुचि रखते थे।

2. द्यूत क्रीड़ा

मनोरंजन का दूसरा साधन द्यूत क्रीड़ा (जुआ) था। ऋग्वेद में द्यूत को अक्ष भी कहा गया है।[7] ऋग्वेद के एक मंत्र में द्यूत खेलने वाले व्यक्तियों का विवरण कुछ इस प्रकार हैं - जुआरी अपना घर, द्वार, धन, खेत आदि सब कुछ हार जाते थे, इतना ही नहीं, वे अपनी पत्नी को भी दांव पर लगा देते थे और पत्नी को भी हार जाते थे।[8] ऋग्वेद के एक मंत्र में द्यूत खेलने वालों की दशा का वर्णन किया गया है जब चौसर के ऊपर पाशे (खेलने वाली गोटियाँ) इधर से उधर जाते हैं तो उन्हें देखकर मन अत्यधिक प्रसन्न होता है। जैसे पर्वत पर उत्पन्न होने वाली श्रेष्ठ सोमलता का रस पीने पर जो हर्ष उत्पन्न होता है, उसी प्रकार लकड़ी के बने ये पाशे मुझे उत्साह प्रदान करते हैं। इस मंत्र के माध्यम से हमें द्यूत के प्रति जुआरी की आसक्ति का ज्ञान प्राप्त होता है। वहीं एक दूसरे मंत्र में हम जुआ खेलने वाले की दयनीय स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है। जुआ खेलने वाले पुरुष की सास उसे बुरा भला कहती है और उसकी सुन्दर सुशील पत्नी भी उसको त्याग देती है। जुआरी को कोई एक फूटी कौड़ी भी उधार देने को तैयार नहीं होता है। जैसे की वृद्ध घोड़े को कोई खरीदने को तैयार नहीं होता है।[10] ऋग्वेद के इन मंत्रों के माध्यम से, हमें न केवल द्यूत के प्रति आमजन की आसक्ति का ज्ञान प्राप्त होता है बल्कि द्यूत खेलने से उत्पन्न जो दोष है वे भी उजागर होते हैं। सम्भवतः इसीलिए जो लोग जुआ खेलते हैं, उन पर सामाजिक प्रतिबन्ध भी लगाया जाता था। जब कभी जुआ खेलते हुए, किसी जुआरी को पकड़ लिया जाता था तो स्वयं उसके माता-पिता आदि भी कह देते थे कि इससे हमारा कोई लेना-देना नहीं, हम इसे नहीं जानते हैं। इसे बाँधकर तुम लोग ले जाओ। ऋग्वेद के ही अन्य मंत्र में जुआरी खुद विचार करता है कि मैं अनेक बार चाहता हूँ कि जुआ न खेलूँ, लेकिन चौसर पर पड़े पासों को देखकर मन ललचा जाता है और सोचता है कि शायद आज तो मैं जीत ही जाऊँगा। जुआरी जब द्यूत में जीतता है तो उसे पुत्र जन्म जैसा ही हर्ष होता है, परन्तु जब हारने लगता है तो मरण जैसा हो जाता है।[11]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में द्यूत क्रीड़ा का विशेष रूप से प्रचार था। समाज द्यूत रूपी बीमारी से ग्रसित था। लेकिन उस काल के लोग इसे मनोरंजन का एक अच्छा साधन समझते थे।

3. नृत्यगीत गाथा व संवाद :- मनोरंजन के साधनों में नृत्यगीत का भी प्रमुख स्थान था। स्त्री व पुरुष दोनों ही इस का आनन्द लेते थे। उत्सवों के अवसर पर स्त्रियाँ नृत्य करती थी व गाना गाती थी और पुरुष विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्रों को बजाते थे।[12] ब्राह्मण साहित्य से गद्यात्मक आख्यानों के बीच-बीच में पद्यात्मक गाथाएं रहती थी जिनकों गाया जाता था। संभवत: ये गाथा युक्त आख्यान गाने वालों का एक अलग ही समूह होता था जो कि इस कला में पारंगत होते थे, और बड़े ही हाव-भाव के साथ गाते थे जिसे सुनकर श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते। इस गाथा आख्यान के साथ ही नाटकीय संवाद भी वैदिक काल में मनोरंजन का एक महत्वपूर्ण साधन था।[13]

4. मेले व उत्सव - ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि इस काल के लोगों के मनोरंजन के लिए मेले व उत्सवों का भी आयोजन किया जाता था। मेले के लिए समन शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थान पर हुआ है।[14] इन मेलों व उत्सवों में स्त्रियाँ व बच्चे खूब सज-धज कर रंग-बिरंगे परिधान पहन करके जाते थे।[15] इन मेलों में आधुनिक काल के समान कवि सम्मेलन भी हुआ करते थे जिनमें कवि यश प्राप्त करते थे।[16] ये मेले प्राय: रात भर चलते थे।[17] व इनमें विभिन्न प्रकार के तमाशे जैसे - बन्दर का नचाना, स्त्री व पुरुषों द्वारा विभिन्न प्रकार के करतब जैसे रस्सी पर चलना, बांस पर चढ़ना व नृत्य करना आदि।[18] इस प्रकार इन मेलों व उत्सवों में सभी वर्ग के लोग भाग लेते थे व आनन्द की अनुभूति करते थे।

5. जादूगरी का तमाशा या इन्द्रजाल - इस काल में मनोरंजन के लिए अलौकिक साधनों का प्रयोग किया जाता था जिसे इन्द्रजाल कहते थे। अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि इन्द्रजाल का प्रयोग इन्द्र का जाल अर्थात् इन्द्र की माया है।[19] इन्द्रदेव सेना के नेता थे। वह जब-जब असुरों को अस्त्र-शस्त्रों से पराजित न कर सके तब-तब छल (माया) का प्रयोग करते थे व विजय प्राप्त कर लेते थे। इन्द्र के द्वारा छल (माया) के प्रयोग को इन्द्रजाल कहा गया है। शतपथब्राह्मण में असुरविद्या (माया) का नाम मिलता है। यह भी इन्द्रजाल ही है।[20] इस प्रकार जादू या माया का खेल यज्ञ व मेले व उत्सवों के समय किया जाता था तथा आम जनता अपना मनोरंजन करती थी।

6. मनोरंजन के अन्य साधन - वैदिक काल में इन विभिन्न क्रीडाओं के अतिरिक्त आखेट करना भी मनोरंजन का एक साधन था। ऋग्वेद के एक मंत्र में शिकारी के डर से भागते हुए मृगों का वर्णन प्राप्त होता है।[21] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस काल में आखेट करना भी मनोरंजन का साधन था। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि इस काल के लिए गड्ढे खोद कर हिरण व शेर पकड़ना भी प्रचलित थे।[22] बच्चे प्राय: मनोरंजन के लिए लकड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के खिलौनों से खेलते थे।[23]

इस प्रकार वैदिक काल के लोगों ने अपने मनोविनोद के लिए विभिन्न साधन जुटाये थे और इन्हीं साधनों के माध्यम से न केवल अपना मनोरंजन करते थे, बल्कि अपने जीवन के गम्भीर भार को हल्का बनाकर उसे सच्चे अर्थ में आनन्दमय बनाते थे। यदि आज हम अपने मनोरंजन के साधनों पर दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि अनेको-अनेक ऐसे मनोरंजन के साधन हैं जो प्राचीन काल ही देन हैं। जैसे हम रथ दौड़ व घुडदौड़ को ही ले तो देखते हैं कि घुडदौड़ आज भी मौजूद है बस उसका रूप बदल गया है। इस दौड के आधार पर ही कार रेस, साईकिल रेस आदि प्रचलित हैं। ऊँटों की दौड़ राजस्थान में व पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बैल गाड़ी दौड़ इत्यादि इसी का रूप हैं। जहाँ तक द्यूत क्रीड़ा का सवाल है, वह आज भी भारतवर्ष में प्रचलित हैं। लेकिन प्राचीन काल की भाँति मनोरंजन का स्वस्थ साधन नहीं माना जाता है। मेलों व उत्सवों की तर्ज पर आज भी प्रदर्शनियाँ, महोत्सव इत्यादि मनाये जाते हैं। पहले ये मेले व उत्सव केवल एक ग्राम तक सीमित थे परन्तु अब यह न केवल राष्ट्रीय, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मनाये जाते हैं। लेकिन सच तो यह है कि इन तमाम दौड़ों मेलों उत्सवों इत्यादि की जो प्रेरणा है वह हमें अपने प्राचीन वैदिक साहित्य से ही प्राप्त होती है।

पाद-टिप्पणियाँ

1. ऋग्वेद 4/24/8
2. ऐतरेय ब्राह्मण 2/25
3. शतपथ ब्राह्मण 5/1/1/1-4
4. डॉ0 विमल राय - वेदकालीन समाज संस्कृति, पृ. 158
5. ऋग्वेद 18/80/4-5
6. ऋग्वेद 8/80/6
7. ऋग्वेद 10/34/12
8. ऋग्वेद 10/32/2
9. ऋग्वेद 101/34/1-12
10. ऋग्वेद 101/34/13-14
11. अथर्ववेद 12/1/41
12. डॉ. विमल राय - वेदकालीन समाज संस्कृति, पृ. 160-61
13. ऋग्वेद 4/58/8
14. ऋग्वेद 1/124/8
15. ऋग्वेद 2/16/7
16. ऋग्वेद 1/48/6
17. ऋग्वेद 1/10/1
18. अथर्ववेद 8/8/8
19. शतपथ ब्राह्मण 13/4/311
20. ऋग्वेद 4/58/6
21. ऋग्वेद 9/83/4, 1/7/1
22. ऋग्वेद 4/32/23

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास का पर्यावरण-चिन्तन

डॉ. पूनम घई
एसोसिएटस प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
आर0एस0एम0 (पी0जी0) कॉलेज
धामपुर (बिजनौर)

पशु-पक्षी, शस्य श्यामला धरती, आकाश, सूर्य, तारा मण्डल, चन्द्र, समुद्र, मेघ, वृक्ष, लताएं, बिजली, उन्मत्त जलधारा इत्यादि का अवलोकन पर्यावरण चिन्तन के अन्तर्गत आता है। ये सभी प्राकृतिक उपादान मनुष्य के साथ रहने वाले हैं। इनकी गोद में मानव ने सदैव विश्राम किया है। कालिदास का जो कि मानव हृदय के कवि हैं उनका प्राकृतिक सौन्दर्य भी श्लाघनीय हैं। कालिदास ने प्रकृति को तटस्थ की भाँति न देखकर जीवन्त सङ्गिनी के रूप में देखा है। यह प्रकृति का संवेदनशील स्वरूप ही था जिसे देखकर आदि कवि वाल्मीकि के मुख से आदि काव्य के रूप में करुणा का स्रोत प्रकट हुआ था-

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥[1]

कालिदास की कृतियों में मानव का पर्यावरण के साथ अनेक प्रकार से सम्बन्ध देख सकते हैं। प्राकृतिक वातावरण का सबसे महत्वपूर्ण तत्व जलवायु है। जलवायु मानव के खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, वेश-भूषा, संस्कृति एवं रीति-रिवाज आदि पर पूर्ण नियन्त्रण रखती है। मानव एवं जलवायु के अटूट सम्बन्ध को स्वीकारते हुए कवि ने अनेक स्थानों पर काव्यात्मक भाषा में जलवायु के प्रभाव को दर्शाया है। वायु की अनुकूलता और प्रतिकूलता मानव के जीवन में घटित होने वाली शुभ-अशुभ घटनाओं का संकेत करती है। वायु का सम्बन्ध कवि ने मनुष्य के मन की इच्छाओं से जोड़ा है। उनका कहना है कि पवन अनुकूल चल रहा था और यह संकेत दे रहा था कि मन की इच्छाएं अवश्य पूरी होती हैं।

"पवनस्यानुकूलत्वात्प्रार्थना सिद्धिशंसिनः"[2]

कवि ने सुगन्ध भरे पवन की तुलना सुगन्धित मानव-श्वास से की है-

"सरसीष्वरविन्दानां वीचिविक्षोभशीतलम्।
आमोदमुपजिघ्रन्तौ स्वनिःश्वासानुकारिणम्॥"[3]

मेघदूत के पूर्वभाग में कालिदास ने रामगिरि से अलकापुरी तक के मार्ग में पड़ने वाले प्रसिद्ध स्थानों, नदियों, पर्वतों तथा तीर्थ स्थानों का ऐसा लुभावना चित्रण किया है, जिसे सुनकर यक्ष का सन्देश ले जाने वाला मेघ ही नहीं, वरन् पाठक भी बस तुरन्त प्रस्थान कर देने को उद्यत हो जाए। उन्होंने प्रकृति को मूक, चेतनाहीन एवं निष्प्राण नहीं माना है। उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी मनुष्य के ही समान सुख-दुःख संवेदना का भाव दिखाई देता है। 'ऋतुसंहार' के ऋतु-वर्णन का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि ऋतुओं के वर्ष भर बदलते वातावरण से मानव के स्वभाव, पहनावा, उढ़ावा, खाना-पीना तथा अन्य चेष्टाओं में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार वातावरण मानव के क्रिया कलापों को नियन्त्रित करता है।

कालिदास के भौगोलिक ज्ञान की अनेक विद्वानों ने प्रशंसा की है और उन्होंने कालिदास को इस बात का श्रेय दिया है कि मेघदूत में कालिदास ने मेघ का जो मार्ग बतलाया है, वही सचमुच मानसूनी हवाओं (Trade Winds) का मार्ग होता है।

कालिदास ने 'मेघदूतम्' में मेघ-मार्ग वर्णन के व्याज से मध्यभारत से लेकर हिमालय की हिमाच्छादित धवल शिखरों तक मार्ग में पड़ने वाले प्राकृतिक सौन्दर्य और ऐतिहासिक तथा धार्मिक महत्व के सभी मुख्य स्थानों का कवित्वमय वर्णन दे दिया है।

मानव का सृष्टि के आदि से ही प्रकृति के साथ तन्तुपट जैसा सम्बन्ध रहा है। हमारा सम्पूर्ण साहित्य प्रकृति के रमणीय अञ्चल में विरचित हुआ है। हृदयगत मनोभावों के प्रबल हो उठने पर मानव का प्रकृति से तादात्म्य अधिकाधिक हो जाता है। मानव की दृष्टि में प्रकृति का संवेदनशील स्वरूप ही हिन्दी साहित्य को 'छायावाद' जैसी वस्तु दे सका है। कालिदास का विचार है कि मेघ के गर्जन के पीछे होने वाली वर्षा की ध्वनि मधुर लगती है।

''गर्जितान्तरावृष्टिं सौभाग्येन जिगाय सा''[14]

यह प्रतिक्रिया कवि का प्रकृति के प्रति प्रेम दर्शाती है।

प्राचीन काल से ही मानव का वनस्पति से निकट सम्बन्ध रहा है। खाद्य सामग्री के रूप में विविध अनाज, फल, निवास के लिए लकड़ी के मकान, पशुओं का चारा, जलाने के लिए लकड़ी इत्यादि समस्त उपादान वनस्पतियों से ही प्राप्त होते हैं। कालिदास ने अपने वर्णनों में अनेक स्थानों पर वनस्पतियों का उल्लेख किया है। उन्होंने मानव अंगों की तुलना प्राकृतिक वनस्पतियों से की है। मानव की लम्बी भुजाएं साल के वृक्ष के समान है। ''शालप्रांशुर्महाभुजः''[15] तथा इसके साथ ही साल वृक्ष से प्राप्त गोंद की मानव के लिए उपयोगिता की ओर भी संकेत दिया है।[16] इसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी शकुन्तला के अधरोष्ठ नवपल्लव के सदृश लाल तथा दोनों हाथ मृदु शाखाओं की भाँति हैं -

''अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमंगेषु सन्नद्धम्।।''[17]

राजा दिलीप अपनी पत्नी सुदक्षिणा को मार्ग में जाते समय सुहावने दृश्य दिखाने में इतने निमग्न हो गए कि उन्हें यह भान ही न हो सका कि मार्ग कब निकल गया।

''तत्तद् भूमिपतिः पत्न्यै दर्शयन्प्रियदर्शनः।
अपि लंघितमध्वानं बुबुधे न बुधोपमः।।''[18]

कवि ने देवदारु के वृक्ष के साथ मानव-सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहा है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् शंकर इसे अपने पुत्र के समान मानते हैं।[9]

प्राकृतिक वनस्पतियों से प्राप्त वस्तुओं की नारी के आभूषणों में उपयोगिता बताते हुए कवि कहता है कि प्राकृतिक वनस्पतियों से प्राप्त वस्तुओं से वन कन्याएं शृंगार किया करती थीं। पार्वती के शरीर पर लाल मणि को लज्जित करने वाले अशोक के पत्तों के सांचे की चमक को घटाने वाली कर्णिकार के फूलों के और मोतियों की माला के समान उजले सिन्धुवार के वासन्ती फूलों के आभूषण सजे हुए थे। उन्होंने केसर के फूलों की तगड़ी बनाकर पहन ली थी।[10] शकुन्तला का अद्भुत प्रकृति प्रेम उस समय दृष्टिगोचर होता है जब स्वयं महर्षि कण्व पतिगृह जाती हुई शकुन्तला को निर्दिष्ट कर वृक्षों की ओर देखते हुए कहते हैं कि हे 'पादपों'! जो तुम्हें सींचे बिना पानी नहीं पीती थी, शृंगार प्रिय होते हुए भी स्नेह के कारण तुम्हारे पत्तों को नहीं तोड़ती थी और तुम्हारे प्रथम पुष्प दर्शन पर जो उत्सव मनाती थी. पतिगृह जाती उस शकुन्तला को आप सब अनुमति दो'

''पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।''[11]

शकुन्तला के इस चरम प्रकृति प्रेम का प्रभाव यह होता है कि तपोवन के समस्त जड़-चेतन उसके ऐसे अनन्य अनुरागी हो जाते हैं कि उसकी विदाई के अवसर पर वहाँ के वन देवताओं तथा तरु-लताओं ने अलौकिक वस्त्राभूषण आदि उसके लिए उपहार स्वरूप दिए। वनस्पतियों से मानवीय वार्तालाप की छटा 'विक्रमोर्वशीयम्' में देखनें को मिलती है।[12]

मानव सभ्यता का विकास खनिजों के आधार पर हुआ है। औजारों, उपकरणों और यन्त्रों के प्रयोग से मानव ने उद्योग, परिवहन, संचार, शिक्षा, विज्ञान, तकनीकी में आश्चर्यजनक उन्नति की है। वर्तमान काल में ये खनिज पदार्थ ही किसी राष्ट्र या देश की शक्ति को नापने का पैमाना हैं। कालिदास की कृतियों में भी उन्होंने हीरा, मोती, सोना आदि खनिजों का उल्लेख किया है। उस समय सोने का सम्बन्ध मानव से अति निकट का था। इसके खरेपन एवं खोटेपन से मानव के भले-बुरे को परखने की क्षमता आंकी जाती थी -

''हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा।''[13]

इसके अतिरिक्त हीरे का उल्लेख भी है-

''मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः।''[14]

मोती का उल्लेख भी आया है -

''ताम्रपर्णी समेतस्य मुक्तासारं महोदधेः।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव संचितम्।।''[15]

नदियों, झीलों, तालाबों एवं दलदलों का वर्णन भी पर्यावरण के अन्तर्गत आता है। जल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं वायु ही प्रत्येक प्राणी को जीवित रखने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। प्रारम्भ से ही मनुष्य ने नदियों और झीलों के किनारे अपनी बस्तियां बसाई थीं। जल संसाधनों का महत्व कालिदास की रचनाओं में भी देखने को मिलता है। इन्हीं के द्वारा हम अन्न प्राप्त करते हैं। रघुवंशम् में इसी बात को रघुकौत्स से पूछते हैं कि उन नदियों का जल ठीक है न, जिसमें आप लोग प्रतिदिन स्नान, सन्ध्या, तर्पण आदि करते हैं और जिनकी रेती पर आप लोग अपने चुने हुए अन्न का छठा भाग राजा का अंश समझकर रख छोड़ते हैं।

''निवर्त्यते यैर्नियमभिषेको येभ्यो निवापाञ्जलयः पितृणाम्।
तान्युच्छषष्ठांकितसैकतानि शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित्।।''[16]

कालिदास मानते हैं कि ऋषियों के मन्त्रोच्चार में इतनी शक्ति है कि अग्नि में हवि डालने से अनावृष्टि से सूखे हुए धान के खेतों पर भी जलवृष्टि होने लगती है। यहाँ यज्ञ धूम से वायु प्रदुषण के दूर होने पर वर्षा के लिए अनुकूल वातावरण बनता है ऐसा बताया गया है। इस प्रकार वर्षा कृषि-कार्य के लिए उपयुक्त जल संसाधन है यह उचित प्रतीत होता है-

''हविरावर्जितं होतस्त्वया विधिवदग्निषु।
वृष्टिर्भवति सस्यानामवग्रहविशोषिणाम्।।[17]

भूमिगत जल को उपयोग में लाने के लिए जो तकनीकें हम आज के समय में उपयोग में लाते हैं सम्भवतः उस काल में भी कुछ ऐसी ही तकनीकों का उपयोग मानव करता था। रघुवंशम में कवि का कथन है कि रघु के पास ऐसे साधन थे कि मरुभूमि में भी जल की धाराएं बहने लगीं -

''मरुपृष्ठान्युदम्भांसि नाव्याः सुप्रतरा नदीः।
विपिनानि प्रकाशानि शक्तिमत्त्वाच्चकार सः।।[18]

पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में जीव-जन्तुओं का मनुष्य से अटूट सम्बन्ध है। प्रागैतिहासिक काल से ही मनुष्य एवं जीव-जन्तु-पशु एक दूसरे के परस्पर सहयोगी रहे हैं। दोनों इसी सहयोग को प्राप्त कर सहजता के साथ पर्यावरण में अपने अस्तित्व को स्थापित करते हैं। जीव-जन्तु-पशुओं के द्वारा खाद्य सामग्री की प्राप्ति, उनके रेशे से कपड़ा बनाने, कृषि कार्य में प्रयोग करने, दूध प्राप्त करने, सवारी करने आदि का उल्लेख आता है। इसके अतिरिक्त मानव पशुओं-पक्षियों से प्यार भी करता है। मृग के लिए कुश का ग्रास स्वाभाविक है पर शकुन्तला ने उसे पुत्र बनाकर पाला है तथा अपने हाथ से खिलाया-पिलाया है। कुशों की नोक से तालु के छिल जाने पर घाव में इंगुदी का तेल लगाया है। वह मृग पतिगृह जाने वाली शकुन्तला का मार्ग कैसे छोड़ दे-

''यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यामाक मुष्टिपरिवर्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते।।[19]

मानव और मानवेतर जीवों का परस्पर अन्योन्याश्रित संबंध होने से उनमें प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न होता है। इसी से दोनों के मध्य सद्भावना का भी उदय होता है। कालिदास ने इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध को न केवल आवश्यक माना है अपितु अनेक स्थानों पर तो पशु-पक्षियों के आचरण को मनुष्य के लिए आदर्श घोषित भी किया है। मानव का पशुओं के प्रति प्रेम प्रदर्शित करते हुए कवि कुमारसम्भव में कहते हैं कि 'अंजलि भर-भर नीवार के दोनों से पार्वती ने हरिणियों को इस प्रकार भरमा-परचा लिया था कि वे उनके पास जाते हिचकती नहीं थी और तब वह पार्वती उनकी आंख पर अपनी आंखे रख उनकी छोटाई-बड़ाई नाप लेती थीं-

"अरण्यबीजां जलिदानलालितास्तथा च तस्यां हरिणाविशश्वसुः।
यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात्पुरः सखीनाममिमीतलोचने।।"[20]

महाकवि कालिदास ने मोर, हरिण जैसे पशुपक्षियों के साथ मानव की आत्मीयता को अनेक स्थानों पर दर्शाया है। राम को विरहावस्था में सीता की खोज में भटकते देखकर हरिणियों ने दर्भाकुर-भक्षण त्यागकर अपनी आँखें दक्षिण दिशा की ओर उठाकर सीता के मार्ग का संकेत किया-

"मृग्यश्च दर्भांकुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञं भ्रमबोधयन्माम्।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्यामुत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि।।"[21]

सीता-परित्याग के अवसर पर उनका रोना सुनकर मोरों ने नाचना बन्द कर दिया, वृक्ष पुष्पों के आँसू गिराने लगे और हिरणियों ने मुँह में भरी घास का कौर गिरा दिया, इस प्रकार सीता जी के दुःख से दुःखी होकर समूचा वन रोने लगा -

"नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा दर्भानुपात्तान्विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समुदुःखभावमत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि।।"[22]

जीव-जन्तुओं के उपयोग को बताते हुए कवि कहते हैं कि घोड़ों का पालन रथ में जोतने के लिए किया जाता था। कामधेनु नामक गाय यज्ञ में आहुति देने में सहायक मानी गई है।[23] सर्पो को भी द्वारपाल का कार्य सौंपने का उल्लेख है।[24] मृग का चर्म पहनने के काम आता था।[25]

इस प्रकार यह कहना युक्तिसंगत है कि चतुर्दिक फैली विशाल प्रकृति तथा अनन्त प्रकृति के उपादान भावनाशील तथा चेतन जान पड़ते हैं। उनमें मानव-जगत् के प्रति सहानुभति है, वे मानव से व्यथित होते हैं तथा मानव के सुख से सुखी। महाकवि कालिदास ने मानव एवं प्रकृति के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं खींची है। कालिदास ने मानव एवं प्रकृति दोनों का ही मंजुल संपर्क तथा अद्भुत एकरसता प्रदर्शित करके प्रकृति के अन्तर में स्फुरित होने वाले हृदय को पहचाना है। वास्तव में प्राकृतिक सौन्दर्य ही मानवीय सौन्दर्य का मापदण्ड है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने अन्तः प्रकृति और बाह्य प्रकृति का सुन्दर समन्वय किया है। जो घटना मानव के हृदय में घट रही है वैसी ही घटना बाह्य प्रकृति में भी घट रही है। इस प्रकार कालिदास के सम्पूर्ण साहित्य में ही मानव-पर्यावरण समबन्ध को यत्र-तत्र देखा जा सकता है।

पाद-टिप्पणी

1. वाल्मीकी रामायण, बालकाण्ड, द्वितीय सर्ग - 15
2. रघुवंशम् - 1/42
3. रघुवंशम् - 1/43
4. कुमारसम्भवम् - 2/53
5. रघुवंशम् - 1/13
6. रघुवंशम् - 1/38
7. अभिज्ञानशकुन्तलम् - 1/21
8. रघुवंशम् - 1/47
9. रघुवंशम् - 2/36
10. कुमारसम्भवम् - 3/53
11. अभिज्ञानशाकुन्तलम् - 4/9
12. विक्रमोवशीयम् - अंक-4
13. रघुवंशम् - 1/10
14. रघुवंशम् - 1/4 तथा 3/18
15. रघुवंशम् - 4/50
16. रघुवंशम् - 5/8
17. रघुवंशम् - 1/62
18. रघुवंशम् - 1/31
19. अभिज्ञानशाकुन्तलम् - 4/14
20. कुमारसम्भवम् - 5/15
21. रघुवंशम् - 13/25
22. रघुवंशम् - 14/69
23. रघुवंशम् - 1/80
24. रघुवंशम् - 1/80
25. रघुवंशम् - 3/31

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्याधारित शिक्षा एवं भारतीय संस्कृति

आचार्य डॉ. सहदेव शास्त्री
संस्कृत विभाग प्रभारी
राज. महाविद्यालय जैतारण (पाली)

संस्कृत के मूलशब्द के साथ यत् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न मूल्य शब्द का शिक्षाविद् काने के अनुसार अभिप्राय है कि मूल्य वे आदर्श विश्वास या प्रतिमान हैं जिनको एक समाज या समाज के अधिकांश सदस्यों ने ग्रहण किया है "Values are ideals, beliefs or norms which a society or the large majority of society members hold" अर्थात् नैतिक मूल्य वे हैं, जो हमें अन्यों के साथ उपयुक्त व्यवहार करने में सहायक हों। हमें स्वार्थ से परे रख कर दूसरों की भलाई हेतु त्याग करने की भावना का विकास करें। नैतिक नियम व मूल्य मानव के साथ आचार व व्यवहार को महत्वपूर्ण रूप से वर्णित करते हैं। मूल्यों से तात्पर्य उन सामाजिक कलात्मक नैतिक स्तरों से हैं जिन्हें व्यक्ति स्वयं एवं दूसरों से पालना करने की इच्छा रखता है, जैसे अपने पड़ौसी के साथ अच्छा व्यवहार रखना, उसकी संपत्ति की रक्षा व सम्मान करना, नियमों का पालन करना ये सभी मूल्यों की परिभाषा व सम्प्रत्यय में सम्मिलित होते हैं।

संसार में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में नैतिक नियमों, नैतिकता के सिद्धान्त तथा मूल्याधारित शिक्षा से परिचित न हो ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहाँ नैतिक मूल्य उपलब्ध न हो। इसे पाश्चात्य मनीषियों ने इस प्रकार परिभाषित किया है -"The hawk soars to the heavens above and fishes dive to the depths below" अर्थात् चाहे वह स्वर्ग की ऊँचाई हो या समुद्र की गहराई ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ नैतिक नियम एवं मूल्याधारित शिक्षा न हो। वस्तुत: नैतिक नियम मूल्यपरक अस्तित्व में होते हुए भी एक रहस्यात्मक है जिसे सामान्यजन की समझ नैतिक मूल्यों और नियमों को कुछ हद तक ही समझ सकती है। इसके गूढ़ार्थ तक तो बुद्धिमान् व्यक्ति भी नहीं पहुँच पाते। अत: नैतिक नियमों एवं मूल्यपरक-शिक्षा की स्थापना ही भारतीय संस्कृति है।

धार्मिक एवं नैतिक मूल्यपरक समिति 1959 में - नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यपरक शिक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया है - "Anything that helps us to behave properly towards other is of moral value" "Anything that takes us out of ourself and inspires us to sacrifice for the good of others or for a great cause of spiritual value"

In the words of Cattell 1965 - "By values we mean the social, artistic, moral and other standards which the individual would like others and himself to follow"

According to Oxford English Dictionary 1967 - Values are defined as worth, utility, desirability and qualities on which these depend.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय मतानुसार मूल्यपरक शिक्षा की परिभाषा :- प्राचीन भारत में शिक्षा का जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था। वस्तुतः मूल्यपरक शिक्षा ही भारतीय विचारों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने का महत्वपूर्ण माध्यम रही है। यह पुरातन भारतीय शिक्षा प्रमुखरूप से ज्ञान, धर्म और दर्शन पर आधारित रही है। 'पुरुषार्थ चतुष्ट्य' की कल्पना भी पुरातन वैदिककालीन शिक्षा एक सूत्र में रही है। उस समय जीवन का अन्तिम ध्येय मनुष्य को इस जगत् में कल्याण तथा अभ्युद्य की प्राप्ति तथा परलोक में सर्वोच्च-सुख की प्राप्ति करना था। इन चार पुरुषार्थों में धर्म को प्रथम स्थान पर प्रतिष्ठित किया गया है। **वैशेषिक दर्शनानुसार** - **''यतोऽभ्युदय - निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः।''** अर्थात् जिस मूल्याधारित धर्म या शिक्षा से मानव-मात्र का सर्वांगीण विकास या कल्याण की सिद्धि की प्राप्ति हो उसे धर्म या शिक्षा कहा है।

वेदोक्त शिक्षा के उद्देश्य कथन :- शिक्षा या विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती है जो भारतीय संस्कृति के मूलाधार ग्रन्थ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद (ब्रह्मवेद) में सुस्पष्ट शिक्षातत्वों के विषयों का उल्लेख कर प्रतिपादन करते हैं, **''पावकाः नः सरस्वती''** अर्थात् शिक्षाधिष्ठात्री विद्यादेवी सरस्वती हमें पवित्र करें। वहीं **ऋग्वेद का कथन** है कि जो छात्र प्रबुद्ध और तीव्र बुद्धि वाला होता है उसी को गुरु उच्च शिक्षा प्रदान करे **''शिक्षेयमस्मै दित्सेयम् मनीषणे''** (ऋग्- 7.14.2)। इसी प्रकार ऋग्वेद उद्घोषित करता है - **''शिक्षेयम् इन्महयते दिवेदिवे''** (ऋ.वे. 7.32.19) अर्थात् आज्ञाकारी शिष्य को ही शिक्षा देवें।

यही Value Baesd Education & Indian Culture है क्योंकि इसी तथ्य को मैं नहीं अपितु पाश्चात्य वेद रिसर्चकॉलर वेदमनीषी **मैक्समूलर** विश्व शब्दकोष में स्वीकारता है कि **''ऋग्वेद इज दा इन्सीयेन्ट बुक इन वर्ल्डस् लाइब्रेरी''** अर्थात् ऋग्वेद तथा अन्यवेद संसार के पुस्तकालयों में सर्वाधिक प्राचीनतम-ग्रन्थ हैं। वहीं वेदानुसार शिक्षा या विद्या के उद्देश्य के विषय में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य संक्षेप में प्रस्तुत हैं।

1) मूल्यपरक शिक्षा एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति विषयक उद्देश्य :- प्राचीन भारतीय-संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में अथर्ववेदादि का मूल्यपरक-शिक्षा के उद्देश्य में कथन है -1) सर्वप्रथमतः व्यक्ति की बुद्धि का विकास करना उसे परिष्कृत करना, उसे तीक्ष्ण कर खर से प्रखर बनाना, इसके लिए कठोर तप एवं साधना करना, उन्नति की ओर ले जाना, महान् सौभाग्य प्राप्त करना अर्थात् जीवन का सर्वांगीण विकास करना..... आदि। **''वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभागाय''** (अ.वे. 7.16.1)

2) जीवन को तपस्वी बनाना :- मूल्याधारित शिक्षा के अन्योद्देश्य इस प्रकार हैं - जीवन को साधा हुआ बनाना, वह तप और साधना से **(अध्ययनं हि तपः) अथर्ववेद** का कथन है कि तपस्वी जीवन व्यतीत करते हुए वेदों को पढ़ते पढ़ाते हुए दीर्घायु एवं मेधावी बनें। **''तपस्तप्यामहे श्रुतानि शृण्वन्तः ..... सुमेधस''** (अ.वे. 7.61.2)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3) **आचार एवं चरित्रपरक शिक्षोद्देश्य** :- मूल्याधारित शिक्षा के उद्देश्य कथन में अन्य महत्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार है - चरित्र, निर्माण, सत्यनिष्ठा, सत्याचरण, असत्य छलप्रपंचादि का परित्याग चारित्रिक शुद्धि आदि अतएव **यजुर्वेद डिंडिम घोषणा करता है** - मैं असत्य का परित्याग कर सत्य को ग्रहण करता हूँ **''इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि''** (य.वे. 1.5)

4) **व्रत एवं श्रद्धा** :- किसी एक लक्ष्यपूर्ति हेतु समर्पित भाव से कार्य में संलग्न होना 'व्रत' है यजुर्वेद में व्रत को जीवन की आधारशीला कहा है - व्रत से मनुष्य दीक्षित होता है दीक्षा से दाक्षिण्य (प्रवीणता) आती है, उस दक्षता से मनुष्य श्रद्धावान् होता है। **''श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्''** श्रद्धा से ही जीवन के लक्ष्यरूप-सत्य-ब्रह्म-विद्या की प्राप्ति होती है। ''व्रतेन दीक्षा. ....सत्यमाप्यते'' (य.वे. 19.30)। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य आत्मिक उन्नति करते हुए मुक्ति या ब्रह्म की प्राप्ति करना ''सा विद्या या विमुक्तये'' (मु.उ.) वस्तुत: जो मुक्ति या परमसुख प्रदान करे वही शिक्षा है।

5) **विद्या एवं बुद्धि का समन्वय** :- शिक्षा के साथ व्यवहारिक बुद्धि का होना आवश्यक है। व्यवहार शून्य शिक्षा भारवाहिका है **''क्रियां बिना ज्ञानं भार:''** अत: अ.वे. का कथन है - सरस्वती (शिक्षा) के साथ 'धी' अर्थात् व्यवहार-बुद्धि आवश्यक है - ''सं सरस्वती सह धीभिरस्तु'' (अ.वे. 19.11.02)

6) **ज्ञान एवं कर्म समन्वय शिक्षा** :- अ.वे. (20.89.3) के अनुसार मेरी बुद्धि सदैव कर्मठ रहे तभी शिक्षा सफल होती है।

7) **शिक्षा में अध्यात्म एवं भौतिकवाद का समन्वय** :- य.वे. अध्यात्म एवं भौतिकवाद के समन्वय-रूप की शिक्षा देता है। ईशावास्योपनिषद् आदेश देती हैं कि केवल भौतिकवाद या प्रगतिवाद अनर्थ का कारण है और अध्यात्मपरक विद्या तो ओर अधिक अनर्थकारी - अत: शिक्षोद्देश्य में दोनों का समन्वय-रूप अभीष्ट है। मु.उप. में तो 'परा' एवं 'अपरा' शिक्षा के समन्वय-रूप को सर्वश्रेष्ठ कहा है - अध्यात्मशिक्षा से अमरत्व व शान्ति मिलती है।

सर्वप्रथम **तैत्तिरीय उपनिषद् की शिक्षावल्ली में ''अथ शिक्षां व्याख्यास्याम:''** के अनुसार शिक्षा शब्द की व्याख्या करते हुए वेदमनीषी डॉ0 फतहसिंह ने निवर्चनार्थ इस प्रकार किया है 7 **''शयनं ईक्षते शिक्षा''** अर्थात् मनुष्य अपने अन्दर सोई हुई क्षमता को देखता है तथा उसे प्रकट करता है। वह शीक्षा है। वेदांग में तो **शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य** कहकर शिक्षा शास्त्र का उद्देश्य-शुद्ध उच्चारण सिखाना, शुद्ध पढ़ना, लिखना सुसंस्कृत भाषा को अभिव्यक्त करना वेद की नासिका कहा है। **''शिक्षा-विद्योपादाने''** धातु से निर्मित **'शिक्षा'** शब्द का अर्थ है - विद्या प्रदान करना। विद्या शब्द 'विद्-ज्ञाने' धातु से विकसित हुआ है जिसका अर्थ है - जानने योग्य शिक्षा और विद्या शब्दों से स्पष्ट हो जाता है कि जानने योग्य और सीखने योग्य होना दो अलग-अलग प्रकार की सोच है। यह अलग बात है कि सीखने के लिए भी कुछ जानने की आवश्यकता तो होती ही है। लोक में शिक्षा से 'सीख' शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकसित हुआ है। सीख भी ली जाती है और दी भी जागती है। वेद में 'शिक्षते' का अर्थ है- दंडित करता है। यह शिक्षक का कार्य है न कि राजा का। सामान्य व्यवहार में 'सीख देना' का अर्थ विदाई देना भी है। यह अर्थ आचार्य कुल परम्परा से सम्बद्ध है क्योंकि आचार्य विद्यार्थी को विद्याप्रदान कर, उसे स्नातक बनाकर उसका दीक्षान्त (समावर्त्तन) संस्कार द्वारा उसकी विदाई करता है। वैसे तो गुरुकुल से पहले **''माता निर्माता भवति''** के अनुसार माता ही बच्चे की प्रथम निर्मात्री है। मनु के अनुसार माता का स्थान सौ आचार्यो से बढ़कर होता है।

उपनिषदानुसार तो ''सा विद्या या विमुक्तये'' अर्थात् शिक्षा वही है जिससे मानवमात्र को परमानन्द (परमसुख) की प्राप्ति होती है। प्राचीनकाल में चौदह विद्याएं अध्ययन-अध्यापन का विषय रही हैं - चार वेद, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छः वेदांग तथा धर्मशास्त्र, पुराण, मीमांसा और तर्क। **छान्दोग्योपनिषद्** में शिक्षा की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि शिक्षा के द्वारा जो कुछ भी किया जाता है, वह अमृत अर्थात् अविनाशी होता है ''यदेव विद्यया करोति तदमृतम्भवति'' (छा.उ. 1.1.10)। **बृहदारण्यक उपनिषद्** के अनुसार शिक्षा से ही देवलोक की प्राप्ति होती है, जो सर्वश्रेष्ठ लोक है। **कठोपनिषद् में** - यमाचार्य नचिकेता को आत्मविद्या विषय को गोपनीय मानते हुए इसके स्थान पर सर्वविध प्रलोभन कामनाओं की पूर्ति हेतु सर्व साधनों की शिक्षा देते हैं (क.उ. 1. 1.26)।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी 'आत्मकथा' नामक पुस्तक में भारतीय संस्कृति के महत्व का आंकलन करते हुए सुस्पष्ट किया है कि ज्ञान अर्थात् शिक्षा की खोज ही इसकी प्रमुख-विशेषता है।

मूल्याधारित शिक्षा एवं भारतीय संस्कृति के आधुनिक परिप्रेक्ष्य में स्वमन्तव्य :- उपर्युक्त शिक्षा की इन विविध शिक्षा संस्थाओं और उनके पाठ्यक्रम का संचालन तथा निर्धारण आधुनिक युग में राजतंत्र से हो रहा है। भारत में कतिपय शिक्षा प्रबंधन मात्र निजी संस्थाओं में होता है। अंग्रेजों के शासनकाल से अद्यावधि सम्पूर्ण भारतीय शिक्षा का उद्देश्य विगत 250 वर्षो से अर्थोपार्जन मात्र रहा है। ब्रिटिश शासन काल में **महर्षि दयानन्द सरस्वती** की प्रेरणा से शिक्षा के लिए गुरुकुलों की स्थापना प्रारम्भ हुई। उस समय शिक्षा का उद्देश्य अर्थोपार्जन नहीं था किन्तु कलान्तर में उद्देश्य में पूर्ण शुद्धता नहीं रह पाई। आधुनिक युग में जब व्यापार का वैश्वीकरण प्रारम्भ हुआ अर्थोपार्जन में तीव्र प्रतिद्वन्द्वता प्रारम्भ हुई। वर्तमान काल में जब हम शिक्षाजगत् में दृष्टिपात करते हैं, तो शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य **वेदव्यास** के कथनानुसार **''अर्थकरी च विद्या''** ही प्रधान रही है। मध्यकालीन शिक्षाग्रन्थों में संकेत मिलता है कि जीवन के सुखों में अर्थकरी शिक्षा सम्मिलित थी किन्तु इस अर्थ प्रधान युग में अर्थ की प्रधानता होने से हमारी प्राचीन मूल्याधारित शिक्षा एवं भारतीय संस्कृति पतन की ओर अग्रसरित है। जहाँ वेदोक्त मूल्याधारित शिक्षा प्रणाली में शिक्षा के उद्देश्यों में सर्वांगीण विकास, अभ्युदय उन्नति, परमसुखों की प्राप्ति थी। आधुनिक युग में मात्र टका (धन) को ही मनुष्य अपना परमधर्म मानने लगे हैं। जैसे कि कहा है -

''टका धर्म टका कर्म टका हि परमं पदम्''। ''यस्य गृहे टका नास्ति स तु हाटके टक् टकायते''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह जी के उपन्यासों में सांस्कृतिक विवेचना

डॉ० निर्मला देवी
रीड़र, हिन्दी विभाग
जनता वैदिक कॉलेज, बड़ौत
एवं कु० रूमा देवी

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह जी के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना निहित जीवन दर्शन के क्षेत्र का अंग बनी हुई है। सांस्कृतिक चेतना के विषय में डॉ अशोक तिवारी का कथन - **"सांस्कृतिक जीवन के उन उदात्त मूल्यों का समुच्चय है जो हमारे समग्र क्रिया व्यवहार को नियन्त्रित एवं निर्देशित करते हैं।"**[1]

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने सांस्कृतिक चेतना के मूल तत्वों में आध्यात्मिकता; नारी के प्रति सम्मान, उदात्त मानव मूल्य, शिक्षा आदि को स्थान दिया है जो डॉ0 सिंह के उपन्यासों में सर्वत्र दिखाई देते हैं।

अलग-अलग वैतरणी -

'अलग-अलग वैतरणी' स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति है। आजादी के बाद ग्रामीण समाज में बहुत परिवर्तन आये जिसकी अभिव्यक्ति लेखक ने विवेच्य उपन्यास में की है।

गांव में सतघरवा, गुल्ली-डंडा आदि खेलों का वर्णन किया है। रामनवमी के अवसर पर लगने वाला देवीधाम का मेला पूरे करैता में खुशी की लहर दौड़ा देता है। गांव के मेले में स्त्री के साथ अनुचित ढ़ंग से व्यवहार करने पर मिसिर कहते हैं - **"यहीं है अपने गांव की इज्जत अपने मेले में साले हमीं खुद चमरपन्थी करते हैं। रैभानपुर के बाबू लोगों की बहू थी। पकड़ ली साले हरिया ने उसकी कलाई। ऊ लोग कछ खरीद रही थी। कई औरतें थी।"**[2]

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह जी ने नारी के अस्तित्व की रक्षा के लिए मिसिर जैसे पात्र को उपस्थित कर दिया है। जिससे भारतीय नारी की गरिमा नष्ट नहीं होती संस्कृति का परिष्कार शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है, सम्पूर्ण विश्व की स्थिति यह है कि विदेशी शिक्षा प्रणाली को अपनाकर पढ़े-लिखे युवक देश की संस्कृति से मुंह मोड़ रहे हैं। साधारण स्तर की शिक्षा का रूप आज गांव में किस स्थिति में है इस का जीवंत रूप हम करैता में देखते हैं कि प्राइमरी पाठशाला में हैडमास्टर पढ़ाते कम हैं और गांव की राजनीति में ज्यादा दिलचस्पी लेते हैं। इसीलिए शशीकान्त जैसा बुद्धि जीवी अध्यापक गांव में रहने ही नहीं दिया जाता। डॉ० सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने छात्रों के भविष्य को अंधेरे से प्रकाश की ओर ले जाने का प्रयास किया है।

'गली आगे मुड़ती है' -

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह ने 'गली आगे मुड़ती है' उपन्यास में सांस्कृतिक चेतना को अद्भुत रूप में उकेरना चाहा है सांस्कृतिक चेतना का माध्यम मुख्य रूप से युवा आक्रोश की आधार शिला पर टिका है। डॉ0 सिंह ने बंगालियों का दुर्गा उत्सव और हिन्दी-भाषियों की रामलीला और साथ ही गुजरातियों का गरबा नृत्य प्रस्तुत कर संस्कृति की भिन्नता की अभिव्यक्ति की है। नवरात्र के अवसर पर दुर्गापूजन में रामानन्द तिवारी किरण के घर मंडप सजाता है। मंडप को सजाते समय भट्टाचार्य रामानन्द से पूछता है कि - **''वाह! मैं भी कहूँ कि यह नीलश्याम प्रभामंडल किसके मन में उतर आया?''**

अच्छा लगा सर।''

''तुम जानते हो कि मैं आस्तिक हूँ। कृष्ण भक्त हूँ। मेरे लिए तो नील रंग उन्माद की अन्तिम अवस्था भी है और अपराम की गहराई भी। बस खटक रहा है गौर पीताभ?''[3]

'नीलाचाँद' -

'नीलाचांद' उपन्यास में डॉ0 सिंह जी ने सांस्कृतिक चेतना का उत्कृष्ट स्वरूप प्रस्तुत किया है। ऐतिहासिक कथावस्तु की आधार शीला को ग्रहण करते हुए वे अतीत के फलक पर वर्तमान का चित्रण प्रस्तुत करने में सर्वोपरि स्थान रखते हैं।

डॉ0 शिवप्रसाद सिंह जी ने मध्यकाल की काशी में सांस्कृतिक चेतना का प्रवाह, नारी परित्याग, राजा की राष्ट्र के प्रति उदासीनता, जातिवाद का घोर विरोध करते हुये विवेच्य कृति में सांस्कृतिक चेतना का उद्घोष किया है। अनन्त और चम्पक के कथन में डॉ0 सिंह ने मानव मात्र को दीनता त्यागने का सन्देश दिया है। चम्पक ने अनन्त से कहा - **''मैं राजा नरेश मंडलेश्वर, सामन्त आदि नामों से घृणा करता हूँ आर्य। हम दीन हैं पर अन्न-वस्त्र के लिए किसी तथा कथित अन्नदाता के सामने हाथ फैलाकर याचना नहीं करते। हमें श्री मां का आदेश है आर्य, कि ब्राह्मण पुत्र को अगर बिना याचना के अन्न-जल मिलता रहे, तो उसे ग्रहण कर लेना चाहिए पर किसी के सामने हाथ पसारना नहीं चाहिए।''**[4]

डॉ0 सिंह ने विवेच्य कृति में जातीयता के प्रसंग को पुरुष और स्त्री केवल दो जातियों को बतलाकर सांस्कृतिक चेतना में सामाजिक संबलता प्रस्तुत की है। अनन्त महायोगिनी श्री माँ भीलभद्रा की कुल व जाति को जानना चाहते हैं परन्तु जाति शब्द को ही सुनकर चम्पक कहता है - **''सावधान वहाँ यह प्रश्न न कीजिएगा कि श्री मां किस कुल या जाति की हैं।''**[5]

कुहरे में युद्ध -

डॉ0 शिव प्रसाद सिंह जी ने विवेच्य उपन्यास के अन्तर्गत सांस्कृतिक चेतना में भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति की विध्वंसता को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहा है।

विवेच्य कृति में डॉ0 सिंह ने भारतीय संस्कृति को मुसलमानी आक्रमण से आहत होते हुए देखकर अपनी हृदयगत वेदना को व्यक्त करके साहित्यकार के दायित्व का निर्वाह किया है। भारतीय संस्कृति के उस काल खण्ड को उपन्यास में घटनाक्रम से प्रस्तुत किया है। जिसमें सांस्कृतिक तथ्यों पर सीधी लेखनी चलाई जिनसे हिन्दुत्व की मानसिकता से पोषित भारतीय संस्कृति को तुर्कों के विनाशकारी प्रहारों से बचाया जा सके।

आनन्दवासेक और त्रैलोक्यमल्ल दोनों हिन्दू संस्कृति के विषय में बातचीत करते हैं जिसमें कथाकार की सांस्कृतिक चेतना दृष्टिगत होती है। **''अभिनन्दन ताऊ, आपका अभिनन्दन करता हूँ। बहुत सही बात कहीं है आपने। पर यह तो हो सकता है न ताऊ, कि द्वीपों की बहुलता के कारण धर्म और संस्कृति का जल स्थिर होकर सूखने लगे और वह भयानक मरुभूमि में बदल जाये।''** + **ये ही बतायेंगे कभी वत्स कि हमारी मातृभूमि और उसकी संस्कृति सरस्वती नदी की तरह पाताल में चली गयी ऊपर मरुभूमि तो है। आपका यह कथन तो शताब्दियों तक भारतभूमि की सन्तानों को प्रकाश देगा। बड़ी संस्कृति मरुभूमि में बदल भी जाये तो भी वह सूखती नहीं। अगर उसमें कहीं हरे-भरे उद्यान दिखें तो भीतर ही भीतर जीवन शक्ति के निरन्तर प्रवाहित होते रहने का प्रमाण मिलता है।''**[6]

'भौलूश' -

'भौलूश' उपन्यास वर्तमान पर आधारित कृति है। जिसमें कथाकार ने हिन्दू धर्म व हिन्दू जनता को लेकर भारतीय संस्कृति के प्रति अपनी चिन्तन भील विचारधारा को प्रस्तुत किया है।

दलित वर्ग के प्रति कथाकार अपनी प्रत्येक कृति में आत्मसात होते दिखाई देता है। 'भौलूश' में तो ऐसा लगता जैसे कथाकार ने अपने को दलित वर्ग के लिए समर्पित ही कर दिया हो, सब्बो मौसी के पात्र में कथाकार की आत्मा बोल उठती है - **''लगता है कि इस गरीब पूर्वांचल के लोग भूखों मरने की अपेक्षा पुलिस की गोली का शिकार हो जाना पसन्द करते हैं। यह कैसी वंचना है भगवान् कि अछूत और गरीब जो भारत के किसी भी अंचल के निशानेबाजों, भाला फेंकने वालों या लठैतों को चारों खाना चित कर सकते हैं। गुमराह होकर अपने ही में लड़ रहे हैं। जात-पात, शराब-स्मैक निराशा, अनास्था में जीने वाले एक क्षण के ऐश के लिए उनसे टकरा रहे हैं। जो छह-छह महीने फाके करते हैं। बाजरे की रोटी के एक टुकड़े के लिए तरसते हैं नट। उनके कतल से क्या मिलेगा तुम्हें?''**[7]

'औरत' -

'औरत' उपन्यास में शिवेन्द्र बाबू और नरैन के रूप में डॉ0 सिंह ने दो ऐसे पात्र प्रस्तुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किये हैं, जिनमें भारतीय संस्कृति मूर्तिमान हो उठी है। उनमें शील, सदाचार, तेजस्विता, शौर्य, परोपकार, नैतिकता जैसे वे सभी गुण विद्यमान हैं जो भारतीय संस्कृति के अंगभूत तत्व माने गये हैं।

बेबस सोनवाँ के द्वारा आत्महत्या करने पर घूरे पण्डित को धिक्कारते हुये शिवेन्द्र ने कहा - + + + + + + + **औरत की कीमत ही क्या है। इस समाज में वह चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान वह चाहे हरिजन हो या पठान सबकी एक नियति है। आप जाओं यहाँ से जहूर चाचा। मेरे मुंह से बहुत गन्दा निकल जायेगा कुछ**''[8]

प्रसिद्ध कथाकार डॉ0 सिंह की कृतियों का अध्ययन करने के बाद यह कहा जा सकता है कि वे नारी के प्रति एक जागरूक कथाकार थे।

''दिल्ली दूर है'' -

विवेच्य उपन्यास में इतिहास सम्बन्धी घटनाओं को सांस्कृतिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। नुसरत तयासी और उसकी सेनाओं का नारियो के प्रति किये जाने वाले दुराचार का वर्णन हृदय में वेदना को उत्पन्न करने वाला है नुसरत तयासी देविका को बलात् अपनी विवाहिता बना लेता है। जिसके माध्यम से कथाकार ने भारतीय संस्कृति के जीवत रूप को साकार कर दिया है देविका कहती है - **''नहीं अमीर मैं वाशेक की दिल्ली हूँ। मैं हमेशा 'हनोज दिल्ली दूर अस्त' की जीती जागती मिशाल बनी रही हूँ। सभी अन्तर्विरोधों की जीती-जागती तस्वीर हूँ, सब कुछ मैं ही हूँ। अमीर मैं ही हूँ। भोज जब भी मेरी जुझौती के कोई नर-नारी याद करे तो कहना वत्स मैं कभी पतिता नहीं थी जीते जी जो करना था कर चुकी।**''[9]

डॉ0 सिंह ने भारतीय नारी के उस रूप को प्रस्तुत किया है जो पराधीन होकर भी अपनी संस्कृति, परमार्थ और लोक कल्याण की भावना से ओत-प्रोत रहती है। डॉ0 सिंह ने विवेच्य कृति में साम्प्रदायिकता के प्रसंग को अनेकों बार उठाया है। कथाकार ने अमीर पात्र के माध्यम से जातिवाद को रक्तपात का कारण बताया है। वाशेक अमीर से कहता है -''**मुझे लगा कि इस रक्तपात के बीच कलह एक ऐसा अवदान भी मिला जो हमारी संस्कृति को जिला सकेगा वह अवदान था अमीर खुसरो।**''[10]

'वैश्वानर' -

'वैश्वानर' उपन्यास में डॉ0 सिंह ने सांस्कृतिक चेतना को उत्कृष्टता के साथ प्रस्तुत किया है। पौराणिक कथावस्तु को ग्रहण करके काशी की संस्कृति के अतीत को प्रस्तुत कर उसे वर्तमान के सन्दर्भो से जोड़ा है। डॉ0 सिंह आज के प्राणिमात्र में वैदिक सांस्कृतिक चेतना को संचालित करना चाहते हैं। डॉ0 सिंह का मानना है कि आज मानव अज्ञानता के ज्ञान में आनन्दित रहना चाहता है। वह वैदिक युग की ओर जाने का प्रयास ही नहीं करता परन्तु भारतीय संस्कृति को जीवन्त रखने के लिए हमें वैदिक संस्कृति को वर्तमान से जोड़ना ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा।

ऋषि शौनक और गालव के वार्तालाप में सांस्कृतिक चेतना अनायास ही मुखरित हो उठी है। ऋषि शौनक गालव से कहता है - **''वत्स, तुम हर क्षण का समाचार भेजते रहना कोई भी मृत्यु हो तो तुम्हें लगना चाहिए कि तुम्हारा अपना सगा सम्बन्धी ही मरा है। उसका और्ध्वदैहिक कर्म हमारा दायित्व है। अन्यथा इन्हें यज्ञ संस्कृति में दीक्षित करना एक विडम्बना होगी। हम लोग स्वास्थ्यप्रद देवों के लिए प्रातः काल जो अग्निहोत्र करते हैं वातावरण शुद्धि और हमारी शुचिता के व्याख्यान सभी दाँव पर लगे हैं।''**[11]

मनीषी कथाकार डॉ0 शिवप्रसाद सिंह जी ने आज के मानव को प्राचीन अवगत करा के उसे कल्याण के मार्ग की ओर अग्रसर करने का भरसक प्रयास किया है।

पाद-टिप्पणियाँ

1. प्रतियोगिता साहित्य सिरीज - डॉ0 अशोक तिवारी, पृ0- 175
2. 'अलग-अलग वैतरणी' - डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, पृ0-15
3. 'गली आगे मुड़ती है' - डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, पृ0-57
4. 'नीला चांद' - डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, पृ0-249
5. 'नीला चांद' - डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, पृ0-249
6. 'कुहरे में युद्ध' - डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, पृ0-322
7. 'शैलूश' - डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, पृ0-296
8. 'औरत' - डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, पृ0-104
9. 'दिल्ली दूर है' - डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, पृ0- 603
10. 'दिल्ली दूर है' - डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, पृ0- 601
11. 'वैश्वानर' - डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, पृ0-24, 25

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द की लेखन प्रतिभा

डॉ. वेदप्रकाश उपाध्याय
प्रोफेसर एमेरिटस
संस्कृत विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

महर्षि दयानन्द सरस्वती की बहुमुखी प्रतिभा के दर्शन उनकी कृतियों में होते हैं। वैदिक साहित्य के दुर्गम सागर में अवगाहन करके उनके द्वारा जिस अमूल्य ज्ञानमणि के प्रकाश से विश्व को आलोकित किया गया, उससे गहनान्धकारप्रिय निशिचर खगों का तिलमिला जाना स्वाभाविक था। महर्षि दयानन्द की प्रतिभा सर्वप्रथम उनके वेदभाष्यों में प्रतिपादित विचारों में परिक्षित होती है और ऐसे मौलिक विचार उनकी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में मिलते हैं। उदाहरणार्थ - वेद संज्ञाविषय को ग्रहण किया जा सकता है। आपस्तम्बपरिभाषासूत्र में 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' कहकर मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनों को ही आपस्तम्ब के द्वारा वेद शब्द से अभिहित किया गया है[1], किन्तु महर्षि सरस्वती ने मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनों को समान रूप से वेद नहीं माना।

वास्तव में आपस्तम्ब का सम्बन्ध कृष्णयजुर्वेद से था, अतः उनकी वेदविषयक मान्यता कृष्णयजुर्वेद की दृष्टि से ही है, क्योंकि कृष्णयजुर्वेद की सभी शाखाओं की संहिताएं मन्त्र और ब्राह्मण भाग से युक्त हैं। कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का एक स्वतन्त्र ब्राह्मण ग्रन्थ भी है। शुक्ल यजुर्वेद की शाखाओं की संहिताएं केवल मन्त्रात्मक हैं और उनके ब्राह्मण ग्रन्थ पृथक् हैं। ये ब्राह्मणग्रन्थ यजुर्वेदीय संहिताओं के अन्तर्गत नहीं माने जाते। महर्षि दयानन्द के अनुसार ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ब्राह्मणग्रन्थों के पर्याय इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी भी हैं। ब्राह्मणग्रन्थ ईश्वर के द्वारा नहीं बनाए गए, अपितु महर्षियों ने ब्राह्मण ग्रन्थों के रूप में वेदों का व्याख्यान किया है। शरीरधारी प्राणियों द्वारा विरचित ब्राह्मणग्रन्थ वेदसंज्ञा से अलंकृत नहीं किए जा सकते। महर्षि दयानन्द की विलक्षण प्रतिभा, जो उनके लेखनगत विचारों में उपर्युक्त अभिमत की प्रतिष्ठापिका है, इस तथ्य से भी सिद्ध होता है कि ब्राह्मणग्रन्थों के अन्तर्गत लौकिक इतिहास की उपलब्धि होती है, जिसमें मनुष्यों के नामों का उल्लेख भी मिलता है, जबकि मन्त्रभाग में ऐसा इतिहास नहीं है। यदि इस पर यह आक्षेप किया जाय कि यजुर्वेदीय संहिता में जमदग्नि और कश्यप के नाम मिलते हैं[2], अतः मन्त्र में भी इतिहास होने के कारण मन्त्र और ब्राह्मण की समानता है, तो ठीक नहीं, क्योंकि जमदग्नि और कश्यप ये नाम किसी शरीरधारी प्राणी के नहीं हैं। शतपथब्राह्मण में चक्षु को जमदग्नि और प्राण को कश्यप कहा गया है।[3] यहाँ प्राण से अन्तःकरण तथा आँख से सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियों का ग्रहण होता है।

महर्षि दयानन्द के द्वारा ब्राह्मण ग्रन्थों को ही इतिहास और पुराण आदि नाम से व्यवहृत किया जाता है, ब्रह्मवैवर्त्त और श्रीमद्भागवत् आदि को नहीं। उनके अनुसार चारों वेदों के ज्ञाता ब्रह्म अर्थात् ब्राह्मण महर्षियों के द्वारा कहे गए वेदव्याख्यान ब्राह्मण कहे जाते हैं।[4] शतपथ ब्राह्मण में ब्रह्म और ब्राह्मण को पर्याय माना गया है।[5] ब्राह्मणग्रन्थों को वेदों का महत्व नहीं दिया जा सकता, क्योंकि ब्राह्मणग्रन्थ वैदिक संहिताओं की भाँति ईश्वरोक्त नही हैं। वेदों के अनुकूल होने के कारण ही ब्राह्मणग्रन्थों की प्रामाणिकता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द के अनुसार वेद के रूप में केवल मन्त्रभाग है, ब्राह्मणभाग नहीं।

वेदों के काल के विषय में महर्षि दयानन्द के विचार भारतीय परम्परा के अनुकूल हैं। उन्होंने वेदों की नित्यता इस आधार पर स्वीकार की है कि वे ईश्वरोद्भूत हैं और ईश्वर सर्वसामर्थ्ययुक्त होते हुए नित्य ही है, अत: उससे प्रादुर्भूत वेदों का नित्यत्व भी स्वत: ही ज्ञात हो जाता है, क्योंकि सर्वसामर्थ्ययुक्त ईश्वर नित्य है।[6]

वेदनित्यताविषयक उपर्युक्त सिद्धान्त पर यह आक्षेप भी उठता है कि वेदों में छन्द, पद और वाक्यों का एकत्र समाहार उपलब्ध होने के कारण लौकिक ग्रन्थों की भाँति उनकी रचना भी किसी व्यक्ति के द्वारा की गई है, अत: कार्य होने के कारण इनकी नित्यता सिद्ध नहीं होती। विल्सन और मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानों और उनके अन्धानुयायियों द्वारा वेदों को मनुष्य विरचित माना गया है, जबकि वैदिक साहित्य के अनुशीलन में अपना समस्त जीवन समर्पित करने वाले डा. वेबर के अनुसार अत्यन्त प्राचीन होने के कारण वेदों का समय ही निर्धारित नहीं किया जा सकता। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों की नित्यता के विषय में यहमत व्यक्त किया है कि शब्द दो प्रकार के हैं - (1) नित्य और (2) कार्य। जिन शब्दों अर्थों और सम्बन्ध की उपलब्धि परमेश्वर के ज्ञान में होती है, वे नित्य है और सामान्य लोगों की कल्पना से प्रसूत होते हैं, वे कार्य हैं। जिन शब्दों का ज्ञान और क्रिया स्वभाव से सिद्ध हो और अनादि हो, उनका सामर्थ्य भी नित्य है। वेद परमेश्वर की विद्या होने के कारण नित्य ही है। वेदों के अध्ययन, अध्यापन और ग्रन्थ के अनित्य होने से वेदों का अनित्यत्व नहीं माना जा सकता, क्योंकि बीजाङ्कुरन्याय से वेदों की सत्ता ईश्वर के ज्ञान में नित्य रहती है। सृष्टि के आरम्भ में वेदों की प्रसिद्धि होती है और प्रलय के कारण जगत् का अभाव हो जाने से वेद यद्यपि अप्रसिद्ध की अवस्था में रहते हैं, अत: वेदों का नित्यत्व स्पष्ट हो जाता है। वेदों की नित्यता, अपौरुषेयता अथवा ईश्वरकर्तृत्व आदि से सम्बन्धित महर्षि दयानन्द के विचारों से किसी भी भारतीय परम्परा के अनुयायी वैदिक विद्वान् का कोई भी विरोध नहीं है।

भारतीय दर्शन के क्षेत्र में महर्षि दयानन्द का एक महत्वपूर्ण योगदान यह है कि उन्होंने आर्षग्रन्थ प्रामाण्य के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है। उनके सत्यार्थप्रकाश नामक ग्रन्थ में षड्दर्शन-समन्वय का उल्लेख प्राप्त होता है।[7] उनके मतानुसार न्याय, वैशेषिक, साङ्ख्य, योग,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीमांसा और वेदान्त ये छः दर्शन वेदमूलक होने के कारण परस्पर विरोधी नहीं हैं, अपितु एक दूसरे के पूरक हैं। पूर्वमीमांसा दर्शन में भी परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले श्रुतिवाक्यों में संगति स्थापित करने के नियम का विधान है। गौतम, कणाद्, कपिल, पतञ्जलि, जैमिनी और बादरायण, व्यास जैसे परावरज्ञ श्रेणी के ऋषियों में दार्शनिक सिद्धान्तविषयक मौलिक अन्तर नहीं हो सकता, भले ही उनकी शैली में भेद हो।[8] भारतीय वैदिक दर्शन के क्षेत्र में सामंजस्य स्थापित करने की प्रशस्त धारणा महर्षि दयानन्द के आर्षग्रन्थ-प्रामाण्य के सिद्धान्त से प्रादुर्भूत है।

महर्षि दयानन्द के द्वारा विरचित अद्वैतमत खण्डन नामक ग्रन्थ अद्वैतवेदान्त के खण्डन से सम्बन्धित है। जीव और ईश्वर के भेद तथा प्रकृति की अनादिता के सिद्धान्त का निरूपण उनके ग्रन्थों में प्राप्त होता है। उन्होंने शाङ्करवेदान्त की तीव्र आलोचना की है, जिसका दर्शन सत्यार्थप्रकाश के सप्तम, अष्टम, नवम एवं एकादश समुल्लासों में होता है। इसके अतिरिक्त वेदान्तिध्वान्तनिवारण नामक लघुग्रन्थ में भी महर्षि दयानन्द जी ने शङ्करवेदान्त का खण्डन प्रबल युक्तियों के आधार पर किया है। महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में वेदों और उपनिषदों में प्रतिपादित दार्शनिक स्वरूप परिलक्षित होता है। प्रबल तर्कों के आधार पर महर्षि दयानन्द वैदिक मत की पुष्टि करते हैं। उपनिषदों में जो अभेदपरक वाक्य उपलब्ध होते हैं, उनके विषय में महर्षि दयानन्द का विचार है, कि ऐसे वाक्यों की संगति स्वतन्त्र रूप से लगाई जानी चाहिए और प्रसंग के अनुसार यदि ऐसे वाक्यों पर विचार किया जाय, तो शङ्कराचार्य के अद्वैतपरक सिद्धान्त की पुष्टि होना असम्भव हो जाएगा। महर्षि दयानन्द के अनुसार ब्रह्मसूत्र की शङ्कराचार्य कृत व्याख्या उनके अपने मत के अनुसार है और खींचतान कर सूत्रों में अद्वैतमत स्थापित किया गया है, जबकि ब्रह्मसूत्रकार का आशय ऐसा नहीं था। ऐसे विचार केवल महर्षि दयानन्द के ही नहीं हैं, अपितु वेदान्ती विद्वान् विवेकानन्द जी ने भी यह स्वीकार किया है कि शङ्कराचार्य जी ने सभी सूत्रों की केवल अद्वैतपरक व्याख्या करने का प्रयास इसलिए किया है, क्योंकि वे अद्वैतवादी थे। शंकराचार्य जैसे अनेक बड़े-बड़े भाष्यकारों ने स्वमत की पुष्टि के लिए स्थान-2 पर वेदान्तसूत्रों की अनुचित व्याख्या की है।

महर्षि दयानन्द के वेदभाष्यों पर जो आक्षेप विरोधी पण्डितों ने लगाए थे, उनका सशक्त समाधान उनके भ्रान्तिनिवारण नामक ग्रन्थ में मिलता है। महर्षि के लिए निन्दापरक वाक्यों का प्रयोग करने वाले विरोधियों का मुख दयानन्द सरस्वती ने यह कहकर बन्द कर दिया कि -

'न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तस्य निन्दां सततं करोति।
यथा किरातः करिकुम्भजाता मुक्ताः परित्यज्य विभर्ति गुंजाः।'[9]

अर्थात् जो व्यक्ति जिसके गुणोत्कर्ष को नहीं जानता वह उसकी सदैव निन्दा करता है, जिस प्रकार किरात गजमुक्ता को छोड़कर गुंजा को धारण करता है, क्योंकि वह गजमुक्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के महत्व को नहीं समझता। भ्रमोच्छेदन, अनुभ्रमोच्छेदन, वेदविरुद्धमतखण्डन, शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण और भागवतखण्डन आदि उनके ग्रन्थों में महर्षि दयानन्द सरस्वती के खण्डन-मण्डन में परिपक्व होने का साक्ष्य मिलता है। खण्डनमण्डना की प्रयोजनीयता के विषय में महर्षि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश की भूमिका तथा उत्तरार्द्ध के प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में लिखी गई अनुभूमिका से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि उनका मुख्य उद्देश्य सत्य अर्थ को प्रकाशित करना है। दयानन्द सरस्वती ने स्पष्ट किया है कि सभी मतों में जो सत्य बाते हैं, वे स्वीकरणीय हैं और विभिन्न मतों की मिथ्या बातें खण्डनीय है। उन्होंने ऐसे अन्धविश्वासों एवं मिथ्या धारणाओं का खण्डन किया है, जो युक्ति, तर्क एवं विज्ञान से विरुद्ध हैं और जिनसे लोगों में पारस्परिक विद्वेष का सूत्रपात होता है। विविध सम्प्रदायों में उपलभ्यमान दोषों को प्रकाशित करने में उनका प्रमुख लक्ष्य यह था कि लोगों को सत्य और असत्य का निर्णय करके सत्य को ग्रहण करने और असत्य का परित्याग करने की सामर्थ्य प्राप्त हो। महर्षि दयानन्द के द्वारा प्रणीत ग्रन्थों के अनुशीलन से उनकी बहुमुखी प्रतिभा का ज्ञान होता है। व्याकरणशास्त्र का प्रतिनिधि ग्रन्थ अष्टाध्यायीभाष्य बहुत ही सरल पद्धति से अध्येताओं के व्याकरण के क्षेत्र में कुछ अधिकार प्रदान करता है। वैदिक यन्त्रालय काशी से चौदह भागों में प्रकाशित वेदाङ्गप्रकाश नामक ग्रन्थ महर्षि के वेदाङ्गविषयक अधिकारी विद्वान् होने से प्रबल साक्ष्य है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के परिशीलन से दयानन्द सरस्वती की विलक्षण प्रतिभा से पाठकों का साक्षात्कार होता है। महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद के प्रथम सूक्त का भाष्य नमूने के रूप में प्रकाशित किया, जो वेदभाष्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। महर्षिकृत वेदभाष्य के नमूने के अंग पर संस्कृत कालेज कलकत्ता के आचार्य पं. महेशचन्द न्यायरत्न द्वारा प्रकाशित आक्षेपों के समाधान में स्वामी दयानन्द ने भ्रान्तिनिवारण नामक लघुकाय ग्रन्थ लिखा, जो वेदार्थ जानने की इच्छा रखने वाले लोगों के लिए अत्यधिक उपादेय है। भ्रान्तिनिवारण में महर्षि ने यह स्वयं स्वीकार किया है कि उन्होंने ऋग्वेद से लेकर पूर्वमीमांसा पर्यन्त तीन हजार के लगभग ग्रन्थों का अनुशीलन किया है।[10] काशी के राजा शिवप्रसाद जी सितारेहिन्द के द्वारा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पर 'निवेदन' नाम से प्रकाशित आक्षेपों का समाधान करने के लिए दयानन्द सरस्वती ने 'भ्रमोच्छेदन' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। महर्षि प्रणीत सन्ध्या और पंचमहायज्ञविधि नित्यकर्म के रूप में सन्ध्या और पंचमहायज्ञों की विधि प्रस्तुत करते हैं।

जहाँ महर्षि दयानन्द की प्रतिभा के परिणामस्वरूप विद्वानों के लिए वेदभाष्य और सत्यार्थप्रकाश नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया गया वहीं बालकों और सामान्य पुरुषों के लिए व्यवहारभानु सदृश ग्रन्थों की रचना भी की गई।[11] उन्होंनें दो भागों में विभक्त गोकरुणानिधि नामक ग्रन्थ भी लिखा, जिसमें गो आदि पशुओं की उपयोगिता तो दिखाई ही गई है, किन्तु साथ ही साथ गोरक्षा के निमित्त स्थापित होने वाली सभाओं के नियमों तथा उपनियमों का भी उल्लेख है। आर्यो के 100 मन्तव्यों का एक सङ्ग्रह ग्रन्थ महर्षि दयानन्द के द्वारा प्रणीत हुआ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो ओर्योद्देश्यरत्नमाला नाम से प्रसिद्ध हुआ। महर्षिदयानन्दकृत चतुर्वेदविषयसूची नामक ग्रन्थ चारों वेदों पर उनके द्वारा किए जाने वाले भाष्यों के प्रारूप के रूप में हैं, किन्तु वेदभाष्यों में स्वामी जी द्वारा इस प्रारूप में परिवर्तन भी किया गया है।

वेदविहित भक्ति के यथार्थ स्वरूप का अवबोधन कराने के लिए महर्षि दयानन्द ने आर्याभिविनय नामक एक अद्‌भुत ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में ईश्वरस्वरुपप्रज्ञान, धर्मनिष्ठा भक्ति और व्यवहारशुद्धि आदि प्रयोजनों को सिद्ध करने के उद्‌देश्य से प्रार्थना एवं स्तुति के अभिव्यंजक मन्त्रों को व्याख्यान सहित प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ के प्रणयन में महर्षि दयानन्द का उद्देश्य यह था कि मनुष्य नास्तिक और पाखण्डमतादि अधर्म में न फंसे। महर्षि दयानन्द के काशीशास्त्रार्थ, हुगलीशास्त्रार्थ, जालन्धरशास्त्रार्थ और बरेली शास्त्रार्थ प्रकाशित सत्यासत्यविवेक हैं। धर्मशास्त्रीय सोलह संस्कारों का निरूपण महर्षि के संस्कारविधि नामक ग्रन्थ में मिलता है। संस्कृत के प्रारम्भिक छात्रों के लिए संस्कृतवाक्य प्रबोध महर्षि दयानन्द का एक अत्युपयोगी ग्रन्थ है। वैदिक यन्त्रालय काशी से 1880 ई0 में प्रकाशित सत्यधर्म विचार और गोतमअहल्या की कथा नामक ग्रन्थ भी महर्षि की लेखनप्रतिभा के बहुआयामी स्वरूप की झांकी प्रस्तुत करते हैं।

महर्षि दयानन्द की कृतियों का अनुशीलन करने से व्यक्ति के मानसपटल पर कर्मण्यभाव जागृत होता है तथा भाग्यवादिता से उदासीनता आती है। अंधविश्वास में फंसे लोगों को मुक्ति के माध्यम से धार्मिक प्रथाओं एवं रीतिरिवाजों की ओर उन्मुख किया जाता है। वेदों से भिन्न ग्रन्थों को आदर्श के रूप में स्वीकार करने वाले धर्मानुयायियों के लिए उन्होंने ईश्वरीय वैदिक ग्रन्थों की उपादेयता का मार्ग प्रशस्त किया। सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए एवं लोगों का नैतिक स्तर उठाने के लिए उन्होंने अपने ग्रन्थों के माध्यम से वेदों में प्रतिपादित धर्म का प्रसार किया।

यद्यपि महर्षि दयानन्द की योजना चारों वेदों पर भाष्य करने की थी, किन्तु आकस्मिक असमय निधन के कारण उनके द्वारा यजुर्वेद और ऋग्वेद के भाष्यों के अतिरिक्त अन्य वेदों पर भाष्य नहीं किए जा सके। महर्षि का भाष्य ऋग्वेद पर भी पूर्ण नहीं हो पाया और वह ऋग्वेद के 7वें मण्डल के 62वें सूक्त के द्वितीय मन्त्र तक ही लिखा जा सका। 1940 संवत्, भाद्रपद कृष्णपक्ष पंचमी को मुंशी समर्थदान जी को स्वामी जो द्वारा लिखे गए एक पत्र से यह स्पष्ट होता है कि एक वर्ष के अन्दर ऋग्वेदभाष्य पूर्ण करके एक या डेढ़ वर्ष में वे सामवेद और अथर्ववेद का भाष्य करना चाहते थे।[13]

वेदमन्त्रों की आध्यात्मिक व्याख्या पर बल देने वाले भाष्यकारों में महर्षि दयानन्द का नाम महत्वपूर्ण है। यद्यपि महर्षिकृत वेदभाष्यों से पूर्व भी अध्यात्मपक वेदभाष्यों की परम्परा थी, जिसमें स्वामी जी से पूर्ववर्ती आत्मानन्द जी का नाम आता है, किन्तु उनका भाष्य ऋग्वेद के केवल अस्यवामीय सूक्त पर ही उपलब्ध होता है, जिसमें भाष्यकार ने स्वयं ही स्वीकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है कि उनका भाष्य अध्यात्मपरक है।[14] वास्तव में आत्मानन्द सायण से भी पूर्ववर्ती थे।

महर्षि दयानन्द की लेखनप्रतिभा उनके पत्रों में भी दृष्टिगत होती है, जिनके माध्यम से उन्होंने अनेक पण्डितों एवं राजाओं के पूर्वाग्रहग्रस्त मान्यताओं पर अपनी प्रतिभा का प्रभाव डाला है। इस प्रकार महर्षि दयानन्द सरस्वती की लेखनप्रतिभाजन्य कार्यों के परिणामस्वरूप वेदों के सर्वोत्कर्ष ने लोकमानस को अपनी ओर आकृष्ट करने का उपक्रम प्रारम्भ कर दिया, जो निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर है।

पाद-टिप्पणियाँ

1. आपस्तम्ब परिभाषासूत्र 31
2. त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
   यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्।। यजु. 3.62
3. (क) चक्षुर्वै जमदग्निऋषिर्यदेनेन जगत्पश्यति। - श0ब्रा0 8.1
   (ख) कश्यपो वै कूर्मः प्राणो वै कूर्मः। -श0ब्रा0 7.5
4. चतुर्वेदविद्भिर्ब्रह्मभिर्ब्राह्मणैर्महर्षिभिः प्रोक्तानि यानि
   वेदव्याख्यानानि तानि ब्राह्मणानि। ऋग्वेदादि. पृ. 99
5. ब्रह्म वै ब्राह्मणः। - श.ब्रा. 13.1
6. ऋग्वेदादि, पृ. 30
7. सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास 3 और 8
8. नवजागरण के पुरोधाः दयानन्दसरस्वती, पृ. 567
9. भ्रान्तिनिवारण पृ. 239 (दयानन्दीयलघुग्रन्थसङ्ग्रह)
10. भ्रान्तिनिवारण, पृ. 198
11. दयानन्दीय लघुग्रन्थसंग्रह, पृ. 80
12. आर्याभिविनय की उपक्रमणिका, पृ. 45
13. डॉ. रामनाथ वेदालंकार, वेदभाष्यकारों की वेदार्थप्रक्रियाएँ, पृ. 93
14. आत्मानन्द, इदं भाष्यमध्यात्मविषयमिति। - (ऋ0 1.164)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक वाङ्मय में वर्णित शिक्षा का स्वरूप महर्षि दयानन्द प्रतिपादित गुरुकुलीय-शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. योगेश शास्त्री
संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

इस युग में महान् दार्शनिक आप्त पुरुष ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय एवं तृतीय समुल्लास में जिस शिक्षा प्रणाली का प्रतिपादन किया है, वह गुरुकुल शिक्षा प्रणाली नवीन होते हुए भी ऋषि दयानन्द की दार्शनिक दृष्टि में अति प्राचीन है। वेदों एवं प्राक्तन साहित्य में जिस शिक्षा पद्धति का उल्लेख है, और आर्यो के अभ्युद्यकाल में प्राचीन भारत में जो शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी, वह गुरुकुल शिक्षा पद्धति ही है।

भारतीय मनीषियों ने शिक्षा को शरीर, मन और आत्मा के विकास द्वारा मुक्ति का साधन माना है।[1] **''सा विद्या या विमुक्तये''** के अनुसार विद्या वह है, जो मानव को मुक्ति का मार्ग दिखाती है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में विद्या द्वारा अमरत्व की प्राप्ति का उपदेश प्राप्त होता है।[2] शिक्षा केवल भौतिक उपलब्धियों तक सीमित न रहकर आध्यात्मिक चिन्तन तक का लक्ष्य निर्धारित करती है। शिक्षा का उद्देश्य अधिकाधिक अर्थार्जन कर भौतिक सामग्री जुटाना मात्र नहीं, अपितु सर्वांगीण विकास द्वारा उसे पूर्ण मानव बनाना है। ऐसा मानव जो परिवार, समाज एवं राष्ट्र के लिए अत्यन्त उपयोगी हो। इस प्रकार की मानवीय सृष्टि के महत्वपूर्ण घटक हैं - माता, पिता और आचार्य।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में वर्णित किया है। **मातृमान्पितृमान् आचार्यवान्पुरुषो वेद**[3] अर्थात् जिस बालक को प्रशस्त गुणों से परिपूर्ण माता, पिता और आचार्य प्राप्त होते हैं वह धन्य है। बालक के निर्माण में इन तीनों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। माता, पिता अपनी सन्तान को जैसा बनाना चाहते हैं, उन्हें स्वयं भी वैसा ही बनना पड़ता है। यदि वे अपनी सन्तान को चरित्रवान्, देशभक्त, विद्वान् और परोपकारी बनाना चाहते हैं तो पहले उन्हें भी **''मनसावाचाकर्मणासर्वावस्थासु सर्वदा''** के पथ पर अग्रसर होना होगा।

बालक का निर्माण गर्भावस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है। अभिमन्यु ने चक्रव्यूह प्रवेश की विद्या माता के गर्भ में ही प्राप्त कर ली थी। बाल्यकाल में अनेक संस्कारों का समुच्चय इस सच्चाई को प्रमाणित करता है।

पांच वर्ष की आयु पर्यन्त माता-पिता से उत्तम संस्कार प्राप्त करने के पश्चात् बालक के जीवन का वास्तविक निर्माण प्रारम्भ होता है। ज्ञान और चरित्र से प्रकाशमान आचार्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरणों में पहुंचकर ब्रह्मचारी विनीत भाव से जब विद्याध्यन प्रारम्भ करता है, तब वह सच्चे अर्थो में मानव बनने की दिशा में अग्रसर होता है। वैदिक काल में बड़े-बड़े राजाओं के पुत्र और पुत्रियों के समान प्रजाओं की सन्तानें भी इस प्रकार के भेदभाव छोड़कर गुरुकुलों में जाकर अध्ययन करती थी। जहां उन्हें समानता का बोध कराया जाता था। शिक्षा पद्धति में जहाँ माता-पिता का शिक्षित, सदाचारी और धार्मिक होना प्रथम घटक है, वहीं सुन्दर, सात्विक एवं नैसर्गिक परिवेश द्वितीय घटक के रूप में वर्णित है। प्रकृति के सुरम्य वातावरण में बालक का जैसा विकास होता है, वैसा कृत्रिम वातावरण में नहीं हो सकता। वेद के अनुसार - जहाँ ऊँचे-ऊँचे पर्वतों पर विद्यमान गह्वरों में तथा नदियों के संगम पर विप्र विद्वान् जन निवास करते हैं। ऐसा स्थान देवस्थान है, तथा विद्या का केन्द्र गुरुकुलीय भूमि के रूप में वर्णित है-

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत्[4]

इसी वेदोक्ति को आधार बनाकर उच्च काल के गुरुकुल प्रशस्त वनों, मैदानों, नदियों के तटों और सुरम्य पर्वतों की उपत्यकाओं में जन-कोलाहल से दूर होते थे।

युगदृष्टा महर्षि दयानन्द ने प्राचीन भारतीय साहित्य का मंथन करके धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और दार्शनिक दृष्टि से वैदिक शिक्षा के सूत्रों को सत्यार्थ प्रकाश में प्रतिपादित किया है। जिनमें :-

(क) **ग्रामाद्बहिर्वास** :- शिक्षा संस्थायें गांव और शहरों से बाहर होनी चाहिए तथा उनकी दूरी कम से कम 5 कोस दूर होनी चाहिए।

(ख) **गुरुशिष्ययोः सामीप्यम्** - गुरु और शिष्यों को एक साथ रहना चाहिए। शिष्य अन्तेवासी अर्थात् गुरु के पास रहने वाला हो जिससे गुरु बालक के प्रत्येक क्रिया-कलाप पर दृष्टि रख सके।

(ग) **छात्राणां जीवने समानता** - गुरुकुल में शिक्षारत् प्रत्येक बालक का जीवन-व्यवहार एक समान होता है महर्षि दयानन्द के शब्दों में चाहे कोई राजा का पुत्र हो या शूद्र का गुरुकुल में सभी को एक समान रहना चाहिए।[5]

(घ) **ब्रह्मचर्यं तपोनुष्ठानञ्च** - विद्याकाल की पूर्णता तक बालक को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए तथा विद्योपार्जन के साथ-साथ अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति भी करनी चाहिए। उसका भोजन सर्वथा सात्विक, सरल और अत्यन्त सादा होना चाहिए तथा जीवन में कष्ट - सहिष्णुता और सर्दी-गर्मी आदि के द्वन्द्वों को भी सहन करने का आभ्यासी होना चाहिए। जीवन में तप अनिवार्य है क्योंकि तपस्वी ब्रह्मचारी ही विद्वान् बन सकता है।

(ङ) **बालक-बालिकानां सहशिक्षा प्रतिषेध** - गुरुकुलीय शिक्षा ब्रह्मचर्य प्रधान है जिसमें सहशिक्षा के लिए कोई स्थान नहीं है। बालक और बालिकाओं के शिक्षा केन्द्र पृथक्-पृथक् होने चाहिए। ऋषि दयानन्द ने लिखा है - बालक और बालिकाओं की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठशाला एक दूसरे से कम से कम पांच कोस दूर रहनी चाहिए।[6] शिक्षा के काल तक एक दूसरे के दर्शन भी त्याज्य हैं।

(च) **मातृ-भाषाया-शिक्षादानम्** - बालकों की शिक्षा का माध्यम उनकी मातृ भाषा ही होनी चाहिए।

(छ) **धर्मशास्त्राणामवश्यम्पाठ्यता** - भारतीय आर्य सभ्यता कर्म प्रधान है। गुरुकुल शिक्षा पद्धति भारतीय परम्परा का महत्वपूर्ण घटक है। इसलिए गुरुकुलीय शिक्षा में धार्मिक शिक्षा आवश्यक अंग के रूप में वर्णित है। ऋषि दयानन्द ने अपनी पाठविधि में वेद, उपनिषद्, दर्शन आदि धार्मिक साहित्य का पठन-पाठन अनिवार्यतः वर्णित किया है।

(ज) **पाश्चात्य पौर्वात्यभयविधविद्याविज्ञानानां पठनीयता** - नवीन और प्राचीन दोनों प्रकार की विद्यायें पढ़नी चाहिए। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में जहां प्राचीन विद्याओं के पढ़ने पर बल दिया है वहां आधुनिक विद्याओं के अध्ययन पर भी बल दिया है।

(झ) **शिक्षायाः निःशुल्कत्वम्** - विद्यार्थियों की सब प्रकार की शिक्षा निःशुल्क होनी चाहिए। ऋषि दयानन्द के शब्दों में छात्रों को भोजन वस्त्र भी निःशुल्क मिलने चाहिए। चाहे समाज व्यवस्था करें या राजा व्यवस्था करें विद्यार्थियों को ऊँची से ऊँची शिक्षा और भोजन-वस्त्रादि सब निःशुल्क मिलें। शिक्षा बिकनी नहीं चाहिए। गरीब से गरीब बालक भी उस शिक्षा को प्राप्त कर सके गुरुकुल शिक्षा पद्धति में भारतीय विशुद्धता परक साम्यवाद के तत्व परिलक्षित होते हैं।

सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में महर्षि दयानन्द ने वर्णित किया है, कि जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता है। सुन्दर-शील-स्वभाव-युक्त-सत्याभाषणादि नियम पालन युक्त और अभिमान अपवित्रता से रहित नर-नारी जब बालक आठ वर्ष का हो, तभी लड़कों को लड़कों की तथा लड़कियों की शाला में भेज देवें। दुष्टाचारी अध्यापकों से शिक्षा न करावें जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों, वे ही पढ़ानें और शिक्षा देने योग्य है। यथा -

आत्म ज्ञान समारम्भस्तितिक्षा धर्म नित्यता।
यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते।।
निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्दधानः एतत् पण्डित लक्षणम्।।[7]

विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए। लड़के-लड़कियों की पाठशाला दो कोश एक दूसरे से दूर होनी चाहिए। जो वहाँ अध्यापिका ब अध्यापक पुरुष वा भृत्य अनुचर हों, वे कन्याओं की पाठशाला में स्त्री व पुरुषों की पाठशाला में पुरुष ही रहें। स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी नहीं जाने पावे अर्थात् जब तक वे ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणी रहें, तब तक स्त्री व पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्तसेवन, भाषण, विषयकथा, परस्पर क्रीडा, विषय का ध्यान और संग इन आठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार के मैथुनों से अलग रहें, और अध्यापक लोग उनको इन बातों से बचावे जिससे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर और आत्मा बलयुक्त होकर आनन्द को नित्य बढ़ा सकें।

पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् चार कोस दूर ग्राम व नगर रहें। सब को तुल्य वस्त्र, खान-पान, आसन दिये जायें, चाहे वो राजकुमार हो या राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र की सन्तान हो, सब को तपस्वी होना चाहिए। उनके माता-पिता अपने सन्तानों व सन्तान अपने माता पिता से न मिल सके, और न किसी प्रकार का पत्र व्यवहार एक दूसरे से कर सके, जिससे सांसारिक चिंता से रहित होकर केवल विद्या बढ़ाने की चिंता रखें। जब भ्रमण करने जायें, तब उनके साथ अध्यापक जावें, जिससे किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें, और न आलस्य प्रमाद करें। माता पिता आठ वर्ष के बाद अपने बच्चों को घर में न रख सकें।[8]

'छान्दोग्य उपनिषद्' में धर्म के जिन तीन सम्बन्धों यज्ञ, अध्ययन, दान का वर्णन प्राप्त होता है। वह ऐसे ही एकान्त शान्त स्थानों पर संभव है, भोगविलास के वातावरण से दूर रहकर ही बालक आत्म निर्भर और आत्म संयमी बनकर कष्ट, सहिष्णुता, तप तथा श्रम को कुलवास में संयम एवं परिश्रम पूर्वक साधित कर स्वस्थ चित का स्वामी बनता है।

गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली में श्रम का स्थान अति महत्वपूर्ण है। वहां प्रत्येक बालक को श्रम की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी। राजा और रंक के बालक बिना किसी भेदभाव के वहाँ परिश्रम कर जीवन की कलाओं में परिणत होते थे।

'छान्दोग्य उपनिषद्' में हारिद्रुमत मुनि ने जाबाल सत्यकाम को शिक्षा देने से पूर्व से क्षेत्र सेवा का कार्य ही सौंपा था, क्योंकि वह युग पशुपालन और कृषि जीविका का था। अत: गौ-संवर्धन और वन्य संरक्षण का कार्य उनकी शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाया गया। उपनयन संस्कार के बाद मुनि ने अत्यन्त दुर्बल चार सौ गाएं छांटकर, उससे कहा - सौम्य इनकी सेवा करो और जब तक ये बढ़कर एक हजार न हो जाएं तब तक पुस्तकीय शिक्षा को अधूरी समझना। सत्यकाम ने कहा - जब तक ये गाएं बढ़कर एक हजार न हों जाएंगी, तब तक मैं नहीं लौटूँगा। वह वर्षो वनों में रहकर गौओं की सेवा करता रहा, और जब एक हजार हो गयी तब लौटा। इस प्रकार पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त क्षेत्रीय-कार्य-सम्पादन का प्रमाणमात्र भी तत्कालीन शिक्षा में अनिवार्य था।

गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली तप, त्याग और श्रम पर आधारित थी। गुरु के महत्व के कारण इन विद्या केन्द्रों को गुरुकुल कहा जाता था। घर परिवार का मुखिया स्वार्थी हो सकता है, पर इस कुल का मुखिया उदार लोकचेता होता था। वह अपने सम्पर्क में आये छात्र को उसी ममता से रखता था, जैसे माता अपने गर्भस्थ शिशु को रखती है। ऐसे आचार्य के लिए अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त में कहा गया है -

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीम् तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।।[9]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् आचार्य ब्रह्मचारी को, उसका उपनयन संस्कार करते हुए तीन रात अपने गर्भ में धारण करता है, और इस प्रकार से उत्पन्न ब्रह्मचारी को देखने के लिए देवता भी दौड़ पड़ते हैं, उसमें उसका जन्मगत, परिवारगत तथा परिवेशगत अज्ञान निहित है। आचार्य इन बाधाओं को दूर कर अपने पेट में अर्थात् अपने संरक्षण में लेकर उस बालक के इन तीनों दोषों को मिटा देता है, तथा देश, जाति और कुल के विशेष संस्कार को मिटाकर उसे विराट कुल की दीक्षा देता है। प्रकृति, जीव और ईश्वर की आध्यात्मिक शिक्षा देकर वह उसकी आत्मा का विकास करता है, और उसे पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक पर्यन्त ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा द्वारा उसकी देह और भौतिक सुख-सुविधाओं की जानकारी कराता है। विभिन्न विधाओं-विज्ञानों का ज्ञान संग्रह करने की प्रेरणा देता है, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ की प्रक्रिया समझाकर विश्व-मानववादी दृष्टि का संन्यास के रूप में अन्तिम लक्ष्य प्रतिपादित करता है।

इन शिक्षणालयों को कुल इसलिए कहा गया है कि, वहाँ बालक को निज परिवार की क्षुद्र भावना से निकालकर एक बड़े परिवार की सामाजिक चेतना से जोड़ना था। वह किसी देश, परिवार, जाति का सदस्य नहीं, वह तो मानव कुल का सदस्य है। आचार्य बिना किसी भेद भाव के जब सभी बालकों को अपने समीप बैठाकर **''सहनाववतु''** और **''सह नौ भुनुक्तु''** का उपदेश करता था, तब विघटन की भावना स्वत: समाप्त हो कर संगठन की भावना उत्पन्न हो जाती थी।

प्राचीन समय में इस प्रकार के गुरुकुलों की एक सुदीर्घ परम्परा थी। इस प्रणाली में शिक्षा प्राप्त कर राष्ट्र का हीं नहीं अपितु संपूर्ण विश्व का मार्ग दर्शन करने वाले अनेक महापुरुष हुए हैं। **'प्रश्नोपनिषद्'** में सुकेशा आदि पिप्पलाद के आश्रम में जाकर शिक्षा ग्रहण करने आते थे।[14]

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥[15]

अर्थात् पृथिवीस्थ सभी मानव इस देश में उत्पन्न अग्रजन्मा ब्राह्मणों से अपने-अपने चरित्र की शिक्षा प्राप्त करते थे। यह देश विश्व गुरु था, किन्तु परिवर्तन प्रकृति का स्वभाव है। जो राष्ट्र कभी विश्व का नेतृत्व करता है, कभी वह उन्नति की दौड़ में बहुत पीछे रह जाता है। भारत की दशा भी यही हुई। श्रीराम, कृष्ण तथा अनेक ऋषि-मुनियों का देश महाभारत के युद्ध में असंख्य वीरों, विद्वानों के मारे जाने के बाद अपने गौरवशाली स्वरूप को भूलता चला गया। नाना प्रकार के दोष सामाजिक जीवन में स्थान प्राप्त करने लगे और एक समय ऐसा आया जब चारों ओर अज्ञान-अन्धकार का दानव प्रबल हो उठा, सद्वृत्तियों का देव दुर्बल हो गया।[16] ऐसे कठिन काल में काठियावाड़ की धरती पर टंकरा में मूलशंकर का उदय और सच्चे शिव की खोज करते-करते दिव्य तेजधारी महर्षि दयानन्द के रूप में भारतीय गगन में सूर्य के समान चमकना, भारतीय इतिहास की अभूतपूर्व घटना है। स्वामी दयानन्द ने सर्वत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याप्त अज्ञान, पाखण्ड और दुराचार को ललकारा, शास्त्रार्थ किये, विष के प्याले पिये, किन्तु सत्यज्ञान का प्रकाश करते रहे। वेद का भाष्य किया, सत्यार्थ प्रकाश जैसा अमर ग्रन्थ लिखकर सत्य का मार्ग दिखाया। उसी अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति का उद्घोष किया। जहाँ महर्षि के अनन्य शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द ने वेद निर्दिष्ट दयानन्द द्वारा प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली के अनुसार भगवती भागीरथी के पावन तट पर कांगड़ी ग्राम में गुरुकुल की स्थापना कर एक नये इतिहास का शुभारम्भ किया। वहाँ गुरुकुल के यशस्वी स्नातकों ने समाज और राष्ट्र जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने चरित्र और योग्यता की छाप छोड़नी प्रारम्भ की। देश की स्वतन्त्रता की लड़ाई में गुरुकुल की अग्रगण्य भूमिका रही। संस्कृत और संस्कृति की प्रतिष्ठापना में गुरुकुल के स्नाताकों ने अद्भुत कार्य किया। यह एक वृहद् इतिहास है। गुरुकुल कांगड़ी से प्रेरणा लेकर देश में बालक बालिकाओं के अनेक गुरुकुल स्थापित हुए।[17] एक नया भारत का सपना साकार होता हुआ दिखाई देने लगा। इसी से प्रेरणा पाकर देश में बालक बालिकाओं के लिए अनेक गुरुकुलों की स्थापना की जाने लगी।

मनुस्मृति में वर्णित है - **'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्'** अर्थात् श्रद्धवान् को ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। अश्रद्धावान् को नहीं।

उपसंहार - आज संसार में चारों ओर फैली निराशा, असंतोष, अराजकता, अशान्ति, भय, आतंक, बेईमानी तथा रिश्वतखोरी का वातवरण व्याप्त है। आध्यात्मिकता का स्थान भौतिकवाद (भोगवाद) ने ले लिया है। शिक्षा को बेचा जा रहा है। आज की शिक्षा में मानव निर्माण न होकर रोबॅट निर्माण हो रहे हैं। शिक्षा के इस वैश्वीकरण की स्थिति में मानवीय मूल्य नष्ट हो रहे हैं ऐसे में ऋषि दयानन्द का मन्तव्य ही यथार्थ प्रतीत होता है। उनके मत में आत्मिक विकास एवं मानवीय मूल्यों की सापेक्षता में प्रत्येक मानव को धृति, क्षमा, दमोस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह एवं धैर्यादि के गुणों से अपना जीवन विभूषित करना चाहिए। यम और नियम का अनुपालन भी शिक्षा के चरम लक्ष्य, पुरुषार्थ-चतुष्ट्य की प्राप्ति में सहायक है। यथा-

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्नया।।[18]

आज की शिक्षा अध्यात्म मूलक नहीं अपितु व्यवसायत्मक है। ईस्वी पूर्व द्वितीय शताब्दी में महाकवि कालीदास ने भी शिक्षकों का सम्मान गुणवत्ता एवं गहन ज्ञान आदरणीय था, जो सर्वोत्तम शिक्षक की कसौटी था तथा तथा ज्ञान समूह से युक्त व्यक्ति ही अध्यापन कला में उत्कृष्ट माना जाता था। महान् दार्शनिक कवि श्री हर्ष ने भी शिक्षा की चार अवस्थाओं अधीति, बोध, आचरण तथा प्रसारण आदि पर मुख्यतः बल दिया है परन्तु आज की शिक्षा पद्धति में इन सबका पूर्णतः अभाव है। महर्षि दयानन्द ने गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली में नैतिक, चारित्रिक तथा जीवन मूल्य परक व्यवस्था को ही उत्तम शिक्षा के रूप में व्यवस्थित

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है। जब तक देश में वैदिक शिक्षा एवं गुरुकुल प्रणाली का सूर्य उदय नहीं होगा तब तक **'तमसो मा ज्योतिर्गमय'** एवं **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** का उद्घोष साकार नहीं होगा। गुरुकुलों में ज्ञान-विज्ञान संस्कृत और संस्कृति की उच्चतम शिक्षा प्राप्त शारीरिक बौद्धिक आत्मिक और सामाजिक बल से परिपूर्ण स्नातक जब वेद माता की गौरव गाथा को प्रसारित एवं प्रचारित करेंगे तभी राष्ट्रज्ञान के आलोक से प्रदीप्त होकर पुनः विश्व गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हो सकेगा।

ऋषि दयानन्द के मन्तव्य में मुख्यः माता-पिता एवं आचार्य बालक के प्रथम तीन गुरु के रूप में उसका निर्माण करने में सक्षम है। इन तीनों की सापेक्षता एक उत्तम, चरित्रवान् बालक का निर्माण करने में सक्षम है तथा शारीरिक, बौद्धिक (मानसिक) एवं आध्यात्मिक उन्नति का यही मूलाधर है।

पाद-टिप्पणियाँ

1. ऋते ज्ञानन्नमुक्तिः : न्याय दर्शन
2. विद्यांचाविद्यां च यस्तद्वेदो भयं सह।
   अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।। यजु. 40/14
3. सत्यार्थ प्रकाश, द्वि. समु. पृ. 23-24
4. सामवेद पूर्वार्च्छिकः मंत्र -
5. सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समु. पृ0 24-26
6. सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समु. पृ0 24-26
7. व्यवहार भानु (ऋषि दयानन्द कृत) पृ. 99
8. सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समु. पृ0 24-26
9. अथर्ववेद - 11.5.3
10. प्रश्नोपनिषद्
11. तै. उपनिषद्
12. छा. उपनिषद्
13. बृह. उपनिषद्
14. बाल्मीकि रामायण (अरण्य काण्ड)
15. मनुस्मृति 2/20
16. महाभारत
17. स्मारिका - पृ. 49 (गुरुकुल करतारपुर)
18. अथर्ववेद 3/30/1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातृत्व-नारी का गरिमा मय पक्ष

डा0 सान्त्वना द्विवेदी
प्रवक्ता, संस्कृत-विभाग
डी.एस.एन.कालेज, कानपुर विश्वविद्यालय

मातृत्व क्या है, मातृत्व स्थूल नारीत्व नहीं है, मातृत्व एक दृष्टि है जो- भावना रूप में व्यक्त होती है। जहां प्रेम है, जहाँ त्याग है, जहाँ उत्सर्ग का भाव है, नारीत्व है। मातृत्व है। जहाँ संघर्ष है, जहाँ अधिकारों की माँग है भोग है संग्रह है वह पुरुष तत्व है। अहिंसा मातृत्व है, हिंसा पुरुष तत्व है। करुणा मातृत्व है, कर्तव्य मातृत्व है, शांति मातृत्व है।

जहाँ भी स्वयं को नि:संकोच समर्पित कर देने का भाव है - वहाँ मातृत्व है। माँ तो हृदय है, उदारता है, सेवा है। श्रद्धा में मातृत्व है, स्पर्धा में पुरुष तत्व है।

त्वमेव माता - जब भक्त भगवान् को माँ कहता है तो वह अपने दैन्य को, दारिद्र्य को, पाप-ताप को, अपनी आस्था, विश्वास को व्यक्त करता है। हमारे धर्म ग्रन्थो में माँ की महिमा का अनन्त गान है। माँ के महत्व को स्थापित करता एक श्लोक-

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥

एक आचार्य गौरव में दस उपाध्याय से बढ़कर है। एक पिता सौ आचार्यो से उत्तम है, तथा एक माता एक सहस्र पिताओं से श्रेष्ठ है।

यदि हम यह सोचे कि विश्व का सबसे मूल्यवान पदार्थ मां के सामने रखकर मां का ऋण अदा कर सकते हैं- तो यह विचार निरर्थक है, ऐसा इसलिए कि मां जो कुछ हमारे लिये करती है, उसकी कृति अतुलनीय है।

सभी पूज्यो में पूज्यतम पिता होता है, जन्मदाता पिता से सभी अन्नदाता पिता श्रेष्ठ होता है। इस अन्नदाता पिता से भी कोटिगुणा श्रेष्ठ, वन्दनीया जननी माता होती है, क्योंकि वह गर्भ धारण करती है, और पोषण भी।

जननी ही प्रथम गुरु है। कोई भी आज जो कुछ भी है भूतकाल में जो कुछ भी हो रहा है, वह उस जननी की ही देन है। सभी के ऋण से मुक्ति पायी जा सकती है। मगर जननी के ऋण से मुक्ति नहीं।

मातृत्व में स्त्री का उत्तरदायित्व अत्यन्त महान् हो जाता है। क्योंकि हमारे शास्त्रों के अनुसार जन्मपूर्व प्रभाव बालक को शुभ या अशुभ प्रवृत्ति युक्त बनाता है। हम कितना भी महाविद्यालय में अध्ययन करें, लाखों ग्रन्थ पढ़ डालें, संसार के अत्यन्त विद्वान् के संसर्ग का लाभ लें लें, किन्तु हममें शुभ संस्कार लेकर जन्म लिया है तो इन सबसे अच्छा रहेगा। बालक जन्म से ही देव या असुर पैदा होता है।

उपनिषदों में मानव के जो आवश्यक कर्त्तव्य हैं, उनमें पहला कर्त्तव्य है, मातृदेवो भव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् मानवों को अपनी माता को ईश्वर मूर्ति मानकर उनकी सेवा करनी चाहिए। वेदों में मातृ शब्द का अर्थ यह किया है कि जो निर्माण एवं रक्षा करने वाली शक्ति है, वही माता है। अत: भगवान् मनु माता को पृथ्वी की मूर्ति पिता को आकाश की मूर्ति मानते हैं। वेद इन दोनों को प्रणम्य और श्रेष्ठ मानता है।

संन्यासी त्याग के ही कारण ही नर से नारायण बनकर सर्वत्र पूजित और सम्मानित होता है। माता का त्याग समर्पण भाव, सेवा भाव, वात्सल्य भाव, क्षमा भाव आदि उत्कृष्ट एवं उज्जवल भावनाओं से भरा होने के कारण सन्यासी के त्याग की अपेक्षा, माता के त्याग की गरिमा अधिक है, इसलिए माता की पूज्यता का सर्वोपरि स्थान है।

माता पिता की सेवा करने वाले पुत्र के अधीन भगवान् विष्णु कैसे परवश हो जाते हैं, इसका ज्वलन्त उदारण तीर्थ धाम पढरपुर का विठोवा मंदिर है, जहां मातृ-भक्त पुण्डरीक के वशवर्ती होकर भगवान् विष्णु आज तक ईट पर खड़े हुये हैं, जिनका वन्दना मातृ भक्त भगवान शंकराचार्य जी ने 'पर ब्रह्मलिंग भजे पांडुरंगम्' इन शब्दों में की है।

माता बालक की प्रथम गुरु है। गुरु के रूप में इस बात का अत्यन्त महत्व है कि शिशु उसके निरन्तर साहचर्य में बहुत समय बिताता है। अत: उसके चरित्र का निर्माण माता के द्वारा प्रस्तुत आदर्शों पर होता है। माता जो शिशु को प्राण शक्ति एवं प्राणाधायक ऊर्जा के साथ विद्या प्रदान का माध्यम है। गर्भ में शिशु माता से प्राण लाभ करता है। बाल्यकाल में माता का निरन्तर साहचर्य उस बालक का निर्माण करता है।

मां! शब्द कितना छोटा है लेकिन उसके उच्चारण मात्र से असंख्य भावों से हृदय भर जाता है। मां का अर्थ है प्रेम और वात्सल्य , करुणा और क्षमा, निरपेक्ष सेवा और उदारता यह केवल मां का ही प्रेम है जो सच्चे अर्थो में दूध के रूप में द्रवित होकर शिशु का पोषण करता है।

यदि हम आध्यात्मिक जीवन की बात करें तो हमारे जीवन का लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति कहा जाता है परन्तु उसके लिए हम तभी प्रयत्न कर सकते हैं जब मां हमारे देह को धारण करके हमें जन्म दे। लौकिक जगत् के सभी सम्बन्धों का प्रारम्भ मां से ही होता है। अत: यह सम्बन्ध अटूट है, सभी सम्बन्धों से विलक्षण है। उपनिषद् के ऋषियों ने इस तथ्य को पहचाना और इसीलिए गुरुकुल में वेदाध्ययन कराने के पश्चात् आचार्य अपने शिष्यों को अंतिम उपदेश देते समय कहते हैं- मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव। भारतीय चिन्तकों ने व्यष्टि रूप के मातृत्व को समष्टि रूप में देखकर उसे आद्या शक्ति के रूप में पहचाना। 'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता'' मातृ भाव का ऐसा व्यापक आदर्श अन्यत्र दुर्लभ है। भगवान् की स्तुति में भी आचार्यों ने माता को प्रथम स्थान दिया है ''त्वमेव माता च पिता त्वमेव'' जैसे श्लोक इस तथ्य के साक्षी हैं। इस प्राचीन परम्परा का आधुनिक भारतीय समाज में भी प्रचलन है। हम सीताराम राधेश्याम कहने के अभ्यस्त हैं। भारतीय समाज में सदैव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता के ऋण को स्वीकार किया गया है छत्रपति शिवाजी ने स्वीकार किया है कि उनके अनेक गुणों का श्रेय माता जीजाबाई को है। गांधी जी को नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा उनकी माता के द्वारा ही प्राप्त हुई । जिससे उनके उज्ज्वल चरित्र का निर्माण हुआ। हमारे धर्म ग्रन्थों रामायण महाभारत आदि में भी माता के द्वारा दी गई शिक्षा का गुणगान किया गया है। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुध्न आदि में प्रेम त्याग सहनशीलता, बन्धुत्व की शिक्षा माताओं ने ही दी है। दुष्यंत पुत्र भरत जिसके नाम पर हमारे देश का नाम भारतवर्ष है को वीरता की शिक्षा उसकी माँ शकुन्तला ने ही दी है। इसी प्रकार प्रसिद्ध विचारक प्लेटो ने माताओं को अच्छी आदतों के निर्माण में सहायक माना है।

इस प्रकार प्राचीन काल से आज तक नारी का सर्वाधिक गरिमामय पक्ष जननी का स्वरूप है। आज के भौतिक वादी युग में भी मातृत्व की गरिमा उसकी महत्ता किंचित भी न्यून नहीं हुई है। जब तक सृष्टि रहेगी तब तक मानव की सृजनकर्त्री माँ रहेगी। जब तक माता की गरिमा का हम स्मरण रखेंगे उसे आत्मसात करेंगे तब तक हमारी संस्कृति की गरिमा भी अक्षुण्ण बनी रहेगी। अपसंस्कृति की आंधियों के पश्चात् भी हमारी संस्कृति बनी हुई है, क्योंकि अभी हमारे देश में हर नारी में मातृत्व संरक्षित है न्यूनता श्रवणकुमारों की आ रही है। उसे हम सबको मिलकर दूर करना है। अपनी आगे आने वाली पीढ़ी ऐसी बनानी है जो माता की गरिमा की संरक्षिका बने। इसका प्रारम्भ हमें अपने परिवार में आदर्शों के माध्यम से करना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक वाङ्मय में राष्ट्रिय भावना की आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

डॉ0 प्रदीप कुमार दीक्षित
एसो0प्रो0एवं अधयक्ष-संस्कृत विभाग
पी0जी0 कॉलेज, अकबरपुर, रमाबाई नगर-उ०प्र०

वैदिक वाङ्मय भारतीयता की पहचान है। यह मानवमात्र का प्रकाश स्तम्भ और शक्ति स्रोत है। यह प्रकाष अखिल विश्व में व्याप्त होकर मानव जीवन में व्याप्त निराषा, दुःख, अज्ञान, अन्धाकार, कुविचार, व्यभिचार एवं दिशाहीनता को दूर करके उसमें आशा, सुख, ज्ञान, सदाचार, संयम और सुसंस्कृति का प्रादुर्भाव करता है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय वेद, पुराण, उपनिषद्, ब्राह्मणग्रन्थ एवं स्मृतियां आदि सभी संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध हैं। संस्कृत भाषा पूर्णतया वैज्ञानिक भाशा है। उदाहरणार्थ - सन् 1984 ई0 में कम्प्यूटर की भाषा सर्वोपयुक्त भाषा के लिए विश्व की समस्त भाषाओं का सर्वे अमेरिका की ए0आई0जी0 पत्रिका में प्रकाशित हुआ था, जिसके परिणाम स्वरूप प्रथम स्थान संस्कृत भाषा को और दसवाँ स्थान आँग्लभाषा को प्राप्त हुआ था। दुभाग्यपूर्ण यह है कि वैज्ञानिकता पूर्ण होने के पश्चात भी आज तक संस्कृत भाषा कम्प्यूटर की भाषा न बन सकी जबकि दसवें पायदान पर स्थापित आँग्ल भाषा ही कम्प्यूटर की भाषा है, किन्तु यह सच उजागर होने के पश्चात संस्कृत भाषा का विदेशों में पठन-पाठन, अध्ययन-अध्यापन का चलन तीव्रता से होने लगा। यह बात अलग है कि भारत में स्वराज्य स्थापित होने के उपरान्त भी यहाँ की प्रधान भाषा, संस्कृत भाषा तथा उसकी विशाल एवं अनुपम साहित्य-सम्पदा के प्रति अतीव उपेक्षा भाव दृष्टिगोचर हो रहा है। यह बड़े अचरज एवं दुर्भाग्य का विषय है, जो इस नव्य-भव्य एवं दिव्य भारत के कर्णधार हैं और जिनके ऊपर भारत और भारतीयता के गौरव की रक्षा का दायित्व है तथा जिनके हाथों में भारत की नूतन पीढ़ी को आगे बढ़ाने शिक्षा-दीक्षा दिलाने एवं संस्कारवान् बनाने का गुरुतर दायित्व है, वे ही अपनी इस संस्कृति और सभ्यता से पूर्ण भारतीय मनीषा की सर्वांगीण एवं बेशकीमती विरासत को जाने-अनजाने उपेक्षित करते आ रहे हैं। ऐसे आधुनिक कर्णधारों की मान्यता यह है कि संस्कृत भाषा एक मृत भाषा है और एक मृत भाषा में राष्ट्रकल्याण करने का सर्वथा अभाव होता है।

इस प्रकार की असत्य, भ्रामक एवं अशोभनीय विचारधारा मात्र वेद, पुराण एवं संस्कृत साहित्य के लिए ही नहीं प्रत्युत समूचे भारत वर्ष और भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता हेतु कष्टदायी है, इसके साथ ही साथ भारतीय मनीषियों की मानव कल्याण, समाज कल्याण एवं राष्ट्र कल्याण की कामना एवं भावना तिरोहित होती जा रही है। जबकि वास्तविकता तो यह है कि भारत वर्ष में राष्ट्रिय चेतना राष्ट्र के नागरिकों के धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक, सामाजिक आदि विभिन्न क्षेत्रों को प्रत्यक्ष, परोक्ष एवं व्यापक रूप से प्रभावित कर रही है। यही कारण है कि आज देश की सभी भाषाओं के साहित्य राष्ट्रिय भावना परक लिखे जा रहे हैं जबकि संस्कृत भाषा का साहित्य में तो अपने उद्भव काल से द्धवैदिक काल से आधुनिक काल तकऋ लेकर आधुनिक काल तक राष्ट्रिय भावना से युक्त अन्य भाषाओं के साहित्य से अग्रणी दिखलाई देता है।

संस्कृत भाषा में साहित्य सर्जना का प्रारम्भ वेदों की उत्पत्ति के समय के साथ ही माना जाता है। वास्तव में हमारी अति प्राचीन चिन्तन धारा के कोश वेद ही हैं। भारतीय मनीषियों ने वेदों में प्राणिजीवन से सम्बन्धित प्रत्येक पहलू की विशद् एवं व्यापक व्याख्या की है। मनीषियों की दूरगामी दृष्टि मानव के केवल सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक पक्षों का ही मूल्यांकन नहीं करती है, अपितु वह राष्ट्र प्रेम की प्रबल पक्षधर भी है। दूरदृष्टा ;षियों को यह पूर्वाभास था कि सोने की चिड़िया कहा जाने वाला भारत देश की विशाल भूमि अपने गर्भ में विशाल अन्न-जल, धान-धान्य एवं खनिज पदार्थों के अकूत भण्डार समेटे हुए है। जिसके ;लस्वरूप उसको प्राप्त करने के लिए विदेषी कभी भी आक्रमण कर सकते हैं। अत: भारत के अस्तित्त्व की रक्षा के लिए एवं सम्मानपूर्ण जीवन यापन के लिए यह परमावश्यक है कि अपनी मातृभूमि और राष्ट्र की तन-मन-धान से सुरक्षा की जाये और यह तभी सम्भव होगा, जब हम अपनी जन्मभूमि और अपनी राष्ट्रभूमि के प्रति निष्ठावान् बनकर सजग प्रहरी की भाँति क्रियाशील एवं जागरुक रहें। अत: यह विचारकर भारतीय ;षियों ने यहाँ के जनमानस में राष्ट्रप्रेम की भावना को अधिाक बलवती बनाने हेतु वैदिक साहित्य में मात्भूमि की मुक्तकण्ठ से प्रषंसा की है। यह परम्परा संस्कृत साहित्य में अनवरत् गतिमान है। ऐसे साहित्य के पठन-पाठन से जनमानस के हृदय में अपने देश के लिए गौरव का भाव हिलोरें मारने लगता है। इसीलिए मातृभूमि को माता का स्थान सर्वप्रथम वेदों में वर्णित किया गया --

"तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत् पिता द्यौः।
तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना श्रृणुतं धिाष्ण्या युवम्॥"[1]

भारतवासियों के हृदय में भारतभूमि के प्रति लगाव, प्रेम एवं आकर्षण उत्पन्न करने के लिए हमारे ऋषियों ने भारतभूमि की अनेकानेक विशेषताओं को प्रकाशित किया है। उन्होंनें जहाँ एक ओर इसे 'ऐश्वर्यदायिनी'[2] बताकर जनमानस के हृदय में इसकी क्रियात्मक उपासना करने के लिए प्रेरित किया है, वहीं दूसरी ओर इसे सुखकारिणी 'मयोभुव'[3] सुखदायिनी, अभयदायिनी, आवासदायिनी, कल्याणकारिणी तथा आनन्ददायिनी ओर अभीष्ट अन्न-जल, घृत-दुग्धा से परिपूर्ण स्योना, अनृक्षरा, निवेशनी, शिवा, सुषदा उर्जस्वती पयस्वती आदि[4] कहकर इसके प्रति रागात्मक आत्मीयता की भावना को भी प्रदर्शित किया है। वैदिक ऋषि मातृभूमि के प्रति अत्यन्त सजग और भावुक दिखलाई पड़ते हैं। वह मातृभूमि को अपना सर्वस्व मानते हुए इसे ही स्वर्ग, अन्तरिक्ष, माता-पिता, देवता और पाँचों वर्गों में इसी का रूप देखते हैं। वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातृभूमि के प्रति कृतज्ञ हैं क्योंकि भारतभूमि उनकी यशकारिणी माता है, नूतन विशाल और सुखद है, योग क्षेम कारिणी और भोजनदायिनी है पृथिवी ही अदिति रूपी माता है -

''अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पंच जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥
महीमू षु मातरं सुव्रतानामृस्य पत्नीमवसे हवामहे।
तुविक्षत्रमजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्॥
सुत्रमाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नाव स्वरित्रमनागसो अस्रवन्तीमारु हेमा स्वस्तये॥
वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे।
यस्या उपस्थ उर्वन्तरिक्षं सा नः शर्म त्रिवरूथं नि यच्छात्॥''[15]

पृथिवी हमारी माता है और हम पृथिवी के पुत्र हैं। पृथिवी हमारे लिए धूल, मिट्टी, कंकड़, पत्थर और पर्वतों आदि का मात्र समूह ही नहीं है, प्रत्युत वह एक सजीव माता के समान है। माता और पुत्र का सम्बन्धा होने पर दोनों के कर्त्तव्य हैं और उन कर्त्तव्यों का निर्वाह पूर्णतया ईमानदारी से होना चाहिए। माता जननी है अतः उसे अपनी सन्तान का भरण-पोषण उचित रूप से करना चाहिए और पुत्र का कर्तव्य है कि माता की रक्षा करने के लिए आवश्यकता पड़ने पर पुत्रें को अपने प्राणों का बलिदान तक करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। तभी हम मातृभूमि के सुयोग्य पुत्र हो सकेंगे। पुत्र पृथिवी माता से प्रार्थना करता हुआ कहता है-

''यत ते मधयं पृथिवी यच्च नभ्यं, यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवः।
तासु नो धोह्यभि नः पवस्व, माताभूमिः पुत्रे अहं पृथिव्याः॥''[16]

वेदों में राष्ट्र चिन्तन एवं राष्ट्र कल्याण की भावना बहुतायत रूप में प्राप्त होती है। हमारे ;षिजन राष्ट्र प्राप्ति एवं राष्ट्रमंगल की कामना से देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञों का विधाान करते थे और अपने मनोनीत राष्ट्र नायक के भाल पर राष्ट्र तिलक करते समय राष्ट्रलाभ की मंगल कामनाएं करते थे --

''इमं देवा असपत्नं सुवधवं महते क्षत्रय महते,
ज्जैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय॥
इममनुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष,
वोघ्मी राजा सोमोघ्स्माकं ब्राह्मणानां राजा॥''[17]

इसी प्रकार यजुर्वेद के एक अन्य स्थल पर पृथिवी पर सभी प्रकार से सुख समृद्धि का साम्राज्य हो जिससे पृथिवी वासियों का उचित पालन-पोषण हो सके। सच है कि जिस राष्ट्र के नागरिक जितने सबल ओर समर्थ होंगे वह राष्ट्र भी उतना ही सबल और समर्थ होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक ;षि राष्ट्र की उन्नति और सुख शान्ति हेतु देवताओं से प्रार्थना करता है-

अस्मे वो अस्त्विन्द्रियम् अस्मे नृम्णम्, उत क्रतुरस्मे, वर्चांसि सन्तु वः।

नमो मात्रे पृथिव्यै, नमो मात्रे पृथिव्यै, इयं ते राड् यन्तासि यमनो ध्रुवोघसि धारुणः।

कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा, र"यै त्वा, पोषाय त्वा।।[8]

जीवन का आरम्भ करते समय नवदम्पति को आर्शीवचन देते समय भी ऋषियों को समृद्धिशाली राष्ट्र का धयान रहता था और वे नवदम्पती को राष्ट्र को सुखी बनाते हुए स्वयं सुखी बनाने का आशीर्वाद दिया करते थे -

"अभि वर्धातां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धाताम्।

र"या सहस्र वर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ।।"[9]

वेदों में केवल राष्ट्र की परिकल्पना का ही वर्णन नहीं है अपितु उसके आधाारभूत तत्त्व उपयोगिता, महत्त्व तथा राष्ट्र के प्रति राष्ट्र के नागरिकों के दायित्यों एवं कर्त्तव्यों का भी विशद् विवेचन प्राप्त होता है, जो निश्चित रूपेण उनकी हार्दिक राष्ट्रिय भावना का प्रतीक है। वे अपने राष्ट्र को तेज, बल एवं नैतिकता से पूर्ण उत्तम राष्ट्र के रूप में देखते हैं और वे अपने राष्ट्र को सदा ही सर्वश्रेष्ठ बनाए रखना चाहते रहे हैं। राष्ट्र को महान बनाये रखने के लिए एन. यूजे उत्तराखण्डषि का उद्घोष था -

"सत्यं बृहद् ;तुमुग्रं दीक्षा तपो, ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धाास्यन्ति।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्नी उरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु।।"[10]

भारतीय मनीषियों की दृढ़ मान्यता थी कि छः तत्त्वों से द्धसत्य, ;त, दीक्षा, तप, ब्रह्म, और यज्ञश्च पृथ्वी माता रुकी हुयी हैं। इन छः तत्त्वों में जब भी कोई विकार आता है तभी पृथिवी पर अनर्थ होते हैं। अथर्ववेद सत्य और ;त को विष्व का धाारक मानता है। सत्य से पृथिवी और ऋत से सूर्य रुका हुआ है -

सत्येनोत्तभिताभूमिः ,ऋतेनादित्यास्तिश्ठन्ति।।[11]

दूरदृश्टा ऋषियों को यह भलीभाँति विदित था कि भारत राश्ट्र की अखण्डता एवं उन्नति के लिए भारतवासियों में एकता आवष्यक है। एकता हेतु सभी वर्गों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निशाद) का प्रतिनिधित्व और हित साधक राष्ट्रनायक हो, इसीलिए उस राष्ट्रनायक को **'पंचजन्य'**[12] की संज्ञा से विभूषित किया था और राष्ट्रनायक से आशा की गई है कि वह बिना किसी भेदभाव और संकोच के समाज के पाँचों वर्गों के घरों में जाया करे। परिणाम यह होगा कि राष्ट्रोन्नति में सभी वर्ग समान रूप से सहभागी बनेंगे। इतना ही नहीं ऋषियों ने राष्ट्रनायक के अतिरिक्त समाज के अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों की भी पाँचजन्यता को बड़े ही गौरव एवं आषा के साथ निरूपित किया है। परस्पर वाणी, बुद्धि और ज्ञान के समन्वय के उपदेश द्वारा भी आपसी एकता और संगठन को ही सुरक्षित रखने का प्रयास किया है। राष्ट्रहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कार्यो की सफलता हेतु संगठन और एकता एक महत्त्वपूर्ण घटक हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहे जाने वाले समाज के सभी वर्गो के व्यक्तियों को एक ही विराट पुरुश परमपिता परमात्मा के अंष से उत्पन्न बताकर समाज के मन में सजातीय एकता का बीजारोपण किया है। सर्वजन हिताय की कल्पना को साकार करने के लिए देवगणों से विनय करते हुए राष्ट्रवासियों को निर्देषित किया गया कि वे अपने मन, विचार और क्रिया कलापों में मत भिन्नता न पनपने दें और जो मतभेद उत्पन्न करते हैं उन पर नियन्त्रण करें-

''सं वो मनांसि सं व्रता, समाकूतीर्नमामसि।
अमी ये विवृता स्थन, तान् वः सं नमयामसि।।''[13]

सभी देषवासी चाहे वह किसी वर्ग, जाति, धार्म के मानने वाले क्यों न हों किन्तु परस्पर वे साथ-साथ प्रगति पथपर अग्रसर हों, साथ-साथ वार्तालाप करें, साथ-साथ ज्ञानार्जन करें, साथ-साथ मिल-जुल कर रहें, भाईचारा बनाए रखें, मिलकर विचार विमर्ष करें, सामाजिक समितियों में समान अधिाकार समझें उद्देष्य प्राप्ति में सहभागिता और समानता हो, मिलकर साथ-साथ कार्य करें --

''सं गच्छधवं सं वदधवं, सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे, संजानाना उपासते।।
समानो मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेशाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः, समानेन वो हविशा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः, समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो, यथा वः सुसहासति।।''[14]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आज राश्ट्रिय विकास हेतु षिक्षा, सम्पर्क, उत्तरदायित्व, विचार-विमर्ष, अधिाकार, कर्त्तव्य, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का विकास राश्ट्र के सभी धार्मो, जातियों में समान भाव से विकसित करने की आवश्यकता है, किन्तु आज राष्ट्र दलगत, क्षेत्रगत, जातिगत एवं धार्मगत की राजनीति में उलझा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि है कि जिस प्रकार से एक पिता की सन्तानें अथवा एक घर के व्यक्ति भिन्न-भिन्न भाषाओं का अध्ययन, भिन्न-भिन्न मतावलम्बी होकर भी अपने घर की एवं घर के अन्य सदस्यों की संरक्षा एवं सुरक्षा करते हैं तथा परिवार को सुख-सुविधा सम्पन्न बनाकर स्वयं को भी सुखी बनाते हैं। यहाँ पर उनका भाषाभेद, धर्मभेद एवं अन्य कोई भेद बाधा उत्पन्न नहीं करता है, ठीक उसी प्रकार भारत वासियों को भी भाषा भेद, धर्मभेद, क्षेत्रभेद, प्रान्तभेद, जातिभेद एवं अन्य सभी भेदों की उपेक्षा करके समग्र भारत को अपना घर तथा समग्र भारतवासियों को अपना पारिवारिक सदस्य समझ कर राष्ट्रहित को सर्वोपरि समझकर समवेत भावना से प्रगतिपथ पर अग्रसर करना चाहिए। ऐसे उपदेश, ऐसी शिक्षा वेदों में पग-पग पर दृष्टिगत होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तव में आज हमारा भारत देश आतंकवाद, क्षेत्रवाद, पूँजीवाद, जातिवाद, भाषावाद एवं नैतिक पतन की आग में जल रहा है। ऐसे विषम विकराल समय में वैदिक शिक्षा परमोपयोगी एवं जीवन दायिनी हो सकती है। वेद पाठी अथवा वेद विचार धारानुयायी उक्त वादों में फँसकर अपने राष्ट्र को विनाशकारी आग में कभी नहीं झोंक सकता। हमारा मानना तो यह है कि आज भारत सरकार जितना धन उक्त ज्वलन्त समस्याओं से बचाव कार्यों में खर्च कर रही है उसका दस प्रतिशत धन यदि वेदों के प्रचार प्रसार, पठन-पाठन, अध्ययन-अध्यापन में खर्च करे तो निश्चित रूप से भारतवासियों का मन परवर्तित होगा और हमारा देश पुनः संस्कारवान होकर जगतगुरु जैसी खोई प्रतिष्ठा प्राप्त करने में सफल होगा। अस्तु यह कहना शत-प्रतिशत उचित है कि वेद आज मानव-जीवन के लिए अतिशय रूप में प्रासंगिक हैं। अन्त में हमारी वैदिक प्रार्थना है कि-

''विष्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव॥''[15]

पाद-टिप्पणियाँ-

1. ऋग्वेद 1-89-4
2. ऋग्वेद 1-188-1
3. ऋग्वेद 5-5-8
4. ऋग्वेद 1-22-15, यजुर्वेद 1-27 तथा अथर्ववेद12-1-17,59
5. अथर्ववेद 7-6-1 से 4
6. अथर्ववेद 12-1-12
7. यजुर्वेद 9-40
8. यजुर्वेद 9-22
9. अथर्ववेद 6-78-2
10. अथर्ववेद 12-1-1
11. अथर्ववेद 14-1-1
12. ऋग्वेद 1-100-12, 5-32-11
13. अथर्ववेद 3-8-5, 6-94-1
14. ऋग्वेद 10-191-2 से 4
15. ऋग्वेद 5-82-5 तथा यजुर्वेद 30-3

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत व्याकरण में माधुर्य

डा० आशा रानी पाण्डेय
रीडर (संस्कृत विभाग)
डी०जी०कालेज कानपुर

''अस्ति देवो महेशः सुरैः सेवितः
येन माधुर्य वृत्तिर्मुदा भावितः।
कारणं तत्र सूत्राणि वृत्तिर्न वा,
यत्र पातञ्जलं भाति भाष्यं प्रितमः॥

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपने भावों और विचारों को समाज के अन्य सदस्यों के सामने अभिव्यक्त करने के लिए जितना विकल होता है, दूसरों के भावों और विचारों को जानने के लिए उतना ही उत्सुक भी। मानव समाज में परस्पर विचार-विनिमय का साधन भाषा है। भाष् शब्द भाषा धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है, ''व्यक्त वाणी'' अर्थात् जिसमें वर्णों का स्पष्ट उच्चारण हो वह भाषा है।

व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः''[१]

मानव के पास यदि भाषा न होती तो मानव और पशु में विशेष अन्तर न होता। भाषा के अभाव में समाज का संगठन सम्भव न होता और मानव जाति इतनी उन्नत न हो सकती जितनी वह आज हैं काव्यादर्शकार दण्डी कहते हैं-

वाचामेव प्रसादेन लोक यात्रा प्रवर्तते।
इदमंधतमः कृत्स्नं जायते भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।[२]

अर्थात् बिना वाणी के लोक व्यवहार नहीं चल सकता। यदि शब्द नामक ज्योति इस समस्त संसार को प्रकाशमान न करती तो समस्त लोक (अज्ञान) अंधकार से व्याप्त हो जाता।

निःसन्देह भाषा ही मानव को पशु से ऊँचा स्थान दिलाने में समर्थ हुई है।

भाषा की परिवर्तनशीलता पर नियन्त्रण रखने के लिए, उसे संस्कारच्युत होने से बचाने के लिए व्याकरण का जन्म हुआ। पंतजलि के अनुसार पाणिनि ने शब्द, अर्थ और इनके सम्बन्ध को स्वतः सिद्ध मानकर ही व्याकरण की रचना की है -

कथं पुनरिदं भगवतः पाणिनेरा चार्यस्य लक्षणं प्रवृत्तम्? सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे।[३]

सन्देह निवारण के लिए भाषा-विषयक अज्ञान की निवृत्ति के लिए भी व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है-

असन्देहार्थ चाध्येयं व्याकरणं।[४]

भारतवर्ष में व्याकरण का अध्ययन लगभग उतना ही प्राचीन है, जितना वेदों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन। उस सुदूर अतीत में ही, यहाँ व्याकरण का जितना वैज्ञानिक अध्ययन हुआ है, उतना अन्य किसी भी देश अथवा भाषा में नही हुआ इस उक्ति में न किंचिन्मात्र अतिशयोक्ति है न गर्वोक्ति ही। वेद हमारे प्राचीनतम साहित्य- ग्रन्थ है, और उनके एक-एक अक्षर को हमने धार्मिक महत्व दिया है। महर्षियों ने व्याकरण शास्त्र को वेदत्रयी के मंत्रों से भी अधिक पवित्र माना है, क्योंकि वेदमंत्रों की पवित्रता की रक्षा व्याकरण ज्ञान के बिना सम्भव नही -

आपः पवित्रं प्रथमं पृथिव्यामपां पवित्रं परमं च मंत्रः।
तेषां च सामर्ग्यजुषां पवित्रं महर्षयो व्याकरणं निराहुः।।[५]

संस्कृत व्याकरण पूर्ण, परिष्कृत एवं आश्यर्च जनक है। सम्पूर्ण विश्व में इसके समान अन्य व्याकरण नहीं है। संस्कृत वाङ्मय के किसी भी क्षेत्र में प्रवेश के लिए व्याकरण रूपी चक्षुः सर्वथा अपेक्षित है। अतएव कहा गया है-

"बिना व्याकरणेनान्धः।"

किसी भी शास्त्र में प्रवेश के लिए व्याकरण अनिवार्य है। ध्वनि सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य महान् अलंकार शास्त्री सह्रदयानन्दवर्धन आचार्य आनन्दवर्धन इस प्रकार लिखते है-

"विश्व में केवल भारतीय व्याकरण ही शब्द को 'ब्रह्म' के रूप में अवधारणा प्रस्तुत करता है।" शब्द ब्रह्म में निष्णात आचार्य परम ब्रह्म को सहज में प्राप्त कर सकता है। यही कारण है कि महर्षि पतंजलि स्पष्ट रूप में प्रतिपादित करते हैं-

"एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुष्ठुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति।।"[६]

एक और स्थल पर लोक व्यवहार में शुद्ध भाषा के प्रयोग की आवश्यकता को प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं-

"यस्तु प्रयुंक्ते कुशलो विशेषे शब्दान्यथावद्व्यवहारकाले
सोऽनंतमाप्नोति जयं परत्र वाग्योगविद् दुष्यति चापशब्दैः"।।[७]

अर्थात् जो वाणी का प्रयोग जानने वाला शब्दों का यथावद्ज्ञान प्राप्तकर व्यवहार के समय (लिखने या बोलने में) शब्दों का कुशलतापूर्वक प्रयोग करता है। उसको इस लोक ओर परलोक में सफलता मिलती है, इसके विपरीत अपभ्रष्ट शब्दों का प्रयोग करने वाला दोष का भागी होता है।

भारतीय विद्याओं के उद्भावक भगवान् शिव ने महर्षि पाणिनि की तपस्या से सन्तुष्ट होकर उनके समक्ष प्रकट होकर उन्हें 14 माहेश्वर सूत्रों का उपदेश दिया। उनके इस उपदेश पद्धति के मूल में माधुर्य था। क्योंकि भावभंगिमा से अनुस्यूत ह्रदय भगवान् ने माधुर्य के अन्तः साधन नृत्य के पश्चात् सूत्रों का उच्चारण किया-

"नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंचवारम्"।[८]

इस प्रकार माहेश्वर सूत्रों के प्राकट्य के मूल में माधुर्य ही संलक्षित हो रहा है। ये माहेश्वर सूत्र अक्षर विद्या है इनका सम्यक् विश्लेषण पृथक् शोध का विषय है। इन चौदह सूत्रों

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में विविध विद्याएँ कलाएँ एवं अर्थाभिव्यक्तियाँ समाहित हैं। सप्तम् सूत्र मडणनम् व्यवहारिक माधुर्य का अभिव्यञ्जक है। लोक में सामान्यतया व्यक्त माधुर्य की ओर अधिक ध्यान जाता है। अव्यक्त माधुर्य को हृदयंगम् करना या कराना सहृदय मनीषियों का कार्य है। उदाहरण के लिए गुण, शर्करा या मधु के माधुर्य को (मिठास को) प्रायः सभी लोग जानते है। परन्तु इनके अतिरिक्त विभिन्न पदार्थों में विराजमान अव्यक्त माधुर्य चतुर लोग ही जान पाते है, जैसे कि चतुःदश माहेश्वर सूत्रों में प्रायः सर्वत्र माधुर्य है परन्तु व्यक्त माधुर्य हमें सप्तम सूत्र में दृष्टिगोचर हो रहा है।

मधुर के भाव को माधुर्य कहते है। मधुरस्य भावः माधुर्यम्। मधुर+ष्यञ् प्रत्यय लगाकर मधुर शब्द की निष्पत्ति होती है। जिसका अर्थ है मिठास, सुहानापन। उत्कृष्टसौन्दर्य भी माधुर्य का व्यंजक होता है ''रूपं किमप्यनिर्वाच्यं तनो माधुर्यमुच्यते'' अलंकार शास्त्रियों ने मुख्यरूप से माधुर्य का समावेश गुण के मध्य किया है। अलंकार शास्त्रियों के द्वारा मान्य माधुर्य, ओज और प्रसाद इन तीन गुणों में माधुर्य का प्रमुख एवम् महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होने काव्य में चित्त को द्रवित करने वाले और आह्लादक तत्व को माधुर्य के रूप में निरूपित किया है -

''चित्त द्रवी भावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते।
आह्लादकत्वं माधुर्यं शृङ्गारे द्रुतिकारणम्।।''[९]

परन्तु यदि इसकी व्यापक रूप मे मीमांसा की जाये तो काव्य में माधुर्य केवल गुणों तक में ही सीमित नहीं रहता अपितु वह शब्द, अर्थ, रीति, अलंकार आदि में भी अभिव्याप्त है। लौकिक क्षेत्र में उसका प्रसार प्रायः सर्वत्र परिलक्षित हो रहा है। वाणी तो मधुर हो ही सकती है रूप मधुर भी होता है। जैसा कि कविकुलगुरु कालिदास इंगित करते है।

''किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्''।[१०]

काव्य में तो माधुर्य होता ही है परन्तु व्यवहार का माधुर्य सीधे हृदय को छू लेता है। लोक में सुख-दुःख और दिन रात की तरह माधुर्य और पारुष्य को देखा जा सकता है। मधुर प्रायः सभी को प्रिय होता है, परन्तु परुष या कटु प्रिय नही हो सकता। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामान्य मानवजीवन और दर्शन सभी में सतत माधुर्य प्रोद्भाषित हो रहा है। यह माधुर्य ही शनैः शनैः सुख के रूप में पर्यवसित हो जाता है। उदाहरण के लिए जब कोई हमसे मधुर व्यवहार करता है, तो हमें सुख की अनुभूति होती है, और जब कटु व्यवहार करता है तो दुःख की अनुभूति होती है। अतएव किसी विद्वान् का यह कथन सर्वथा संगत है-

''माधुर्यं हि मनुष्याणां कारणं सुखदुःखयोः।''[११]

अर्थात् माधुर्य ही मनुष्य के सुख दुःख का हेतु है। माधुर्य के होने पर सुख और अभाव में दुःख प्रायः होता है। इस प्रकार माधुर्य के विषय में गम्भीरता पूर्वक अनुशीलन किया जाय तो इसका क्षेत्र अतिशय व्यापक दृष्टिगोचर होगा।

व्याकरण के विषय में सामान्यतः एक भ्रान्ति है कि यह विषय क्लिष्ट रुक्ष और अमधुर हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याकरण ही क्या संकृत के विषय में भी प्रायः लोगों की यही अवधारणा है कि -

''संस्कृतं कठिनाभाषा संस्कृतं बहु दुर्गमा।
अपि द्वादशभिर्वर्षैः वक्तुं नायाति संस्कृतम्।।''[१२]

परन्तु यदि इसके अन्दर प्रविष्ट होकर गम्भीर समीक्षा की जाये तो इस विषय में भी अन्य मधुर विषयों की ही तरह माधुर्य का अवलोकन किया जा सकता है। अक्षर विज्ञान माधुर्य का सर्वाधिक साधकतम तत्व है। भाषा में जो भी निर्मिति होती है उसके मूलकारण अक्षर हैं। हम मधुर और प्रिय अक्षरों के संयोजन के द्वारा किसी का हृदय जीत सकते हैं, और इसके विपरीत क्लिष्ट अप्रिय शब्दों के द्वारा किसी के भी कोप भाजन हो सकते हैं।

संस्कृत व्याकरण की यह विशेषता है कि इसके द्वारा सिद्ध अक्षर एवं शब्द माधुर्य व्यञ्जक बन जाते है। उदाहरण के लिए हम - कं कं कं कं पं पं पं के द्वारा भाषागत माधुर्य की सृष्टि कर सकते हैं और -

''अधरं मधुरं वदनं मधुरं हसितं मधुरं गमनं मधुरं।''[१३]

आदि पदों के प्रयोग के द्वारा व्यवहार में माधुर्य की मधुरता प्रकटित हो रही हैं । महर्षि पाणिनी के 'तुल्यास्यप्रयत्नं सर्वत्रम्'[14] सूत्र' का अनुशीलन करें। इस सूत्र का सम्पूर्ण प्रतिपादन माधुर्य का द्योतक है। सूत्र का प्रतिपाद्य है कि जिन वर्णों का आस्य (मुख) प्रयत्न अर्थात् स्थान एवं अभ्यन्तर प्रयत्न समान है वे वर्ण सवर्ण कहलायेंगे। सवर्ण प्रयत्न प्रतिपाद्य विषय एवं स्वरूप की दृष्टि से माधुर्य व्यञ्जक होगें।

संस्कृत व्याकरण में कही-कहीं पर द्वित्व, आगम, आदेश आदि माधुर्य के संयोजक हो जाते हैं। उदाहरणार्थ -तवल्लकारः में द्वित्व योजना माधुर्य व्यञ्जक है। नैः+अकः के रूप में स्थित विग्रह में अयादि सन्धि के द्वारा जब हम ''एचोऽयवायावः''[15] सूत्र से ए को आय आदेश करते है, तो सन्धि होकर हमें मधुर पद नायक प्राप्त होता है। उप+इन्द्रः में आद्गुणः[16] के द्वारा गुणकार्य करके उपेन्द्र की प्राप्ति होती है तब माधुर्य वृत्ति के द्वारा हृदय आनन्दित हो उठता है।

'भो आयुष्मान् एधिदेवत्त- 3' यहाँ पर प्रत्यभिवादेऽशूद्रे[17] इस सूत्र के द्वारा जो देवदत्त के टि को प्लुत किया जा रहा है वह विलक्षण माधुर्य का द्योतक है।

'सैष दाशरथिरामः' इस उदाहरण में ''सोऽचिलोपे चेत्पादपूरणम्''[18] इस सूत्र के द्वारा जो सु का लोप कर दिया जाता है वह सैष माधुर्य की अभिव्यक्ति का कारण बनता है। अपि शब्द की जब 'कर्मप्रवचनीय' संज्ञा हो जाती है। तब वह उपसर्ग नहीं रहता और कर्मप्रवचनीय संज्ञा की शक्ति से जब हम 'अपिस्तूयात वृषलम्' का प्रयोग करते है तो वहाँ अपि के द्वारा गर्हा (निन्दा) भाषा के अव्यक्त माधुर्य को प्रकाशित करता है।

बुद्धिमान् धीमान् आदि पदों में जो माधुर्य व्यंजना 'मतुप्' प्रत्यय के द्वारा विहित है उसके लिए व्याकरण छोड़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है।

''प्रशस्ताः केशाः सन्ति अस्य इति केशवः'' यहाँ केश शब्द से केशाद्वोऽन्यतरस्याम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व प्रत्यय सम्पूर्ण भाव को व्यक्त कर रहा है। जो कि विशिष्ट माधुर्य वृत्ति का प्रमुख कारक है। लक्ष्मी: अस्यास्ति अर्थात् लक्ष्मी इसके है इस विग्रह में लक्ष्मी शब्द से लक्ष्म्याञ्च्च सूत्र से न प्रत्यय और इ को अ आदेश तथा णत्व होकर निष्पन्न लक्ष्मण: शब्द जिस माधुर्य की संसृष्टि कर रहा है। वह सहृदय जनगम्य है।

इसी प्रकार कल्याणानि अङ्गानि अस्या सन्ति अर्थात् सुन्दर अंगो वाली इस विग्रह में अंग शब्द से स्त्रीलिंग में निष्पन्न अंगना शब्द शाब्दिक माधुर्य को प्रकट कर रहा है। कृत, तद्धित और समास की वृत्तियाँ जिस अभूतपूर्व माधुर्य की संसृष्टि में सक्षम हैं, वह वस्तुत: अत्यन्त आश्चर्य जनक है। दशरथ के पुत्र को 'दाशरथि' वासुदेव के पुत्र को वासुदेव: व्याकरण के वेत्ता को वैयाकरण: आदि तद्धित वृत्ति से निष्पन्न शब्द विशिष्ट सौष्ठव के द्वारा भाषागत माधुर्य को प्रकट कर रहे हैं। तद्धितवृत्ति के विपुल विस्तार में संस्कृत वाङ्मय में जो सौदर्न्य सागर उड़ेल दिया है, वह भला किस विद्वान् भावक को प्रभावित न करेगा। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शाब्दिक आदि लोकप्रिय शब्दों की संसृष्टि का श्रेय तद्धित वृत्ति को ही है।

नन्दन के भाव को हृदयंगम करने के लिए कृतवृत्ति का आश्रय परमावश्यक है। यदि नन्दन: के स्थान पर कोई पिता को आनन्दित करने वाला इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करता है तो क्या माधुर्य कोसों दूर नहीं हो जायेगा? 'इन्द्र' की स्त्री 'इन्द्राणी' 'वरुण' की वरुणानी 'भव' की भवानी कहने के लिए 'आनुक' और ङीष् का प्रयोग कर हम शब्द माधुर्य में प्रवृत्त होते हैं। क्या ही विशिष्ट वृत्ति होती है एकशेष की जब 'पितरौ' के द्वारा माता एवं पिता दोनों को बुला लेते हैं। संस्कृत व्याकरण के नाम धातु प्रकरण ने किसके अन्त:करण को प्रभावित नही किया जब हम कृष्ण की तरह आचरण करता है- 'कृष्णं इवाचरति' इस कथन के लिए 'कृष्णाति' का प्रयोग करते हैं। तथा कृष्णति, कृष्णत: कृष्णान्ति रूपों को प्रस्तुत कर किसी विलक्षण आनन्द की अनुभूति करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत व्याकरण का माधुर्य दर्शन विशिष्ट एवं विलक्षण है। इसका क्षेत्र अत्यन्त ही व्यापक है जो मानव अन्तस् का संस्पर्श कर उसे आनन्दित तो करता ही है उसे सत्य तत्व तक भी पहुँचा देता है जो कि अन्तत: उसके कल्याण का हेतु बनता है। क्योंकि संस्कृत व्याकरण साक्षात् शिव से प्रकट हुआ है और माधुर्य वृत्ति का संसार में प्रकटीकरण भी भगवान् शिव के द्वारा ही हुआ है।

राम चरित मानस को सरल एवं सहज रूप में जन-जन तक पहुँचा देने में समर्थ 'तुलसीदास जी' ने व्याकरण एवं माधुर्य के सहज सम्बन्ध को इस प्रकार व्यक्त किया है-

''जाने बिनु न होई परतीति बिनु परतीति होई नहि प्रीति''।[२०]

अर्थात् जब तक हम किसी वस्तु को जानते नहीं है तब तक हमें उसकी प्रतीति या पहिचान नही होती और परतीति या पहिचान के बिना किसी से भी प्रीति या प्रेम नही होता। इसीलिए कहा जाता है कि जान पहचान तब प्रेम। ठीक इसी प्रकार पहले हम व्याकरण को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छी तरह से जाने तभी उसके आश्रय से किसी अर्थ को सम्यक् रूप से समझ सकेगें और किसी भी शब्द के सही अर्थ का बोध हो जाने पर हमें उसकी प्रतीति कराने वाले व्याकरण के प्रति भी प्रीति स्वतः समुद्भूत हो जायेगी। क्योंकि व्याकरण ज्ञान के बिना वेद वेदान्त, स्मृतिपुराण इतिहास, काव्य आदि किसी भी शास्त्रान्तर में प्रवेश नहीं हो सकता। भाष्कराचार्य ने भी कहा है -

"यो वेद वेदवदनं सदनं हि सम्यक्
ब्राह्मयाः स वेदमपि वेद किमयशास्त्रम्,
यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य विद्वान्
शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी।"[२१]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 महाभाष्यप्रदीप : 1-3-48
2 काव्यादर्श : 3-4
3 महाभाष्य प्रदीप :
4 महाभाष्य प्रदीप :
5 काव्यमीमांसा : अध्याय - 6
6 महाभाष्यप्रदीपटीक :
7 महाभाष्यप्रदीपटीक :
8 प्रौढ़ मनोरमा : नन्दिकेश्वर
9 काव्यप्रकाश : अष्टम उल्लास, सूत्र संख्या-90
10 अभिज्ञान शाकुन्तलम् : 1/20
11 साहित्य सुधासागर : 5/15
12 वैयाकरण भूषणसार (कौण्डभट्ट) : 7/77
13 मधुराष्टक : शंकराचार्य
14 लघुसिद्धान्त कौमुदी : 1/1/9
15 लघुसिद्धान्त कौमुदी : 6/1/78
16 लघुसिद्धान्त कौमुदी : 6/1/87-1/1/2
17 लघुसिद्धान्त कौमुदी : 8/2/83
18 लघुसिद्धान्त कौमुदी : 6/1/134
19 लघुसिद्धान्त कौमुदी : 5/2/109
20 रामचरित मानस : उत्तरकाण्ड
21 लघु सिद्धान्त कौमुदी : श्री महेश सिंह कुशवाहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीनसंस्कृतवाङ्मये कृषिविज्ञानमभियान्त्रिकी च

डॉ० विनीत घिल्डियाल
आचार्या, संस्कृतविभाग:
हेमवतीनन्दनबहुगुणागढ़वालविश्वविद्यालय:
श्रीनगरम् (गढ़वालस्थम्) उत्तराखण्डम्

कर्मैव भारतीयजीवनदर्शनस्य मूलाधारो वर्तते- 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा:।'[1] भारतीयवर्णव्यवस्थायां गुणस्वभावानुसारं कर्मविभाजनं कृत्वा यद्यपि विशेषधर्मतया कृषि: वैश्यानां कर्म मतं तथापि सामान्यधर्मरूपेण सर्वेषामपि वर्णानां कृषिकर्माधिकारं स्वीकृतम्। वस्तुत: प्राचीनकाले कृषेर्महत्त्वं सम्यग्ज्ञातमासीतस्माकं मनीषिभि:। यतो हि प्राणिन: कृषिं कृष्युत्पादाङ्चोपजीवन्ति, अत एवाह ऋषय: -

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं लोकानामिह जीवनम्।[2]

अपि च - **कुर्यात् कृषिं प्रयत्नेन सर्वसत्त्वोपजीविनीम्।**[3]

'अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जीवन्ति'[4], अत एवोक्तं तैत्तिरीयोपनिषदि- 'यया कयापि विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात्।'[5] यद्यपि प्रारम्भे कृषिविज्ञानस्य ज्ञानं नासीत्, किन्तु कालक्रमेण प्राकृतिकसस्योत्पादनक्रमं भूयो भूयो निरीक्ष्य अस्माकमृषय: कृषिसम्बद्धज्ञानमाप्नुवन्। प्रजापति: कृषे: प्रथमाविष्कर्ता मत:, तदन्तरं वैन्य: पृथु: सर्वप्रथमं नियोजितविधिना कृषिकर्मण आरम्भं कृतवान्। ऋग्वेदे, अथर्ववेदे, महाभारते, भागवतविष्णुमार्कण्डेयादिपुराणेषु च एतद्सम्बद्धा नैके सन्दर्भा: प्राप्यन्ते।[6] वैदिककाले कृष्युपयोग्युपकरणानामुपायानाङ्च प्रचलनमारब्धम्। सीरफालकुद्दालशुन -ईशायुगयोक्त्र- शम्यासृणीदात्रलवित्रादीनां कृष्युपकरणानां[7] कर्षणवपनसेचनलवनमृणनादिविविध क्रियाणाङ्च[8] विवेचनं प्राप्यते प्राचीनसंस्कृतवाङ्मये। कृषि-कर्मणि बीजवपनात्पूर्वं भूमे: कर्षणं प्रथमकरणीयकर्म भवति।

एतद्धेतो: हलं, लान्डलं सीरं वा मुख्योपकरणमासीत्, फालयुगयोक्त्रशुनशम्या -ईषादयश्च तस्यावयवा:। यत्र लान्नलेन कर्षणं दुष्करं भवति स्म तत्र कुद्दालेन कर्षणकर्म क्रियते स्म। कुद्दालोऽयोनिर्मित: काष्ठविशेषनिर्मितो वा प्रशस्तो मत:। एतेषां कृष्युपयोगिनां हलादिकाष्ठोपकरणानां निर्माता 'तक्षा'[9] इति कथ्यते स्म। ऋषिपराशरस्तु हलस्य अष्टावयवानां उल्लेखं कृत्वा तेषां परिमाणमाकारङ्चापि निर्दिष्टवान्-

ईशा युगहलस्थाणुर्निर्योलस्तस्य पाशिका:।
अड्डचल्लश्च शौलश्च पच्चनी च हलाष्टकम्।।
पड्चहस्ता भवेदीषा स्थाणु: पड्चवितस्तक:।
सार्द्धहस्तस्तु निर्योलो युगं कर्णसमानकम्।।
निर्योल: पाशिका चैव अड्डचल्लस्तथैव च।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशाङ्गुलमानौ तौ शौलोऽरत्निप्रमाणकः।।[10]

क्षेत्रपरिमाणानुसारं कृषकस्य सामर्थ्यानुसारं वा लाङ्गलस्य विविधाकारा उल्लिखिताः सन्ति प्राचीनसंस्कृतवाङ्मये। द्विगवहलादारभ्य चतुर्विंशतिगवहलानामुल्लेखः प्राप्यते तत्र।[11] कृषिकर्मणि लाङ्गलयोजनं हलाभियोगो वा कृषिविशेषज्ञेभ्यः सम्यग्प्रशिक्षणं प्राप्यैव क्रियते स्म। एवं हलेन चतुर्धा षड्धा वाऽवश्यकतानुसारं अनेकवारं सुनियोजितपद्धत्या कर्षणं क्रियते स्म। कृषिप्रक्रियायाः सम्पूर्णमेव विवेचनं प्राप्यते तत्र[12] तद्यथा -

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात्।।[13]

एवं प्रथमं कर्षणं, ततो भूमौ बीजवपनम्, दात्रसृण्यादिभिरुपकरणैः पक्वधान्यादिकस्य कर्तनम्, ततः खले नीत्वा धान्यादीनां लवणं मृणनङ्च, तदन्तरं तुषं पृथक्कृत्य धान्यादिकस्य सङ्ग्रहणं क्रियते स्म। यद्यपि कृषिर्मूलतो वैश्यशूद्रयोः कर्म कथ्यते किन्तु एतदपि स्पष्टमुक्तं प्राचीनसंस्कृतवाङ्मये यत् कृषिकर्तारः कृषिसम्बद्धज्ञानवन्तः स्युः -

बीजानामुप्तिविच्च स्यात् क्षेत्रदोषगुणस्य च।
मानयोगं च जानीयात् तुलायोगांश्च सर्वशः।[14]

ये कृषिकर्म कुर्वन्ति स्म ते 'कवयः'[15] इति कथितास्तत्र। वस्तुतस्ते कृषि-अभियन्तार एव,ये अनूपजाङ्गलसाधारणभूमिभेदं[16] सम्यग्निरूप्य, मृत्संरचनादृशा च भूमिः स्निग्धाश्मन्वतिकिंशिलोसरोर्वरा- बालुकाप्राया[17] वा इति निर्धार्य भूमिस्वरूपानुसारमेव कृषिकर्म कुर्वन्ति स्म, यतो हि उपयुक्तां भूम्यामेवोप्तानि बीजानि प्ररोहन्ते वर्धन्ते च। उत्तमकृष्यर्थं बीजस्य क्षेत्रस्य च उभयोरपि उत्कृष्टत्वमावश्यकम्, अत एव उक्तं तत्र -

बीजं वहध्वे अक्षितम्।[18]

अपि च,

सुबीजं चैव सुक्षेत्रे जातं सम्पद्यते यथा।
बीजमेके प्रशंसन्ति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः।
बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयं तु व्यवस्थितिः।।[19]
सुक्षेत्रे वापयेद् बीजं सुपात्रे निक्षिपेत् धनम्।
सुक्षेत्रे च सुपात्रे च ह्युप्तं दत्तं न नश्यति।।[20]

अबीजे (वन्ध्याबीजे) श्रमो व्यर्थो भवति। यथोचितकाले क्षेत्रस्य कर्षणानन्तरमुत्तमबीजवपनेन सिङ्चनाद्युपायैश्च उत्तमकृषिफलं लभते, अत एवोक्तं तत्र -

बहुहलपरिकृष्टायां स्वभूमौ दासकर्मकरदण्डप्रतिकर्तृभिर्वापयेत्।[21]
यथास्वं भूमिषु च स्थूल्याश्चानूप्याश्चौषधीः स्थापयेत्।[22]
यथर्तुवशेन बीजवापाः।[23]

यथाकालं बीजसङ्ग्रहादारभ्य बीजोपघातकेभ्यो बीजसुरक्षोपायानामपि वर्णनं विद्यते तत्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थशास्त्रे स्पष्टनिर्देशोऽस्ति यत् सीताध्यक्षः सर्वधान्यपुष्पफलशाककन्दमूलवाल्लिक्यक्षौमकार्पासबीजानि यथाकालं गृहणीयात्।[24] एवमेव कृषेरुन्नत्यर्थं कृष्युपघातकेभ्यः कीटमूषकपशवादिभ्योऽतिवृष्ट्यनावृष्ट्यादिभ्यश्च कृषि संरक्षणमप्यत्यावश्यकं वर्तते, अत एव तद्हेतुर्विविधोपाया अपि वर्णितास्सन्ति संस्कृतवाङ्मये।

कृषेः प्रचुरुललाभाय भूमेरुर्वराशक्तिवृद्ध्यर्थं उर्वरकाणां प्रयोगं प्राचीनकालादेव क्रियते स्म। एतदर्थं अजाविगोशकृत् करीषहरितपर्णादयो मत्स्यादिजन्तूनामस्थिचूर्णं यज्ञभस्मादिकञ्च प्रयुज्यन्ते स्म -

अजाविगोशकृदिभर्वा जलैर्मांसैश्च पोषयेत्।
उदुम्बराश्वत्थवटाचिंचादतन जंभला।।[25]
पृथिवीं भस्मना पृण।[26]

एवं भूमिस्वरूपानुसारमेव भूमेरूर्वरीकरणाय अजाविगवादीनां करीषं शकृत्गोमयञ्च प्रयुज्य-

ऋतुकालानुसारं कृष्योपकरणानां साहा"येन कृषिकर्म कुर्वन्ति स्म।
विविधानां खाद्यान्नानामुत्पादनस्य वर्णनं तेषामुत्पादनप्रविधेर्ज्ञानं सूचयति -

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियन्नवश्च मेऽणवश्च मे श्यामकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।[27] यद्यपि 'वृष्टिमूला कृषिः सर्वा,',28 तथापि कृषिविचक्षणा वृष्ट्याभावे, निर्जलेषु प्रदेशेषु चापि सेतुबन्धकुल्यानिर्माणादिरूप- विधिना वर्षाजलस्य नदीकूपतडागादिजलाशयानां जलस्रोतसाङ्च जलस्योपयोगः कृष्यर्थं कुर्वन्ति स्म। अत एव सरित्मातृकाकृषिः तत्रोत्तमा मता -

कृषिस्तु चोत्तमा वृत्तिर्या सरिन्मातृका मता।[29]

वैदिकवाङ्मये सिङ्चनकर्महेतुः कृत्रिमनदीकूपादीनि अदेवमातृकानि साधनानि उल्लिखितानि सन्ति। एतेषु अक्षतजलयुक्ताः कूपाः प्रधानतः कर्मण्येतस्मिन् प्रयुज्यन्ते स्म। कूपेभ्यो जलम् अश्मचक्रवरत्रादिसाहा" येन ऊर्ध्वमाकृष्य आहावैः एकत्रीक्रियते स्म तत्रतश्च सुषिराभिः सिङ्चार्थं नीयते स्म -

निराहावान्कृणोतन सं वरत्रा दधातन।
सिङ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेकमनुपक्षितम्।।
इष्कृताहावमवतं सुवरत्रं सुषेचनम्।
उद्रिणं सिङ्चे अक्षितम्।।[30]

वस्तुतः कृषेः प्रचुरुल्लाभाय सिङ्चनस्योत्तमाव्यवस्था आवश्यका वर्तते। सेतुबन्धः प्रवहमाणं जलं बन्धनस्योपायः। बन्धरचनया वर्षाजलस्य नदीनिर्झरादेः प्रवहमाणजलस्य च संरक्षणम्भवति। अर्थशास्त्रशुक्रनीत्यादिषु ग्रन्थेषु स्पष्टमुक्तं यत् राज्ञा राष्ट्रे विपुलजललाभाय कूपवापीतडागादयः, नदीनां सेतवो विबन्धाश्च कार्याः -

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूपवापीपुष्करिण्यस्तडागाः सुगमास्तथा।
कार्याः खाताद् द्वित्रिगुण-विस्तारपदधानिका।।
यथा तथा ह्यनेकाश्च राष्ट्रे स्याद्विपुलं जलम्।
नदीनां सेतवः कार्या विबन्धाः सुमनोहराः।।[३१]

अपिच-

एवं द्रव्यद्विपवनं सेतुबन्धमथाकरान्।
रक्षेत्पूर्वकृतान्राजा नवांश्चाभिप्रवर्तयेत्।।[३२]

कर्मोदकस्य महत्त्वं सम्यग्ज्ञातं प्राचीनकाले , अत एव उक्तं तत्र -

नदीमातृकं हि स्वाजीवमपाश्रयश्चापदि भवति।[३३]
अदेवमातृको देशो रम्यः[३४]

महाभारतेऽपि स्पष्टमुक्तं यत-

कच्चिद्राष्ट्रे तडागानि पूर्णानि च बृहन्ति च।
भागशो विनिविष्टानि न कृषिर्देवमातृका।।[३५]

वाल्मीकिरामायणे अयोध्याकाण्डे भूमिप्रदेशज्ञाः, सूत्रकर्मविशारदाः, खनकाः, यन्त्रकाः, कर्मान्तिका, स्थपतयः, यन्त्रकोविदादयश्च विविधकर्मविशेषज्ञा वर्णिताः सन्ति, ये स्वस्वकर्मोपयोग्युपकरणोपेता आसन्।[36] तेषु केचिद् विविधदेशेषु आवश्यकतानुसारं अगाधजलयुक्तान् बहुविधान् बन्धवापीजलाशयादीन् रचयामासुः -

बबन्धुर्बन्धनीयांश्च क्षोद्यान् संचुक्षुदुस्तथा।
बिभिदुर्भेदनीयांश्च तांस्तान् देशान् नरास्तदा।।
अचिरेण तु कालेन परीवाहान् बहूदकान्।
चक्रुर्बहुविधाकारान् सागरप्रतिमान् बहून्।
निर्जलेषु च देशेषु खानयामासुरुत्तमान्।
उदपानान् बहुविधान् वेदिकापरिमण्डितान्।।[३७]

नारदस्मृतौ सेतुः द्विविधो कथितः - खन्यो बध्यश्च -

सेतुः द्विविधो ज्ञेयः खन्यो बध्यस्तथैव च।
तोयप्रवर्तने खन्यो बध्यः स्यात् विनिवर्तने।।[३८]

अर्थशास्त्रे कर्मोदकस्य सुव्यवस्थितविवेचनं प्राप्यते। राजा स्वयं बृहज्जलाशयानां निर्माणं कारयति स्म। यदि प्रजाजनाः स्वयमपि बन्धस्य निर्माणं कुर्वन्ति स्म, तर्हि राजा तेभ्यो जलाशयकुल्यादर्थं भूमिमार्गकाष्ठोपकरणाननुग्रहं करोति स्म।39 सेतुबन्धः तत्र द्विविधः कथितः

सहोदकमाहार्योदकं वा सेतुं बन्धयेत्।४०

नद्या निर्झरस्य वा प्रवाहमवरुध्य बन्धरचना क्रियते स्म। एतादृशो जलाशयः स्वयमेव जलैर्पूर्यमाणत्वात् 'सहोदकः' इति कथ्यते स्म। यत्र तु जलाशयो नद्यादिभ्यः कुल्यामाध्यमेनानीतैर्जलैः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिपूर्यते स्म असौ 'आहार्योदकः' सेतुबन्धः कथ्यते स्म। 'सेतुबन्धयोरप्याहार्योदकात्सहोदकः श्रेयान्'[41] मतः। 'सहोदकयोरपि प्रभूतवापस्थानः श्रेयान्'[42]। तत्र इदमपि सुनिश्चितं कृतं यत् 'दशकुलीवाटं कूपस्थानम्'[43]। एतया व्यवस्थया हि क्षेत्रेषु सर्वत्र एव सिङ्चनकर्म कर्तुं शक्यते स्म। वस्तुतः तत्र स्पष्टमुक्तं यत्-'सेतुबन्धः सस्यानां योनिः। नित्यानुषक्तो हि वर्षगुणलाभः सेतुवापेषु।'[44] अत एव जलाधारेभ्यः क्षेत्रपर्यन्तं कुल्यादीन् रचयित्वा नदीतडागजलाशयादीनां जलं कुल्यादिमाध्यमेन नीत्वा सिङ्चनकर्मणः सुनियोजितव्यवस्था दृश्यते प्राचीनसंस्कृतवाङ्मये।

कृषिविचक्षणाः कृषि-अभियन्तारो वा सम्यग्जानन्ति स्म यत् कृषिः सततमवेक्षणीया, यथोक्तं तत्र-

षडिमानि विनश्यन्ति मुहूर्तमनवेक्षणात्।
गावः सेवा कृषिर्भार्या विद्या वृषलसन्नतिः॥[45]

अर्थशास्त्रानुसारं कृष्यर्थमपेक्षितानां साधनानां व्यवस्था पूर्णतो राजाधीना आसीत्। राजकीयभूमिषु राजाधिकृतः सीताध्यक्षः कृषिं कारयित्वा तस्य अवेक्षणं करोति स्म। स्पष्टमुक्तं अर्थशास्त्रे- 'सीताध्यक्षः कृषितन्त्रशुल्ववृक्षायुर्वेदज्ञस्तज्ज्ञसखो वा'[46] भवेत्। जना राजसाहा"येन स्वप्रयत्नैर्वा उत्तरोत्तरनिजनवप्रयोगैर्युक्तिभिश्च कृषेर्वृद्धिः कुर्वन्ति स्म -

सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तराम् समाम्।

वस्तुतः प्राचीनसंस्कृतवाङ्मये कृषिविज्ञानं कृषि-अभियान्त्रिकी च पर्याप्तविकसितावस्थायां दृश्यते। अतिक्रामत्सु परः सहस्रवर्षेषु अद्यापि सैव पारम्परिकप्रविधिः प्रयुज्यते कृषिकर्मणि। यद्यपि वर्तमानवैज्ञानिकयुगे यन्त्रसङ्चालितोपकरणानां प्रयोगेण कृषिकर्म सुकरं जातं, सममेव च अजैविकानां रासायनिकोर्वरकाणां प्रयोगेण तात्कालिकरूपेण अन्नं प्रचुरमात्रायां समुत्पन्नो भवति किन्त्वजैविकरासायनिकोर्वरकाणां प्रयोगः न केवलं पृथिव्या दीर्घकालिकोर्वराशक्तिं क्षीणां करोति अपितु स्वास्थ्यदृशापि हानिकरः। अद्य खाद्यान्नानां सिंचनव्यवस्थापि दोषयुक्ता। प्रदूषितजलस्य सिंचनेन कृष्युत्पादा अपि प्रदूषिता भवन्ति, परिणामे च हानिकरा भवन्ति। अत एव पर्याप्तपोषणार्थं, स्वादवन्नार्थं भूमेरुर्वराशक्तिवर्धनार्थङ्च पारम्परिकजैविकोर्वरकपरककृषेरावश्यकता वर्तते। एवमेव उत्तमकृष्यर्थं सिंचनादेः सुनियोजितव्यवस्था सर्वकारस्य दायित्वमस्ति, यत्र जनानांच सहभागित्वमप्यपेक्षते। एतदर्थमद्यापि प्राचीनसंस्कृतवाङ्मये उल्लिखितानां सन्दर्भाणामनुशीलनमावश्यकं वर्तते। एतद्सन्दर्भे वेदब्राह्मणोपनिषदः सूत्रसाहित्यं स्मृतिपुराणादयो बृहत्संहिताकृषिपराशरकाश्यपीय-कृषिसूक्ति-वृक्षायुर्वेदादिग्रन्था अर्थशास्त्रममरकोषादयश्च कृषिविज्ञानविषयका विशेषोल्लेखनीया ग्रन्थाः सन्ति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ

1. यजुर्वेदः, 40.1
2. महाभारतम्, 12.90.7
3. बृहत्पाराशरः, 5.158
4. तैत्तिरीयोपनिषद्, 3.2
5. तदेव, 3.10
6. ऋग्वेदः, 8.9.10; अथर्ववेदः, 8.10.4; महाभारतम्, 7.69.4; श्रीमद्भागवत महापुराणम्, 4.16-23; विष्णुपुराणम्, 13.84-89; मार्कण्डेयपुराणम्, 46.65-75
7. ऋग्वेदः, 1.58.4, 7; 4.57.4, 8; 8.78.10; 10.48.7; 10.94.13; 10.101.3, 4; 10.106.6; 10.117.7; 10.179.6; अथर्ववेदः, 3.17.1, 3; यजुर्वेदः, 18.7; शतपथब्राह्मणम्, 7.2.2.5; 8.4.2.5; गौतमधर्मसूत्रम्, 1.3.31; वाल्मीकिरामायणम्, 2. 80.7; कृषिपराशरः, 112; अमरकोषः, वैश्यवर्गः, 3
8. शतपथब्राह्मणम्, 1.6.1.2
9. अथर्ववेदः, 3.5.6; वाजसनेयी संहिता, 30.6
10. कृषिपराशरः, 112-114
11. अथर्ववेदः, 6.91.1; 8.9.16; तैत्तिरीय संहिता, 5.2.5.2; काठकसंहिता, 15.2; शतपथब्राह्मणम्, 7.2.2.6
12. ऋग्वेदः, 8.78.10; 10.94.13; 10.48.7; 10.101.3, 6; अथर्ववेद: 3.17.1-9
13. ऋग्वेदः, 10.101.3
14. मनुस्मृतिः, 9.330
15. ऋग्वेदः, 10.101.4
16. चरकसंहिता, विमानस्थानम्, 3.47-48; अमरकोषः, भूमिवर्गः; अग्निपुराणम्, 280. 15-16
17. ऋग्वेदः, 1.127.6; यजुर्वेदः, 16.33.42.43; तैत्तिरीयसंहिता, 4.5.6-9; अथर्ववेदः, पृथिवीसूक्तम्
18. ऋग्वेदः, 5.53.13
19. मनुस्मृतिः, 10.69-70
20. पराशरस्मृतिः, 1.48
21. अर्थशास्त्रम्, 2.24
22. तदेव
23. तदेव

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

24. तदेव
25. शुक्रनीतिः, 4.382
26. यजुर्वेदः, 6.2
27. यजुर्वेदः, 18.12
28. कृषिपराशरः, 10
29. शुक्रनीतिः, 3.27
30. ऋग्वेदः, 10.101. 5-6
31. शुक्रनीतिः, 3.63-64
32. अर्थशास्त्रम्, 2.1
33. तदेव, 7.12
34. वाल्मीकिरामायणम्, 2.100. 43-46
35. महाभारतम्, 2.5, 67
36. वाल्मीकिरामायणम्, 2.80.1-2
37. तदेव, 2.80.10-12
38. नारदस्मृतिः, 11.18
39. अर्थशास्त्रम्, 2.1
40. तदेव
41. तदेव, 7.12
42. तदेव
43. तदेव, 2.4
44. तदेव, 7.12
45. महाभारतम्, 5.1.91
46. अर्थशास्त्रम्, 2.24

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वैदिक यज्ञ- वायु प्रदूषण का प्रबल समाधान"

डॉ० सुरचना त्रिवेदी
प्रवक्ता - संस्कृत,
भगवानदीन आर्य कन्या स्नोतकोत्तर
महाविद्यालय, लखीमपुर-खीरी (उ०प्र०)

पर्यावरण शब्द परि + आवरण इन दो शब्दों से मिलकर बना है। पर्यावरण का अर्थ है - चारों ओर से घिरा हुआ। विश्व का प्रत्येक प्राणी अपने चारों ओर के वातावरण अर्थात् बाह्य जगत पर आश्रित रहता है। इस प्रकार पर्यावरण शब्द के अन्तर्गत व्यक्ति, परिवार, समाज, ग्राम, नगर, प्रदेश, देश, विश्व तथा सम्पूर्ण सौर मण्डल में होने वाली परिस्थितियाँ, शक्तियाँ तथा क्रिया-कलापों की गणना की जाती है। इस परिधि में वायु, अग्नि, जल, पृथिवी तथा समस्त दिशायें, पर्वत, मेघ, वृक्ष, औषधि, वनस्पति पशु आदि पदार्थ समाहित है। अथर्व वेद में जल, वायु और औषधियों को छन्दस् आच्छादक बताया गया है -

त्रीणिच्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूषं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन्भुवन अर्पितानि।।[१]

वर्तमान समय में पर्यावरण की रक्षा वैश्विक समस्या का रूप धारण कर चुकी है। कारण? कि पर्यावरण के निर्माता घटको-वायु, जल, भूमि, मृदा, अन्तरिक्ष आदि सभी में प्रदूषण की स्थिति है जो मानव के लिए अति घातक सिद्ध हो रही है।

वायु का पर्यावरण तथा हमारे जीवन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। क्योंकि वायु प्राणवायु द्वारा ही श्वास-प्रश्वास की क्रिया सम्भव होती है। ऋग्वेद में इसके लिए 'विश्वभेषज' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। एक मन्त्र में वायु को 'विश्वभेषज' कहकर उससे दूषित वायु को दूर कर शुद्ध भेषज वाता प्रवाहित करने की कामना की गई हैं -

आ वात वाहि भेषजं विवात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।।[२]

वैदिक युगीन ऋषियों द्धऋषि-वैज्ञानिकोंऋ को यह भली भाँति ज्ञात था कि शुद्ध वायु हृदय के लिए शान्दियक एवं सुखकारक तथा आयुवर्द्धक है।

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे।
प्रण आयूंषि तारिषत्।।[३]

वायु मानव-जीवन का आधार है। वेद में वायु को अमृत का धारक माना गया है -

यददो वात ते गृहे अमृतस्य निधिर्हितः।
तेन नो देहि जीवसे।[४]

अर्थात् हे वायु! तेरे गृह में, अन्त् में जो अमृत निधि स्थापित है, उसे हमारे जीवन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए दे। कहीं-कहीं इसे वातावरण हेतु शुद्धिकर्त्ता माना गया है -

शुचिपाः वायोः[५]

एक अन्य स्थल पर- आपो वाता ओषधयः।[६] कहते हुए वायु तथा सूर्य को भुवनों का रक्षक माना गया है -

युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथः।७

वर्तमान चिकित्सा शास्त्र के द्वारा यह प्रमाणित किया जा चुका है कि हृदय एवं तपेदिक (टी.बी.) सदृश असाध्य रोगों के लिए प्रातः सायं शुद्ध वायु (भेषजवात) का सेवन एवं विशेषतः प्रातः भ्रमण स्वयं में एक महौषध है। अतएव चिकित्सकों द्वारा उक्त रोगों से ग्रस्त व्यक्तियों को 'सेनेटोरियम' में जाने की परामर्श दी जाती है।, जहां वे उत्तम कोटि की वनस्पतियों वृक्षों, लताओं आदि से स्वच्छ एवं शुद्ध 'भेषजवात' (Nedicated air) का सेवन करते हुए स्वास्थ्य लाभ कर सकें। वैदिक मन्त्रों से यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है, जहाँ वायु के स्रोत वृक्ष वनस्पतियों के संरक्षण व संवर्द्धन की प्रार्थनाएं की गई हैं -

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वम्।[८]

अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठने तथा निवास बनाने की बात कही गई है -

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता[९]

वैदिक दृष्टि वायु की शुद्धि को जीवन के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानती है। इस तत्व को यजुर्वेद में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है -

तनूनपाद सुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः।
पथो अनद्रु मध्वा घृतेन।[१०]

अर्थात् उत्तम गुणवाले पदार्थों में उत्तम गुण वाला, प्रकाश रहित तथा सबको प्राप्त होने वाला जो वायु शरीर से विचरण करता है, उसको तुम जानों।

इस प्रकार वैदिक ऋषि को वायु की महत्ता का ज्ञान था इसी कारण वेदों में अनेकशः वायु शुद्धि के उपायों, वृक्षों, वनस्पतियों के संरक्षण सम्बन्धी मन्त्र प्राप्त होते हैं। निश्चित् रूप से प्रकृति में वायु प्रदूषण निवारण की क्षमता थी किन्तु आज मानव की असीमित महत्वाकांक्षाओं तथा इच्छाओं ने वायु को प्रदूषित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। अपने बिछाए हुए जाल में मानव इतना उलझ चुका है कि सुख-सुविधाएँ जुटाने के आविष्कृत किए गये संसाधन अब उसके जीवन के लिए शुद्ध प्राणवायु के स्थान पर विषाक्त वायु प्रत्यावर्तित कर रहे है। शक्ति तथा ऊष्मा के साधन, विशालतम कारखाने, यातायात के साधन अन्धा धुन्ध शहरीकरण व औद्योगीकरण की होड़ में वायुमण्डल में विद्यमान वायु की गुणवत्ता में पर्याप्त गिरावट आयी है। इस पर भी द्धएअर कन्डीशन तथा फ्रिज आदि मेंऋ सी० एु० सी० का बढ़ता प्रयोग, कार्बनडाई ऑक्साइड, कार्बन मोनो ऑक्साइड तथा सल्र डाइआक्साइक्ड से लगभग तीन करोड़ विषाक्त तत्त्व वायुमण्डल में घुल जाते है। गत दशाब्दियों में हुए परमाणु परीक्षण भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके कारण है जिससे वायुमण्डल में कोहरा, धूल, धुएँ, सल्फर डाइ आक्साइड नाइट्रोजन के० ऑक्साइड, सीसे के कण वायु प्रदूषण में वृद्धि कर रहे हैं। वायु मण्डल में विद्यमान नाइट्रोजन आक्साइड ओजोन नामक गैस के निर्माण में सहायता करती है। ओजोन हाइड्रो कार्बन के साथ अभिक्रिया करके 'स्मॉग नामक' धुंध पैदा करती हैं, जिससे वायु मण्डल में प्रदूषण होता है। वैज्ञानिक शोधों से स्पष्ट हो चुका है कि प्रतिवर्ष तीस लाख असामयिक मौते वायु प्रदूषण से होती है।[11]

ध्यातव्य है कि वर्तमान में इस प्रकार के वायु प्रदूषण से मुक्ति के जितने भी उपाय व्यक्तिगत अथवा शासन स्तर पर किये जा रहे हैं वे अत्यधिक खर्चीले तथा जटिल हैं। यह भी सत्य है कि कई बार कागजी कार्यवाही के रूप में पूर्ण दिखाये जाने पर भी वास्तविकता में वे क्रियान्वित किये ही नहीं जाते ऐसी स्थिति में हमारा ध्यान अनायास ही वेदों के अनुभूत व सुगम प्रयोगों की ओर जाता है जिनमें दैनिक कार्य-कलापों के मध्य कुछ समय निकाल कर सात्विक-धार्मिक, यज्ञादि कार्य करने से न केवल शरीर व मानस को सकारात्मक ऊर्जा की प्राप्ति होती है अपितु वाह्य भौगोलिक वातावरण द्धजिसे वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में परिस्थितिकी या पर्यावरण कहा जाता हैऋ की भी शुद्धि होती है। पर्यावरण चाहे बाह्य हो या आन्तरिक, इसके घटक तत्व पे्च महाभूत ही है। इनके दूषित होने पर पर्यावरण का दूषित होना स्वाभाविक हैं। ये शुद्ध होंगे तो पर्यावरण भी शुद्ध होगा, न केवल बाह्य अपितु आन्तरिक द्धक्योंकि मन भी भौतिक है तथा इन्हीं तत्वों से मिलकर बना है।ऋ ये पांच तत्व ही व्यष्टि-शरीर तथा समष्टि-समस्त विश्व के निमन्त्रित कर रहे हैं। इसीलिए वेद में इनके शान्ति युक्त होने की बात कही गयी है। वैदिक यज्ञ पर्यावरणीय तत्त्वों की शान्ति का सर्वाधिक सटीक उपाय है। चारों ओर वायु नामक तत्त्व पृथिवी जल तथा अग्नि की अपेक्षा सूक्ष्ततर है इसको शुद्ध बनाए रखने के लिए होम-यज्ञ से बढ़कर लाभकारी साधन और नहीं है -

हविष्मतीरिमा आपो हविष्माँ आ विवासति।
हविष्मान्देवो अध्वरों हविष्मा अस्तु सूर्य :॥[12]

यहाँ पर जलों तथा सूर्य के लिए हवि देने की बात कही गयी है। यज्ञीय तवि के द्वारा हो जल तथा वायु को शुद्ध किया जा सकता है। वही यज्ञीय छवि सूर्य को प्राप्त होती है जिससे शक्ति दायक वर्षा होती है। इसके लिए ही वेद में 'शन्न:' पर्जन्योऽभिवर्षतु' कहा गया है। आचार्य मनु भी इसी तथ्य का समर्थन करते हुए -

अग्नौ प्रास्ता हुतिः सम्यगादित्य मु पतिष्ठते।
आदित्यज्जायते वृष्टिर्वष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥[13]

अंर्थात् अग्नि में डाली गयी आहुति सूर्य को प्राप्त होती है, जिससे वृष्टि होती है, जैसी भी आहुति सूर्य को प्राप्त होगी उससे वैसे ही बादल बनेंगे तथा वैसी ही वृष्टि होगी। यज्ञ की हवि से भावित शुद्ध वायु से बादल भी शुद्ध बनेंगे तथा वर्षा भी शुद्ध होगी, उस वर्षा से

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषि-वनस्पति भी शुद्ध तथा जीवनदायक होंगे। शन्नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शंनः सिन्धवः शभु शन्त्वावः।[14]

गीता भी इसी तथ्य की पुष्टि करती है-

यज्ञात् भवति पर्जन्यः पर्जन्यादन्न संभवः[15]

इसके विपरीत उद्योगों तथा वाहनों के धूम से प्रदूषित वायु विषाक्त तत्त्वों से युक्त विषैले मेघों के निर्माण में ही सहायक हो सकती है। वर्तमान में होने वाली 'तेजाबी वर्षा' इस प्रदूषित वायु का ही दुष्परिणाम है। अमेरिका की एक पत्रिका 'नेशनल हार्टीकल्चर सोसाइटी' के सम्पादक डॉ० एन० मेक्केलिप्स ने स्पष्ट तौर पर स्वीकार किया है कि 'तेजाबी वर्ष से बचने का एकमात्र उपाय वैदिक यज्ञ है।[16]

ऋग्वेद- में यज्ञीय हवि द्वारा सिन्धु, ओषधि, वनस्पति, पृथिवी, द्यौ आदि सभी के मधुयुक्त होने की बात कही गयी है। माधुर्म का तात्पर्य 'मीठा' ही नहीं अपितु (Balanced) समता युक्त है। इस प्रकार वही वायु मधु कहलाती है जो न बहुत रूक्षहो, न दाहक हो, न अधिक शीतल हो, नहीं झंझावात के रूप में विनाशिनी हो।

समस्त प्राणी वायु मण्डल से प्राण वायु ग्रहण करते है। इसके प्रदूषित होने पर शुद्ध प्राण वायु का अभाव पुनश्च जीवन का संकट उत्पन्न होना। वैदिक ऋषि इस ओर सचेष्ट है तथा प्रार्थना करता है- हे भूमि माता! मैं तुझे जिस रूप में क्षति पहुँचाऊ, वह क्षति शीघ्र पूर्ण हो । यदि पुराने वृक्षों को काटा जाए तो उनके स्थान पर नये वृक्ष अवश्य लगा दिए जाएँ- यत्ते भूमें विखनानि क्षिप्रं तदपि रोहतु।[17]

ऋग्वेद में जलों के किनारे खड़े वृक्षों को काटने का भी निषेध किया गया है - यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेघसः।[18]

वैदिक मान्यतानुसार वायु प्रदूषण से मुक्ति का सर्वोत्तम साधन 'यज्ञ' है। यज्ञ की प्रक्रियानुसार अग्नि में घृत सामग्री व अन्य जो भी पदार्थ आहुति के रूप में डाले जाते है(वे सभी वायु मण्डल को शुद्ध करते है साथ ही, पृथ्वी तथा समस्त वातावरण की शुद्धि व पुष्टि करते हैं- आजुहोता हविषा मर्जयध्वम्।[19]

अग्नि में दी गई आहुति वायु मण्डल को रोगाणुओं से उसी प्रकार मुक्त करती है, जिस प्रकार नदी झागों को- इदम् हवि यतुिधानान् नदी फेन मिवावहत्।[20]

अन्यत्र उल्लेख है -

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।[21]

अर्थात् यज्ञ में प्रदान की गई आहुति द्वारा अज्ञात रोग तथा राजयक्ष्मा रोग से तुझे मुक्त करता हूँ।

यज्ञ की इसी महत्ता के फल स्वरूप वेदों में अनेकत्र यज्ञ को सृष्टि चक्र का केन्द्र मानते हुए इसे को पर्यावरण रक्षा का प्रबल हेतु सिद्ध किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ में घृत जल, चावल, समिधा, गुग्गुल, केशर, कस्तूरी, दुग्ध, गुड़, शर्करा, अगर-तगर-चन्दन आदि द्रव्य प्रयुक्त होते हैं। सामग्री में दुग्ध, घृत, मखाने, अखरोट आदि पुष्टि कारक पदार्थ इसी उद्देश्य से डाले जाते हैं कि ये पोषक तत्त्व केसर कस्तूरी, अगर-तगर-चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों के साथ मिलकर दूषित वायु को शुद्ध करते है। यज्ञीय अग्नि मे ही वह सामर्थ्य है कि वह यज्ञ स्थल के चारों ओर 800 वर्ग मी० क्षेत्र को शुद्ध कर सकती है।

यज्ञीय उपादानों में सर्व प्रमुख द्रव्य घृत है। जोकि विष नाशक है। देववाणी में घी को 'सर्पि' अर्थात् सर्पणशील द्धगतिशीलऋ कहा जाता है। सर्पि अर्थात् घृत की यही सर्पण शीलता है कि वह जल वायु में मिश्रित विष को तत्काल फाड़ देता हैं, गोघृत तथा गो दुग्ध में सौर ऊर्जा छिपी रहती है गो दुग्ध में प्राकृतिक रूप से सूर्य ऊर्जा का मिश्रण हो जाता है। जब गोघृत को चावलों के साथ मिश्रित करके यज्ञ किया जाता है तो इससे 'एसिटिलीन' नामक तत्त्व उत्पन्न होता है। यज्ञ में प्रयुक्त द्रव्यों की आहुति से वातावरण मार्जन-शोधन-भेदन क्रिया उत्पन्न होती है सभी प्रयुक्त द्रव्य सूक्ष्माति सूक्ष्त होकर उत्तरोत्तर ऊपर की ओर गति करते है। तथा यज्ञ समाप्त होने पर तापमान की न्यूनता के कारण निम्न गति भी करते हैं। इस प्रकार अनायास ही अप्रत्यक्षत: घर्षण क्रिया उत्पन्न होती है, तथा प्रदूषित वायु का नाश होने लगता है। यज्ञ के महत्व के सन्दर्भ में महर्षि दयानन्द ऋग्वेद भाष्य भूमिका में कहते है -

'जो केशर कस्तूरी आदि सुगन्धित घृत, दुग्ध आदि पुष्प, गुड़, शर्करा आदि मिष्ट, वृद्धि, बल तथा धैर्य वर्द्धक और रोग नाशक पदार्थ है, उनका होम करने से पवन और वर्षा जल की शुद्धि से पृथिवी के सब पदार्थो की जो अत्यन्त उत्तमता होती है, उसी से सब जीतों को परम सुख होता है।'

यज्ञ का वायु शोधन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। यज्ञ-धूम से वातावरण पवित्र हो जाता है। यहाँ मुण्डकोपनिषद् के ऋषि का कथनध्यातव्य है कि जब अग्नि भली भांति जलाई जा चुके और उसमें लौ उठने लगे, तब उसमें घी -सामग्री आदि की आहुतियाँ श्रद्धापूर्वक देनी चाहिए।-

यदा लेलायते ह्यर्चि: समिद्धे हव्य वाहने।
तदाज्य भागावन्तरेणाहुती: प्रतिपादयेत्।।[२२]

एक मन्त्र में स्पष्ट उल्लेख है कि गुग्गुल औषधि की गन्ध प्राप्त करने का सर्वोत्तम माध्यम यज्ञ से इतर कुछ हो ही नहीं सकता और इस सुगन्ध से राजयक्ष्मा आदि रोग पीडित नहीं करते -

न तं यक्ष्मा अरून्धते नैनं शपथे अश्नुते।
यं भेषजस्य गुग्गुलो: सुरभिर्गन्धो अश्नुते।।[२३]

ऋषियों ने न केवल भौतिक दैविक और आध्यात्मिक सम्बन्धों को पहचान कर देवों के लिए यज्ञ में आहुतियों का विधान किया था, अपितु उनसे मानव जीवन की सुख-शान्ति व सुरक्षा को भी ज्ञात कर लिया था। इसी कारण अपितु जीवन की सुख-शान्ति व सुरक्षा को

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी ज्ञात कर लिया था। इसी कारण आहुति के लिए समिधा हेतु श्रेष्ठ सुगन्धित वृक्षों के काष्ठों एवं औषधियो का चयन व प्रयोग किया जाता था इस प्रसंग में वायु शुद्धि के लिए पलाश व उदुम्बर का काष्ठ उपयोगी बताया गया।

औदुम्बराणि काष्ठानि प्रेङ्खस्य भवन्ति पलाशानि मिश्राणि वा।[24]

फ्रांस के वैज्ञानिक प्रो० हिल्बर्ट के अनुसार जलती हुई शक्कर के धुएँ में वायु शोधन की विलक्षण क्षमता है। उन्होंने अपने वैज्ञानिक निष्कर्षों में यह स्वीकार किया कि यज्ञ से क्षय आदि रोगों का नाश होता है।

शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि यज्ञ ही देवों का खाद्य है यज्ञ न होने से जल-वायु आदि पर देवशक्तियों का नियन्त्रण न रहने से अतिवृष्टि, अनावृष्टि, जल प्लावन आदि विपत्तियाँ प्राप्त होती है- यज्ञे नष्टे देव नाशः ततः सर्व प्रणश्यति।।[25] वर्तमान में मौसम का असंतुलित रूप यज्ञ के न करने का ही दुष्परिणाम है। क्योंकि सभी देव यज्ञ के माध्यम से ही अपनी हवि ग्रहण करते है। इसी लिए अग्नि को सभी देवों का मुख कहा गया है- अग्निर्वै देवानां मुखं।

ध्यात्तव्य है कि प्रकृति की समस्त प्राण रक्षक-प्राणदायिनी जीवन शक्तियाँ ही देव कहलाती है यज्ञ के नष्ट होने पर इन सभी देवों का नाश हो जाता है या इनमें क्षति उत्पन्न होती। न केवल जड़ देवों अपितु चेतन प्राणियों का पालन भी यज्ञ ही करता है - यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि भुनक्ति।[26] यज्ञे हि सर्वाणि भूतानि विनष्टानि[27] पं० वीर सेन जी वेदश्रमी का भी मानना है - 'यज्ञ के अदभुत प्रभाव से हृदय, वात, श्वास, उन्माद, लकवा, वाक् सामर्थ्यहीनता, रक्तचाप के रोगी, शारीरिक पीड़ा, गलित कुष्ठ, कम्प वात, कैंसर, क्षय, सन्तानहीनता, अशक्ति आदि अनेक रोगों का दूर होना अनुभव किया गया है।[28]

वस्तुतः यज्ञ यज्ञकुण्ड में घृत-सामग्री आदि डालने की बाह्य क्रिया या विधि मात्र नहीं अपितु एक जीवन शैली है, यह एक प्रकार का विज्ञान है। विज्ञानं यज्ञं तनुते। (तैति० उप०) यज्ञ की वैज्ञानिकता पर वर्तमान में पर्याप्त शोध व निष्कर्ष प्राप्त किए गये है। इलाहाबाद वि० वि० के० वैज्ञानिक डॉ० सत्य प्रकाश ने यज्ञ की सामग्री का विश्लेषण करके, अपनी पुस्तक 'अग्निहोत्र' में यह प्रमाणित किया कि यज्ञाहुति हेतु प्रयुक्त सामग्री के द्वारा फॉरमेल्डीहाइड गैस उत्पन्न होती है।, यह गैस बिना परिवर्तित हुए वायु मण्डल में फैल जाती है। कुछ अंश कार्बनडाई ऑक्साइड भी इसी गैस में परिवर्तित हो जाती है। उन्होंने यह भी लिखा कि उक्त गैस एक शक्तिशाली कीटाणु नाशक गेस है जिसकी खोज 1886 में ल्यू तथा फिशर नामक वैज्ञानिकों ने की थी। केम्बीयर तथा ब्रोचेट ने अनेक प्रयोगों से यह सिद्ध किया है कि इससे घर के अन्दर धूल के कीटाणु नष्ट हो जाते है। यहाँ पर यह कहना उचित होगा कि इस गैस का प्रभाव तभी होता है जब कि जल-वाष्प से इसका संयोग हो। इसी अभिप्राय से यज्ञ कुण्ड के चारों और की मेखलाओं में जल भरने का विधान होता है।

रोगों की उत्पत्ति का मूल कारण वायुप्रदूषण ही है। महर्षि दयानन्द का 'यज्ञ एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कार' विषयक प्रवचन इसका प्रबल उदाहरण है। वे लिखते हैं -

इन दिनों होम (यज्ञ) के न्यून होने से बारम्बार वायु बिगड़ रही है, सदा विलक्षण रोग उत्पन्न हो जाते है। होम-हवन से वायु शुद्ध होकर सुवृष्टि करती है। उससे शरीर निरोग और बुद्धि विशद होती हें, विद्या प्राप्त होती है। इसी प्रकार अन्यत्र ऋषिवर लिखते है- 'यज्ञ (अग्निहोत्र) से वायु वृष्टि, जल शुद्धि होकर वृष्टि द्वारा संसार को सुख प्राप्त होना अर्थात् शुद्ध वायु का श्वास, स्पर्श, खान पान से आरोग्य वृद्धि, बल, पराक्रम बढ़ाकर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का अनुष्ठान पूरा होना।[29]

वेद में इसी आशय से अयक्ष्यं च में अनामयच्च में यज्ञेन कल्पताम्।[30] कहा गया है। इस प्रकार उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है। कि वैदिक ऋषि को यह भलीभांति ज्ञात था कि वायु शोधन के अन्य उपायों के होते हुए भी वायु को शुद्ध व गुणकारी बनाने की जो अणु-भेदक क्षमता यज्ञाग्नि में है, वह अन्य किसी वस्तु में नहीं क्योंकि यज्ञ में होता की मन: स्थिति, मन्त्रोच्चार की सात्विक सार्थक ध्वनियाँ, हवि हेतु प्रयुक्त धृतादि- औषधि, सुगन्धित द्रव्यादि पर्यावरण की सर्वविधि शुद्धि करते है। यज्ञानुष्ठान से मनुष्य के शरीर और अन्त:करण की शुद्धि, पवित्रता, निरोगता, शरीरात्मबल की वृद्वि एवं पुष्टि तथा समाज में शान्तिसद्भाव सुख की अभिवृद्धि होती है। तथा अन्तर्बाह्य वायु मण्डल के विकास रहित ही जाने पर सभी तत्त्व सन्तुलित हो जाते हैं। अतएव यजुर्वेद के निम्नांकित मन्त्र में यज्ञ को सब प्रकार से उपयोगी एवं सामर्थ्य प्रदान करने वाला बताया गया है -

आयुर्यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा, प्राणो यज्ञेन कल्पतां स्वाहापानो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पतां स्वाहो दानो यज्ञेन स्वाहा समानोयज्ञेन कल्पतां स्वाहा। इत्यादि।[31]

उक्त मंत्र में प्राणापान व्यानोदासमान इन पे्च वायु को शुद्ध करने की कामना की गई है। तैत्तरीय आरण्यक में भी यज्ञ को पर्यावरण शुद्धि का श्रेष्ठ साधन स्वीकार किया गया है-

यज्ञ इति यज्ञेन हि देवा दिवं गता: यज्ञेनासुरानपानुदन्त, यज्ञेन द्विषन्तो मित्रा भवन्ति यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्यज्ञं परमं वदन्ति।[32]

वायु प्रदूषण की समस्या वर्तमान युग की देन है। कारण है मनुष्य की लालसा पूर्ण प्रवृत्ति। वायु-प्रदूषण तभी दूर हो सकता है। जब हम प्राकृतिक सम्पदा की रक्षा करें न कि उसका दोहन मात्र करते रहें। श्रीमद् गीता (3/16) के अनुसार- जड़ चेतन दोनों को हवि के द्वारा दान से तृप्त करना चाहिए, जो ऐसा नहीं करता वह चोर है।

अतएव हम सभी का कर्त्तव्य है कि वे दोक्त यज्ञ के महत्व को समझे तथा पाखण्ड युक्त जप-माला- छाया-तिलक की पूजा से ऊपर उठकर 'यज्ञ' द्वारा वास्तविक रूप में प्रकृति देवों को हवि द्वारा संतुष्ट करें जिससे शुद्ध वायु का प्रवाह हो तथा हम सभी प्राणी स्वस्थ जीवन व स्वस्थ विचारों को धारण कर सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाद-टिप्पणियाँ

1. अथर्व० 18/1/17
2. ऋग्वेद - 10/137/3
3. ऋग्वेद 10/186/1
4. ऋग् 10/186/3
5. यजु० - 7/7
6. अथर्व० 4/25/1-7
7. अथर्व० 4/25/3
8. ऋग् - 10/101/11
9. ऋग् 10/97/5
10. यजु० - 27/12
11. जागरण वार्षिकी, 2003
12. यजु० 6/23
13. मनु० 3/76
14. ऋग् 7/36/8
15. गीता 3/14
16. जागरण वार्षिकी - 2005
17. अथर्व० 12/1/35
18. ऋग् - 4/54/6
19. साम० 1/7/1
20. अथर्व० 1/8/2
21. अथर्व० 3/11/1
22. मुण्डकोपनिषद् 2/2
23. अथर्व० 19/38/1
24. ऐत० आरण्यक 5/1/3
25. वा० पुराण 60/5
26. शत० 9, 4, 1, 11
27. शत० 8, 7, 2, 21
28. विश्व स्वास्थ्य के लिए यज्ञ की उपयोगिता
29. सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थ समुल्लास
30. यजु० 18/6
31. यजु० 22/23
32. तैत्ति 10/79

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द के हिन्दी गद्य का शैलीगत विश्लेषण

डा0 रीना रानी
प्रवक्ता, बी०पी०एस०
महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कलाँ
सोनीपत, हरियाणा

भूमिका

लेखक अपनी रुचि तथा स्वभाव के अनुसार अपने भावों को एक विचित्र प्रकार से प्रकट किया करता है। कोई लेखक साधारण अर्थ के प्रतिपादन के लिए असाधरण शब्दों का प्रयोग करता हैं। तो अन्य लेखक विशिष्ट अर्थों को प्रकट करने के लिए साधारण शब्दों का। इसी विशिष्ट लिखने के ढंग को शैली कहते हैं। प्रत्येक लेखक की अपनी एक शैली होती है। इसीलिए जितने कवि हैं, उतनी ही रीतियाँ विशिष्ट हैं। जितने
लेखक हैं, उतनी शैलियाँ हैं।

गद्य काव्य के लिए दो वस्तुएँ आवश्यक है (1 वस्तु (2 उसकी अभिव्यक्ति का प्रकार या ढंग। वस्तु की अभिव्यक्ति के प्रकार या ढंग को 'शैली' कहते हैं। बाबू गुलाबराय के शब्दों में - ''वस्तु और शैली का पार्थक्य उतना ही असम्भव है, जितना कि 'म्याऊँ' की ध्वनि का बिल्ली से। साहित्य की उत्पत्ति भाव, विचार और कल्पना द्वारा होती हैं। यदि भाव, विचार और कल्पना हमारे मन में ही उत्पन्न होकर विलीन हो जायें तो संसार को उनसे कोई लाभ नहीं होगा। मनुष्य अपने विचार और कल्पनाओं को दूसरे पर प्रकट करना चाहता है, और दूसरों के भावों, विचारों और कल्पनाओं को स्वयं जानना चाहता है। यही विनिमय संसार के साहित्य तथा संपूर्ण कलाओं का मूल है। शैली ही इसे साकार रूप देती है।

शब्द, गुण, वाक्य, वृत्तियाँ आदि के संस्कृत तथा सम्यक् उपयोग द्वारा ही एक श्रेष्ठ और परिष्कृत शैली की उत्पत्ति होती है।शब्द शक्ति का उत्तम रूप वहां दृष्टिगोचर होगा, जहां लेखक उपयुक्त शब्दों का ग्रहण करने, उनके द्वारा सूक्ष्म-सूक्ष्म भावों को प्रदर्शित करने और थोड़े में बड़ी से बड़ी गम्भीर और भावपूर्ण बातें कहने में समर्थ होता है। शब्द स्वयं कुछ भी सामर्थ्य नहीं रखते। सार्थक होने पर भी शब्द जब तक वाक्यों में पिरोये नहीं जाते, तब तक न तो उनकी शक्ति प्रादुर्भूत होती है, न उनके गुण स्पष्ट होते है, और न वे किसी प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करने में ही समर्थ होते हैं। वाक्यों की रचना में शब्दों के संगठन तथा भाषा की प्रौढ़ता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। साहित्य शास्त्रों में शैली के अन्तर्गत शब्द शक्ति की विस्तृत विवेचना हुई है। शैली की परिभाषा के विषय में अनेक विद्वानों ने अनेक मत प्रकट किये हैं। उन्होंने एक ही बात को कई प्रकार से कहा है, और जब उनके मतों की परस्पर तुलना करते हैं तो अन्तिम निष्कर्ष निकलता है कि शैली अभिव्यक्ति का एक प्रकार है। बाबू गुलाबराय का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथन है कि - ''काव्य में शैली का वही स्थान है जो मनुष्य में उसकी आकृति और वेशभूषा का। यद्यपि यह हमेशा ठीक नहीं कि जहां सुन्दर आकृति हो वहां सुन्दर गुण भी होते हों, तथापि आकृति और वेशभूषा गुणों के मूल्यांकन मे बहुत कुछ प्रभावित करते हैं। हिन्दी गद्य लेखकों ने विभिन्न प्रकार की शैलियां अपनाई हैं। प्रत्येक लेखक अपनी रुचि तथा विषय के अनुरूप शैली स्वीकृत करता है। शैलियों के अनेक रूप उपलब्ध होते हैं। 1. यथा धारा शैली 2. तरंग शैली 3. विक्षेप शैली 4. प्रलाप शैली 5. गम्भीर तर्कपूर्ण शैली 6. आक्रोश पूर्ण शैली 7. व्यंग्यात्मक शैली 8. दृष्टान्त शैली इत्यादि।

महर्षि की गद्य शैली :-

महर्षि दयानन्द ने अपनी गद्य ग्रन्थों में विविध प्रकार के विषयों का विवेचन किया है और इनके लिए विषयों के अनुरूप अनेक प्रकार की शैलियों का उपयोग किया है। महर्षि कहीं तो विभिन्न दार्शनिक और आध्यात्मिक समस्याओं का विवेचन करते हैं, कहीं विभिन्न धर्मों के मन्तव्यों की समीक्षा प्रस्तुत करते हैं, और कहीं अन्य धर्मों के सिद्वान्तों की आलोचना करते हैं। इन सब विषयों का प्रतिपादन उन्होंने बड़ी ओजस्वी एवं प्रभावशाली भाषा में किया है, और अनेक प्रकार की शैलियों का व्यवहार किया है। भाषा की दृष्टि से उनके गद्य में शैलियों के निम्नलिखित रूप दृष्टिगोचर होते हैं-

1. गंभीर तर्कपूर्ण 2. व्यंग्यात्मक शैल 3. प्रश्नोत्तर शैली 4. दृष्टांत शैली।

तर्कपूर्ण शैली:- इस शैली का उपयोग दार्शनिक प्रश्नों के विवेचन के लिए हुआ है। इसमें सुबोध भाषा में पाठक को अपने मन्तव्य के युक्तियुक्त होने का विश्वास तर्कपूर्ण शैली में कराया गया है। महर्षि दयानन्द अवतार वाद के घोर विरोधी थे, उन्होंने इसका खण्डन करते हुए अपने मन्तव्य की पुष्टि में जहां वेदों के अनेक प्रमाण दिए हैं, वहां इस लोक प्रचलित धारणा का नाना प्रकार की युक्तियों से खण्डन करना भी आवश्यक समझा है। उन्होंने इस प्रसंग में विरोधी पक्ष की ओर से पहले यह प्रश्न किया कि यदि ईश्वर अवतार नहीं लेगा तो रावण, कंस आदि दुष्टों का विनाश कैसे होगा? इस प्रश्न को उठाते हुए महर्षि जी ने इसका उत्तर अपनी तर्कपूर्ण शैली में इस प्रकार दिया है- ''जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किए बिना जगत की उत्पत्ति, स्थिति प्रलय करता है, उसके सामने कंस, रावण आदि एक कीड़े के समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस रावण आदि के शरीरों में परिपूर्ण हो रहा है। जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला इस अनन्त गुण, कर्म, स्वभावयुक्त परमात्मा को एक क्षुद्र जीव को मारने के लिए जन्म मरणयुक्त कहने वाले को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है। एक स्थान पर विरुद्व पक्ष की ओर से प्रश्न उठाते हैं कि - ''जब परमेश्वर व्यापक है, तो मूर्ति में भी है। पुन: चाहे किसी पदार्थ में भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं? देखो-न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये।

भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमेश्वर देव न काष्ठ, न पाषाण, न मृत्तिका से बनायें पदार्थों में है। किन्तु परमेश्वर तो भाव में विद्यमान है। जहाँ भाव करें, वहाँ ही परमेश्वर सिद्व होता है।''

इसका उत्तर बड़ी सुबोध भाषा में तथा गम्भीर तर्कपूर्ण शैली में देते हैं - ''जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है, तो किसी एक वस्तु परमेश्वर की भवना करना अन्यत्र करना, यह ऐसी बात है कि जैसी चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ाके एक छोटी सी झोपड़ी का स्वामी मानना। देखो यह कितना बड़ा अपमान है? वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो।

महर्षि दयानन्द ने विरोधी पक्ष के खण्डन में तर्क एवं युक्तियों का पर्याप्त उपयोग किया ताकि पाठक को उनके मन्तव्य को युक्ति सम्मत होने का पूर्ण विश्वास हो जाये। दयानन्द के ग्रन्थों की इस शैली का पाठकों पर बड़ा गम्भीर प्रभाव पड़ा। सहस्रों लोग इन ग्रन्थों को पढ़कर अन्धविश्वास से मुक्त हो गये।

व्यंग्यात्मक शैली:-

इस शैली का प्रयोग महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में बड़ी सफलतापूर्वक किया है विशेष रूप से कुरीतियों के खण्डन करते हुए भी इस शैली का विशेष आश्रय लिया है। उदाहरणार्थ स्वामी जी गणित ज्योतिष में तो विश्वास करते थे किन्तु फलित ज्योतिष को मिथ्या समझते थे। सूर्य आदि ग्रहों के प्रकोप को शान्त करने के लिए पूजा, दान, व्रत शान्तिपाठ आदि उपायों को अन्धविश्वास मानते थे। ज्योतिषियों की मन्त्र शक्ति पर व्यंग्य करते हुए वे पूछते हैं कि ''अगर तुम्हारे मन्त्रों में शक्ति है तो कुबेर क्यों नहीं बन जाते और क्यों गरीबों को लूटते हो? तपोवन नामक पौराणिक तीर्थ का खण्डन करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं- 'तपोवन' जब होगा तब होगा। अब तो भिक्षुक वन है'' यहाँ यह कटु व्यंग्य किया गया है, जो वहां पाये जाने वाले भिखारियों की बहुसंख्या के आधार पर किया गया है। 'हरद्वार' के विषय में लिखते हैं- 'हरद्वार' उत्तर से पहाड़ों में जाने का एक मार्ग का आरम्भ है। हर की पैड़ी एक स्थान के लिए कुण्ड की सीढ़ियों को बनाया है। सच पूछो तो हाड़ पैड़ी है। क्योंकि देश देशान्तर के मृतकों के हाड़, उसमें पड़ा करते हैं। पाप कभी नहीं छूट सकता बिना भोगे, अथवा नहीं कटते।यहाँ महर्षि दयानन्द ने पुजारियों पर बड़ा कटु व्यंग्य किया है वे पुजारी को पुजारि अर्थात् 'पूजा+अरि' पूजा का शत्रु कहा करते थे। सत्यार्थप्रकाश के 12वें समु. में जैनमत की असम्भव बातों पर महर्षि दयानन्द व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि - ''अब देखो भाई! इस भूगोल में 132 सूर्य और 132 चन्द्रमा जैनियों के घर पर तपते होंगे? भला जो तपते होंगे, तो वे जीते कैसे हैं? और रात्रि में भी शीत के मारे जैनी लोग जकडघ जाते होंगे?' ऐसे प्रसंगों में महर्षि दयानन्द ने अपनी विनोद वृत्ति का अच्छा प्रदर्शन किया है। इसी लिए वे जन्मपत्र को शोक पत्र की संज्ञा देते हैं इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नोत्तर शैली :-

यह शैली महर्षि दयानन्द को अतीव प्रिय थी। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश, व्यवहार भानु इत्यादि ग्रन्थों में इसी शैली का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। इसमें पूर्व पक्ष को प्रश्न रूप में उपस्थित किया जाता है, और उसके उत्तर पक्ष के रूप में अपने मन्तव्य को प्रस्तुत किया जाता है। भारतीय साहित्य में यह शैली चिरकाल से चली आ रही थी। ;षिवर शास्त्रार्थ भी प्रश्नोत्तर शैली में किया करते थे। इससे विषय को समझने में बड़ी सुगमता हो जाती है। अत: स्वामी जी ने इस शैली का बहुत उपयोग किया है। यहाँ प्रश्नोत्तर शैली के कतिपय उ)रण प्रस्तुत किये जाते हैं। ईश्वर के नामों की विवेचना में भी इस शैली का उपयोग किया है यथा -

प्रश्न- होम से क्या उपकार होता है?

उत्तर- सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।

प्रश्न- चन्दनादि घिस के किसी को लगावे वा घृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो अग्नि में डालके व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानों का कान नहीं।

उत्तर- जो तुम पदार्थ विद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते। क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। .....

प्रश्न- जब ऐसा ही है तो केशर कस्तूरी, सुगन्धित पुष्प और अतर आदि के घर में रखने से सुगन्धित वायु होकर सुखकारक होगा।

उत्तर- उस सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ वायु को बाहर निकालकर शु) वायु को प्रवेश कर सके। क्योंकि उसमें भेदक शक्ति नहीं है। और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न और हल्का करके बाहर निकालकर पवित्र वायु को प्रवेश करा देता है।

प्रश्न- तो मन्त्र पढ़के होम करने का क्या प्रयोजन है?

उत्तर- मन्त्रों में व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जायें, और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें। वेद पुस्तकों का पठन-पाठन और रक्षा भी होवे।

प्रश्न- क्या इस होम करने के बिना पाप होता है?

उत्तर- हाँ, क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दु:ख प्राप्त कराता है, उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है।

महर्षि दयानन्द पाखण्ड और अन्धविश्वास के घोर विरोधी थे। उन्होनें अपने ग्रन्थों में सर्वत्र पाखण्डों का खण्डन किया है। सत्यार्थप्रकाश के अन्तिम चार समुल्लासों में उन्होंने क्रमश: पौराणिक मत, बौद्ध जैन मत, ईसाई मत तथा कुरानी मत का खण्डन किया है। खण्डन-मण्डन में उन्होंने प्रश्नोत्तर शैली का पर्याप्त उपयोग किया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टान्त शैली:-

उत्तम लेखकों और वक्ताओं की भाँति अपने कथन को पुष्ट करने के लिए स्वामी जी ने सर्वत्र सुन्दर उदाहरण तथा दृष्टान्त दिए हैं। व्यवहार भानु और सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में ऐसे दृष्टान्त प्रचुर संख्या में मिलते है। व्यवहार भानु नामक लघु पुस्तक इस प्रकार के दृष्टान्तों से भरी हुई है।स्वामी जी ने अपने मन्तव्यों की पुष्टि के लिए दृष्टान्तों का बड़े प्रभावशाली ढंग से उपयोग किया है। महामूर्ख के लक्षण में भी एक दृष्टान्त महामूर्ख व्यक्ति का दिया है। जो इस प्रकार है- एक प्रियदास का चेला भगवान दास अपने गुरु से बारह वर्ष पर्यन्त पढ़ा। एक दिन उसने पूछा कि महाराज। मुझको संस्कृत बोलना नहीं आया। गुरु बोले सुन बे! पढ़ने से विद्या नहीं आती किन्तु गुरुकृपा से आ जाती है। जब गुरु सेवा से प्रसन्न होता है तब जैसा कुंजियों से ताला खोलकर मकान के सब पदार्थ झट देखने में आते हैं, वे ऐसी युक्ति बतला देते हैं कि हृदय के कपाट खुल कर सब पदार्थ विद्या तत्क्षण आ जाती है। सुन! संस्कृत बोलने की तो सहज युक्ति है।

भगवान दास महाराज जी! वह क्या है? गुरु संसार में जितने शब्द संस्कृत वा देशभाषा में हो उन पर एक एक बिन्दु धरने से सब शुद्ध संस्कृत हो जाते हैं। अच्छा तो महाराज जी लोटा, जल, दाल शाक आदि शब्दों पर बिन्दु धरके कैसे संस्कृत हो जाते हैं? देखो - लोटां। जंलं। रोंटीं। दांलं। शांकं। चेला बोला-वाह वाह गुरु के बिना क्षणमात्र में पूरी विद्या कौन बतला सकता है?

महर्षि दयानन्द सत्य के बड़े पक्षपाती थे। प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा तो 'सत्यार्थप्रकाश'। आर्यसमाज के नियम बनाये तो पहिले चार नियम भी सत्य से सम्बन्धित बनाये। उनका सम्पूर्ण जीवन सत्य के प्रचार-प्रसार में व्यतीत हुआ। समस्त ग्रन्थों में सत्य को ग्रहण करने के लिए ही प्रबल आग्रह रहा। इस प्रकार अनेक दृष्टान्त महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। दृष्टान्त शैली में लिखा गया गद्य अतीव रोचक एवं प्रभावोत्पादक हो जाता है। जो ;षि ग्रन्थों में यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं।

अन्य शैलियाँ:-

उपर्युक्त गद्य शैलियों के अतिरिक्त पूर्ण ऋषि के हिन्दी गद्य में अन्य शैलियों के दर्शन उपलब्ध होते हैं। जैसे :-आक्रोश शैली, संवादात्मक शैली इत्यादि।

आक्रोशपूर्ण शैली :-

इस शैली के अन्तर्गत वर्तमान कुरीतियों का खण्डन महर्षि बड़े रोषपूर्ण शब्दों में करते हैं। इससे उनका वर्तमान स्थिति के प्रति क्षोभ प्रकट होता है। इसका सुन्दर उदाहरण मूर्तिपूजा के खण्डन का प्रसंग है। महर्षि दयानन्द ने विदेशी आक्रान्त महमूद गजनवी द्वारा सोमनाथ के मन्दिर की लूट पर गहरा दु:ख प्रकट करते हुये लिखा है-

"जब मूर्ति तोड़ी तब सुनते हैं कि 18 करोड़ के रत्न निकले। जब पुजारी और पोपों पर कोड़ा पड़े तब रोने लगे। कहा कि कोश बतलाओ। मार के मारे झट बतला दिया। जब सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कोष लूटमार कूट कर पोप और उसके चेलों को 'गुलाम' बिगारी बना, पिसना पिसवाया, घास खुदवाया, मल-मूत्रादि उठवाया और चना खाने को दिया। हाय! क्यों पत्थर की पूजा कर सत्यानाश को प्राप्त हुए! क्यों परमेश्वर की भक्ति ना की जो म्लेच्छों के दाँत तोड़ डालते। और अपनी विजय करते। देखो, जितनी मूर्तियां पूजी हैं, उतनी शूरवीरों की पूजा करते, तो भी कितनी रक्षा होती। पुजारियों ने इन पाषाणों की इतनी भक्ति की थी, परन्तु मूर्ति एक भी उन शत्रुओं के सिर पर उड़ के न लगी। जो किसी एक शूरवीर पुरुष की, मूर्ति सदृश सेवा करते तो वह अपने सेवकों को यथाशक्ति बचाता और उन शत्रुओं को मार भगाता।

इस अवतरण से यह स्पष्ट है कि स्वामी जी सोमनाथ मन्दिर का कोष विदेशियों द्वारा लूटने और पुजारियों पर किये गये अत्याचारों से बड़े खिन्न थे और इस दुर्दशा का मूल कारण मूर्तिपूजा समझते थे। और देशवासियों को इस बात का उद्‌बोधन बड़े स्पष्ट शब्दों में दिया है, कि शूरवीरता ही देश की रक्षा करने में समर्थ हो सकती है। मूर्ति की शक्ति में अन्धविश्वास रखने से सर्वनाश के अतिरिक्त कोई अन्य परिणाम नहीं हो सकता।

संवादात्मक शैली :-

महर्षि दयानन्द ने विषय के प्रतिपादन में इस शैली का भी उपयोग किया है। इस शैली का विशेष उपयोग ऋषि ने शंकर वेदान्त के खण्डन में किया है। वहाँ नवीन और सि)ान्ती का संवाद दिया है। जिसमें नवीन शंकर मत को उपस्थित करता है।

निष्कर्ष :-

महर्षि ने अपने गद्य साहित्य को अनुपम एवं अद्‌भुत शैलियों से सजाया है। जैसे - तर्कपूर्ण शैली, प्रश्नोत्तर शैली, व्याग्त्यांत्मक शैली, दृष्टान्त शैली प्रमुख है। इनके अतिरिक्त उनकी आक्रोश शैली तथा संवादात्मक शैलियां भी उपलब्ध होती है।

सन्दर्भ

1. सत्यार्थ प्रकाश, महर्षि दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली-6
2. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, महर्षि दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली-6
3. संस्कार विधि, महर्षि दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली-6
4 संस्कृतवाक्य प्रबोध सम्पादक युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा
5 दयानन्दीय लघु ग्रन्थ-संग्रह, सम्पादक युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरियाणा
6. खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास, ब्रजरत्नदास
7. हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन, डॉ लक्ष्मीनारायण गुप्त, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय नृत्य परम्परा : एक दृष्टि

डॉ. अशोक कुमार शर्मा,
असिसटैन्ट प्रोफेसर,
संगीत एवं नृत्य विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

ऐसा अनुमान है मानव भाषा प्रयोग से पहले संकेतों की सहायता से अपने मनोभावों का प्रकटीकरण करता रहा होगा। यही संकेत विकसित होकर नृत्य मुद्राओं में परिवर्तित हो गए। मानसिक विकास के साथ ही मानव द्वारा मुद्राओं का प्रयोग लय ताल में करने से भाव का निर्माण हुआ होगा जो कला का प्राण है। संगीत कला, काव्य कला, चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला को ललित कलाओं की श्रेणी मे रखा गया है। नृत्य कला, संगीतकला का ही अंग है। कलाएँ अपनी शक्ति से हृदय में निहित भावों को साकार रुप देकर समाज में प्रवाहित करती है तथा अपने लक्ष्यों को सम्पूर्णता प्रदान करती है। प्राचीन साहित्य में नृत्य को ईश्वर प्राप्ति का प्रबलतम योनृत्यति प्रच्छटात्मा भार्वरत्यंतभक्ति ।

सर्निर्दहति पापानि जन्मांतर शर्तरपि॥

अर्थात जो प्रसन्नचित होकर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक भावों सहित नृत्य करते हैं, वे जन्मजन्मांतरों के पापों से मुक्त हो जाते हैं।

देवराधनं कूर्यास्तु नृत्येन धर्मवित्।
सः सर्व कामनाप्नोति मोक्षोपायं च विदन्ति॥[1]

पौराणिक ग्रन्थों में देवी-देवताओं के स्वयं नृत्य निपुण होने के उल्लेख नृत्य कला के आध्यात्मिक आधार को पुश्ट करते हैं।

सृष्टि की रचना, उसकी पालना तथा विनाश में भी नृत्य की गति निहित है। भगवान शिव का नृत्य इसका प्रमाण है। नृत्य विजय के उल्लास और पराजय के दु:ख दोनों को प्रकट करने की सामर्थ्य रखता है। कालियामर्दन के पश्चात् श्रीकृष्ण का नृत्य विजय के उत्साह को प्रकट करता है एवं कृष्ण का ग्वालिनों के साथ मिलकर किया नृत्य मानवीय आत्मा का दर्पण है।[2]

भगवान शिव को 'नटराज' कहा जाता है जिसका अर्थ है नर्तको का स्वामी या अभिनेताओं का राजा। जिनकी आंगिक गति संसार है जिनकी वाणी समस्त भाशाओं का निश्कर्श है, चन्द्र और तारागण जिनके आभूषण है। मैं ऐसे सात्विक रुप वाले शिव को नमस्कार करता हूँ। इन पंक्तियों में संसार में नृत्य की घनिष्टता एवं संसार में उसका महत्व स्पष्ट हो जाता है।

साहित्य में शिव की तुलना अभिनेता से की गई है, जो भाव, भंगिमाओं, मुद्राओं एवं ध्वनि से परिपूर्ण है। जो अखिल ब्रह्माण्ड को साथ लेकर चलते हैं और जिनका नृत्य समस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि की अभिव्यक्ति है। भगवान शिव का नृत्य पांच क्रियाओं का संचार करता है। 1 सृष्टि- रचना करना 2. स्थिति- पालन पोशण 3. त्रिभाव - भ्रम या मोह 4. संहार - विनाश 5. अनुग्रह - मोक्ष या मानसिक सौन्दर्य 3।

शिव के नृत्य का मुख्य उदेश्य संसार की क्रियाओं का प्रदर्शन है। नृत्य की संवाद शक्ति के सन्दर्भ में यह तथ्य ग्रहण करने योग्य है जिसमें शिव-नृत्य की तुलना सृश्टि के आरम्भिक कार्य से लेकर अंतिम कार्य तक से की है। सृष्टि रचना का कार्य कम्पन्न से आरम्भ होता है। संरक्षण आशा रुपी हाथ से प्रदर्शित होता है। अग्नि से विनाश की क्रिया बढ़ती है, पांव का आगे बढ़ाना पाप से मुक्ति अर्थात् मुक्ति को दर्शाता है।[4] 'ताण्डव' भगवान शिव का प्रसिद्ध नृत्य है इसमें समस्त संसार ही उनका नृत्य स्थल होता है। नृत्य में संवाद शक्ति का आधार इसमें प्रयुक्त होने वाले लययुक्त अंग संचालन, मुद्रा, भावभंगिमाएं होते है। संवाद की इस क्रिया में सबसे पहले नृत्य की उत्पति को जानना होगा।

'नृत्य' शब्द 'नृत' धातु से बना है जिसका अर्थ है गात्र विक्षेप।[5] पतंजलि ने 'नृ' धातु से 'नृत्य' शब्द की उत्पति मानी है और 'नृत' का अर्थ शरीर के विभिन्न अवयवों को हिलाने डुलाने की क्रिया कहा है। संस्कृत में रुप बताते समय 'नृ' में 'अर्' धातु की संधि हो जाने से 'नाट्य' शब्द की रचना होती है।[6] अभिनय दर्पण में कहा है :- ''नाट्यं तन्नाटकं चैव पूज्यं पूर्वकथायुम्'' नाट्य वह कला है जो उत्तम तथा सुन्दर, पूर्व कथाओं पर आधारित हो। दूसरे शब्दों में किसी अर्थ को अभिनय द्वारा प्रकट करके जो रस उत्पन्न किया जाता है उसे 'नाट्य' कहा जाता है।[7] एक अन्य परिभाशा के अनुसार ''नृत्य एवं नाट्य दोनों ही एक दूसरे के पूरक है। 'ताल' और 'लय' के साथ हाथ-पांवों के संचालन को नृत की संज्ञा दी जाती है।8 'नाट्यशास्त्र' में नृत व नृत्य को इस श्लोक द्वारा इंगित किया गया है -

विनोदकरणं चैव नृतयेतत् प्रर्कीतितम्।
अंतश्चैव प्रतिक्षेयाः भूतसडै.: प्रकीर्तिताः ॥
गीतप्रयोगमाश्रित्य नृयमेतत् पुनृत्यताम्।
प्रायेण ताण्डवविविधिर्देवस्तुत्याश्रयो भवेत्॥

(नाट्यशास्त्र, अ.4 श्लोक 263, 265, पृ.48)

'नृत्य' कला अति प्राचीन कला है। इसका इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव जाति का एवं इस तथ्य में कोई सन्देह नही मानव के आदिम रुप से लेकर वर्तमान समय तक नृत्य किसी न किसी रुप में मानव जीवन में सम्मिलित है । जहां जीवन की उमंग है, वहीं नृत्य है। अत: हम कह सकते है मानव जाति के साथ-साथ नृत्य कला का भी विकास हुआ। नृत्य की उत्पति का इतिहास पौराणिक ग्रन्थों में निहित है । पुराणों के अनुसार नाट्य को पांचवा वेद माना है तथा इसके रचयिता स्वयं बह्मा जी ने ऋग्वेद से 'शब्द', सामवेद से 'संगीत', यजुर्वेद से 'मुद्रा' और अर्थवेद से 'रस' ग्रहण कर एक पंचम वेद 'नाट्य वेद' की प्रेरणा 'भरतमुनि'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को दी।9 गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों का अन्तर्भाव नाट्य में होता है और सभी का प्रयोजन मानव चित-वृतियों को आनन्द की ओर ले जाना है। नाट्यशास्त्र में महर्शि भरत ने लिखा है-

''सर्वोपदेश जननं नाट्यं लोके भविश्यति।
दुखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।।[१०]

अर्थात् नाट्य सबको उपदेश देता है और इसके द्वारा शोक, श्रम से उत्पन्न कलांति व दु:ख दूर होते है तथा तपस्वियों को भी शान्ति मिलती है। नाट्य में गीत वाद्य व नृत्य को समन्वित मानते हुए नृत्य के दो मूल प्रकार ताण्डव व लास्य कहे गए है।

ताण्डव नृत्य :-

जिस नृत्य में वीर रस का प्रदर्शन अधिक किया जाए अर्थात जिसमें उछल कूद अधिक हो उसे 'ताण्ड़व' कहते है। यह नृत्य वीरत्व, क्रोध, रौद्र रस आदि की भावनाओं को प्रदर्शित करने के लिए उपयुक्त होता है। इसीलिए इसे पुरुशोचित नृत्य माना गया है।

लास्य नृत्य :-

जिस नृत्य के आधार में श्रृंगार रस हो अर्थात् कोमलता अधिक हो उसे लास्य कहते है। यह नृत्य प्रेम, करुणा, दया आदि की भावनाओं को प्रदर्शित करने के लिए अधिक उपयुक्त रहता है। ताण्डव के सात उपभेद-संहार, त्रिपुर, कालिका, सन्धया, गौरी, उमा और आनन्द है। इसी प्रकार लास्य के विशम, विकट और लघु ये तीन उपभेद माने गए है।11

सामान्यत: नृत्य के चार वर्ग माने जा सकते है जो निम्नवत् है:-

1. पौराणिक अथवा प्राचीन धार्मिक नृत्य :-

इसके अन्तर्गत प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों के कथानकों पर आधारित नृत्य, प्राचीन शिलालेखों, मूर्तियों एवं चित्रों में अंकित नृत्य, प्राचीन ताण्डव नृत्य, लास्य, ब्राह्मण नृत्य, बौ) नृत्य, शास्त्रोक्त नृत्य तथा नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि के 'भरत नृत्य' आदि की गणना की जाती है।

2. साहित्यिक अथवा काव्य नृत्य:-

इस वर्ग में भारतीय साहित्य के अनुसार स्थाई भावों, अनुभावों, व्याभिचारी अथवा संचारी भावों से रसों की उत्पति वाले नृत्यों की गणना की जाती है। कथकों के सांकेतिक भाव भी इसी के अन्तर्गत आते है।

3. संस्कृत नृत्य:-

साहित्यिक पद्य के आधार पर की गई नृत्य रचना को 'संस्कृत नृत्य' कहा जाता है इस प्रकार के नृत्यों का प्रचलन प्राचीन काल में था और आज भी यह पुर्नजीवन की ओर अग्रसर है। कत्थक नृत्य की रचना 'संस्कृत नृत्य' के आधार पर ही मानी गई है।

4. देशी अथवा क्षेत्रीय नृत्य:-

इस वर्ग में विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित नृत्यों की गणना की जाती है जैसे मणिपुरी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथकली, टैगोर नृत्य, गरबा नृत्य, देवदासी, बंगाली, पंजाबी, हरियाणवी, राजस्थानी नृत्य आदि, यूरोपियन, जावा, बर्मा तथा अन्य देशों के नृत्य तथा सभी लोकनृत्य इसी श्रेणी में आते हैं।

भारत में नृत्य परमरा वैदिक काल के पहले से पाई जाती है। माहनजोदड़ो की खुदाई से मिली दो नर्तकियों की कांसे की और एक नर्तक की पत्थर की भग्न मूर्तियां इस बात का प्रमाण है। नर्तकों की मूर्तियां चूड़ियों आदि आभूशणों से युक्त हैं। नर्तक की भग्न मूर्ति के विशय में विशेशज्ञों का अनुमान है कि यह नटराज शिव का रुप है। इन सबसे यह सि) होता है कि वैदिक काल के पूर्व काल में नृत्य संगीत उन्नत अवस्था में था।12 वैदिक युग में नृत्य आध्यात्मिक भावनाओं की एवं जनता के मनोरंजन का माध्यम था। नृत्य का प्रयोग पुरुशों एवं स्त्रियों दोनों द्वारा किया जाता था। तात्कालिक यज्ञों के आयोजनों पर स्त्रियां मस्तक पर कलश रखकर वृताकार नृत्य करती थी।

वैदिक काल के समान ही रामायण काल में भी नृत्य का विकास हुआ। नृत्य के माध्यम से देवी देवताओं की स्नुति की जाती थी। भक्ति, पूजन, वन्दना और अर्चन भिन्न-भिन्न नृत्य शैलियां प्रचलित थी। लोग अपने आराध्य क़े प्रति श्र)ा व्यक्त करने हेतु नृत्य-प्रयोग करते थे। इस काल में उत्सवों, पर्वो व आनन्द के अवसरों पर नृत्य किया जाता था। अयोध्या आदि सुसंस्कृत नगरों में नृत्य गान आदि का प्रचार था। यहां तक लंकानगरी में भी नृत्यादि का प्रचलन था। रावण सीता जी को मनाने के लिए नृत्यगान आदि का प्रलोभन देता है।13

''महार्हाणि च पानानि शयनान्यासनानि च।
गीतं नृत्यं च वाद्यं च लभ मां प्राप्य मैथिली।।'

(बा.रा. सुन्दरकाण्ड सर्ग श्लोक 20)

इसके अतिरिक्त जनसाधारण में भी हृदयगत हर्श आदि भावों के प्रकटीकरण हेतु नृत्य प्रयोग मिलता है यथा -

''गायन्तो नृत्यमानाश्च वादयन्त्स्तु राघव।
आमोदं परमं जग्मुर्वराभरणभूशिता।।''

(बाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 32, 13)

महाभारत काल में नृत्य कला के क्षेत्र में साकारात्मक परिवर्तन हुए। इस युग के प्रवर्तक थे नटवर श्रीकृश्ण। उन्ही से 'नटवरी नृत्य' की नवीन शैली का जन्म हुआ । नवीन रसों का नृत्य में प्रादुर्भाव हुआ और नृत्य कला समाज का एक अंग बनकर जनमानस के हृदय में पनपी। इस युग में गोप, ग्वाल, राधिका एवं उसकी सखियां नृत्यकला के प्रवर्तक हुए। इसी काल में रास लीला, बसन्त लीला, होली नृत्य आदि का प्रचलन हुआ। पर्वो, त्यौंहारों एवं मांगलिक अवसरों पर नृत्य किया जाता था। इस काल में संगीत के अन्य अंगों के समान ही नृत्य का प्रचलन था। 'ततो वादित्रनृताभ्याम्' द्धआदि पर्व 200, 99ऋ 'वादित्राणित्रगीतानाम् - द्धशान्ति पर्व, 297, 28ऋ 'नृत्यवादित्रगीतानी' आश्वमेधिक पर्व 40,13ऋ इत्यादि वाक्य इस बात के

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण है कि इस काल में लोग गीत, वाद्य के साथ नृत्य से परिचित थे और इसके साथ ही समाज में संगीत का स्थान आदरणीय था। संगीत निपुणता सुशिक्षित और सुसंस्कृत व्यक्ति के लक्षण समझे जाते थे। इनके सन्दर्भ में विराट पर्व में उल्लेख मिलता है -

'गायामि नृत्याम्यच वादयामि।
भद्रो *स्मि नृत्ये कुशलोअस्मि गीते।।
त्वमुन्तरायै प्रदिशस्च यां स्वयं।
भवामि देव्या नरदेवं नर्तकः।।[14]

विराटपर्व अ.11, श्लोक.8 (पूना संस्करण, नीलकंठी टीका सहित)

यह अर्जुन के संगीत निपुण होने का प्रमाण है। वैदिक काल के समान इस समय भी यज्ञ के समय नृत्याचरण होता था। सभा पर्व में वर्णन है -

'तेशु ते न्यवसन्राजन्ब्राहमाणा : नृत्यसत्कृताः।
कथयन्तः कथा बहीः पश्चन्तो नटनर्तकान्।।[15]

(सभा पर्व ३३, ४९, नी.टी. संसकरण)

इन सब उद्धरणों से सिद्ध होता है कि सम्य समाज में नृत्य जीवन का अभिन्न अंग था। इसके पश्चात् बौद्ध एवं जैन काल में भी नृत्य कला समाज के बीच रहकर अपनी भूमिका का निर्वाह करती रहीं नृत्य कला विभिन्न कालों, समाज व समाज की गतिविधियों को साथ लेकर अथवा उनके साथ मिलकर लोगों से जुडी रही तथा उनको अपने प्रभाव में लेकर अपने साथ जोड़े रखा। मुगलकाल में नृत्यकला के अभिव्यक्ति के विशय में अन्तर आया। इससे पूर्व जिस नृत्य के माध्यम से मुख्यतः भगवान के प्रति श्रद्धा प्रकट की जाती थी और पारब्रह्म शक्ति को पूजा जाता था, मुग़लकाल में ईश्वरोपासना का छोड़कर नरोपासना को माध्यम बनाया। संगीतज्ञ नर्तक, नर्तकियां पराधीन होकर मनोरंजन और विलासित अभिव्यक्ति की ओर उन्मुख हुए। इस प्रकार नृत्य की वैशयिक गुणवता में कमी आई।

"अंग्रेजी शासन काल में नृत्य प्रेमियों ने नृत्य कला को समाज में फिर से उचित ढंग से प्रचारित करना आरम्भ किया और नृत्यकला का ईश्वर उपासना के माध्यम के रुप में पुनरुत्थान होने लगा। लोगों ने इसकी अभिव्यक्ति की शक्ति की पहचाना और दैनिक जीवन के क्रियाकलापों में नृत्यों को सम्मिलित किया।"[16] नृत्य साकार और निराकार दोनों की अभिव्यक्ति है। यह अनंतकाल की अभिव्यक्ति है जो नरनारी की आत्मा हैं । यह पुरुश और प्रकृति दोनों है और गति की उत्पति का व्यक्त रुप है। यह सच्ची सृजनात्मक शक्ति है, जो हमें युगों से प्राप्त होती रही है। ध्वनि और लय का संयुक्त रुप जो अभिव्यक्ति के काव्य की रचना करता है, नृत्य कहलाता है।[17] भारतीय परम्परानुसार नृत्य कला लौकिक एवं अलौकिक दोनों लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन मानी गई। सांसारिक उद्देश्यों को नृत्य कला साकार रुप देती ही है। परमपिता परमात्मा अर्थात अपने आराध्य देव प्राप्ति के लिए की गई नृत्य साधना परम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्य की प्राप्ति में सक्षम है।

1. 'नृत्सुत्रम्-विश्णुधर्मोत्तपुराण, द्र.ल.ना.गर्ग, भारत के लाकनृत्य, आवरण पृष्ठ हाथरस, (उ.प्र.)
2. आनन्द कुमार स्वामी 'द मिरर ऑफ गैंगचर पृ. 13
3. वाचस्पति गैराला, भारजीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण (मूल और हिन्दी अनुवाद), अध्याय-7, पृ. 190-191
4. आनन्द कुमार स्वामी, डांस ऑफ शिव, पृ. 70-71
5. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, प्राचीन भारत में संगीत, नृत्य और नाट्य, संगीत, जुलाई 1969, पृ.6
6. तृप्त कपूर, उत्तरी भारत में संगीत शिक्षा, पृ.102
7. महालक्ष्मी, भारतीय नृत्य शिक्षा, पृ. 43
8. वही, पृ.14
9. अनवर आगेवान् भारतीय नृत्य कला, संगीत निबन्धावली, ल.ना.गर्ग,पृ.123
10. भरत का नाट्यशास्त्र, अ. द्वितीय, श्लोक-111, पृ.9
11. महालक्ष्मी, भारतीय नृत्य शिक्षा, पृ. 45-46
12. ठाकुर जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ.13
13. बाल्मीकि रामायण, सुन्दर काण्ड, 11वां सर्ग, श्लोक-20
14. पं. ठाकुर जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ.187
15. पं. ठाकुर जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, वही, पृ.190
16. पं. जगदीश नारायण पाठक, पं. जगदीश नारायण पाठक, प्रश्न पंजिका, पृ.11-17
17. कलाकुंज, (मासिक) नवम्बर 1991, पृ.26

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

श्री स्वामी श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र के प्रकाशन

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	कीमत रु.
1.	स्वामी श्रद्धानन्द	500 रु.
2.	वेद का राष्ट्रिय गीत	200 रु.
3.	श्रुतिपर्णा	95 रु.
4.	वैदिक साहित्य संस्कृति एवं समाज दर्शन	500 रु.
5.	वेद और उसकी वैज्ञानिकता	300 रु.
6.	शोध सारावली	220 रु.
7.	भारतवर्ष का इतिहास (दो खंडों में)	350 रु. प्रति खंड
8.	क्लासिकल राइटिंग ऑन वैदिक एण्ड संस्कृत लिट्रेचर	80 रु.
9.	दीक्षालोक	500 रु.
10.	स्वामी श्रद्धानन्द के सम्पादकीय लेख	500 रु.
11.	स्वामी श्रद्धानन्द की सम्पादकीय टिप्पणियां	450 रु.
12.	कुलपुत्र सुनें	300 रु.
13.	ग्लिम्पस आफॅ इनवायरमेन्टल परसेप्ट्स ऑफ वैदिक लिट्रेचर	50 रु.
14.	स्वामी श्रद्धानन्द समग्र मूल्यांकन	300 रु.
15.	पं0 इन्द्रविद्यावाचस्पति कृतित्व के आयाम	300 रु.
16.	बातें मुलाकातें	125 रु.
17.	वेदों की वर्णन शैलियां	50 रु.
18.	हिन्दी काव्य को आर्यसमाज की देन	400 रु.
19.	श्रुति विचार सप्तक	500 रु.
20.	स्तूप निर्माण कला	55 रु.
21.	ईशोपनिषद्भाष्य	40 रु.
22.	इन्द्रविद्यावाचस्पति	40 रु.
23.	भारतवर्ष का इतिहास (तृतीय खंड)	55 रु.
24.	अग्निहोत्र	25 रु.
25.	वेद विमर्श	25 रु.
26.	आधुनिक भारत में वक्तृत्व कला की प्रगति	25 रु.
27.	आहार	35 रु.
28.	वैदिक वन्दना गीत	25 रु.
29.	ऋषिदेव विवेचन	25 रु.
30.	विष्णु देवता	25 रु.
31.	सोम	20 रु.
32.	ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार	25 रु.
33.	अध्यात्म रोगों की चिकित्सा	40 रु.
34.	गुरुकुल की आहुति	12 रु.,
35.	ब्राह्मण की गौ	25 रु.
36.	ऋषि-रहस्य	25 रु.
37.	धर्मोपदेश (भाग प्रथम और द्वितीय)	25 रु. प्रति खंड
38.	वैदिक कर्त्तव्य शास्त्र	40 रु.
39.	मेरा धर्म	500 रु.
40.	गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय कलेण्डर भाग-1	250 रु.

विश्वविद्यालय से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं का विवरण

1.	गुरुकुल पत्रिका	वार्षिक मूल्य 100 रु.
2.	वैदिक पॉथ	वार्षिक मूल्य 100 रु.
3.	प्राकृतिक एवं भौतिकीय शोध विज्ञान पत्रिका	वार्षिक मूल्य 500 रु.
4.	आर्य भट्ट	वार्षिक मूल्य 100 रु.
5.	गुरुकुल बिजनेस रिव्यू (GBR)	वार्षिक मूल्य 100 रु.

नोट :-ये सभी पुस्तकें कुलसचिव, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के नाम ड्राफ्ट भेजकर निम्न पते से प्राप्त की जा सकती है। क्रमांक १ से १२ एवं क्रमांक १८ तथा १९ पर ५० प्रतिशत तथा अन्य सभी पुस्तकों पर २० प्रतिशत की छूट देय है।

पुस्तकें मंगाने का पता :- पुस्तकालयाध्यक्ष/व्यवसाय प्रबन्धक, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार-२४९४०४ (उत्तरांचल)

मुद्रक : किरण ऑफसैट प्रिंटिंग प्रेस, कनखल, हरिद्वार फोन : 01334-245975

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ISSN 0976-8017

॥ ओ३म् ॥

गुरुकुल पत्रिका

(प्राच्य विद्याओं की अन्ताराष्ट्रिय शोध पत्रिका)

जुलाई-सितम्बर 2012

वर्ष 64

प्रधान सम्पादक

डॉ. महावीर

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार-249404

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vol :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ISSN 0976-8017

ओ३म्

गुरुकुल - पत्रिका

(प्राच्य विद्याओं की अन्तर्राष्ट्रिय शोध पत्रिका)

Vol : 64

जुलाई, अगस्त, सितम्बर - 2012

सम्पादक

डॉ. महावीर

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार-२४९४०४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक मण्डल

संरक्षक मण्डलः

श्री सुदर्शन शर्मा
कुलाधिपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पद्मश्री देवेन्द्र त्रिगुणा
परिद्रष्टा, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रो. स्वतन्त्र कुमार
कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आचार्य रामनाथ जी वेदालङ्कार
भूतपूर्व आचार्य एवं उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रधान सम्पादकः

डॉ. महावीर
अध्यक्ष- संस्कृत विभाग, गुरुकुल कांगड़ी वि०वि०, हरिद्वार

सम्पादक मण्डलः

डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री, अध्यक्ष - वेद विभाग
डॉ० सत्यदेव निगमालंकार, अध्यक्ष- वैदिक शोध संस्थान
डॉ० ब्रह्मदेव विद्यालंकार, अध्यक्ष- संस्कृत विभाग

प्रकाशकः

प्रो. ए. के. चोपड़ा
कुलसचिव, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वित्त अधिकारीः

श्री आर०के० मिश्रा
वित्ताधिकारी, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

		पृष्ठ संख्या
❖	वेदमञ्जरी — आचार्यः रामनाथ वेदालङ्कारः	
❖	सम्पादकीय — प्रो0 महावीर	-(v)
1.	अथ षोडशोऽध्यायः — डॉ. विजयवीर विद्यालंकार	-(vi)
2.	ईश्वरविलास महाकाव्य में वर्णित अश्वमेध यज्ञ — डॉ॰ वत्सला	1
3.	वैदिक संस्कृति में विश्व बन्धुत्व एवं आदर्श एक अनुशीलन — डॉ॰ सुभाष चन्द पराशर	16
4.	कालिदास विरचित मेघदूत में लोक-विश्वास — पराक्रम सिंह	22
5.	महाभारतकालीन समाज एवं नृत्यकला — डॉ॰ सुषमा देवी गुप्ता	34
6.	अग्निपुराण में औषधीय पादप — डॉ॰ अर्चना दुबे	38
7.	पण्डित मधुसूदन ओझा के वेद विज्ञान में पारिभाषिक शब्दावली — डॉ॰ दीपमाला	51
8.	वैशेषिक दर्शन में दिक् की अवधारणा — प्रचेतस्	57
9.	वाल्मीकि रामायणे रामराज्यम् — डॉ॰ योगेश शास्त्री	65
10.	मेघदूत का रामगिरि — डॉ॰ सुचित्रा मलिक	69
11.	राम की शक्ति पूजा- एक अन्तर्द्वन्द्व — डॉ॰ विजय इन्दु	73
12.	धर्मशास्त्रीयाचारव्यवस्थासन्दर्भे कर्त्तव्याकर्त्तव्यविमर्शः — प्रो॰ डॉ॰ वेदप्रकाश उपाध्यायः	78
13.	शुक्लयजुर्वेदीय शिक्षाएँ : एक निरूपण — डॉ॰ मीनाक्षी उपाध्याय (तिवारी)	83
14.	श्रौतयागों में पशु-हिंसा-विमर्श — प्रो॰ ओम प्रकाश पाण्डेय	87
15.	उद्बोधन — महावीर 'नीर' विद्यालंकार	93
16.	Irrigation-Vadas — Dr. S. Ramadevi	102
17.	वैदिक काल में संगीत — डॉ॰ विजय कृष्ण, डॉ॰ रेखा साह	113
18.	लोक प्रशासन का उद्भावक वेद — डॉ॰ शुचि श्रीवास्तव	118
19.	यज्ञो में ललित कला — डॉ॰ अर्चना लाल-सिंह	125
20.	वैदिक वाङ्मय में वास्तुकला — डॉ॰ संगीता मिश्रा	132
21.	धर्म और पर्यावरण — डॉ॰ किशनाराम विश्नोई प्रभारी	138
22.	भोगवाद की जिहीर्षा में संस्कृत की भूमिका — डॉ॰ मीरा द्विवेदी	144
23.	वैदिक साहित्य में वर्णित वस्त्र- एक विवेचन — डॉ॰ भावना आनन्द	151
24.	यजुर्वेद की कुछ पहेलियां — डॉ॰ हरिहर प्रसाद	159
25.	संस्कृत साहित्य में स्तुत्यर्थक धातुओं के प्रयोगः एक विश्लेषण — डॉ॰ मीनाक्षी उपाध्याय (तिवारी)	164
26.	वैदिक संस्कृति में सामाजिक व्यवस्था — डॉ॰ कपिलदेव हरेकृष्ण शास्त्री	169
27.	वैदिक वांङ्मय में वर्णित राजतन्त्र में लोकतन्त्र — डॉ॰ ममता गंगवार	173
28.	श्रीमद्भगवद्गीता — मंजुनाथ एस. जी.	181
29.	वैदिकी राष्ट्रीय एकता की वर्तमान में प्रासांगिकता — डॉ॰ आशा रानी पाण्डेय	191
		196

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

वेदमञ्जरी

कीदृशः सोमरसः कश्च तस्य प्रभावः

स्वादुष्किलायं मधुमां उतायं, तीव्रः किलायं रसवां उतायम्।
उतोन्वस्य पपिवांसमिन्द्रं, न कश्चन सहत आहवेषु।। ऋग् ६.४७.१

ऋषिः गर्गः भरद्वाजः। देवता सोमः। छन्दः त्रिष्टुप्।

(अयम्) एष सोमरसः (स्वादुः किल) निश्चयेन स्वादुरस्ति, (उत) अपिच (अयम्) एष सोमरसः (मधुमान्) मधुरो वर्तते। (उतो नु) अथ च (अस्य) एतद् रसं (पपिवासं) पीतवन्तम् (इन्द्रम्) वीरपुरुषं (आहवेषु) युद्धेषु (न कश्चन सहते) न कश्चत् पराजयते।।

प्राक्तनकाले एका सोमलता भवति स्म। यस्य पत्राणां शाखानाञ्च रसो दुग्धेन, यवजलेन, अन्याभिश्च ओषधीभिः सह सम्मेल्य पानं क्रियते स्म। अस्यां सोमलतायां केवलं पञ्चदश पत्राणि भवन्ति स्म, येषां ह्रासो वृद्धिश्च चन्द्रकलानां ह्रासवृद्धिभिः सह भवति स्म। पूर्णिमायां लता सर्वैं पत्रैः सह मनोहारिणी भवति स्म, अमावस्यायां च पत्रविहीना जायते स्म। आयुर्वेदस्यैवस्मिन् सुश्रुतनाम्नि ग्रन्थे लताया अस्या वर्णनं प्राप्यते, किञ्च तत्र तस्या अंशुमान्, मुञ्जवान् इत्याद्या चतुर्विंशतिर्भेदा, हिमालयार्बुदमहेन्द्र मलयाद्या पर्वताश्च जन्मस्थानानि वर्णितानि। यज्ञेऽस्या उपयोगः प्रचुरतया जायतेस्म, परमस्याः कृत्रिमोत्पत्तिः संभवा नासीत् अतः अद्यत्वे लतेयम् अन्वेषणस्य विषयतां गता वर्तते। प्रस्तुते मन्त्रे अस्याः सोमलताया रसस्य पानकर्ता स्तोता एतत्स्वादम, एतत्तीव्रताम्, एतद्रसवत्त्वं च वर्णयति ब्रूतेच यदस्या लतायाः पातारं संग्रामेषु कश्चित् न पराजयते।

एषा तु वर्तते बाह्यसोमस्य गाथा किन्तु एतद्भिन्नःएकोऽन्यः सोमोऽप्यस्ति यं वयं ब्रह्मनाम्ना जानीमः। तस्य परब्रह्मरूपस्य सोमस्य जीवात्मनि प्रस्तुतः संपद्यमानो ब्रह्मानन्दोऽपि सोमो वर्वर्ति। तं दिव्यरसं वर्णयन् साधकः वक्ति यदहो सोमोऽयं कीदृशः स्वादुर्वर्तते, अस्य स्वादस्य सम्मुखमेते सांसारिकाः स्वादा निकृष्टाः सन्ति। अहो! एष कीदृशस्तीव्रो वर्तते! पानसमये शरीरस्य, प्राणस्य, मनसो बुद्धेरात्मनश्च अद्भुतां स्फूर्तिं जनयति। अहो! कीदृशो रसवानयम्। एतद्रसस्य तुलनायां सर्वेऽपि भौतिक रसा स्तुच्छाः, य आत्मा एतत्पानं करोति तदन्तःकरणे प्रवर्तमानेषु देवासुरसंग्रामेषु तं कामक्रोधलोभमोहादिः कोऽप्यसुरः पराजेतुं न शक्नोति। ब्रह्मानन्द रूपस्य सोमस्य रस पूर्णां धारां पीत्वा तदन्तःकरणे तादृशं दिव्यमध्यात्मबलमुदेति यत् तस्यान्तरिकं तमोविहीनं निष्कष्टकं च भूत्वा स्वच्छं, समर्थं, ज्योतिष्मच्च जायते। आगच्छत, वयमपि तं दिव्यं सोमरसमास्वाद्य स्वात्मानमाप्लावितं संतृप्तं कृतकृत्यं च कुर्याम।

आचार्यः रामनाथ वेदालङ्कारः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

श्रावण एवं भाद्रपद भारतीय कालचक्र के अत्यन्त रमणीय एवं महत्त्वपूर्ण माह हैं। इन दिनों प्रकृत्ति नैसर्गिक सौन्दर्य से परिपूर्ण होकर सहस्रों वारिधाराओं से भूमि को संतृप्त करती है तो अपनी रमणीयता से जन-जन को हर्षित कर देती है। **श्रावण मासी हर्ष मनासी** हिरवष्ठदाटे चहुंकड़े येरे-येरे पावसा तुला देतो पैसा जैसी मराठी भाषा की कविताएं बाल्यकाल में स्मरण की थी, आज भी वर्षा ऋतु में वे पंक्तियां स्मरण हो आती है। रक्षाबन्धन, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, स्वातन्त्र्य दिवस, गणेशोत्सव आदि पर्व इसी मौसम में आते हैं और सबको आनन्दित और प्रेरित कर जाते हैं।

श्रावणीपर्व ब्राह्मणों का माना जाता है। इसका सीधा सम्बन्ध वेदाध्ययन से जोड़ा जाता है। प्रत्येक मानव के भीतर ब्राह्मण का निवास है, वह ब्राह्मण जो सत्य का उपदेश देता है, जो साधना, तपस्या, परोपकार, सेवा और ज्ञानमार्ग पर चलना सिखाता है। वह विप्र जो अपरिग्रह वृत्ति को धारण कर राष्ट्र कल्याणार्थ बड़े-बड़े यज्ञ कराता है जो परम सन्तोषी है, जो कुम्भीधान्य है, उसका सर्वोत्तम धन है- विद्या, ज्ञान, शील, चरित्र। इस धन के कारण वह सर्वत्र पूजित है। वह सरस्वती पुत्र है, ज्ञान का उपासक है, विद्ययाऽमृतमश्नुते और विद्या ददाति विनयम्' को वह सदा स्मरण रखता है।

भगवती-श्रुती और-तदनुसार संसार को जगाने वाली श्रीमद् भगवद्गीता चातुर्वर्ण्य की बात कहती है। ब्राह्मण यदि संसार से अविद्या-अन्धकार को समाप्त करने के लिये कृतसंकल्प है तो क्षत्रिय भी यश की कामना से विश्व को अत्याचार मुक्त करने के लिये कृतप्रतिज्ञ है। 'माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' यह भूमि मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ का भाव लेकर धीरता, वीरता, पराक्रम, शारीरिक बल और राष्ट्र के लिये सर्वस्व स्वाहा करने की अदम्य अभिलाषा रखने वाले क्षत्रिय पृथिवी की शोभा होते हैं।

श्री की कामना करने वाले, कठोर परिश्रम, योग्यता और ईमानदारी से 'वयं स्याम पतयो रयीणाम्' की प्रार्थना को चरितार्थ करने वाले, शतहस्त समाहर 'सहस्रहस्त संकिर को अपनी नित्य प्रति की दिनचर्या में सार्थक करते हुए राष्ट्र में से अभावरूपी शत्रु को पराजित करने वाले धर्मात्मा, याज्ञिक, परोपकारी वृत्ति वाले वैश्य भूमि को स्वर्गसम रमणीय बना देते हैं।

जो अज्ञान-अन्याय और अभावरूपी शत्रुओं को पराजित करने का सामर्थ्य नहीं रखते वे आशु-द्रवति इति शुद्रः अर्थात् सेवा के लिए दौड़कर आगे आनेवाला सच्चा शूद्र होता है, इस कथन को धन्य करते हुए जन-जन की सेवा में संलग्न रहते हैं। कितनी उदात्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और श्रेष्ठ है वैदिक वर्णव्यवस्था। न कोई जन्मना ब्राह्मण है और न कोई शूद्र। **'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।'** ये चारों वर्ण विराट् पुरुष के अङ्ग हैं।

'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद् वैश्यः पदभ्यां शूद्रोऽजायत।।'

जैसे मानव शरीर के प्रत्येक अंग का समान महत्व है जैसे पैर में चुभने वाले कांटे की चुभन शरीर के प्रत्येक अंग को होती है, यही भाव समाज में रहे तो धरती स्वर्ग बन सकती है। वोटों के सौदागर राजनेता, जाति, संप्रदाय, भाषा, राज्य आदि को आधार बनाकर अपने स्वार्थके लिये मानव समाज को खण्ड-खण्ड करने का कुटिल कार्य कर रहे हैं। वेद का स्वाध्याय करने वालों को यह स्मरण रखना चाहिए कि हम कोटि-कोटि भारतीय उसी परम पिता परमात्मा के पुत्र-पुत्रियाँ हैं, अतः परस्पर भाई-बहिन हैं। वेदमाता कहती हैं - **'शृण्वन्तु सर्वेऽमृतस्य पुत्राः'**

वेद हमारा सर्वस्व है, वेद हमारा जीवन है। करोड़ो वर्षों से प्रवाहित वैदिक ज्ञान गंगा में स्नान कर जीवन पावन हो जाता है, इसीलिए कहा गया - **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'**, **'सर्वज्ञानमयो हि सः'** वेद के अनुसार सुख देने वाला 'वैदिक धर्म' सबके लिये है। वेदरूपी गंगोत्री से प्रवाहित होने वाली विश्ववारा वैदिक संस्कृति मानव मात्र का ही नहीं अपितु प्राणिमात्र का कल्याण करती है। इस वेद के अनुसार जीवन जीने वाले योगेश्वर श्रीकृष्ण, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, महर्षि दयानन्द का जीवन युगों-युगों तक मानव का मार्गदर्शन करता रहेगा भाद्रपद माह की अष्टमी को जन्म लेने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने वेद की प्रत्येक ऋचा को अपने जीवन में साकार कर रखा था। उनके धवल-निर्मल-सबल जीवन चरित्र का कोई भी पृष्ठ पढ़कर देखें, उसमें वेद की सुगन्ध है।

'परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।

यह जिस महापुरुष के जीवन का चरमोद्देश्य हो, असत्य, अधर्म और अन्याय को पराजित कर सत्य, धर्म और न्याय को विजयी बनाने के लिये जो सारथी(वाहन चालक) की भूमिका सहर्ष स्वीकारते हैं। पाण्डवों के राजसूय यज्ञ में आनेवाले विद्वानों, अतिथियों के पाद प्रक्षालन का कार्य करने में जिन्हें हर्ष प्रकर्ष अनुभव होता हो, बाल्यकाल में निर्धन ग्वाल बाल समूह से मित्रता जिन्हें परम सुख प्रदान करती हो, जो सुदामा सदृश अकिञ्चन ब्राह्मण की मित्रता को विधाता का अनमोल वरदान समझते हों, और दुर्योधन के राजमहल में नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यञ्जन युक्त भोजन का निमन्त्रण ठुकराकर महात्मा विदुर की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुटिया में नीचे भूमि पर बैठकर घास की रोटियाँ खाने में परमानन्द की अनुभूति करते हों, वे भगवान् श्रीकृष्ण जब हमारे मार्गदर्शक हैं, तब हमें कौन पराजित कर सकता है? कौन धर्म-भ्रष्ट कर सकता है? भगवान् श्रीकृष्ण की गीता कहती है- 'महाजनो येन गतः स पन्था' जिस पथ पर श्रीराम चले, माता सीता चली, जिस अमृत पथ पर भगवान श्रीकृष्ण चले, भगवान् गौतम बुद्ध, भगवान् महावीर, जगद् गुरु शंकराचार्य, महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा गाँधी आदि महापुरुषों ने जिस दिव्य पथ पर चलकर अमरता प्राप्त की, हम भी उस कल्याण मार्ग के पथिक बनकर मानव जीवन को सफल बनायें। स्वयं सुख, सन्तोष, प्रसन्नता, कीर्ति, सफलता और आनन्द पायें तथा औरों को भी सुख, शान्ति और प्रसन्नता प्रदान करें यही हमारा मूलमन्त्र हैं, यही भारतीय संस्कृति का उद्घोष है-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग् भवेत्॥

हमने संपूर्ण विश्व को मित्र दृष्टि से देखा है - 'मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।' भारतीय मनीषा ने कभी किसी को पराया नहीं जाना -

'अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥'

यही भारत है, यही विश्व का सबसे सुन्दर देश है, यही विश्वगुरु है, इसी के चरणों में चिरशान्ति है। भारत के आकाश में चमकने वाला चन्द्रमा इसकी धवल-कीर्ति को प्रकट कर रहा है न जाने कब से गंगा की कल-कल निनाद करती हुई जल धारायें भारत माँ के गौरव गीत गा रही हैं। आओ इस अखण्ड़ सौभाग्यवती माँ का आशीर्वाद प्राप्त करें।

- डॉ. महावीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेद-काव्यामृत
अथ षोडशोऽध्यायः

डॉ० विजयवीर विद्यालंकार
पूर्व संकायाध्यक्ष
उस्मानिया वि.वि. हैदराबाद

नमस्ते रुद्र मन्यव ऽ उतो त ऽ इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः ॥१॥

दुःखदायक दुष्टों से बचाने वाले रुद्र को नमस्कार।
रुलाने वाले दुःखों से बचाने वाले रुद्र को नमस्कार॥
इच्छाओं की पूर्ति कराने वाले रुद्र को नमस्कार।
कर्मशील का कर्म कराने वाले रुद्र को नमस्कार॥
रुद्र-समान हे दुष्ट-दलन करने वाले अरि को मारो।
शत्रु-विजय हित उत्तम वज्रादिक को श्रमपूर्वक पालो॥
अन्नादिक से सदा सभी से, सत्कार-पूर्ण व्यवहार करो।
स्वयं स्वकीय भुजाओं में, अतुलित बल को नित प्राप्त करो ॥1॥

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि॥२॥

दुराचरणरत शिष्यों को, दण्डित करके निष्पाप करें।
सदाचरणरत शिष्यों के, स्नेहाशीष से हर ताप हरें॥
सत्योपदेश-प्रवृत्त सौम्य सच्छील सुजन नित शिक्षक हो।
सुख-प्रापक कल्याण-रुप, धर्मानुरक्त आरक्षक हो॥2॥

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसीः पुरुषं जगत्॥ ३॥

जान युद्ध विद्या को शस्त्रास्त्रों से सज्जित सदा रहो।
नित मंगलकारी कार्य करो, घातक कर्मों से दूर रहो॥
मेघ-समान सुख-वृष्टि करो, कल्याण-शान्ति का पन्थ गहो।
पुरुषार्थी विद्या-उपदेशक की रक्षा में नित संलग्न रहो॥3॥

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि। यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳसुमना ऽ असत्॥४॥

सौमनस्य युत वैद्य क्षयादिक से नित अच्छा करते हैं।
धन्य-धन्य हे वैद्यराज, तुमको सब अच्छा कहते हैं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैद्यकशास्त्र-पारगत हो, पर्वतादि प्रदेशों पर जाओ।

परीक्षा करके जल-औषधि की, उपचार हेतु उनको लाओ ।।4।।

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्।

अहीश्ँच सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव।।५।।

ज्येष्ठ श्रेष्ठ विख्यात वैद्य, तुम वैद्यकशास्त्र के ज्ञाता हो।

निदान आदि को जान निवारो, तुम रोगी के त्राता हो।।

सर्प-तुल्य प्राणान्तक रोगों से हमको निवृत्त करो।

अधोगामिनी रोगकारिणी, स्त्री-औषधि से वृत्त करो।।5।।

असौ यस्ताम्रो ऽ अरुण ऽ उत बभ्रुः सुमङ्गलः।

ये चैनꣳ रुद्रा ऽ अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्त्रशोऽवैषाꣳ हेड ऽ ईमहे।।६।।

रुद्र-तुल्य राजा ताम्बे के समान दृढांगों वाला हो।

धूम्र वर्णवत् किंचित् पीला, कर्म सुमंगल वाला हो।।

अग्नि-समान नित दुष्ट-दलन रतन, चन्द्र-तुल्य द्युति वाला हो।

शूर-वीर योद्धाओं से आवृत शुभ लक्षण वाला हो।।6।।

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो बिलोहितः।

उतैनं गोपा ऽ अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्युर्ग्गः स दृष्टो मृडयाति नः ।।७।।

नील मणियों की माला पहने, विविध गुणयुत सेनापति हो।

अंगरक्षकों से नित रक्षित, शत्रु-विजयरत चमूपति हो।।

पानी की तरह सेना आगे ही आगे नित बढ़ती जाए।

शत्रु-सैन्य की छाती पर, दृढ़ता पूर्वक चढ़ती जाए ।।7।।

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्त्राक्षाय मीढुषे।अथो ये ऽ अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः।।८।।

शुद्ध कण्ठ स्वर और हजारों भृत्यों पर हो जिसकी नज़र।

सब विध जानकारी जो रखता, उसकी ही नियुक्ति करे नृपवर।

राजा अपने भृत्यों को अन्नादि पदार्थ दे दान प्रचुर।

प्रजा और सेना के परिपालन में सदैव रहे तत्पर ।।8।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरात्न्योरात्न्योर्ज्याम्।याश्च ते हस्त ऽ इषवः ऽ परा ता भगवो वप ॥९॥

ऐश्वर्ययुक्त सेनापति तेरे हाथ में जो है धनुष-बाण।
प्रत्यंचा को खींच छोड़, बाणों को शत्रु पर धनुष तान।।
शत्रु ओर से आने वाले, बाणों का तून करना निदान।
शत्रु-विजय होगी निश्चय इससे तू अपने मन में ठान ।।9।।

विज्यं धनुः कपर्द्दिनो विशल्यो बाणवाँ२ऽउत।अनैशन्नस्य याऽइषवऽआभुरस्य निषङ्गधि :॥१०॥

जटाजूट वाले सेनापति की, धनुष-डोरी टूटे न कभी।
शस्त्रास्त्र-सुसज्जित सेना के, साधन हो रहे अक्षुण्ण सभी।।
युद्ध-समय बाणादि अस्त्र यदि, नष्ट सभी हो जाएँ कहीं।
नवीन अस्त्र उनको पहुंचाएँ, यथा समय अविलम्ब वहीं ।।10।।

या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः। तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज ॥११॥

ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध उपदेशक विद्वानों जानो।
सेनापति की शक्ति-परीक्षा करो, निवारण पहचानो।।
यथाशक्ति सब श्रेष्ठ जनों की, रक्षा हो ऐसा सोचो।
सभी तरह से परिपालन हो, ऐसी ही विधि को खोजो ।।11।।

परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः। अथो य ऽइषुधिस्तवारे ऽअस्मन्निधेहि तम्॥१२॥

धनुष-बाण शस्त्रास्त्र-निपुण सेनापति सम्यक् प्रशिक्षित हो।
दूर-मार अस्त्रों का ज्ञाता, निकट शस्त्र का ज्ञापित हो।।
तरकस में हों भरे बाण उसके, सदैव आरक्षित हो।
स्वयं सुखी होकर के औसें की रक्षा में दीक्षित हो ।।12।।

अवतत्य धनुष्ट्वꣳसहस्राक्ष शतेषुधे। निशीर्य्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥१३॥

असंख्य सैन्य कार्यों पर दृष्टि अरु सेना पर भी ध्यान रहे।
तीक्ष्ण शस्त्र-अस्त्रों से सज्जित उद्यत नित तीर-कमान रहे।।
साम,दाम और दण्ड भेद-नीति का हरदम ज्ञान रखे।
शत्रु के लिए दुर्दान्त रहे, श्रेष्ठों के लिए कल्याण रखे।।13।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमस्त ऽ आयुधायानाततायधृष्णवे। उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने॥१४॥

सेना को साधन-सम्पन्न करो पर्याप्त, नित युद्धों को करो।
भर पेट अन्न सेना को मिले, अन्नों से भण्डारों को भरो॥
भुजाओं मे बल बना रहे, अभ्यास नित्य तुम किया करो।
युद्ध-समय उद्यत होने हित, स्वास्थ्य-लाभ नित किया करो॥14॥

मा नो महान्तमुत मा नो ऽ अर्भकं मा न ऽ उक्षन्तमुत मा न ऽ उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥१५॥

हे सेनाधिप उत्तम गुण युत, पूज्य जनों को मत मारो।
छोटे क्षुद्र बालक और योग्य युवाओं को भी मत मारो॥
गर्भस्थ शिशु, योद्धाओं के, माता-पिता को मत मारो।
स्त्रियों इष्ट बन्धु मित्रों दूतों आदि को मत मारो॥15॥

मा नस्तोके तनये मा न ऽ आयुषि मा नो गोषु मा ना ऽ अश्वेषु रीरिषः।
मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे॥१६॥

नवजात शिशु अल्पावस्था के बालक को तुम मत मारो।
गौ बकरी घोड़े आदि उपकारक पशुओं को मत मारो॥
युद्ध-समय में सेनापति आदि, इन सब बातों का ध्यान रखे।
व्यवहारशील जन की इच्छाओं का न्यायाधिप मान रखे ॥16॥

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः।
पशूनां पतये नमो नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः॥१७॥

हे शत्रु प्रताडक सेनाधीश, तीव्र तेजमंय बाहुबली।
सभी दिशाओं में रहने वाली जनता हो अन्नों से पली॥
तू रक्षक गौ आदि पशु का, तुझ को मेरा नमस्कार।
न्यायप्रकाशक अन्नप्रदायक, तुझ को मेरा नमस्कार॥
खेतिहार खेती करे नित, उसको प्रोत्साहित करे।
राहगीर न राहज़न से, निज राह चलते ही ड़रे॥17॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमो बभ्लुशायव्याधिनेऽन्नानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमो नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमः सूतायाहन्त्यै वनानां पतये नमः॥ १८॥

हो राज्य में ऐसी व्यवस्था, अन्नादि सबको मिल सके।
रोगी या योद्धा सूत हो, प्रसन्न हो मुख खिल सके॥
सब को मिले समभाग सबका, कोई न वंचित रह सके।
वन-सम्पदा के पालकों का भी हृदय यह कह सके॥18॥

नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तयेवारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नम ऽ उच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमः॥१९॥

राष्ट्रोन्नति मे अहर्निशरत, सत् शिल्पियों का मान हो।
प्रजा-सेवक, वन्य-पालक अरु सद् वैद्य का सम्मान हो॥
राजपुरुषों, कुशल वणिकों व पुरोहितों का त्राण हो।
स्पष्ट निर्णय देने वाले न्यायाधीश का नित मान हो॥
सेना के सब अंगो व सेनाध्यक्ष का सम्मान हो।
अन्नादि से सत्कृत व प्रोत्साहित अपूरब मान हो ॥19॥

नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो नमः सहमानाय निव्याधिनऽ आव्याधिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः ॥२०॥

राष्ट्र की समृद्धि में नित प्रति, राजा-प्रजा संलग्न हो।
श्रेष्ठ का उत्साह-वर्धन अरु दुष्ट-ताडन मग्न हो॥
राज्य हित नित कार्य तत्पर का सदा सम्मान हो।
राष्ट्र-रक्षक पितर-सेवक का राष्ट्र में नित मान हो॥
वन-सुरक्षक शस्त्रास्त्र-शिक्षित, धारक जनों का ध्यान हो।
प्राणियों पर हो दया अरु अन्नादि का नितदान हो॥ 20॥

नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिण ऽ इषुधिमते तस्काराणां पतये नमो नमः सृकायिभ्यो जिघाꣳसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नमः॥२१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छल कपट चोरी से जीने वालों का परिहार हो।।

राज्य-रक्षा के लिए उद्यत का नित सत्कार हो।

सज्जनों को पीड़ित करने वालो का संहार हो।।

रात्रि में छिप कर घूमने वाले लुटेरों पर प्रहार हो।

ठगों को मार गिराने वाले, वीरों का नित सत्कार हो।।21।।

नम ऽ उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नम ऽ इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो नम ऽ आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम ऽ आयच्छद्भ्योऽस्यद्भ्यश्च वो नमः ।।22।।

उच्च चरित्र-सम्पन्न जनों का, सदैव सब सम्मान करें।

वन-पर्वत में विचरण करने वाले, मुनियों का मान करें।

पगड़ीधारी हो ग्रामपति और पर्वत-चारी वन्यपति।

इनका हो सम्मान मगर, धूर्तो लुच्चो की हो दुर्गति।।

धनुष-बाणधारी को, अन्नादिक सदैव मिल जाते हैं।

सबको सुख देने वाले को, सम्मानादिक मिल जाते हैं ।।22।।

नमो विसृजद्भ्यो विद्धयद्भ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमः शयानेभ्य ऽ आसीनेभ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमः ।।२३।।

राजा और प्रजा में परस्पर, प्रेमभाव करुणामय हो।

प्रजा के प्रति राजा में नित, उदारभाव दयामय हो।।,

दुष्टों प्रमादियों और शत्रुओं पर राजा दया न करे।

अन्नादिक पदार्थ और आवश्यक सुविधा दिया न करे।।

नित्य नियम का पालन जो करते, उनको आश्रय दिया करे।

कार्य-कुशलता देख-परख कर, उन पर ही व्यय किया करे ।।23।।

नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नम ऽ आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नम ऽ उगणाभ्यस्तृꣳहतीभ्यश्च वो नमः।।24।।

स्त्री-पुरुषों से युक्त सभा हो, सदा सभा गतिवाली हो।

एक सभापति सदा के लिए रहे न, बदलने वाली हो।।

मात्र एक पर भार छोड़कर, हाथ पे हाथ धरे न रहें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य पदाधिकारी चुनकर, सभा-कार्य को करते रहें।।
निर्णीत सभा के न्यायादिक को, सभी सभासद मान्य करें।
सबसे योग्य व्यवहार और सब विध सबको सम्मान्य करें ।।24।।

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः।। 25।।

जन-समूह को गण कहते हैं, उस जन-समूह को नमस्कार।
गणनायक गणपति होता हैं, उस गणपति को नित नमस्कार।।
गणपति गण रक्षक होता है, उस अन्नपति को नमस्कार।
पदार्थ-ज्ञान-सम्पन्न गुणी, विद्वानों को नित नमस्कार।।
मेधावी रक्षक मार्ग-प्रदर्शक, महद्जनों को नमस्कार।
कार्य-कुशल सेवक परिचारक, प्रजाजनों को नमस्कार ।।25।।

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो ऽ अरथेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो ऽ अर्भकेभ्यश्च वो नमः ।।26।।

राजा और प्रजा जन विजयी सेना सेनापति का सम्मान करें।
महारथी और पदातियों, सामग्री-वाहक का मान करें।।
ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध-जन का सदैव सम्मान करें।
कनिष्ठ क्षुद्राशय शिक्षा के योग्य शिष्य का ध्यान धरें ।।26।।

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्म्मारभ्येश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः।।27।।

लकड़ी के कार्यों में कुशल तक्षक का सत् सम्मान करो।
विमानादि यानो के आविष्कारक का नित मान करो।।
मिट्टी के पात्र बनाने वाले, कुम्भकार का ध्यान धरो।
बन्दूक तोंप शस्त्रास्त्र बनाने वाले का नित मान करो।।
वन्य-सम्पदा के रक्षक, निषाद-जनों का ध्यान धरो।
भाषाओं के विशेषज्ञ जन का, बहुविध सम्मान करो।।
कुत्ते आदि पशुओं के, प्रशिक्षक का भी मान करो।
हरिण आदि पशुओं क पालन-कर्ता का भी ध्यान धरो ।।27।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥28॥

कुत्तों को कुत्तों के पालक को भी अन्न प्रदान करो।
शोभन गुण-सम्पन्न जनों का सदैव समुचित मान करो॥
दुष्टों को रुलाने वाले वीरों का सम्यक् सम्मान करो।
गौ आदि पशुओं के पालक को नित अन्न प्रदान करो॥
सुन्दर गर्दन और तीक्ष्ण कण्ठ वाले वीरों का मान करो।
इन सबकी युक्त परीक्षा करके, इन सबका नित मान करो ॥28॥

नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च ॥29॥

जटाधारी ब्रह्मचारी अरु संन्यासी को नित नमन करो।
असंख्य शास्त्र-विद्या के ज्ञाता, ब्राह्मण को नित नमन करो॥
अनेक शास्त्रविद्याविद् शिक्षक को सदैव तुम नमन करो।
गिरि-कन्दराओं में निवासित, वानप्रस्थ को नमन करो॥
पशु-पालकों सेवक जनों व कृषक जनों को नमन करो ॥29॥

नमो हूस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च ॥30॥

सद् गृहस्थ बालक, ज्ञानी, विद्वान् को अन्न दिया करते।
विद्या वृद्ध और वयोवृद्ध जन को भी अन्न दिया करते॥
अपने समान के साथ बढ़े जो, उनको भी अन्न दिया करते।
सत्कर्मों और सत्प्रवृत्त विख्यात को अन्न दिया करते ॥30॥

नम ऽ आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नम ऽ ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च ॥31॥

वायु-समान शीघ्रगामी, घोड़ों को अन्न प्रदान करो।
घुड़सवार और शीघ्रगामी, पशुओं को अन्न प्रदान करो॥
जल-तरंग में वायु-समान, गतिमान को अन्न प्रदान करो।
नदी द्वीप-द्वीपान्तर वासित जन को अन्न प्रदान करो ॥31॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ।।32।।

छोटे बड़े, बड़े छोटे, परस्पर 'नमस्ते' वाक्य कहे।
मध्यमवर्गीय और निम्नवर्गीय के लिए यही एक शक्य रहे।।
वेदोक्त प्रमाणों से प्रसिद्ध, सर्वत्र यह शिष्टाचार रहे।
प्रसन्नता पूर्वक मिलकर, एक-दूजे का सत्कार रहे ।।32।।

नमः सोभ्याय च प्रतिसर्य्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नम ऽ उर्वर्याय च खल्याय च ।।33।।

धनवान धार्मिक न्यायकर्ता, श्रेष्ठ का सम्मान हो।
वेदविद् व्यवहारविद् अरु महान् जन का मान हो ।।33।।

नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नम ऽ आशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च ।।34।।

वन में गुफा आदि में रहने वालों को नित अन्न दो।
श्रुतिशील विद्याध्ययनरत, गुरु-शिष्य को नित अन्न दो।।
संकल्प दीक्षा में नियत, व्रतियों को नित प्रति अन्न दो।
शीघ्रगामी सैन्य-रथ चालक जनों को अन्न दो।।
शत्रु-मारण में निरन्तर लग्न जन को अन्न दो।
दूतादि कर्म-निमग्न जन को, योग्यता से अन्न दो।। 34।।

नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ।।35।।

तोड़-फोड़ करने वाले कार्मिक या उत्तम वस्त्रधारी।
शरीर-रक्षा के साधन से युत, निर्धारित सैन्य कवचधारी।।
उत्तम घरवाले प्रसिद्ध और गुणों से ख्यात नामधारी।
प्रख्यात सैन्यवाले और युद्धों में सेना न कभी हारी।।
उत्साह बढ़ाने वाले ढोल आदि को बजाने वाली।
ऐसी सेना और योद्धाओं का पेट रहे न कभी खाली ।।35।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च ।।36।।

दृढता और संकल्प-शक्ति से, सोच-विचार के कर्म करो।
आत्मा और शारीरिक बल से, विजय-प्राप्ति का मर्मधरो।।
शस्त्रास्त्रों में पारंगत होकर, आगे बढ़ना धनुर्धरों।
सेना की उन्नत्ति करके, हो आश्वस्त सुनिश्चित राज्य करो।।36।।

नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च ।।37।।

झरनों नदी नहरों तालाबों का, समुचित उपयोग करो।
बान्ध आदि दृढतर निर्मितकर, जल का सद्उपभोग करो ।।37।।

नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्र्याय चातप्याय च नमो मेध्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च ।।38।।

कुएँ बावड़ी खोदने वाले, कर्मकरों का ध्यान रखें।
खेत सींचने वाले कृषकों का सम्यक्नित ध्यान रखें।।
अग्नि-विद्याविद् याज्ञिक विद्वानों का वर्षेष्टि हित ध्यान रखें।
भीषण गर्मी में कठिन परिश्रम करने वालों का ध्यान रखें।।38।।

नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च ।।39।।

वायु-विद्याविद् विद्वानों की सूक्ष्मतया पहचान करें।
निवास-स्थान की रक्षा हित, रक्षक को नित संज्ञान करें।।
धनाढ्य, धार्मिक जन के संरक्षक जन का नित मान करें।
नित सत्कर्मों में काम आने वाले जन का सम्मान करें ।।39।।

नमः शङ्गवे च पशुपतये च नम ऽ उग्राय च भीमाय च नमोऽग्रेवधाय च दूरवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ।।40।।

सुख प्राप्त कराने वाले गौ आदि पशुओं को नित अन्न दो।
दुष्टाति दुष्ट शत्रु का हनन करने वाले को नित अन्न दो।।
बन्धन मुक्त कराने वले तेजस्वी को नित अन्न दो।
दु:खों से बचाने वाले बलशाली जन को नित अन्न दो ।।40।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।।41।।

कल्याणरूप और सुख स्वरूप को, नित्य नमन मैं करता हूँ।
शान्ति और आनन्द रूप का, सतत स्तवन मैं करता हूँ।।
शिव स्वरुप को हृत्प्रदेश में, सदा सतर्क मैं धरता हूँ।
शिवातिशिव मंगल स्वरूप का योग्य यजन मैं करता हूँ ।।41।।

नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय-नमः शष्प्याय च फेन्याय च ।।42।।

दु:खों से पार लगाने वाले को है मेरा नमस्कार।
इस तट से उस तट तक, पहुँचाने वाले को नमस्कार।।
वेद-विद्या पढ़ाने वाले, गुरुओं को मेरा नमस्कार।
नदी-समुद्रादि तट पर, रहने वालों को नमस्कार।।
तृण आदि कार्यों में तत्पर, व्यवहारशील को नमस्कार।
सुख प्राप्त कराने वाले शिक्षित नौका-चालक को नमस्कार ।।42।।

नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किंशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नम ऽ इरिण्याय च प्रपथ्याय च ।।43।।

भूगर्भ विद्या जानकर, बालू से स्वर्णादिक निकालो।
बैलादि को करके प्रशिक्षित, यानादि को गति से चला लो।।
जटाधारी ब्रह्मचारी संन्यासियों को अन्नों से पालों।
धर्म-मार्गो पर प्रवृत्त उत्तम जनों को गले लगालो ।।43।।

नमो ब्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ।।44।।

जो मनुष्य कर्त्तव्य परायण, गो-पालन में रहता है।
गौशालाओं के भृत्यों का, सदा ख्याल वह करता है।।
धार्मिक कार्य-संलग्न पुरुषका, सदा समादर करता है।
गिरि-कन्दराओं में निवसित, योगी जन का मन हरता है ।।44।।
परमाणु आदि विद्या को जो जाने, उन्हें अति त्वरित पा लें।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छेदन उत्तोलन कौशलयुत जन को ठीक से पहचानें।
दुष्टों की हिंसा में उद्यत अरु समर्थ को भी जाने ।।45।।

नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम ऽ उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम ऽ आखिदते च प्रखिदते च नम ऽ इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाꣳ हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम ऽ आनिर्हतेभ्यः ।।46।।

श्रमी उद्यमी निडर विरोधीजन का नित सम्मान करो।
क्षीण दीन ऐश्वर्यहीन जन को यथेष्ट तुम दान करो।।
शस्त्रास्त्रक्ता-निर्माताओं का समुचित तुम मान करो।
गुणी विद्वान् विवेकी योग्य समर्थ जन का सम्मान करो।।46।।

द्रापे ऽ अन्धसस्पते दरिद्र नलिलोहित।
आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ् मो च नः किं चनाममत् ।।47।।

गलत मार्ग से धनादि कमाकर, अन्ततः दरिद्र बन जाते हैं।
पशुओं की हिंसा करके, भय से रोगी हो जाते हैं।।
इसीलिए सन्मार्ग पे चलकर, धन के स्वामी बन जाएँ।
गौ आदि की सेवा करके, सदा निरोगी हो जाएँ ।।47।।

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे ऽ अस्मिन्ननातुरम्।।48।।

विद्वान् सदा अपने प्रयत्न से प्रजा पशु को नीरोग करे।
बलवान् और मेधामय होकर पूर्णायुष्य का भोग करे।।48।।

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी। शिवारुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे।।49।।

हे राजवैद्य विद्वान् आपकी औषधि की अति महिमा है।
धर्म-नीति औषधि-दान और हस्त-कौशल की गरिमा है।।
शल्य-चिकित्सा करके हमको रोगों से नित्य बचा लेना।
प्रजा प्रसन्न हो सुख से जी लें अरु आश्वस्त हो जाए सेना।।49।।

परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड।।50।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रोधी पापी दुराचारी से, हे रुद्र आप बचाइए।
दुष्ट-बुद्धि-जन से सभी पूर्णतः मुक्त आप कराइए।।
धनवान पुरुष के योग्य स्थिर मति-ज्ञान आप कराइए।
नवजात कुमार कुमारियों को, सम्पन्न आप कराइए ।।50।।

मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव।
परमे वृक्ष ऽ आयुधं निधाय कृत्तिं वसान ऽ आ चर पिनाकम्बिभ्रदा गहि ।।51।।

अत्यन्त पराक्रमयुक्त बली, सेनापति आप पधारिए।
प्रसन्नचित्त सुखकारी होकर, यहाँ आप पधारिए।।
तलवार तोप बन्दूक आदि, शस्त्रास्त्र धारण कीजिए।
अंगरखा से शरीर को ढक, हम सबका रक्षण कीजिए ।।51।।

विकिरिद्र विलोहित नमस्ते ऽ अस्तुभगवः। यास्तेसहस्त्रꣳहेतयोऽन्यमस्मन्नि वपन्तुताः।। 52।।

राजपुरुष के अस्त्र-शस्त्रनित, प्रजा-रक्षण में काम आएँ।
हिंसक पशु और शत्रु छेदन में, वज्रादि समय पर काम आएँ।। 52।।

सहस्राणि सहस्त्रशो बाह्वोस्तव हेतयः। तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ।।53।।

भाग्यशील सेनापति आपकी, भुजाओं में प्रबलगति है।
इसीलिए हजारों शत्रुओं की बनी अब यह दुर्गति है।।53।।

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा ऽ अधि भूम्याम्। तेषाꣳ सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।।54।।

मनुष्य के इस हर शरीर में, असंख्य जीव और वायु हैं।
उन सबका उपयोग जान लें, अति उपयोगी स्नायु हैं ।।54।।

अस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा ऽ अधि। तेषाꣳ सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि।। 55।।

ज्यों मनुष्य पृथिवी-स्थित जीवओ' वायु से कार्य को साधता है।
वैसे ही आकाशस्थ जीव और वायु का ज्ञान आराधता है ।।55।।

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳरुद्राऽउपश्रिताः। तेषाꣳसहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।।56।।

नीली गर्दन और श्वेत कण्ठ वाली सूर्यस्थ वायु को जानें।
जीव और वायु को जानकरख आग्नेयास्त्र विधि पहचानें ।।56।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नलिग्रीवाः शितिंकण्ठाः शर्वाऽअधः क्षमाचराः। तेषाꣳ सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥57॥

जो वायु आकाश से भूमि औ' भूमि से आकाश को जाती है।
उनमें अग्नि औ' पृथिवी आदि के, अवयव औ' शक्ति होती है॥57॥

ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानितन्मसि॥ 58॥

वृक्षों पर जो भयकारक, काले सर्पादिक रहते हैं।
उन्हें निकाल दूर करने से, प्राणी निष्कण्टक रहते हैं॥58॥

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः। तेषाꣳ सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥59॥

शिखा रहित संन्यासी औ' जो जटाधारी ब्रह्मचारी हैं।
लोकहितार्थ भ्रमण करते ये, क्योंकि सच्चे व्रतधारी हैं॥59॥

ये पथां पथिरक्षय ऽ ऐलबृदा ऽ आयुर्युधः। तेषाꣳ सहस्त्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥60॥

राहगीर की रक्षा करने वाले ज्यों सेवक होते हैं।
वैसे ही पृथिवी जीवन की, वायु नित रक्षक होते हैं॥60॥

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः। तेषाꣳ सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥61॥

ब्रह्मचर्य गुरु-सेवा वेदाध्ययन, सत्संग और ईश-स्तुति।
सत्यभाषण, तारक नौकादि भी कहलाते तीर्थ नियति ॥61॥

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्। तेषाꣳ सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥62॥

जो अन्नादि में विष आदि मिलाकर, पात्रों में पिलाने देते हैं।
उनसे हरदम सब दूर रहें, ऐसे जन नर हन्ता होते हैं॥ 62॥

य ऽ एतावन्तश्च भूयाꣳसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे।
तेषाꣳ सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥63॥

सभी दिशाओं में स्थित जीवों और वायुओं को जानो।
उनका यथावत् ज्ञान प्राप्त कर, उपयोग-रीति को पहचानों ॥63॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः।
तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥64॥

जो सूर्य प्रकाशादि के तुल्य, विद्या-विनय-देदीप्य हैं।
ज्ञान जिनका बाण-वृष्टि के समान अति तीक्ष्ण है॥
वे सब दिशाओं में हमारी रक्षानिमित्त प्रवृत्त हों।
वायुवत् बान्धें उन्हें और हम विपद्-निवृत्त हो॥ 64॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वातऽइषवः।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः।
तेभ्यो नमो ऽ अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥65॥

जो विमानादियानो बैठ, आकाश में विचारण करते हैं।
वायु-तुल्य हैं प्राण-बाण, हम उनका वन्दन करते हैं॥
सभी दिशाओं में उपस्थित, शिल्पीजन हमारा हित करें।
नित साधनों से युक्त कर, हमको सदा रक्षित करें॥ 65॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः।
तेभ्यो नमो ऽ अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥ 66॥

॥ इति षोडशोऽध्यायः॥

जो भूविमान आदि में बैठ, विस्तृत भूमि में विचरते हैं।
जो दसों दिशाओं में जाकर,शत्रु पर शासन करते हैं॥
ऐसे वीरों का अन्नों से पोषण औ' सम्मान नित किया करें।
उनकी प्रसन्नता से प्रसन्न हो, अत्मोन्नति नित किया करें॥ 66॥

॥ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरविलास महाकाव्य में वर्णित अश्वमेध यज्ञ

डॉ० वत्सला
व्याख्याता (संस्कृत)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय झालावाड़

वैदिक काल से विविध एषणाओं की पूर्ति हेतु विविध धूमाग्नि से समस्त ब्रह्माण्ड को अहर्निश सुगन्धित, सुरभित और सुवासित करने वाले अनुष्ठानों की जो परम्परा प्रवाहित हुई वह रामायण, महाभारत काल में भी अविच्छिन्न प्रवहमान होती हुई 17वीं शताब्दी के मध्य तक दृग्गोचरीभूत होती है। ईश्वर विलास महाकाव्य के चतुर्थ और पंचम सर्ग में जयसिंह द्वारा आयोजित अश्वमेध यज्ञ का वर्णन मिलता है।

ईश्वरविलास महाकाव्य कवि कलानिधि देवर्षि श्री कृष्ण भट्ट प्रणीत 14 सर्गो का ऐतिहासिक महाकाव्य है। महाकाव्य कालिदास प्रणीत रघुवंश महाकाव्य में रघुवंशी नरपतियों के वंशावलियों के चित्रण के सदृश ही कवि कलानिधि देवर्षि कृष्ण भट्ट ने जयपुर नरेश के वंशालियों (पृथ्वीराज से लेकर ईश्वरी सिंह तक के राज्यकाल) का वर्णन मध्यकाल की अलंकारपूर्ण शैली में अपने वचनावलियों के द्वारा किया है। जयपुर महाराज सवाई ईश्वरी सिंह (1743-1750) के आदेश से इस महाकाव्य की रचना कवि कालनिधि देवर्षि कृष्ण भट्ट ने की थी। महाराज सवाई जयसिंह की मृत्यु के बाद आश्विन शुक्ल पक्ष 15 बुधवार संवत् 1800 विक्रमी को ईश्वरी सिंह जी सिंहासनारूढ़ हुए और उन्होंने कवि कलानिधि श्री कृष्ण भट्ट को अपने पूर्वजों को उपजीव्य बनाकर काव्य रचना करने की आज्ञा दी। इस तथ्य का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है:-

'तत्रैव राज्यतिलकोत्सव एष राजा
श्री कृष्ण भट्टकवये कुरू काव्यमेकम्।
अस्मत्कुलक्रमकथाकथनाभिराम
मित्याज्ञया सह ददौ सुभहाप्रसादम्॥'[1]

उपरोक्त तथ्यों से यह सिद्ध है कि श्री कृष्ण भट्ट प्रणीत यह काव्य (1743-1750) के मध्य की रचना है क्योंकि ईश्वरीसिंह का राज्य इसी कालावधि के बीच रहा। देवर्षि स्व० श्री कृष्ण भट्ट के संस्करण पर आधृत इस महाकाव्य का सम्पादन हिन्दी अनुवाद के साथ रमाकान्त पाण्डेय ने किया है।

जयपुर महाराज जयसिंह का यह अश्वमेध अनुष्ठान एतत् काल का यदि एकमात्र अनुष्ठान न भी माना जाये तो भी नि:सन्देह रूप से यह कहा जा सकता है कि यह अश्वमेध यज्ञ अन्तिम अश्वमेध था। इतिहास में जयसिंह के बाद अवश्मेध यज्ञ का अनुष्ठान कराने वाला अन्य कोई नरेश नहीं हुआ। विश्वनाथ चित्त पावन रानाडे आदि कवियों ने जयसिंह के बाजपेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि अनेक यज्ञों का सप्रमाण विवेचन किया है किन्तु अश्वमेध यज्ञ ही जयसिंह की कीर्ति कौमुदी को प्रसृत करने वाला यज्ञ है। सवाई जयसिंह बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न थे। उन्होंने अपने तप, दान, पुण्य धार्मिक कार्यो के सम्पादन से स्वत्व पर ब्राह्मणत्व उत्पन्न कर लिया था। धर्मपुत्र की तरह प्रभूत धन के व्ययार्थ वे यज्ञ कर्म करने में प्रवृत्त हुए थे।[3] अनवरत यज्ञ कर्म में प्रवृत्त रहने से महाराज जयसिंह की धन सम्पत्ति वैभव वृद्धि की विस्तारक हुई अतः उन्होंने अश्वमेध यज्ञ के निमित्तार्थ विद्वानों की सभा को आमन्त्रित किया।[4] महाराज का आदेश पाकर चतुर्दिक विद्वान् महामणियों के स्तम्भों से विभूषित उनकी सभा में पधारें! विद्वानों के उपस्थित होने पर महाराज ने कहा- हे विद्वद्वरों! कृष्णावतार के पश्चात् कलिकाल आ गया है। लगभग पाँच हजार साल बीत चुके हैं। अधुना लोक में धर्म आदि श्रव्य मात्र रह गये हैं। धर्ममय प्रकाश कहीं भी दृष्टिगत नहीं हो रहा है फिर भी मैं आप विद्वानों के मुख से श्रावित अश्वमेधादि कर्म में प्रवृत्त होना चाहता हूँ। मैंने तीन बार अग्नि का चयन किया है। सोमयज्ञ और वाजपेय यज्ञ भी सम्पादित कर लिया है। अब आप सभी विद्वान्गण अपने आशीर्वाद से अश्वमेध यज्ञ करने के विषय में उचित मार्गदर्शन प्रदान करें। राजसभा में विराजमान पंडितों ने महाराज जयसिंह से निवेदित किया कि महाराज अश्वमेध यज्ञ महान् यज्ञ है आप जैसे प्रतापी राजा द्वारा यह यज्ञ सम्पन्न किया जा सकता है, किन्तु महाराज जनमेजय के बाद पृथ्वी पर इस यज्ञ का अनुष्ठान किसी भी राजा ने नहीं किया है:-

'इत्युक्तवत्युक्ति विचक्षणेऽस्मिन् सम्राजि सर्वाऽजिजयैकभाजि।
यथा मरुत्वज्जनमेजयोत्था कथा तां स्म बुधाः स्मरन्ति।।[5]
अथोचिरे तेऽञ्जलिबन्धपूर्वं समस्तशास्त्रार्थ विवेकदक्षाः।
महान् पदार्थोऽयमिहाश्वमेधस्त्वयैव कर्तुं पृथिवीन्द्र शक्यः।।[6]

यद्यपि इसके पूर्व पुष्यमित्र या समुद्रगुप्त द्वारा किये गए अश्वमेघ यज्ञों का उल्लेख इतिहास में उपलब्ध होता है (पुष्यमित्र 185 ई०- 149 ई०पू०, समुद्रगुप्त 335-380 ई०) किन्तु एक सुदीर्घकालावधि के उपरान्त इस यज्ञ का अनुष्ठान किया जाना था अतः शंका का होना प्रत्याशित था इसीलिए महाराज जयसिंह ने विद्वानों की सभा को बुलाया था लेकिन विद्वानों ने निर्णय महाराज पर छोड़ दिया-

अतः परं देव भवान् श्रुतिस्मृतिज्ञातसमस्ततत्वः।
अहो तवैवाऽविदितं हि किञ्चिपदस्ति तन्नास्ति च कर्म योग्यम्।।[7]

उपर्युक्त श्लोक से यही निष्कर्ष निकलता है। कि पंड़ितों ने जयसिंह को इस यज्ञ के अनुष्ठान में समर्थ तो माना था किन्तु इस यज्ञ के कलिवर्ज्य होने की बात विद्वानों के मस्तिष्क में थीं। अतः उन्होंने इस कार्य से राजा को रोकने की अपेक्षा उसके अनुष्ठान का निर्णय स्वयं राजा पर छोड़ दिया। अश्वमेध का अनेक आचार्यो ने कलिवर्ज्य प्रकरण में संग्रह किया है:-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीर्घकालं ब्रह्मचर्य नरमेधाश्वमेकौ।
इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः।।[8]

कलिकाल में वर्जित होने से महाराज जयसिंह अश्वमेघ के विषय में निर्णय लेने में समर्थ न हो सकें। अतः उन्होंने काशी के विद्वानों को पत्र लिखे और उनसे अश्वमेघ यज्ञ के अनुष्ठान की अनुमति प्राप्त की। अश्वमेघ के विषय में काशी के पंड़ितों का स्पष्ट कथन था कि जब तक गंगा की धारा हैं, जब तब वेदों की शाखायें हैं, जब तक वर्णाश्रम विभाग है, तब तक कलियुग में भी अश्वमेध यज्ञ किया जा सकता है:-

यावद्भवेद विष्णुपदीप्रवाहो यावच्च वेदस्य भवन्ति शाखाः।
स वाजिमेधेन महामखेन विद्वत्सभां यष्टुमनाश्वकार।।[9]

कलियुग में इस यज्ञीय अनुष्ठान को सम्पन्न करने में कोई समर्थ राजा नहीं हुआ है। इसीलिए इस यज्ञ का अनुष्ठान नहीं हो सका है। आप ही इस योग्य हैं आपको अवश्य ही अवश्मेध यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए।

इस यज्ञीय अनुष्ठान में रामचन्द्र द्रविड़, व्यास शर्मा, यज्ञकर शर्मा, गुणाकर, हरिकृष्ण शर्मा आदि काशी के प्रसिद्ध विद्वानों ने भाग लिया। तदतिरिक्त श्रौतविधि में प्रवीण नाना दिशाओं के ब्राह्मणों ने भी इस यज्ञ में सहभागिता की। इन विद्वानों के मध्य में राजा जयसिंह समस्त तारागणों के समूह के मध्य में ज्योत्स्ना फैलाने वाले चन्द्र के समान सुशोभित हुए।[10] यज्ञार्थ महाराजा ने प्रभूत यज्ञ सामग्री की व्यवस्था की। जयपुर से उत्तर एक कोश की दूरी पर श्री गोविन्द देव मन्दिर (कनक वृन्दावन) से मानसागर नामक पूर्वतट पर राजा ने यज्ञ मण्डप का निर्माण करवाया।[11] यज्ञ मण्डप का प्राचीर सोने और चाँदी की ऊँची-ऊँची दीवारों पर रत्नों को जड़कर बनाया गया था। इस यज्ञ मण्डप में एक दूसरे को प्रतिबिम्बित करने वाले मणि जडित खम्भे लगे थे। इस यज्ञ में कोई विप्र ब्रह्मा बना, काशीवासी यज्ञकर अध्वर्यु था, ऋग्वेद निष्णान्त ब्राह्मण ने यज्ञ को आरम्भ किया। कण्ठ स्वर से गन्धर्वो के भी स्वर प्रवाह को पराजित करने वाले ब्राह्मण ने उद्गाता के पद को धारण किया। अपने गुणों से युक्त देवता जैसे इन्द्र के यज्ञ को प्रवर्तित करते हैं उसी प्रकार समस्त ब्राह्मणों ने जयसिंह के यज्ञ को प्रवर्तित किया। यज्ञार्थ अश्व छोड़ा गया और धनुधारियों से रक्षित अश्व यावत्पर्यन्त वापस नहीं आया ब्राह्मणों ने प्रातः सायं हवन किया। जब अश्व वापस आया तब यजमान के साथ सभी विद्वान् यज्ञ मण्डप में पधारें। यज्ञ मण्डप में यूप श्रेणियों के मध्य महायूप सुशोभित हुआ। ब्राह्मणों, दीन, अनाथों को मिष्ठान्न, भोजन, वस्त्र, भरपूर दान दिये गए। यज्ञ में इन्द्र के साथ-साथ जयसिंह का भी मान हो रहा था। ऋग्वेद प्रयोक्ता ब्राह्मणों के द्वारा आछूत इन्द्र ने राजा जयसिंह को दूसरा इन्द्र समझा।[12] ब्राह्मणों ने यजमान को आशीर्वाद दिया। जिस विप्र ने जितनी याचना की नृपवर ने उसको उतना दान दिया। राजा ने ऋत्विकों को प्रभूत दान दिया। यज्ञ में मानसागर के तट पर बने स्वर्णयूप से मानसागर के तट की भूमि जयस्तम्भ से समुद्रतट की भूमि के समान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुशोभित हुई। गन्धर्वपतियों ने राजा के यज्ञ निष्पादन का समस्त सृष्टि में गान किया। राजा के इस यज्ञ को देवताओं द्वारा सुनाए जाने पर बृहस्पति ने भी इस यज्ञ की प्रशंसा की। इस यज्ञ में महाराज जयसिंह स्वच्छ और निर्मल सूक्ष्म वस्त्र धारण किए हुए, कन्धे पर कृष्णाजिन धारण किए हुए तथा हाथ में मृग का शृङ्ग धारण किए हुए सुशोभित हुए।[13] शिखा और सूत्र धारण करने वाले, उदारकीर्ति से युक्त राजर्षियों द्वारा अभिनन्दित महाराज जयसिंह साक्षात् धर्म के अवतार के रूप में सुशोभित हुए।[14] जयसिंह की धर्मप्रियता धर्मपुत्र युधिष्ठिर के समान थीं[15] राजा ने यज्ञमण्डप के चारों तट पर स्थित कमल वनों से युक्त असंख्य बावलियों एवं लघुसरोवरों का निर्माण कराया। इन वापियों, सरोवरों का परिसर वेदाध्ययन करने वाले प्रतिवर्ष सोमयज्ञ करने वाले प्रौढ़ ब्राह्मणों से युक्त था। इन वापियों, लघुसरोवरों का जल अश्वमेध यज्ञ के पशुओं तथा स्वच्छन्द विचरण करने वाले पक्षियों से सेवित था। यज्ञान्त स्नान (अवभृथ) करने के लिए राजा जयसिंह उत्तम सीढ़ियों की पंक्तियों से सुशोभित मानसागर के तट पर पधारें। अनेक तीर्थों से लाये गए जल को छोड़ने से पवित्र इस मानसागर के जल में महाराज ने अवभृथ स्नान किया।[16] इस प्रकार राजा ने प्रभूत दक्षिणा और ब्राह्मणों को भोजन के द्वारा, पूर्णविधि से एक सौ पाँच अश्वमेध यज्ञ किए। पञ्चाधिकशताश्वमेधयाजी ऐसी प्रवृत्तियाँ जयसिंह के लिए स्वाभाविक थीं।[17] प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार इस यज्ञ का अनुष्ठान 4 जुलाई 1742 को हुआ था।[18]

संस्कृत साहित्य में ही नहीं बल्कि कवि दुलीचन्द के 'कूर्मविलास' नामक ग्रन्थ में भी जयसिंह के अश्वमेध यज्ञ का निर्देश प्राप्त होता है। पं० नन्दकिशोर पारीक ने अपने लेख 'यज्ञ के स्मारक और प्रमाण' में दुलीचन्द के इस वर्णन को उद्धृत करके जयसिंह के अश्वमेध की प्रामाणिकता को सिद्ध किया है।[19]

कवि कलानिधि देवर्षि श्री कृष्ण भट्ट ने जयसिंह के अश्वमेध यज्ञ प्रकरण को समाप्त करते हुए लिखा है कि अपने धार्मिक कृत्यों और समाज सुधारों के कारण महाराज ने अपने आपको कलियुग में युधिष्ठिर का अवतार ही प्रतिष्ठित कर लिया था। यह महाराज के लिए कोई अतिश्योक्ति नहीं है। महाराज के दान-पुण्य का लेखा करोड़ों रुपये में जाता था। जयसिंह ने वाजपेय20, राजसूय21, सर्वमेध, पुरुषमेध आदि वैदिक कालीन श्रौतयज्ञों को भी कराया था जिसका उल्लेख महाकाव्य में उपलब्ध होता है।

उपरि उक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं, कि अश्वमेध यज्ञ करने की जो परम्परा वैदिक काल से प्रारम्भ हुई वह सतयुग, त्रेता तथा द्वापर होते हुए कलिकाल में भी उदाहरण शेष के रूप में विराजमान रही। अश्वमेध यज्ञार्थ जिस विधि विधान का उल्लेख परम्परा से प्राप्त होता है, तदनुरूप चित्रण ईश्वर विलास महाकाव्य में भी उपलब्ध होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाद-टिप्पणियाँ

1. ईश्वर विलास महाकाव्य - 10.34
2. राम विलास काव्य - सवाई मानसिंह (द्वितीय) संग्रहालय जयपुर 1978।
3. ईश्वरविलास - 4.4

   धर्मेण भूयः स्वभुजार्जितं तद्वसु प्रभूतं विनियोक्तुकामः।
   श्रीवल्लभाचार्यमतानुवर्ती श्रुत्युक्तकर्मण्यनिशं रतोऽभूत्।।
4. तत्रैव - 4.12

   सम्पद्विवृद्धयैव विवृद्धहर्षः श्रद्धालुतां कर्मविधौ दधानः।
   स वाजिमेधेन महामखेन विद्वत्सभां यष्टुमनाश्चकार।।
5. ईश्वरविलास - 4.24
6. तत्रैव - 4.25
7. तत्रैव - 4.27
8. तत्रैव - पृष्ठ संख्या - 60
9. तत्रैव - 4.31
10. तत्रैव - 4.44

    राजाधिराजो नृपतिर्धृतश्रीस्तन्मण्डलस्थः शुशुभेतरां सः।
    समस्तताराग्रहचक्रमध्ये प्रसारितज्योत्स्न इव क्षपेशः।।
11. तत्रैव - 4.48

    गव्यूत्यर्द्धोपरि जयपुरादुत्तरत्र प्रदेशे
    श्रीगोविन्दालयविलसितोयद्ध्वजच्छायजुष्टे।।
    पूर्वं मानाक्षितिपतिकृतेः सागरस्य प्रतीरे
    राजा तेन व्यरचि विभवैर्मण्डितो यज्ञवाटः।।
12. तत्रैव - 5.25

    महेन्द्रः सम्यगाहूतः सुब्रह्मण्यप्रयोगिभिः।
    विलोक्य राजशार्दूलं स्वद्वितीयममन्यत।।
13. तत्रैव - 5.37

    तत्र धौततमे सूक्ष्मे वाससी विमले वहन्।
    कृष्णाजिनधरः स्कन्दे मृगशृङ्ग करे दधत्।।
14. तत्रैव - 5.39

    शिखासूत्रधरोदारदीप्ती राजर्षिसंस्तुतः।
    साक्षाद्धर्मावतारोऽसौ यज्ञमानो व्यराजत।।
15. तत्रैव - 5.40

    भयेनालोकितो राजा नयेनाढयो युधिष्ठिरः।
    भयेन विद्विनिर्दिष्टं स एनमवलोकताम्।।
16. तत्रैव - 5.51

    नानातीर्थशतानीतनीरनिक्षेपभासुरे।

17.
18.
19.
20.
21.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानसागरतोयेऽस्मिन् चकाराऽवभृथं नृपः।।

17. तत्रैव - 5.52
एवं सदक्षिणाभारं सभूरि ब्रह्मभोजनैः।
साङ्गं स वाजिमेधानां चक्रे पञ्चोत्तरं शतम्।।

18. तत्रैव - पृष्ठ संख्या -66

19. तत्रैव - पृष्ठ संख्या -62

20. तत्रैव - 4.9
स वाजपेयाध्वरदीक्षयाऽऽप्तसम्राट्पदः शुद्धतमोऽभिषेकात्।
शीर्षे सितच्छत्रमुवाह भूयो राज्याभिषेकावसरेऽनुभूत्।।

21. तत्रैव - 10.14
तदा कुमारः किल राजसूयं
पित्राज्ञया धर्मपरोऽनुतिष्ठन्।
प्रबोधितो विप्रवरैर्नृपस्य
ज्ञात्वाऽवसानं द्रुतमाजगाम।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक संस्कृति में विश्व बन्धुत्व एवं आदर्श- एक अनुशीलन

डॉ० सुभाष चन्द पराशर
प्राध्यापक
आदर्श ऋषिकुल केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ
चण्डीगढ़ (यू.टी.)

वेद भारतीय संस्कृति की आत्मा हैं और मानव जाति के लिए प्रकाशतम्भ है। संस्कृति का अर्थ है ऐसी क्रिया जो व्यक्ति में निर्मलता का संचार करती है। अनेक व्यक्ति मिलकर समाज निर्माण करते हैं। अतः निर्मल एवं संस्कृत व्यक्तियों से समाज, राष्ट्र तथा विश्व संस्कृत होते हैं और उनके निर्मलता-विधायक तत्व संस्कृति के मूल सूत्र बन जाते हैं। मानव में संस्कारों द्वारा विकास की भूमिका तैयार की जाती है। विशुद्धि, निर्मलता, परिष्कृति, एक मानव से चलकर समाज की संपत्ति बनती है। उसी प्रकार वह विश्वभर की थाती भी बन सकती है। संस्कृति के इस व्यापक रूप को वेद **'विश्ववारा संस्कृति'** का नाम देता है।

वैदिक संस्कृति व्यक्ति, कुल, समाज, जाति तथा विश्वभर के समक्ष आदर्शों की प्रतिष्ठा करती है। ये आदर्श परम्परा से परिपालित होकर पीढ़ियों तक चलते रहते हैं तथा भविष्य में संतति को प्रेरणा देते रहते हैं। संस्कृत व्यक्ति के विचार तथा आचरण में एकता होती है और असंस्कृत मानव के मन, वाणी और कर्म में वैषम्य रहता है।

व्यावहारिक जीवन की विशिष्टताएँ तथा आध्यात्मिक क्षेत्र की उपलब्धियां जिनसे मानव की पूर्णता का बोध होता है। मानव ज्यों-ज्यों स्वतन्त्र होता है त्यों-त्यों वह परिपक्व हो जाता है, शरीर, प्राण, उद्वेग की अधीनता से मुक्त हो जाता है, त्यों-त्यों वह पूर्णता की ओर प्रयाण करता जाता है और विकास की ऊर्ध्व शिखा पर अवस्थित होता है।

मानव किसी विशेष लक्ष्य की सिद्धि के लिए जन्म लेता है। मानव जन्म पूर्वार्जित सत्कर्मो का फल है। अतः प्रत्येक मानव को ठीक उसी प्रकार रहना चाहिए जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में ग्रह एवं नक्षत्र स्वार्थरहित होकर एक दूसरे की सहायता करते हुउ स्व-स्व अक्ष पर घूमते हैं। कहीं राग और द्वेष नहीं होता, उनका आलोक सर्वत्र प्रसरणशील होता है उनका अस्तित्व अपने लिए नहीं अपने अन्दर बसने वाले प्राणियों के परिपालन के लिए होता है। हम सबको इनसे शिक्षा ग्रहण करके अपने हृदय में एकत्व और मैत्रीभाव जागृत करना चाहिए। जब मानव के मन में प्रेम, सौहार्द और एकत्व की भावना जागृत होती है तो मोह, शोक, दुःख हिंसा- ये सारे दुर्विचार नष्ट हो जाते हैं और भ्रातृत्व की भावना का उदय हो जाता है।

मानव विश्व का अंग है। विश्व समष्टि है। मानव के साथ विश्व का हित जुड़ा हुआ है। जब मानव समाज और राष्ट्र की परिधि से ऊपर उठकर विश्वमानव के सुख की चिन्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है तो उसका विश्व प्रेम उसे बहुत ऊँचे धरातल पर प्रतिष्ठित करता है। वेदों में विश्वबन्धुत्व की परिकल्पना सर्वत्र व्याप्त है।

विश्वबन्धुत्व की भावना मनुष्य को संसार के प्रत्येक व्यक्ति से तदात्म्य की अनुभुति कराती है। अतएव वेदों में निर्देश है कि हम संसार में सभी से एकत्व की भावना स्थापित करें एकत्व की भावना स्थापित होने पर मोह, शोक और दु:ख का अभाव हो जाता है। वेद कहता है कि-

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एवत्वमनुपश्यतः।।

विश्वबन्धुत्व का तात्पर्य है संसार के सभी मनुष्यों में एकता की अनुभूति करना, उनसे सहानुभूति रखना, उनके सुख:दुख का अनुभव करना। यह मेंरा है, यह पराया है, ऐसे विचार तुच्छ या निम्न कोटि के व्यक्ति करते हैं। जो उच्च चरित्र वाले व्यक्ति हैं उनके लिए सारा संसार ही कुटुम्ब है। ज्ञानी पुरूष के लिए सर्वस्व ब्रह्म है और ब्रह्म में सर्वस्व है। वह सर्वत्र एक ब्रह्म तत्व ही देखता है, अत: उसे न शोक होता है और न मोह। वह मोह और शोक से ऊपर उठकर उक ब्रह्म को ही सर्वत्र देखता है। इस प्रकार तत्वज्ञानी व्यक्ति विश्वबन्धुत्वका संरक्षक है।[1]

मानव विचारों का पुंज तथा मूर्तरूप है और विचारों की समष्टि है। जैसे विचार होते हैं वैसी ही आकृति भी होती हैं। मनुष्य के विचारों की छाया उसके मुख पर देखी जा सकती है। सज्जन-दुर्जन, शिष्ट-अशिष्ट, साधु-असाधु, संयमी-असंयमी, स्वस्थअस्वस्थ आकृति से पहचान लिए जाते हैं। अतएव ऋग्वेद और यजुर्वेद के इस मंत्र में विचार शुद्धि पर बल दिया गया है।[2] वेद कहता है कि हमें चोरी और मधुरता का वातावरण उत्पत्र करना चाहिए जिससे सब ओर से स्नेह और सौहार्द प्राप्त हो।[3]

संस्कृत का एक सुभाषित है कि **'यानि कानि च मित्राणि कर्तव्यानि शतानि च'** अपने सैकड़ो मित्र बनावें। मित्र अथवा बन्धु की परिभाषा है कि जो दूसरों के सुख में सुखी हो, दूसरों के दु:ख में दु:खी हो और समय पर उत्तम शिक्षा दे और आवश्यकता पड़ने पर धन से भी सहायता करे। अर्थात् आत्मीयता का भाव जागृत करना, एकत्व की अनुभूति करना और सहृदयता की स्थापना करना मित्रत्व और बन्धुत्व का जागरण है। वेद कहता है कि सब हमें मित्र की दृष्टि से देखें, में सबको मित्र की दृष्टि से देखूँ और परस्पर मित्र की दृष्टि से देखा करें। यदि हमारे हृदय में स्नेह और सद्भाव है तो हम सारे संसार को अपने वश में कर सकते हैं। वेद यह शिक्षा देता है कि प्रेम वशीकरण मंत्र है हमें प्रेम का विस्तार करना चाहिए और सारे विश्व को मित्र बनाना चाहिए। यदि हम दूसरे को मित्र और बन्धु की दृष्टि से देखेंगे तो वह भी हमें मित्र और बन्धु मानेगा और हमारे साथ मित्रता तथा बन्धुता का व्यवहार करेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सारा विश्व स्वर्ग बना जाएगा।[2]

ऋग्, यजु और अथर्व तीनों वेदों में समाज की उन्नति के लिए सामाजिक सद्बुद्धि की प्रार्थना की गई है। जब समाज में शक्ति और उत्साह होगा, तभी वह समाज उन्नति या विकास की बात सोचेगा। इन्द्र शक्ति का देवता है, वायु प्रगति का और बृहस्पति ज्ञान का देवता है। वायु सदा गतिशील है। वह प्रगति, उन्नति और विकास देता है। शक्ति का विकास हो और कार्य करने की क्षमता हो, तभी समाज प्रगति की बात सोच सकता हैं बृहस्पति ज्ञान देता है, विवेक देता है, सद्बुद्धि देता है। इस प्रकार शक्ति, कर्मठता और विवेक, जब ये तीनों एकत्र होते हैं, तब समाज में सद्बुद्धि होती है और समाज आगे बढ़ता है। अतः मंत्र का निर्देश है कि बन्धुत्व की भावना मन में रखते हुए सामूहिक रूप से सामाजिक कार्यो में सदा सद्भावना से प्रत्येक व्यक्ति को प्रवृत्त होना चाहिए। समाज के हित के सामने वैयक्तिक हित को तुच्छ समझना चाहिए। यदि समाज का हित होगा तो विश्व का हित होगा।[2]

ऋग्वेद के निम्न मंत्र में स्पष्ट संकेत किया गया है कि समाज, राष्ट्र और विश्व की उन्नति के लिए समाज के प्रतिष्ठित व्यकित एक स्थान पर एकत्र हों और समाज की समस्याओं पर विचार करके सामूहिक निर्णय लें। **'सं जानते'** के द्वारा निर्देश है कि उनमें सांज्ञान हो, अर्थात् सद्भावना से एक निर्णय करें। यह सामूहिक निर्णय सबके लिए मान्य है। मंत्र में यह भी संकेत है कि सामूहिक निर्णय के विरुद्ध कोई व्यक्ति किसी प्रकार का कार्य न करे और प्राकृतिक नियमों का उल्लघंन न करे।[1]

संसार में केवल मनुष्य ही है जिसको परमात्मा ने उच्च कोटि की बुद्धि दी है। बुद्धि मानव की निर्मात्री शक्ति है। बुद्धि का संस्कार जीवन का संस्कार है। बुद्धि का दूषण जीवन का सर्वनाश है। सुमति के लिए वेदों में कहा गया है कि वह सर्वजन हितकारी हों जब मनुष्य की बुद्धि शुद्ध होगी, तभी वह विश्व कल्याण की बात सोचेगा। समाज, राष्ट्र और विश्व के हित के लिए विश्वजनीन बुद्धि दूषित रहेगी, तब तक उसमें सद्विचार, मैत्रीभाव तथा लोककल्याण की भावना आदि के शुभ भाव नहीं आयेंगे।[2]

वेद कहता है कि समाज में हिंसा की प्रबलता सामाजिक व्यवस्था को नष्ट करती है। हिंसा से अभिप्राय प्राण लेने से ही नहीं है, अपितु किसी को हानि पहुँचाना, दुःख देना, किसी प्रकार की यातना देना आदि सभी प्रकार का कष्ट हिंसा से अभिप्रेत है। सभी शास्त्रों में हिंसा को अनुचित एवं त्याज्य कर्म बताया गया है।[3]

अथर्ववेद के निम्न मन्त्र में तीन बातों पर ध्यान आकृष्ट किया गया है। हम सबमें ऐकमत्य स्थापित करें, दिव्य मन से हम सब युक्त हों तथा राष्ट्र एवं विश्व के हित के लिए समर्पित हों। इस मंत्र में संज्ञान का उपदेश दिया गया है। सभी से संज्ञान अर्थात् एकात्मता स्थापित हों। संज्ञान पारस्परिक सद्भावना, स्नेह एकता और सामंजस्य की सृष्टि करता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संज्ञान से व्यक्तित्व का विकास होता है। इससे असंख्य व्यक्तियों में आत्मीयता स्थापित की जा सकती है। दिव्य मन या सुसंस्कृत बुद्धि एकात्मता का साधन है। सब सद्विचार उद्बुद्ध होंगे, तभी संज्ञान की भावना प्रकट होगी। सद्विचारों से असंमजस्य उत्पन्न होगा और उससे दूसरों से आत्मीयता की अनुभूति होगी।[1] संज्ञान से सहानुभूति, दया, परोपकार, ममता और एकात्मता की भावना उद्बुद्ध होती हैं अर्थात् हम अपने पराये दोनों से एकात्मता स्थापित करें। यह संज्ञान संगठन के रूप में परिवर्तित होकर पूरे विश्व की समृद्धि का साधन होता है।[2]

वेद कहता है कि यह धरती भाषाभेद या धर्मभेद से किसी के साथ किसी प्रकार का कोई अभद्र व्यवहार नहीं करती और अपने गर्भ से ऐश्वर्य की हजारों धाराओं का दोहन सबको समान रूप से करने देती है जैसे कोई सुशील गाय अपने थन से दूध की अनेक धाराएँ जनहित के लिए प्रवाहित करती है। किसी के साथ किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं करती। उसी प्रकार पृथिवी पर रहने वाले हर मानव का कर्त्तव्य होता है कि वे भाषा, जाति और धर्म के आधार पर कोई भेदभाव न करके सबसे मित्रता तथा बन्धुत्व का व्यवहार करें, क्योंकि मानवता की दृष्टि से मानवमात्र में कोई भेद नहीं है।

जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं
नाना धर्माणं पृथ्वी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य में दुहां
ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।[1]

भविष्यपुराण में भी कहा गया है कि जाति-पाति में और सम्प्रदाय में कोई भेद नहीं, भेद न तो बाहर है न भीतर। भेद न तो दु:ख में है न तो ऐश्वर्य में, न आशा में है न भय में, न रज में है न वीर्य में, न अंग की पुष्टि में है न दुर्बलता में, न स्थिरता में है न चंचलता में, न बुद्धि में है न वैराग्य में, न धर्म में है न पराक्रम में, न स्त्री में है न प्रेम में, न काम में है न लोभ में।[2]

वेदों की महनीयता सम्पूर्ण विश्व को आकर्षित करती है कि वह किसी एक जाति, एक सम्प्रदाय के सुख की कामना नहीं करती उसकी प्रभुतापूर्ण वाणी में हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र नर-नारी आदि का कोई भेद भाव नहीं है। इस अद्भुत उदारता से मानव समाज को प्रेरणा लेनी चाहिए और प्रत्येक मानव को एक दूसरे के सुख की कामना करनी चाहिए।[3]

ऋग् और अथर्ववेद में निर्देश है कि हर मानव को समान अधिकार है। इसलिए सभी मनुष्य एक साथ मिलकर चलें, एक साथ मधुर वाणी में आपस में वार्तालाप करें तथा सबके आपसी विचार समान रूप से जनकल्याणकारी हो।[4] वर्तमान स्थिति के ध्यान में रखते हुए उक्त आदेश का अनुपालन आवश्यक है क्योंकि यह धरती किसी एक या किसी एक समुदाय की नहीं है। यह तो सबका जन्म तथा पोषण करने वाली है। अत: इसकी रक्षा एवं संवर्धन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबका समान दायित्व है तथा धरती से उत्पन्न हर वस्तु पर सबका समान अधिकार है। इसलिए एक होकर निरन्तर इस विकासशील बनाए रखना चाहिए जिससे मानवमात्र का संगठन मजबूत हो।

वेदों के समान नीतिशास्त्र में भी कहा गया है कि अच्छे गुणों से भरपूर थोड़े व्यक्ति भी हो तो उनका संगठन होना राष्ट्र तथा विश्व के लिए कल्याणकारी है। जिस प्रकार तिनके-तिनके को मिलाकर एक मजबूत रस्सा बनता है जो मदमत्त हाथी को भी बाँध लेने में पूरी तरह समर्थ होता है। मित्रता और संगठन की भावना समाज, राष्ट्र और विश्व को शक्तिशाली बना सकती है। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में निम्न मंत्र में संगठन के तीन मूल तत्वों का निर्देश किया गया है-विचार साम्य, हृदय साम्य और मनः साम्य। इन तीन मूल तीन मूल तत्वों के अपनाने से कोई भी संगठन सुदृढ़ हो सकता है।[1]

अथर्ववेद के एक मंत्र में संगठन के लिए चार बातों पर ध्यान आकृष्ट किया गया है। (1) हृदय की एकता, (2) मन की एकता, (3) द्वेष का अभाव, (4) प्रेम की सद्भावना। उपर्युक्त मंत्र में हृदय और मन की आवश्यकता का वर्णन किया जा चुका है परन्तु इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि हमारे अन्दर द्वेष का अभाव और परित्याग होना चाहिए। लक्ष्य चाहे एक हो पर यदि संगठित होने वाले समाज में आपस में पारस्परिक द्वेष है, कलह है, ईर्ष्या है और मनोमालिन्य है तो वह समाज सुसंगठित नहीं हो सकता। अतः आवश्यक है कि संगठन को सुदृढ़ करने के लिए पारस्परिक द्वेष, मनोमालिन्य और ईर्ष्या को तिलांजलि दे देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त आवश्यकता है पारस्परिक प्रेम और सहानुभूति की। वेद कहता है कि जिस प्रकार गाय अपने नये बछड़े से घनिष्ठ प्रेम करती है और उसके लिए प्राण देने को भी उद्यत रहती है। इसी प्रकार यदि समाज में घनिष्ठ प्रेम का प्रवाह होगा सभी मनुष्य एक दूसरे के लिए प्राण देने के लिए उद्यत रहेंगे और सदा एक दूसरे का हित-चिन्तन करेंगे, तो वह समाज अवश्यमेव सुसंगठित होगा।[1]

वेदों ने वर्ग संघर्ष का नहीं वर्ग-मैत्री का शंख फूँका है, पारस्परिक द्वेष का नहीं, अन्योन्य प्रेम का संदेश दिया है। वेद कहताहै कि सबसे हृदय अर्थात् भाव समान हों, सबके मन अर्थात् विचार समान हों, कोई किसी से द्वेष न करे। जैसे गौ सद्यः जात बछड़े के साथ व्यवहार करती है उसी प्रकार हम सब एक दूसरे के साथ व्यवहार करें। वेद का यह पवित्र सन्देश मानवमात्र के लिए है। देश और काल के व्यवधान इस सन्देश की अमरता के समक्ष प्रत्यूह बनकर खड़े नहीं हो सकते। चाहे रूस हो चाहे अमेरिका, चाहे चीन हो या भारत तथा पाकिस्तान सबका कल्याण इसी पुनीत कौटुम्बिक विचारधारा के अपनाने में हैं

वैदिक संस्कृति जिस सुदृढ़ आधार को लेकर चली है, वह विश्व की व्यापक व्यवस्था और शाश्वत नियमों पर अवलम्बित है जो कुटुम्बवाद की भावना परिवार तथा समाज के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेक्षित है, वही विश्व की एकता के लिए भी आवश्यक है। अथर्ववेद में कहा गया है कि भेदभाव को प्रश्रय मत दो। मैत्रीभाव सब एक होकर कार्य की सिद्धि के लिए प्रयत्न करो। हे मानव मैं तुम्हे समान मन और समान धारणा शक्ति से सम्पन्न करता हूँ समान विचार तथा धारणा शक्ति वाले बनकर हे मनुष्यों! तुम सब सेवा भावना तथा समान ध्येय की पूर्ति में कटिबद्ध हो जाओ। क्योंकि परस्पर विरोध की भावना पग-पग पर विघ्न उपस्थित करती है।

अथर्ववेद के एक मंत्र में कहा गया है कि परिवार हो या समाज, राष्ट्र हो अथवा विश्व उसकी एकता के लिए कुछ उपयों का आश्रय लेना पड़ता है। सभी व्यक्ति मिलकर एक साथ प्रत्येक कार्य करें। जिससे परिवार या समाज में सद्भावना और प्रेम का वातावरण उत्पन्न होता है। साथ बैठने पर स्वाभाविक है कि परस्पर वार्तालाप हो, हँसी-मजाक हो, कुछ सुख-दुख की बातें हों। इनसे पारस्परिक स्नेह बढ़ता है, एकता की अनुभूति होती है और सामंजस्य स्थापित होता है। अतएव मंत्र में कहा गया है कि जलपान तथा भोजन एक साथ सम्मिलित होकर करें। इससे प्रेम का बन्धन पुष्ट होगा, इस मंत्र में हम सबको वेद एक दूसरा उपदेश देता है कि समाज में इस प्रकार रहो जैसे रथ आदि की धुरी में अरे रहते हैं। धुरी में अरे इस प्रकार फँसे रहते हैं कि वे पृथक् होते हुए भी एक केन्द्र से सम्बद्ध है। इसी प्रकार समाज का प्रत्येक व्यक्ति संगठनरूपी केन्द्र से सम्बद्ध होना चाहिए। परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व-इन सबके हित में ही अपना हित भी निहित समझना चाहिए। समष्टि की उन्नति से व्यष्टि की उन्नति होती है।[1]

ऋग्वेद के एक मंत्र में बताया गया है कि जो अपने साथी और सहयोगी की सहायता करता है वही सच्चा मित्र है। संसारमें सच्चे मित्र बहुत थोड़े होते हैं। जीवन में मित्र का स्थान बहुत ऊँचा है। जहाँ आत्मसमर्पण है, वहाँ सच्ची मित्रता है। स्वार्थप्रधान मित्रता, मित्रता नहीं है। मंत्र में कृपण मित्रको त्याज्य बताया गया है। जो दानी और सहयोगी है वह सच्चा मित्र है। महाभारत शान्तिपर्व में कहा गया है कि मित्र का लक्षण है दु:ख में दु:खित होना और सुख में प्रसन्न होना। इसके विपरीत आचरण करने वाला व्यक्ति शत्रु है। कामन्दकीय नीतिसार में मित्र का लक्षण बताया गया है-हार्दिक, पवित्रता, त्यागशीलता, शूरता, सुख-दु:ख में समवेदना, उदारता, प्रेम और सत्यव्यवहारी होना चाहिए।[1]

ऋग्वेद का निम्न मंत्र निर्देश है कि मित्र का त्याग महापाप है। जो अपने मित्र का त्याग करता है, उसका शास्त्रों के अध्ययन में कोई अधिकार नहीं है। उसका सारा अध्ययन निरर्थक है और वह सन्मार्ग को ठीक नहीं समझता। मित्र विश्वसनीय व्यक्ति होता है। मित्र त्याग एक प्रकार से विश्वासघात है। आपस में मैत्रीभाव भी प्रगाढ़ होकर बन्धुत्व का भाव जागृत करता है।[2] अथर्ववेद के निम्नमंत्र में शिक्षा दी गई है कि व्यक्ति का आपसी कलह दो पक्षों का आपस में एक दूसरे को नीचा दिखाना नाश का कारण बनता है।[3]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज की व्यवस्था को सम्पुष्ट बनाने के लिए ऋग्वेद के इस मंत्र में अत्यन्त उपयोगी निर्देश दिया गया है कि समाज में सभी व्यक्ति और सभी वर्ग अत्यन्त उपयोगी हैं। उनमें भेद-भाव और ऊँच-नीच का भाव नहीं होना चाहिए। अतएव मंत्र में निर्देश है कि छोटे-बड़े ऊँच- नीच सबको आदर और सम्मान पाने का अधिकार है। अपने कर्मों के अनुसार सभी सम्मानित हो सकते हैं चाहे वे किसी जाति या वर्ग के हों सबको समान आधिकार देते हुए मंत्र में आदेश दिया गया है कि जो व्यक्ति अपनी योग्यता, गुण-कर्म और चरित्र के आधार पर उच्च हैं- उनको सर्वत्र वरीयता और सम्मान प्रदान किया जाए।[1]

यजुर्वेद के इस मंत्र में प्रत्येक मनुष्य को यह निर्देश दिया गया है कि पृथिवी हमारी माता है। हम सब पृथिवी के पुत्र हैं। पुत्र का कर्तव्य है कि वह माता का हितचिन्तक हो। यदि विश्व में सुख और शान्ति तथा सद्भावना और बन्धुता का प्रसार हो तो माता प्रसन्न होंगीं हम सभी इस पृथिवीरूपी माता के पुत्र हैं अतः संसार के सभी मनुष्य भाई-भाई हैं। यदि यह भावना हृदय से ग्रहण की जाए तो विश्वबन्धुत्व का प्रसार हो सकता है।[2]

द्रोह तथा विरोध से पृथक् रहकर मानव मात्र को प्रेमपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिए। सब एक ही परमपिता की संतान हैं जब हम सब एक ही माता (पृथिवी) और एक पिता (परमेश्वर) की संतान हैं तो सबको समान बन्धुता के सूत्र में आबद्ध हो जाना चाहिए। क्योंकि मानव जीवन अनेक पुण्यों के फलस्वरूप प्राप्त होता है। इसीलिए वेदों ने मानव को अमृत पुत्र कहते हुए उसे उसकी पहचान भी बतायी है कि 'हे मानव! तुम गौरवशाली ज्ञान और कर्मरूपी सुन्दर पंखों से युक्त हो, तुम पृथिवी के ऊपर विराजमान हो, तुम अपने भले कर्मो और यशरूपी प्रकाश और तेज से अन्तरिक्ष को भर दो, अपने तेज से सभी दिशाओं को उन्नत कर दो। किन्तु दुःख इस बात का है कि वर्तमान समय में मानव अपनी इस पहचान को खोता जा रहा है। सर्वत्र भ्रष्टाचार, चोरी, हत्या, पाप और हिंसा तथा आतंकवाद का दानव धीरे-धीरे चारों ओर अपना पैर पसार रहा है। उर्दूके किसी प्रसिद्ध कवि (शायर) की यह पंक्ति कि-

घर से निकलो तो पता जेब में रखकर निकलो
हादसे चेहरे की पहचान मिटा देते हैं।

महान् वैज्ञानिक प्रगति के साथ ही आज चारों ओर हिंसा तथा आतंकवाद के बादल घिरे हुए हैं। विश्व के सभी राजनीतिज्ञ, समाजशास्त्री, वैज्ञानिक तथा विचारकों को इस विनाश से बचने के लिए विश्व के सभी राष्ट्रों में अन्तर्राष्ट्रीयता और विश्वबन्धुत्व की यथार्थ भावना का विकास करना होगा। आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप की यथार्थ भावना का विकास करना होगा। आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप विश्व के सभी राष्ट्र एक दूसरें के बहुत निकट आ गये हैं। यह निकटता राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सभी क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से प्रकट होती हैं। यदि देखा जाय तो एक राष्ट्र का सुख-दुःख सारे विश्व का सुख-दुःख बन सकता है। सभी राष्ट्र एक दूसरे से इतने सम्बद्ध तथा परस्पर इतने आश्रित हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये हैं कि अकेला कोई भी राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों के सहयोग और सद्भावना के बिना सुख-शान्ति और समृद्धि की कल्पना नहीं कर सकता।

राष्ट्रों में परस्पर सहिष्णुता एवं सहयोग की भावना को अन्तर्राष्ट्रियता की भावना कहते हैं। इसका लक्ष्य प्रत्येक राष्ट्र को एकाकीपन और संकीर्णता के संकुचित बन्धनों से मुक्त करके एक ऐसे वातावरण में प्रविष्ट करता है, जहाँ उसे प्रतिद्वन्द्विता के स्थान पर सहयोग, आर्थिक दासता के स्थान पर आर्थिक सम्पन्नता और राजनीतिक, सामाजिक तथा नैतिक समता का व्यवहार प्राप्त हो सके।

मानवता के प्रति व्यक्ति के कर्त्तव्यों की सीमा तो निश्चित नहीं की जा सकती परन्तु कुछ प्रयास हो सकता है। संयुक्त राष्ट्र दिवस को परस्पर मिल-जुलकर मनाना चाहिए। केन्द्र सरकार के निर्देशन में जो परियोजनाएँ विभिन्न राष्ट्रों की सामाजिक, आर्थिक भौगोलिक, ऐतिहासिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों आदि के विषय में विस्तृत अध्ययन के लिए संचालित हैं उनमें सबको भाग लेना चाहिए।

हमारे देश में आने वाले विदेशी पर्यटकों का यथोचित सम्मान करते हुए हमें भ्रमण में तथा अन्य कार्यक्रमों में उनकी सहायता और मार्गदर्शन करना चाहिए। जिससे हमारे देश के प्रति अपने मन में सद्भावना लेकर वे विदेशी अपने देश लौटें इससे विश्वबन्धुत्व की भावना को बल मिलेगा तथा विदेशी ग्रन्थों और समुदायों के प्रति सहिष्णुता एवं उदारता की भावना रखते हुए उनकी शिक्षाओं को भी ग्रहण करना चाहिए। जब कभी किसी देश पर कोई दैवी विपत्ति हो तो हमें भी थोड़ा धन संचय करके राजकीय सहायता-कोष भेजकर अपना योगदान देना चाहिए। इससे उस राष्ट्र या देश के निवासियों में भी हमारे प्रति आत्मीयता की भावना का उदय होगा। राजनीतिक स्तर पर भी हमें साम्राज्यवाद, पूँजीवाद उग्रवाद तथा आतंकवाद की भावना का विरोध करना चाहिए। हमें स्वार्थ की भावना को त्याग कर लोकमंगल तथा कल्याण की भावना को अपनाना होगा तभी सच्चे अर्थों में हम मानव बन सकेंगे। लोक कल्याण की कामना तथा विश्वबन्धुत्व की भावना का उद्घोष तो हमारे ऋषि, मुनियों ने भी किया था-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

हम भारतवासी तो वैदिककाल से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना में विश्वास रखते आये हैं। अपने और पराये का भेद करना क्षुद्र चित्त वाले प्राणियों की पहचान है। उदार चरित्र वाले मनुष्यों की दृष्टि में तो यह समस्त वसुधा ही एक कुटुम्ब है। वैदिक प्रार्थना में समष्टि भावना का पूर्ण सामाज्य विराजमान है। वैदिक ऋषि व्यष्टि के कल्याण के लिए ही ईश्वर से प्रार्थना नहीं करता बल्कि वह समग्र समष्टि के मंगल के लिए आशीर्वाद चाहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह व्यक्ति तथा समाज से ऊपर उठकर समस्त विश्व के सुख-समृद्धि तथा मंगल के निमित्त ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ हम सबके दुर्गुणों, दुर्विचारों, दु:खदायी तत्वों को दूर करके शुभ विचार, शुभ तत्व तथा सद्गुण आदि हमें प्रदान करने की कामना करता हैं।[1]

संसार में मानव के कर्तव्यों का निर्देशक वेद से बढ़कर और कोई ग्रन्थ नहीं हैं। वेदो का किसी देश, जाति या समाज से सम्बन्ध नहीं है, अत: वे मानवमात्र के लिए हैं। वेदों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें मनुष्य की सभी समस्याओं का समाधान है। जीवन में जिन उपयोगी तत्वों की आवश्यकता है उनका विस्तृत वर्णन वेदों में प्राप्त होता हैं यदि हम सब वेदों में वर्णित सभी निर्देश जो मानवमात्र के लिए हैं उनको आत्मसात कर लें तो चारों ओर परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व में बन्धुत्व और शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है। यजुर्वेद में तो ऋषि चारों ओर सम्पूर्ण विश्व में शांति की प्रार्थना करता है।[2]

पाद-टिप्पणियाँ :-

1. यजु० 47/7
2. ऋ० 1/89/1
   यजु० 25/14
3. ऋ० 1/10/7
   यजु० 13/28
4. यजु० 36/18
5. ऋ० 10/141/4
   यजु० 33/86
   अथर्व० 3/20/6
6. ऋ० 7/76/5
7. ऋ० 7/100/2
8. ऋ० 1/114/7
   यजु० 16/15
9. अथर्व० 7/52/2
10. अथर्व० 7/52/1
11. अथर्व० 12/1/45
12. भवि० पु०, ब्रह्मपर्व, 43/27-28 आदि
    भवि० पु०, ब्रह्मपर्व, 42/22-24 पृ० 66
    गीताप्रेस, गोरखपुर
13. यजु० 3/26
14. ऋग्० 10/162/2
    अथर्व० 6/64/1
    ऋग्० 10/191/2
15. ऋग्० 10/191/4
    अथर्व० 6/64/3
16. अथर्व० 3/30/1
17. अथर्व० 3/30/5-6
18. ऋग्वद 10/117/4
    महा० शन्तिप० 10/3/50
    कामन्दकीय नीतिसार 4/72
19. ऋग्वेद 10/71/6
20. अथर्व० 6/32/3
21. ऋग्वेद 1/27/13
    ऋग्वेद 5/60/5
22. यजु० 9/22
23. ऋग्० 5/82/5
    यजु० 30/3
24. यजु० 36/27

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदासग्रन्थेषु हिमालय-वर्णनम्

डॉ0 महावीर अग्रवाल
उपकुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयः, हरिद्वारम्

प्राचीनतमे वैदिक साहित्ये, वैदिक संहितासु, रामायण-महाभारत प्रभृतिषु महाकाव्येषु संस्कृत नाटकेषु गीतिकाव्येषु यत्र तत्र महीभृतां पर्वतानां विविधं वर्णनं पाठं-पाठं वयमानन्दातिरेकमनुभवामः। ऋग्वेदे प्रातः वन्दनीयाः वैदिकाः ऋषयः उद्गायन्ति -

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

विश्वविश्रुते अथर्ववेदस्य पृथिवी सूक्ते हिमाच्छादिताः शिखरिणः भृशं स्तूयन्ते-

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।

रामणीयकत्वेन पूरिपूर्णानि पर्वतानि कस्य चेतसि आनन्दसन्दोहं न जनयन्ति? आदि कविः वाल्मीकिः, महर्षि वेदव्यासः अन्ये चापि रससिद्धाः कवीश्वराः नगेन्द्राणां चारुचित्रणे स्वीयां रसमयीं कवितां धन्यामकार्षुः। तत्रापि च नगाधिराजस्य हिमवतोऽनवद्यं सौन्दर्यं सर्वान् एव काव्यरसिकान् हर्षातिशयं प्रयच्छति।

वयं जानीमो भारतरत्नभूतेषु महाकविषु कविकुलगुरुः कालिदासः अन्यान् सर्वान् अतिशेते कवीश्वरान्। अस्य महाकवेः सर्वाणि महाकाव्यानि, नाटकानि, गीतिकाव्यानि च पठित्वा वयम् आनन्द-सागरे निमज्जिता भवामः।

महाकविरसौ प्रकृतिचित्रणे महतीं कीर्तिं प्राप्तवान्। प्रकृतिचित्रणे सरितां, सागराणां, पर्वतानाञ्चापि वर्णने तस्य मनः अतितरां रमते। नगेषु नगाधिराजस्य हिमवतः सौन्दर्यं दर्शं-दर्शं कालिदासोऽनुपमं हर्षातिरेकं विन्दते। मधुरया, रससिक्तया, भावप्रवणया गिरा च हिमालयस्य गौरवं गायति। हिममण्डितस्य, देवानामाश्रयभूतस्य, पृथिव्या अलंकारभूतस्य पर्वतराजस्यास्यसुषमा कं जनं नानन्दयति? विश्वविश्रुतस्य कुमारसम्भवमहाकाव्यस्यादावेव मंगलाचरणरूपे पद्ये कालिदासः हिमालयं प्रणमन् उद्गायति-

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

पर्वतराजोऽयं पृथिव्याः मानदण्डभूतः। हिमाच्छादनात् हिमालय इति नाम्ना लोके प्रसिद्धिं गतः। अन्ये सर्वेऽपि गिरयः अमुं हिमालयं वत्सं विधाय दोहन क्रिया चतुरं च सुमेरुं मुख्यं दोहकं कृत्वा राज्ञा पृथुना उपदेशतो दित्सुताभावमापादितां गोरूपधरां धरणीं क्षीररूपेण परिणतां पद्मरागादि विविध मणीन्, स्वजाति श्रेष्ठ वस्तूनि संजीवनादि महौषधींश्च दुदुहुः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौस्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्॥

अपरिमित रत्नोद्पादकक्षमस्य अस्य पर्वतराजस्य सुषमां सौभाग्यं वा तुषारजनितं शैत्यमपि स्वल्पीकर्त्तुं नार्हति। यथा जगदाह्लादकस्य चन्द्रमसः किरणेषु कलङ्करूपो दोषः स्वयमेव तिरोभवति-

अनन्तरत्न प्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः॥

किञ्चास्य हिमवतः सानुषु गैरकादि धातूनां नानावर्णानि शिलाखण्डानि विद्यन्ते, कदाचित् तेषां शिलाशकलानां सामीप्यं प्राप्तानि मेघखण्डानि तेषां छाया संक्रमनेन सान्ध्यमेघानीव दृष्टिपथमायान्ति, तां रक्तां मेघकान्तिं सन्ध्याकालमिवमन्यमानाः अप्सराः ससंभ्रमं सांयकालीन नृत्यार्थ शृङ्गार प्रक्रियां प्रारभन्ते -

यश्चाप्सरो विभ्रम मण्डनानां संपादयित्रीं शिखरैर्विभर्ति।
बलाहकच्छेदविभक्तरागाामकालसंध्यामिवधातुमत्ताम्॥

अत्र पर्वते निवसन्तः सिद्धाः सर्वऋतूनामानन्दम् अनुभवन्ति। अस्य नगाधिराजस्य सानूनि उन्नतानि सन्ति, वारिवाहा अपि शिखराणि अप्राप्य मध्यभागमेव प्राप्नुवन्ति, ततः आतपखिन्नाः सिद्धाः अधोभागे छाया-आनन्दं लभन्तः वर्षाकाले भयभीताः सन्तः तस्य नगाधिराजस्य शृङ्गाणि आश्रयन्ते -

आमेखलं संचरतां घनानां छायामधः सानुगतां निषेव्य।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृङ्गाणि यस्यातपविन्त सिद्धाः॥

यथा लोके कश्चिज्जनो मुखनिर्गतेन वायुना वेणुमापूर्य उद्गास्यतः पुरुषस्य गेयस्वराणां तान प्रदायी भवति तथैव एषो हिमाद्रिरपि कन्दर निर्गतेन वायुना कीचक रन्ध्राणिं पूरयन् उद्गास्यतां किन्नराणां तानपुरत्वं कामयत इव। यथा-

यः पूरयन् कीचकरन्ध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन।
उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तान प्रदायित्वमिवोपगन्तुम्॥

पर्वतराजेऽस्मिन् गुहासु रजन्यां देदीप्यमानाः तृणज्योति प्रभृतयो वनौषधयः प्राचुर्येण भवन्ति। अतः प्रियतमाभिः सह विचरतां किरातादि वनेचराणां कृते एताः प्रकाशमानाः वनौषधयः रतिक्रीडा समये अनपेक्षित तैलपूरणाः प्रकृष्ट दीपा एव भवन्ति-

वनेचराणां वनिता सखानां दरीगृहोत्सङ्ग निषक्तभासः।
भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः॥

हिमाद्रे सुदीर्घ गुहासु दिन्यान्यपि तमसाच्छादितानि भवन्ति। यथा उलूकः दिवाकरात् भीत-भीतः गुहामाश्रयते, तथैव महीभृतां श्रेष्ठोऽयं पर्वतराजः अन्धकारं रक्षत्येव यथा महान्तो जनाः शरणागतं क्षुद्रमपि जनं श्रेष्ठं जनमिव आत्मीयं मन्यन्ते। तद्यथा -

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवाकराद् रक्षति यो गुहासु लीनं दिवा भीतमिवान्धकारम्।
क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममुत्वमुच्चैः शिरसां सतीव॥

कुमारसम्भवस्येदं हिमालय वर्णनम् अतीव हृद्यं, रुचिकरं, रमणीयतमञ्चापि विद्यते। कानिचित् पद्यानि श्रवणयोग्यानि वर्तन्ते।

भागीरथी निर्झर सीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः॥
यज्ञाङ्ग योनित्वमवेक्ष्य यस्य सारं धरित्रीधरणक्षमं च।
प्रजापतिः कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत्॥

महाकविः कालिदासः यथा कुमारसम्भव महाकाव्ये सप्तदश पद्येषु अतीव रुचिरं चित्रणमकरोत् तथैव विश्वविश्रुते मेघदूतेऽपि हिमालयस्य रमणीयानि चित्राणि सहृदयं जनमानन्दयन्ति। तद्यथा -

आसीनानां सूरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां,
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः।
वक्ष्यस्यध्वश्रम विनयने तस्य शृङ्गेः निषण्णः,
शोभां शुभ्रत्रिनयन वृषोत्खातपङ्कोपमेयाम्॥ (पूर्वमेघ -56)
तं चेद् वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा,
बाधेतोल्काक्षपितचमरीवालभारो दवाग्निः।
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारा सहस्रैः,
आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्॥ (पूर्वमेघ -57)

कविकुलगुरोः कालिदासस्य सर्वेषु ग्रन्थेषु प्रसिद्धतमं नाटकं अभिज्ञान शाकुन्तलं षष्ठाङ्के राज्ञः दुष्यन्तस्य मुखेन हिमालयस्य पावनानां प्रत्यन्त पर्वतानां मालिन्याः सरितायाश्च चारु चित्रण श्रूयताम् -

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी,
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः,
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्॥

सत्यम्। अगम्य अनुभावोऽयं शैलराजः। यो महतां गुणैकनिलयानां परमतत्त्वैकलयानां वेदविदुषां परमात्मजुषां पापमुषां विदुषां परम पावनं मन्दिरम्। अस्यैव हिमवतः चरणारविन्देषु महाराजा दिलीपः पुत्रप्राप्त्यर्थं स्वमहिष्या सुदक्षिणया सह कामधेनुं नन्दिनीं सिषेवे। प्रसन्नायाः तस्याः नन्दिन्याः आशीषा रघुं तनयमवाप।

एवं कालिदासग्रन्थेषु हिमालयस्य निसर्गरमणीयं, हृदयावर्जकं वर्णनम् अधीत्य वयम् अतितरां प्रसीदामः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''कालिदास विरचित मेघदूत में लोक-विश्वास''

पराक्रम सिंह
हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय
उज्जैन (म०प्र०) 456 010

भारत की सांस्कृतिक चेतना अत्यन्त ही चितेरी रही है। मुख्य रूप से उनकी लोक संस्कृति के प्रति निष्ठा भारतीय रचनाकारों में कहीं अपेक्षा कृति अधिक रही है। 'लोकवेदच' सूत्र को अपने महाकाव्य में भूतिम ही नहीं किया 'लोकवेद की बड़ेरों' कहकर समरसता वादी दृष्टि की ओर अपनी स्पष्ट प्रतिबद्धता भी प्रकट किया। जहाँ कालिदास ने अपनी रचनाओं को शीर्ष पर ले जाकर स्थापित करने का प्रयास किया वहीं दूसरी तरफ लोकमत की भी प्रतिष्ठा करते दिखलाई पड़ते कालिदास की रचनाओं में लोक सुसंस्कृति का सौन्दर्य समूची सम्भावनाओं के साथ रूपायित हुआ हैं।

लोक-संस्कृति के वर्ण्य विषयों में लोकविश्वास का भी विशिष्ट स्थान रहा है। पाश्चात्य लोक-विदों में 'श्रीमती सोफिया बर्न', स्पिनोजा तथा एलेक्जेंडर एच.एवं भारतीय विद्वानों में डॉ० सतेन्द्र, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पं० रामनरेश त्रिपाठी आदि ने लोक-विश्वास को लोक-संस्कृति को महत्वपूर्ण अंग के रूप में विवेचित किया है। वसंत निरगुणे के अनुसार ''किसी वस्तु घटना, प्रकृति, व्यवहार, जीवन-मृत्यु, आदि पर लोकजन समूह स्वाभाविक भरोसा करता है, यही व्यापक विश्वास कहलाता है।''[1]

वस्तुत: लोक-विश्वास का ही रूपायत लोक-संस्कृति के अन्य उपकरणों में घटित हो रहा है। डॉ० श्यामचरण दुबे ने लोक-जीवन में इसकी महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि - लोक-विश्वास और दंत कथाओं में दृश्य-अदृश्य जगत् (संसार) के प्रति जन साधारण का दृष्टिकोण प्रतिबिम्बित होता है। उनकी ही नींव पर समाज के आचार-विचार आश्रित होते हैं। इन लोक-विश्वासों में लोक-जीवन की भौतिक एवं धार्मिक चेतना का मूल स्रोत निहित होता है। अन्तत: यह मानव समुदायों के सांस्कृतिक दृष्टिकोण एवं जीवन मूल्यों को निर्धारित कर लोक-जीवन को स्थिरता और स्थायित्व देते हैं।

लोक-विश्वास के सम्बन्ध में **डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय** ने बतलाया है कि - ''ब्रह्मा की सृष्टि में यावत पदार्थ दृष्टिगोचर होता है वे समर्थ क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं जो अगोचर पदार्थ भी है। जैसे स्वरस, मन की प्रसन्नता एवं उदासी तथा अव्यमनस्कता आदि वे सभी लोक-विश्वास तथा अंध परम्पराओं के ताने-बाने से बुनी हुई पायी जाती हैं।''[2]

इस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक समाज में लोक-विश्वास देखने को मिलता है। लोक-विश्वास के मत में फ्रांस के विद्वान् आनातोले ने माना हैं कि - ''राष्ट्र अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-विश्वास पर जीवित रहते हैं। अपनी लोकगाथाओं से वे जीवन के लिए आवश्यक विचार ग्रहण करते हैं। उन्हें अधिक की आश्वयकता नहीं होती है, थोड़ी सी ही उपदेशात्मक कथाएं ही लाखों प्राणों को प्रेरणा देने के लिए यथेष्ट होती हैं।''[13]

लोक-विश्वास का वर्णन अमेरिका के प्रसिद्ध लोक-संस्कृति विद् प्रोफेसर एम.आर. डारसन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक - ''अमेरिकन फोकलोर'' में किया है। उन्होंने अपनी इस पुस्तक में ऐसेअनेक लोक-विश्वास को उद्घाटित किया है, जो आज के समाज में बहुमान्य है।

लोक-विश्वास की उत्पत्ति का मुख्य कारण है ज्ञान का अभाव, भय, आत्म-रक्षा की प्रतृप्ति तथा दैवीय शक्ति में विश्वास। लोक-संस्कृति के प्रसिद्ध विद्वान् नोलसन अज्ञानता के वातावरण में लोक-विश्वास की उन्नति मानते हैं। भय इसका दूसरा कारण मानते हैं। डब्लू. जी. सुमनेर ने लोक-विश्वास की उत्पत्ति का निर्माण अकस्मात् अथवा मिथ्या ज्ञान पर आश्रित, असंगत विवेकहीन क्रिया के कारण हुआ माना है। इसी प्रकार से लोक-विश्वास के सम्बन्ध में वसंत निरगुणे ने बतलाया है कि लोक समाज लोक विश्वासों से प्राप्त निर्णयों, आज्ञाओं, मार्गदर्शनों और संकेतों को सर्वोपरि मानकर जीवन की रहा प्रशस्त करता है। लोक-विश्वास का नैतिक आचरण की पाठशालाएँ हैं। लोक-विश्वास जीवन के अंधेरे में प्रकाश स्तम्भ की तरह मार्ग दिखलाते हैं। ''जीवन की जटिलतम उलझनों को सरलता से सुलझाने का कार्य लोक-विश्वास करते हैं। कई मामलों में लोक-विश्वास तर्क पूर्ण ढ़ंग से हल प्रस्तुत करते हैं, न्याय करते हैं, स्पष्टीकरण देते हैं।''[14]

लोक-विश्वास लोक-जीवन के साथ विभिन्न लोकायिक्तियों, लोकगीत, लोककथा, गाथा, लोकोक्ति, लोक-चित्र व शिल्प आदि रूपों में मूर्त होते हैं। अनेक लोक संस्कृति विदों ने लोक-विश्वासों का वर्गीकरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया जिसमें मुख्य रुप से वराहमिहिर, सोफिया, स्पिनोसा, एलेक्जेंडर, कृष्णदेव उपाध्याय आदि ने वर्गीकरण अनेक आधार पर किया है, जो इस प्रकार है - आकाशीय पिण्ड सम्बन्धी, पृथ्वी सम्बन्धी, जीवधारी सम्बन्धी, वनस्पति जगत्, पशु-पक्षी, पेड़ सम्बन्धी, ज्योतिष सम्बन्धी, रोग औषधि सम्बन्धी, व्रत-पर्व-उत्सव-तीर्थ सम्बन्धी, मानव शरीर सम्बन्धी, सामान्य वस्तु सम्बन्धी, शकुन-अपशकुन सम्बन्धी आदि लोक सम्बन्धी विश्वास कहीं न कहीं मनुष्य जीवन पर केन्द्रित होते हैं। आकाशीय पिण्ड सम्बन्धी लोक-विश्वास का तुलसीदास जी ने रामजन्म पर बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है। ''जोग लगन ग्रह वार, तीथि सकल भये अनुकूल तथा नौवमी तिथि मधुमास पुनीता सुकुल पक्ष अभिजात प्रिता'' कहकर राम के बारे में बताने का प्रयास किया है।

महाकवि कालिदास को अपनी रचनाओं के माध्यम से ''उपमा कालिदासस्य'' का श्रेय प्राप्त होता है। वे अपने खण्ड-काव्य मेघदूत में जहाँ अलंकारों रसों उपमाओं का बेजोड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोग यक्ष-यक्षणी, मेघ के माध्यम से प्रयोग किया, वह दूसरी तरफ लोक-विश्वास का वर्णन प्रचुर मात्रा में किया है। जैसा, यज्ञ के प्रति लोक-विश्वास देखने को कालिदास की रचनाओं में मिलते हैं -

''यज्ञश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु,
स्निग्धच्छायातरुषु वासति रामगिर्याश्रमेषु''[15]

उपरोक्त श्लोक में जनकतनया कहकर कालिदास यह बता देना चाहते हैं, कि जो यह जल पवित्र हुआ है, यह सीता के यज्ञ भूमि के उत्पन्न होने के कारण हुआ है, जैसा कि आज भी हम यज्ञ को पवित्र मानते हैं।

इसी प्रकार से कालिदास पुष्पों के प्रति अपनी श्रद्धा एवं शुभ कार्य करने के लिए अपने इष्ट की पूजा अर्चना करने के लिए निर्देशित करते हैं। जैसा कि अपने मेघदूत में यक्ष के द्वारा मेघ के प्रति श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए वर्णन किया है -

''सप्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै''

इसी प्रकार से कालिदास ने पशु-पक्षी सम्बन्धी लोक-विश्वासों को भी उद्घाटित करके शुभ-अशुभ पर विचार किया है -

''मन्दम्-मन्दम् नुदति पवनश्चानुकूलो यथात्वां,
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।''

एक स्थान बादलों के साथ आकाश में बगुलों का उड़ना कार्य सिद्धि का सूचक बतलाते हुए गर्भधारण की ओर संकेत करते हुए कहा है -

गर्भाधानक्षण-परिचयान्नूनमाबद्धमालाः,
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः॥''[17]

इसी प्रकार से कालिदास ने कबूतर के घर में पालने से किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है ऐसे में वे यक्ष पत्नी के भवन में कबूतर को निवास का उल्लेख करते हुए कहा है - ''तां कस्यांचित् भवन बलभौ सुप्तपारावतायाम्''

उपर्युक्त श्लोक के माध्यम से कालिदास ने ऐसे समय पर यात्रा करने के लिए शुभ बताया है कि जब चातक पक्षी बायीं ओर हो। इसी तरह मयूर पक्षी की वाणी को शुभकर बताया गया है -

''शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः।
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत्॥''[18]

कालिदास ने विशेष नक्षत्र में वर्षा को पक्षियों के लिए शुभकर बताया -

''अम्भोबिन्दुग्रहण चतुरांश्चातकान् वीक्षमाणाः''

उपरोक्त श्लोक से यह स्पष्ट होता है कि जहां स्वाति नक्षत्र की जल की बूंदे चातक के लिये लाभदायक होते हैं वहीं मानव समुदाय के लिये भी लाभकारी होती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास अपने मेघदूत में रोग-औषधि सम्बन्धी लोक-विश्वासों का भी वर्णन करते हैं वे जामुन के फल को स्वास्थ्य के लिये लाभदायक बताते हैं -

''तस्यास्तिक्तैर्वनगजम दैर्वासितम् वान्तवृष्टि,
र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः।''[9]

जो आज भी मानव स्वास्थ्य के लिए लाभदायक सिद्ध हो रहे हैं। कालिदास ने योग-व्यायाम, आसन, रसापन और वासीकरण योग के द्वार, चिर यौवन और उत्तम स्वास्थ्य के लिये संकेत किया है। जैसा कि आज भी उसकी उपादेयता है।

इसी प्रकार कालिदास ने मानव शरीर सम्बन्धी लोक-विश्वास के रूप में उद्घाटित किया है।

''त्वस्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्केमृगाक्ष्या।
मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति॥''[10]

प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से कालिदास ने स्त्रियों के बायें अंग का फड़कना शुभकर बताया है, जिसकी आज भी प्रासंगिता दिखायी देती है।

उपर्युक्त तत्वों को देखते हुए कहा जा सकता है कि जहाँ कालिदास ने अपनी रचना मेघदूत में पशु-पक्षी, वनस्पतियों, प्राकृतिक स्थानों और यात्रा मार्गों को उद्घाटित किया है वहीं दूसरी तरफ शुभ-अशुभ जैसे लोक--विश्वास का भी वर्णन किया है जो कि आज भी समाज में किसी रूप में विद्यमान है।

पाद - टिप्पणियाँ

1. डॉ० शैलेन्द्र कुमार शर्मा - 'तुलसी प्रभा' पत्रिका में प्रकाशित आलेख गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में लोक-विश्वास प्रतिफलित अगस्त 2000
2. कृष्णदेव उपाध्याय - लोक साहित्य की भूमिका
3. डॉ० शैलेन्द्र कुमार शर्मा - वहीं पृ० 42, अगस्त 2000
4. डॉ० शैलेन्द्र कुमार शर्मा - वहीं पृ० 43
5. डॉ० विजेन्द्र कुमार शर्मा - मेघदूतम्, साहित्य भण्डार मेरठ, सन् 1999 पूर्व मेघ - पृ. 1
6. डॉ० विजेन्द्र कुमार शर्मा - वहीं पृष्ठ -8
7. डॉ० विजेन्द्र कुमार शर्मा - वहीं पृष्ठ -18
8. डॉ० विजेन्द्र कुमार शर्मा - वहीं पृष्ठ -39
9. डॉ० विजेन्द्र कुमार शर्मा - वहीं पृष्ठ -35
10. डॉ० विजेन्द्र कुमार शर्मा - वहीं उत्तरमेघ, पृ० 55
11. डॉ० हरीश प्रधान - सांझी लोकमानस अकादमी, 1999, अंक-10
12. डॉ० हरिशंकर त्रिपाठी - मेघदूत वृत्तम, कानपुर वर्ष-2007

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारतकालीन समाज एवं नृत्यकला

डॉ० सुषमा देवी गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय
जम्मू-180006

महाभारत संस्कृत वाङ्मय का वह अपूर्व ग्रन्थ है, जिसे भारतीय संस्कृति का विश्वकोश कहा जाता हैं। विद्वानों ने महाभारत को ऐसा महासागर माना है, जिसमें असंख्य ज्ञान सरितायें मिलकर इस भांति एक प्राण हो गई हैं कि "यत्रेहास्ति न तत्क्वचित्" वाली उक्ति सर्वथा सत्य प्रमाणित हो जाती है। एक ओर महाभारत भारत राष्ट्र का आर्ष धर्मग्रन्थ है तो दूसरी ओर वह इतिहास-पुराण और महाकाव्य भी है। इतना ही नहीं अपितु भारतीय वाङ्मय का महनीय मुकुट ही है। मानव-जीवन की आकांक्षा का ऐसा कोई विषय नहीं है, जिसका उल्लेख इस ग्रन्थ में न हो और जिसकी प्राप्ति के साधनों का प्रतिपादन न किया गया हो। मनुष्य की समस्त मनोकामनाएं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में समाहित हैं, जिन्हें हमारे वाङ्मय में चतुर्विध पुरुषार्थ के रूप में अभिहित किया गया है। इन पुरुषार्थों के सम्बन्ध में महाभारतकार का कहना है कि-

'धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च पुरुषर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥'

अर्थात धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के विषय में ऐसी कोई बात नहीं हो सकती जो महाभारत में न कही गई हो। उनके सम्बन्ध में इस ग्रन्थ में जो कुछ कहा गया है, उसी का आंशिक उल्लेख अन्य ग्रन्थों में प्राप्य है और जो बात इस ग्रन्थ में नहीं कही गई, वह अन्य ग्रन्थों में प्राप्त नहीं है।

भारत की उज्ज्वल ज्ञान प्रभा का यह अमर स्मारक और उच्चादर्शों का मुकुर मनुष्य को भौतिक जीवन की निःसारता दिखाकर मोक्ष मार्ग की ओर प्रवृत्त एवं प्रेरित कर देता है। महाभारत संसार भर के अमूल्य ग्रन्थों में से एक ऐसा ग्रन्थ है जिससे भारतीय जन-जीवन की प्राचीन सामाजिक, सांस्कृतिक, एवं राष्ट्रीय परम्पराओं तथा विचारधाराओं को समझने एवं अध्ययन करने के लिए उपयुक्त सामग्री मिलती है और जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में इससे आज भी प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है।

इस ग्रन्थ में महामुनि व्यास ने वैदिक संस्कृति तथा विचार-धारा को लोक जीवन में अवतरित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। वैदिक युग में यज्ञ-यागों के समय सम्पादित होने वाले नृत्य-गीतादि आयोजनों का विशद रूप भी इस ग्रन्थ में देखने को मिलता है। वेदों और वैदिक साहित्य के बाद रचे गये विभिन्न ग्रन्थों में बिखरी हुई नृत्य-कला विषयक सामग्री के

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में ही नृत्य कला की शिल्प विधियों का पूर्णतः विकास हो चुका था, और समाज के सभी वर्गों द्वारा उसको मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। जन जीवन की ही भांति साहित्य के क्षेत्र में भी उसको व्यापक रूप में अपनाया जाने लगा था। इस प्रकार के ग्रन्थों में अष्टाध्यायी की सामग्री का विशेष महत्व है। उसके बाद रामायण, महाभारत, अर्थशास्त्र, पुराण, महाभाष्य, जैन-बौद्धों के ग्रन्थ और कामसूत्र आदि का नाम उल्लेखनीय है। इन ग्रन्थों में नृत्यकला के प्रयोग और प्रसार का ही नहीं, वरन् उसकी पारिभाषिक शब्दावली का भी उल्लेख हुआ है।

महाभारत के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि उस युग में संगीत और नृत्य आदि कलाएं किसी वर्ग विशेष की वस्तु न रह कर सामान्य लोक रुचि का विषय बन चुकी थीं। इस ग्रन्थ के अनुशीलन से यह भी विदित होता है कि कौरव-पाण्डवों की पुरातन कथा को मौलिक रूप में सुरक्षित रखने और उसको समाज में प्रचलित करने का कार्य भी तत्कालीन कुशीलवों (नट-नर्तक-गायकों) और चारणों ने किया।

इस दृष्टि से यदि महाभारत का अध्ययन किया जाय तो उसमें नृत्य कला-विषयक प्रचुर सामग्री देखने को मिलती है। महाभारत के प्रधानपात्र श्री कृष्ण नृत्य-संगीत आदि कलाओं के अधिष्ठाता माने जाते हैं। श्रीकृष्ण के ''छालिक्य नृत्य'' और ''वेणु वादन'' के साथ ब्रजनारियों द्वारा उसका प्रयोग भागवत सम्प्रदाय और विशेष रूप से श्रीमद्भागवत में देखने को मिलता है। नृत्य एवं संगीत ब्रजनारियों के प्रिय विषय थे। श्रीकृष्ण उनके अधिष्ठाता एवं प्रेरणा-स्रोत थे। श्रीकृष्ण एवं गोपियों की रासक्रीड़ा भारत की लोक-नाट्य-परम्परा का स्रोत मानी जाती है। आचार्य नन्दिकेश्वर के अभिनयदर्पण के अनुसार लोक-जीवन में नाट्यवेद की परम्परा का प्रवर्त्तन ब्रजवनिताओं द्वारा हुआ।[1]

यह भक्ति-प्रधान युग था। इस युग में ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओं की पूजा-अर्चना तथा इसी प्रकार के महोत्सवों के समय नृत्य-गान की परम्परा प्रचलित थी। राज-दरबारों में कला और कलाकारों का विशेष आदर-सम्मान था। रानियां और राजकन्याएं नृत्य-संगीत तथा चित्र, तीनों कलाओं में अभिरुचि रखती थीं। अर्जुन के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि एक वर्ष के अज्ञातवास काल में वह छद्म वेश में राजा विराट के यहां रहे तथा वहां उन्होंने राजा विराट की कन्या को नृत्य-संगीत की शिक्षा दी थी। इस आधार पर अर्जुन की कला प्रवीणता का भी पता चलता है।

महाभारत के अट्ठारह पर्व हैं और अधिकतर पर्वों में नटों-नर्तकों, अप्सराओं, वेश्याओं, रानियों, राजकुमारों, राजकुमारियों, ग्वाल-बालों, सैनिकों एवं साधारण लोगों यथा दास-दासियों आदि द्वारा नृत्य के आयोजन एवं प्रदर्शन करने के स्थान-स्थान पर उल्लेख एवं वर्णन उपलब्ध होते हैं जिनका विवरण महाभारत के पर्वों के अनुसार इस प्रकार है:-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1. **आदिपर्व:-** महाभारत के ''आदिपर्व'' में दुष्यन्त शकुन्तला के पुत्र भरत के उत्पन्न होने पर अप्सराओं द्वारा नृत्य किये जाने का उल्लेख हुआ है कि ''उस समय आकाश से उस बालक के लिये फूलों की वर्षा हुई, देवताओं की दुन्दुभियां बज उठीं और अप्सराएं मधुर स्वर में गाती हुई नृत्य करने लगी।''[2]

आदिपर्व के ही 'सम्भवपर्व' से ज्ञात होता है कि अर्जुन के जन्म लेने पर झुंड के झुंड देवता वहां एकत्र होकर अर्जुन की प्रशंसा करने लगे। कद्रु के पुत्र, (नाग), विनता के पुत्र (गरुड़ पक्षी) गन्धर्व, अप्सराएं, प्रजापति, सप्तर्षिगण-भारद्वाज, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ तथा जो नक्षत्र के रूप में सूर्यास्त होने के पश्चात् उदित होते हैं, वे भगवान अत्रि भी वहां आ गयें। मरीचि और अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु एवं प्रजापति, दक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराएं भी आयीं। उन सबने दिव्य हार, और दिव्य वस्त्र धारण कर रक्खे थे। वे सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित थे। अप्सराओं का पूरा दल वहां जुट गया था। वे सभी अर्जुन के गुण गाने और नृत्य करने लगी।[3]

इसी प्रकार समस्त आभूषणों से विभूषित बड़े-बड़े नेत्रों वाली परम सौभाग्य शालिनी अप्सराएं भी हर्षोल्लास में भरकर वहां नृत्य करने लगीं। अनूचाना और अनवद्या, गुणमुख्या एवं गुणावरा, आद्रिका तथा सोमा, मिश्रकेशी और अलम्बुषा, मरीचि और शुचिका, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अम्बिका, लक्षणा, क्षेमा, देवी, रम्भा, मनोरमा, असिता और सुबाहु, सुप्रिया एवं वपु, पुण्डरीका एवं सुगन्धा, सुरसा और प्रमाथिनी, काम्या तथा शारद्वती आदि झुंड-की-झुंड अप्सराएं नृत्य करने लगी।[4]

इसी आदिपर्व के 'सुभद्राहरणपर्व' में रैवतक पर्वत पर वृष्णि तथा अन्धक वंश के लोगों द्वारा आयोजित उत्सव में नृत्य करने वाले लोगों द्वारा नृत्य किये जाने का उल्लेख हुआ है कि:- वहां बाजा बजाने में कुशल मनुष्य अनेक प्रकार के बाजे बजाते, नाचने वाले नाचते और गायक गण गाते थे।[5]

आदिपर्व के 'खाण्डवदाहपर्व' में यमुना तट पर विहारस्थान में बने क्रीड़ाभवन में श्रीकृष्ण एवं अर्जुन के साथ आयी उनके रनीवास की रानियों में से कुछ रानियों के द्वारा नृत्य भी किया गया था यथा-वहाँ कुछ श्रेष्ठ स्त्रियाँ हर्षोल्लास में भरकर नृत्य करने लगी। कुछ जोर-जोर से कोलाहल करने लगीं। अन्य बहुत-सी स्त्रियां ठठाकर हंसने लगीं तथा कुछ सुन्दरी स्त्रियां गीत गाने लगी।[6]

2. **सभापर्व:-** ''सभापर्व'' के चतुर्थ-अध्याय में मय दानव द्वारा निर्मित सभागृह में युधिष्ठिर के प्रवेश करने पर वहां मल्ल, झल्ल, नट, सूत और स्तुति गाने वाले सभी सात दिन तक महात्मा युधिष्ठिर की सेवा में रहे।[7] साथ ही अमात्य सहित चित्रसेन और तालल्य में चतुर तथा गाने बजाने में कुशल किन्नर और अप्सरायें निकट रहती थीं।[8] उस सभा गृह में लयस्थान तथा प्रमाण के सीखने में जिन्होनें पर्याप्त परिश्रम किया है, ऐसे किन्नर गन्धर्वो के साथ तुम्बरु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आज्ञा पाकर गाते थे। वे मनस्वी किन्नर गंधर्व आदि दिव्य तान से नियमपूर्वक गा-बजाकर पाण्डवों और ऋषियों को उस सभा में प्रसन्न करते थे।[9]

इन्द्र की सभा में इन्द्र को प्रसत्र करने के लिए मनहरणी अप्सरा और गन्धर्व भांति-भांति के नृत्य, गीत, बाजा, हंसी आदि से देवराज इन्द्र को प्रसन्न करते थे।[10] विवस्वान के पुत्र यमराज की दिव्य सभा में महात्मा गन्धर्व और सैंकड़ों अप्सरायें नाच-गान-हंसी और बाजे से उस सभा को भरती रहती थी।[11] वरुण की श्वेत तेजवाली दिव्य सभा में गाजे बाजे से युक्त होकर गन्धर्व और अप्सरागण आदि सब वरुण की स्तुति करते हुए उस सभा में रहते थे।[12]

कुबेर की श्वेतवर्ण की चमकने वाली सभा में अप्सराओं के समूह से घिरे हुए देव और गन्धर्व दिव्य तान के साथ दिव्य गीतों को गाते हैं। मिश्रकेशी और रंभा, सुन्दर और पवित्र मुस्कुराहटों वाली चित्रसेना, सुन्दर आंखोवाली घृताची, मेनका, पुञ्जिकस्थला, विश्वाची, सहजन्या, प्रम्लोचा, उर्वशी, इरा, वर्गा, गाने में कुशल सैंकड़ों और सहस्त्रों अप्सरा वृन्द, हे पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर! उस सभा में घननाथ की उपासना करते है। गन्धर्व और अप्सराओं के समूह में सुन्दर नृत्यों गीतों और बाजों से सभा दिनरात गूंजती हुई, बड़ी भरी हुई एवं सुहावनी बनी रहती हैं।[13]

इन्द्रप्रस्थ में बसने वाले ब्राह्मण अच्छी तरह सत्कृत होकर बहु भांति की कथायें कहते हुए और नटों के नाचादि को देखते हुए धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा बनवाये गए घरों में रहने लगे।[14]

युधिष्ठिर बोले-एक लाख दासियां, तरुणियां, सोने के मंगल आभूषण पहनने वाली, बाजूबन्द पहनी हुई, सोने की मालाओं को गले में पहनी हुई, अच्छी तरह सजी हुई, बहुत मूल्यवान मालाओं और आभूषणों से युक्त, उत्तम वस्त्र पहनी हुई, चन्दन से शरीर को सुंगधित किए हुई, मणियों और सोने को धारण करने वाली, सभी सूक्ष्म अर्थात् पतले कपड़े पहने हुई हैं। नृत्य और गायन में कुशल ये दासियाँ मेरी आज्ञा से स्नातक और मन्त्रियों की सेवा किया करती हैं।[15]

महाभारत काल में सार्वजनिक मनोरंजन के लिए नृत्य की अतिशय प्रतिष्ठा थी। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर नर्तकों का समुदाय लोगों का मनोरंजन करता था। यथा:- हे महाराज! वे ब्राह्मण अच्छी तरह सत्कृत होकर बहुभांति की कथायें कहते हुए और नटों के नाचादि को देखते हुए उन घरों में रहने लगे।[16]

3. **वनपर्व:**- वनपर्व के 'कैरातपर्व' से ज्ञात होता है कि द्वारिकापुरी में भी (मनोरंजन के लिए) नट नर्तक आदि नियुक्त हुआ करते थे। जब राजा शाल्व ने द्वारिकापुरी पर चढ़ाई की तब धन की रक्षा करने वाले आनर्त देशवासी पुरुषों ने नट, नर्तक, नाटक करने वाले, नाचने वाले, गाने वाले पुरुषों को शीघ्र ही नगर से बाहर जाने की आज्ञा दे दी।[17]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनपर्व के 'इन्द्रलोकाभिगमन' पर्व में अर्जुन का देवताओं द्वारा किये जाने वाले नृत्य गीत में पारंगत होने की सूचना मिलती है यथा:- अब महाबाहु और महामनस्वी अर्जुन शस्त्रों को सीखकर देवों के नाचने गाने और बाजे की विद्या में निपुण हो गये हैं।[18]

वनपर्व के 'यक्षयुद्धपर्व' में गन्धमादन पर्वत पर मयूरों के नृत्य का उल्लेख हुआ है कि वहां (गन्धमादन) पर्वत पर लता-मण्डपों में मोरनियों के साथ नाचते हुए मोर दिखाई देते थे। जो मेघों की मृदङ्ग तुल्य गम्भीर गर्जना सुनकर उद्याम काम से अत्यन्त उन्मत्त हो रहे थे। वे अपनी मधुर केका ध्वनि का विस्तार करके मीठे स्वर में संगीत की रचना करते थे और अपनी विचित्र पांखे फैलाकर विलासयुक्त मदालस भाव से वनविहार के लिये उत्सुक हो प्रसन्नता के साथ नाच रहे थे।[19]

इसी पर्व के 'निधातकवचयुद्धपर्व' में अर्जुन द्वारा स्वर्ग लोक में अप्सराओं के नृत्य को देखने का वर्णन उपलब्ध होता है। अर्जुन अपने सभी भाइयों को स्वर्गलोक के इन्द्रभवन में भोगे सुखों का विवरण सुनाते हुए कहते हैं कि नरेश्वर! उन्होंने मुझे संपूर्ण गान्धर्व वेद (संगीत-विद्या) का अध्ययन कराया। राजन! वहां इन्द्रभवन में अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा ग्रहण करते हुए मैं बड़े सम्मान और सुख से रहने लगा। वहां सभी मनोवाञ्छित पदार्थ मेरे लिये सुलभ थे। भरतश्रेष्ठ! मैं वहां कभी मनोहर गीत सुनता, कभी पर्याप्त रूप से दिव्य वाद्यों का आनन्द लेता और कभी-कभी श्रेष्ठ अप्सराओं का नृत्य भी देख लेता था।[20]

वनपर्व के ''निवातकवचयुद्धपर्व'' में युधिष्ठिर के कहने पर अर्जुन द्वारा स्वर्गलोक में शिक्षा पाये दिव्यास्त्रों के प्रदर्शन पर भी अप्सराओं द्वारा नृत्य करने की सूचना मिलती है यथा महाराज! तदनन्तर वायुदेव पाण्डुनन्दन अर्जुन पर सब ओर से विचित्र सुगन्धित दिव्य मालाओं की वृष्टि करने लगे। राजन्! देव प्रेरित गन्धर्व नाना प्रकार की गाथाएं गाने लगे और झुंड-की-झुंड अप्सराएं नृत्य करने लगी।[21]

वनपर्व के ''घोषयात्रापर्व'' से ज्ञात होता है कि महाभारत काल में वन में गाय चराने वाले गोप तथा गोपियां भी नाचने, गाने और बाजा बजाने में निपुण होती थीं यथा:- तदनन्तर नृत्य और वादन की कला में कुशल कुछ गवैये गोप तथा गहने-कपड़ो से सजी हुई उनकी कन्याएं दुर्योधन के समीप आयीं।[22]

4. **विराटपर्व:-** ''विराटपर्व'' से ज्ञात होता है कि राजभवन में नृत्य-कला को सम्मान का स्थान मिला था। राजकुमार अर्जुन ने नृत्य की शिक्षा गन्धर्वों से ली थी उन्होंने महाराज विराट के कुटुम्ब में नृत्याचार्य नियुक्त होकर राजकुमारी उत्तरा के साथ उसकी सखियों तथा परिचारिकाओं को नृत्य, गीत और वाद्य की शिक्षा दी।[23] राजा विराट के यहां नृत्य शिक्षक के रूप में रहते हुए अर्जुन ने अपने नृत्य और गीत से राजा विराट तथा उनकी रानियों को भी प्रसन्न किया था यथा:- दूसरी तरफ पाण्डु पुत्र अर्जुन ने भी अपने नृत्य और गीत से राजा विराट और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी रनिवास की सब स्त्रियों को प्रसत्र कर लिया।[24] राजप्रसाद के एक भाग में नर्तनागार था जिसकी सूचना 'विराटपर्व' के कीचकवध प्रसंग में मिलती है।[25]

''विराटपर्व'' से विदित होता है कि उस काल में वेश्याओं के भी नृत्य प्रदर्शन हुआ करते थे यथा:- जब अर्जुन राजा विराट की गौओं को कौरवों से युद्ध करके छुड़ा लाते हैं और नगर में खुशी का समाचार फैलता है तो राजा विराट की आज्ञा सुनते ही समस्त नगर में शान्तिपूर्वक कर्म होने लगे भेरी शंख और नगाड़े बजने लगे। वेश्यायें श्रृङ्गार करके नाचने लगीं।[26] ''विराटपर्व'' में उत्तरा-अभिमन्यु के विवाह के अवसर पर नट-भाट इत्यादि भी उपस्थित थे यथा:- विवाह का समाचार सुनकर अनेक देशों से नाचने गाने वाले और स्तुति करते हुए भाट लोग आये।[27]

6. **भीष्मपर्व:-** भीष्मपर्व के ''जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व'' के तृतीय अध्याय में व्यास जी के द्वारा अमङ्गल सूचक उत्पातों तथा विजय सूचक लक्षणों का वर्णन करते हुए दुधमुहीं कन्याओं द्वारा अमंगल सूचक नृत्य करने का उल्लेख हुआ है। समस्त नीच जातियों के घरों में उत्पत्र हुए काने, कुबड़े आदि बालक भी महान् भय की सूचना देते हुए जोर-जोर से हँसते, गाते और नाचते हैं।[28]

''भीष्मपर्व'' के इसी पर्व के अन्तर्गत भद्राश्ववर्ष पर्वत का वर्णन करते हुए वहां की स्त्रियों को नृत्य संगीत कला में पारंगत बताते हुए कहा गया है कि भद्राश्ववर्ष पर्वत पर निवास करने वाली स्त्रियों की अंङ्गकान्ति एवं वर्ण चन्द्रमा के समान है। उनके मुख पूर्ण चन्द्र के समान मनोहर होते हैं। उनका एक एक अङ्ग चन्द्ररश्मियों के समान शीतल प्रतीत होता है वे नृत्य और गीत की कला में कुशल होती हैं।[29]

महाभारत काल में वीर सैनिक युद्ध में विजय प्राप्त करने पर नृत्य के माध्यम से अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते थे। ''भीष्मपर्व'' में युद्ध में विजय प्राप्त करने के उपरान्त रथ, हाथी और घोड़ों सहित सोमक, पांचाल तथा पाण्डव वीर विजय पाकर बार-बार सिंहनाद करने लगे। वे सभी महारथी विजय सूचक वाद्यों की ध्वनि के साथ अत्यन्त हर्ष में भर कर नाचने लगे और अर्जुन को आगे करके शिविर की ओर चल दिये।[30]

7. **द्रोणपर्व:-** ''द्रोणपर्व'' में भगवान् महादेव के गणों के नृत्य का उल्लेख उस समय हुआ है जब अभिमन्यु का वध करने वाले जयद्रथ का वध करने की प्रतिज्ञा लेकर अर्जुन चिन्तामग्न हो जाते हैं और उस प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए मन्त्र का जाप करते-करते ही निद्रा मग्न हो जाते हैं तो स्वप्न में श्री कृष्ण आकर उन्हें जयद्रथ वध का उपाय बताते हुए विष्णु पद में गमन करते है। वहां पर भगवान् शंकर को माता पार्वती के साथ विराजमान देखते हैं जिन के सम्मुख सुन्दर मीठे मनोहर गीत और बाजों की मधुर ध्वनि हो रही थी:- हास्यनृत्य चल रहा था: सब गण कूदते, नाचते और जोर से गाते थे: पुण्य-जनक सुगन्धियों से वे सेवित थे।[31]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''द्रोणपर्व'' से ज्ञात होता है कि उस समय राजाओं को प्रात:काल जगाने के लिए वादकों और गायकों के अतिरिक्त नर्तक भी नियुक्त होते थे, जो प्रात:काल नाचकर राजा को प्रसन्न करते थे यथा:- श्रीकृष्ण और दारुक सारथि की ऐसी ही वार्तालाप में वह रात्रि व्यतीत हुई, और सवेरा हुआ: राजा युधिष्ठर भी निद्रा से जाग के सावधान हुए। उस समय में पुरुषों की करतालि से युक्त मीठे स्वर के सहित उत्तम गीत गाने वाले सूत मागध, मधुपर्किक और वैतालिक ये पुरुषश्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर की स्तुति करने लगे। गीत गाने वाले तथा नृत्य करने वाले राग-रागनियो से युक्त मधुर और मनोहर स्वरों के सहित कुरुवंश की स्तुति सूचक गीतों को गाते हुए नृत्य करने लगे। सुशिक्षित और कुशल वादक अत्यंत प्रसत्र होकर मृदङ्ग, झांझ, भेरी, ढोल, शहनाई, नरसिंहे, आडम्बर, शंख और नगाड़ा आदि बाजों को बजाने लगे। वह बादल के गर्जन के समान गंभीर और महान् शब्द आकाश को स्पर्श करने वाला: उस ध्वनि ने सोये हुए महाराज युधिष्ठिर को निद्रा से जगा दिया।[32]

''द्रोणपर्व'' से विदित होता है कि उस काल में युद्ध क्षेत्र में नृत्य के द्वारा योद्धाओं की शत्रुओं से रक्षा भी की जाती थी यथा:- अर्जुन रथ पर चढ़कर नृत्य करते हुए धनुष चढ़ाकर रथ के मार्गो पर विचरते रहे थे कि उस समय कोई पुरूष उन पर प्रहार करने का तनिक भी अवसर नहीं देख सके।[33]

8. **शल्य पर्व:**- ''शल्यपर्व'' में कार्त्तिकेय का सेनापति के पद पर अभिषेक होने के अवसर पर उनके सैनिकों द्वारा नृत्य करने का उल्लेख हुआ है कि :- प्रारब्ध से कार्तिकेय का अभिषेक देखकर यह सब युद्ध करने वाले वीर बहुत प्रसन्न हुए, फिर महान ओजस्वी वे अपने अंगो में छोटी-छोटी घण्टियां बांधकर नाचने लगे।[34] विविध प्रकार की सेना और अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित कुमार कार्त्तिकेय के युद्ध के लिए सज्जित होते ही इन्द्रादिक सब देवता कुमार कार्त्तिकेय की स्तुति करने लगे, गन्धर्व और देवता गाने लगे और अप्सराएं नृत्य करने लगी।[35]

12 **शान्तिपर्व:**- ''शान्तिपर्व'' में अप्सराओं के नृत्य का उल्लेख उस समय हुआ है जब श्री कृष्ण शरशय्या पर पड़े भीष्म पितामह को किसी भी प्रकार की पीड़ा से मुक्त होने का वरदान देते हैं यथा:- वैशम्पायन बोले-श्रीकृष्ण भगवान् ने जब भीष्म को ऐसा वरदान दिया, तब व्यासदेव सहित सब ऋषियों ने ऋक्, यजु तथा साम के मंत्रो से उनकी पूजा की। उस समय आकाश से श्रीकृष्ण गङ्गानन्दन भीष्म और पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर के ऊपर सब ऋतुओं में उत्पत्र होने वाले दिव्य फूलों के समूहों की वर्षा होने लगी। नाना भांति के दिव्य बाजे बजने लगे और अप्सराएं गीत गाती हुई नृत्य करने लगीं। उस समय वहां पर किसी प्रकार के अहितकर तथा अनिष्ट विषय नहीं दीख पड़े।[36]

''शान्तिपर्व'' के अन्तर्गत ''मोक्षधर्मपर्व'' में ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्य आश्रमों के धर्म का वर्णन करते हुए गार्हस्थ्याश्रम को नृत्य, गीत, वाद्य आदि की प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताया गया है कि ''इसके सिवा गृहस्थाश्रम में फूलों की माला, नाना प्रकार के आभूषण, वस्त्र-अङ्गराग (तेल-उबटन), नित्य उपभोग की वस्तु, नृत्य, वाद्य, श्रवणसुखद शब्द और नयनाभिराम रूप के दर्शन की भी प्राप्ति होती है। भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय और चोष्य रूप नाना प्रकार के भोजन सम्बन्धी पदार्थ खाने-पीने को भी मिलते हैं। अपने उद्यान में घूमने-फिरने का आनन्द प्राप्त होता है और कामसुख की भी उपलब्धि होती है।[37]

इसी पर्व में शुकदेव जी के जन्मोत्सव पर अप्सराओं द्वारा नृत्य करने का भी उल्लेख हुआ है यथा:- गन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। देवताओं की दुंदुभियाँ बड़े जोर-जोर से बज उठीं। विश्वावसु, तुम्बुरु, नारद, हाहा और हूहू आदि गन्धर्व शुकदेव जी के जन्म की बधाई गाने लगे।[38]

14. **आश्वमेधिक पर्व:-** ''आश्वेमेधिकपर्व'' से राजा मरुत के यज्ञ में अप्सराओं के नृत्य करने की सूचना मिलती है कि: गन्धर्वो और अप्सराओं के लिए शीघ्र ही अनेक सुंदर स्तम्भों का रंग-मण्डप निर्माण करो: उनके चढ़ने के लिए सीढ़ियां बनाओ। यज्ञशाला के जिस स्थान में हजारों अप्स्राएं नृत्य करेंगी, उसे स्वर्ग की भांति सुसज्जित करो।[39] इसी पर्व में अश्वमेध के अवसर पर भी गीत-कुशल और नृत्य-विशारद गन्धर्वो के द्वारा प्रतिदिन यज्ञ का काम समाप्त होने पर नृत्य और गायन के द्वारा ब्राह्मणों का मनोरंजन किया जाता था यथा:- गीत जानने वाले तथा नृत्यकला कुशल गन्धर्वगण अपनी कलाओं से उन ब्राह्मणों को आनन्दित करते थे।[40]

16. **मौसलपर्व:-** मौसलपर्व में नटों, नर्तकों के द्वारा नृत्य करने का उल्लेख हुआ है कि इस प्रकार उद्धव के चले जाने पर उस प्रभासतीर्थ में उग्रवीर्य यादवों के सैंकड़ो तूर्य शब्द तथा नट नर्तकों के गीतादियुक्त नृत्य होने लगे, और माहपान आरम्भ हुआ।[41]

इस भांति महाभारत के विभिन्न पर्वो के विविध प्रसंगों से ज्ञात होता है कि महाभारत काल में भी समाज के सभी वर्गो (राजवंशों तथा साधारण जनता में) नृत्य कला के प्रति गहन अभिरुचि थी। महाभारत में भी हम स्त्रियों की सामाजिक स्थिति से अवगत होते हैं कि उस समय भी केवल राजकुमारों को ही नहीं अपितु राजकुमारियों को भी नृत्य की विशेष शिक्षा दिलवाई जाती थी। यहाँ तक कि नृत्य प्रस्तुति के लिए नर्तनागारों का निर्माण भी किया गया था। महाभारत के अध्ययन से ही यह भी विदित होता है कि उस समय रानियां भी नृत्य-संगीत की ज्ञाता हुआ करती थीं तथा सामूहिक उत्सवों में भाग लेकर नृत्य कला का प्रदर्शन कर आनन्द मग्न हुआ करती थी। महाभारत का यहाँ तक मानना है कि नृत्य कला गृहस्थाश्रम के माध्यम से ही प्राप्त हो सकती है। जन्मोत्सवों, विवाहोत्सवों, राज्याभिषेक एवं यज्ञों के आयोजन के समान इस नृत्य कला का विशेष रूप से आयोजन किया जाता था। नट, नर्तक इत्यादि अपने नृत्य कौशल से सभी का मनोरंजन किया करते थे यहाँ तक कि नृत्य के द्वारा प्रात: काल राजाओं को जगाने का कार्य भी करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाद-टिप्पणियाँ :-

1. बुद्ध्वाऽथ ताण्डवं तण्डोर्मर्त्येभ्यो मुनयोऽवदन।
पार्वती त्वनुशास्ति स्म लास्यं बाणात्मजामुषाम्।।
तथा द्वारवतीगोप्यस्ताभिः सौराष्ट्रयोषितः।
ताभिस्तु तत्तद्देशीयास्तदशिष्यन्त योषितः।।
एवं परम्पराप्राप्तमेतल्लोके प्रतिष्ठितम्।।
अभिनयदर्पण, श्लोक-5/6/7.

2. तस्मै तदान्तरिक्षात् तु पुष्पवृष्टिः पपात ह।
देवदुन्दुभयो नेदुर्पनृतुश्चाप्सरोगणाः।।
गायन्त्यो मधुरं तत्र देवैः शक्रोऽभ्युवाच ह।
महाभारत, आदिपर्व, अध्याय- 74, श्लोक-3.

3. दिव्यमाल्याम्बरधराः सर्वालंकारभूषिताः।
उपगायन्ति बीभत्सुं नृत्यन्तेऽप्सरसां गणाः।
महाभारत, आदिपर्व, अध्याय-122, श्लोक-53.

4. तथैवाप्सरसो हृष्टाः सर्वालंकारभूषिताः।
ननृतुर्वै महाभागा जगुश्चयतलोचनाः।।
पुण्डरीका सुगन्धा च सुरसा च प्रमाथिनी।
काम्या शारद्वती चैव ननृतुस्तत्र सङ्घशः।
महाभारत, आदिपर्व, अध्याय-122, श्लोक-60से65 तक

5. वादित्राणि च तत्रान्ये वादकाः समवादयन्
ननृतुर्नर्तकाश्चैव जगुर्गेयानि गायानाः।।
महाभारत, अदिपर्व, ननृतुश्चुक्रुशुश्च तथापराः।

6. काश्चित् प्रहृष्टा ननृतुश्चुक्रुशुश्च तथापराः।
जहसुश्च परा नार्यो जगुश्चान्या वरस्त्रियः।
महाभारत, आदिपर्व, अध्याय-221, श्लोक- 24

7. तत्रमल्ला, नटझल्लाः सूता वैतालिका।
उपतस्थुर्महात्मानं सप्तरात्रं युधिष्ठिरम्।।
महाभारत,सभापर्व, अध्याय-4, श्लोक-5.

8. चित्रसेनः सहामात्यो गन्धर्वाप्सरसस्तथा।
गीत वादित्रकुशलाः शम्यातालविशारदाः।।
महाभारत, सभापर्व, अध्याय-4, श्लोक-31.

9. प्रमाणेऽथ लयस्थाने किंनराः कृतनिश्रमाः।
संचोदितास्तुम्बुरुणा गन्धर्वाः सहिता जगुः।।
गायन्ति दिव्यतानैस्ते यथान्यायं मनस्विनः।
पाण्डुपुत्रानृषींश्चैव रमयन्त उपासते।।
महाभारत, सभापर्व, अध्याय-4, श्लोक-32-33.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

10. तथैवाप्सरसो राजन्गन्धर्वाश्च मनोरमाः।
नृत्यवादित्रगीतैश्च हास्यैश्च विविधैरपि।
रमयन्ति स्मनृपते देवराजं शतक्रतुम्।।
महाभारत, सभापर्व, अध्याय-7, श्लोक-21.

11. गन्धर्वाश्च महात्मानः शतशश्चाप्सरोगणाः।
विदित्रं नृत्तगीतं च हास्यं लास्यं च सर्वशः।।
महाभारत, सभापर्व, अध्याय-8, श्लोक-35.

12. गीतवदित्रवन्तश्च गन्धर्वाप्सरसां गणाः।
स्तुवन्तो वरुणं तस्यां सर्व एव सभासते।।
महाभारत, सभापर्व, अध्याय-9, श्लोक- 23.

13. तत्र देवा- सगन्धर्वा गणैरप्सरसां वृताः।
दिव्यतानेन गीतानि दिव्यानि भारता।।
मिश्रकेशी च रम्भा च चित्रसेना शुचिस्मिता।
चारुनेत्रा घृताची च मेनका पुञ्जिकस्थला।।
विश्वाची सहजन्या च प्रम्लोचा उर्वशी इरा।
वर्गा च सौरभेयी च समीचरी बुद्बुदा लता।।
एताः सहस्रशश्चान्या नृत्तगीत विशारदाः।
उपतिष्ठन्ति धनदं पाण्डवाप्सरसां गणाः।।
अनिशं दिव्यवादित्रैर्नृतैर्गीतैश्च सा सभा।
अशून्या रुचिरा भाति गन्धर्वाप्सरसां गणैः।।
महाभारत, सभापर्व, अध्याय-10, श्लोक-9 से 13.

14. तेषु ते न्यवसन्राजन्ब्राह्मणा भृशसत्कृताः।
कथयन्यः कथा वहीः पश्यन्तो नटनर्तकान्।।
महाभारत, सभापर्व, अध्याय-30, श्लोक-48.

15. शतं दासी सहस्त्राणि तरुण्यो मे प्रभद्रिकाः।
कम्बूकेयूरधारिण्यो निष्ककण्ठयः सवलंकृताः।।
महार्हमाल्याभरणाः सुवस्त्राश्चन्दनोक्षिताः।
मणीन्हेम च बिभ्रत्यः सर्वा वै सूक्ष्मवाससः।।
अनुसेवां चरन्तीमाः कुशला नृत्यसामसु।
स्नातकानाममात्यानां राज्ञां च मम शासनात्।।
महाभारत, सभापर्व, अध्याय-54, श्लोक-12 से 14तक

16. तेषु ते न्यवसन्राजन्ब्राह्मणा भृशसत्कृताः।
कथयन्यः कथा वहीः पश्यन्तो नटनर्तकान्।।
महाभारत, सभापर्व, अध्याय-30, श्लोक-48.

17. आनर्ताश्च तथा सर्वेनटनर्तकगााायनाः।
बहिर्विवासिताः सर्वे रक्षदिभर्वित्तसंचयान्।।
महाभारत, वनपर्व, अध्याय-16, श्लोक-14.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

18. गृहीतास्त्रो गुडाकेशो महाबाहुर्महामना:।
नृत्तवादित्रगीतानां दिव्यानां पारमेयिवान्।।
महाभारत, वनपर्व, अध्याय-45, श्लोक-32,

19. शिखण्डिनीभि: सहिताँल्लतामण्डलकेषु च।
मेघतूर्यरवोद्दाममदनाकुलितान् भृशम्।।
कृत्वैव केकामधुरं संगीतं मधुरस्वरम्।
चित्रान् कलापान् विस्तीर्य सविलासान् मदालसान्।।
मयूरान् ददृशुर्हृष्टान् नृत्यतो वनलालसान्।
कांश्चित् प्रियाभि: सहितान् रममाणान् कलापिन:।।
महाभारत, वनपर्व, अध्याय- 158, श्लोक- 60से 62.

20. सुखं शक्रस्य भवने सर्वकामसमन्वित:।
शृण्वन् वै गीतशब्दं च तूर्यशब्दं च पुष्पकलम्।
पश्यंश्चाप्सरस: श्रेष्ठा नृत्यन्तीर्भरतर्षभ।।
महाभारत, वनपर्व, अध्याय- 168, श्लोक-59.

21. जगुश्र गाथा विविधा गन्धर्वा: सुरचोदिता:।
ननृतु: सङ्घशश्चैव राजन्नप्सरसां गणा:।।
महाभारत, आदिपर्व, अध्याय- 175, श्लोक-17.

22. ततो गोपा: प्रगातार: कुशला नृत्यवादने।
धार्तराष्ट्रमुपातिष्ठान् कन्याश्चैव स्वलंकृता:।।
महाभारत, वनपर्व, अध्याय- 240, श्लोक-8.

23. गायामि नृत्याम्यथ वादयामि भद्रोऽस्मि नृते कुशलोऽस्मि गीते।
त्वमुत्तराया: परिदत्स्व मां स्वयं भवामि देव्या नरदेव नर्तक:।।
सशिक्षयामास च गीतवादितं सुतां विराटस्य धनंजय: प्रभु:।
सखीश्च तस्या: परिचारिकास्तथा प्रियश्च तासां सबभूव पाण्डव:।।
महाभारत, विराटपर्व,अध्याय-10, श्लोक- 8 एवं 12.

24. बीभत्सुरपि गीतेन स्वनृत्तेन च पाण्डव:।
विराटं तोषयामास सर्वाश्चान्त:पुरस्त्रिय:।।
महाभारत, विराटपर्व अध्याय-12, श्लोक-29.

25. यैषा नर्तनशाला वै मत्स्यराजेन कारिता।
दिवात्र कन्या नृम्यन्ति रात्रौ यान्ति यथागृहम्।
महाभारत, विराटपर्व, अध्याय-21, श्लोक-3 एवं 16,25,26,27,39,65.

26. श्रुत्वा तु तद्वचनं पार्थिवस्य सर्वे पुन: स्वस्तिकपाणयश्च।
भेर्यश्च तूर्याणि च वारिजाश्च वेषै: पराध्यै: प्रमदा: शुभाश्च।।
महाभारत, विराटपर्व, अध्याय-63, श्लोक-28.

27. गायनाख्यानशीलाश्च नटा वैतालिकास्तथा।
स्तुवन्तस्तानुपातिष्ठन्सूताश्च सह मागधै:।।
महाभारत, विराटपर्व, अध्याय-67, श्लोक-28.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

28. स्त्रियः काश्चित्प्रजायन्ते चतस्रं पञ्च कन्यकाः।
ता जातमात्रा नृत्यन्ति गायन्ति च हसन्ति च।।
पृथग्जनस्य सर्वस्य क्षुद्रकाः प्रहसन्ति च।
नृत्यन्ति परिगायन्ति वेदयन्तो महद्भयम्।।
महाभारत, भीष्मपर्व, अध्याय-3, श्लोक-7/8

29. चन्द्र प्रभाश्चन्द्रवर्णाः पूर्णचन्द्रनिभानना:।
चन्द्रशीतलगात्रश्च नृत्यगीतविशारदाः।।
महाभारत, भीष्मपर्व, अध्याय-8, श्लोक-17

30. ततः सरथनागाश्वा जयं प्राप्य ससोमकाः
पाञ्चालाः पाण्डवाश्चैव प्रणेदुश्च पुनः पुनः।।
प्रययुः शिविरायैव धनंजयपुरस्कृताः।।
वादित्रघोषैः संहृष्टाः प्रनृत्यन्तो महारथाः।।
महाभारत, भीष्मपर्व, अध्याय-55, श्लोक-42/43.

31. गीतवादित्र संह्रादैस्ताललास्यसमन्वितम्।
वल्गितास्फोटितोत्क्रुष्टैः पुष्यगन्धैश्च सेवितम्।।
महाभारत, द्रोणपर्व, अध्याय-57, शलोक-37

32. पठन्ति पाणिस्वनिका मागधा मधुपर्किकाः।
वैतालिकाश्च सूताश्च तुष्टुवुः पुरुषर्षभम्।।
नर्तकाश्चाप्यनृत्यन्त जगुर्गीतानि गायकाः।
कुरूवंशस्तवार्थानि मधुरं रक्तकण्ठिनः।।
मृदङ्गका झर्झरा भेर्यः पणवानकगोमुखाः।
आडम्बराश्च शङ्खाश्च दुन्दुभ्यश्च महास्वनाः।।
एवमेतानि सर्वाणि तथान्यान्यपि भारत।
वादयन्ति स्म संहृष्टाः कुशलाः साधुशिक्षिताः।।
स मेघसमनिर्घोषो महाञ्शब्दोऽस्पृशद्दिवम्।
पार्थिवप्रवरं सुप्त युधिष्ठिरमबोधयत्।।
महाभारत, द्रोणपर्व, अध्याय-58, श्लोक-2से6 तक।

33. नृत्यतो रथमार्गेषु धनर्व्यायच्छतस्तथा।
न कश्चित्तत्र पार्थस्य ददर्शान्तरमण्वपि।।
महाभारत, द्रोणपर्व, अध्याय- 64, श्लोक-49

34. अभिषेकं कुमारस्य दृष्ट्वा हृष्टा रणप्रियाः।
घण्टाजलिपिनद्धाङ्गा ननृतुस्ते महौजसः।
महाभारत, शल्यपर्व, अध्याय-44, श्लोक-107.

35. तुष्टुवुस्ते कुमारं च सर्वे देवाः सवासवाः
जगुश्च देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।।
महाभारत, शल्यपर्व, अध्याय-45, श्लोक-52.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

36. ततः सर्वार्तवं दिव्यं पुष्पवर्ष नभस्तलात्।
पपात यत्र वार्ष्णेयः सगाङ्गेयः सपाण्डवः।।
वादित्राणि वा दिव्यानि जगुश्चाप्सरसां गणाः।
न चाहितमनिष्टं च किंचितत्र व्यदृश्यता।।
महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय-52, श्लोक-23,24.

37. अपि चात्र माल्याभरणवस्त्राभ्यङ्गानित्योपभोग नृत्यगीतवादित्रश्रुति-
सुखनयनाभिरामः दर्शनानांप्राप्तिर्भ्ङक्ष्यभोज्य लेह्य पेय चोष्याणामम्य-
बहार्याणां विविधानामुपभोगः। स्वविहारसंतोषः कामसुखावाप्तिरिति।।
महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय-191, गद्य भाग-16

38. जेगीयन्ते स्म गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरांगणाः
देवदुन्दुभयश्चैव प्रावाद्यन्ता महास्वनाः।
विश्वावसुश्च गन्धर्वस्तथा तुम्बुरूनारदौ।।
हाहा हूहूश्च गन्धर्वौं तुष्टुवुः शुकसम्भवम्
महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय- 324, श्लोक-14/15.

39. क्लृप्तस्थूणाः कुरुतारोहणानि गन्धर्वाणामत्सरसां च शीघ्रम।
येषु नृत्येरन्नप्सरसः सहस्त्रशः स्वर्गोद्देशः क्रियतांयज्ञवाटः।।
महाभारत, आश्वमेधिकपर्व, अध्याय-10, श्लोक- 26.

40. गन्धर्वा गीतकुशला नृत्तेषु च विशारदाः।
रमयन्ति स्म तान्विप्रान्यज्ञकर्मान्तरेष्वथ।।
महाभारत, आश्वमेधिकपर्व, अध्याय-90, श्लोक-39.

41. ततस्तूर्यशताकीर्ण नटनर्तकसंकुलम्।
प्रावर्तत महापानं प्रभासे तिग्मतेजसाम्।।
महाभारत, मौसलपर्व, अध्याय-4, श्लोक-14.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निपुराण में औषधीय पादप

डॉ. अर्चना दुबे
असि. प्रोफेसर
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते।

'पुराण' शब्द की व्युत्पत्तियों में 'पुराणात् पुराणम्' अन्यतम व्युत्पत्ति है जिसका अभिप्राय यही है कि वेदार्थ के पूरण करने के कारण ही इसका नाम 'पुराण' है। इसी व्युत्पत्ति के आधार पर जीव गोस्वामी पुराण को वेदसदृश अपौरुषेय मानते हैं।

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थ वरानने।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः॥[1]

'पुराण' ईश्वर के शरीर सदृश माने गये हैं ऐसी धार्मिक मान्यता है। इसी कारण ईश्वर को पुराण पुरुष भी कहा जाता है। गीता में भी इसका संकेत किया गया है- 'कविं पुराणमनुशासितारम्' अमरकोष में पुराण को चिरन्तरन शास्त्र कहा गया है- 'पुराणे प्रतनप्रत्न पुरातन-चिरन्तनम्।''

पुराण के अन्तर्गत प्राचीन कथानक, इतिहास, भूगोल, ज्ञान-विज्ञानादि अनेक तत्व समाहित है। इनके आधार पर ही इसके अर्थ से सम्बन्धित अनेक उक्तियाँ हैं।

1. पुराणं आख्यानमं पुराणम्-प्राचीन आख्यानों को पुराण कहा जाता है।
2. यस्मात् पुरा हि अनति इदं पुराणम्- वायुपुराण (1-203) जो प्राचीनकाल से सजीव था।
3. जगतः प्रागवस्थामनुक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम् (सायण ऐतरेय ब्राह्मण भूमिका)- संसार की व्युत्पत्ति तथा विकास क्रम के बोध को पुराण कहते हैं।
4. पुरार्थेषु आनयनीति पुराणम्- (पद्मपुराण) पूर्वतत्व अर्थात् पुरुष एवं प्रकृति के चिन्तन में संलग्न को पुराण कहते है।
5. पुरा परम्परां वक्ति पुराणं तेन वैं स्मृतम्- प्राचीन परम्परा के प्रतिपादक ग्रन्थों को पुराण से जाना जाता है।
6. विश्वसृष्टेरितिहास- पुराणम् (मधुसूदन सरस्वती)- विश्व रचना के इतिहास को पुराण कहते हैं।

पुराण का लक्षण- 'पुराण पञ्चलक्षणं' उक्ति प्रचलित रही है। विष्णुपुराणानुसार पाँचो लक्षण पुराणों के निम्न हैं-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में भी पुराण के दस लक्षणों को वर्णित किया है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्गश्चाथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः॥

भारतीय परम्परा के अनुसार पुराणों की संख्या 18 थीं। अतः 18 पुराण महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित कहे जाते है। इन अट्ठारह पुराणों का संकेत किसी विद्वान् ने एक श्लोक में वर्णित किया है-

म-द्वयं-भ-द्वयं चैव ब्र त्रयं व चतुष्ट्यम्।
अ-ना-प-लिं-ग-कू-स्कानि पुराणानि प्रचक्षते॥

अर्थात् -

1.	मकारादि दो पुराण	(i) मत्स्य पुराण
		(ii) मार्कण्डेय पुराण
2.	भकारादि दो	(i) भागवत पुराण
		(ii) भविष्य पुराण
3.	ब्र युक्त तीन	(i) ब्रह्माण्ड पुराण
		(ii) ब्रह्म पुराण
		(iii) ब्रह्मवैवर्त पुराण
4.	वकारादि चार	(i) वराह पुराण
		(ii) वामन पुराण
		(iii) वायु (शिव) पुराण
		(iv) विष्णु पुराण
	इसके बाद	अ - अग्नि पुराण
		ना - नारद पुराण
		प - पद्य पुराण
		लिंग - लिंग पुराण
		ग - गरूड़ पुराण
		कू - कूर्म पुराण
		स् - स्कन्द पुराण

देवी भागवत में उपर्युक्त स्कन्द, वामन, ब्रह्माण्ड, मारीच तथा भार्गव के स्थान पर क्रमशः शिव, मानद, आदित्य, भागवत तथा वासिष्ठ नाम प्राप्त होते हैं। विद्वानों की मान्यता है कि उप पुराणों की रचना महापुराणों के अनन्तर हुई, परन्तु महत्ता की दृष्टि से इन्हें कमतर कहना सार्थक नहीं है, इनकी सामान्यतया 18 संख्या वर्णित है। परन्तु कहीं 30 के आंकड़े भी मान्य है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1.	सनत्कुमार	11	साम्ब	21	भार्गव
2	नरसिंह	12	सौर	22	आदि
3	बृहन्नारदीय	13	सौर	23	मुद्गल
4	शिवधर्म	14	पाराशर	24	कल्कि
5	दुर्वासस	15	ब्रह्माण्ड	25	देवी
6	कपिल	16	आदित्य	26	महाभागवत
7	मानव	17	माहेश्वर	27	बृहद्धर्म
8	उशनस्	18	भागवत	28	परानन्द
9	वरुण	19	वसिष्ठ	29	पशुपति
10	कलिका	20	कौर्म	30	हरिवंश

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
न चेत् पुराणं स विद्यात् नैव स स्याद् विचक्षणः।।[2]

औषधि का अर्थ है वेदनाओं से मुक्ति दिलाने वाली वस्तुएँ अथवा द्रव्य।

औषं रूजं धयति इति औषधि।
ओषो नाम रसः- सोऽअस्यांधीयते इति औषधि।

ओष - रस।

वेदों में औषधि के लिए 'माता' शब्द का प्रयोग किया गया है।

औषधिरिति मातरस्तद्वौ दैविरूपब्रुवे।[3]

पृथ्वी के ऊपर प्रथम औषधियाँ उत्पन्न हुई और उसके अनन्तर जन्तुयुग-सर्पयुग-पशुयुग इन तीन युगों के उपरान्त मनुष्य युग का आरम्भ हुआ।

औषधियों के सौ अथवा सात सौ अथवा सात वर्ग होते हैं। (आचार्य चरक ने पाँच सौ औषधियों का उल्लेख किया है।) प्रभावी या वीर्यवान् औषधि प्रयोग से रोगों के बीज नष्ट हो जाते है।

यदिमा वाजयन्नहमोषधिर्हस्त आवधे।
अयमाययक्षमस्य नश्यति पुराजीवनगृभोयक्ष्मयथा।।

वैदिक मंत्रो में सूर्य - अग्नि - मरुत - अप् को प्राणियों के जीवन संचालक होने की वजह से देवता मानकर उनकी स्तुति की गई है। सम्पूर्ण रोग जल के द्वारा ही दूर हो जाने का उल्लेख प्राप्त होता हैं। जल समस्त रोगों की औषधि है। यही जल औषधियों में सोम रूप में स्थित होता है।

सोमोभूत्वा रसात्मकः।[4]

अर्थवेदोक्त औषधियाँ-

वल्मिकस्थानिय औषधि से अतिसार अतिमूत्रादि का प्रशमन होता है।[5] मृग शृंग मृगचर्म से क्षय कुष्ठ अपस्मारादि रोगों का नाश होता है।[6] शतवीर्या दूर्वा से दीर्घायु तथा नाना रोगों का शमन होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

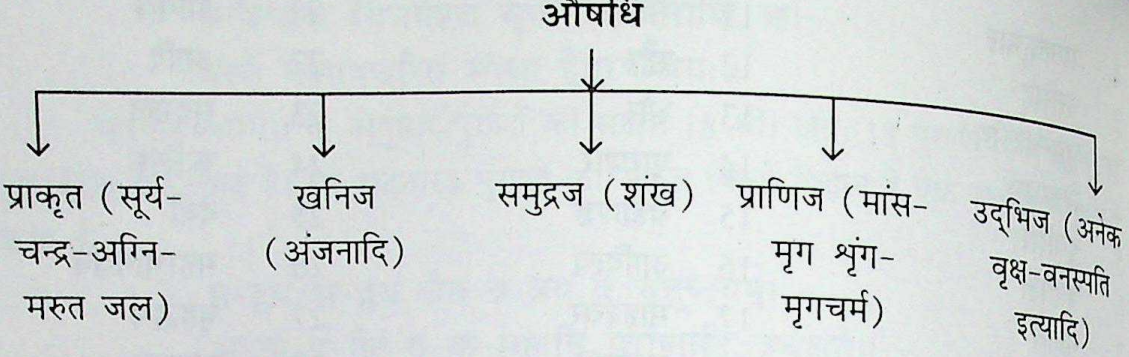

षट्त्रिंशत्पदसंस्थानमोषधीनां वदेफलम्
क्रमादेकादिसंज्ञानि ह्योषधानि मटान्ति हि॥[7]

षट्त्रिंशत्-निर्दिष्टौषधीनां वैज्ञानिक प्रभाव: हरीतकी (हरे) अक्ष धात्री (बहेड़ा) मरीच (गोल मिर्च) पिप्पली, शिफा (जटामांसी) ब्रह्मी (भिलावा) शुष्ठि (सोंठ) पिप्पली गुडुच, वच, निम्ब, वासक (अडूसा) शतमूली (शतावरी) सैधंव से सेंधा नमक (सिन्धुवार, कण्ठकादि (कटेरी) गोक्षुरक (गोखरू) बिल्व, पुनर्नवा, बला (बरियार) रेंड मुण्डीरूचक (बिजौरा नींबू) भुङ्ग (दान चीनी) क्षार (यलसार) पर्पस (पित्त पापड़ा) ज्वनियां, जीरा, सौफं, अजवादन, वायविडङ्ग खैर, कृतमाल, (अमलतास) हल्दी, वचा, सिद्धार्थ (सफेद सरसों) ये छतीस पदों में स्थापित औषधियाँ हैं। इन औषधियों से मनुष्य का अमरीकरण होता है। इनका सेवन, ब्रह्मा, रुद्र, तथा इन्द्र आदि देवताओं ने किया है। इन सभी औषधियों के लेप से शरीर में झुर्री नहीं पड़ती है और बालों का पकना रुक जाता है। इनका चूर्ण, अथवा इनके रस से भावित वही, या अवलेह अथवा काढा, लड्डू अथवा गुड खण्ड यदि घी या मधु के साथ खाया जाए तो अथवा इनके रस से भावित घी या तेल का जिस किसी भी तरह से उपयोग किया जाए तो मुर्दे में भी जान आ जाय। इन सबों का आधा कर्ष अथवा एक कर्ष अथवा आधा पल या एक पल, की मात्रा में सेवन करने वाला पुरुष यथेष्ट आहार विहार में तत्पर होकर तीन सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है।

मृतसंजीवनी कल्प में इनसे बढ़कर कोई भी दूसरा योग नहीं है। इन औषधियों में से प्रथम नवक (नव औषधियों के समूह) का सेवन करके मनुष्य रोगो से छुटकारा पा लेता है। इसी तरह प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चक तथा षट्क के सेवन से तथा नव चतुष्क में से किसी एक भी चतुष्ट के सेवन से मनुष्य रोग-मुक्त हो जाता है। इनमें से प्रथम, द्वितीय, तृतीय चतुर्थ पञ्चक, षष्ठ, सप्तम और अष्टम कोष्ठ की औषधियों के सेवन से मनुष्य वातरोग से छुटकारा पा लेता है। तृतीय, द्वादश, छब्बीसवें तथा सत्ताइसवें कोष्ठ की औषधियों के सेवन से मनुष्य पित्त रोग से मुक्त होता है। पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम तथा पञ्चदश कोष्ठक की औषधियों के सेवन से कफ रोग से मुक्ति मिलती है। चतुर्थ, तृतीय, पञ्चम तथा षष्ठ कोष्ठ की औषधियों के सेवन से वशीकरण की सिद्धि होती है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, षष्ठ, सप्तम,

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टम, नवम, एकादश, बत्तीस, पन्द्रह और बारहवें पद की औषधियों का सेवन करके मनुष्य ग्रह से लेकर ग्रहण पर्यन्त सभी दोषों से छुटकारा पा लेता है।

शक्तगोधूमलाश्च वातपित्तवलाशानां क्रमेण परमौषधम्।[8]

रक्त पित्त रोग में जौ का सत्तू, गेहूँ का आटा, धान का लावा, यवण के बने भोज्य पदार्थ, गहन अगहनी का चावल, सोंठ, चना और मूँठा खाने योग्य होते हैं। घी एवं दूध से बनाये गये गेहूँ के पदार्थ (दलिया, हलुआ) आदि भी हितकारक हैं। बलवर्धक रस और छोटी मक्खी का शहद भी हितकारी होता है। अतिसार में पुराना अगहनी का भात लाभप्रद होता है। जो अन्न कफ बढ़ाने वाला न हो तथा पठानी लोध के साथ क्वाथ से सिद्ध किया गया हो वही गुल्म रोग में देना चाहिए। इसमें वायुकारक अन्न त्याग देना चाहिए और वायु से रोगी को बचाना चाहिए। उदर रोगों में दूध के साथ बाटी खाना चाहिए। घी से बनाया हुआ बथूआ, गेहूँ, अगहनी, चावल तथा तिक्त औषधी हितकारी होते हैं। बिजौरा नींबू का रस, चमेली की पत्ती, सूखी मूली एवं सेंधा नमक ये कुष्ठ रोगियों के लिए हितकारक है। इन्हें पीने के लिए खैर मिलाकर तैयार किया गया जल प्रशस्त माना गया है। नीम तथा पित्तपापड़ा का साक एवं जांगलरस, कुष्ठ रोगियों के लिए हितकारक है। वायविड्ग, कालीमिर्च, नागरमोथा, कूठ, पठानी लोंध, हुरहुर, मैनसिल तथा वच-इन्हें गोमूत्र से पिसकर लगाने से कुष्ठ रोग का नाश होता है। प्रमेह के रोगियों को पूआ, कूट, कुल्माष (घुघुरी) और जौ आदि लाभप्रद है। जौ के भोज्य पदार्थ, मूंग, कुलथी, पुराना अगहनी का चावल तिक्त रूक्ष एवं तिक्त हरे शाक हितकारी होते है।

तिल, सहजन, बहेड़ा और इंगुदी के तेल कुष्ठ में लाभप्रद है। मूँग, जौ, गेहूँ और एक वर्ष तक रखे हुए पुराने धान का चावल तथा जांगल रस- ये राजयक्ष्मा के रोगियों के भोजन के लिए प्रशस्त है। दमा एवं खांसी के रोगियों को कुल्थी, मूँग, रास्ना, सूखीमूली, मूँग का पूआ, दही और अनार के रस से सिद्ध किये गये षिष्किर है। दशमूल, बल (वरियार) और रास्ना और कुल्थी से बनाये गये तथा पूयरस से युक्त क्वाथ, श्वास एवं हिचकी को दूर करने वाले होते हैं। सूखी मूली, कुल्थी, मूल (दशमूल) जांगलरस, पुराना जौ, गेहूँ और चावल खस के साथ लेना चाहिए। इससे श्वास एवं कास नाश होता है। शोथ में गुड़ सहित लेना चाहिए। चित्रक एवं मूट्ठा दोनों संग्रहणी रोगों के नाशक है। पुराना जौ, गेहूँ, चावल, जांगलरस, मूँग, खजूर, आँवला, छोटी वेर, मधु, घी, दूध, नीम, पित्तपापड़ा, वृष तथा तक्रारिष्ट ये सभी वातरोगियों के लिए प्रशस्त माने गये है। मदात्यय रोग में, मोती, नमक युक्त जीरा तथा मधु हितकर होता है। उरः क्षत का रोगी दूध एवं मधु के साथ लाह को लेवें। बवासीर में बने भोज्य पदार्थ, नीम, जटामांसी, शाक, संचर, नमक, कचूर, हरे माँड तथा जल मिलाया हुआ मटठा हितकारी है। मूत्रकृच्छ में मोथा, हल्दी के साथ चित्रक का लेप, यवात्र विकृति, अगहनी का भात, बथुआ, सोंचर नमक, लाह, दूध ईख के रस और घी से युक्त गेहूँ, ये खाने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभकारी हैं। पीने के लिए माँड सुरा आदि देना चाहिए। वमन में लावा, सत्तू, मधु, जटामांसी परुषक (फालसा) बैंगन का भर्ता, मोरपंख का भस्म तथा पानक देना चाहिए। अगहनी के चावल का जल, केवल गर्म या शीतोष्ण गर्भ दुग्ध ये तृष्णा (प्यास) के नाशक है। जौ के बने भोज्य पदार्थ, पूआ, सूखी मूली, परवल की शाक, बेंत के अग्रभाग के नर्म हिस्सा और करेला गांठ की जकड़न को दूर करने वाले है सारे शरीर के फोड़े फुन्सी के निकले (विसर्पि) होने पर रोगी को मूँग, अरहर, मसूर के जूस, तिलयुक्त जांगहलरस, सेंधा नमक के साथ घी, दाख, सोंठ, आँवला और उत्रा के जूस के साथ पुराने गेहूँ, जौ, और अगहनी के चावल का सेवन करना चाहिए। बातरक्त के रोगी को लाल सोठी का चाव, गेहूँ, जौ, मूँग आदि हल्का अन्न देना चाहिए। नासिका के रोग में दूर्वा से संस्कृत घृत हितकारी होता है। आँवले के रस या भृंगराज के रस से सिद्ध किये गये तेल का नस्य दिया जाय तो सिर के समस्त कृमि रोगों से लाभप्रद होता है। ठंढे जल के साथ लिया गया अत्र और तिलों का भक्षण दाँतो अत्यन्त मजबूत होते है। आँवले को घी में घिसकर यदि सिर में लेप किया जाये तथा स्निग्ध एवं गर्म भोजन किया जाए तो सिर के रोगों का विनाश होता है। कर्णशूल अथवा शिरः शूल के विनाश के लिए बकरे के मूत्र से कान को भर देना चाहिए। पहाड़ी मिट्टी सफेद चन्दन, लाह और चमेली की कली इन सबों को पीसकर बनाई हुई बत्ती उरःक्षत तथा शुक्रदोष को दूर करती है।

व्योष (सोंठ, काली मिर्च, और पीपल) त्रिफला एवं तूतिया थोड़ा जल मिलाकर डालें। यह तथा रसांजन (रासोत) ये नेत्र के समस्त रोगों को दूर करने वाले हैं। लोध, काँजी तथा सेंधा नमक को घी में भून कर पीस दें तथा उसका आँखों का लेप करें तो नेत्र के सभी प्रकार के रोगों का विनाश होता है और आँखों से आँसू निकलने के दोष को दूर करता है। पहाड़ी मिट्टी और सफेद चन्दन का आँखो के ऊपर लेप करना नेत्र के लिए हितकारी है। नेत्र के रोगों का विनाश करने के लिए सदा त्रिफला खाना चाहिए। महुआ के फूल के रस के साथ यदि त्रिफला ली जाय तो बुढ़ापे के चिह्न बाल गिरना पकना आदि नष्ट हो जाते है। वचा के साथ पकाये गये घी का सेवन भृत दोष को दूर करता है। उसका क्वाथ बुद्धि को देने वाला तथा सम्पूर्ण मनोरथो को सिद्ध करने वाला होता है। रास्ना या सहचरी (झिहीरी) से सिद्ध तैल वातरोगियों के लिए हितकारी होता है। नीम के पत्तें का चबाना सर्पदंश की दवा है। पीसकर लगाई हुई पताल बिम्ब की पत्ती, पुरानी तैल अथवा घी,केश के लिए हितकारक होता है। जिसको बिच्छू ने काट लिया हो उसको मोरपंख और घी का धूम लगाना चाहिए या आक के दूध, से पीसे हुए पलाश के बीज का लेप करने से बिच्छू का विष उतर जाता है।

आक का दूध, तिल, तैल, पलल (मांस) तथा गुड को समान मात्रा में पीसकर पीने से कुत्ते का भयंकर विष समाप्त हो जाता है। चन्दन, पदमक, कूट, जूही की लता का पानी, खस, गुलाब, निर्गुण्डी, शारिबा, सेलु ये मकड़ी के विष का नाश करने वाली औषधियाँ है। शिरोविरोचन के लिए गुड़ के साथ सोंठ हितकारी है। पसीना कराने में अग्नि तथा स्तम्भन में शीत जल श्रेष्ठ है। रेचन में निशोथ तथा वमन में मैनफल श्रेष्ठ है। बस्ती, विरंचन तथा वमन एवं तेल, घी तथा मधु क्रमशः वात, पित्त कफ के परमौषध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित मधुसूदन ओझा के वेदविज्ञान में पारिभाषिक शब्दावली:-

प्रस्तुतकर्त्री - डॉ. दीपमाला
पी.डी.एफ. (यू.जी.सी.) संस्कृत विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

वेदों का ज्ञान मूल्यवान होने पर भी अत्यन्त दुर्बोध एवं रहस्यात्मक है। क्योंकि वेदों में प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद का ऋषि स्वयं कहता है कि अधिकांशत: लोग वाणी को देखते हुए भी नही देख पाते और सुनते हुए भी नहीं सुन पाते। केवल कुछ लोगों के समक्ष ही वाणी अपना रहस्य उद्घाटित करती है:-

उत त्व: पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्व: शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासा:॥1

अत: वैदिक मन्त्रों का वास्तविक तात्पर्य जानने के लिए वैदिक शब्दों की 'परिभाषाओं (प्रतीकार्थ) का ज्ञान आवश्यक है।

19वीं शताब्दी के मूर्धन्य वेदविद्वान् विद्यावाचस्पति प० मधुसूदन ओझा ने अपने ग्रन्थों में वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त प्रतीकों की व्याख्या की हैं। इन प्रतीकार्थों के उद्घाटन में इन्होंने मन्त्रब्राह्मणात्मक वेदभाग एवं उपनिषदात्मक श्रुतिभाग को आधार बनाया है। वैदिक शब्दों का अर्थपटल व्यापक है। यहाँ एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ प्राप्त होते हैं। प. ओझा ने वैदिक परिभाषाओं के सभी सम्भावित अर्थों का विवेचन करते हुए एक समग्र दृष्टि दी है। उनके ग्रन्थों में प्रस्तुत कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं:-

ऋषि

ऋषि पद का अर्थ पूर्व प्रचलित मान्यता के अनुसार अलौकिक ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति हैं। किन्तु ओझा जी ने युक्तियों द्वारा वेद में प्रयुक्त ऋषि शब्द के चार अर्थ सिद्ध किये हैं:-

1. असल्लक्षण ऋषि
2. रोचनालक्षण ऋषि
3. द्रष्टलक्षण ऋषि
4. वक्तृलक्षण ऋषि[2]

(i) **असल्लक्षण ऋषि:-** वेदों में 'ऋषि' उस मौलिक प्राण तत्व का नाम है जो यजु के यत् भाग से सम्बन्ध रखता है इस प्राण को शतपथ ब्राह्माण में असत् कहा गया है। श्रुति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में स्पष्ट कहा गया है- सृष्टि के आरम्भ में असत् ही था। ऋषि असत् थे। ऋषि कौन है? उत्तर दिया प्राण ही ऋषि हैं। सर्वप्रथम इच्छा, श्रम और तप से प्राण ही गमनशील होने के कारण ऋषि कहलाये।[3] **'रिषति इच्छति गतिशीलो भवति'** इस निर्वचन से प्राण का तात्त्विक नाम ऋषि हो गया।

इसी गतितत्त्व या motion को आधुनिक विज्ञान भी मूल तत्व मानता है तथा विश्व की विचित्रता का आधार स्वीकार करता है।[4]

सत् वह है जिसमें प्राण रहते हैं। किन्तु प्राण में प्राण नहीं रहते अतः इन्हें असत् कहते हैं।

भृगु, वसिष्ठ, कश्यप, जमदग्नि, अत्रि, मरिचि, पुलस्त्य, क्रतु, दक्ष, अगस्त्य, विश्वामित्र आदि जितने भी ऋषि नाम हैं, वे सभी प्रधानरूप से प्राणात्मक ऋषि तत्वों के ही नाम है। किन्तु जिस ऋषि ने जिस प्राण तत्व का साक्षात्कार किया उसी प्राण पर उस ऋषि का यशोनाम पड़ गयां जैसे वसिष्ठ मुख्य प्राण हैं जिसमें सभी इन्द्रियाँ वास करती हैं, बिना प्राण के कोई इन्द्रियाँ नहीं ठहर सकती है। इस वसिष्ठ प्राण के द्रष्टा ऋषि भी वसिष्ठ नाम से प्रसिद्ध हो गये।

प्राणों वै वसिष्ठ ऋषिः यद्वैनु श्रेष्ठस्तेन वस्ष्ठिः।
अथो यद् वस्तृतमो वसति तेनो एव वसिष्ठः।।[5]

(ii) रोचनालक्षण ऋषिः- पूर्व महर्षियों ने आकाश में चमकने वाले ऋक्ष, नक्षत्र, तारा आदि नाम से प्रसिद्ध बिम्बो में भी ऋषि शब्द से व्यवहार किया है।[6] श्रुतियों में मरीचि, अंगिरा, वसिष्ठ, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु में सप्तर्षि शब्द से व्यवहार किया जाता है।

(iii) द्रष्टृलक्षण ऋषिः- यहाँ ऋषि का अर्थ तत्वद्रष्टा है। वेद में सारा ज्ञान-विज्ञान निहित है। जिन्होंने इस ज्ञान-विज्ञान का दर्शन कर मन्त्रों की रचना की वे भी ऋषि कहलाये।[7] आप्त और ऋषि में अन्तर है। आप्त पुरुष भौतिक सत्यों को जानता है, ऋषि दैविक तथा अतीन्द्रिय विषयों का साक्षात्कार करता है- **'' साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवुः ''।**

(iv) वक्तृलक्षण ऋषिः- जो ज्ञान ऋषियों को ईश्वर से प्राप्त हुआ वह निर्विकल्प था। ऋषियों ने सविकल्प स्थिति में उसे शब्दों में अभिव्यक्त किया। अतः इन शब्दों के वक्ता भी ऋषिः' या वाक्येनोच्यते सा देवता'।

इस प्रकार प० ओझा ने 'ऋषि' शब्द की व्यापक व्याख्या करते हुए वैदिक वाङ्मय में उसके सम्पूर्ण अभिप्रायों को अभिव्यक्त किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि-सोम

संहिता में अग्नि एवं सोम महत्वपूर्ण देवता है। प. ओझा के अनुसार अग्नि एवं सोम का द्वन्द्व है। अग्नि अन्नाद है, वह अन्न को खाता है- ''अग्निर्वैदेवानामन्नाद:''[9] सोम अन्न है- ''अन्नं वै सोम:''[10]। यह अन्न-अन्नाद सम्बन्ध ही जगत् का आधार है। अत: बृहज्जाबालोपनिषद् में प्रसिद्ध हे- ''अग्निसोमात्मकं जगत्''[11]। जगत् शब्द का तात्पर्य निरन्तर गमनशीन अर्थात् परिवर्तनशील से है। इस परिवर्तन का कारण यह है कि पदार्थ अपने परिवेश से प्रभावित होता है। तात्पर्य यह है कि एक पदार्थ दूसरे पदार्थ को आत्मसात् कर लेता है। जो पदार्थ आत्मसात् किया जाता है वह सोम है, और जो पदार्थ आत्मसात् करता है वह अग्नि है। अग्नि और सोम परस्पर विरोधी स्वभाव के हैं। अग्नि गति है, सोम आगति है। अग्नि विकास है, सोम संकोच है। इन दो विरोधी भावों के सख्य भाव या सम्मिश्रण से ही सृष्टि निर्माण हुआ है जैसा कि ऋग्वेद कहता है-

अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योका:।[12]

प० ओझा जी ने अपने ग्रन्थों में अग्नि और सोम के द्वन्द्व का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है।

संवत्सर यज्ञ

अग्नि में सोम की आहुति यज्ञ है। यह यज्ञ ही ऋतु चक्र का कारण है। वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा में अग्नि का विकास होता है, शरद्, हेमन्त और शिशिर में अग्नि का ह्रास है। जो अग्नि का ह्रास है वह सोम का विकास है। इस ऋतुचक्र का नाम ही सँवत्सर है- ''ऋतवस्संवत्सर:''[13]। संवत्सर को शतपथ ब्राह्मण में प्रजापति कहा गया है-''संवत्सरो वै यज्ञ: प्रजापति:''[14]। यज्ञ का एक अर्थ संगतिकरण है। चूँकि ऋतुओं में अग्नि और सोम परस्पर मिलते हैं, अत: संवत्सर को यज्ञ कह दिया गया है।

आभु-अभ्व

जगत् के किसी भी पदार्थ को देखे उसमें दो पक्ष प्रतीत होते है- स्थिर और परिवर्तनशीलं संसार की इस प्रकृति को देखकर हम अनुमान कर सकते हैं कि संसारके कारण में भी दो ही पक्ष होंगे स्थिर और परिवर्तनशील! इन्हीं दो पक्षों को वेद में क्रमश: आंभु और अभ्व कहा जाता है। वेदान्ती इसे ब्रह्मा और माया कहते हैं। वेद इन्हें अमृत और मृत्यु भी कहता है और दोनों की अन्तर्निहितता की घोषणा भी करता है- ''अन्तरं मृत्योरमृतं मृत्यावमृतमाहितम्''[15]। अभिप्राय यह है कि जहाँ स्थिरता है वहाँ परिवर्तन है और जहाँ परिवर्तन है वहाँ स्थिरता भी है। इनहीं दोनों तत्वों को ओझा ने रस रस और बल भी कहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नासदीय सूक्त में आभु शब्द आया है। आभु से सम्बद्ध दूसरा शब्द अभ्व है। यह अभ्व ही ब्रह्म की शक्ति का अभिव्यक्त रूप है जिसे नाम और रूप कहा जाता है। आभु स्थायी है, अभ्व अस्थायी है जो उत्पन्न और नष्ट होता रहता है।

त्रिदेव- इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा

पदार्थ में दो गतियाँ होती है- अन्तर्गति तथा बहिर्गति। अन्तर्गति विष्णु के कारण है- इसलिए विष्णु को यज्ञ कहा जाता है- "विष्णुर्वैयज्ञः"[16]। बहिर्गति का कारण इन्द्र है अतः इन्द्र को यज्ञ का शरीर बताया गया है- "इन्द्रस्य वा एषा यज्ञीया तनुर्यद्यज्ञः"[17]। विष्णु का आदान एवं इन्द्र के प्रदान से पदार्थ में स्थिरता बनी रहती है, वही ब्रह्मा है। ये इन्द्र-विष्णु, ब्रह्मा मिलकर पदार्थ का स्वरूप बनाते है। इसलिए इन्हें शतपथ ब्राह्मण में प्रजापति या हृदय कहा गया है।[18]

इन्द्र प्राण से अग्नि और विष्णु प्राण से सोम का निर्माण होता है। अग्नि और सोम मिलकर पदार्थ का पृष्ठ भाग बनाते हैं। इन पांचों को ही प्राण कहा गया है क्योंकि ये गतिशील है। इन्हें ही अक्षर की पांच कलाएँ भी कहा जाता है।

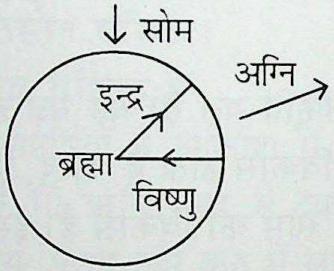

प० ओझा ने विज्ञान विद्युत् नामक अपने ग्रन्थ में इन पर गहन चिन्तन प्रस्तुत किया है।

वेदत्रयी- ऋक्, यजुः, साम

वेद भारतीय संस्कृति के मूल आधार है, इनको ग्रन्थात्मक ही माना जाता हैं किन्तु वेद के अनेक मन्त्रों से स्पष्ट होता है कि वेद मात्र ग्रन्थ ही नहीं है अपितु सृष्टि उपादानभूत तत्व रूप भी हैं। जैसे तैत्तिरीय ब्राह्मण कहता है ऋक् से समस्त मूर्त पदार्थ उत्पन्न हैं यजुः से गति और साम से समस्त तेज-

ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः सर्वा गतिर्याजुषी है व शश्वत्।
सर्वतेजः सामरूप्यं ह शश्वत् सर्व हेदं ब्रह्मण है व सृष्टम्॥[19]

इसका समर्थन मनुस्मृति भी करती है। [20]

यहाँ प्रश्न होता है कि ग्रन्थात्मक वेदों से शब्दादि की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? इसका समाधान प्रस्तुत करते हुए प. ओझा जी सिद्ध करते हैं कि ग्रन्थात्मक वेद पृथक् है और तत्वात्मक वेद पृथक् है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद और मन्त्र की परिभाषा देते हुए प. ओझा कहते है कि शब्द द्वारा प्रतिपादित देवता विज्ञान वेद है और देवता विज्ञान का प्रतिपादक शब्द मन्त्र है।[21] इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए ओझा जी कहते हैं-

''यस्तु पुनरपौरूषेयवेदप्रत्ययजनकः शब्दग्रन्थः सोऽपि शब्दार्थयोस्तादात्म्यसिद्धान्ताद् वेद एवोच्यते वयाकरणज्यौतिषादिग्रन्थानां व्याकरणज्यौतिषादिशब्देन व्यवहारवत्।[22]

ऋक्, यजुः और साम तीनों तत्व हौ जिससे क्रमशः मूर्ति, गति और तेज का निर्माण होता है। वैदिक साहित्य में इसका समर्थन पुनः पुनः किया गया है।

इससे प्रमाणित होता है कि वेद केवल ग्रन्थ न होकर सृष्टि संरचना के मूलभूत तत्व हैं जो अतीन्द्रिय रूप में संसार में व्याप्त हैं। इसी आधार पर ओझा जी ने ग्रन्थवेद को पौरुषेय और तत्ववेद को अपौरुषेय माना है।[23]

माया-महामाया-योगमाया

रस में बल के विभिन्न संसर्गो से जगत् का नानारूपत्व दिखाई देता है। इस रस में बल का संसर्ग भिन्न-भिन्न स्तरों को प्राप्त करता हैं जिन्हें ओझा जी ने माया, महामाया एवं योगमाया नाम स परिभाषित किया है।

1. **माया :-** माया का निर्वचन करते हुए ओझा जी कहत हैं कि रस में बल के संसर्ग से जो विशेष भाव उदित होता है वह कहाँ से आता है और अन्त में कहाँ चला जाता है यह नहीं जाना जा सकता, जो दृष्टिगोचर हो और जाना न जा सके उसे माया कहा जाता है।[24]

रस में बल से जो सीमाभाव दिखाई पड़ता है उसमें जिस बल द्वारा मात्रा और संस्था का प्रादुर्भाव हो उसे माया कहा जाता है।

2. **महामाया :-** रस (आभु) रूप आत्मा में साक्षात् या परम्परा से पुनः पुनः सम्बद्ध होकर मृत्यु नाम का बल (अभ्व) नाना भाव में परिवर्तित होता है। इस आभु में अभ्व का सतत परिवर्तन होता है। इस अभ्व को ही महामाया भी कहा गया हैं [25]

3. **योगमाया :-** रस संवलित दो बलों (कर्मो) के योग से यदि दोनों अपने नाम, रूप, कर्म रूपी अभ्व से च्युत हो जायें एवं नयी प्रतिष्ठा को प्राप्त करें तो यह कृति योगमाया कही जाती है।[26]

इस प्रकार पण्डित जी ने माया, महामाया एवं योगमाया की वेद सम्मत व्याख्याएँ दी हैं।

अश्वत्थ वृक्ष

अव्यय, अक्षर और क्षर तीनों एक ही हैं क्योंकि तीनों में एक ही तत्व तीन रूप धारण कर लेता है। परात्पर सहित अव्यय, अक्षर और क्षर को अश्वत्थ कहा गया है। यहाँ चतुष्पाद ब्रह्म के लिए अश्वत्थ शब्द की प्रतीक के रूप में प्राप्ति के ओझाजी के अनुसार दो कारण हो सकते हैं-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1. **अश्व इव तिष्ठति इति अश्वत्थ**- घोड़ा तीन पाँव से पृथ्वी पर टिकता है और उसका एक पाँव अस्थिर रहता है। उसी प्रकार चतुष्पाद ब्रह्म के तीन पाद परात्पर, अव्यय और अक्षर स्थिर है एवं चौथा पाद क्षर अस्थिर है।

2. सब वृक्षों की शाखाएँ ऊपर की ओर ही जाती हैं किन्तु अश्वत्थ वृक्ष की शाखाएँ नीचे की ओर भी जाती हैं। सृष्टि का मूल अव्यय ब्रह्म के मन में उत्पन्न होने वाला काम है, वह सर्वोपरि है और सृष्टि का हेतु भी है। अक्षर एवं क्षर उसकी शाखाएँ हैं जो नीचे की ओर फैली हुई हैं। इसी अश्वत्थ वृक्ष का वर्णन कठोपनिषद् में किया गया है-

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।[27]

गीता में भी अश्वत्थ वृक्ष का उल्लेख किया गया है।

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।[28]

स्वयं ऋग्वेद भी इस अश्वत्थ वृक्ष का वर्णन करता है-

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाज इत् किलासथ यत्सनवथ पुरुषम्।।[29]

प० ओझा ने अश्वत्थ वृक्ष का वर्णन करते हुए ब्रह्म के चार पादों (परात्पर, अव्यय, अक्षर एवं क्षर)का भी सरल शब्दों में निरूपण किया है।

मन-प्राण-वाक्

अव्यय पुरुष की पाँच कलाएँ हैं- आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण और वाक्। इनमें से आनन्द, विज्ञान और मन मुक्ति साक्षी है तथा मन, प्राण और वाक् सृष्टि साक्षी है। अव्यय पुरूष की पाँच कलाओं में मन, प्राण और वाक् का विशेष महत्व है। संसार में जो कुछ भी दिखाई देता है वह मन- प्राण- वाङ्मय है। ये सृष्टि के पाँचों पर्वों में रहते हैं।[30] सृष्टि के पाँच पर्व हैं- सवयम्भू,परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्रमा और पृथिवी।

मन, प्राण और वाक् से क्रमशः ज्ञान, क्रिया और अर्थ उत्पन्न होते हैं। ये नाम, रूप और कर्म के रूप में सर्वव्यापक हैं। इन तीनों का प्रथम अधिकार अन्न, अन्नाद और आवपन है। अन्न (वाक्) भोग्य है, अन्नाद (प्राण) भोक्ता है और आवपन (मन)भोग का अधिष्ठान है। मन की वृत्ति काम, प्राण की वृत्ति (तप) और वाक् श्रम है। काम, तप और श्रम सभी पदार्थों में रहते हैं। इनके बिना कोई पदार्थ नहीं बन सकता है।

मन, प्राण तथा वाक् परस्पर अन्तः सम्बद्ध हैं। मन और प्राण के योग से ही वाक् सफल होती है। मन से वेद (ज्ञान), प्राण से यज्ञ (क्रिया) और वाक् से प्रजा (सृष्टि) उत्पन्न होती है। प्राण और वाक् मिलकर मन की सहायता करते हैं तो वेद सृष्टि होती है, मन और वाक् मिलकर प्राण की सहायता करते हैं तो यज्ञ की सृष्टि होती है, प्राण और मन मिलकर वाक् को सहयोग करते हैं तो लोक की सृष्टि होती है। इसे सारणी द्वारा भी समझ सकते हैं-

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख्य	सहकारी	सृष्टि
मन	प्राण और वाक्	वेद
प्राण	मन और वाक्	यज्ञ
वाक्	प्राण और मन	लोक

प० ओझा ने अपने ग्रन्थों में मन-प्राण-वाक् की त्रयी पर अति सूक्ष्मता से चिन्तन किया है जो दृष्टव्य है।

प० मधुसूदन ओझा ने इन परिभाषाओं के अतिरिक्त भी कई प्रतीकों की व्याख्या की है जो उनके ग्रन्थों में द्रष्टव्य है।

प० ओझा तथा उनके शिष्य प० मोतीलाल जी शास्त्री ने सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय का आलोडन कर महत्त्वपूर्ण वैदिक प्रतीकों की वेदविज्ञान की दृष्टि से व्याख्या की है। यदि हम उनके द्वारा प्रदत्त वेदविज्ञान को आधार बनाकर वेदाध्ययन करें तो वेदों में निहित सृष्टिप्रक्रिया को भी समग्र रूप से समझ पायेंगे। उन्होंने एक नई दिशा दी है जिस पर और अधिक गहन अन्वेषण की आवश्यकता है।

या तु मता परिभाषा यान् सिद्धान्तान् महर्षयोऽवधृतान्।
आलम्ब्यैतान् मन्त्रानाम्नासिषुरत्र ते प्रदर्श्यन्ते।।31
यत्र प्रदर्श्या विषयाः पुरातना
यत्र प्रकारोऽभिनवः प्रदर्शने।।32

मल्लिनाथ भी इसका समर्थन करते हैं-

"नामूलं लिख्यते किंचित् नानपेक्षितमुच्यते।"

पाद-टिप्पणियाँ

1. ऋग्वेद (10.71.4)
2. ऋषिशब्दस्य चतुष्टयी प्रवृत्तिः- असल्लक्षणा, रोचनालक्षणा द्रष्टृलक्षणा, वक्तृलक्षणाचेति। -महर्षिकुलवैभवम् (पूर्वार्द्धम्) पृ.3
3. "के ते ऋषयः इति प्राणा वा ऋषयस्ते यत्पुरास्मात्सर्वस्मादिदमिच्छन्तः श्रमेण तपसरिषंस्तास्मादृषयः।" -शतपथ ब्राह्मण 6.1.1.1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4. "The Forces of Natur" V. Griboryev and G Myakishev, MIR Publisher's, Moscow 1971.Pg.10
5. शतपथ ब्राह्मण 8.1.1.6
6. ''अथ या एता: 'रोचन्ते रोचना दिवि' यासु ऋक्षनक्ष त्रतारकादय: शब्दा: प्रसिद्ध्यन्ति, तास्वेतमृषिशब्दमुपचरन्ति स्म पूर्वे महर्षय:।'' - महर्षिकुलवैभवम् (पूर्वार्द्धम), पृ.18
7. तथा चैषामृषीणां शब्द रचना कर्तृत्वाभिप्रायेण मन्त्रकर्तृत्वम्, देवतादिविज्ञानसाक्षात्कर्तृत्वाभिप्रायेण मन्त्रद्रष्टृत्वमित्युभयम्।'' वही पृ. 32
8. ''क्वचित्पुरनृषयोऽप्येषामृषयो निर्दिश्यन्ते, वक्तृत्वेन विवक्षणात्, तेषु चेदमृषित्वं गौणं द्रष्टव्यम् काल्पनिकत्वात्।'' वही पृ. 75
9. तैत्तिरीय संहिता 5.4.9.2
10. मैत्रायणी संहिता 3.10.7
11. बृहज्जाबालोपनिषद् 2.4
12. ऋग्वेद 5.44.15
13. जैमिनीय ब्राह्मण (3.154)
14. शतपथ ब्राह्मण (11.1.1.1)
15. वही (10.5.2.4)
16. मैत्रायणी संहिता 3.3.7.3
18. शतपथ ब्राह्मण 14.8.4.1
19. तैत्तिरीय ब्राह्मण 3.2.9
20. अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थं ऋग्यजु: सामलक्षणम्।। मनुस्मृति 1.23
शब्द: स्पर्शश्च रूपंच, रसो गन्धश्च पंचम:।
वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिगुणकर्म्मत:। मनुस्मृति 12.28
21. महर्षिकुलवैभवम् (पूर्वार्द्ध) पृ. 27
22. शारीरकविमर्श पृ. 25
23. वही
24. ब्रह्मसिद्धान्त श्लोक 143
25. वही श्लोक 153
26. वही श्लोक 164
27. कठोपनिषद् 2.5.8
28. भगवद्गीता 15.1
29. ऋग्वेद-10.97.5
30. यानि पंचधा त्रीणि त्रीणि तेभ्यो न ज्याय: परमन्यदस्ति।
यस्तद्वेद स वेद सर्व सर्वा दिशो बलिमस्मै हरन्ति।। छान्दोग्योपनिषद् 2.21.3
31. ब्रह्मसिद्धान्त-श्लोक 15
32. ब्रह्मविज्ञान

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशेषिक दर्शन में दिक् की अवधारणा

प्रचेतस्
शोध छात्र (संस्कृत विभाग)
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

संक्षेपिका:- इस विशाल ब्रह्माण्ड में असंख्य पदार्थ दृष्टिगोचर होने पर भी वैशेषिक ने वर्गीकरण के आधार पर उनकी संख्या ७ स्वीकार की है। उसी प्रकार विश्लेषण के अनन्तर प्रतीत होने वाले द्रव्यों को भी वैशेषिक दार्शनिक ९की संख्या में निबद्ध करते हैं:- पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, तथा मन। वैशेषिक दर्शन के विशेष सन्दर्भ में दिशा की अवधारणा क्या है। तथा आधुनिक तत्वचिन्तकों के विचारों से कितनी समानता है, इसे समझने का प्रयास प्रस्तुत शोधपत्र में किया गया है।

अधिकांश विद्वान् दिक् का आंग्ल पर्याय Space ही देते हैं, किन्तु इस पद का तात्पर्य आकाश अवकाश या स्थानमात्र नहीं लेना चाहिये।

"Dik is not space, if by that it means an expanse, extension or room. Space in this sense, and if concieved as a reality not as a mere and absolute nothing, is Akash in which all things exist as in a locality."!

सामान्यत: दिशा को देशिक आधार पर स्थानीय अधिकरण समझा जाता है, जिसमें जगत की भौतिक वस्तुयें अधिष्ठित हैं तथा अपने विशेष स्थान को ग्रहण किये हुए हैं। किन्तु वैशेषिक के अनुसार दिक् या दिशा एक सत् द्रव्य है।

Dik which is considered as space in vaisesika system is not really space, if by space is meant an expanse, extension or room, In this sense, Akasha is real space which provides room for other object.!!

यदि दिशा केवल स्थानीय अधिकरण मात्र होती, और इसका कार्य केवल वस्तुओं को आधार प्रदान करना मात्र होता, तो दिशा को पृथक् दिव्य स्वीकार करने की आवश्यकता ही न होती। यह कार्य तो वैशेषिक दर्शन में आकाश द्रव्य का माना गया है। दिशा भी काल के समान ही वैशेषिक दर्शन में एक स्वतन्त्र एवं नित्य द्रव्य के रूप में सिद्धि की गयी है। वैशेषिक मत के अनुसार विभिन्न मूर्त जागतिक वस्तुओं की परस्पर सम्बद्ध स्थिति से ही दिशा की सिद्ध होती है, चूंकि उस स्थिति की अन्य किसी भी रीति से व्याख्या नहीं की जा सकती। दिशा का ज्ञान भी हमें काल की भांति अनुमान के द्वारा हो सकता है, प्रत्यक्ष के द्वारा नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशेषिक दर्शन के विभिन्न आचार्यों ने दिशा के भिन्न लक्षण दिये हैं। प्रशस्तपाद आचार्य ने पदार्थधर्मसंग्रह में दिशा का लक्षण देते हुये कहा है कि किसी मूर्त द्रव्य को अवधि मानकर उसकी अपेक्षा अन्य मूर्त द्रव्यों में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आदि प्रतीतियाँ जिसके कारण होती हैं वही दिशा है:-

''मूर्तद्रव्यमवधिं कृत्वा मूर्तेष्वेव द्रव्येष्वतस्मादिदं पूर्वेण दक्षिणेन पश्चिमेनोत्तरेण पूर्वदक्षिणेन दक्षिणापरेण अपरोत्तरेण उत्तरपूर्वेण चाधस्तादुपरिष्टाच्चेति दश प्रत्यया यतो भवन्ति सा दिगिति, अन्यनिमित्तासम्भवात्।[iii]

सप्तपदार्थी में आचार्य शिवादित्य ने दिशा का लक्षण देते हुये कहा है कि परत्व-अपरत्व के असमवायि कारण का आधार सूर्य के संयोगो से अनुत्पाद्य तथा परत्व अपरत्व का अनधिकरणे जो द्रव्य है, वही दिशा है-

आदित्यसंयोगानुत्पाद्यपरत्वासमवायिकारणाधारः परत्वापरत्वानधिकरणं दिक्।[iv]

उदयनाचार्य ने कहा है कि अनियत परत्व के असमवायि में समवेत मूर्तत्व रहित द्रव्य को दिशा कहा गया है-

अनियतपरत्वासमवायिसमवायिनी मूर्तत्वरहिता दिक्।[v]

तर्कसंग्रह में आचार्य अन्नंभट् ने दिक् को प्राची, प्रतीची आदि के व्यवहार का हेतु बताया है। तथा इसे एक, विभु एवं नित्य द्रव्य माना है-

प्राच्यादि व्यवहारहेतुर्दिका सा चैका नित्याविम्बी च।[vi]

वैशेषिक दर्शन दिशा को नित्य एवं एक मानता है। इस विषय में पूर्वपक्षी यह आक्षेप करते हैं कि यदि दिशा एक ही है, तो पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि नामों का क्या आधार है, तथा श्रुति एवं स्मृति में जो दिशाओं के अनेक रूप का वर्णन है, उसका क्या औचित्य है? इसके समाधान में प्रशस्तपादाचार्य अपनें भाष्य में लिखते हैं कि यद्यपि दिशा वस्तुतः एक ही है, परन्तु हमारे व्यवहार के लिये तथा ऋषियों द्वारा प्रयुक्त वाक्यों के औचित्य के लिये इसके दश नाम माहेन्द्री (पूर्व), वैशनरी (दक्षिण पूर्व), याम्या (दक्षिण), नैऋति (दक्षिण-पश्चिम), वारुणी (पश्चिम), वायव्या (उत्तर-पश्चिम), कौबेरी (उत्तर), एशानी (उत्तर-पूर्व), ब्राह्मी (ऊर्ध्व), एवं नागी (अधः) माने गये हैं। परन्तु वस्तुतः ये नाम औपाधिक हैं, तात्विक नहीं क्योंकि वे सूर्य मेरु परिक्रमा के कारण जन्य संयोगविशेषों पर ही आधारित हैं। श्रीधराचार्य ने भी अपनी न्यायकन्दली व्याख्या में स्पष्ट किया है कि दिशा एक ही है और उपाधि भेद से ही पूर्व पश्चिम आदि प्रतीतियों की उपपत्ति होती है। वैशेषिक आचार्यों के अनुसार सूर्य संयोगों की विशिष्टता के आधार पर दिशा के प्राची, प्रतीची आदि दश नाम है। ये नाम तत्तद्विशेष सूर्यसंयोगों को संकेतित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं। जैसे पूर्व दिशा के प्राची इसलिये कहते हैं कि उसमें सूर्य सबसे पहले आता है। जिसे सूर्य नीचे से स्पर्श करता है, उसे अवाची कहते हैं। जहाँ सूर्य ऊपर चढता है, उसे उदीची कहते हैं तथा जहाँ सूर्य सबसे बाद में पहुँचता है, उसे प्रतीची कहते हैं।

व्योमवतीकार के अनुसार सूर्योदय के समय सूर्य जिस दिक् प्रदेश के साथ संयुक्त होता है, वह प्राची है। मध्याह्न में दक्षिण तथा अपराह्न में सूर्य के साथ संयुक्त होने वाली दिशा प्रतीची है। आचार्य शंकर मिश्र ने कणाद रहस्य में पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण दिशा के निम्नलिखित लक्षण दिये हैं:-

1. **पूर्व**- जो दिशा जिसकी अपेक्षा से सूर्योदय के समीप है, वह उसकी दृष्टि से पूर्व है।

यदपेक्षया या सूर्योदयसन्निहिता दिक् सा तदपेक्षया प्राची।[vii]

2. **पश्चिम** - जो दिशा जिसकी अपेक्षा सूर्यास्त स्थल के निकट है, वह उसके लिये पश्चिम है।

या यदपेक्षया सूर्यास्तलाचलसन्निहिता सा तदपेक्षया प्रतीची।[viii]

3. **उत्तर**- पूर्वाभिमुख पुरुष के बायीं ओर की दिशा उत्तर है।

प्राच्याभिमुखस्य पुरुषस्य वामप्रदेशावच्छिन्ना दिग् दक्षिणा।[ix]

4. **दक्षिण**- उस पूर्वाभिमुख पुरुष के दायीं ओर की दिशा दक्षिण है।

तादृशपुरुषस्य दक्षिणप्रदेशावच्छिन्ना दिग् दक्षिणा।[x]

इस प्रकार स्पष्ट है कि दिशा के भेद उपाधिवश ही किये गए हैं। यदि दिशा को अनेक व अनेकों को परस्पर पृथक्-पृथक् माना जाये तो फिर पूर्व दिशा में विद्यमान किसी भी वस्तु में कभी पश्चिम की प्रतीति नही होनी चाहिये। जब कि एक ही वस्तु जो किसी एक की अपेक्षा पूर्व है, वही किसी अन्य की अपेक्षा उसी समय पश्चिम भी हो सकती है। दिशा के ये दस भेद उपचारवश ही माने गये हैं, तत्वतः नहीं। यहाँ ध्यातव्य है कि प्रशस्तपादभाष्य की सेतु व्याख्या के रचयिता आचार्य पद्मनाभ मिश्र ने उक्त दस के अतिरिक्त एक ग्यारहवीं दिशा का उल्लेख किया है, जो प्राची और अवाची के मध्य है अथवा जो ऊर्ध्व और अधो भाग के मध्य है। सप्तपदार्थी में शिवादित्य ने भी रौद्री नामक ग्यारहवीं दिशा मानी है, जो ऊर्ध्व एवं अधो दिशा के मध्य स्थित है और जिसे सामान्यतः अन्तरिक्ष कहा जाता है।

काल की भाँति दिशा एक द्रव्य है, चूँकि उसमें भी काल की भाँति पाँच गुण पाये जाते हैं-संख्या, परिणाम, पृथक्त्व, संयोग और विभाग। इसमें एकत्व संख्या सिद्ध है, विभु द्रव्य होने से इसका परम महत् परिणाम सिद्ध है। इस प्रकार सिद्धाः'' अर्थात् काल के समान दिशा के गुण सिद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक तत्वचिन्तकों के दिक् सम्बन्धी विचारों से न्याय-विशेषिक सिद्धान्त का समर्थन होता है। सर जेम्स जीन्स लिखते हैं-

Science finds however, that the patterns of events in the outer world is consistent with and can be explained by the supposition that materil bodies are permanently located in and about in space.

यह मान्यता तो सर्वसिद्ध है कि काल और दिशा सृष्टि की प्राग्भावी दशायें हैं, उनके कार्य एवं स्वरूप के विषय में मतभेद हो सकता है, किन्तु उनकी सिद्धि सर्वथा अप्रतिहत है। यही बात सुलविन भी कहते हैं-

Both time and space are essential for the existence of Matter.

इस प्रकार हम देखतें हैं कि दिक् सम्बन्धी वैज्ञानिकों के विचारों की साम्यता वैशेषिक सिद्धान्तों से मिलती है।

पाद-टिप्पणियाँ

1 Chatterjee, Jagdish Chandra Hindu Realism, pafe168.
2 Mandal, Kumar Kishore On the concepts of space and time in indian thought, Page,112
3 प्रशस्त पादभाष्य, पृष्ठ-45
4 सप्तपदार्थी, पृष्ठ-66
5 लक्षणावली, पृष्ठ-14
6 तर्कसंग्रह पृष्ठ-12
7 कणाद रहस्य
8 वही
9 वही
10 वही
11 physics and philosophy, page-56
12 The Limitation of Science, Page-66

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाल्मीकि रामायणे रामराज्यम्

डॉ० योगेश शास्त्री
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आराध्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकि कोकिलम्॥

धन्योऽयं भारत देशः यत्र उत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो विराजते। यत्र प्रवहति कल-कल निनदन्ती भगवती भागीरथी। यस्मिन् देशे कणाद, कपिल, गौतम, पतञ्जलि सदृशाः ऋषयः प्रादुर्बभूवुः। यत्र महाकवि कालिदास प्रभृतयः कविश्रेष्ठाः धरणीमिमां विभूषयामासुः। एतादृशे सुपुण्ये भारत देशे समुत्पन्नः कौसल्यानन् वर्धन दशरथनन्दनः श्रीरामभद्रः। चतुर्षु भ्रातृषु गुणैः श्रेष्ठः, ज्येष्ठः श्रीरामचन्द्रः आसीत्। सूर्य इव तेजस्वी, शशिरिव आह्लादकः, सागर वेलापर्यन्तायाः भुवः भर्त्ता। असंख्यातानि संवत्सराणि व्यतीतानि, न जाने कियन्तः धरणीधराः, बलशालिनः, राष्ट्ररंगमंचे समागताः। परं मर्यादा पुरुषोत्तमस्य श्री रामचन्द्रस्य धवलकीर्तिः यथा राष्ट्रव्योम्नि देदीप्यते न तथा अन्यस्य कस्यापि नृपस्य। श्री रामचन्द्रस्य राजधानी अयोध्या अतीव हृद्या, अनवद्या, वन्द्या च आसीत्। तत्रत्याः जनाः सत्यपथगामिनः, चरित्रवन्तः, देशभक्ताः, विद्यानुरागिनः, प्रभुभक्तिपरायणाश्च आसन्। रामायणस्य प्रारम्भे बालकाण्डस्य प्रथम सर्गे श्रीरामचन्द्रस्य गुणगौरवं प्रतिपादयन् आदिकविः इत्थं जगाद -

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी॥१॥
बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमानञ्छत्रुनिवर्हणः।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः॥२॥
धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजानां च हिते रतः।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥३॥
प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता॥४॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः॥५॥
सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः।।६।।
स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दनवर्धनः।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव।।७।।
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः।।८।।

अयोध्याकाण्डस्य प्रथम-द्वितीय सर्गेऽपि श्री रामभद्रस्य गुणगौरवं आदिकविना इत्थं वर्णितम् अस्ति-

दिव्यैर्गुणैः शक्रसमो रामः सत्यपराक्रमः
इक्ष्वाकुभ्योऽपि सर्वेभ्यो ह्यतिरिक्तो विशाम्पते।।१।। 2/28
राम सत्पुरुषो लोके सत्य धर्मपरायणः
साक्षाद्रामाद्विनिर्वृत्तो धर्मश्चापि श्रिया सह।।२।।
प्रजासुखत्वे चन्द्रस्य वसुधायाः क्षमागुणैः।
बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यो वीर्ये साक्षाच्छचीपतेः।।३।।
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च शीवाननसूयकः।
क्षान्तः सान्त्वयिता श्लक्ष्णः कृतज्ञो विजितेन्द्रियः।।४।।
व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः।
उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति।।५।।
सत्यवादी महेष्वासो वृद्धसेवी जितेन्द्रियः।
स्मितपूर्वाभिभाषी च धर्म सर्वात्मनाश्रितः।।६।।
सानुक्राशो जितक्रोध्यो ब्राह्मणप्रतिपूजकः।
दीनानुकम्पी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रहवाञ्शुचिः।।७।।
स तु श्रेष्ठै गुणैर्युक्तः प्रणानां पार्थिवात्मजः।
बहिश्चर इव प्राणो बभूव गुणतः प्रियः।।८।।

एवं विविधगुणभूषितः श्रीरामचन्द्रः संप्राप्ते यौवने जनकतनयां सीतां परिणीय पितुरादेशात् राज्यधुरां वोढुं सन्नद्धोऽभवत्। श्रीराम राज्याभिषेकाय अयोध्यानगरी नवोढेव समलंकृता राजपुरुषैः अयोध्यावासिभिश्च। परं मन्थरायाः दुर्मन्त्रणया कुबुद्धिं संप्राप्ता कैकेयी राजानं दशरथं तथा कुटिलजाले निगडितवती, यथा सः महीपतिः ज्येष्ठं तनयं श्रीरामं चतुर्दशवर्ष पर्यन्तं वनं गन्तुमादिष्टवान्। पितुराज्ञया तापस वेशधारी श्रीरामः येनोत्साहेन राजसिंहासनं स्वीकर्तुं सन्नद्धः आसीत् तेनैवोत्साहेन वनं गन्तुं समुद्यतो बभूव।

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य स्वनामधन्यस्य प्रातः वन्दनीयस्य श्रीरामचन्द्रस्य हृदये अयोध्या, अयोध्यावासिनः तत्रत्या बाला, स्थविराः, वृद्धाः, नार्यः, धनवन्तः, निर्धनाः जनाः अहर्निशं निवसन्ति स्म। प्रजानुरञ्जनम्, प्रजानां कल्याणमेव वा तस्य जीवनोद्देश्यम् आसीत्। यथा कोऽपि जनः स्वप्राणान् रक्षितुं सततं प्रयतते, तथैव स राजा रामचन्द्रः प्रजां रक्षितुं सर्वं कष्टजातं वोढुं सन्नद्धः आसीत्। रामे राज्यं प्रशासति प्रजाः त्रिविधदुःखरहिताः बभूवुः न कोऽपि आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक दुःखसन्त्रस्तः आसीत्। सर्वे परस्परं स्निहयन्ति स्म। तत्र अयोध्यायां धर्मस्य, सत्यस्य, मानवतायाः, करुणायाः साम्राज्यमासीत्। न तस्मिन् राज्ये कोऽपि मद्यपः, कदर्पः, स्तेनः, अभक्ष्यभक्षी वा आसीत्। तत्रत्याः प्रभुभक्ति परायणाः जनाः प्रतिदिनं ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय परमेश्वरं स्मरन्तः, अग्निहोत्रेण पर्यावरणं रक्षन्ति स्म। सर्वत्र वेदमन्त्राणां, स्वाहा, स्वधाकारस्य च पावन ध्वनि, वातावरणं पावयति स्म। आदिकविः एवं विधस्य रामराज्यस्य मधुरं चित्रणं कुर्वाणः गायति-

न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम्।
न व्याधिजं भयं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति॥१॥
निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत्।
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते॥२॥
सर्वं मुदितमेवासीत्सर्वो धर्मोपरोऽभवत्।
राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन्परस्परम्॥३॥
आसन् वर्णसहस्राणि तथा पुत्र सहस्त्रिणः
निरामया विशोकाश्च रामेराज्यं प्रशासति॥४॥
नित्यपुष्पा नित्यफलास्तरवः स्कन्धविस्तृताः।
काले वर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः॥५॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः।
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः॥६॥
आसन् प्रजा धर्मरता रामे शासति नानृताः।
सर्वे लक्षणसम्पन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः॥८॥

ईदृशं राज्यं दृष्ट्वा कस्य चेतसि हर्षातिरेको न भवेत्? कः आनन्दसागरे न निमज्जेत्? मान्याः! यदा श्रीरामचन्द्रः स्वर्णमयीं लंकां विजित्य रावणं जघान, तदा बहवस्तत्र समुपेताः जनाः श्रीरामं प्रार्थितवन्तः लंकायाः राज्यं स्वीकर्तुम्। परं क्षणमेकमविंचार्य भगवान् श्रीरामः प्रोवाच-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

एवं स्वमातृभूमिं सर्वदा अर्चयन्तः, रक्षन्तः परिपालयन्तः परिपोषयन्तः भगवन्तः श्रीरामचन्द्राः विश्वसाहित्ये अजराः अमराः वर्त्तन्ते।

तैः संस्थापितस्य राम राज्यस्य कल्पनां स्मारं-स्मारं राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी आनन्दातिरेकं भजते स्म। सः सर्वदा सभासु, प्रार्थनासु, जनसम्मेलनेषु च इदमेव प्रार्थितवान् प्रभो! मम देशे रामराज्यं प्रतिष्ठितं भवेत् सृष्टिरचना कालाद् भारते, अन्येषु देशेषु च बहवः राजानः समभवन् परं यादृशी पिता पुत्र भावना प्रजाराजयोः मध्ये रामराज्ये आसीत् न तादृशी अन्यत्र कुत्रापि। प्रजानां रंजनार्थं, कल्याणार्थं, दुःखनिवारणार्थं च भगवान् श्रीरामचन्द्रः यथा प्रयतते स्म, न तथा कोऽपि अन्यः नृपः। यद्-यद् कल्याणकरं सुखप्रदं, राष्ट्रोन्नति कारकं स्वरूपं रामराज्ये आसीत् तस्य कल्पनैव अस्मान् आनन्दितान् करोति। विश्व इतिहासे नास्ति अन्यत् किमपि उदाहरणं, यत्र महीपतिः कस्यापि रजकस्य, सामान्य जनस्य वा कथनेन स्वां प्राणप्रियां, पतिव्रतपवित्रां, राजमहिषीं राज्यात् निष्कासयेत्। तस्याः अग्नि परीक्षां कारयेत्। संसारे यथा श्रीरामभद्रस्य परमोज्ज्वलं निर्मलं, प्रेरणास्पदं चरित्रं वरीवर्ति, न अन्यस्य कस्यापि। सहस्त्रेभ्यः वर्षेभ्यः तादृशस्य राम राज्यस्य कामना भारतदेशीयैः महापुरुषैः क्रियते। तद् रामराज्यं पुनरपि भारतदेशे विलसतु इत्येव कामयमानोऽहं विरमामि।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेघदूत का रामगिरि

डा. सुचित्रा मलिक
एसो प्रो. एवं प्रभारी-हिन्दी विभाग
क० गु० परिसर, गु० काँ० वि० वि०, हरिद्वार

भारतीय साहित्य के अविस्मरणीय संस्कृत कवि कालिदास की र . ा 'मेघदूत' की सृजन स्थली के सन्दर्भ में मेघदूत का प्रथम श्लोक ही एकमात्र प्रमा.ं है।

कश्चित्कान्ताविरह गुरूणा स्वाधिकारात् प्रम .ः
शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्ष भोग्येण भ .
यक्षश्चक्रे जनकतनया स्नान पुण्योदकेषु
स्निग्धच्छाया तरूषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।।[1]

उपर्युक्त श्लोक के अर्थानुसार स्वकर्त्तव्य में असावधान, प्रिया वियोग के कारण दु:सह एक वर्ष के निर्वासन को बाध्य, स्वामी (कुबेर) के शाप से जिसकी महिमा नष्ट हो गयी थी, ऐसा कोई यक्ष जनकतनया (सीता) के स्नानसे पुनीत हुए जल वाले (जलाशयों से युक्त) छायादार सघन वृक्षों से युक्त रामगिरि (नामक पर्वत) के आश्रमों में निवास कर रहा था।

श्लोकानुसार यक्ष का वियोगकाल रामगिरि पर्वत के आश्रमों में किसी प्रकार कट रहा है। रामगिरि को मल्लिनाथ ने 'चित्रकूट' माना है।[3] रामायण के 'राम' का वनवास भी इस पर्वत पर व्यतीत हुआ है। संकेत में कविवर मैथिली शरण गुप्त ने इस पर्वत की महिमा में पूरी एक कविता ''ओ गौरवगिरि उच्च उदार'' लिखी है। इसमें चित्रकूट के प्राकृतिक सौन्दर्य का हृदय ग्राही अंकन हुआ है। कुछ विद्वान रामगिरि को रामगढ़ (मध्यभारत) तो कुछ रामटेक (नागपुर से उत्तर की ओर) मानते हैं।[4] महाकवि कालिदास ने अपने यक्ष की विरह कथा के स्थान का पूरा पता नहीं दिया। पर्वत की चोटी पर उतरते सुरमई मेघ को देखकर यक्ष एकाएक अपनी निराशा से निकल आता है-

आषाढ़स्य प्रथम दिवसे मेघमाश्लिष्ट सानुं
वप्र क्रीड़ा परिणत गज प्रेक्षणीयं ददर्श।[5]

आषाढ़ के पहले दिन पर्वत की चोटी पर संपृक्त उत्खातकेलि में तिरछे दन्त प्रहार करने वाले हाथी के समान दर्शनीय मेघ को (यक्ष ने) देखा।[6] मेघ का स्वभाव अदभुत और निराला होता है। वह नाना रूप धारण करता सर्वत्र गमन करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी चौकड़ी भरते मृग से भूपर चरण नहीं धरते,
मत्त मतंगज कभी झूमते सजग शशक नभ को चलते।[6]

इसी मेघ रूप को देखकर यक्ष उसे अपनी प्रियतमा के पास अलकापुरी सन्देश लेकर भेजना चाहता है। वह उससे याचना करता है इस कार्य को करने की । साथ ही उसे यह विश्वास भी है कि मेघ यह दूत कार्य निभा देगा क्योंकि महानविभूतियाँ सदैव ही परोपकार के लिए विख्यात हुई हैं। कालिदास की इसी 'मेघदूत कल्पना' से प्रेरित होकर हिन्दी के सुकुमार प्रकृति प्रेमी कवि 'पन्त' ने 'बादल' कविता का सृजन किया होगा। बादल की दो पक्तियाँ इसे इंगित करती हैं-

सुरपति के हम ही हैं अनुचर, जगत्प्राण के भी सहचर,
मेघदूत की सजल कल्पना, चातक के प्रिय जीवन धर।[7]

पन्त ने स्वीकार किया है कि कविता की प्रेरणा उन्हें प्रकृति से मिली। रसवादी आचार्य 'शंकुक' ने काव्य शास्त्र को रस की अवधारणा के लिए 'अनुमितिवाद' का सिद्धान्त दिया। जिसकी परवर्ती आचार्यो ने उसके बुद्धि की प्रक्रिया से सम्बद्ध होने के कारण आलोचना की। अनुमितिवाद से अनुमान को यहाँ केवल ग्रहण कर लें तो न्याय शास्त्र का एक तर्क हमारे काम आ सकता है। न्याय दर्शन के अनुसार ज्ञान प्राप्ति के चार उपाय हैं। प्रत्यक्ष दर्शन 2. अनुमान 3. उपमान व 4 शब्द। अनुमान के तीन भेद हैं। पूर्ववत अनुमान 2. शेषवत अनुमान 3. सामान्यतोदृष्ट अनुमान। बादलों को देखकर वर्षा का अनुमान करना पूर्ववत अनुमान है। भीगी धरती और भरे नदी नाले देखकर मान लेना कि वर्षा हुई होगी शेषवत अनुमान है। तथा आषाढ़ सावन, भादौं में मान के रखना कि वर्षा होगी सामान्यतोदृष्ट अनुमान है। अनुमान की सहायता से प्राप्त होने वाला ज्ञान ही अनुमति कहलाता है।[8] 'पन्त' की काव्य प्रेरणा प्रकृति का चिर सौन्दर्य रहा है तो महाकवि कालिदास ने रामगिरि के मेघाच्यादित वन प्रान्तर को, उसकी श्यामल सुन्दर और रमणीय उपत्यकाओं तथा नीलम की आभा से आलोकित जलाशयों को देख और अभिभूत होकर 'मेघदूत' की रचना की ही ऐसा कहा जा सकता है शेषवत अनुमान के अनुसार रामगिरि को रामटेक मानकर जब यह खोजा जाये कि रामटेक में ऐसा क्या-क्या कर रहा होगा। जिसने कालिदास के मन को आकर्षित किया होगा। तब वहाँ का वर्षाकाल ही वह प्रमाण है जो कविकलम को मेघदूत लिखने के लिए बाध्य कर सकता है। यूँ रामटेक को कालिदास से सम्बद्ध करने के लिए पुरातत्व विभाग की पट्टिका एवं कालिदास का स्मारक जिसमें मेघदूत के श्लोक उत्कीर्ण हैं तथा रामटेक की घाटी में कवि कुल गुरु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास संस्कृत विश्व विद्यालय का स्थापित होना, तीन प्रमाण हैं।

मानव मात्र में कवि हृदय सबको प्राप्त नहीं होता व कवियों में महान कवि सब नहीं होते। लोंजाइनस के अनुसार महान साहित्यकार में उदात्त विचार, भाव, भाषा और शैली के साथ उदात्त व्यक्तित्व का होना भी आवश्यक है। महाकवि कालिदास यें ये सब बातें एक साथ निहित थीं। उन्होंने, (पं० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार) अपने देश की सम्पूर्ण प्रकृति, सागर से हिमालय तक को अपनी उदात्त दृष्टि से मेघदूत में चित्रित करके अपने देश प्रेम का परिचय दिया है।[9]

प्रकृति मानव की आदि सहचरी है। रमणीया प्रकृति सहृदय कवि को निश्चय ही आकर्षित करती है। प्रकृति की सुरम्य क्रोड़ में कवि का हृदय झंकृत हो उठता है। और धरा पर कुछ अमर कृतियों का सृजन होता है। प्रकृति के अंचल में कवि की विरहानुभूति प्रगाढ़ हो उठती है। क्योंकि नीरव एकान्त कोने पशु-पक्षियों की तरह मानव को भी उसके युगल रूप में रहने की चाहत उत्पन्न करते होंगे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'कविता क्या है', निबन्ध में प्रकृति और मनुष्य के साहचर्य सम्बन्ध को सतर्क प्रस्तुत किया है। कवि इस प्रकृति का कभी आलम्बन तो कभी उददीपन रूप में निरूपण करता है। मेघदूत में कवि कुल गुरू कालिदास ने प्रकृति ने अनुपम चित्र उतारे हैं। उपमा तो कालिदास की ही निधि है उनकी उपमाओं का कोई सानी नहीं। और रामटेक की प्रकृति 'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदैव रूपम् रमणीयताया:', को चौमासे में पूरा सार्थक कर देती है।

महाराष्ट्र में नागपुर से लगभग 50 किमी उत्तर की ओर रामटेक स्थित है। प्रकृति की अनुपम छवियों का यह अंचल वहाँ पर्वत के शिखर पर स्थित गढ़मन्दिर के लिए प्रसिद्ध है। गढ़ मन्दिर समस्त शब्द है जो गढ़ और मन्दिर दो संज्ञाओं से निर्मित है। वहाँ ऊपर एक गढ़ और एक राम लक्ष्मण का मन्दिर है। गढ़ के शुरू होते ही सीढ़ियों के पास पुरातत्व विभाग ने कुछ ऐतिहासिक साक्ष्य अंकित किये हैं। जैसे यह स्थान कवि कुल गुरू कालिदास के यहाँ पर 'मेघदूत' की रचना करने के लिए प्रसिद्ध है। दूसरा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की पुत्री तथा वाकाटक नरेश की महारानी प्रभावती ने इस दुर्ग का निर्माण कराया था। कालिदास के जीवन वृत्त में बहुत सी किंवदन्तियाँ तथा कहानियाँ सम्बद्ध हैं। उनमें एक यह भी है कि उसे उज्जयिनी से प्रवास भी विवशतापूर्ण परिस्थितियों में करना पड़ा था और उज्जयिनी उसे बहुत प्रिय थी वह उसके लिए स्वर्ग का एक टुकड़ा थी जो किसी तरह धरती पर आ गयी थी।

उज्जयिनी स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां।
शेषै पुण्यैर्हमिव दिवः कान्तिमत खण्डमेकम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेघदूत का यक्ष भी, अलकापुरी जो स्वर्ग की नगरी है से निष्कासित है। दोनों का विरह अपने अपने प्रियतम स्थान के लिए है। कालिदास और यक्ष यहीं एकमेव हो जाते हैं। इसलिए रामगिरी से चलते हुए मेघ से कवि प्रार्थना करता है कि अलकापुरी तक जाने वाले मार्ग में उज्जयिनी नहीं होते हुए भी (वक्रपन्थज्ञः यदपिभवतः) तुम मुड़कर उज्जयिनी जरूर जाना, तुम्हारी यात्रा अविस्मरणीय और सार्थक हो उठेगी। यहाँ वह विस्तार से नगर के वर्णन में रमता है पर इन वर्णनों की उत्सभूमि तो रामटेक है। रमणीय रामटेक। संयोग से पृथ्वी पर बहुत सी घटनाएं घटती है। 'संयोगादसनिष्पात्ति' भी होती है। रामटेक में कालिदास के संयोग से निवास या प्रवास में वियोग श्रंगार के रस काव्य 'मेघदूत' की रचना हुई है। यह कहा जा सकता है।

संयोग से एक बार 2010 की वर्षा ऋतु में नागपुर की यात्रा का अवसर मिला और वहाँ से रामटेक के दर्शन हुए। नागपुर के समीप यह पहाड़ियों की खूबसूरत वादी है। इसका प्राचीन नाम 'रामगिरी' है। इसके निकट जाकर वैसा ही अनुभव होता है जैसा 'गढ़ कुडार' की रचना से पूर्व वृन्दावनलाल वर्मा को वनाच्छादित कुंडार के गढ़ को देखकर हुआ था। वर्मा जी ने लिखा है कि पहली नजर में कुंडार उन्हें ऊँघता हुआ सा प्रतीत हुआ था। ठीक वैसे ही रामटेक का मन्दिर नीचे पर्वत की तलहटी से उँचे घने छायादार वृक्षों के मध्य लुकता छिपता प्रतीत होता है। भादौं की काली सुरमई घटाओं और नीचे वन की सघन हरियाली के मध्य यह झपकी सी लेता लगता है। गढ़ का ताँबई, मटियाला और काला रंग प्रकृति के साथ सुन्दर विरोधाभासी शैली का चित्र प्रस्तुत करता है। मानों मानव ने प्रकृति के फलक पर अदभुत चित्रकारी की हो। सितम्बर 2010 में भारतवर्ष में अत्यधिक वर्षा दर्ज हुई। मेघों ने रामटेक में भी सारे नजारे प्रस्तुत करते हुए मेघदूत की सजल कल्पना वही उत्पन्न होने के नगाड़े बजाए। जाती हुई वर्षा ऋतु भी इस समय अपने उद्दाम यौवन पर थी। नागपुर से रामटेक के मार्ग में पड़ने वाली बैन गंगा या बाण गंगा और कन्हान नदियाँ भरी पूरी बह रही थीं। अति वृष्टि ने यहाँ की शुष्क पठारी, पहाड़ी, मैदानी सब भूमियों पर हरी मखमली चादर बिछादी थी । रामटेक को मुड़ने वाली सड़क पर ही नागार्जुन वाटिका पड़ती है। जिसमें तथागत बुद्ध की कई भाव भंगिमाओं की प्रस्तर निर्मित मूर्तियाँ सड़क से ही दिखाई पड़ती हैं। बुद्ध की अधखुली, आँखोंवाली मुस्कुराती, शयन करती और खड़ी प्रतिमाएं पथिकों का आकर्षण बनती हैं।

छोटी बड़ी कई बस्तियों से गुजरते हुए रामटेक को ऊपर तक पतली सड़क जाती है। वहीं से नीचे वह सरोवर भी दिखलाई पड़ता है जिसमें स्नान कर सीता माँ ने उसके जल को पवित्र किया होगा। चारों ओर से पहाड़ियों से घिरा मनोरम, नयनाभिराम जलाशय का दृश्य। ऊपर 'गढ़ मन्दिर' जिसके बारे में प्रसिद्ध है कि निशाचरों और राक्षसों से त्रस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगस्त्य मुनि जैसे ऋषियों की रघुकुल मणि राम ने यहाँ रक्षा करने की प्रतिज्ञा अर्थात 'टेक' ली थी। राम टेक अर्थात राम की प्रतिज्ञा का स्थान। लाल मिट्टी की हरियाली से पूरित पहाड़ियों को पार करके गढ़ मन्दिर तक जाने पर पहले भगवान वराह की विशाल प्रतिमा पड़ती है जो दुर्ग के निर्माताओं की वैष्णव भक्ति का साक्ष्य है। गढ़ को सुन्दर परकोटों, मजबूत चारदीवारी, वातायनों और जालियों से घेरा गया है। जहाँ से नीचे के खेत दूर तक दिखाई पड़ते हैं तथा संध्या और सवेरे अनुपम दृश्य रचते हैं। बादलों की गढ़ मन्दिर के पर्वतों पर लुका छिपी और झमझम वर्षा, विद्युत की कड़क के साथ वज्र प्रहार, तूफानी झंझावात आँधियाँ, ठण्डी फुहारें न जाने कितने रूप मनुष्य को देखने के लिए यहाँ पल पल निर्मित होते हैं। आनन्द और भय दोनों की ही अनुभूति होती है। पर कवि के लिए सब ग्राह्य है। पं० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार जो कवि प्रकृति के सुन्दर और रमणीय रूप की ही रचना करते हैं वे तमाशबीन है। सच्चाकवि प्रकृति के रौद्र और भयानक रूप को भी रमणीय रूप की तरह ही प्रेम करता है।

अपने भारत भ्रमण से कवि ने जो रत्न इकट्ठे किये वे सब उसने रामटेक से 'मेघदूत' में लुटा दिये हैं। भारत के कोने-कोने को सुशोभित और अमर करके अपने समय के ऐतिहासिक दस्तावेज भी रख दिये हैं। रामटेक के नयनाभिराम दृश्यों में 'खिण्डसी' का सरोवर भी एक है और वहाँ तक पहुँचने का मार्ग भी रमणीक है। इसलिए प्रतीत होता है कि मेघदूत के पहले ही श्लोक में रामटेक की श्यामल घाटी, भरे जलाशय और वनों में निर्मित आश्रम आ उपस्थित हुए है। रामटेक आज भी अपने पूर्ण सौन्दर्य में है और कालिदास के प्रवास से पूर्व भी वैसा ही रहा होगा पर उसे दर्शनीय बनाया कविकुल गुरू कालिदास ने-

हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है।
बड़ी मुददत में होता है चमन में दीदावर पैदा।

पाद-टिप्पणियाँ

1. मेघदूतं, पूर्वमेघ श्लोक सं. 1
2. मेघदूतम् व्याख्याकार-डा. दयाशंकर अवस्थी प्र. 45
3. मेघदूतम् व्याख्याकार-डा. दयाशंकर अवस्थी प्र. 46
4. मेघदूतम् व्याख्याकार-डा. दयाशंकर अवस्थी प्र. 46
5. मेंघदूतम् पूर्वमेघ श्लोक सं 2
6. बादल, तारापथ, पन्त प्र. 72
7. बादल, तारापथ, पन्त प्र. 73
8. साहित्यिक निबन्ध, गणपति चन्द्र गुप्त प्र. 80
9. कविता क्या है, 'चिंतामणि' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम की शक्ति पूजा- एक अन्तर्द्वन्द्व

डा० विजय इन्दु
गुड़गांव

'राम की शक्ति पूजा' आधुनिक मानव के युगसंगति एवं विसंगतियों के बोध पर आधारित यथार्थपरक आदर्शवादी दीर्घ चित्र है। पौराणिक आख्यान के एक अंश को जो भगवान् राम की अराधनासे सम्बंधित है कवि ने युगीन वैषम्य के वास्तविक परिवेश में संयोजित कर साधारण मानव के जीवन समर की गाथा प्रस्तुत की है। निराला की सांस्कृतिक दृष्टि एवं मानववादी जीवनदर्शन का परिचय 'राम की शक्ति पूजा' के वस्तुविधान में मिलता है। जहाँ एक ओर कवि राम के जीवन के एक लघुप्रसंग के माध्यम से आधुनिक मानव को अभिव्यक्ति देता है। तो दूसरी ओर अपने अपराजित व्यक्तित्व का परोक्ष प्रकाशन भी करता है।

निराला ने राम के संशय, उनकी अवसाद मलिनता उनके संघर्ष और अन्ततः उनके द्वारा शक्ति की मौलिक कल्पना और साधना तथा अन्तिम विजय में अपने ही रचनात्मक और व्यक्तिगत जीवन के संशय, अपने साहित्य के निरन्तर विरोध से उत्पन्न आंतरिक खिन्नता, अपने संघर्ष को ही अभिव्यक्ति दी है। साथ-साथ अपनी प्रतिभा को अभ्यास, अध्ययन और कल्पना-ऊर्जा द्वारा एक नयी शक्ति के रूप में उपलब्ध और प्रदर्शित करके अन्ततः रचनात्मकता की विजय का घोष ही इस कविता में व्यक्त किया है। वही स्वयं पुरुषोत्तम नवीन है। नए काव्य, नयी रचनात्मकता के सर्वप्रथम और श्रेष्ठतम उद्भावक वही है।

'वे साहित्कार जो सामने से उनका डटकर विरोध कर रहे है, वे अपने हृदय को ही रावण की तरह शक्ति या प्रतिभा प्रदर्शन के रूप में प्रयुक्त कर रहे हैं वे निराला की पुरुषोत्तमता, उनकी एकान्त नवीन मौलिकता को उद्यत बल-विस्तार और महोल्लास से वेध कर पराभूत कर देना चाहते हैं। -(महाकवि निराला एवं उनकी कालजयी कविताएं-19)

अपनी इस खिन्न मनः स्थिति का सघन बिम्ब-चित्र निराला राम के रूप में करते है- 'अनिमेष राम- विश्वजिद्दिव्य- शर-भंग-भाव-विद्धांग-बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर-रुधिर -स्राव।। (राम की शक्ति पूजा) राम के अलौकिक, असामान्य, दैवी व्यक्तित्व को एकदम मानवीय भावभूमि पर रखकर निराला ने जीवन पर अपनी अद्भुत पकड़ का परिचय दिया है। लेकिन मानवीय भावभूमि पर प्रतिष्ठित करते हुए भी राम के वैशिष्ट्यपूर्ण व्यक्तित्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को निराला भूले नहीं क्योंकि यह संशय किसी सामान्य योद्धा का नहीं है, बल्कि उसका है," जो हुआ नहीं आज तक हृदय रिपु दम्भ श्रान्त। एक भी अभ्युत लक्ष में रहा जो दुराकान्त।

"राम की इस तनावभरी स्थिति का एक ओर कारण है तथा राम की इस अक्षमता, पराजय और संशय की मन:स्थिति के मूल में निहित इस कारण की कल्पना में निराला की विशिष्टता छिपी हुई है, जो उनके राम को सम्भवत: अन्य समस्त राम काव्यों के राम से पृथक् भी करती है और भिन्न एवं आधुनिक मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रतिष्ठित भी करती है।" **-डा० अनुपम माथुर**

निराला के मानव राम की असली गहन व्यथा है- "अन्याय जिधर है उधर शक्ति।" इस कारण भी उन्हें समझ नहीं आता और उन्हें यह नियति की विडम्बना प्रतीत होती है-

आया न समझ में यह दैवी विधान
रावण, अधर्मरत भी, अपना, मैं हुआ अपर-
वह रहा शक्ति का खेल समर शंकर-शंकर।

-राम की शक्ति पूजा।

शक्तिपूजा के राम अन्दर एवं बाहर से स्वयं निराला के प्रतिरूप हैं। राम के मन का अन्तर्द्वन्द्व निराला के मन का अन्तर्द्वन्द्व है। युद्धके अनिर्णीत रहने सके राम के मन में ऐ द्वन्द्व चलता है। निराशा के गहन गर्त में डूबे होने के कारण उन्हें भीषण का धिक्कार भी विचलित नहीं कर पाता। सत्य ही राम भावनाओं के आरोह-अवरोह में डूबते-उतरते दिखाई देते हैं। यहीं उनका मानवत्व है और मानव होने के नाते आशा-निराशा का द्वन्द्व बड़ा स्वाभाविक प्रतीत होता है। उनके मन की निराशा और वेदना उस समय और प्रबल हो उठती है जब दुर्गा धिनकर अन्तिम पुष्प को उठा या चुराकर छिप जाती है। निराशा के क्षणों में राम के मुख से ये स्वर फूट पड़ते हैं -

धिक् जीवन जो पाता ही आया विरोध
धिक् साधन, जिनके लिए सदा ही किया शोध।

'राम की शक्ति पूजा'

यदि राम इस क्षणिक अवसाद पर विजय पा सकने में समर्थ हैं तो निराला भी। निराला को अवसाद कभी शिथिल न कर सका। वे अपने मौलिक सूझबूझ से जीवन को आगे चलाते रहे। उनके राम भी जीवन को धिक्कार देकर अपनी सफलता की एक युक्ति निकाल लेते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यह है उपाय, कह उठे राम ज्यों मंद्रित घन
कहती थी माता मुझे सदा राजीवनयन।
दो नीलकमल है शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मातः एक नयन।।''

'राम की शक्ति पूजा'

यह साहित्य प्रसिद्ध है कि कवि अपने व्यक्तित्व का प्रक्षेपण का किसी न किसी रूप में किया ही करते हैं। संघर्ष और निराला का चोली दामन का साथ है, यहीं संघर्ष अंत तक राम के व्यक्तित्व में भी निखरा है। शक्तिपूजा में व्यक्तित्व और स्वभाव के अनुरूप वृत्तियों का समावेश आज के युग की विशेषता के रूप में चित्रित है। यही दूधनाथ सिंह के अनुसार- उनको मनुष्य की भूमि पर उतारने वाला नया तत्व यह संशय ही है। संशय मात्र को दूर भगाने वाले राम के चरित्र में व्यक्तिगत रूप से संशय का प्रवेश, तुलसी की राम कथा को तोड़कर उसमें एक नया सामाजिक, ऐतिहासिक एवं समसामयिक अर्थ प्रतिष्ठित करता है। इसी धरातल पर आकर निराला इस कथा को नित नूतन करते है''।

कविता में दो युद्धों का समानान्तर वर्णन किया गया है- राम और रावण का रणभूमि में चलने वाला युद्ध और राम के अन्तर्मन में चलने वाला युद्ध, जिसमें राम की भावनाओं और मनोदशाओं का घात- प्रतिघात ही इस लम्बी रचना का निर्णयक तत्व बन गया है। सूर्यास्त के समय शिविर की ओर लौटते हुए राम की विपर्यस्तता, रावण की विजय से सशंकित बार-बार लड़ने को तैयार होकर भी अपने को असमर्थ मानकर व्याकुल हो उठना, महाशक्ति के शरीर में समाकर नष्ट होते हुए अपने बाणों को देखकर आँखो में आँसू टपक पड़ना ''मित्रवर विजय न होगी सभर करते हुए आँखो का छलछल उठना अधर्मरत, रावण की शक्ति द्वारा रक्षा, महाशक्ति आँखों से अग्नि निकलती हुई देखकर हाथों का बंध जाना और आतंकित हो जाना आदि राम की तनाव भरी स्थिति के ऐसे चित्र हैं जहाँ सत्यपक्षी, धर्मधनी राय के प्रति विरोध ही विरोध है। परिणामतः वे अपने जीवन को ही धिक्कार उठते हैं। राय के मन में छिपा हुआ तनाव और पीड़ा का ज्वालामुखी मानो फूट पड़ा।

राय की इस मनःस्थिति पर श्री चन्द्रकान्त बान्दि बड़ेकर ने लिखा है राम का मानवीय रूप कार्य के दौरान प्राप्त होने वाले निराशा, हताशा और संशय के क्षण, प्रेरणादायी प्रेयसी का स्मृत्यात्मक रूप, असत्य और अन्याय की ओर शक्ति की अवस्थिति देखकर उत्पन्न होने वाली खीझ और विश्व की सार्थकता संगीत एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्शोन्मुखता के ऊपर लगाई हुई प्रश्नांकित व्याकुलता की छाप, इस पर भी' वह एक और मन रहा राम का जो न थका'- ऐसे मन से किया हुआ संकल्प और उद्देश्य को व्यापकता देने का राम का प्रयत्न सर्वस्वदान के लिए तत्परता इत्यादि कतिपय स्थितियाँ हैं, जो आधुनिक पाठक को 'राम की शक्ति पूजा' की समस्त धार्मिकता के बावजूद खींचती है।''

'राम की शक्तिपूजा' में भी अपने समय के सामाजिक राजनीतिक सन्दर्भ प्रतिष्ठित हुए हैं ''अन्याय जिधर है उधर शक्ति'' के कारण राम को सफलता आसानी से नहीं मिलती। कठोर मानसिक द्वन्द्व और यातनाओं से वे गुजरते हैं और अन्ततः हम उन्हें संकल्प धर्म अविच्छिन्न व्यक्तित्व'' के स्वामी के रूप में देखते है। आज की सामाजिक व्यवस्था में शोषण ही शक्ति-सम्पन्न है। इस व्यवस्था से लड़ने के लिए शक्ति संचय आवश्यक है। राम भी शक्ति की मौलिक कल्पना करते हैं- उसे धारण करते हैं वह कहीं जाकर उनकी विजय सुनिश्चित होती है। रावण की शक्ति-साधना तामसी वृत्ति की थी,वहीं राम की शक्ति अराधना सात्विक है इसलिए निराला ''अराधना का दृढ़ अराधना से दो उत्तर'' देने की आवश्यकता पर बल देते हो।

सामाजिक विकास के इस नियम को लक्ष्य करके रमेश कुन्तल मेघ ने कहा- यह नर या जन का राक्षस से पौरागिक रण न होकर मानव के मन में एक और सूर्यमुखी गौरव और असुरधर्मी गर्व का शाश्वत युद्ध है दूसरी ओर ऐसा युद्ध है जहाँ साधक तथा वीर, पुरुषोत्तम तथा मनुष्य की विजय नहीं होती बल्कि शक्ति उसके पक्ष में होती है जहाँ अन्याय होता है। इसलिए यह युद्ध मिथक से विश्व-इतिहास पटल पर अवतरित होकर मानो वर्ग संघर्ष का व्याख्याता बन जाता है। (क्योंकि समय एक शब्द है।)

अन्याय और विरोधों से जूझते हुए निराला न जाने कितनी बार आहत हुए थे और उनका विश्वास डगमगाया था, पराजय बोध से वे भयाक्रान्त हुए थे और निराशा के अन्धकार ने उनके मानस को भी आवृत कर लिया था। इसी कारण राम की छवि में निराला प्रतिभासित होते हैं। कविता के प्रारम्भिक अंश में वर्णित आहत राम के रूप में निराला की जिस छवि को दूधनाथ सिंह ने रूपायित किया हैं, उसमें कवि की पीड़ा और चिन्ता साकार हो उठी है-

''जिन्होंने कवि को दारागंज वाले मकान के कमरे में बैठे हुए बाहर गली की तरफ शून्य में एकटक अपने आयत नेत्रों से घूरते हुए एक बार भी देखा है, ते इस अनिमेष राम की छवि और उसकी चिन्ता को समझ सकते हैं उसका मन क्षत-विक्षत हैं मुट्ठियाँ गुस्से में कसी हैं। मन का घाव रिस रहा है। अन्दर लगातार खून बह रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि की पर्वत की तरह ऊँची प्रतिभा-क्षमता, उसका दृढ़ कभी न हारने वाला शिखर-मन जैसे इस अन्धकार में इस सामयिक और क्षणिक नैराश्य में पत्थर की तरह जड़ हो रहा है।

प्रिया के उद्धार की बात हो या कला साधना का कोई क्षण जीवन और साहित्य दोनों मोर्चों पर कवि का लड़ा गया अपराजेय समर कविता में है। राम के कथनो में कवि के अपने सामाजिक विक्षोभ एवं असंतोष की गहरी छाप है।

दूधनाथ सिहं ने इसे ही ''अपने निजी रचनात्मक जीवनका आत्मप्रक्षेप या आत्मसाक्षात्कार'' कहा है, जो कविता की गरिमा कई गुना बढ़ा देता है।

डा० रामविलास शर्मा- 'राम की शक्ति पूजा' का पूर्वार्द्ध एक सशक्त फैन्टेसी है। इसके उपादान राम-रावण के युद्ध तक सीमित नहीं हैं। भक्ति भाव से प्रेरित होकर ये उपादान कवि के अचेतन से उठते हुए रचनाकार वाले मन पर छा जाता है। निराला का अन्तर्द्वन्द्व तीव्र होकर उन्हें राम-रावण का युद्ध दिखा रहा है, निराला की भाव शक्ति ही परिवर्तित होकर स्वप्नचित्रा बन रही है।''

राम की ही तरह निराला का जीवन भी विरोधो में संघर्षरत रहा। उन्हें भी राम ही की तरह अनेकानेक साधनों का शोध करना पड़ा और सतत जागरूकता, आत्मविश्वास और शक्ति-साधना के कारण राम की तरह निराला भी अपनी विजय-यात्रा में अग्रसर होते है। कविता के अंतिम चरण में राम के द्वारा की गई आत्मभर्त्सना उन्हें निराला के और अधिक निकट ला खड़ा करती है-

हो इसी कर्म पर वज्रपात,
यदि धर्म रहे नत सदा साथ।

युद्धवीर धवन-रचनाक्षेत्र में कवि के मार्ग में आने वाली बाधाओं के तनाव की छवि राम के चरित्र में प्रतिबिम्बित होती है और कवि का सर्जनात्मक तनाव निरन्तरता और प्रदीर्घता के साथ समूचे ख्वाब में विद्यमान है। साथ ही राम की शक्तिपूजा में मानव की अस्तित्वगत छटपटाहट और उससे उबरने के लिए उसकी सक्रिय संकल्प शक्ति को उद्घाटित किया गया है,''

यह कविता एक ओर आधुनिक जीवन में चारों ओर छाए हुए द्वन्द्व और अन्तर्विरोधों को गहराई और व्यापकता के साथ चित्रित करती है, वहीं दूसरी तरफ असहाय थके, निराश, संशयग्रस्त राम के चित्रों में निराला की ही प्रतिच्छाया दिखाई पड़ती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मशास्त्रीयाचारव्यवस्थासन्दर्भे कर्त्तव्याकर्त्तव्यविमर्शः

प्रो० डॉ० वेदप्रकाश उपाध्यायः
एम.ए. (द्वय), आचार्य (त्रय), डी.फिल्., डी.लिट्.
यू.जी.सी एमेरिटस प्रोफेसर - संस्कृत विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़-160014

धर्मशास्त्रेषु एतादृशी व्यवस्था उपलभ्यते, यथा कुलं, समाजः राष्ट्रं च विधिसम्मत्या निर्विघ्नतया संचरन्ति। जाते शिशौ पित्रोः तत्सन्ततिं प्रति कानिचित्कर्त्तव्यानि प्रादुर्भवन्ति तानि च आचारस्वरूपाणि सन्ति। स्वकर्त्तव्यनिर्वाहाभावात् सर्वत्र अव्यवस्थायाः साम्राज्यं स्थापितं भवेत् सन्ततिश्चैव समुचितकर्त्तव्याभाववशात् आचारहीनतामाप्नुयात्। शिशोः रक्षादायित्वं तत्पित्रोरेव भवति, यतः तस्य स्वरक्षणेऽसमर्थतावशात्। शिशोः संरक्षकत्वेन पितरौ मन्येते। पित्रोः कर्त्तव्यमेतद्यत् स्वसन्ततेः सुरक्षायां दत्तावधानौ भूत्वा तद्धितं तौ चिन्तयतः। सन्ततिरक्षणकर्त्तव्यपूरणात्तौ स्वकीयं कुलं प्रति, समाजं प्रति, राष्ट्रं प्रति च महत्त्वपूर्णं कार्यमनुतिष्ठतः। बाल्यावस्थायामपेक्ष्यते सन्तत्यै पित्रोः साहाय्यं संरक्षकत्वेन, किन्तु ततः परं शिशोः युवावस्थायां तु तस्य स्वावलम्बनं प्रारब्धुं शक्यते राष्ट्रियनागरिकत्वसमारोपणात्। तत्र समाजराष्ट्रयोः नेतृत्वं वोढुं तेन सामर्थ्यमवाप्यते। सत्यं त्वेतत् सर्वविधापद्भ्यः सन्ततेः संरक्षणं पित्रोरपरिहार्यं कर्त्तव्यं भवति। मात्र तु शिशोः पालनं सम्यग् विधीयते तदुदरपूर्त्यादिमाध्यमेन। कर्त्तव्यमेतत्सनातनं भवति। वैदिककालेऽपि समाजे जनन्या स्वजाताय शिशवे पयःपानव्यवस्थाऽऽचरिता। बालकेन यावत् शुभाशुभज्ञानाय विवेको नावधार्यते, तावत्तस्य भोजनादिविषये डॉ० शिवराजशास्त्रिणापि एतादृशा विचारा अभिव्यञ्जिताः।[1] ऋग्वेदसंहितायाः पंचमे मण्डले मन्त्रे चैकस्मिन् मातृभिः स्वपुत्रय वस्त्रनिर्माणविषयः प्रतिपादितः।[2]

जगतीतले पुत्रस्य महनीयताविषये प्रत्येकं मात्रे कामनैषा अभिव्यञ्जिताऽथर्ववेदस्य शौनकसंहितायाम्।[3] मातरश्चोपदिष्टा ऋग्वेदे स्वसन्ततिमीश्वरप्रदर्शितमार्गेऽग्रेसरणाय प्रेरयितुम्।

पित्रोः कर्त्तव्यान्यात्मजां प्रति निर्दिष्टानि वैदिकसाहित्ये। जातात्मजा तु युवती भूत्वा नारीस्वरूपमङ्गीकृत्य मातृरूपं गृहीत्वा कुल-समाज-राष्ट्रेभ्यो नागरिकं जनयति। पुत्र्याः पुत्रवत्परिपालनमपि पित्रोः कर्त्तव्यत्वेनोक्तं धर्मशास्त्रग्रन्थेषु। तासां परिपालनपोषणाद्यतिरिक्तं शिक्षादृष्ट्यापि वैदिकसंहिता-ब्राह्मणारण्यकादिषु वैदिकसाहित्यग्रन्थेषु समुचिता विचारो पितरौ प्रति सन्ततेः कर्त्तव्यं शास्त्रविहितं वर्तते। स्वसन्ततिं प्रति पितृभ्यां यादृशः क्लेशः सह्यते, तस्य निष्कृतिः वर्षशतैरपि न कर्तुं शक्यते। उपर्युक्ताः विचाराः मानवधर्मशास्त्रेण परिपुष्टा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन्ति।[4] सन्तत्या स्वपितरौ प्रति स्वकर्त्तव्याकर्त्तव्ययोः परिज्ञानमवधार्य तयोः समुचितमनुष्ठानं करणीयम्। पितरौ सम्यक्सेवादिभिः सन्तत्या परितोषणीयाः। एतस्मिन् विषये उक्तम् एष धर्मः परः साक्षादुपधार्मोऽन्य उच्यते।[5] अग्निहोत्र-दर्शपूर्णमास-चातुर्मास्यादयो धर्मा उपधर्मत्वेनोपदिष्टाः, किन्तु पित्रोः सेवैव श्रेष्ठधर्मत्वेन मता 'एष धर्मः परः' इतिस्मरणात्।[6] धर्मशास्त्रवचनात् मातुः सेवया लोकोऽयं पितुश्च सेवया प्रजापतिलोकोऽवाप्यते।[7] येन माता-पिता चैव सम्पूजितौ तेन धर्माः समस्ताः सदा सत्कृताः येन माता-पिता चापि नैवादृतौ तेन सर्वा क्रिया निष्फला भाविताः। तैत्तिरीयोपनिषदि उक्तम्- **मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव।**[8] पित्रोः स्थितिः धर्मत्वेन, स्वर्गत्वेन, तपस्त्वेन च स्वीक्रियते। अपि च मातुः पितुश्च प्रसन्नतायां समेषामपि देवानां प्रसादोऽवाप्यते।[9] आज्ञा गुरुणामविचारणीया इतिनियमेन पितरौ आचार्यश्च पुत्रस्य शिष्यस्य वा समानरूपेण हितचिन्तका भवन्ति, अतः तेषामादेशोऽपि हितसाधाकत्वात् पुत्रेभ्यः शिष्येभ्यश्च सम्मान्यः। पित्रोराज्ञापालनं, तत्कार्येषु सहयोगः स्वकर्मभिः गुणातिशयैश्च पित्रोर्यशोवर्धनं, पित्रोः सेवासत्कारौ, पित्रोः कर्मसु साहाय्यं च पुत्रस्यापरिहार्यकर्त्तव्यतांगत्वेन भवन्ति। येन स्वाचरणेन पितरौ प्रियेते, तेन पितुर्वंशविस्तारः कार्यः। पुत्रवत् पुत्र्यापि पित्रोराज्ञा परिपालनीया भवति। मात्रा क्रियमाणेषु कार्येषु तस्याः सहयोगः पुत्रा करणीयः मातुरनुशासने च पुत्राः भाव्याः। वैदिककाले पुत्राः मात्रा अनुशासिता बभूवुः। गृहकार्येषु मातुः सहयोगः पुत्रीणां धार्मत्वेन मतः। जलाशयाज्जलानयनमपि पुत्रीणां कर्त्तव्यकर्मत्वेन मतमिति ऋग्वेदसम्मतम्।[10] प्राचीनकाले जलाशयं जलकूपं वोपगम्य पुत्रा जलानयनक्रिया परम्परानुमता आसीत्। स्वानुजानां परिपालने मात्रे सहयोगप्रदानं पुत्रीणां धर्म आसीत्। अभ्रातृकायाः पुष्या विशिष्टो धर्म एष् आसीत् यत्सा स्वपितुर्वंशवर्धनाय तत्संम्पत्तिरक्षणाय च तस्मै पुत्रं दद्यात, येन तत्पितुर्वंशपरम्पराऽक्षुण्णा भवेत्।[11] पितृभ्यां तिरस्कृताः पुत्राः पुत्रश्चासन्तप्ताः विवादराहित्यमेवाश्रयेयुः तत्र विवादस्याप्रशस्तत्वात् पितृभ्यां वाग्युद्धो विवादो वा नैवाश्रयणीयः।[12] पुत्रैः पुत्रीभिश्च मात्रा पित्रा वा प्रतिकूलतायामाचरणं नैव विधोयम्। मेधातिथिनैतस्मिन्विषये विशदः उल्लेखः कृतः।[13]

कर्त्तव्याकर्त्तव्यप्रसंगे वैदिकसाहित्ये धर्मशास्त्रग्रन्थेषु च भ्रातृभगिन्यौ अपि उल्लिखितौ। ऋग्वेदसंहितायां पितृ-मातृ-भ्रातृ-स्वसृशब्दा द्यु-पृथिवी-सोमादिति- भ्योऽनुक्रमेण प्रयुक्ताः।[14] छान्दोग्योपनिषदि भ्रातृभगिन्यौ उल्लिखितौ।[15] भ्रातृभगिन्योरपि परस्परं कर्त्तव्याकर्त्तव्ये स्तः। ऋग्वेदस्य पंचमे मण्डले पितुर्मातुश्चानन्तरं भ्रातुरुल्लेखः कृत[16] अतः पित्रोः पश्चाद् भ्रातुर्महत्त्वं स्पष्टमेव श्रूयते श्रुतौ।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रातृभगिन्योः सम्बन्धाः विश्वामित्रेण नद्यो भगिनीति सम्बोधितासु नदीभिश्च तद्वचसि पालिते च स्पष्टीभवति ऋग्वेदसंहितायाम्।[17] कर्त्तव्यमेतद्भ्रातृणां भवति यद् पित्रोर्मृत्योरनन्तरं यदि सम्पत्तिर्विभज्यते, तर्हि येषां भ्रातृणां संस्कारास्तु न कृतास्ते पूर्वमेव संस्कृतैर्भ्रातृभिः संस्करणीया भवन्ति। भगिन्योऽपि स्वकीयादंशाच्चतुर्थांशं दत्वा भ्रातृभिः विवाहसंस्कारेण संस्कार्याः।[18] भगिन्यै भ्रातुर्महत्त्वमाजीवनं वर्तते तस्योत्तरदायित्वभारातिशयात्। यदि पितुर्जीवनानन्तरं विभाजनं भवेत्, किन्तु पश्चात् मातुः गर्भवत्याः पुत्रे जायते, तर्हि अग्रजस्य भ्रातुरेतत्कर्त्तव्यं भवति यदायव्ययौ निरीक्ष्य पितुः रिक्थात् तदंशे नवोत्पन्नाय शिशवे देयः।[19]

भ्रातृभगिन्योरेतत्कर्त्तव्यं भवति यत् ताभ्यां नीतिसमन्वितं जीवनं यापनीयम्। पत्नीं प्रति पत्युः कर्त्तव्यमेतद् यत्तेन पत्न्या सह प्रेम्णा वर्तितव्यम्। पत्न्या तद्वंशपरम्पराप्रवाहः संरक्ष्यते, अतः पत्नी सर्वथा सर्वदा रक्षणीया। पुत्र-पौत्रप्रपौत्रकैः लोकानन्त्यप्राप्तिवशात् पत्नीरूपा स्त्री सेव्या सुरक्षिता च करणीयेति याज्ञवल्क्यस्मृतिविधानात्स्पष्टम्।[20]

पत्युः कर्त्तव्यमेतद् भवति यत् पत्नी सुखिता स्यात्, तस्याः सर्वाः नीतिसमन्विताः कामनाः पूरिता भवेयुः, सन्तत्युत्पादनेन सा मातृत्वं लभेत्, गार्हस्थ्यधर्मश्च यथोचितरीत्या पालनीयः। पत्न्याः सम्मानरक्षणं पत्युर्महत्त्वपूर्णो धर्मः। उक्तं च मनुस्मृतौ-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥[21]

भर्तुरादेशपालनतत्परता पत्न्याः श्रेष्ठं कर्त्तव्यमितिविषये याज्ञवल्क्यस्मृतौ प्रोक्तम्- स्त्रीभिर्भर्तृवचः कार्यमेष धार्मः परः स्त्रियाः।[22] धर्मशास्त्र ग्रन्थेषु पत्नीपरित्यागो न प्रशस्यते। येन जनेन आज्ञाकारिणी दक्षा वीरप्रसविनी मधुरभाषिणी पत्नी त्यज्यते, तेन पत्न्यै तद्धनस्य तृतीयोंऽशः देयो भवति। यदि भर्त्ता निर्धनोऽस्ति , तर्हि तेन त्यक्तायाः पत्न्याः भरणपोषणार्थं भोजनवस्त्रादिव्यवस्था विधेया।[23]

पत्न्याः पतिं प्रति कर्त्तव्यमेतद्भवति यत्सा पत्युराये सन्तुष्टा भवेत्। तया सर्वदा प्रहृष्टया भाव्यम्, गृहकार्येषु दक्षता प्राप्तव्या, गृहस्य संस्कारे दत्तचित्ता भवेत् व्यये च मुक्तहस्तया न भाव्यम्[24] अर्थात् आयमभिलक्ष्य एतादृशो व्ययो कार्यो, येन आयस्यांशोऽवशिष्यते। यदि पतिः वृद्धो, रोगी, कुरूपो, दरिद्रश्च भवेत्तदपि पत्न्या स्वपतिः सेवनीयो भवति।[25] यस्मै वराय पित्रा यद्वा पितुराज्ञया भ्रात्रा काचित्कन्या विवाहसंस्कारे विधिना प्रदीयते, तं जीवन्तं पुरुषमाश्रित्य सा शुश्रूषेत। कस्यांचित् परिस्थितौ तया भार्यया पतिर्नोपेक्षणीयः।[26] यदि पतिः महापातकेन दूषितो भवति, तदपि प्रायश्चित्तादिभिस्तच्छुद्धिपर्यन्तं सः स्वभार्यया न परित्याज्यः, अपितु प्रतीक्षणीयः।[27] यस्मिन् कुले पतिः भार्यया सन्तुष्टो भवति, भार्या च स्वभर्त्रा सन्तुष्टा विद्यते, तस्मिन् कुले नित्यमेव कल्याणस्य साम्राज्यं वर्तते।

भर्तुर्मृत्योरनन्तरं पत्न्या यावज्जीवनं ब्रह्मचर्यव्रतं परिपालनीयम्। तथा सति पत्न्या श्रेयः अवाप्यते। पत्युर्जीवनकालेऽतिथिं पतिं च भोजयित्वां पत्नी स्वयं भोजनं कुर्यात्,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
स्वगुणैः पतिं तोषयेत् धर्ममार्गं च आश्रयेत्। वसिष्ठस्मृतौ पत्न्याः कर्त्तव्यत्वेनैतत् विहितम्।[28]

यदि पतिपत्न्योर्मध्ये प्रसादाभावो वर्तते, परस्परं कर्त्तव्यपालने वैमुख्यं वर्तते, तर्हि तयोः कुले क्लेशकलहादीनां वासो भवति। यस्मिन् कुले पतिपत्न्योः कर्त्तव्यपरायणता दृश्यते, तत्रैश्वर्यसौभाग्यादीनामुपलब्धिर्भवति।

वैशिष्ट्येन जनैः लौकिकं वैदिकमाध्यात्मिकं च ज्ञानमाप्यते गुरुमुपगम्य, अतः गुरु प्रति अनेकानि कर्त्तव्याकर्त्तव्यानि भवन्ति। चरणौ स्प्रष्टव्यौ गुरोः इति विषये विधिः मनुस्मृतौ प्राप्यते, यथोक्तं मनुना-

व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः।
सव्येन सव्यः स्पृष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः।।[29]

गुरोः सामीप्ये जनैः हीनान्नवस्त्रवेषैः भाव्यम्। गुरोः प्रथमं शिष्याः, उत्तिष्ठेयुः, गुरोः पश्चाच्च संविशेयुः। उक्तं चास्मिन्विषये-

हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत्।।[30]

गुरोः समीपं शिष्यासनं सर्वदा नीचं भवेत्। गुरोः समक्षं शिष्यास्तु न यथेष्टासना भवेयुः।[31] श्रेयस्कामेन पुरुषेण गुरोः शय्यासने नोपवेष्टव्यम्। यदि सः शय्यासनस्थो भवेत् तेनोत्थाय गुरोरभिवादनं कार्यम्। मनुस्मृतौ एष नियमः धर्मत्वेन प्रतिपादितः।[32]

समाजे, राज्ये, देशे, राष्ट्रे वा नागरिकाणां कर्त्तव्यमेतद् भवति, यत्तैः राज्ञः स्वामित्वमाधिपत्यं वा स्वीकरणीयम्। राज्ञः विरोधे नाचरणीयम्, कर्त्तव्यपालने च राज्ञः सहयोगः करणीयः। गृहस्थानां कर्त्तव्यमेतद्यद् यज्ञे उपस्थितो राजा मधुपर्केण सम्पूज्यो वर्तते।[33] बालोऽपि राजा नावमन्तव्यः इति धर्मशास्त्रसम्मतम् बालोऽपिनावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः इति स्मरणात्।[34] योऽज्ञानवशात्स्वराजानं द्वेष्टि तदपमानं वा करोति, सः नूनमेव विनाशं प्राप्नोतीति स्पष्टमेव मनुना प्रोक्तम् तं यस्तु द्वेष्टि सम्मेहात्स विनश्यत्यसंशयम्।[35] राज्ञः महत्त्वं गरिमाणमभिलक्ष्यैव मनुस्मृतौ सः अग्निरूपः, वायुरूपः, सूर्यस्वरूपः, चन्द्ररूपः, धर्मराट्स्वरूपः, कुबेररूपः, वरुणरूपः महेन्द्रस्वरूपश्च मतः। यथोक्तं तत्र- "सोग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्। स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः।।"[36]

सर्वजनान् प्रति चतुर्वर्णानां कर्त्तव्यादिकं ऋग्वेदसंहितायाः पुरुषसूक्ते स्वमूलं बिभर्ति। उक्तं चैव ऋग्वेदसंहितायाम् -

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।[37]

समाजे ब्राह्मणानां प्रमुखं कर्त्तव्यमेतदासीत् यत्तैः क्षत्रियवैश्यादयो वर्णाः ज्ञानादिभिः परिपक्वतामुपेत्य गृहस्थाश्रमयोग्याः भावयेयुः।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्लयजुर्वेदीय शिक्षाएँ : एक निरूपण

डॉ० मीनाक्षी उपाध्याय (तिवारी)
एम.ए., पी-एच.डी.
एडवांस डिप्लोमा इन जर्मन

शुद्धोच्चारण एवं स्वरविधि के परिज्ञान के लिए शिक्षावेदांग अपेक्षित है। डॉ0 वाचस्पति गैरोला ने शिक्षा की आवश्यकता के लिए उपयुक्त उच्चारण शुद्धता और स्वरविधि के ज्ञान की उपलब्धि को माना है।[1] चरणव्यूह में शुक्ल यजुर्वेद से सम्बन्धित पाँच शिक्षाओं का उल्लेख है।[2] पाराशरी शिक्षानुसार आठ शिक्षाओं का वर्णन किया गया है, किन्तु इनके अतिरिक्त अन्य शिक्षाएं भी उल्लिखित हैं।

याज्ञवल्क्य कृत शिक्षाएं अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इसमें सोमशर्मा की सम्मति मात्राकाल के विषय में दी गई है।[3] यदि यह सोमशर्मा, जिनका उल्लेख पंचतन्त्र तथा विष्णुपुराण में किया गया है, वही हैं, तो इनका समय पाँचवी शती ई. से पहले का नहीं हो सकता।[4] इसमें अकारादि वर्णों से सम्बन्धित देव, जाति, गोत्र, छन्द, रंग तथा लिंगादि का वर्णन नवीन विषय है।[5]

इस ग्रन्थ में तीन बार याज्ञवल्क्य का नाम मिलने से इस ग्रन्थ को इनके नाम से जोड़ा जाता है, लेकिन याज्ञवल्क्य को ही इसका लेखक मानना कठिन है।[6] वाजसनेयि प्रातिशाख्य के भाष्य में उव्वट ने इस शिक्षा का उल्लेख किया है।[7] ल्यूडर्स ने इसी तेरहवीं शती ई. की रचना माना है, लेकिन इसे इतना अर्वाचीन मानना न्यायसंगत नहीं है, क्योंकि उव्वट ग्यारहवीं शती में इसे प्रमाणस्वरूप उद्धृत नहीं कर सकते थे।[8] क्योंकि वाजसनेयि प्रातिशाख्य का याज्ञवल्क्य शिक्षा के अनेक स्थलों पर अनुकरण किया गया है।[9]

इससे यह सिद्ध होता है कि वाजसनेयि प्रातिशाख्य के बाद ही याज्ञवल्क्य शिक्षा की रचना हुई। इसमें वर्णों के विभिन्न प्रकार के उच्चारण तथा परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है।

याज्ञवल्क्य शिक्षा में शुक्ल यजुर्वेद संहिता के उदात्त, अनुदात्त और स्वरित आदि स्वरों का विवरण है। इसके अतिरिक्त उदात्तादि स्वरों के गोत्र, जाति और वर्ण एवं छन्द भी वर्णित है। सामान में प्रयुक्त होने वाले षड्ज, ऋषभ्, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद स्वरों का उदात्तादि स्वरों में अन्तर्भाव हो जाता है। इसमें मन्त्रगत वर्णों के उच्चारण की विधि, मन्त्र के उच्चारण में हस्तचालन क्रिया, संयुक्त वर्णों में हस्तचालन के नियम आदि इस शिक्षा ग्रन्थ में प्राप्त हैं। इस शिक्षा में विसर्ग के उच्चारण के विषय में यह कहा गया है कि विसर्ग का उच्चारण सपोले की हल्की सी फुंकार की तरह होना चाहिए।[10] विसर्ग के हकार का उच्चारण ऐसे करना चाहिए कि वह प्रतीत न हो।[11]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याज्ञवल्क्य शिक्षा में विवृत्तियाँ चार प्रकार की मानी जाती हैं-

1. पिपीलिका
2. पाकवती
3. वत्सानुसारिणी
4. वत्सानुसृजिता।[12]

इस शिक्षा में दीर्घ लृकार का अभाव है। यकार के उच्चारण के सम्बन्ध में माध्यन्दिनशाखा के अनुसार अनेक स्थानों पर इसे 'जकारवत्' पढ़ा जाता है। याज्ञवल्क्य शिक्षा के अनुसार पद या पाद के आरम्भ में रेफ, मकार के संयोग में तथा अवग्रह में 'य' की जगह 'ज' उच्चरित होता है।। जैसे- 'यज्ञेन'[13] सूर्य,'[14] यज्ञम्[15] में य की जगह ज का उच्चारण करना चाहिए।

यदि उपसर्ग के बाद 'य' होता है, तो पदपाठ में 'य' को जकार की भांति पढ़ा जाता है।

वकार के उच्चारण के लिए भी शिक्षा में अलग-अलग नियम बनाए गए हैं। पाद या पद के आरम्भ में 'व' का सुस्पष्ट उच्चारण किया जाता है, किन्तु व को 'व्व' हो जाता है।[16]

वकार के तीन भेद गुरु, लघु और लघुतर किये गये हैं।[17] पदादि में व गुरु को गुरु अर्थात् वायवस्थ त्वायवस्थ। मध्यपद में यह लघु तथा पद के अन्त में लघुतर उच्चरित होता है, जैसे तव वायवृतस्पते।[18]

वासिष्ठी शिक्षा में उच्चारण के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है। यह नया संकलन है।

कात्यायनी शिक्षा 13 पद्यों की रचना है, किन्तु यह पूर्ण नहीं है। वाजसनेयि प्रातिशाख्य में कुछ सूत्रों का पद्यात्मक रूपान्तर किये जाने का वर्णन है।[19]

पाराशरी शिक्षा में यजुर्वेद की सभी शिक्षाओं का उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार यदि कोई वैदिक मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण नहीं करता, तो उसे 'कुम्भीपाक' नरक भोगना पड़ता है।

माण्डवी शिक्षा ऋषि माण्डव्य की रचना मानी जाती है।[20] इसमें 'प वर्गीय' ब शब्दों का संग्रह है, ताकि अन्त:स्थ 'व' और 'ब' में अन्तर का ज्ञान हो सके। इसका सम्बन्ध डोगरी, भद्रवाही और शिना आदि बोलियों से हैं।

अमोघानन्दिनी शिक्षा याज्ञवल्क्यशिक्षा तथा पाराशरी शिक्षा पर आधारित है। इस शिक्षा में भी 'व' और 'ब' में भेद करने के लिए शब्दों का संग्रह प्राप्त है।

माध्यन्दिनी शिक्षा के कर्ता माध्यन्दिन माने जाते हैं। यह नवीन कृति है। इसमें 'खकार' वाले शब्दों का संग्रह है, जिससे 'षकार' वाले शब्दों से उनका भेद ज्ञात हो सके।

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णरत्नदीपिका याज्ञवल्क्य शिक्षा, और वाजसनेयि प्रातिशाख्य पर आधारित है। अमरेश भारद्वाज इसके कर्ता माने जाते हैं। इसमें ऋकार को कण्ठ्य तथा र को दन्तमूलीय माना गया हैं। यह 227 कारिकाओं में विभक्त है। केशवी शिक्षा सुस्पष्ट तथा संक्षिप्त है। इसके कर्ता केशव ज्योतिषी माने जाते हैं। इसमें ष् को ख्, य् को ज् तथा व् को ब् उच्चारण किए जाने से सम्बन्धित नियमों का निर्देश है।[21] हस्तस्वर प्रक्रिया शिक्षा किसी मल्लशर्मा अथवा केशव शर्मा की कृति मानी जाती है। इसमें 65 कारिकाएं है। इसमें रंगादि के उच्चारण में कालप्रमाण विवेचित है।[22]

स्वरांकुश शिक्षा के कर्ता जयन्त स्वामी हैं। यह रावण नाम से भी प्रचलित है। यह 25 कारिकाओं में विभक्त है। इसमें जात्य, अभिनिहित, क्षैप्र तथा प्रश्लिष्ट इन चार स्वरितों तथा इनके विशेष परिस्थितियों में कम्प में परिवर्तन की चर्चा की गई है।

षोडशश्लोकी शिक्षा के रचनाकार रामकृष्ण हैं। इसमें उच्चारण के विषय में कुछ अत्यन्त स्पष्ट नियमों का उल्लेख है।[23]

अवसाननिर्णय शिक्षा की रचना अनन्तदेव द्वारा की गई है। यह अर्वाचीन कृति है। इसमें मन्त्रों के अवसानों की संख्या गिनी गई है।[24]

स्वरभक्तिलक्षणपरिशिष्ट शिक्षा कात्यायन शिक्षा के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह कृति अर्वाचीन है। इस कृति में पाणिनि कृत अनेक प्रत्याहारों का प्रयोग है। क्रमसन्धान शिक्षा में क्रमपाठ के अनुसार संहिता के प्रत्येक अध्याय में क्रमसन्धानों की संख्या गिनायी गई है।

गलदृक्शिक्षा में शुक्ल यजुर्वेद संहिता में ऐसी ऋचाओं की गिनती की गई है, जिसमें कोई अंश परस्पर समान हैं और पदपाठ में उन्हें नहीं दुहराया जाता। यह कृति माध्यन्दिन महर्षि कृत शिक्षा की दूसरी कण्डिका की पुनः कृति मात्र है।[25]

प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षा के रचयिता बालकृष्ण गोडशे हैं। इसमें वाजसनेयि प्रातिशाख्य के बहुसंख्यक सूत्रों की व्याख्या मिलती है।

वेदपरिभाषासूत्र शिक्षा तथा वेदपरिभाषाकारिका शिक्षा रामचन्द्र की कृतियाँ हैं। कारिका ग्रन्थ में 10 कारिकाएं हैं।

यजुर्विधान शिक्षा के रचयिता का नाम ज्ञात नहीं है। इसमें छः अध्याय हैं। इसमें वाजसनेयी संहिता के मन्त्रों का यज्ञयागादि में विनियोग वर्णित है।[26]

स्वराष्टक शिक्षा अनन्त आचार्य की कृति है। इसमें आठ स्वरों के उदात्तादि स्वरों तथा उनके संकेत के लिए हस्त-संचालन के अलग-अलग प्रकार विवेचित हैं।[27]

क्रमकारिका शिक्षा में वाजसनेयी संहिता के क्रमावसान प्राप्त होते हैं।[28]

उपर्युक्त शिक्षाग्रन्थों के अतिरिक्त शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित सम्प्रदायप्रबोधिनी शिक्षा भी उपलब्ध होती है, जिसके रचयिता पं0 गोपालचन्द्र मिश्र हैं। इसमें शुक्लयजुर्वेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मन्त्रों के उच्चारण में हस्तचालनप्रक्रिया एवम् अन्य शिक्षोपयोगी विषय समाविष्ट हैं।

इन सभी शिक्षाओं में उच्चारणशुद्धता, ध्वनियों का आरोह-अवरोह तथा कालावधिपरिसीमन प्रमुख विषय है और वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान वर्ण्यविषय है।[29]

पाद-टिप्पणियाँ

1. ऋग्वैदिककाल में पारिवारिकसम्बन्ध- डॉ0 शिवराज शास्त्री, पृ. 285.
2. वितन्वते धियो अस्मां अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति।
   उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ।। ऋग्वेदसंहिता, 5.47.6.
3. इह प्रजा जनय पत्ये अस्मै सुज्यैष्ठ्यो भवत्पुत्रस्त एषः। अथर्ववेदसंहिता, 14.2.24.
4. यन्मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
   न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि।। -मनुस्मृति, 2.227.
5. मनुस्मृति, 2.237
6. तदेव।
7. आचार्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पिता प्रभुः। मनुस्मृति, 4.182.
   सम्बन्धिनो ह्यपां लोके पृथिव्यां मातृमातुलौ, मनुस्मृति 4.183.
8. तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षावल्ली.....
9. महाभारत 12.266. 14-21.
10. कन्या 3 दूवारवायती सोममर्पि स्रुताविदत्। ऋग्वेदसंहिता, 8.91.1.
11. शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विवद्वा ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्।
    पिता यत्र दुहितुःसेकमूजन्त्स शग्म्येन मनसा दधान्वे।। ऋग्वेदसंहिता, 3.31.
12. मातापितृभ्यां जामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया।
    दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत्। मनुस्मृति, 4.180.
13. आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुम्।
    न हिंस्याद् ब्राह्मणान् गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः।।
    अथवा दुरुक्तभाषणं हिंसा। वाग्भिस्तैस्तै-
    र्जघान ताम् इति प्रयोगदर्शनात्। अथवा प्रतिकूलाचरणे हन्ति।
    मेघातिथि (मनुस्मृति 4.162.)
14. द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा। -ऋग्वेदसंहिता, 1.191.6.
15. छान्दोग्योपनिषद्, 7.15.2.
16. यस्यावधीत पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते। -ऋग्वेदसंहिता, 5.34.4.
17. ऋग्वेदसंहिता, 3.33.9.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

18. असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः।
भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्वांशं तु तुरीयकम्।। याज्ञवल्क्य स्मृति - 2/124
19. याज्ञवल्क्यस्मृति, 2.122.
20. लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः।
यस्मात्तस्मात्स्त्रियः सेव्याः कर्त्तव्याश्च सुरक्षिताः।। याज्ञवल्क्यस्मृति, 1.78.
21. मनुस्मृति, 3.56.
देवता रमन्ते तुष्यन्ति प्रसीदन्ति। प्रसन्नाश्च स्वामिन एवाभिप्रेतेन फलेन योजयन्ति।
मेधातिथि (मनु. 3.56.)
22. याज्ञवल्क्यस्मृति 1.77.
23. आज्ञासम्पादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीम्।
त्यजन्दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्यो भरणं स्त्रियाः।। -याज्ञवल्क्यस्मृति, 1.76.
24. सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया।। मनुस्मृति 5.150.
25. वसिष्ठस्मृति 5.31.
26. यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता वाऽनुमते पितुः।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत्।। मनुस्मृति, 5.15.
27. आशुद्धेः संप्रतीक्ष्यो हि महापातकदूषितः। याज्ञवल्क्यस्मृति, 1.77.
28. वसिष्ठस्मृति, 5.60,61.
29. मनुस्मृति 2.72.
30. मनुस्मृति 2.194.
31. नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ।
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत्।। मनुस्मृति 2.198.
32. शय्यासनेऽधयाचरिते श्रेयसा न समाविशेत्।
शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत्।। मनुस्मृति 2.119.
33. राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्मण्युपागतौ।
मधुपर्केण सम्पूज्यौ नत्वयज्ञ इति स्थितिः।। मनुस्मृतिः 3.120.
34. बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति।। मनुस्मृति 7.8.
35. तं यस्तु द्वेष्टि सम्मोहात् स विनश्यत्यसंशयम्।
तस्य ह्याशु विनाशाय राजा प्रकुरुते मनः।। मनुस्मृति 7.12.
36. मनुस्मृति, 7.7.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

37. ऋग्वेदसंहिता 10.90.12.
38. संस्कृत साहित्य का इतिहास- डॉ0 वाचस्पति गैरोला, पृ. 165.
39. मन्त्रभ्रान्तिहरं चैव शिक्षाणां पंचकं तथा। -चरणव्यूह, वेबर सम्पादित, पृ. 24.
40. याज्ञवल्क्य शिक्षा, 1.10.
41. प्राचीन भारतीयों के धवन्यात्मक विचारों का विवेचनात्मक अध्ययन, सिद्धेश्वर वर्मा, पृ. 38.
42. याज्ञवल्क्य शिक्षा, वर्ण प्रकरण, पृ. 50-55.
43. प्राचीन भारतीयों के धवन्यात्मक विचारों का विवेचन, सिद्धेश्वर वार्मा, पृ. 38.
44. उवट वाजसनेयि प्रातिशाख्य, 4.165.
45. वैदिक वाङ्मय का बृहद् इतिहास : वेदाङ्ग- कुन्दनलाल शर्मा, पृ. 24.
46. याज्ञवल्क्यशिक्षा स्वरप्रकरण 79, वाजसनेयि प्रातिशाख्य 4.43.
47. याज्ञवल्क्य शिक्षा, सम्पादक ब्रह्ममुनि, 1.74.
48. वाजसनेयि प्रातिशाख्य, 4.136.
49. याज्ञवल्क्य शिक्षा- 2.10-12.
50. याज्ञवल्क्य शिक्षा, 2.52.
51. वाजसनेयी संहिता 31.16.
52. वाजसनेयी संहिता 3.9.
53. वाजसनेयी संहिता 31.16.
54. याज्ञवल्क्य शिक्षा, 2.51.
55. याज्ञवल्क्य शिक्षा, 2.53.
56. वाजसनेयी शिक्षा, 27.34.
57. वाजसनेयी प्रातिशाख्य 4.131-141.
58. शतपथ ब्राह्मण, 10.6.5,9.
59. वैदिक वाङ्मय का बृ० इतिहास : वेदांग -कुन्दनलाल शर्मा, पृ. 31,
60. हस्तस्वरप्रक्रिया शिक्षा, कारिका 43-46.
61. शिक्षा संग्रह- युगल किशोर पाठक, पृ. 164-165.
62. शिक्षा संग्रह- युगल किशोर पाठक, पृ. 166-171.
63. शिक्षा संग्रह, पृ. 182-184.
64. शिक्षासंग्रह, पृ. 327-361.
65. वैदिक वाङ्मय का बृहद् इतिहास : वेदांग - कुन्दनलाल शर्मा, पृ. 32.
66. शिक्षासंग्रह, पृ. 269-377.
67. संस्कृत साहित्य का इतिहास- वाचस्पति गैरोला, पृ. 169.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रौतयागों में पशु-हिंसा-विमर्श

प्रो० ओम प्रकाश पाण्डेय
बी-1/4, विक्रान्त खण्ड
गोमती नगर, लखनऊ

श्रौतयज्ञों में निरूढ़पशुबन्धयागों का भी समावेश है। इसके विपरीत यज्ञ का नामान्तर 'अध्वर' श्रौतयागों के हिंसारहित होने का द्योतक है। मूलत: इन अहिंसक यज्ञों में पशु-हिंसा कब सम्मिलित हो गई, यह विचार का गम्भीर विषय है, क्योंकि समय-समय पर श्रेष्ठ मनीषियों ने इस ओर ध्यान आकृष्ट किया है। कविवर जयदेव ने 'गीतगोविन्द' में बुद्ध के आविर्भाव का प्रमुख कारण ही यज्ञों में बढ़ती पशु-हिंसा को बतलाया है- 'निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्, सदयहृदयदर्शितपशुघातम्, केशवधृतबुद्धशरीर।[1]''

वैदिक मन्त्र-संहिताओं में तो पशु-हिंसा विधि के रूप में नहीं है। जहाँ कहीं कुछ मिलते-जुलते उल्लेख हैं, वे मात्र प्रतीकात्मक हैं। उदाहरण के लिए पुरुषसूक्त के, जो प्राय: सभी संहिताओं में है,[2] एक मन्त्र के प्रथमांश में, पशु रूप में पुरुष के यज्ञ में प्रोक्षण का उल्लेख है- 'तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रत:।' इस सन्दर्भ में प्राय: सभी भाष्यकारों ने इसे मानस-यज्ञ अथवा सृष्टि-यज्ञ बतलाया है, क्योंकि इसी सूक्त के 14 वें मन्त्र में आज्य, समिधा और हविष् के रूप में क्रमश: वसन्त, ग्रीष्म और शरद् ऋतुओं का उल्लेख है। उस समय बाह्य द्रव्य थे ही नहीं, इसलिए 'देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्' (25 वाँ मन्त्र)- पुरुष की ही द्रव्यात्मक पशुरूप में भावना की गई। यह यज्ञ निश्चित ही मानस-व्यापार है। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन[3] तथा काण्व[4], दोनों ही संहिताओं में अग्नि, वायु और सूर्य की पशुरूपता का उल्लेख करके पशुयागों की प्रतीकवत्ता का सुस्पष्ट निदर्शन है-

अग्नि: पशुरासीत् तेनायजन्त स एतँल्लोकमजयद्,
यस्मिन्नग्नि:स ते लोको भविष्यति, तं जेष्यसि।
वायु: पशुरासीत् तेनायजन्त.....।
सूर्य: पशुरासीत् तेनायजन्त.....॥'

सुदीर्घकाल तक यज्ञानुष्ठानों में इसका पालन भी होता रहा, जैसा कि ऐतरेय के (प्रथम पञ्चिकागत) सोमानयन के प्रसंग में अनुष्ठेय आतिथ्येष्टि प्रकरण से सिद्ध होता है। वहाँ यह प्रश्न उठाया गया है कि राजा सोम के अतिथिरूप में सत्कार-हेतु क्या समाज के किसी वर्गविशेष में प्रचलित उस प्रथा का पालन किया जाये, जिसके अनुसार, गृह द्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर राजा अथवा अन्य किसी विशिष्ट व्यक्ति के आने पर उसके सम्मान में वृद्ध बैल या गर्भघातिनी वृद्धा गाय (वेहत) का हनन किया जाता है। इसके उत्तर में कहा गया है कि यह उचित नहीं है। किसी पशु के हनन के स्थान पर अग्नि-मन्थन करना चाहिए, क्योंकि देवों का पशु वास्तव में अग्नि ही है-

अग्निं मन्थन्ति सोमे राजन्यागते। तद् यथैवादो मनुष्यराज आगतेऽन्यस्मिन् वार्हत्युक्षाणं वा वेहतं वा क्षदन्त एवमेवास्मा एतत्क्षदन्ते यदग्निं मन्थन्त्यग्निर्हि देवानां पशुः[5]।

ऋग्वेद में भी गाय को निर्दोष मानते हुए उसकी किसी भी अवसर पर हिंसा का स्पष्ट निषेध है-

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्रणु वोचञ्चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट[6]॥

लेकिन ऋग्वेद के ही एक मन्त्र को बिना ठीक से समझे लेखकों ने[7] गोमांस-भक्षण का प्रमाण बता दिया है। मन्त्र इस प्रकार है-

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे।
स्तोमैर्विधेमाग्नये[8]॥

इस मन्त्र में 'अन्न' का स्पष्ट उल्लेख है- मांस की दूर-दूर तक गन्ध भी नहीं है। 'उक्षान्न' का अभिप्राय है वृषभ के द्वारा की गई जुताई से उत्पन्न अन्न और 'वशा' है गाय जिसके घी-दूध में तैयार किया गया खाद्य-पदार्थ ही वशान्न है।

अथर्ववेद के एक सूक्त के 53 मन्त्रों में वशा (गाय) की हिंसा की कठोर शब्दों में भर्त्सना है। तद्विषयक कुछ मन्त्र इस प्रकार हैं-

'ददामीत्येव ब्रुयादनु चैनामभुत्सत।
वशां ब्रह्मभ्योयाचद्भयस्तत् प्रजावदपत्यवत्[9]॥
यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा।
तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते[10]॥

इनमें से प्रथम मन्त्र में वशा सन्तान या अपत्य कही गई है और दूसरे में उसे वेदज्ञों की निधि माना गया है। एक अन्य मन्त्र में उसे राजन्य वर्ग की माता कहा गया है-

'वशा माता राजन्यस्य तथा सम्भूतमग्रशः।
तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते[11]॥'

वशा जिसे प्रदान की गई हो, उसे उसका पालन आजीवन, भले ही वह दूध देना बन्द कर चुकी हो, करना चाहिए। किसी दूसरे को वृद्धावस्था में भी उसे नहीं सौंपना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी क्रम के अगले सूक्त गत 73 मन्त्रों में ब्रह्मगवी (-वेदपाठियों की गाय) की रक्षा का निर्देश है। उसे श्रम और तपस् से जोड़ा गया है। गोरक्षा से सम्बद्ध ये मन्त्र अन्यतम हैं, जिनमें से कुछ ये हैं-

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वितर्त्तेश्रिता।
सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता।।

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च।। ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च।। आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च।। पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं चर्त च सत्यं चेष्टं च पूर्त च प्रजा पशवश्च।।

तानि सर्वाण्युपक्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य[12]।।'

इसी श्रेणी के एक अन्य मन्त्र में भी मधुर स्वर से रँभाने वाली और अनेक नैसर्गिक गुणों से युक्त गाय की सुरक्षा का आदेश वेद ने दिया है-

'वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं विश्वाभिर्धीभिरूपतिष्ठमानाम्।
पर्येयुरूषीं गामा मावृक्त मार्त्यो दभ्रचेता:[13]।।''

यजुर्वेद के भी अनेक मन्त्रों में पशु-हिंसा न करने का निर्देश है, यथा-

'यजमानस्य पशून् पाहि[14]।'
'इमं मा हिंसीरेक शफं पशुम्[15]'

तथा-

'इमं साहस्रं शतधारमुत्सं व्यच्यमानं सरिरस्य मध्ये।
घृतं दुहानामदितिं जनायाग्रे मा हिंसी: परमे व्योमन्[16]।।'

गाय को वेद में बहुधा 'अघ्न्या कहा गया है।

ऋग्वेद के एक मन्त्र की व्याख्या भी, उसमें उल्लिखित 'मांस' शब्द के आंधार पर मांसाहारियों ने अपने पक्ष में करने की चेष्टा की है, लेकिन उसका वास्तविक अर्थ भिन्न है। सन्दर्भित मन्त्र और उसका यथार्थ इस प्रकार है-

'श्रोणामेक उदकं गामवाजति, मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम्।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत् किंस्वित् पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः[17]।।''

(जैसे कोई विद्वान्-सुनने-समझने लायक व्यक्तियों को प्रेरित करता है, सूर्य-रश्मियाँ भूमि अथवा जल को आन्दोलित करती हैं, कोई मृतक के अंगो को चीर-फाड़कर अलग करता है, तथा कोई (वैद्य) नित्य आ रहे (रोगी) के मल (शकृत्) को दूर करता है, उसी प्रकार माता-पिता पुत्र के दुर्गुणों को दूर करते हैं।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्ल यजुर्वेद (माध्य० सं०) के 25 वें अध्याय में कतिपय मन्त्रों को, याज्ञिक प्रक्रिया को ही वेद का अर्थ मानने वाले व्याख्याकारों, जिनमें उव्वट और महीधर मुख्य हैं, ने खींच-तान करके अश्वमेधगत अश्व के अंगो से क्रियमाण होम से जोड़ दिया है। ऐसा एक मन्त्र इस प्रकार है-

'ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निहरेति।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु18॥

इन अंशो से यह स्पष्ट है कि यज्ञों में पशु-हिंसा के समर्थक व्याख्याकारों ने जमकर खींच-तान करके मन्त्र-व्याख्याएँ की हैं। फिर भी, यजुर्वेद संहिता के अतिरिक्त अन्यत्र अपनी मान्यताएँ प्रविष्ट कराने में वे बहुत सफल नहीं हुए। शुक्लयजुर्वेद के विषय में भी अनेक विद्वानों की धारणा है कि याज्ञवल्क्य के प्रयत्नों के बावजूद इसमें ब्राह्मण, भाग यंत्र-तंत्र अवशिष्ट रह ही गया है।

परवर्ती काल में, श्रौतयज्ञों में पशु-हिंसा के समर्थक ब्राह्मण-ग्रन्थों में अपनी मान्यताएँ सम्मिलित कराने में सफल हो गये। ब्राह्मणग्रन्थों में प्रक्षेप करना सफल था, क्योंकि न तो उनके विकृति-पाठ थे और ना ही वर्ण, स्वर, मात्रादि के अनुक्रमणियाँ थीं। उनकी भाषा भी लौकिक संस्कृत के अनुकूल ही थी- इसीलिए पशु-हिंसा की प्रक्रिया का उनमें प्रक्षेप सरलता से हो गया। ब्राह्मणग्रन्थों में इसीलिए पशु-हिंसा का विरोध और समर्थन दोंनोंही साथ-साथ दिखते हैं। ऊपर आतिथ्येष्टि का उल्लेख पशु-हिंसा के विरोध का ही द्योतक है। ब्राह्मणग्रन्थों में जो प्राचीन अंश हैं, उनसे यह तथ्य स्वतः ही उभरकर सामने आ जाता है। इन अंशो में प्रतीकात्मकता स्पष्टरूप से मुखर हैं। उदाहरण के लिए ऐतरेय ब्राह्मण के षष्ठ अध्याय से ज्ञात होता है कि यज्ञयूप का प्रयोजन मूलतः मारण-हेतु पशु-बन्धन था ही नहीं। इसका प्रयोजन था यज्ञ में अन्य लोगों को सम्मिलित होने से रोकना, जैसा कि कहा गया है-

'तं वै यूपेन एव अयोपयँस्तं यद् यूपेनैव अयोपयँस्तद् यूपस्य यूपत्वम्[19]।''

यूप का दूसरा प्रयोजन था यजमान के शत्रुओं का अपकार करना-

'वज्रो वै यूपः स एष द्विषतो वध उद्यतस्तिष्ठति तस्माद्धाप्येतर्हि यो द्वेष्टि तस्याप्रियं भवत्यमुष्यायं यूपोऽमुष्यायं यूप इति दृष्ट्वा[20]।'

(-जो अश्व को भलीभाँति पक्के तौर पर प्रशिक्षित करके सर्वाङ्गपूर्णदृष्टि से उसका आकलन करते हैं, उन्हें हमारे पास लाओ। उनकी सुगन्ध व्याप्त रहती है। जो घोड़े के मांस के उपासक, और उसके हनन की बात कहते हैं, उन्हें दूर करो।)

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी क्रम में आगे कहा गया है कि बिल्वकाष्ठ से निर्मित यज्ञ-यूप यजमान की सन्तानों और पशुओं का पोषण करता है-

'पुष्यति प्रजां च पशूँश्च य एवं विद्वान बैल्वं यूपं कुरूते [21]।''

प्रश्न यह है कि जिस यज्ञ-यूप का प्रयोजन पशु-समृद्धि था, वह पशु-हिंसा में सहायक कैसे हो गया?

इस यूप का अञ्जन करने के लिए जिन मन्त्रों का विधान है, उनमें से एक का चतुर्थ भाग है-

'उच्छ्रयस्व महते सौभगाय'', इत्याशिषमेवास्ते [22]'

अभिप्राय यह कि हे यूप! तुम हमारे महान् सौभाग्य के लिए उन्नत बनो। अन्य मन्त्रों में आचारयुक्त जीवन के लिए उन्नत बनने का अनुरोध है- 'कृधी न ऊर्ध्वञ्चरथाय जीव्स[23]।'' आगे, 'तिष्ठेत् पशुकामस्य[24]' कहकर भी इसी तथ्य की पुष्टि की गई है। इनमें पशु-हिंसा का आभास दूर-दूर तक नहीं है।

पशु-हिंसा के समर्थकों ने जिन अंशों का प्रक्षेप किया, उनमें से एक यह है, जिसमें यज्ञ में सम्मिलित कुछ यजमानों ने स्वयं मांस-भक्षण से अरुचि यह कहकर प्रकट की,कि जो अग्नि और सोम के मांस का भक्षण करता है, वह पुरुष के ही मांस को खाता है, क्योंकि यजमान अपने को पशुत्व से ही तो मुक्त करना चाहता है- 'नाग्नीषोमीयस्य पशोरश्नीयात् पुरुषस्य वा एषोऽश्नाति योऽग्नीषोमीयस्य पशोरश्नाति, यजमानो ह्येतेनाऽऽत्मानं निष्क्रीणीत[25]''।

यह कथन उन लोगों का है, जिनमें अभी प्राचीन परम्परा का कुछ बोध शेष था, लेकिन पशु-मांस के प्रेमी भी अपने आग्रह पर अड़े थे। उन्होंनें इन्द्र-वृत्र-युद्ध के आख्यान का सहारा लेते हुए दुराग्रह किया कि पशु का माँस ज्यादा से ज्यादा माँगकर खाना चाहिए, उसकी लिप्सा करनी चाहिए-'तत् तन्नादृत्यं वार्त्रध्नं वा एतद् हविर्यदग्नीषोमीयोऽग्नीषोमाभ्यां वा इन्द्रो वृत्रमहँस्तावेनमब्रूतामावाभ्यां वै वृत्रमवधीर्वरं ते कृणावहा इति। वृणाथामिति तावेतमेव वरमवृणातां श्वः सुत्यायां पशुं स एनयोरेषोऽच्युतो वरवृतो ह्येनयोस्तस्मात् तस्य अशितव्यं चैव लीप्सितव्यं च [26]।

तात्पर्य यह कि पशु-हिंसा की पृष्टभूमि में युक्ति की प्रबलता कम और मांस-लिप्सा अधिक रही है।

श्रौतयज्ञों में पशु-हिंसा के समावेश में 'दुर्जनतोषन्याय' की भी भूमिका है। यज्ञानुष्ठानों में विघ्नकारी राक्षसों के लिए रुधिर की व्यवस्था हेतु भी पशु-हिंसा प्रवृत्ति को बल मिला, जैसा कि ऐत.ब्रा. गत षष्ठ अध्याय के सातवें खण्ड में उल्लिखित है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
'अस्ना रक्षः संसृजतादित्याह'। इसी अध्याय के आठवें खण्ड में पहले पुरुष की पशुरूपता बतलाई गई, फिर क्रमशः उसको खिसकाते-खिसकाते आज तक ले आया गया। इसी सन्दर्भ में पहले मनुष्य, अश्व, गो, अवि (भेड़) और अज को अमेध्य बताकर उनके मांस-भक्षण का निषेध किया गया- **'त एत उत्क्रान्तमेधा अमेध्याः पशवस्तस्मादेतेषां नाश्नीयात्'** बाद में इस मेध्यता का संक्रमण व्रीहि में कराया गया जिससे आगे पिष्टपुरोडश-पशु का मार्ग प्रशस्त हुआ- 'सोऽनुगतो व्रीहिरभवत्'। लेकिन पशु-मांस के प्रेमियों ने इस पुरोडाश से पहले पशु को भी सम्मिलित करने में सफलता पा ली। इस खण्ड का अवलोकन गम्भीरता से करने पर नई-पुरानी मान्यताएँ स्वतः पृथक्-पृथक् स्पष्ट हैं। सातवें अध्याय के प्रथम खण्ड में भी व्रीहि और यव की मेध्यता तो है, लेकिन वह पशु-हिंसा से आच्छन्न भी कर दी गई है। आगे सातवें खण्ड में सात ग्राम्यपशुओं का उल्लेख है, जिसमें आपस्तम्ब के अनुयायी मनुष्य को भी सम्मिलित करते हैं-

'अजाविक गवाश्वं च गर्दभोष्ट्रं नरस्तथा।
सप्त वै ग्राम्यपशवो गीयन्ते कविसत्तमैः॥''

यह श्लोक सायण-भाष्य में उद्धृत है। अश्वमेध यागानुष्ठान के प्रसंग में भी बहुत भ्रम हैं क्योंकि ब्राह्मणग्रन्थों में बहुधा द्विविध विधि-विधान के सङ्केत दिखलाई देते हैं। यह सामान्य धारणा है कि अश्वमेध के अनुष्ठान-स्थल पर बहुविध ग्राम्य और आरण्यक पशु एकत्र किये जाते थे, जिनको पर्यग्निकरण के बाद छोड़ दिया जाता था, जैसा कि शतपथ में स्पष्ट कथन है- 'पर्यग्निकृतानेवोत्सृजति' (शत.ब्रा. 13.1.3)। इनको एकत्र करने का वही उद्देश्य था, जो आजकल पशुसंग्रहालय (Zoo) का होता है अर्थात् जन्तुविज्ञान की दृष्टि से जनता का ज्ञानवर्धन और उत्सुकता का शमन।

फिर पशु-अंगो से होम कहाँ से सम्मिलित हो गया? माध्यन्दिन संहिता (25.1) में पशु (अश्व) के अंगो के साथ जिन शाद, अवका प्रभृति देवों का उल्लेख पशु-हिंसा के समर्थकों ने किया है, उनके विषय में शतपथ स्वयं मौन है। मात्र भाष्यकार उन्हें देवपरक नाम बतलाते हैं। फिर मन्त्र में ये द्वितीया विभक्त्यन्त रूप में है, जबकि होम-मन्त्रों में सम्प्रदान की दृष्टि से चतुर्थी का प्रयोग सामान्यतः होता है। इसी कारण सातवलेकर प्रभृति भाष्यकार शाद की व्याख्या कोमल घास (शाद्वल) तथा अवका की सैवाल के रूप में करते हैं। 'तेगा'-जैसा दैवता प्रायेण अपरिचित ही हैं। अभिप्राय यह कि अश्वमेध-प्रकरण पर भी पुनर्विचार की आवश्यकता है। ब्राह्मणग्रन्थों के ये अंश पशु-हिंसकों एवं पशु-जीवन के संरक्षकों के मध्य विद्यमान द्वन्द्व को प्रायः उजागर कर देते हैं। श्रौतसूत्रकार इस द्वन्द्व में उलझने से बचकर और स्वतः कोई निर्णय न लेकर नये-पुराने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधिवाक्यों को समेटने भर तक सीमित रह गये। उनमें भी प्रक्षेप को रोकने की कोई व्यवस्था नहीं थी। अतः श्रौतयागों में सम्मिलित पशु-हिंसा की प्रवृत्ति के उद्भव और विकास को समझने में श्रौत और गृह्यसूत्र-साहित्य से विशेष सहायता नहीं प्राप्त होती। लेकिन पूर्व मीमांसा के कपितय अंश श्रौतायागों में पशु-हिंसा का स्पष्ट विरोध करते हैं, यथा-'मासंपाकप्रतिषेधश्च तद्वत्[27]।'

निरुक्तकार महर्षि यास्क ने वेदों में स्थान-स्थान पर आये 'मांस' पद[28] के जो निर्वचन किये, वे पशु हिंसा के स्पष्टरूप से विरुद्ध हैं। ये हैं-'मांसं माननं वा, मानसं वा (मनसि भवम्), मनोऽस्मिन् सीदति इति वा[29]।' तदनुसार 'मांस' शब्द का अर्थ निकलता है मन में उत्पन्न होने वाले विकार या भाव-दुर्भाव। अभिप्राय यह कि किसी पूज्यजन का सत्कार ही 'मांस' शब्द से अभिप्रेत है, क्योंकि यह 'मान' (पूजार्थक) धातु से निष्पन्न है। निरुक्त के भाष्यकार दुर्गाचार्य का कथन है- 'यदेव माननं तदेव मांसमित्यर्थः।'

पारम्परिक सन्दर्भ में **'इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृहंयेत्'** इस उक्ति के अनुसार महाभारतादि भी श्रौतयज्ञों में पशु-हिंसा के पूर्णतया विरुद्ध प्रतीत होते हैं। स्मृतियों में प्राप्य एक श्लोक के अनुसार अश्वालम्भन, गवालम्भनप्रभृति कृत्य कलियुग में वर्जित हैं -

अश्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।
देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥

लेकिन महाभारत के अनुसार तो ये कृत्य कृतयुग (सत्ययुग), त्रेता और द्वापर में भी वर्जित रहे हैं। शान्तिपर्वगत मोक्षधर्मपर्व में राजा उपरिचर वसु के स्वर्ग से गिरने के प्रसंग में युधिष्ठिर के द्वारा पृष्ट प्रश्न के उत्तर में भीष्म का ऋषियों के अभिमतोद्धरणपूर्वक कथन है-

'बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः।
अजसंज्ञानि बीजानि च्छागं नो हन्तुमर्हथ।
नैषधर्मः सतां देवायत्र वध्येत वै पशुः
इदं कृतयुगं श्रेष्ठं कथं वध्येत वै पशुः।
धान्यैर्यष्टव्यमित्येव पक्षोऽस्माकं नराधिप!
इदं कृतयुगं नाम कालः श्रेष्ठ प्रवर्तिताः॥
अहिंस्या यज्ञपशवो युगेऽस्मिन् न तदन्यथा॥
(त्रेता) प्रोक्षिता यत्र पशवो वधं प्राप्स्यन्ति वै मरवे।
यत्र पादश्चतुर्थो वै धर्मस्य न भविष्यति[30]॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अज' का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ बकरा न होकर वह अन्न है, जो बीजरूप में पुराना होने के कारण अव्यवहार्य है। इसीलिए महाभारत ने स्पष्टरूप से पशुयज्ञों को अवैदिक और धूर्तो के द्वारा प्रवर्तित घोषित किया है-

(पूर्वमीमांसागत परिसंख्या-विधि भी, मांस-भक्षण परक न होकर मांस-वर्जन-बुद्धि की ही उत्पादक है। 'पञ्चपञ्चनखा भक्ष्याः' वाक्य का वास्तविक अर्थ इस विधि के अनुसार पाँच नाखून वाले पाँच जीवों का भक्षण न होकर अपञ्चपञ्च नखवाले जीवों के भक्षण का निषेध है।)

"सुरा मत्स्याः पशोर्मांसं द्विजातीनां बलिस्तथा।
धूर्त्तैः प्रवर्तितं यज्ञे नैतद् वेदेषु विद्यते[31]॥"

पुराणों में श्रीमद्भागवत का प्रचलन सर्वाधिक है। उसमें भी पशु-हिंसा की तीव्र स्वरों में निन्दा की गई है-

"लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जन्तोर्नहि तत्र चोदना।
व्यवस्थितस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासुनिवृत्तिरिष्टा॥
यद् घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न हिंसा
एवं व्यवायः प्रजया न रत्या, इमं विशुद्धं विदुः स्वधर्मम्।
ये त्वनेवं विदोऽसन्तः स्तब्धा सदभिमानिनः।
पशून् दुह्यन्ति विश्रब्धाः प्रेत्य खादन्ति ते च तान्[32]॥

महर्षि वेदव्यास के शब्दों में निष्कर्ष यह है कि यज्ञ में पशुहिंसा पूर्णतया अविधेय है- 'पशुहिंसा न यज्ञिया[33]।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाद-टिप्पणियाँ

गीतगोविन्द, दशावतार-वर्णन

1. ऋ. सं. 10.60, यजु. सं. (माध्य.)- 31 वाँ अध्याय
2. माध्यन्दिन संहिता 23.17
3. काण्वसंहिता 25.16
4. ऐतरेय ब्राह्मण 3.4.15
5. ऋ. सं. 8.101.15
6. 'आर्यो में मांस खाने की भी प्रथा थी। भेड़ और बकरी का मांस सामान्य रूप से खाया जाता था।
7. वृषभ और वशा का मांस भी खाते थे। ऋग्वेद में उक्षान्न तथा वशान्न का उल्लेख मिलता है'- ब्रजबिहारी चौबे, संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, प्रथम (वेद) खण्ड, पृष्ठ 582, उत्तर प्रदेश, संस्थान, लखनऊ
8. ऋ. सं. 8.43.11

9-11. अथर्वसंहिता 12.5.1: 7-11

13. ऋ.सं. 8.101.16
14. यजु. सं. 1.1
15. तदेव 13.48
16. तदेव 13.49
17. ऋ.सं. 1.161.10
18. तदेव, 1.62.12,यजु. सं. 25.35
19. ऐत. ब्रा. 6.1
20. ऐत.ब्रा. 6.1
21. ऐत.ब्रा. 6.1
22. ऐत.ब्रा. 6.2
23. ऐत.ब्रा. 6.2
24. ऐत.ब्रा. 6.3
25. ऐत.ब्रा. 6.3.3
26. ऐत.ब्रा.6.3.3
27. वेदों में 'मांस' पद नौ रूपों में 46 बार प्रयुक्त है, जिनका विवरण इस प्रकार है- मांसम् (24 बार), मांसस्य (1), मांसानि (11), मांसे (1), मांसेभ्यः (2), मांसभिक्षाम् (2) मांसवान् (1), मांस्पचन्याः (2)। वेदानुसार यह शब्द ऋग्वेद में तीन बार, यजुर्वेद में छह बार तथा अथर्ववेद में सैंतीस बार प्रयुक्त है।

29. निरुक्त, 4.1.3
30. महाभारत, शान्तिपर्वान्तर्गत मोक्षधर्म पर्व, 337. 4-5: 337.12: 340.82: 340.83
31. महाभारत, शान्तिपर्व
32. श्रीमद्भागवत 11.5.11-14
33. महाभारत, शान्तिपर्वान्तर्गत मोक्षधर्मपर्व, 272. 18

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्‌बोधन

महावीर 'नीर' विद्यालंकार
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय

कहाँ से चले, कहाँ आ पहुँचें, और अभी कहाँ जाना है।
जोड़-तोड़ में समय गवाँया, नहीं साथ कुछ जाना है।
जागो! स्वयं, जगाने वालों! विकृत हुआ जमाना हैं।
'नीर' उदासी छोड़ो मन से, ऋषि-ऋण तुम्हें चुकाना है॥

तुमने तिमिर मिटाने के मिस,केवल तम का समूह बटोरा।
सजल कल्पना लोक रचाकर, केवल छल औ, कपट बटोरा।
तुमने तप के पुण्य-भवन भी, कीचड़ के तालाब बनाएं।
तुमने बीज कंटीले बोकर, अपने भी कर लिए पराए॥

तुमने परिवर्तन लाना था, तुम खुद ही पत्थर बन बैठे।
अपने अहं भाव पर केवल तुम मिथ्या का दम्भ लेपेटे।
तुमने फागुन ही लाना था, यह कैसी पतझर ले आये।
जीवन के कोमल भावों पर, तुमने काँटे खूब उगाये॥

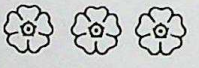

सबकी उन्नति में, उन्नति का, तुम्हें नियम करना था विस्तृत।
'वसुधैव' के भावों में, जग, तुम्हें प्रिये करना था दीक्षित।
तुम्हें कुटिलता व गुरुडम के किले ध्वस्त करने थे मिलकर।
तुम्हें तमस् को सदा भगाकर, ज्योतित करने थे शत-दिनकर॥

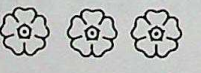

तुम्हें बहानी थी जग-जग में, सदाचार की पावन-धारा।
तुम्हें मिटानी थी पल भर में, दुराचार की कुत्सि-कारा।
नन्हे-नन्हें इन बच्चों को, तुम्हें सदा पथ था दिखलाना।
दीन-हीन दुःखियों के हित में, तुम्हें यहाँ था स्वर्ग बनाना॥

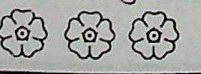

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हें प्रवर्तित करने थे यहाँ, वेद-ऋचाओं के पावन-स्वर।
तुम्हें सुगन्धित करने थे यहाँ, गंधहीन कातर जीवन-स्वर।
तुम्हें मिटानी थी जग भर से, दुष्ट-दानवों की दानवता।
तुम्हें जगानी थी जग भर में, महान् मानवों की मानवता।।

तुम्हें गगन औं' धरा सभी में, अपना यश विस्तृत करना था।
तुम्हें ऊँच औ', नीच सभी का, भेद-भाव समतल करना था।
तुम्हें वीरता के प्रहरी बन, बलिदानी पथ पर चलना था।
तुम्हें वर्ण-आश्रम का केतु, घर-घर पर ज्योतित करना था।।

तुम्हें विकास देना था उनको, जो युवक सन्यस्त हुए थे।
तुम्हें प्यार देना था उनको, जो निज घर को त्याग चुके थे।
तुम्हें मर्यादा में रहना था, जग को पथ दिखलाने वालो।
तुम्हें हँसाना और हँसना था, आज स्वयं पर रोने वालो।।

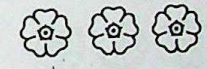

तुम्हें प्रवाहित करनी थी यहाँ, आर्य-सभ्यता की निर्झरणी।
तुम्हें नष्ट करनी थी जग से, द्वेष-दम्भ की कुल-कलंकिनी।
तुम्हें पल्लवित करनी थी यहाँ, शुष्क चमन की मुरझी कलियाँ।
तुम्हें निनादित करनी थी यहाँ, प्रेम-प्रीति की मन्द मुरलियाँ।।

तुम्हें कर्मनिष्ठ बनना था, फल की इच्छा नहीं करनी थी।
तुम्हें धर्मनिष्ठ बनना था, उच्च भावना ही भरनी थी।
तुम्हें पुष्प चुनने थे जग में, नहीं शूल यहाँ पर चुनने थे।
तुम्हें सदा सुख-सुयश कमाकर, विकृत जीवन नहीं करने थे।।

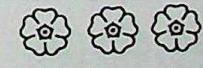

तुम्हें सदा आदर देना था, मजदूरों को मजबूरों को।
तुम्हें नया पथ बतलाना था, राहगीरों को, बटमारों को।
तुम्हें सदा सम्बल देना था, डूब रही हर पतवारों को।
तुम्हें नया रंग भी देना था, मिटती हुई इन तस्वीरों को।।

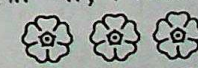

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हें मृत्युञ्जय बनकर जग में, जीने का था अर्थ बताना।
तुम्हें कमाकर सुयश जगत् में, जीवन का था महत्व बताना।
तुम्हें चरित की उज्ज्वल बातें, रखनी थी जन-जन के आगे।
तुम्हें जोड़ने थे मानस के, टूटे प्रेम-सूत्र के धागे।।

तुम्हें शरीर, मन औ, आत्मा को, सदा विकास देना था जग में।
तुम्हें बुभुक्षा के पिशाच को, सदा दफन करना था जग में।
तुम्हें झोंपड़ी औं' महलों में, समता का था भाव जगाना।
तुम्हें आँसुओं की दुनियाँ में, आनन्द का था उत्स बहाना।।

तुम्हें छूत के विष-पादप का, करना था कर्तन इस जग से।
तुम्हें बहिन, माता, पत्नी का, करना था उत्कर्ष हृदय से।
तुम्हें 'मूक-जीवों' के हक में, अपना घोष तुमुल करना था।
तुम्हें शुष्क-मानव की रग में, नया रक्त सिञ्चित करना था।।

तुम्हें विश्व में आर्य भाव की, सदा पताका फहरानी थी।
तुम्हें जगत् में सत्य-भाव की, सदा मर्यादा फैलानी थी।
तुम्हें अभाव को सदा मिटाकर, खुशहाली घर-घर लानी थी।
तुम्हें समाज को पथ दिखलाकर, नयी बात कुछ बतलानी थी।।

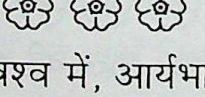

सुनो! नारियों! तुम्हें विश्व में, आर्यभाव पोषित करना था।
तुम्हें वेद की ऋचा तुल्य ही, अपना जीवन भी गढ़ना था।
तुम्हें गार्गी, मैत्राणी सम, उज्ज्वल करना था निज माथा।
तुम्हें शिवा, स्योना, सविता बन, उन्नत करनी थी निज गाथा।।

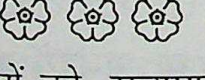

तुम्हें सदा निज सन्तानों को, सत्यमार्ग ही बतलाना था।
तुम्हें कुपथ से सदा हटाकर, सुपथ मार्ग ही दिखलाना था।
तुम्हें भूत-प्रेतों की मिथ्या, कथा, कहानियाँ नहीं कहनी थी।
तुम्हें तन्त्र-मन्त्रों की मिथ्या, बातें यहाँ नहीं करनी थी।।

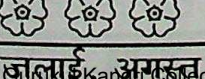

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हें दहेज की कष्ट-प्रथा का, सदा विरोध करना था डटकर।
तुम्हें रूढ़ियों के खण्डहर पर, पद-प्रहार करना था कसकर।
तुम्हें 'वीर बाला' बनना था, नहीं 'कामिनी' कहलाना था।
तुम्हें 'साम्राज्ञी' बनना था, नहीं 'किङ्करी' कहलाना था।।

तुम्हें यज्ञ के धूम-सदृश ही, जीवन-सौरभ फैलाना था।
तुम्हें यज्ञ की ज्वालाओं सम, दिव्य-तेज धारण करना था।
तुम्हें व्रती बन, विश्व-यज्ञ में, अपना व्रत पालन करना था।
तुम्हें दृढ़ी बन निज जीवन में, अपना लक्ष्य पूर्ण करना था।।

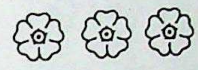

तुम्हें निराशा के उपवन में, आशा के थे सुमन खिलाने।
तुम्हें साधनामय जीवन से, योग-सूत्र थे हमें बताने।।
तुम्हें ईश की शक्ति के थे, हमको सब उद्धरण बताने।
तुम्हें 'परा' औं 'अपरा' के भी, हमको थे सब भेद बताने।।

ऋषियों के पावन जीवन सम, तुमको निज जीवन करना था।
तन-मन-धन औ', सभी न्यौछावर, तुम्हें 'समष्टि' हित करना था।
तुम्हें दीन व हीन पने को, सदा दूर मन से करना था।
तृम्हें कृष्ण-अर्जुन सम बन कर, आततायी का वध करना था।।

तुम्हें वरुण, अग्नि, वायु का, सत्य-स्वरूप ही बतलाना था।
तुम्हें जीव को मोक्ष धर्म का, उच्च पाठ ही सिखलाना था।
तुम्हें ज्ञान-विज्ञान बढ़ाकर, मानव-पन सूत्रित करना था।
तुम्हें 'ज्ञान' से 'अमृत' का पथ, सदा यहाँ विस्तृत करना था।।

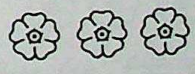

तुम्हें कुप्रथाओं के कल्मष को, सदा दूर करना था जग से।
तुम्हें रूढ़ियों के पाखण्ड को, सदा मिटाना था निज बल से।
तुम्हें 'सिंधु' की छाती ऊपर, नित, अभियान नया करना था।
तुम्हें 'विश्वमत-परिषद्' में भी, अपना स्वर घोषित करना था।।

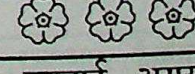

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
किन्तु तुम्हीं फंस गये भंवर में, औरों को क्या पार लगाते।
और तुम्हीं डस गये फूट से, औरों को क्या एक्य सिखाते।
तुम्हीं लक्ष्य से भटके ऐसे, औरों को क्या लक्ष्य बताते।
तुम्हीं बीनने लगे शूल तो, फूलों को कैसे फिर पाते।।

अगर तुम्हीं हो गये भ्रष्ट तो, शिष्ट कौन फिर रह पायेगा।
अगर तुम्ही 'पाषाण' बने तो, क्या वैदिक धर्म रह पायेगा।
अगर तुम्हीं भटके स्वार्थो में, सत्य-सनातन कौन कहेगा?
अगर तुम्हीं बह गये भोग में, फिर जीवन में कौन तरेगा?

अगर, तुम्हीं हो गए अंध तो, अंधकार फिर कौन हरेगा?
अगर तुम्हीं हो गए रुग्ण तो, भव-रोगों को कौन हरेगा?
अगर तुम्हीं हो गए निराश तो, आशा-कुसुम न खिल पाएगा।
अगर तुम्हीं हो गए मूक तो, दुराचार सह पा जाएगा।।

तुम्हीं फँसे यदि 'जातिवाद' में, फिर उद्धार न हो पायेगा।
तुम्हीं फंसे यदि 'स्वार्थवाद' में, फिर उपकार न हो पायेगा।
तुम्ही यदि कायर बन बैठे, 'बलिदानी-पथ' कौन गढ़ेगा।
तुम्हीं यदि बह गए प्रवाह में, फिर तरणि को कौन तरेगा।।

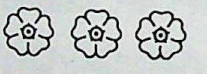

तुम्हीं कुरेदोगे यदि जड़ को, कहो विकास फिर कैसे होगा?
तुम्हीं यदि आपस में झगड़े, लक्ष्यपूर्ण फिर कैसे होगा?
तुम्हीं यदि 'लोलुप' बन बैठे, 'रामायण' फिर कौन लिखेगा।
तुम्ही यदि हिंसक बन बैठे, 'महाभारत' चहुँ ओर मचेगा।।

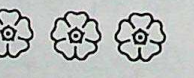

अगर तुम्हीं 'छैला' बन बैठे, रंगे प्रतीची की धारा में।
बोलो, फिर सुधार क्या होगा, बहे यदि उलटी धारा में।
तुम्ही यदि पड़ गए नियति में, कर्मशीलता घट जायेगी।
दुष्ट-दानवी, दानवता भी, मानवता पर चढ़ जायेगी।।

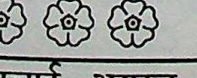

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हीं यदि फंस गये जाल में, महाकाल फिर खा जाएगा।
दुराचार का भस्मासुर भी, सदाचार पर छा जाएगा।
नैतिकता रोयेगी भू पर, सत्य-सनातन खण्डित होगा।
गुरुडम फिर से बढ़ जाएगा, झूठ यहाँ पर मण्डित होगा।।

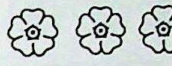

तुम्हीं लोप-लीला में भटके, स्वयं लुप्त होते जाते हो।
तुम्हीं विधाता का विधान कह, किस्मत पर हँसते-रोते हो।
तुम्हीं बुभुक्षा में भटके से, अपना सत्व नहीं पाते हो।
तुम्हीं डाल चादर क्यों मुँह पर, लम्बी तान अरे। सोते हो।।

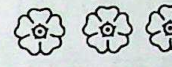

तुम्ही भावना के प्रवाह में, निज मूल्यों को भूल गए क्यों?
'अयं निजः परोवेति' में, निज मूल्यों को डूबा रहे क्यों?
सतत-साधना में 'कुर्सी' की, गौरव-गरिमा भूल गए क्यों?
भोगवाद के क्षणिक सुखों में, जीवन-सुरभि लुटा रहे क्यों?

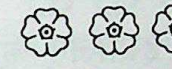

सुनो! नारियों तुम्हीं बताओं, तुम्हें कौन सा पथ चुनना था।
'झाँसी वाली' बनकर तुमने, दृढ व्रत का पालन करना था।
तुम्हीं भोग में फंसी अगर तो, 'वीर-प्रसविनी' कौन बनेगी।
तुम्हीं मर्यादा निज भूली तो, जीवन-सरिणी नहीं चलेगी।।

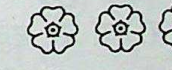

तुम्हीं डूब गयी पाखण्डो में, फिर उद्धार कहाँ से होगा?
तुम्हीं भूत-प्रेतों में लिपटी, फिर सुधार कहाँ से होगा?
तुम्हीं बनावट की प्रेमी हो, असली पन को भूल गयी क्यों?
तुम्हीं सजावट की प्रेमी हो, स्वाभाविकता से दूर हुई क्यों?

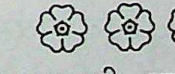

तुम्हीं प्रेरणा बन मानव की, नया रक्त भरती जीवन में।
तुम्हीं दुष्ट मानव के मन की, कालिख धो देती हो पल में।
तुम्हीं भवानी, चण्डी बनकर, अरिदल को दलती हो पल में।
तुम्हीं स्नेह की धारा बनकर, बहती हो जगती के तल में।।

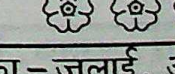

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तुम्हीं अगर चुप बैठोगी तो, अत्याचार बढ़ेंगे भू पर।
तुम्हीं अगर सहती जाओगी, दुराचार बढ़ते हैं भू पर।
तुम्हीं अभरता की द्योतक हो, उठो, वीर जननी भारत की।
तुम्हीं सफलता की देवी हो, रक्षा करो पतित मानव की।।

तुम्हीं संगिनी बन मानव की, छाया राम संग-संग रहती हो।
तुम्हीं प्रीति की धारा बनकर, 'मरु' को भी पुष्पित करती हो।
तुम्हीं सदा इतिहास बनाती, काव्यों का सृजन करती हो।
तुम्हीं मधुरता बन इस जग में, नीरस को रसमय करती हो।।

तुम्हीं भूल गयी निज गौरव को, कैसा विकट समय आया है?
'छैली' बनकर चित्रपटों में, तुमको किसने नचवाया है?
तुम्हीं दिव्य 'देवी' थी घर की, हुई दुकान पर 'विज्ञापन' हो।
उठो! और जागो! देखो तुम, क्या थी, क्या से क्या हो गयी हो।।

नरनारी भूले मूल्यों को, इसीलिए कुण्ठित जीवन है।
आज मूल को काट रहे हैं, इसीलिए लुण्ठित जीवन है।।
तुम्ही राष्ट्र की काया में थे, प्राणों का सञ्चार कराते।
तुम्हीं दिशा निर्देशन करके, नीति का व्यापार चलाते।।

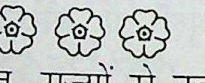

तुम्हीं धर्म की रक्षा हेतु, राज्यों से टकराया करते।
'ओ३म्' नमस्ते कहने पर तुम, भाइयों से पिटवाये जाते।।
'शुद्धि' के करने पर आर्यों, 'गोली' से छेदे तुम जाते।
सत्य-सनातन की रक्षा में, 'छुरे' कौरव उतर थे जाते।।

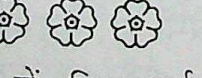

'हिन्दी' भाषा की रक्षा में, निज सर्वस्व लुटाने वालो।
गऊओं की रक्षा के हित में, बलिवेदी पर मरने वालो।
राहत के कार्यों में अपना, तन-मन-धन दे देने वालो।
उठो! राष्ट्र के मृत शरीर में, नूतन जीवन भरने वालो।।

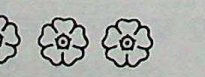

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदा धर्म से नीति चलती, फिर ही राज चला करते थे।
इसीलिए तो यहाँ के मानव, छल से दूर रहा करते थे।
किन्तु आज, राज से नीति, और नीति से धर्म चल रहा।
इसीलिए तो मानव का मन, कितना है विद्रूप हो रहा।।

उठो! ऋषि के मन्तव्यों को, दूर-दूर फैलाने वालो।
उठो! वेद के आदर्शों को, जीवन में अपनाने वालो।
जागो, जागो, क्यों सोये हो, सबको सदा जगाने वालो।
गले लगाओ, तुम रूठों को, 'ओ३म्' ध्वजा फहराने वालो।।

तुम हो पहरेदार राष्ट्र के, तुम सोये तो फिर क्या होगा।
मत भूलो तुम 'आर्यवीर' हो, तुम भटके तो फिर क्या होगा।
सुनो! तुम्हारी सदा 'साक्षी', 'सत्यमेव' समझी जाती थी।
और तुम्हारी गुण-गरिमा भी, दूर-दूर गायी जाती थी।।

तुम्ही बताओ आज शिथिलता, क्यों जीवन में व्याप्त हुई है?
सभी दिशाओं में शीतलता, क्यों यह कैसी समा गयी है?
तुम्ही बनो जलती ज्वाला से, प्रकाशित कर दो इस जग को।
तुम्ही बनो गिरतों को सम्बल, उद्घाटित कर दो हर मग को।।

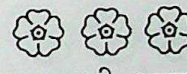

तुम्ही अखण्डित आर्य राष्ट्र की, सजल कल्पना को खो बैठे।
तुम्ही नीति के प्रपञ्चों में, जीवन का सब कुछ खो बैठे।
तुम्ही बिखरने लगे स्वयं से, संघ-भाव फिर से कहाँ से आते।
तुम्ही ढूंढ़ने लगे छिद्र तो, शत्रु, मित्र कैसे बन पाते।।

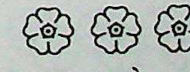

तुम्ही स्वार्थ की कुटिल कला के, बन बैठे जब खुद व्यापारी।
फिर तो स्वार्थ-भाव पनपेगा, बढ़ जायेंगे अत्याचारी।
तुम्ही डूब गये 'पंक' बीच तो, 'कमल' कहो कैसे खिल पाये।
भुना हुआ अन्न बोने वालो, कैसे सुन्दर अंकुर आये।।

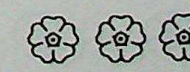

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नेह भाव के मंजुल मोती, बिखर गये देखो माला से।
दया-भाव के प्रेम-सुमन भी, छितर गये मन की माला से।
तुम्ही कहो भटके मानव का, नव-निर्माण कहाँ से होगा।
तुम्ही कहो प्यासे राही का, मन यह तृप्त कहाँ से होगा।।

तुम्ही ध्वजा लेकर बढ़ते थे, सत्यमेव गुंजित होता था।
प्रबल 'घोष' सुन विपक्ष तुम्हारा, मन ही मन कम्पित होता था।
किन्तु आज वह प्रबल घोष क्यों, लुण्ठित व कुण्ठित है बोलो।
तुम्ही स्वार्थ के वशीभूत हो, हाँ में हाँ करते क्यों बोलो।।

तुम्ही किया करते थे खण्डन, सदा असंगत पाखण्डो का।
तुम्ही मिलाप किया करते थे, विलग हुए दो 'हृत-खण्डो' का।
तुम्ही वेदना देख किसी की, द्रवीभूत हो जाया करते।
तुम्ही तड़पता देख 'आर्त' को, नहीं चैन से सोया करते।।48।।

किन्तु आज वह दिव्य भावना, दिख नहीं पड़ती 'संघ-भाव' में।
तुम्हें डूबा ले गयी ईर्ष्या, छेद हो गए आज नाव में।
तुम्ही बताओ? कर्णधार हे? कौन लड़ेगा तूफानों से?
तुम्ही बताओ? कौन भिड़ेगा? पथ के रोड़े चट्टानों से।।

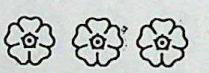

तुम्हीं बताओ? सूत्रधार हे? क्यों सब सूत्र टूटते जाते।
'आर्य-राष्ट्र' के कण-कण में क्यों, 'रक्त-बीज' उगते हैं जाते।।
चारों ओर चरित्र-हीनता, अपना नंगा नाच किए है।
हिंसा औं' आतंकवाद ने, कितने जीवन छीन लिए हैं।।

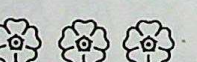

तुम्हीं समय को उत्तर दोगे, अपने किये गए कृत्यों से।
तुम्हीं काल को भी मोड़ोगे, अपने सुविचारित वृत्तों से।
तुम्हीं 'भविष्यत्' के सपनों को, वर्तमान का सृजन दोगे।
तुम्हीं 'भूत' के उपादान ले, वर्तमान को सम्बल दोगे।।

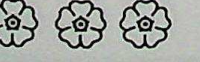

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्ही धरा पर 'स्वर्ग-राज्य' की, पूर्ण करोगे सुखद कल्पना।
तुम्हीं विचारों के प्रवाह से, मूर्त करोगे मधुर अल्पना।
तुम्हीं पिलाओगे मानव को, सोम-सुधा की मधुमादकता।
तुम्ही खिलाओगे इस जग में, मुर्झित, कुण्ठित सी मानवता।।

सुनो! प्रेम की, आज जगत् में, मुरली मधुर बजानी होगी।
विष-पादप के कर्तन-हेतु, विष की प्याली पीनी होगी।
घर-घर से फिर कलह, फूट की, नागिन मार भगानी होगी।
उठो! पुकार उठी जन-मन से, जीवन ज्योत जलानी होगी।।

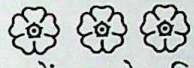

दयानन्द के वीर सैनिकों, उठो! हिमालय डोल रहा है।
जम्मू औं' कश्मीर हमारा, उलटी भाषा बोल रहा है।।
सागर की लहरें भी अब तो, उल्टा पाठ हमें सिखलाती।
आज गगन की आब-हवा भी, हमको छूकर है शरमाती।।

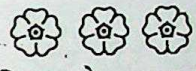

आज विदेशी राजा फिर से, भारत में घुसपैठ कर रहे।
बड़े-बड़े भ्रष्टाचारी भी, आज राष्ट्र में मौज कर रहे।।
उठो वीर-भू की सन्तानों, गंगा-यमुना की सन्तानों।
गाँव-गाँव और नगर-नगर में, अलख जगा दो औं मस्तानों।।

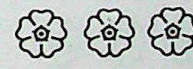

दूषित-शिक्षा की आँधी में, देखो कैसा गजब किया है।
बड़े-बड़े शिक्षा केन्द्रों को, जड़ से किल्कुल हिला दिया है।।
उठो! जगी हे आर्य सपूतों! सिद्धान्तहीनता पनप रही है।
सेन्ध लगाकर सहशिक्षा भी, अपने करतब दिखा रही है।।

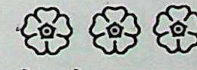

आर्य-जगत् में तूफानों के, आज बवण्डर जो उठते हैं।
आर्य-भाव की गरिमा को वे, जन-मन में कुछ कम करते हैं।।
देखो! निज कर्मों को देखो, उनका फल क्या निकल रहा है।
पढ़े-लिखे युवक-समाज को, पाखण्ड़ कैसे निगल रहा है।।

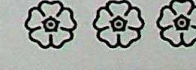

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनो! सुनो! हे धर्म प्रेमियों, धर्म-ध्वजा क्यों काँप रही है।
आज तुम्हारे बल-पौरुष को, काल-गति भी जाँच रही है।।
उठो! और उठकर तन जाओ, जग को वैदिक राह दिखा दो।
पद-लोलुपता त्यागो अब तो, सेवक बनकर जरा दिखा दो।।

सुनो! आर्यों! तुम्हें आज फिर, नयी चेतना बुला रही है।
उठो और जागो फिर तुमको, नयी भावना जगा रही है।।
नयी शती की नूतन राहें, बाँह पसारे बुला रही है।
आशा की स्वर्णिम आभायें, शत-शत सूरज उगा रही है।।

उठो! बढ़ो! हे आर्य सपूतों! 'वयं जयेम' कहने वालो।
उठो और उद्योग करो अब, जग को आर्य बनाने वालो।
उठो! कथन और कर्म-एक्य के, भाव हृदय में भरने वालों।
उठो टूटते स्नेह तन्तु को, एक तान में कसने वालो।।57।।

उठो! आज दुष्टों के गढ़ में, फिर से वैदिक नांद गूंजा दो।
उठो! दुष्ट फुंकार रहे हैं, उनका नाम निशान मिटा दो।
उठो! आज फिर 'आर्य-राष्ट्र' पर, काले मेघ घुमड़ते आते।
उठो! आज भारत सन्तानों, किस चिन्ता, चिन्तन में सोते।।58।।

उठो! आज बिजली बन कड़को, फिर से हलचल जरा मचा दो।
आर्यवीर हो, धर्मवीर हो, राष्ट्रवीर हो, राष्ट्र जगा दो।
कण-कण से आवाज उठे फिर, 'ओ३म्' पताका वाले आये।
दानवता चित्कार उठे फिर, मानवता जग पर छा जाये।।59।।

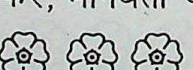

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Irrigation-Vedas

Dr. S. Ramadevi
Sr. Lecturer In Sanskrit
Sriramachnndra Degree & P.G.College,
Hydreabad.

Nature is the most worshipped god or goddess of our ancient people. Volumes are written on the worship nature. Nature is full of resources. One of such is rainfall. A number of references are found in the Rg. Veda, YajurVeda etc, where rainfall is decribed as chief source of water. Water, along with soil, plays an important role in bringing up crops. Our ancient people used to perform sacrifices to get rains in proper time. Hundreds of slokas are written in Vedas in praise of gods of rain such as Indra, Varuna, Vishvedeva. Rainfall is the source of agriculture, indeed the life itself depends upon it, and therefore one should with full efforts acquire the knowledge of rainfall. Parasara says-

वृष्टिमूला कृषिःसर्वा वृष्टिमूलं च जीवनम्।
तस्मादादौ प्रयत्नेन वृष्टिज्ञानं समाचरेत्।। **(KrisiParasara.10)**

The following pages enumerate quite a number of examples to establish that our ancient people recognized the importance of water, and that they have enjoyed well maintained irrigation methods. I begin with mention of a two are three verses where the gods are eulogized in order to get water through rains in right times. After that it is attempted to bring out a quitre number of hymns which describe the different sources of water.

In the mantra of Rg.Veda, it is seen that the worshippers of Brihaspati were pleasing him by eulogizing his greatness loudly. Here it is compared to the sounds of water that was falling from the mountains after the rain. The water flows down to the earth and helps the farmers in growing their crops. Again, in other hymn-

आप्रुषायन्मधुना ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः।। **(Rg.Veda X-68-4)**

In the same sukta, it is described that the fields are moisture by the water. Let us look at Sayana's commentary on this-

मधुना उदकेन अपृषायन् पृथिवीं आभिमुख्येन सिञ्चन्।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

People of Rg.Vedic age were always conscious of keeping in touch with the nature. All the time they were in worship of the gods of nature. The hymn-

दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्रपिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ... **(Rg.Veda V-83-6)**

means to say "Oh! God, get us rains, and for that you compel the clouds to have the continuous showers that would help us to have good crops and water for our day to day needs of life". In another hymn - स्यन्दन्तां कुल्याःनिषिताः पुरस्तात् **(Rg.Veda V-83-8)** it is wished that all the rivers flow with full of water.

In Krishnas Yajurveda, many hymns bring out the importance of the rain. One such hymn वृष्ट्यै त्वोपनह्यामि **(KY 2-4-7)** prays god thus: "I yoke you for the showers, you may please rain day and night completely filing all that which are useful for all the beings and particularly for the people who have to get crops". It further says अतिरात्रं वर्षन् पूर्तिरावृत् स्वाहा, ततो नो वृष्ट्या आवृत **(KY 2-4-8)**

Rg. Veda also has a similar hymn which prays the god of wind to bring us rain thus:

वर्षयथाः पुरीषिणः। न वो दस्रा उपदस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत। **(Rg.Veda V-55-5)** It is described here in this hymn that the maruts move all around showering the waters which would never dimdnish, and the gods follow maruts showering their benefits. The rain water enters the sacred field and shall live in this place for quite some time to enable people for using it and produce crops.

In another place in Krishna Yajurveda, it is wished that the wide rivers, being united with each other, flow together - समन्या यन्त्युप यन्त्याः। समानपूर्वं नद्यःपृणवन्ति।ऋ. 2/35/3. The incessant flow of rivers would help the farmers to irrigate their fields.

In another hymn of Rg.Veda, it is found that the rivers and springs naturally flowing, and also channels which were dug by people are duly paid with respectful salutations. They were prayed to protect the people -

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः।

समुद्रार्थाः याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥ **(Rg.Veda. VII-49-2)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

In this hymn it is observed that any water whether it is from natural resource or man-made resource, it is to be highly respected. Water is that important for our livelihood. How fortunate our ancient people are, since they such an awarness about the importance of water. Every element of nature is perceived with divine out look.

In another instance, in the sloka-

शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः।

शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः॥ **(Rg.Veda. VII-35-8 ,10)**

It is observed that god of rain. the farmer, who is called as Kshetrapati, the rivers, and the water, are equal importance is given to all prayed. It is ti indicate that this is the collective effort of all these that can bring happiness to all of us. This also emphatically brings out the important place of the farmer. He is Kshetrapati, the lord of the field. This brings out the esteem value of the farmer in ancient times.

Various devices of irrigation-source of water : It is said in history, that one of the chief objectives of the village assemblies, is to concentrate well upon the different sources of irrigation. We all know that rainfall is the life source for all the creatures and more so ever for the agriculturists. However, it is not equal and at times it is not sufficient in different seasons at different places. Most of the time, rain water is unequally distributed. Some times it is faulty and irrigular. One can not completly rely upon the rain. So the heads of the assemblies through different methods, tried to supplement with water to the crops. They see that the water is supplied to the soil cultivators according to their share.

Let us begin with the hymn of Rg.Veda, in which the god of water Vishwedeva is,addressed thus-

इष्कृताहावमवतं सुवरत्रं सुषेचनम्। उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम्॥ **(Rg.Veda X-101-6,7)**

For there were dug welld springing from the mountain, which murmuring round about, pour streams of sweerness. Through this one line, there is much conveyed. It brings the importance of digging wells since they store rain water. It also tells us that these deep dug wells have connection with springs of mountain, so

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

that they never get dried. It does not even forget to beg the god the 'the sweetness of water'; the god has to add, when he gives it. No doubt this brief reference is good enough to show how healthy and scientific outlook our ancient people had about irrigation.

Rg.Veda in another instansce brings out the importance of digging wells. The hymn -

परावतं नासत्यानुदेया मुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मवारम्।

क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य॥ ऋग्वेदे 1-116-9 is to show the necessity of digging wells and constructing tanks. The Krityapratiharana Sukta of Atharvaveda also has a hymn यान्ते कृत्यां कुपेऽवदधुः॥ (अथर्ववेदे 5-31-8). People of Vedic age used to pull water with pails prepared of strong straps.

प्रीणीता श्वान् हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम्।

द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमं सत्रकोशं सिञ्चता नृपाणाम्॥ (ऋग्वेदे 10-101-7)

Here it is described that with drone, a cup like vessel (This kind of vessel is still in usein some of the rural areas, as a container by the side of eating leaf with the name 'done', or 'donne', in colloquial Telugu) made of thick leaves of a certain tree, two people sitting on both sides of tanks, pull water for crops. The word drone is seen being used as druna and dronam, in Pavamana suktam of Rg.Veda

द्रुणा सदस्तमश्रुषे।

सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजि॥ (ऋग्वेदे 9-65-1, 9-93-1)

But this word is to refer to long of the plam and coconut trees which serve the purposes of pipes in modern times, for free flow of water, to pump water the crops.

Another hymn of Rg.Veda describes Kupa-a deep well

त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हव ऊतये॥ (ऋग्वेदे 1-105-17)

Apart from digging deep and wide wells, farmers used bucket like vessels made of some thick leaves, tied with strong straps, to pull water from the wells. Both Rg.Veda and Krishna Yajurveda, contain a reference to this -

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवत्रा दधातन निराहावान्कृणोतन

सिञ्चामहा अवटमुद्रिएणं वयम् —— उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम्॥ (ऋग्वेदे 10-101-5, 6)

The famous Rudra suktam in Krishna Yajurveda has references to reservoirs, wells, water pools, lakes and tanks, rains with heavy winds, rivers and riverbanks -

नमः काट्याय च नीप्याय च, नमः सूद्याय च सरस्याय च, नमः कूप्यायचावट्याय च, नमस्तीर्थ्याय कूल्याय च॥ (तैत्तिरीयसंहिता 7-4-13, 14)

The Prithvi suktam in Atharvaveda says that the water flows day and night unobstructed यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रनादं क्षरन्ति॥ (अथर्ववेदे 12-1-9) It also says that the earth, being filled by the rains, gets all auspicious things -

वर्षेण भूमिःपृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनि धामनि (अथर्ववेदे 12-1-52).

Atharaveda prays that "may all the rivers flow well", so that we may obtain good crops and wealth -

सं सं स्रवन्तु सं वाताः सं पतत्रिणः। ये नदीनां संस्रवन्त्युत्सामः (अथर्ववेदे 1-15-1,3,4) in the descriptions of importance of waters Atharvaveda says that the water sprung up in a dried land, got by digging wells brought by pots from the rivers and canals and got through rains may bring happiness to us.

शं न आपो धन्वन्याः शमु सन्त्वनूप्याः। शं न खनित्रिमाः आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः (अथर्ववेदे 1-6-4)

The lakes and huge tanks are filled through the channels of rivers. Rg.Veda and Atharvaveda have a reference to Kulya which means a river and Hrada which means a pond, lake or a tank. Atharvaveda also has a saparate sukta where the rain god is prayed. It is wished that cloud being stimulated by the breezes, making great sounds, give water to the earth, helping it grow all sorts of planets. Crop production needs help of continuous water. There were many sources by which water be stored. But there are certain plats, trees which would help the society in various ways, and which grow just by the showers of rain water. This was noticed by the sages in the anicent times and hence they had highest regards for rain god and always prayed him sincerely making him know his importance for well being of the society.

वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथक् जायन्तां वीरुधो विश्वरूपाः।
स नो वर्ष वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि॥ (अथर्ववेदे 4-15-1-10)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक काल में संगीत

डॉ० विजय कृष्ण, डॉ० रेखा साह
संगीत विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनिताल।

भारतीय संगीत का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है, लेकिन प्रारम्भ में संगीत, कला के रूप में विद्यमान नहीं था। कला का रूप धारण करने से पहले एक लम्बा युग रहा जिसमें प्रकृति की ध्वनियों को लय में बाँधकर संगीत का रूप दिया होगा। लय की पहचान जन्म से ही प्रारम्भ हो जाती है किन्तु सभी प्राकृतिक ध्वनियाँ अपने मौलिक रूप में संगीतोपयोगी नहीं होती। ध्वनियों में उसके सांगीतिक गुण को पहचानकर अलग करना संगीत कला के विकास से पूर्व हो चुका था। अदिवासियों की ध्वनि तथा लय के सामंजस्य की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ इस प्रकार के संगीत का उदाहरण हो सकती हैं। संगीत का कला के रूप में व्यवस्थित स्वरूप वैदिक काल में ही प्राप्त होता है अत: यह माना जा सकता है कि संगीत में कलात्मकता का उद्‌भव एवं विकास वैदिक युग में ही हुआ। यूँ तो संगीत का सन्दर्भ चारों वेद ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में प्राप्त होता है किन्तु संगीत का विशेष सन्दर्भ सामवेद से प्राप्त है, जिसके आधार पर भारतीय संगीत का विकास हुआ। साम संगीत से ही भारतीय संगीत का जन्म माना जाता है एवं गन्धर्व वेद को सामवेद का उपवेद माना गया। भारतीय संगीत के विकास में वैदिक सामगान को विकास का प्रथम युग तथा गन्धर्व उपवेद को विकास का द्वितीय युग कहा जा सकता है।

'ऋग्वेद' में दस मण्डल में 1028 सूक्त हैं। ऋग्वेद, अग्नि, वायु, इन्द्र, वरुण, सोम, विश्वामित्र, वामवेद अत्रेय, भरत वशिष्ट, भारद्वाज आदि देवताओं ऋषियों के प्रशस्ति सूचक मन्त्रों का संकलन है। अष्टम मण्डल 'प्रगाथ' के बयानवे सूत्र गेय हैं, नवें मण्डल में 114 सूक्त हैं, जो सोम देवता के लिए हैं। सोमलता से सोमरस निकालते समय इन सूक्तों का गान होता था। ऋग्वेद में संगीत को मनोविनोद का प्रमुख साधन कहा गया है। आमोद-प्रमोद के लिए संगीत नृत्य एवं उत्सवों का आयोजन होता था। इस युग में स्त्री और पुरुष दोनों ही झांझ, मंजीरे के साथ नृत्य में भाग लेते थे। स्त्रियाँ भी कला में प्रवीण थीं तथा विशेष वस्त्रों में सुसज्जित होकर नृत्य करती थी। 'ऋग्वेद' ही में चमकीले वस्त्र धारण कर प्राची में उदय होने वाली उषा को नर्तकी के समान बताया गया है। सभा में एकत्रित होकर स्त्रियाँ बहुधा ऋक् गान करती थीं (ऋ0 10/71/11)।

सामवेद भारतीय संगीत परम्परा का प्रथम ग्रन्थ है। सामवेद में ऋचाओं के सस्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठ को साम-गान कहा गया है। इस वेद में स्वरोच्चारण, लय प्रयोग एवं विभिन्न वाद्यों का विस्तृत सन्दर्भ प्राप्त होता है। सामवेद के मंत्र यज्ञों में देवताओं की स्तुति करते हुए गाये जाते थे। सामवेद, गान प्रधान है। संगीत को गान्धर्व विद्या के नाम से भी जाना जाता है तथा गान्धर्व विद्या हेतु लिखा गया वेद गान्धर्व विद्या के नाम से भी जाना जाता है तथा गान्धर्व विद्या हेतु लिखा गया वेद गान्धर्व वेद, सामवेद का ही उपवेद कहलाया, सामवेद के गेय मंत्रों को 'सामन' कहा जाता था और उसी के नाम से इस संहिता का नाम सामवेद पड़ा। 'सामवेद-संहिता' का संकलन 'उद्गाता' नामक ऋत्विक के लिए हुआ है। 'उद्गाता' का कार्य है कि वह यज्ञों में आवश्यक मन्त्रों को स्वर सहित उच्च गति से गान करे। उद्गाता शब्द का अर्थ है, उच्च स्वर से अथवा तार-स्वर से गाने वाला व्यक्ति। 'महाभाष्य' में 'सामवेद' की एक सहस्त्र शाखाओं का उल्लेख है- 'सहस्त्रवर्त्मा सामवेद' परन्तु आजकल इसकी तीन शाखाएँ ही प्राप्त हैं।

सामगान के चार प्रकार ग्रामगेय, अरण्यगेय, उहा एवं उह गान को उत्तर गान कहते थे। ग्राम गेय गान, गृहस्थों, गोष्ठियों के लिए निर्धारित था। अरण्य गेय गान, अरण्यवासी ऋषियों के लिए था तथा अरण्य गेय गान के बाद उहा गान गाने की परिपाटी थी। सामगान में प्रेक्ष्व, विनत् कर्षण, अतिक्रम एवं अभिगीत आदि स्वरोच्चारण के निर्देष तथा लिपि संकेत होते थे और उन्हीं के अनुसार सामगान होता था। शतपथ ब्राहमण के 3/9/5 में सामगान के मन्द्र, मध्य एवं तार स्थानों का सन्दर्भ है। स्वामी प्रज्ञानन्द के अनसार सामवेद में वर्णित अनुदात्त, स्वरित एवं उदात्त, वर्तमान के क्रमशः मन्द्र, मध्य एवं तार स्वर माने गये हैं। सामगान में प्रकृति तथा विकृति स्वरों के प्रयोग थे। प्रधान स्वर को प्रकृति और अनुसांगिक स्वरों को विकृति कहते थे। सामगान में कोमल स्वरों का प्रयोग नहीं था एवं कोमल स्वरों की स्थापना बाद में हुई। साम-गान के विकृति स्वर का अर्थ वर्तमान के कोमल स्वरों से नहीं था। मार्गी संगीत में भी कोमल स्वरों के प्रयोग नहीं थे। सामगान के मध्य से ऋचाओं का गान करने के लिए दो ग्रन्थ-छन्द और उत्तरा थे। सामवेद में लयकारी हेतु छन्दों की चर्चा की गई है इसी के आधार पर भरत ने ताल की व्याख्या की है।

वैदिक ज्ञान के अनुसार योगशास्त्र एवं आयुर्वेद शास्त्र में स्वर उत्पत्ति हृदय में उपस्थित नाड़ी में वायु के आघात से होती है। मनुष्य शरीर में नाभी के नीचे 'ब्रह्म ग्रन्थी' नामक स्थान होता है। शरीर में रहने वाली अग्नि 'ब्रह्म ग्रन्थी में रहने वाली वायु को उठा देती है और यह वायु हृदय की नाड़ियों पर आघात करती है। जिससे स्वर की उत्पत्ति होती है। हृदय की ऊर्ध्व नाड़ी में संलग्न तिरछी 22 नाड़ियाँ है। उन पर वायु का आघात होने से 22 ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार कंठ में इनके दुगने प्रमाण की 22 ध्वनियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उत्पन्न होती हैं, और इनके भी दुगुने प्रमाण की 22 ध्वनियाँ सिर में उत्पन्न होती है। इन तीनों ध्वनि समूहों का नाम क्रमशः मन्द्र, मध्य और तार कहलाया इन ध्वनियों को संगीत की भाषा में श्रुति कहा गया और इस प्रकार भारतीय संगीत में 22 श्रुतियाँ स्थापित हुई। संगीत ग्रन्थों में इन 22 श्रुतियों का नामकरण भी किया गया। इन 22 श्रुतियों से सप्त स्वर स्थापित किये गये। पहली चार श्रुतियों से षड़ज स्वर अर्थात पाँचवी, छठी और सातवीं- इन तीनों श्रुतियों से ऋषभ स्वर उत्पन्न होता है। आठवी और नवीं- इन दोनों श्रुतियों से गन्धार स्वर एवं इसके बाद की चार श्रुतियों से मध्यम स्वर की उत्पत्ति होती है। इनके आगे की चार श्रुतियाँ चौदहवीं, पन्द्रहवीं सोलहवीं एवं सत्रहवीं श्रुति पंचम, अठारहवी, उन्नीसवीं और बीसवीं श्रुति का स्वरूप छोड़कर स्वर-स्वरूप ले लेता हैं। इन स्वरों के विशिष्ट रस भाव माने गये हैं। षड़ज और ऋषभ वीर, अद्‌भुत और रौद्र रस प्रधान हैं। धैवत से वीभत्स एवं भयानक रस का प्रतिपादन माना गया है। गान्धार एवं निषाद् करुण रस प्रधान हैं, एवं मध्यम और पंचम हास्य और श्रृंगार रस प्रतिपादन करते हैं

महर्षि नारद का आदि ग्रन्थ 'नारदीयशिक्षा' है, यही सामवेद की शिक्षा है उसमें श्रुति, स्वर, ग्राम, मुर्च्छना का विवरण है। सामवेद सप्त स्वरों का नाम - त्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र एवं अति स्वर है। इनका क्रम अवरोह का है। वर्तमान में संगीत स्वर में ये म ग रे सा नि ध प के समान हैं परन्तु सामगान करते समय उन स्वरों का स्वरस्थान हिन्दुस्तानी पद्धति के काफी थाट अथवा कर्नाटक पद्धति के 'खरहरप्रिया' मेल का ग रे सा नि ध प म के समान है।

षड़ज एवं मध्यम सप्त स्वर समूह के आधार स्वर माने गये। षड़ज को आधार मानकर जो सप्त स्वर समूह उत्पन्न हुआ उसको षड़ज ग्राम एवं मध्यम को आधार मानकर जिस स्वर समूह की उत्पत्ति होती है वह मध्यम ग्राम कहलाया। शास्त्रों में एक ग्राम गन्धार ग्राम भी बताया गया है परन्तु गन्धार ग्राम का प्रयोग देसी अथवा लौकिक संगीत में नही हुआ जिसके कारण वह लुप्त हो गया। षड़ज एवं मध्यम ग्राम में पंचम और धैवत को छोड़कर अन्यय सब स्वर समान हैं। षड़ज ग्राम में पंचम की चार तथा धैवत स्वर की तीन श्रुति बताई गई है, अर्थात् षड़ज ग्राम का पंचम स्वर चौदह, पन्द्रह, सोहल, सत्रह श्रुतियों से उत्पन्न होता है, और धैवत अठारह, उन्नीस, बीस श्रुतियों से उत्पन्न होता हैं इसी प्रकार मध्यम ग्राम में पंचम की तीन श्रुति तथा धैवत की चार श्रुति मानी गई हैं। अथात् पंचम, चौइह, पन्द्रह, सोलह इन तीन श्रुतियों से उत्पन्न होता है। वर्तमान रागदारी संगीत में भी षड़ज ग्राम के आधार पर ही रागों का प्रयोग करने का प्रचलन है, परन्तु कुछ राग मध्यम को आधार स्वर मानकर प्रयोग करने पर अधिक रंजकता प्रदान करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद काल में संगीत के तीनों अंग गीत, वाद्य एवं नृत्य का प्रचलन था। इन तीनों कलाओं को दैवी शिल्पों की संज्ञा दी गई थी, तथा इनकी सहायता से व्यक्ति का व्यक्तित्व सुसंस्कृत हो जाताहै। यही शिल्प देवताओं को प्रसन्न करने के लिए साधन भी बताये गये हैं। ऋग्वेद में गीत के लिए गीर, गाथा, गातु, गायत्र, गीति तथा साम शब्दों का प्रयोग किया गया हैं। ऋग्वेद की सस्वर ऋचाए स्त्रोत कहलाई। स्त्रोतों का आवृत्ति पूर्वक गायन स्तोम कहलाता हैं वर्तमान में जिस प्रकार गीत की पंक्ति का गायन अनेक बार विभिन्न स्वरों में किया जाता है इसी प्रकार की गायन शैली को वैदिक संगीत में स्तोम कहा गया है। ऋचाओं के विशिष्ट क्रम और आवृत्ति से स्तोम का निर्माण किया गया। स्तोम तीन ऋचाओं का समूह था। वैदिक स्तोम गान के आधार पर ही सम्भवत: प्रबन्ध गान विकसित हुआ। यजुर्वेद में विशिष्ट गान काल एवं स्तोम संख्या के आधार पर रथन्तर, वैराज, वैखानस, वामदेव्य, शाक्वर रैवत तथा अभीवर्त सामों का उल्लेख प्राप्त होता है। भिन्न ऋतुओं के लिए विशिष्ट साम निर्धारित थे; जो निम्न उदाहरण से स्पष्ट है।

1. रथन्तरं साम त्रिवृत्स्तोमो बसन्तऋतु:।
2. वृहत्साम पंचदशस्स्तोमो ग्रीष्मऋतु:।
3. वैरूपं साम सप्तदशस्तोमो वर्षाऋतु:
4. शाक्वररैवते सामनी हेमन्तऋतु:।

वृहत्साम का उपयोग सोम यज्ञ में विशेष रूप से होता था जिसके आविष्कर्ता भरद्वाज को माना गया। रथन्तर साम के अविष्कर्ता के रूप मे वशिष्ट का नाम उल्लिखित है। साम-गान विशिष्ट छन्दों के साथ किया जाता था, और उन्हीं छन्दों के नाम से साम प्रसिद्ध भी हुए। साम गायन विभिन्न धार्मिक कार्यो एवं लौकिक प्रसंगो पर किया जाता था। भारून्द्र साम का गान पितृ कर्म के लिए किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में यम सूक्त में अन्त्येष्टि के समय साम गायन का स्पष्ट विधान है। वैदिक मान्यता के अनुसार अन्त्येष्ठि के समय किया गया साम-गान मृत व्यक्ति को स्वर्ग यात्रा में सुलभता प्रदान करता है।

धार्मिक अनुष्ठान में ब्राह्मण गायकों द्वारा गायन दिन में तथा क्षत्रियों का गायन रात्रि मे हुआ करता था। वैदिक मान्यता के अनुसार इस प्रकार ब्राह्मण एवं क्षत्रियों के गायन से अश्वमेध करने वाले राजा को ब्रह्म तथा छत्र दोनों की सम्पति प्राप्त होती है। ब्राह्मणों द्वारा राजा का दान, यजन तथा उपलब्धि के सम्बन्ध में गायन होता था तथा क्षत्रियों द्वारा राजा के जय तथा युद्ध पराक्रम का गान होता था। अश्वमेध के अन्तर्गत सामगान के साथ गाथा गान भी प्रचलित था। साम-गायन विशुद्ध रूप से देवताओं की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
स्तुति पर आधारित था जिसमें मन्त्रों का गायन होता था, यही साम गान 'मार्ग' संगीत कहलाया। गाथा-गायन लौकिक संगीत के अन्तर्गत रक्खा गया जो कि 'देशी' संगीत कहलाया।

यजुर्वेद में वर्णन के अनुसार सोम यज्ञ मे साम गायकों का स्थान सर्वप्रधान था। सोम यज्ञों की प्रत्येक क्रिया संगीत से समन्वित एवं संचालित होती थी। महत्वपूर्ण प्रसंगों पर उद्गाता स्वयं गान करता था तथा अन्य प्रसंगो पर गायन का दायित्व प्रस्तोता, प्रतिहर्ता तथा उपगाता नामक सहयोगियों को सौंप दिया जाता था। यज्ञों में उद्गाता एवं सहयोगी गायन में कहीं-कहीं भिन्नता भी पाई जाती थी। कुछ प्रसंगो पर केवल उद्गाता द्वारा गायन होता था, कुछ अवसरों पर केवल प्रस्तोता द्वारा गान करने का विधान था और कहीं-कहीं साम के सामूहिक गायन का विधान भी था। इस प्रकार के समूह गान में साम के विभिन्न भाग गायकों द्वारा गाये जाते थे और अन्त में उद्गाता के स्वर में स्वर मिलाकर समूह गान किया जाता था। इस सन्दर्भ में साम के पाँच खण्ड प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव तथा निधन, विभिन्न गायकों करने का सन्दर्भ प्राप्त होता हैं इन गायकों के अतिरिक्त अन्य गायकों की भी आवश्यकता रहती थी, जिनका कार्य केवल स्वर भरने का ही रहता था। उत्तराखण्ड के लोक गायन में भी मुख्य गायक के अतिरिक्त स्वर संगीत के गायक विद्यमान रहते हैं।

नृत्य

ऋग्वेद में नृत्य कला का भी उल्लेख प्राप्त होता है। नृत्य का कार्यक्रम खुले प्रांगण में एकत्रित जनता के सम्मुख होता है जिसमें स्त्री एवं पुरुष दोनों भाग लेते थे। ऋग्वेद में ही विभिन्न लय गतियों से युक्त लोक नृत्य का उल्लेख भी पाया जाता है। महाव्रत नामक सोम याग मे दासियों का समूह नृत्य आयोजित होता था, जिसमें कम से कम तीन और अधिक से अधिक छः नर्तकियाँ होती थी। प्रत्येक नर्तकी सिर पर जल से भरी हुई गागरी धारण कर नृत्य करती थी। नृत्य, गीत के आधार पर होता था। विवाह के अवसर पर चार से आठ सुहागनियों को सुरा पिलाकर नृत्य के लिए प्रेरित किया जाता था। नृत्य के साथ वीणा वादन एवं हाथ से ताल देने वाले व्यक्ति रहते थे। हाथ से ताल देने की प्रथा आज भी कर्नाटक संगीत में विद्यमान है। वैदिक काल में इस प्रकार के नृत्य-संगीम को लौकिक संगीत की श्रेणी में रक्खा जाता था।

वाद्य

वैदिक काल में अवनद्य, तुतु और सुषिर वाद्यों को 'नाष्ठी' कहा जाता था। अवनद्य वाद्यों में दुंदुभी, वनस्पति, आदम्बर, भूमि, दुंदुभी, आघाती, तंत्र वाद्यों में कान्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीणा, वारण्य वीणा, कर्करी वीणा एवं सुषिर वाद्यों में तुणव, आदि और वाकुर वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। वैदिक काल में चर्माच्छादित वाद्यों का विशेष महत्व था। दुंदुभी उस समय अत्यन्त महत्वपूर्ण वाद्य था। दुंदुभी में हिरण की चर्म का आच्छादन रहता था और भूमि दुंदुभी हेतु भूमि में वर्ताकार गड्ढा बनाकर उसे चमड़े से मढ़ा जाता था। विपत्ति की आशंका तथा उत्सवों की घोषणा के लिए दुंदुभी का प्रयोग होता था, ऋग्वेद के 6/47/29 ,6/47/30 एवं 6/47/31 मन्त्रों में शत्रु नाश हेतु दुंदुंभी का उल्लेख है। पुरुष वर्ग द्वारा भूमि दुंदुभी तथा स्त्रियों द्वारा काण्डवीणा बजाई जाती थी। अथर्ववेद (12/8/15) में वनस्पति वाद्य का उल्लेख है। यजुर्वेद के कास्क संहिता (3/4/5) में भी वनस्पति वाद्य का उल्लेख है, वनस्पति वाद्य वृक्ष की जड़ को खोदकर उस पर पशु चर्म मढ़ा करते थें। वैदिक काल में चमड़े से मढ़े हुए तन्तु वाद्य भी होते थे। गोधा नामक सर्प से मढ़े हुए तन्तु वाद्य को गोधा वीणा के नाम से जाना जाता था। वर्तमान में सारँगी एवं सरोद इस प्रकार के वाद्य की श्रेणी में आते है। साम-गान के साथ लय एवं स्वर दोनों ही प्रकार के वाद्यों की संगति होती थी। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही झांझ, मंजीरे जिसको कि आघाती कहा जाता था के साथ नृत्य में भाग लेते थे। ऋग्वेद में नृत्य कुशल स्त्रियों का भी वर्णन मिलता है। यजु: संहिता में वीणा के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। तन्तु वाद्यों को वीणा के नाम से जाना जाता था एवं इसका विशाल स्वरूप 'वाण' कहलाया, इसके अन्तर्गत काण्ड वीणा पिच्छौला, स्तम्बल वीणा, तालुक वीणा, गोधावीणा आदि आते थे। वीणा को साक्षात् श्री का स्वरूप माना गया है। अश्वमेध आदि यज्ञों में मनोरंजन हेतु वीणा वादन किया जाताथा। वाण, औदुम्बर काण्ठ से निर्मित होता था। वीणा दण्ड के अधोभाग में दस छेद बनाये जाते थे और मौन्जा के दस तन्तु पिरौये जाते थे। इस प्रकार सत तंत्रीय वाद्य 'वीणा' का निर्माण होता था। वाण वादक उच्चासन पर विराजमान होता था। वीणा वादन तथा नृत्य के साथ हाथ से ताल देने वाले विशेष व्यक्ति नियुक्त रहते थे। जिनको गणक कहा जाता था।

उपसंहार

वैदिक काल के ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, और सामवेद सभी में संगीत का सन्दर्भ प्राप्त होता है परन्तु संगीत का विशेष सन्दर्भ सामवेद में ही प्राप्त होता हैं। सामवेद को भारतीय संगीत परम्परा का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। सामवेद के आधार पर ही भरत ने नाट्यशास्त्र की रचना की जिसमें भरत द्वारा संगीत विषय की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की गई। वैदिक काल में संगीत की तीनों विधाएँ गायन, वादन, नृत्य कला रूप में विद्यमान थीं। महिलाओं द्वारा भी इन तीनों कलाओं में भाग लिया जाता था। वैदिक ज्ञान के द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाईस ध्वनियों का परिचय कराया गया जो कि वर्तमान की बाईस श्रुतियाँ कहलाई। वैदिक काल में स्वर सप्तक स्थापित हो चुके थें इन्हीं सप्त स्वरों का बाद में सा रे ग म प ध नि नामकरण किया गया। वर्तमान में तीन सप्तक मन्द्र, मध्य एवं तार का भी सामवेद में लयकारी के सन्दर्भ में छन्दों की चर्चा की गई जिसके आधार पर भरत ने तालशास्त्र की व्याख्या की। वैदिक काल में अवनद्य वाद्य, तंतु, एवं सुषिर वाद्य प्रचलन में थे परन्तु अवनद्य वाद्यों की विशेष भूमिका थी। सामवेद से प्राप्त संगीत के विभिन्न सन्दर्भों से आचार्यो द्वारा संगीत की व्याख्या एवं विवेचन की गई तथा इसी के आधार पर भारतीय संगीत का विकास हुआ।

पाद-टिप्पणियाँ

1. संगीत शास्त्र-
   के० वासुदेव शास्त्री-1958, प्रकाषन शाखा, सूचना विभाग उ०प्र०।
2. भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन-
   अरुण कुमार सेन- 1973, मध्यप्रदेश हिन्दी अकादमी भोपाल।
3. भारतीय संगीत की प्राचीन परम्परा-
   वासुदेवषरण अग्रवाल- 1978, संगीत कार्यालय हाथरस।
4. प्रागैतिहासिक संगीत में कलात्मकता का उद्‌भव और विकास-
   रामप्रकाश सक्सेना-1978, संगीत कार्यालय हाथरस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"लोक प्रशासन का उद्भावक वेद"

डा० शुचि श्रीवास्तव
प्रवक्ता (संस्कृत विभाग)
तिलकधारी महाविद्यालय, जौनपुर, उ०प्र०

प्रशासन का अर्थ है व्यवस्था करना। यह व्यवस्था परिवार से लेकर विश्व स्तर तक व्याप्त है। यदि प्रशासन का अभाव हो जाये तो जीवन संकट में पड़ जाता है। पारिवारिक स्तर पर गृहस्वामी, ग्राम स्तर पर ग्राम-प्रमुख, जिला स्तर पर जिलाधिकारी, राज्य स्तर पर मुख्यमंत्री, देश स्तर पर प्रधानमंत्री तथा प्राकृतिक स्तर पर देवता विश्व-व्यवस्था के नियामक होते हैं।

प्रशासन एक व्यापक प्रक्रिया है जो सभी सामूहिक कार्यों के बारे में चाहे वे सार्वजनिक हों अथवा व्यक्तिगत, नागरिक हों अथवा सैनिक, बड़े कार्य हों अथवा छोटे सभी के सम्बन्ध में लागू होता है। यह एक सहयोगी कार्य है जो सुनिश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है। किसी उद्देश्य के लिए किये जाने वाले सभी प्रकार के प्रयत्नोंकी तुलना में प्रशासन आधुनिक युग की है विशेषता नहीं है, अपितु इसकी झलक सभ्यता के विकास के आरम्भ में ही भली-भाँति दिखायी देने लगी थी। आदिम काल के गुहा-स्वामी तक के लिए यह महत्व की वस्तु थी। मिस्त्र देश के पिरामिडों का निर्माण आश्चर्यजनक प्रशासकीय सफलता थी और यही बात सिन्धु घाटी की सभ्यता के बारे में कही जा सकती है।

परन्तु यहाँ पर हम उस ब्रह्माण्ड या विश्व प्रशासन अथवा प्राकृतिक प्रशासन की बात कर रहें हैं जिसके द्रष्टा, रयियता हमारे ऋषि थे। उन्होंने ऐसे मन्त्रों से हमें अवगत कराया जिसके अनुशीलन से प्राकृतिक प्रशासन, विश्व प्रशासन, राष्ट्र प्रशासन तथा ग्राम प्रशासन की जानकारी प्राप्त होती है।

लोक प्रशासन का सम्बन्ध उन सभी कार्यों से है जिनका प्रयोजन सार्वजनिक नीति अथवा उद्देश्य को जनहित के सन्दर्भ में पूरा करना अथवा उसे क्रियान्वित करना होता है। कहा जाता है कि लोक प्रशासन एक क्रिया भी है साथ ही एक पाठ्य-विषय भी। एक क्रिया के रूप में प्रशासन काफी प्राचीन है परन्तु पाठ्य विषय के रूप में इसका उद्भव वर्ष 1887 में वुडरो-विल्सन रचित लेख 'A Study of Administration' से माना जाता है।

परन्तु लोक प्रशासन के बीज हमें वेद में देखने को मिलते हैं, जहाँ लोक प्रशासन अपने वृहद् रूप में उपस्थिल हैं। वेदों में ब्रह्माण्ड प्रशासन का वर्णन मिलता है जिसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्देश्य विश्व कल्याण है ठीक उसी प्रकार जैसे लोक प्रशासन का उद्देश्य जनकल्याण है।

वेद समस्त विषयों के आदि स्त्रोत हैं। अपने मूल रूप में अविभक्त तथा मिश्रित वेदमन्त्र अनेक ऋषि-महर्षियों द्वारा समय-समय पर संकलित तथा सम्पादित होकर वर्तमान संहिता के रूप में वर्गीकृत तथा व्यवस्थित हुए। वेद चार हैं। प्रत्येक वेद की अपनी अलग-अलग संहितायें हैं। प्राचीन ग्रंथों में एक वेद की अनेक संहिताओं का उल्लेख प्राप्त हुआ है, किन्तु उनमें से अब कुछ ही उपलब्ध हैं। सम्प्रति ऋग्वेद की शाकल शाखा, यजुर्वेद की तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ, माध्यन्दिन और काण्व तथा सामवेद की कौथुम, जैमिनीय और राणायणीय शाखा उपलब्ध हैं।

संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् ये चारों भाग वेदों के ही अंग माने जाते हैं। इसलिए अनेक मन्त्रों में ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् को भी वेद ही कहा गया है। संहिता मन्त्रों का वह भाग है जिसमें वेदस्तुति वर्णित है। ब्राह्मण ग्रंथों में मंत्रों के विधि भाग की व्याख्या है। आरण्यक ग्रन्थों में वीतराग गृहस्थों के कर्मविधान प्रतिपादित हैं। उपनिषदों में मन्त्रों की दार्शनिक व्याख्या की गयी हैं

समस्त भारतीय वाङ्मय में यहाँ तक कि शेष तीनों मंत्र संहिताओं की अपेक्षा ऋग्वेद संहिता का अनेक दृष्टियों से महत्व है। उसमें इतिहास, भूगोल, राजनीति, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और सम्पूर्ण कलाओं तथा विद्याओं का उल्लेख देखने को मिलता है। ऋग्वेद का प्रधान विषय किसी दिव्य शक्ति की स्तुति है, किन्तु उनका अर्थ प्रतीकात्मक है। वे सृष्टि-विषयक गूढ़तम रहस्यों की ओर संकेत करते हैं। ऋग्वेद इस प्रकार का विश्व-कोश है जिसमें भारतीय जनजीवन से सम्बद्ध प्रत्येक विषय का उद्गम देखने को मिलता है। अथर्ववेद में लौकिक जीवन से संबंधित सभी बातों का उल्लेख है।

इस प्रकार वेद सभी विषयों का उद्गम केन्द्र है। लोक प्रशासन के पाठ्यक्रम के अंतर्गत जिन विषयों का अध्ययन किया जाता है, उनमें से अधिकांश का ज्ञान वेदों के द्वारा किसी रूप में होता है। लोक प्रशासन विषय के अन्तर्गत संगठन सम्बन्धी सिद्धान्त के अन्तर्गत कार्य विभाजन, विभागीकरण, पदसोपानीकरण, पर्यवेक्षण, नेतृत्व, निरीक्षण, अभिप्रेरणा, समन्वय, संचार, आदि का अध्ययन किया जाता है। इन तत्वों का उल्लेख ऋग्वेद में भी प्राप्त होता है।

1. कार्य विभाजन अथवा विभागीकरण

ऋग्वेद के प्रत्येक सूक्त में किसी देवता की स्तुति वर्णित है। इन स्तुति मंत्रों से सृष्टि विषयक प्रबन्ध की जानकारी प्राप्त होती है। प्रत्येक देवता किसी विशेष विभाग का प्रतिनिधि प्रतीत होता है। इन्द्र सैन्य-विभाग का प्रतिनिधि है।[1] अग्नि ऊर्जा विभाग का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरुण समन्वयकर्त्ता की भूमिका निभाता है। वह विश्व का नियामक और शासक हैं सोम के वनस्पति विभाग का प्रतिनिधि, पूषन् को पशु-विभाग का और विष्णु को विश्व के संरक्षक और पालनकर्ता के रूप में माना जाता है, जो प्रधानमंत्री के सदृश प्रतीत होता है।[2] इस प्रकार देवों के मध्य कार्यविभाजन, विभागीकरण तथा पदसोपानीकरण को देखा जा सकता है।

2. नेतृत्व

नेतृत्व सम्बन्धी विचारधारा का उल्लेख भी ऋग्वेद में प्राप्त होता है। वरुण के नेतृत्वकर्ता अभिहित किया गया है- ''कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरूणं करामहे।।''[1]

3. नीति व नियम

लोक प्रशासन में निर्णय, नीति तथा नियमों के निर्माण का अध्ययन किया जाता है। ऋग्वेद के अनुशीलन से यह विदित होता है कि वरुण प्रमुख नीति निर्माता है। वरुण सूक्त में कहा गया है- ''हे वरुण देव्! जिस प्रकार संसार में प्रजाजन कभी प्रमाद करते हैं, उसी प्रकार हम भी आपके नियमों का जो कुछ भी प्रतिदिन प्रमाद से उल्लंघन करते हैं, हमारे प्रमादों का परिमार्जन करके उन नियमों को पूर्ण बनाइये[2] इसी प्रकार अन्यत्र कहा गया-'' अपने स्वीकृत नियमों का पालन करने वाले श्रेष्ठ कर्मो को करने वाले वरुण देवता प्रजा के साम्राज्य की सिद्धि के लिए दिव्य प्रजाओं में आकर अधिष्ठित हुये हैं।''[3]

लोक प्रशासन के पाठ्यक्रम के अंतर्गत केन्द्रीय प्रशासन में राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति, निर्वाचन, उनके कर्त्तव्य, लोकसभा, राज्यसभा का गठन, प्रशासन तथा जनता के मध्य संबंध संविधान इत्यादि का अध्ययन करते हैं, जिसकी झलक हमें वेद में भी देखने को मिलती है।

4. राजा का निर्वाचन व उसके कर्त्तव्य

राज्य का प्रमुख राजा अथवा राष्ट्रध्यक्ष कहलाता है जो लोककल्याण हेतु विभिन्न प्रशासनिक क्रियायें करता हैं सम्प्रति राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री का निर्वाचन होता है। भारत में यह प्रथा वैदिक काल में भी विद्यमान रही होगी, क्योंकि ऋग्वेद और अथर्ववेद के कई सूक्तों में प्रजा के द्वारा राजा के निर्वाचन का उल्लेख है। अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि राजा के निर्वाचन के लिए सभी प्रतिनिधि एकत्र होते थे और वे सर्वसम्मति से राजा का निर्वाचन करते थे। राजा की नियुक्ति का कार्य समिति करती थी। वही राजा को स्थायित्व प्रदान करती थी।[1] राजा की इस नियुक्ति के साथ राजा से यह आशा की जाती थी कि वह लोकप्रिय होकर रहे जिससे जनता उसको पसन्द करे। वह ऐसा कोई न काम करे जिससे वह पदच्युत हो जाये।[2]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेद में उल्लिखित है कि प्रजा को प्रसन्न करने के कारण राजन्य या राजा हुआ-**''सोऽरज्यत, ततो राजन्योऽजायत।''**[3] राजा का प्रमुख कर्त्तव्य है- प्रजा का पालन, रक्षण और संवर्धन। प्रजापालन राजा का कर्त्तव्य है।[4] यजुर्वेद में उद्धृत है कि राजा का अभिषेक प्रजा के कल्याण और उनके विकास के लिए होता है। क्षेम और पोष शब्दों के द्वारा प्रजा की कुशलता और उनके भौतिक सुख-साधनों में वृद्धि का निर्देश दिया गया है।[5]

5. प्रशासन और जनता के मध्य सम्बन्ध

कुशल प्रशासन के लिए अति आवश्यक है कि प्रशासन को जनता का सहयोग मिले इसीलिए विकास प्रशासन में नागरिक सहभागिता पर बल दिया गया है। वेदों में भी राज और प्रजा के मध्य सम्बन्धों को अभिव्यक्त किया गया है। यजुर्वेद में उल्लिखित है कि राजा और प्रजा का अङ्ग अङ्गी सम्बन्ध है। प्रजा अङ्ग है और राजा शरीर। अत: राजा कहता है - 'प्रजा मेरे अङ्ग हैं।[1]' प्रजा राजा को पूर्ण सहयोग दे और राजा प्रजा को सभी प्रकार से संरक्षण दे।[2]

6. अनुशासन तथा निरीक्षण

संगठन में कार्यरत कार्मिकों के कार्यों के मूल्याङ्कन के लिए निरीक्षण अपरिहार्य है। हेनरी फयोल द्वारा प्रतिपादित संगठन के 14 सिद्धान्तों में निरीक्षण तथा अनुशासन भी परिगणित हैं। ऋग्वेद में उद्धृत है कि अनुशासन और निरीक्षण से ही राजा अधिराज होता है। यदि कठोर अनुशासन नहीं होगा तो प्रजा में अव्यवस्था फैलेगी।[3]

7. प्रशासन का उद्देश्य जनकल्याण

लोक प्रशासन का एकमात्र उद्देश्य जनकल्याण है। प्रजा के हितार्थ समस्त सार्वजनिक क्रियायें सम्पन्न की जाती हैं। वेदों के कई मंत्रों में राजा का ध्यान प्रजा की उन्नति और विकास के कार्यों की ओर आकृष्ट किया गया है। यजुर्वेद में कहा गया है कि प्रजा को दृढ़ और पुष्ट करो। उनकी आर्थिक स्थिति उन्नत करो। प्रजा के विकास कार्यों को करों।4

8. जनप्रतिनिधि संस्थायें- सभा और समिति

सभा और समिति अत्यन्त प्राचीन संस्थायें थीं। इन दोनों की उत्पत्ति प्रजापति से कही गयी हैं। ये दोनों प्रजापति की पुत्रियाँ हैं।5 सभा आज की लोकसभा के समकक्ष मानी जा सकती है। इसमें सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व होता था। सभा और समिति के संगठन में अन्तर होता था। सभा में वृद्ध, अनुभवी, ज्ञानी और प्रतिष्ठित व्यक्तियों को ही सदस्यता प्राप्त होती थी जबकि समिति में इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं था। इस प्रकार समिति लोकसभा के सदृश तथा सभा राज्यसभा के सदृश प्रतीत होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समिति के सदस्य को सामित्य कहा गया। अथर्ववेद के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि पहले परिवार, फिर ग्राम, फिर ग्रामसभा आदि तदनन्तर सभा और उसके पश्चात् समिति का अस्तित्व होता था। समिति का कार्यक्षेत्र पूरा राष्ट्र होता था। समिति से बड़ी संस्था 'आमन्त्रण' हुई। यह संस्था समिति के मन्त्रिमण्डल के रूप में विकसित हुई और यह राष्ट्र की सर्वोत्तम संस्था हुई।

ऋग्वेद के अंतिम सूक्त में समिति और मंत्र (मंत्रणा) का उल्लेख है। इससे ज्ञात होता है कि समिति का कार्य विशिष्ट मंत्रणा और विधि-निर्माण था।[1] समिति कार्यपालिका और न्यायपालिका का कार्य करती थी। लोककल्याण के लिए राजा का यह कर्त्तव्य होता था कि वह समिति का गठन करे। ऋग्वेद में समिति के कार्य को निर्दिष्ट किया गया है- राष्ट्र की सुरक्षा-व्यवस्था और शत्रुनाशन, राष्ट्रीय आय की व्यवस्था, जनकल्याण और जनता का योगक्षेम तथा विविध शिल्पों की उन्नति।[2]

अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि सभा और समिति दोनों के लिए संसद शब्द का प्रयोग होता था। सभा और समिति के प्रसंग में संसद शब्द का उल्लेख है- अस्थाः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु।[3] इससे ज्ञात होता है कि सभा और समिति का कभी सामूहिक अधिवेशन हुआ करता था।

9. सचिव

विभिन्न विभागों में प्रशासन का प्रमुख सचिव कहलाता हैं ऐतरेय ब्राह्मण में 'सचिव' शब्द का प्रयोग मिलता है। मरुत् देवों को इन्द्र का सचिव (मित्र) कहा गया है।1 चूँकि मरुत् इन्द्र के कार्य (वर्षण) में सहायता करते हैं ठीक उसी प्रकार जैसे आजकल सचिव मंत्री के प्रशासनिक कार्यों में सहायता करते हैं।

10. संविधान

वेदों में संविधान शब्द का प्रयोग नहीं है। ऋग्वेद के एक मंत्र में 'विधान' शब्द का उल्लेख है।[2] अथर्ववेद के एक मंत्र से संविधान की रचना पर प्रकाश पड़ता है। मानवीय विधि-विधान का आदि निर्माता वरुण देवता है।[3] वरुण देवता प्रथम न्यायाधीश था। उसने ही न्यायपालिका का प्रथम संविधान प्रस्तुत किया। अतः उसे धर्मपति नाम से सम्बोधित किया जाता है। वेदों में वरुण का बहुत गुणगान है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता है- धृतव्रतः- नियमों का कठोरता से पालन करना। वह स्वयं नियमों का पालन करता है और संसार में कहीं भी नियम विरुद्ध कार्य हो रहा है, उसकी सूचना उसको तुरन्त प्राप्त हो जाती है। उसके गुप्तचर सर्वत्र फैले हुये हैं।[4] इससे ज्ञात होता है कि वरुण देवता सम्राट्, न्यायाधीश,विधि-प्रवर्तक और विधि का संचालक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक प्रशासन का अर्थव्यवस्था से घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि राज्य के संचालन हेतु अर्थ अत्यावश्यक है। बिना अर्थ के राज्य संचालित नहीं हो सकता। राज्य यह धन राज्य से कर के रूप में ग्रहण करता है। ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर राजा कोप्रजा से कर (बलि) का अधिकारी बताया गया है। अग्नि ने अपनी शक्ति से प्रजा को करदाता बनाया।[1] करदाताओं को सुख पहुँचाना राजा का कर्त्तव्य है।[2]

इस प्रकार उपर्युक्त अन्वेषण से यह स्पष्ट है कि सम्प्रति लोक प्रशासन विषय के अन्तर्गत जिन तत्वों, विचारधाराओं तथा विषय सामग्रियों का अध्ययन किया जाता है, वे आज से हजारों वर्ष पूर्व वेदों के अन्तर्गत पाठ्य-विषय रूप में उपस्थिल थीं। अतएव 'लोक प्रशासन का उद्भावक वेद है'- यह कहना समीचीन प्रतीत होता है।

पाद टिप्पणियाँ

1. यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते। - ऋग्वेद 2/12/9
2. यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
   य उ त्रि धातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा।। - ऋग्वेद 1/154/4

1. ऋग्वेद 1/25/5
2. यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम्।
   मिनीमसि द्यविद्यवि।। -ऋग्वेद 1/25/1
3. नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्याऽस्वा।
   साम्राज्याय सुक्रतुः।। -ऋग्वेद 1/25/10

1. सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीः,
   ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह।। - अ0 6/88/3
2. विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु,
   मा त्वद् राष्ट्रमधि भ्रंशत्। - अ0 6/87/1
3. अथर्व1 15/8/1
4. यजु1, 7/17
5. क्षेमाय त्वा, पोषाय त्वा। - यजु0 9/22

1. विशो मेऽङ्गानि सर्वतः। - यजु0 20/8
2. प्रजास्त्वाऽनुप्राणन्तु, प्रजास्त्वमनुप्राणिहि। - यजु0 4/25
3. उग्रं चेत्तारम् अधिराजम् अक्रन्। - ऋक् 10/28/9
4. प्रजां पुष्टिं वर्धयमानः। - यजु0 9/25

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5. यभ्सस च मा समितिश्रावतां प्रजापतेर्दुहितरौसंविदाने। अ0 7/14/1

1. समानो मन्त्रः समितिः समानी। - ऋग्0 10/191/3

2. (क) हन्तारं शत्रूणां कृधि। - ऋग् 10/191/3
(ख) योगक्षेमं व आदा। - ऋग् 10/166/1
(ग) विश्वकर्मेण धाम्ना। - ऋग् 10/166/4

3. अ0 5/12/7

1. मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्तु। इमे वै किल मे सचिवाः। इमे माऽकामयन्त। - ऐत0ब्रा0 3/20/1

2. मासां विधानम् अदधा अधि द्यवि।
त्वया विभिन्नं भरति प्रधिं पिता। - ऋग् 10/138/6

3. आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद,
ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि।। - अथर्व0 5/1/2

4. दिवः स्पशः प्र चरन्तीदमस्य
सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम्।। - अथर्व0 4/16/4

1. अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः। - ऋग्0 7/6/5

2. बलिहाराय मृऽतात्। - अथर्व0 11/1/6
बलिहतः कृणोतु 1/1/6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''यज्ञो में ललित कला''

डॉ. अर्चना लाल-सिंह
प्रपाठक - संस्कृत विभाग प्रमुख
सीताबाई कला महाविद्यालय,
अकोला (महाराष्ट्र)

वैदिक संस्कृति धर्म प्रधान है। यज्ञविधान के बिना वैदिक धर्म की कल्पना भी नहीं कर सकते। वेदास्तावद्यकर्मप्रवृत्ता यज्ञा प्रोक्तास्तेषु कालाश्रयेण''। वैदिक युग में यज्ञ कर्म के आधार पर ही काल निश्चित किया जाता था। ''यज्ञो वै संवत्सरः अर्थात्- यज्ञ ही संवत्सर है। वैदिक साहित्य में ही अनेक ललित कलाएं पल्लवित होती हैं। ललित कला में काव्य, संगीत और चित्रकला का समावेश होता है। यज्ञ में कलाओं के होने के कारण मनुष्य के मनोरंजन का प्रबलतम साधन है, अतः यज्ञ विधान में ही काव्य, संगीत, चित्रण एवं साजसज्जा का पूर्ण प्रबंध होता है, फलस्वरूप मानवजाति का अतः करण सदैव प्रफुल्लित रहता है। मनोरंजन का सर्वाधिक साधन संगीत को ही माना जाता है। ''साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशुपुच्छ विषाणहीनः''। प्राचीन मनीषियों ने मानवता के बारे में अपने विचार स्पष्टरूप से अभिव्यक्त किए है। यज्ञों में सामगायन के लिए उद्गाताओं की नियुक्ति की जाती है जो सदैव वीणा के द्वारा सामगायन किया करते हैं। वीणा, मृदंग, स्वर व ताल के साथ बनते हैं सात स्वरों के उदात्त, अनुदात्र और स्वरित भेद से तीनो ग्रामों के साथ श्रुति मूर्च्छना और तीनों को साम मंत्रो के द्वारा प्रकट किया जाता है। जिससे अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती हैं संगीत के आदि प्रचारक वैदिक यात्रिक ही हैं। उनके द्वारा निकाले हुए सात स्वरों के अतिरिक्त आज तक किसी संशोधक, जिज्ञासु विद्वान् ने आठवें स्वर की उत्पत्ति नही की।

कला शब्द की उत्पत्ति कल् धातु से हुई है। जिसका अर्थ है उत्पन्न करना या कुछ नवीन रचना करना। तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि ''दिवत शिल्पम् अवतलम्'' अर्थात् कला का स्वर्ग से अन्य शब्दों में प्रकृति से अवतरण हुआ है। भारतीय कला दर्शनशास्त्र के अनुसार एक ओर भौतिक जीवनकी अनुपम उपलब्धि है तो दूसरी ओर आध्यात्मिक उत्थान का सुंदर माध्यम है। ऐतरेय ऋषि के अनुसार धर्म, अर्थ, काम मोक्ष इन चारों पुरुषार्थो की सिद्धि का साधन है, तो उच्चतम स्तरपर आत्मिक अमृत तत्व अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति भी करा सकती है। पाश्चात्य विद्वान् गोथे के अनुसार - **''कला आत्मा का जादू है''**।
प्लेटो - कला सत्य की अनूकृति है।
मैथिली शरणगुप्तजी के अनुसार - अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति ही कला है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य रामचंद्र शुक्लजी के अनुसार - एक अनुभूति को दूसरे तक पहुंचाना ही कला है।

प्राचीन काल से भारतीय जीवन यज्ञ के द्वारा अध्यात्म से जुड़ा है। ललित कलाओं व कल्पनाशीलता के साथ एकाग्र मन से परमपिता का ध्यान करते हुए जिज्ञासू भक्त भावविभोर हो उठता है। संस्कृत साहित्य में कुल पांच ललित कलाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। वास्तुकला, चित्रकला, मूर्तिकला, काव्यकला और संगीत कला। ललित कलाओं में सौंदर्य व आकर्षण निहित होने के साथ साथ विशिष्ट मानसिक तृप्ति की योजना निहित होती है, यह मानव जाति के सौंदर्यबोध की विकसित अवस्था का बोध कराती है। ललित कलाओं का प्रमुख लक्ष्य अलौकिक आनंद की प्राप्ति कराना है। अत: आनंद का माध्यम जितना सूक्ष्म होगा आनंद का स्वर उतना ही ऊंचा होगा। ललित कलाओं की श्रेणी में जिस कलामें उपकरणों की संख्या अल्पतम होती है। वह सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है।

वैदिक काल में यज्ञों में काव्य, संगीत चित्रण और सजावट का प्रबंध होने के कारण मनुष्य का हृदय सदैव प्रफुल्लित रहता है, यह सर्वविदित है कि मनोरंजन का सर्वाधिक प्रभावी साधन संगीत ही है। यज्ञों में सामगायन के लिए उद्गाताओं की नियुक्ति होती है जों सदैव वीणा के द्वारा सामगायन किया करते थे। वीणा और मृदंग स्वर और ताल के साथ बजते हैं। सप्त स्वरों के उदात्त अनुदात्त और स्वरित भेद से तीन ग्रामों के साथ श्रुति मूर्च्छना और तीनों को साममन्त्रों के द्वारा प्रकट किया जाता है। वैदिक साहित्य और संगीत ग्रंथो के आधार पर यही निश्चित होता है कि संगीत की उत्पत्ति ''प्रणव'' (ओंकार) से हुई है। प्रणव नादात्मक ब्रह्म है। सृष्टि के आदि से पितामह ब्रह्मा के दीर्घ निश्वासरूप से वेदों का ज्ञान प्रणव से प्राप्त हुआ है। वेद परमात्मा के नि:श्वास रूप है इसलिये उसे अपौरुषेय माना जाता है। संगीत के आदि प्रचाक वैदिक यज्ञिक हैं। सामगान के रूप में गाये जाने वाला गान अपौरुषेय है और उसमें प्रयुक्त स्वरों का अपौरुषेयत्व स्वयंसिद्ध है। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि ओ३म् ही ब्रह्म है। ओ३म् से ही साम गायक गान प्रारंभ करते है। ओ३म् के उच्चारण के पश्चात मंत्रो को पढ़ते है। कठोपनिषद में कहा गया है कि ओ३म् यह अक्षर ही तो ब्रह्म और परब्रह्म है।'' इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अक्षर रूप नादब्रह्म ओ३म् का सर्वप्रथम ज्ञान ब्रह्माजी को हुआ। उन्हे ब्रह्म की अनुभूति ओ३म् के रूप में सांगीतिक स्वर के रूप में हुई। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि ओ३म् शब्द और स्वर (साहित्य और संगीत का आदि समन्वित रूप है।) अब हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि भारतीय वैदिक मत संगीत की उत्पत्ति को पंचभूतों से भी प्राचीन मानता है। संगीत के सप्तस्वरों का आदि रूप नाद ब्रह्ममय ओंकार है। यही शब्द भी है और स्वर भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों में स्वरों का विज्ञान भी अपूर्व है। स्वरों के हेर फेर से ऋचाओं के अर्थ में बहुत अंतर पड़ जाता है। "भिक्षां देहि" इस उदाहरण में प्रथम पद में करुणोत्पादक स्वर होते हैं और दूसरे पद में दर्पोत्पादक स्वर होते हैं।

मन्त्रोहीनःस्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तकोन तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रु स्वरतोऽपराधात्॥

अर्थात् जो मंत्रो के स्वरों और वर्णों के उच्चारणों को अशुद्ध करके वेदपाठ करता है वह यजमान का नाश करता है। वेदों के अशुद्ध उच्चारण से यजमान के वध का पाप लगता है। वैदिक शास्त्रज्ञों ने इसी परम्पराप्राप्त पापभय के कारण ही वेदों को ध्यान पूर्वक याद रखा है। अतः जिन वेदों के शुद्ध पाठ करनें पर इतना जोर दिया गया है, वे न तो कभी अशुद्ध ही हो सकते है और न अपभ्रष्ट क्योंकि वेदों की वर्णमाला पूर्ण है। वह न तो कम है न ज्यादा। वैदिक भाषा पांचों वर्ग के पांच वर्णोसे मर्यादित और वैज्ञानिक बना दी गई है। जिन मर्यादित उच्चारणों से वेदभाषा बनी है। उन्हीं उच्चारणों के व्यक्त करने वाले लिपिचिन्हो (अक्षरों) के द्वारा ही वह लिपिबद्ध होती चली आ रही है। शास्त्रज्ञों के पास लिखने की कला आरंभ से ही अस्तित्व में थी। आर्य ब्राह्मणों के पास लिपि कला आदि काल से न होती तो वे इतने बड़े वैदिक साहित्य का विस्तार न कर पाते। वेद कालीन वैज्ञानिक लिपि तो एकमात्र ब्राह्मी लिपि हैं।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन यस्मिन्देवा अधि वि श्वे निषेदुः।
यस्तत्र वेद किमृचा करिष्यति इतद्विदुस्त इमे समासते॥ ऋग्वेद १।१६४।३

अर्थात् ऋचाएँ परम अविनाशी शब्दमय अक्षर में ठहरी हैं जिनमें देवता अर्थात् शब्द के विषय (अर्थ) ठहरें हैं जो उस अक्षरार्थ को नहीं जानता, वह ऋचाओं से क्या लाभ प्राप्त करेगा। वाणी का प्राणी वर्णज्ञान कि बिना अक्षरार्थ के वेद का ज्ञान नहीं हो सकता। वैदिक ज्ञान का स्वरूप यज्ञ में ही समाहित है। वेदों का समस्त ज्ञानभंडार अकेले एक यज्ञ ही में चरितार्थ है। वेद में जो कुछ कहा गया है, वह यज्ञ के ही लिए है वैदिक ज्ञान यज्ञों में ही ओत प्रोत है। ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म, कर्मफल, सृष्टि, प्रलय, वर्ण, आश्रम और स्वाध्याय आदिं ज्ञानयज्ञ से संबंध रखते हैं।

पुरुषों वै या पुरुषस्तेन यज्ञो यदेनं पुरुषस्तनुते
एषवै तायमानो यावानेव पुरुषस्तावानविधीयते तस्मात् पुरुषो यज्ञः।

अर्थात पुरुष ही या है क्योंकि वह यज्ञ को करता है। वह उतना ही सत्कर्म करता हैं जितना वह स्वयं होता है। इसीलिए पुरुष ही यज्ञ है।

यज्ञों में ललित कला में जिसे इण्डस्ट्री कहा जाता है उसे वैदिक युग में शिल्पशास्त्र अथवा कला ज्ञान कहते थे। इसके मर्मज्ञाता विश्वकर्मा यज्ञ शिल्पी कहलाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। या मण्डप, कुण्ड, यज्ञपात्र, शस्त्रास्त्र, शकट और रथ आदि जितने कारीगिरी से सम्बंध रखनेवाले याज्ञिक पदार्थ है, सबका समावेश उक्तशास्त्र में किया जा सकता है। यज्ञपात्र मिटट्री, काष्ठ, पत्थर, बास्य (लकड़ी) तांबा, पीतल, सुवर्ण और चांदी आदि के होते थें। यज्ञों में अनेक प्रकार के अन्नों और औषधियों की आवश्यकता होती थी अत: उनके उत्पन्न करने में जिन औजारों की आवश्यकता होती थी वे भी बनाए जाते थे। हल इत्यादि जोतने के लिए, चक्र इत्यादि पानी निकालने के लिए और जमीन खोदने काटने, पीटने पीसने, कूटने आदि के सभी यंत्र बनाए जाते थे। इसी तरह यज्ञरक्षा के लिए बाणों से लदी हुई गाड़ियाँ और रथ भी होते थे। उनकी निर्मिति के सभी साधन उपलब्ध थे। पंच महायज्ञों के स्तुवा प्रणेता से लेकर अश्वमेध यज्ञ के युद्धकालीन उपकरणों तक सभी कारीगरी के पदार्थ बनाये जाते थे। वीणा, मृदङ्ग आदि संगीत के शंख घंटा आदि उत्सव के और रणभेंरी आदि युद्धों के वाद्य भी बनाए जाते थे। एक चक्रवर्ती राजा से लेकर सामान्य कृषक तक के आवश्यक यंत्र और शत्रास्त्र तैयार होते थे। वैदिक युग में कारीगरी का बहुत मान था। यजुर्वेद में कुलालेभ्य: कर्मारेभ्यश्च वो नम: कुम्हार और बढई का सामाज में बहुत सम्मान होता था। शिल्पियों और रथकारों को यज्ञ में सम्मिलित होने का आदेश था इन्हें ब्राह्मण तुल्य समझा जाता था। यज्ञ में कला कौशल की महिमा महान् है।

ललित कला का दूसरा मनमोहक विषय काव्य है। वेद स्वयं काव्यरूप हैं। वेदों से अच्छा काव्य आजतक संसार में अन्यत्र नहीं प्राप्त होता। वेदों के भाव बहुत गूढ होते हैं। समग्र वैदिक साहित्य में दिव्य गुणयुक्त देवताओं के स्तोत्रों में उच्च कोटि का काव्य-सौंदर्य प्राप्त होता है। साहित्यिक गुण रस छन्द व अलंकारों के अलावा उच्च कोटि की आध्यात्मिक भावना उनमें छिपी हुई है। अग्नि, इन्द्र, पृथ्वी, सवितृ, उषस् इत्यादि अनेक सूक्त है जिनमें ऋषि जनों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की हैं। जब पाश्चात्य देशों में छायावाद, रहस्यवाद और भाववाद की कविता का प्रचार हुआ है तभी से वेदों की काव्यछटा पर विशेष प्रकाश पड़ा है। वेदों की सी छायामयी और भावमयी कविता, उनके व्यवस्थित और मुक्त छंद व उनके जैसे मनुष्य समाज के हर आवश्यक अंग पर नवरसपूर्ण अलंकार संसार में अन्यत्र प्राप्त नहीं होते। वीणा के साथ ताल, स्वर और अनेक प्रकार की तानों के साथ गाई जानेवाली इतनी उत्कृष्ट कविता के श्रवण सुख का आनंद बिना सुने कैसे बयान किया जा सकता है। ऐसा उत्कृष्ट काव्य सुनकर व समझकर भी यदि किसी का मनोरंजन न हो तो हठात् अंत:करण से यही उद्‌गार प्रस्फुटित होते हैं कि "अरसिकेषु कवित्व-निवदेनं मा लिख, मा लिख, मा लिख।"

ललित कला की तीसरी महान् वस्तु कला हैं। आर्य लोगों के मकान तो अत्यंत सादे, मिटट्री और फूस के ही होते थे पर प्रत्येक गृहस्थ यज्ञ मण्डप को वे बहुत मजबूत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
और सुंदर बनवाते थे। सामान्यतः यज्ञशालाए तो फूस की ही होती थीं, पर जहां हमेंशा यज्ञ हुआ करते थे ऐसी यज्ञशालाएं प्रत्येक ग्राम में ईट की पुख्ता बनती थी। आजकल शिवालय को भी गांव वाले मण्डप ही कहते हैं या मण्डप वास्तव में यज्ञ मण्डप ही होता है। इसमें कुल आठ दरवाजे होते हैं पर सात बन्द कर दिये जाते हैं और एक निकालने के लिए रखा जाता है। जहाँ शिवजी की मूर्ति स्थापित होती है, वही हवनकुण्ड का स्थान निश्चित किया जाता है।

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः॥ (यजु. 23/62)

यह अर्थात्- यह यज्ञ ही भुवन का मध्य है और यही यज्ञवेदी ही पृथिवी का अंत है। यज्ञ की व्याख्या करते हुए विद्वान् लोग कहते हैं कि या कर्म की प्रवृत्ति और वासनाओं की निवृत्ति की तुला (तराजू) होती हैं यज्ञ के द्वारा जीव मानवी जीवन की प्रत्येक क्रिया को अत्यंत कल्याणकारी व पवित्र बनाने वाली जीवन के सहज विकास की गाथा है अतः यज्ञ का आचरण वैदिक आचार्यो के द्वारा मान्य जीवन शैली है। ''यस्यैवं विदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः।'' इत्यादि वेदोक्त रूपकों के द्वारा यज्ञकर्ता की आकांक्षाओं से स्पष्ट हो जाता है।

यज्ञ शाला में यज्ञ के लिए यूप (स्तंभ) का स्वरूप व किस भांति वह प्रस्थापित किया जाए इस विषय में वैदिक साहित्य में विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। बेल या खैर वृक्षों से निर्मित यूप यज्ञीय स्तंभ होना चाहिए इस तरह का उल्लेख पातंजल महाभाष्य में आया है- बैल्वः खादिरो वा यूपः स्यात् इत्युच्यते। वैदिक वास्तुशास्त्र का या के साथ अंक और रेखा गणित का अत्यंत घनिष्ट संबंध है।

ललित कला का चौथा महान् व महत्वपूर्ण तत्व चित्रकला है। चित्रकला के अंतर्गत रंगोली कला का भी समावेश होता है। यज्ञ-क्रिया के समय गृह प्रवेश और महादेवों की प्रतिष्ठा करते समय अनेक रंग के अन्नों से अत्यंत कुशलता पूर्वक यज्ञवेदियाँ चित्रित की जाती हैं। छिलकें वाली मूंग, उड़द, मसूर की दाल, चावल, तिल ,तूअर, चनादाल इनका प्रयोग करके मनोहारी चित्रकला को बनाकर देवताओं को संतुष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है। आम के पत्रो के द्वारा विभिन्न रंगो के फूलों से तोरणमालिका बनाकर सम्पूर्ण यज्ञ शाला व यज्ञ की वेदी को सुसज्जित किया जाता हैं पीले, लाल,गुलाबी, नीले अनेक रंग बिरंगे फलो से विविध रंगोली सजाई जाती है। यज्ञ वेदिका के आस पास रंगोली व फूलो की सहायता से ओ३म्, स्वस्तिक, शंख, कलश इत्यादि शुभ चिन्ह अंकित किए जाते है। प्रौढ़ यज्ञ काल में बहुत बड़ी चित्रकला का प्रदर्शन किया जाता था।

यज्ञों में प्रसंगानुकूल पक्षियों के आकार प्रकार के कुण्ड बनाए जाते थे। उनके पंख, पुच्छ और चोंच आदि रूप उसी रंग के बनाए जाते थे जैसे उन पक्षियों के होते हैं। इससे यही प्रतीत होता था कि विराट रूप में साक्षात् वही पक्षी बैठा है। इसके अतिरिक्त ध्वजा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पताका, तोरण और वंदनवारो से यज्ञवेदी, मंडप और यज्ञ प्रदेश को इतना दिव्य चित्ताकर्षक और मोहक बनाया जाता था कि आँखों की पूर्णत: तृप्ति हो जाती थी। रंगोली सजाने के लिए कल्पनाशीलता के साथ साथ बहुरंगी धान्य का जो उपयोग किया जाता था वह तत्कालीन समृद्धि व पावित्र्य का प्रतीक होता था। सदैव उन रंगो से त्याग शांति समृद्धि व अतंस् के अनुराग की भावना परिलक्षित होती थी। यज्ञकर्ता निस्वार्थभाव से श्रद्धा पूर्वक इष्टदेवताओं का आह्वान करते हुए पवित्र अग्नि प्रज्वलित करते थें। यज्ञकालीन मनोहारी वातावरण को देख कर निश्चितरूप से यही प्रतीत होता था कि तत्कालीन समाज में रहने वाले धार्मिक वृत्ति के लोगों के मन में श्रद्धा के साथ-साथ विविध कलाओं का विभिन्न रूपों में वास रहता था।

संगीत से कर्ण, चित्रकला और सजावट से नेत्र, हवन की सुगंधि से नासिका, नाना प्रकार के हविष्यान्न, मधुपर्क और फलों के पुरोडाश से जिह्वा तथा सांय प्रात: आग्रेय हवन की उष्णता से तथा अपरान्ह में जलीय यज्ञ की सर्दी से त्वचा की तृप्ति होती हैं। इस प्रकार के समस्त आवश्यक ज्ञान विज्ञानों और कलाओं में ललित कला की भी गणना है। वेदों में काव्य और संगीत का बहुतवर्णन है। अथर्ववेद में काव्य के लिए लिखा हैं- देवस्य पश्यकाव्यं न ममार न जीर्यति अर्थात् परमेश्वर का संसार रूपी काव्य को पढ़ो जो न कभी पुराना होता है और न कभी नष्ट होता है। इस तरह के काव्य और संगीत के लिए ऋग्वेद में उल्लेख आया कि-

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किण:।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे॥ ऋ० 1/10/1

अर्थात हे शतक्रतो! तुम्हारे गीत गायत्री आदि गाती है, सूर्य पूजा करते हैं और ब्राह्मण तुम्हारे वंश का बखान किया करते है। इसके अतिरिक्त चारो वेदकाव्य मयस्वरूप में है। सामवेद तो पूर्णत: गेय है। वेदों में वीणा वाद्य का भी उल्लेख है। वेदों में काव्य और संगीत की शिक्षा प्रचुर मात्रा में है। वेदोक्त काव्य संगीत मानव समूह को चैतन्य युक्त जीवन प्रदान करने वाले हैं। इति

पाद-टिप्पणियाँ

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास - आचार्य बलदेव, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी
2. यज्ञ आशय आणि अविष्कार - डॉ. गणेश थिटे, याज्ञवल्क्य प्रकाशन, पुणे
3. वैदिक संपत्ति - पं. रघुनाथ शर्मा
4. संगीतायन - डॉ. सीमा जौहरी, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक वाङ्मय में वास्तुकला

डॉ. संगीता मिश्रा
विभागाध्यक्ष-इतिहास
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
कोटद्वार-246149
पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

प्राचीन भारतीय जनमानस के सांस्कृतिक चेतना में कला के जो अर्थ सन्निहित थे और बहुत सारे दृष्टान्तों मे जिनकी परम्परा दृष्टिगत होती है, उन्हें कलात्मक दृष्टान्तों और साहित्यिक सन्दर्भो के तुलनात्मक अध्ययन से अधिक मुखरित किया जा सकता है। अति प्राचीनकाल से ही भारत में वास्तु के प्रति अनुराग के जीवन्त दृष्टान्त अवशिष्ट सजीव कलाकृतियाँ हैं, जो भारतीय संस्कृति के इस मूल्यवान पक्ष की झाँकी प्रस्तुत करती हैं। भारतीय शिल्पियों ने शास्त्रीय और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से इस कला की सतत साधना की। मनीषियों ने अपने चिन्तन को शास्त्रीय स्वरूप प्रदान किया तथा शिल्पियों ने अपनी साधना एवम् निष्ठा तथा सतत अभ्यास के द्वारा उसे साकार स्वरूप दिया। वास्तु कला के शास्त्रीय पक्ष का दृष्टान्त प्राचीन भारतीय वाङ्मय में उपलब्ध है। वस्तुतः भारतीय वास्तुशास्त्र भी है और कला भी। जहाँ एक ओर भारत जैसे विशाल देश में वास्तु की महनीय अद्भुत कलाकृतियों के महान् निदर्शन इतस्ततः बिखरे हुए हैं तो दूसरी ओर इससे सम्बन्धित विषय अर्थात् वास्तुशास्त्र का विवेचन वेदों में उपलब्ध होता है। वास्तुकला के अनेकों दृष्टान्त हमें वैदिक ऋचाओं से उपलब्ध होते हैं। ऋग्वैदिक काल में वास्तु या एक भवन का स्थल वास्तोस्पति नामक देवता के स्वामित्व में स्वीकार किया जाता था। इसलिए जब कभी नये भवन का निर्माण किया जाता था तो उसकी प्रार्थना आवश्यक समझी जाती थी। ऋग्वेद के एक मन्त्र में वास्तोस्पति इन्द्र से समीकृत किये गये है। ऋग्वेद में 'त्रिधातुशरणम्' त्रिभौमिक प्रासाद की इच्छा वशिष्ठ जी करते हैं। सहस्त्र द्वार, सहस्त्र स्तम्भों के प्रशालों का अनेकों बार संकेत मिलता है। ऋग्वेद के मन्त्रों में इन्द्र को सर्वोत्तम स्तम्भ का स्वामी कहा गया है। स्तम्भों पर गृहों को टिकाने के भी संकेत मिलते हैं- 'स्कम्भेन धारयेत।: तीन स्तम्भों के ऊपर त्रिकोणात्मक शं:क्वाकार वास्तु के निर्माण की परम्परा भी प्रचलन में थी। वस्तुतः वास्तुपूजा, वास्तुभूमि चयन, स्तम्भ पूजा, द्वार पूजा आदि वास्तुविद्या के सिद्धान्त ऋग्वैदिक काल में प्रचलन में थे जिनसे तत्कालीन वास्तुकला का ज्ञान प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर वैदिक काल में अथर्ववेद की अनेक ऋचाओं में वास्तुकला से सम्बन्धित नाना शब्दावलियाँ विद्यमान है। अथर्ववेद में ढोलाकार गृह की तुलना हस्तिनी से की गयी है। **'हस्तिनीवपद्वतीमिता पृथिव्यांतिष्ठति।'**

शतपथ ब्राह्मण में वेदी निर्माण और चिति निर्माण के विवरण से भी वास्तुकला के अस्तित्व का आभास होता है। शतपथ ब्राह्मण में देवायतन के बारे में भी उल्लेख मिलता है।

अस्तु वैदिक वाङ्मय में उल्लिखित नाना सन्दर्भों के अध्ययन से यह विदित होता है कि कालान्तर में विकसित वास्तुकला के कतिपय पक्ष वैदिक काल में मूल रूप से अस्तित्व में आ चुके थे।

भारतीय कला के संपूर्ण अध्ययन के हेतु यह आवश्यक है कि इसे भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति के साथ मिलाकर देखा जाय जिसकी सामग्री वैदिक साहित्य में प्रचुर रूप में मिलती है। कला का मूल शास्त्र है। कला व्यक्ति की रचना है। शास्त्र उसके समष्टिगत रूप का विधान है। शास्त्र कला का विरोधी नहीं अपितु सहयोगी है। कला के निर्माण के साथ-साथ कला के ज्ञान के लिए भी शास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। भारतीय कला भारतवर्ष के विचार, धर्म, तत्व ज्ञान और संस्कृति का दर्पण है। प्राचीन भारतीय जनमानस के सांस्कृतिक चेतना में कला के जो अर्थ सन्निहित थे और बहुत सारे दृष्टान्तों में जिनकी परम्परा दृष्टिगत होती है। उन्हें कलात्मक दृष्टान्तों और साहित्यिक सन्दर्भों के तुलनात्मक अध्ययन से अधिक मुखरित किया जा सकता है। अति प्राचीनकाल से ही भारत में वास्तु के प्रति अनुराग के जीवन्त दृष्टान्त अवशिष्ट सजीव कलाकृतियाँ है, जो भारतीय संस्कृति के इस मूल्यवान पक्ष की झाँकी प्रस्तुत करती है। भारतीय शिल्पियों ने शास्त्रीय और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से इस कला की सतत साधना की। मनीषियों ने अपने चिन्तन को शास्त्री स्वरूप प्रदान किया तथा शिल्पियें ने अपनी साधना एवम् निष्ठा तथा सतत अभ्यास के द्वारा उसे साकार स्वरूप दियां कला के शास्त्रीय पक्ष का दृष्टान्त प्राचीन भारतीय वाङ्मय में उपलब्ध हैं। वस्तुत: भारतीय वास्तुशास्त्र भी है और कला भी। जहाँ एक ओर भारत जैसे विशाल देश में वास्तु की महनीय अद्भुत कलाकृतियों के महान् निर्दशन बिखरे हुए हैं तो दूसरी ओर इससे सम्बन्धित विषय अर्थात। वास्तु शास्त्र का विवेचन वेदों में उपलब्ध होता हैं। इस प्रकार वास्तुकला-कृतियों या दृष्टान्तों और कला सिद्धान्तों के समन्वयात्मक अध्ययन के अभाव में हम कला की आत्मा के स्वरूप को नहीं जान सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तुकला के अनेकों दृष्टान्त हमें वैदिक ऋचाओं से उपलब्ध होते हैं। ऋग्वैदिक युग से ही भारत में वास्तुकला से सम्बन्धित परम्परायें विकसित होना प्रारम्भ हो गयी थीं जो ऋग्वैदिक युगीन आर्यो के धर्म से काफी सीमा तक सम्बन्धित थी। ऋग्वैदिक काल में भवन निर्माण ने एक धार्मिक कृत्य का स्वरूप ग्रहण कर लिया था। वास्तु या भवन का स्थल वास्तोस्पति नामक देवता के स्वामित्व में स्वीकार किया जाता था। इसलिए जब कभी नये भवन का निर्माण किया जाता था तो उसकी प्रार्थना आवश्यक समझी जाती थी। ऋग्वेद के एक मन्त्र में वास्तोस्पति इन्द्र से समीकृत किये गये हैं।[1] ऋग्वेद में ही वास्तोस्पति का समीकरण त्वष्टा से किया गया हैं। त्वष्टा का काम था- रूपपिंशन अथवा तक्षण कर्म द्वारा नाना वस्तुओं का निर्माण करना (त्वष्टा रूपाणि पिंशतु) वस्तुओं के भौतिक रूप को ज्यादा महत्व दिया जाता था। इन्द्र के सम्बन्ध में बताया गया है कि इन्द्र अपनी माया या शक्ति के द्वारा नाना रूपों को रचता है-रूपं रूपं-प्रतिरूपो वभूव: इन्द्रो मायाभि: पुरूरूप ईयते।[2] परवर्ती शिल्प साहित्य में त्वष्टा को वास्तु के स्वामी के रूप में वर्णित किया गया है। मानसार में उल्लिखित एक परम्परा के अनुसार त्वष्टा विश्वकर्मा के पुत्र थे। वह विश्व जिसका कर्म है उसे विश्वकर्मा कहा गया है और उसके आधार पर प्रजापति के विश्वकर्मा रूप की कल्पना की गई। भुवनों के रचने वाले को 'भौवन विश्वकर्मा' की संज्ञा दी गयी। यह भी कल्पना की गई कि संसार रूपी महावृक्ष को गढ़-छील कर या तक्षण करके द्यावापृथिवी का निर्माण किया गया- ब्रह्म- उत वृक्ष आस यतोद्यावापृथिवी निष्टतक्षु:।

यज्ञवेदी तथा यूप के आकार-प्रकार और उनके निर्माण से सम्बन्धित बहुत से विचार हमें वैदिक ऋचाओं से मिलते हैं। ऋग्वैदिक कालीन आर्यो की वास्तुकला का ज्ञान हमें वैदिक मन्त्रों से प्राप्त होता है। ऋग्वेद में 'त्रिधातुशरणम्' त्रिभौमिक प्रासाद की इच्छा वशिष्ठ जी करते हैं। सहस्त्र द्वार, सहस्त्र स्तम्भों के प्रशालों का अनेकों बार संकेत मिलता है। ऋग्वेद के मन्त्रों में इन्द्र को सर्वोत्तम स्तम्भ का स्वामी कहा गया है।[3] स्तम्भों पर गृहों को टिकाने के भी संकेत मिलते हैं-स्कम्भेन धारयेत।[4] बड़े खम्भे को महत् स्कम्भ कहा जाता था।[5] काष्ठकर्म के शिल्पी वनों में जाकर ऊँचे वृक्षों को माप कर उन्हें कुल्हाड़ी से काटकर गिराते थे। उन्हें ही बड़े खम्भों का रूप दिया जाता था-वनस्पते स्वधितिर्वाततक्ष।[6] ऊँचे खम्भे को महान् लोकव्यापी सौभाग्य का प्रतीक माना जाता था- उच्छ्रयस्व महते सौभागाय।[7] उसी से यूप या इन्द्रध्वज का विकास हुआ। ऋग्वेद में उल्लिखित है कि इन्द्र ने ऊँचे खम्भे पर द्युलोक को स्तम्भित कर रखा है- अयं महान् महता स्कम्भेनेनोद् द्यामस्तभ्नाद् वृषभो मरुत्वान।[8] तीन स्तम्भों के ऊपर त्रिकोणात्मक शंक्वाकार छत के निर्माण की परम्परा भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचलन में थी- त्रयः स्कम्भासः स्कभितासः।[9] ऋग्वेद में लगभग 30 विभिन्न शब्दों का निवास स्थलों के उल्लेख हेतु प्रयोग किया गयाहै। जैसे 'छर्दि' शब्द का उल्लेख गृह की छत को संकेतित करता होगा। ऋग्वेद में 'हर्म्य' शब्द का उल्लेख कम से कम 12 बार हुआ है। परवर्ती ग्रन्थों में हर्म्य का तात्पर्य गृह के ऊपरी भाग के एक कक्ष से ग्रहण किया गया है। ऋग्वैदिक काल में गृह निर्माण के अवसर पर जो प्रतिष्ठा संस्कार या समारोह मन्त्र पाठ के साथ किया जाता था, उसका प्रचलन आज भी है। वस्तुतः वास्तुपूजा वास्तुभूमिचयन, स्तम्भ-पूजा, द्वार-पूजा आदि वास्तुविद्या के सिद्धान्त ऋग्वैदिक काल में प्रचलन में थे। जिनसे तत्कालीन वास्तुकला का ज्ञान प्राप्त होता है।

उत्तरवैदिक काल में अथर्ववेद के शालासूक्त में उल्लिखित है कि भवन निर्माण से पूर्व लकड़ी के संभार का प्रबन्ध कर लेना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के काष्ठ शिल्प से प्राचीनकाल में प्रासादों का निर्माण होता था। कालक्रम से वे सड़ गल गये होंगे और उनके चिन्ह भी समाप्त हो गये होंगे। अथर्ववेद में कुछ ऋचायें ऐसी हैं, जिनको गृह निर्माण के समय उच्चारित किया जाता था। संयोग से उनमें बहुत वास्तुकला से सम्बन्धित शब्दावलियाँ विद्यमान हैं। अथर्ववेद में बांस, स्थूण (धूनी), उपमित, प्रतिमित, शाला आदि का उल्लेख मिलता है। ये शब्द कुछ सीमा तक सामान्य आवासीय भवनों के निर्माण को द्योतित करते हैं। विभिन्न बांसो को रस्सियों से बांध कर छाजन बनाने का भी उल्लेख किया गया है-वंशानां नहनानां।[10] छतों की निर्माण प्रणाली में बांस कडियाँ, उनके ऊपर बांस-पट्टियों का पंजर तथा अन्त में घास-फूस के छप्पर का उल्लेख मिलता है।[11] छप्पर अथवा बांस-पट्टियों को रस्सी के द्वारा बांधने की कला का भी उन्हें ज्ञान था- ग्रन्थिंश्चकार ते दृढ़ान्।[12] उस काल में आवासगृह की कल्पना एक देवी के रूप में की गई थी यह कामना की जाती थी कि वह गोमती, अश्वायनी, पयस्वती, घृतवती एवम् सुनृतावती की भांति सौभाग्यवती बने-

इहैव ध्रुवाप्रतितिष्ठशालेऽश्वावती गोमती सुनृतावती
ऊर्जस्वती धृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्वमहते सौभगाय।[13]

अथर्ववेद में शाला को वृहच्छन्दाः[14] अर्थात् वृहच्छन्द वाली कहा गया है गृह निर्माण के सम्बन्ध में वृहच्छन्द का अभ्रिप्राय उसके ब्रह्मसूत्र और गर्भसूत्र के विस्तार से हैं ब्रह्मसूत्र से गृह का उत्सेध , उदय या भूलम्ब समझा जाता है, जिसके लिए सूक्त में '' कोशे कोशः सुमब्जितः' कहा गया है अर्थात् एक तल्ले पर दूसरा तल्ला उठाया गया । गर्भसूत्र का अभिप्राय भूमितल पर ही निर्मित मण्डपों से है जिसे सूक्त में 'कुलायेऽधिकुलायम्[15]' कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक काल में मानव जिस प्रकार अपने शरीर को अलंकृत करता था, उसी प्रकार वह अपने आवासगृह को भी सुसज्जित रखता था। वह भवन के आकार को भी अपनी रुचि के अनुसार ही निर्धारित करता था। घर को रमणीय और अलंकृत बनाया जाता था जिससे वह सबके लिए आकर्षक (विश्ववारा) हो सके। उसके ढोलदार रूप की कल्पना खड़ी हुयी अलंकृत हथिनी से की गई है 'हस्तिनीवपद्वतीमिता पृथिव्यांतिष्ठति।[16]' घर के सौन्दर्य की पराकाष्ठा बताने के लिए उसकी तुलना ब्याहली बहू से की गई है- वधूमिव त्वा शाले।[17]'

शतपथ ब्राह्मण में गृह के दो महत्वपूर्ण अंग बताये गये हैं। प्रथम भाग सामने होता है जो पुरुषों के लिए निर्मित किया जाता है। इसमें अनेकों कक्ष होते थे। द्वितीय भाग पीछे वाला अनेकों कक्षों से युक्त स्त्रियों के निवास के लिये होता था। शतपथ ब्राह्मण में देवायतन के बारे में उल्लिखित किया गया है कि देवायतन पूर्व से पश्चिम की ओर बनाये जाते थे-

'प्राचीनवंश हविर्धानमेतद्वैदेवानां निष्केवल्यं यद्धविर्धानं.....उदीची वै मनुष्याणां दिक् तस्माद् उदीचीनवंश सदो भवति[18],

वस्तुतः ब्राह्मण काल में बहुत में बहुत से परवर्ती निर्माणों की उत्पत्ति परिलक्षित होती है। भारतीय स्तम्भों के अठपहल प्रकार संभवतः याज्ञिक यूपों के रहस्यात्मक महत्व से उद्भूत हुए तथा बौद्ध एवम् हिन्दू स्तूपों की उत्पत्ति ब्राह्मणों में वर्णित श्मशानों से ज्ञात होती है।[19] ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मण काल की याज्ञिक वेदियों या चिति के नमूने पर ही कालान्तर में मन्दिरों का निर्माण हुआ होगा। निस्सन्देह गृहवास्तुविद्या के आचार्यो ने वैदिक युग में ही उन तत्वों का अविष्कार कर लिया थो जो ऐतिहासिक युग की गृह निर्माण कला में प्राप्त होते हैं जैसे नींव, अन्तः पुर, कोठे, पक्खे, द्वार, अलिन्द, स्तम्भ आदि।

भारतीय वास्तुकला के सिद्धान्तों के सन्दर्भ में ऐसा प्रतीत होता है कि आवासीय भवनों और मन्दिरों के निर्माण के नियम अलग-अलग थे। यहाँ तक कि राजप्रासादों के निर्माण में भी उनसे भिन्न नियमों का अनुसरण किया गया। ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लिखित विधियों से यह ज्ञात होता है कि यज्ञ स्थल चारों ओर से आवृत्त होने चाहिए। संभवतः इसी आधार पर हिन्दू मन्दिरों को चारों ओर से खुला न रख कर उन्हें भी आवृत रखा गया ताकि उन्हें अन्धकार युक्त एवम् रहस्यात्मक बनाया जा सके।

अस्तु वैदिक वाङ्मय में उल्लिखित समस्त सन्दर्भो एवम् दृष्टान्तों से यह स्पष्ट हो जाता है कि बाद में विकसित वास्तुकला के कतिपय पक्ष वैदिककाल में मूलतः अस्तित्व में आ चुके थे। इन्हीं सिद्धान्तों एवम् परम्पराओं के आधारपर वास्तुकला और भी अधिक पुष्पित एवम् पल्लवित हुयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाद-टिप्पणियाँ

1. ऋग्वेद 7.55.3.
2. ऋग्वेद 6.47.18
3. ऋग्वेद 10.11.5.
4. ऋग्वेद 8.41.10.
5. ऋग्वेद 6.47.5.
6. ऋग्वेद 3.8.6
7. ऋग्वेद 3.8.2
8. ऋग्वेद 6.47.5
9. ऋग्वेद 1.34.2.
10. अथर्ववेद 9.3.4.
11. अथर्ववेद 9.3.3.
12. अथर्ववेद 9.3.2.
13. अथर्ववेद 3.12.2.
14. अथर्ववेद 3.12.3.
15. अथर्ववेद 9.3.20.
16. अथर्ववेद 9.3.17.
17. अथर्ववेद 9.3.25.
18. शतपथ ब्राह्मण 3.6.1.23.
19. द्रष्टव्य टी० भट्टाचार्या, दि कैनॉन्स ऑफ इण्डियन आर्ट-अध्याय 3.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म और पर्यावरण

डॉ० किशनाराम विश्नोई प्रभारी
गुरु जम्मेश्वर धार्मिक अध्ययन संस्थान
गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
हिसार - 125001 (हरियाणा)

आदि काल से ही प्रकृति और मानव के बीच अन्योन्याश्रित संबंध रहा है। एक की उपस्थिति स्वतः दूसरे के अस्तित्व का बोध कराती है। इस उपस्थिति का सबसे ज्यादा वर्णन वैदिक साहित्य में उपलब्ध है। वैदिक मनीषा पर्यावरण संरक्षण के लिए ही बनी है। वह इस तथ्य को उजागर करती रही हैं कि लोकरक्षण के लिए प्रकृति की रक्षा करो। ''रक्षायै प्रकृति पातु लोकः'' यही कारण है कि वेदों में आकाश, पाताल, नदी, सागर, पर्वत, वनस्पति औषधि, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र, जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, मनुष्य-देव सबके लिए मंगल एवं समृद्धि हेतु शांति की कामना की गयी है। ऋग्वेद में 'ऋत' शब्द आया है, जिसका निहितार्थ ब्रह्माण्ड का सुव्यवस्थापन या नैतिक व्यवस्था है। 'ऋत' के बाहर कुछ भी नहीं हैं मानव जगत की तरह प्रकृति भी नैतिक और चिन्मय है। इसका कारण है कि प्राकृतिक घटनाएं सर्वथा नियमित और व्यवस्थिज हैं यह प्रकृति स्वाभाविक मूल्यों से प्रेरित है और नितांत बुद्धि-संगत है। तात्पर्य यह हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इसी 'ऋत' से जीवित, अनुशासित और व्यवस्थित है।

वैदिक वाङ्मय में प्रकृति के भौतिक पर्यावरण पारिस्थितिकी और प्रदूषण से संबंधित चिन्तन ही नहीं है अपितु जीवन पद्धति के रूप में सांस्कृतिक तथा वाक् पर्यावरण की अभिव्यक्ति पाते हैं प्रकृति की मातृवंत् अवधारणा, वैश्विक दृष्टि की परिचायक ब्रह्माण्ड की संकल्पना प्रकृति में अन्तनिर्हित देवत्त्व का वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन वैदिक संस्कृति में प्रस्फुटित हुआ है। विश्व जनमानस की भांति सनातन ध र्मावलम्बियों ने भी प्राकृतिक शक्तियों के प्रति प्रारंम्भ से ही श्रद्धा का भाव रखा है। वैदिक ऋचाओं में अग्नि, सूर्य, वायु, जल, वनस्पति, नदी, द्यावा-पृभिवी, पर्वत आदि अनेक प्राकृतिक शक्तियों की देवों के रूप में स्तुतियाँ की गयी हैं इससे पौराणिक युग में पर्यावरण को धर्म के रूप में मान्यता मिली। पुराणों में पर्यावरण सन्तुलन की दृष्टि से विशेष सर्वाधिक वृक्षों के आध्यामिकता के साथ भौतिक उपादेयता की भी बड़ी मात्रा में वर्णन हुआ है। मत्स्य पुराण 59/149 कहता है कि दस कूपों के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र एवं दस पुत्रों के बराबर

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक वृक्ष होता हैं। इसी प्रकार वराह पुराण में वर्णित है कि जो व्यक्ति एक पीपल, एक नीम, या वट, दो अनार या नारंगी, दस पुष्प लताएं एवं पांच आम्रवृक्ष लगाता है वह कमी नरक में नहीं जाता है। जबकि पदभ् पुराण 56/40-42 में स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट हैं कि वृक्षों को काटने वाला नरक का भागी होता है। बृहतसंहिता, अर्थशास्त्र जैसे ग्रंथों में पर्यावरण को किसी प्रकार की क्षति पहुँचाने वाले के लिए यथायोग्य दण्डविधान का उल्लेख है। बृहतसंहिता में एक अन्य पक्ष 'वास्तुशास्त्र' की दृष्टि से स्वच्छ पर्यावरण के औचित्य की चर्चा की गई है। बौद्ध एवं जैन धर्मावलम्बी तो प्रारम्भ से ही प्रकृति संरक्षण के प्रति संवेदनशील रहे हैं तथागत हो या अर्हत दोनों ने ही राज्य का परित्याग धर्म के लिए किया और अपनी तपःभूमि एकान्त जनशून्य 'अरण्य' को बनाया। गौतम बुद्ध को वन में पीपलवृक्ष (बोधिवृक्ष) और महावीर को ऋजुपालिका के तट पर सालवृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ। वस्तुतः दोनो चिन्तन धाराएं वनों में ही पुष्पित एवं पल्लवित हुई। उनके जीवन की एक बड़ी अवधि वनों में ही व्यतीत होती थी। जैन धर्मावलम्बी तो सृष्टि के सभी पदार्थो जड़ या चेतना में जीव का अस्तित्व मानते है। उनकी दृष्टि में जड़-वनस्पतियों में भी एकेन्द्रीय जीव का अस्तित्व होता है। इसलिए सच्चे जैन अनुयायी तृण को भी क्षति नही पहुंचाते। बौद्ध एवं जैन साहित्य में पर्यावरण को विज्ञान से संबद्ध कर देखा गया है। प्राकृतिक ज्ञान और वैज्ञानिक ज्ञान जब मिलकर कार्य करते हैं तो प्रकृति में एक विलक्षण अभियोंजन क्षमता उत्पन्न होती है गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न है; अन्न वर्षा से उत्पन्न होता है वर्षा यज्ञ से होती है और यज्ञ विहित कर्मो से उत्पन्न है। गीता में श्रीकृष्ण ने हमें यज्ञ की भावना से कार्य करने की शिक्षा देते हुए कहा है- आप देवताओं को संतृप्त करेंगे तो देवता आप की श्रेयस प्राप्ति में सहायक होंगे।यज्ञ भावित देवता आपकी सभी कामनाओं की पूर्ति करेंगे। बिना दिये जो खाता है वह चोर है - जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि आदि देवताओं से हमें बिना मांगे स्वास्थ्य, सुख और समृद्धिदायक सम्पदाएं प्राप्त होती हैं। बदले में यदि हम इनकी क्षतिपूर्ति नहीं करते और इन्हें प्रदूषित करते हैं तो हमारे वरदान को अभिशाप में बदलते देर नहीं लगेगी। महाभारत के आदिपर्व में वर्णित समुद्रमंथन के आख्यान में हम समुद्र को देवताओं से कहते-सुनते हैं यह अच्छी बात है, यदि प्राप्त हुए अमृत में मेरा भी भाग रहे तो मैं मन्दराचल के घुमाने से होने वाली पीड़ा सहर्ष सह लूँगा। यहाँ परोक्षतः संकेत यह लक्षित होता है कि मनुष्य धरती और समुद्र की सम्पदाओं का अपने पुरुषार्थ के बल पर दोहन बेशक यथेष्ट मात्रा में करें मगर शर्त यह है कि इस प्रक्रिया में यहाँ पाए जाने वाले पदार्थ और प्राणि समुदाय का किसी प्रकार प्रदूषण या अति दोहन से संहार न होने पाए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरातन भारतीय वाङ्मय में प्राकृतिक स्थलों, तथा प्रकृति के विशाल क्षेत्र में दिखाई देने वाले जीव-जन्तुओं, नदी-नालों, पर्वत-शिखरों, और सागरों का मानवीकरण कर उन्हें कथावृन्तों में स्थान देने की प्रवृत्ति सर्वत्र पाई जाती है। यह पद्धति महाकाव्यों की एक परम्परागत शैली तो है ही पर साथ ही साथ यह भी स्पष्ट है कि प्राचीन काल का समाज अपने पर्यावरण और परिवेश के साथ बड़े गहरे में जुड़ा हुआ था और उसके साथ बड़ी आत्मीयता का अनुभव करता था पुरातन महाकाव्यों में और विशेषत: महाभारत में वनस्थलियों, पर्वतशृंखला, नदी-संगम, एवं सागर ये सब प्राय: मानवीय रूप में प्रकट होते हैं और मनुष्यों को उनके महत्वपूर्ण कार्यों में अपना पूरा सहयोग देते है। कवियों एवं मनीषियों ने इनमें स्नेह, सहानुभूति, सहयोग, दया, ममता, करुणा, मैत्री, भ्रातृभाव आदि गुण और भाव दिखाये हैं। राजा भगीरथ के विषय में कहा गया है कि उन्होनें गंगा को अपनी पुत्री मान लिया था। महर्षि विश्वामित्र अपने आश्रम के पास बहने वाली कौशिकी नही को अपनी बहन मानते थे और जब भी प्रवास पर जाते थे उसे विधिवत् सूचित करते थे और उससे विदा लेते थे कार्यवश दक्षिण की ओर जाते हुए मित्रावरुण नंदन महर्षि अजस्तय ने विन्ध्यांचल को मित्रवत संबोधित करते हुए कहा है- है पर्वतश्रेष्ठ, मैं कार्यवश दक्षिण को जा रहा हूँ और चाहता हूँ कि आप मुझे रास्ता दें।

मार्गमिच्छाम्यहं दत्तं भवता पर्वतोपम्।
दक्षिणामभिगन्तास्मि दिशं कार्येण केनचितं।। (वनपर्व-अध्याय 109)

महाभारत के रामोपाख्यान उपपर्व में वन्यप्राणियों के साथ-साथ समुद्र भी मानवों का सा व्यवहार करता दिखाई देता है।वह श्रीराम को कौशल्यानंदन कहकर संबोधित करता हुआ मधुर वाणी में कहता है-हे पुरुष श्रेष्ठ कहो मैं आप की क्या सेवा कर सकता हूँ। सागर पुत्रों द्वारा संबोधित होने के कारण मैं भी इक्ष्वाकुवंशीय ही हूँ और आपका जातिबन्धु हूँ -

जल चाहे समुद्र का हो, चाहे नदी, पोखर या बावड़ी का, यह ऐसे असंख्य जीवों को पालता है जो जीवन और जगत् को हानिकारक तत्वों से बचाते हुए उसके पोषण और विकास में सहायक होते हैं। जलीय जीव पर्यावरण संरक्षण में हमारी सहायता करते हैं। रामायण और महाभारत में प्रणियों और पदार्थों का सुन्दर समन्वय बनाया गया है उनमें पारस्परिक आत्मीयता को बनाये रखने की व्यवस्था भी की है इनके बिना हम अपने आपको अधूरा मानते हैं। कालिदस ने अपनी कृतियों में प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है उसमें आत्मीयता के अनेक दृष्टांत दिये हैं वह रामायण और महाभारत के उस युग का प्रभाव हैं जिसमें पर्यावरण और परिवेश को अत्यंत मंगलकारी पावन और पूजनीय माना जाता था। सुप्रसिद्ध सांख्य दर्शन के प्रजेता कपिलमुनि ने प्रकृति, और (परमात्मा) पुरुष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जीवात्मा) दोनों को एक-दूसरे के पूरक व नित्य साथी कहा है इनमें एक मधुर व शाश्वत सामंजस्य है कहीं विरोध नहीं है। प्रत्येक जीवात्मा प्रकृति के भाग अहंकार, बुद्धि, मन तथा पांच भौतिक पदार्थों के पर्यावरण से आवृत होकर ही प्राणी के रूप में जन्म लेता है, जन्म के पश्चात् बाहर भी वह सूर्य, चन्द्र, वायु, आकाश के पर्यावरण में जीवन की अनुकूलता प्राप्त करता है। पृथ्वी उसका आधार है, अन्न, जल उसके जीवन का धारक एवं पोष्क हैं। उसके चतुर्दिक मानव समाज उसे वैचारिक पर्यावरण देता है इसी प्रकार मानव का जन्म सत्ता एवं विकास सभी सदैव पर्यावरण के अटूट संबंध से जुड़े हुए हैं। पर्यावरण उन सभी बाहरी दशाओं और प्रभावों का योग है; जो जीवधारियों के जीवन उनके विकास और उनकी अनुक्रियाओं पर प्रभाव डालती है। यह सत्य है कि सभी प्रकार के पर्यावरण में भौतिकत्त्व प्राकृतिक वातावरण द्वारा ही उपलब्ध होते हैं। जहाँ जैविक और भौतिक घटकों से पर्यावरण चक्र चलता है, प्राणियों का शरीर बाह्य एवं आन्तरिक पर्यावरण के बीच समायोजन का कार्य करता है। सम्स्त जीवों में पर्यावरणीय परिवर्तनों से समायोजन से थोड़ी बहुत क्षमता होती है। समस्त जीव परस्पर तथा अपने पर्यावरण के साथ योजनाबद्ध रूप से जुड़े रहते हैं अत: पर्यावरण संरक्षण के बिना किसी भी जीव की कल्पना भी असंभव है। वस्तुत: पर्यावरण भौतिक एवं जैविक तत्वों का योग कहा जाता है। पर्यावरण के साथ इकोलॉंजी (पारिस्थितिकी) जीवों एवं उनके पर्यावरण के परस्पर संबंधों का अध्ययन करता है। इसके अन्तर्गत समस्त जीवों और पर्यावरण के साथ अन्त: प्रक्रिया का अध्ययन किया जाताहै। इस प्रकार पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी अध्ययन सुविधा के लिए भले ही दो प्रकार की शाखा मान ली जाये, परन्तु मूलत: ये जैविक, भौतिक योगों से गतिशील प्राकृतिक और पर्यावरणीय क्रिया-अनुक्रिया और अन्त: प्रतिक्रियाओं के बाह्य एवं आन्तरिक क्षेत्रों के साथ जुड़े हुए हैं। इस प्रकार भूमण्डल, वायु मण्डल एवं जलमण्डल परस्पर धर्म और प्रकृति से जुड़े हुए है और इनसे उत्पन्न जीवन चक्र के उत्पादक, पोषक और संरक्षक है। इसलिए पर्यावरण मनुष्य के लिए भी उतना ही अनिवार्य हैं जितना धर्म और जीव-जगत् के लिए। इसलिए प्रकृति और मानव का उचित समीकरण बहुत आवश्यक है।

रामगिरि मानस के रचयिता तुलसीदास ने जगह-जगह प्रकृति के विधि आयामों का ध्यान रखा हैं। अयोध्याकाण्ड में (2/82/4) में वर्णित है कि राम के वन जाने का समाचार सुनकर नगरवासियों के समान ही वृक्ष लताएँ भी शोक से मलिन हो जाती हैं बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं।[2] इसी भांति अरण्यकाण्ड में सीता हरण के पश्चात् स्वयं राम ने वृक्ष लताओं, पशु पक्षियों से भी जानकी का पता पूछा हैं 'पूछत चले लता तरु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाती'। यहाँ ध्यातत्य है कि राम कालिदास के विरही यक्ष नहीं है, अपितु तुलसी ने राम को सदैव जगत्पालनहार के रूप में ही देखा है। अतः यहाँ अस्वाभाविक कुछ भी नहीं है। राम अवश्य ही वृक्ष- लताओं की सांकेतिक भाषा के अनभिज्ञ होंगे। पशु पक्षियों की भाषा और व्यवहार के जानकर विशेषज्ञ अभी भी हमारे समाज में हैं। तुलसीदास ने मानस में जिस समाज का वर्णन किया हैं वह सत्वपधान था वहाँ विलक्षणता सामान्यीकरण को प्राप्त हो चुकी थी तभी वहाँ का वातावरण सदैव सुरम्य बना रहता था। जड़ हो या चेतन सभी चेतना की प्रकृष्ट अवस्था में स्थित थे। इसी कारण उनका परस्पर व्यवहार भी आज की दृष्टि से विलक्षण ही था। राम के नंगे पैर वन में चलने वर पृथ्वी संकोच से मृदु हो जाती है। मानस में वर्णित है कि 'भई मृदु भोमि संकुचि मन मनहीं। चित्रकूट (अयोध्याकाण्ड) के प्रसंग में भरत को राम का अतिप्रिय जानकर उसी पृथ्वी ने अपने कुश, काँटे कंकड़ी, दरारे आदि कड़वी, कठोर, और बुरी वस्तुओं को छिपाकर मार्ग कोमल कर दिया था। पवन भी भरत के लिए सुखदायक, शीतल, मन्द, सुगंध हो गया एवं देवता आकाश से पुष्प वर्षा करके, नीरद छाग करके, वृक्ष फल-फूल कर, तृण अपनी कोमलता से, मृग अपनी दृष्टि से, और पक्षी कलरव से उन रामानुज की सेवा करने लगे। राम के राज्याभिषेक के अवसर पर अयोध्यावासियों के समान ही सम्पूर्ण वातावरण को रमणीक कर देते हैं।

'फूलहिं फरहिं सदा तरू कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन।'
'खगमृग सहज बयरू बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।'
'सीतल सुरभि पवन बह मंदा, गुंजत अलि लै चलि मकरंदा।'

✠✠✠✠ ✠✠✠✠

'अति प्रसन्न दस दिशा बिभागा।' 7/22/1-5
'बिधु महि पूर मयूरवन्हि रबि तप जेत नेहि काज'
'मांगे बारिदं देहि जल रामचन्द्र के राज। 7/13

पर्यावरण की दृष्टि से सर्वाधिक आवश्यक वृक्षों की महिमा रामचरितमानस में विशेष रूप से वर्णित है। मानस में वन देवता की एक प्रमुख देवता के रूप में स्तुति है। इसी प्रकार अयोध्याकाण्ड (2/307/3) के एक प्रसंग में परम पवित्र वनदेवता को सकल सुमंगलों का दाता कहा गया है 'मुनिप्रसाद बनु मंगलदाता' जो भरत के भातृप्रेम और सेवाभावना को देख प्रसन्न होकर उन्हें अपने आर्शीवाद से अभिसिंचित करते हैं

देखि सुमाउ सनेहु सुसेवा।
देहिं असीस मुदित बन देवा।।2/311/4

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्योध्याकाण्ड में एक अन्य स्थल पर (2/317/3) भरत और शत्रुध्न को वनदेवता से विनती करते हुए वर्णित किया गया है।

मुनि तापस बनदेव निहोरी।
सब सनमानि बहोरि बहोरि।।

वन देवता की सर्वाधिक महिमा तो माता कौशल्या के उन वचनों से प्रकट होती है जब उन्होंने वनजाते हुए राम को आर्शीर्वाद देते हुए कहा था कि वन में (2/55/2) वन देवता तुम्हारे पिता एवं वनदेवी तुम्हारी माता होगी। पितु वनदेव मातु बनदेवी। बनदेवता ने भी कौशल्या के आशीर्वचनों की मर्यादा रखीं और वृक्षों की छाया, कन्दमूल फलादि खाद्य पदार्थों, शीतल सुखकर वायु आदि के माध्यम से राम को उसी प्रकार सुख-सुविधा और संरक्षण प्रदान किया जिस प्रकार पिता अपनी संतान को करता है। इस प्रकार कौशल्या का संदेश है कि वन राम के समान ही मानव समाज के भी संरक्षकहो सकते है। मनुष्य वनों पर सुखपूर्वक आश्रित रह सकता है। वन शरणागत का पिता तुल्य उसी प्रकार संरक्षण करते हैं जिस प्रकार राम का किया था। अतः वनों के प्रति पिता के सदृश ही श्रद्धा एवं संरक्षण का भाव अपेक्षित है।

सिक्ख धर्म के पवित्र एवं महान् धर्मग्रंथ गुरुग्रंथ साहिब में पर्यावरण संरक्षण, प्रकृतिरक्षा, जीवरक्षा, सृष्टिरक्षा, के विषय में महत्वपूर्ण मान्यताओं का वर्णन हुआ है। जपुजी साहिब गुरु नानक की महत्वपूर्ण रचना है यह पवित्र कृति दो सौ तिरपन पक्तियों की हैं इसके आरंभ में मंगलाचारण में, गुरू नानक देव जी ने बतलाया है कि परमात्मा एक है वह विश्व का निर्माता और सृजक हैं। वह असीम, अजन्मा, न्यायकारी, अनंत और अनादि है वह स्वयंमू है वह सर्वत्र प्रकाशित है ऐसे ब्रह्म की प्राप्ति गुरू कृपा से प्राप्त होती है अतः ऐसे परमात्मा का नाम जप सदैव करना चाहये। जपुजी साहिब में एक श्लोक प्रकृति संरक्षण की भावना पर निर्भर हैं उसमें प्रकृति और मानव को परस्पर एक-दूसरे का पूरक और अन्योन्याश्रित बतलाया है

पवणु गुरु पानी पिता माता धरति महतु।
दिवसु राति दुई दाई दाइआ खेले सगल जगतु।'
योगेआईआ वुरिआईआं वाचै-धरमुह दूरिं
करमी आपो आपजी के नेड़े के दूरि।'
जिमि नामु धिआइआ गए मसकति धालि'
नानक ते मुख उजले केति छूटी मालि''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु नानक देव के अनुसार पवन गुरु है, पानी पिता है, धरती माता है तात्पर्य यह है कि पांच तत्वों से निर्मित मानव शरीर का संरक्षण भी जल और पृथ्वी कर रही है। और पवन रूपी गुरु उसे शिक्षा प्रदान कर रहे हैं ओर जीव को अपने कर्मानुसार शुभ और अशुभ फल की प्राप्ति हो रही है। जो गुरु की अनुकंपा से ही भगवान् के नाम मे प्रवृत्त हो रहे हैं उन्हें जन्म धारण करने का फल भी प्राप्त हो जाता है और ऐसे व्यक्ति स्वयं तो मुक्त होते ही है और दूसरों को भी भवसागर से पार उतार देतें हैं। अतः सही अर्थ में प्रकृति ही मानव की जनक और जननी दोनों ही है और प्रकृति उसे शिक्षा प्रदान करने वाला गुरु भी है। इसलिए मानव को प्रकृति का सान्निध्य प्राप्त करना आवश्यक है परन्तु अति भौतिकता ने मानव को प्रकृति से दूर कर दिया है और यह दूरी प्रतिदिन बढ़ती जा रही है जिसके कारण परिस्थिकीय सन्तुलन बिगड़ गया है इसलिए मानव को वापिस प्रकृति के सान्निध्य में लाया जाना जरूरी है ताकि वह प्रकृति के विषय में गहन-चिंतन-मनन कर सके और अपने अस्तित्व को बचा सके। आधुनिक मानव के लिए यह अति आवश्यक हो गया है कि वह शुद्ध पर्यावरण को ही धर्म के एक आवश्यक अंग के स्वरूप में अंगीकार करे। तभी पर्यावरण संरक्षण संभव हैं। वर्तमान समय में मानव की सभी प्रक्रियाएं व जीवन का प्रत्येक आयाम विज्ञान व तकनीकी ज्ञान से संबंधित हो गया है और इन्हीं कारणों से मानव धर्म से हटकर के पर्यावरण प्रदूषण की समस्या और उसके निराकरण के उपायों की खोज कर रहा है परन्तु मानव को प्रदूषण की समस्या से निजात दिलाने के लिए धर्म के पर्यावरणीय स्वरूप को खोजना होगा। तभी मानव और प्रकृति का सन्तुलन होगा जिससे विश्वव्यापी पर्यावरण प्रदूषण की ज्वलंत समस्या का समाधान होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोगवाद की जिहीर्षा में संस्कृत की भूमिका

डॉ0 मीरा द्विवेदी
प्रोफ़ेसर, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्राचीन काल में भारतवर्ष को विश्वगुरु के महनीय पद पर प्रतिष्ठित करने वाले महिमा मण्डित उपादानों में संस्कृत का स्थान सर्वप्रमुख है। आचार्य दण्डी ने इसे दैवीवाक् कह कर गौरवान्वित किया है-

''संस्कृतं नाम दैवीवागन्वाख्याता मनीषिभिः''[1]

संस्कृत के लिए प्रयुक्त गीर्वाणी, गीर्वाणवाणी, देवभाषा आदि अभिधान इसे दिव्य भाषा सिद्ध करते हैं। जिसका तात्पर्य है- सत्य, अहिंसा, त्याग, उदारता, सहिष्णुता, क्षमा, बन्धुत्व, मैत्री मुदिता, कारुण्य आदि दिव्यगुणों का आधान करने वाली मूल्य प्रधान भाषा ही संस्कृत भाषा है। संस्कृत साहित्य में निश्चय ही उक्त गुणों का संचार करने की क्षमता है। इस तथ्य का सर्वप्रथम उद्घाटन करती हुई यह ऋचा कहती है-

''अहमेवं स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।।[2]

आशय यह है कि दिव्यवाक् ही मानव को ऋषि, देवता अथवा विद्वान् बनाती है। प्रस्तुत लेख में संस्कृत भाषा के एक विशिष्ट गुण भक्ति एवं मुक्ति में समन्वय-क्षमता से शुष्क भोगवाद की जिहीर्षा के लिए संस्कृत की भूमिका का आकलन किया गया है।

आधुनिक काल में आज देश एवं समाज स्वार्थपरता एवं भोगवाद की जीवन-शैली से विघटनोन्मुख हो रहा है। स्वार्थपरता एवं भोगवाद से जुड़ी उत्कोच, चोरी, अपहरण, हिंसा, बलात्कार, भ्रष्टाचार आदि आसुरी वृत्तियाँ समाज को ग्रास बनाने के लिए सुरसा की तरह अपना मुख फैलाकर खड़ी हो गयी हैं। जनसामान्य विवश हो इनका भक्ष्य हो रहा है। वृकोदर के उदर के समान उनकी बुभुक्षा शान्त नहीं हो, रही है। इसका सबसे बड़ा कारण है अपनी संस्कृति के उदात्त गुणों को छोड़करत पाश्चात्त्य संस्कृति के मूल 'भोगवाद' का अन्धानुकरण। सम्प्रति विश्व में अमेरिका समृद्धतम देश माना जाता है। उसकी भोगवादी भौतिक समृद्धि की चाकचिक्य से हतप्रभ होकर युवा प्रतिभाएँ वहाँ पलायन कर रही हैं। इतना होने पर भी एक उद्घोष सर्वत्र सुनाई देता है कि ''मेरा भारत महान्''। यह सत्य है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश ने विज्ञान, प्रविधि, चिकित्सा, उद्योग आदि बहुविध क्षेत्रों में सन्तोष जनक उन्नति की है। क्या इस उन्नति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कारण भारत महान् है? इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक ही प्राप्त होता है क्योंकि इन क्षेत्रों में अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी व जापान आदि देश हम से अधिक समुन्नत हैं? इन भौतिक उन्नतियों से भारत कथमपि महान् नहीं कहा जा सकता। इस विश्व व्यापिनी महत्ता का कारण निम्नलिखित सूक्ति में निहित है-

''भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं चैव हि संस्कृतिः''

अर्थात् संस्कृति एवं उसकी संवाहिका संस्कृत ही भारत की प्रतिष्ठा व महानता का मूलाधार हैं। इन्हीं ने भारतवर्ष को विश्वगुरु के गरिमामय आसन पर अभिषिक्त किया था। सम्प्रति इनकी उपेक्षा एवं भोगप्रधान उपभोक्तावादी जीवनचर्या ने हमें पतन के गर्त में डाल दिया है। कतिपय विचारक भोगवाद के साथ संस्कृति पद जोड़कर इसे भोगवादी संस्कृति कहते हैं। यह उचित नहीं क्योंकि संस्कृति का सम्बन्ध महान् बनाने वाले संस्कारों से हैं लेकिन भोगवाद तो भ्रष्टाचार, उत्कोच, स्वार्थपरता आदि विकृतियों को ही जन्म देता है।

प्रायः संस्कृतभाषा, साहित्य एवं उसके अनुगामियों पर यह आरोप लगाया जाता है कि ये भौतिकता, भोगवाद, वैज्ञानिक उन्नति एवं संसाधनों के प्रयोग की उपेक्षा करते हैं। यह आरोप समीचीन प्रतीत नहीं होता। वैदिक साहित्य से लेकर परवर्ती संस्कृत साहित्य के उत्कर्ष का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि हमारे तपःपूत ऋषियों, मुनियों व पूर्वजों ने पारलौकिक अभ्युत्थान के साथ-साथ लौकिक समुन्नयन को भी समान महत्त्व दिया था। वैशेषिक सूत्र कहता है-

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।[3]

हमारी आर्षीय परम्परा ने जहाँ त्याग, तप, संयम, देवोपासना में निरत रहकर पारलौकिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया था वहीं भौतिक जीवन को समृद्ध बनाने के लिए स्वास्थ्य, आजीविका आदि की दृष्टि से विविध शास्त्रों व ज्ञान-विज्ञानों का विकास भी कर लिया था। जिन्हें उपनिषद में परा-अपरा या विद्या-अविद्या नाम से कहती हैं।[4]

प्राचीन-संस्कृत-साहित्य वेद, उपनिषद् पुराण, धर्म, इतिहास, दर्शन, काव्य-नाट्य, संगीत, चित्र, वास्तु, व्याकरण, खगोल, भूगोल, पशुविज्ञान, छन्दःशास्त्र, भौतिकी, रसायन आदि विविध ज्ञान-विज्ञान के विषयों से पर्याप्त समृद्ध हैं। कपिल, कणाद, पतंजलि, जैमिनि, शंकर आदि के सिद्धान्त जहाँ आध्यात्मिक उन्नति की पराकाष्ठा सिद्ध करते हैं; वहीं कामसूत्र, अर्थशास्त्र, ललितविस्तर, मनुस्मृति आदि ग्रन्थ भौतिक, समृद्धि के चूडान्त निदर्शन हैं। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य आदि मनीषियों की आर्यभट्टीय, बृहत्संहिता, लीलावती आदि रचनाएँ आज के सन्दर्भ में विज्ञान कही जाने वाली विद्याओं से भी समृद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। अतः प्राचीन भारत में आध्यात्मिक ज्ञान के उत्कर्ष के साथ-साथ भौतिक उन्नति के विकास के पुष्कल प्रमाण आज भी विद्यमान हैं, परन्तु आज के भौतिक उपभोक्तावादी परिवेश से उसकी यही भिन्नता है कि उस समय अध्यात्म एवं भौतिकता में पूर्ण सामंजस्य था। भोगप्रधान लालसाओं को विष के समान भयंकर माना जाता था।[5] जबकि आज केवल भोगवाद को प्रश्रय दिया जा रहा है। ईशावास्योपनिषद् का वचन प्रमाण है कि जो मात्र अविद्या (अपरा) का आश्रय लेते हैं वे अन्धकार (विनाश) को प्राप्त करते है तथा जो मात्र विद्या का आश्रय लेते हैं वे उनसे भी अधिक घोर अन्धकार को प्राप्त करते हैं-

"अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः।[6]

इसका कारण यह है कि अविद्या अथवा अज्ञान जहाँ पूर्णतः भोगवाद को ही प्रश्रय देते है; वहीं विद्या का मिथ्या अहंकार वृद्धि को प्राप्त हुआ साधक को पतन के गर्त में डाल देता है। अतः इनके सामंजस्य को व्यवहार में लाये बिना जीवन अपूर्ण ही बना रहता है। जीवन के चरमोत्कर्ष तथा पूर्ण आदर्श जीवन जीने के लिए दोनों मार्गों के समन्वय का निर्देश करती हुई ईशोपनिषद् कहती है-

"विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।[7]

विद्या अर्थात् आध्यात्मिक-विषयज्ञान, अविद्या अर्थात् लौकिकविषयज्ञान इन दोनों के तत्व को जो भली-भांति जानता है। वह अविद्या से मृत्युरूप संसार को पार करके विद्या द्वारा अमृतत्व को प्राप्त करता है।

इस प्रकार प्राचीन काल में आदर्श जीवन के दो मार्ग थे- भौतिक एवं आध्यात्मिक। भौतिक मार्ग लौकिक सुख पर अवलम्बित था। इसमें सांसारिक ऐश्वर्य व भोग की प्रधानता थी। भौतिक सुख को अस्थायी, क्षणिक, नश्वर व भयंकर माना गया था।[8] इसके विपरीत आध्यात्मिक मार्ग पारलौकिक सुख का अवलम्ब था। इसे स्थायी, शाश्वत व सत्य माना गया। प्राचीनकाल में यह धारणा प्रचलित थी कि सांसारिक माया, मोह, ऐश्वर्य भोग-विलास कामना, वासना आदि वृत्तियाँ मनुष्य को दिग्भ्रान्त करके पतन की ओर ले जाती हैं। जबकि आध्यात्मिक वृत्तियाँ मानव को निःस्वार्थ, सात्त्विक व संयमित जीवन यापन करने के लिए प्रेरित करती है। यदि मानव कामजन्य वृत्तियों के लिए प्रयत्नशील रहता है तो जीवन को संयमित एवं मर्यादित बनाना भी उसका धर्म है।[9] वास्तव में सकल विश्व में भारतीय जीवन पद्धति ही ऐसी पद्धति है जो श्रेयस्-प्रेयस्, योग-भोग, मुक्ति-भुक्ति, साधना-वासना, और प्रवृत्ति-निवृत्ति के युग्मों को समान महत्त्व देकर उनके मर्यादित,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समन्वित रूप को काम्य मानती है। इनमें परस्पर समन्वय का नाम ही पुरुषार्थ है। अर्थ एवं काम लौकिक सुख प्रदान करते हैं वही धर्म और मोक्ष पारलौकिक सुख देते हैं। इन चारों में भी मोक्ष साध्य है। शेष त्रिवर्ग उसकी प्राप्ति में साधन हैं।

भारतीय परम्परा के अनुसार जनन-मरण के संसरण रूप चक्र से मुक्ति ही मोक्ष है। स्पष्टत: इस दृष्टिकोण में लौकिकता को जीवन का लक्ष्य न मानकर पारलौकिकता को जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। पाश्चात्त्य संस्कृति के भोगवाद से भारतीय भोगवाद का यही पार्थक्य है यह कि मध्यममार्ग पर चलकर जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति करा ब्रह्म सायुज्य पर बल देता है। इस मध्यम-मार्ग की प्राप्ति के लिए संस्कृतसाहित्य दिशा निर्देश देता है कि धर्म ही सन्मार्ग दिखाता है अर्थात् अर्थ एवं काम धर्मसम्मत होने पर ही प्रशस्य एवं ग्राह्य हैं। भारतीय संस्कृति में धर्म का आशय अत्यन्त गूढ़ व विस्तृत है। सामान्य रूप से यह वह आचार-संहिता है जो देश, काल एवं परिस्थिति के अनुरूप व्यक्ति के आचरण को व्यवस्थित, नियमित एवं संयमित करके उज्ज्वल जीवन जीने के लिए मार्ग प्रशस्त करती है। इसलिए अर्थ एवं काम को धर्म के अंकुश में ही ग्राह्य माना गया है।

प्राचीन परम्परा धनोपार्जन को त्याज्य नहीं मानती है। शुक्रनीति[10] कहती है कि थोड़े धनोपार्जन से सन्तुष्ट होने वाले व्यक्ति की उन्नति नहीं हो सकती। धनार्जन रोक देने पर तो कुबेर का भण्डार भी रिक्त हो सकता है। शिशुपालवधम् में माघ कहते हैं कि "जो थोड़ी भी सम्पत्ति से अपने को सुस्थिर मानता है, कृतकृत्य ब्रह्मा भी उसकी सम्पत्ति को नहीं बढ़ाते हैं-

"संपदा सुस्थिरम्मन्यो भवति स्वल्पयापि यः।
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य तान्॥[11]

इसलिए वित्तोपार्जन तो परम आवश्यक है। परन्तु अर्थोपार्जन धर्मसम्मत व धर्म पुरुषार्थ की सिद्धि के निमित्त होना चाहिए, न कि भोग विलास के लिए। महाभारत में भी धर्म एवं अर्थ की उभ्याश्रित अवस्था पर बल दिया गया है-

"योऽर्थो धर्मेण संयुक्तो धर्मो यश्चार्थसंयुतः।
तद्धि त्वाममृतसम्वादं तस्मादेतौ मताविह॥[12]

इसप्रकार हमारी आर्षपरम्परा न तो पूर्णत: वित्त की प्रवृत्ति को श्रेयस्कर मानती है न ही पूर्णत: निवृत्ति को। अत: धर्म एवं अर्थ का संतुलन ही स्वार्थपरक भोगवादी भावना को नियन्त्रित कर सकता है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम भी प्रवृत्ति मूलक पुरुषार्थ है, जिसकी सिद्धि के लिए मानव अर्थ का संचय करता है परन्तु यह भी धर्म सम्मत होने पर ग्राह्य होता है। अर्थशास्त्र में कौटिल्य धर्माविरोधि काम के सेवन का ही निर्देश देते हैं-

धर्माविरोधेन कामं सेवेत। न निःसुखं स्यात्।[13]

श्रीमद्भगद्गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं को धर्माविरुद्ध काम कहकर उसे ग्राह्य बना दिया है-

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।[14]

धर्मरहित काम, लोलुपता एवं भोगवाद की सृष्टि कर विवेक को नष्ट करता है-

यो धर्मार्थौं परित्यज्य काममेवानुसेवते।
स धर्मार्थपरित्यागात् प्रज्ञानाशमिच्छति।।[15]

त्रिवर्गरूप पुरुषार्थ का रहस्य यही है कि भोगवाद के मूल आधार अर्थ एवं काम का सार धर्म को माना जाए। इसके सम्पर्क से दोनों सेवनीय हो जाते हैं। कालिदास की यह उक्ति सर्वथा समीचीन लगती है-

''अनेन धर्मः सविशेषमद्य मे त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भाविनी।
त्वया मनोनिर्विषयार्थकामया यदेक एव प्रतिगृह्य सेव्यते।।[16]

भोगवादी संस्कृति पर प्रहार करते हुए हितोपदेश स्पष्टतः कहता है कि मनुजता एवं पशुता में भेद धर्म के ही आधार पर होता है। अन्यथा आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि मूल प्रवृत्तियाँ तो दोनों में समान होती हैं।[17]

महाभारत काल में जब भोगवाद ने अपनी जड़े जमानी आरम्भ कर दी थीं तब वेदव्यास ने धर्म के माध्यम से ही अर्थ एवं काम का सेवन करने के लिए सचेत किया था-

ऊर्ध्वबाहुर्विरोम्येष न हि कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्कामश्च स किमर्थं न सेव्यते।।[18]

मानवीय धर्मशास्त्र के निर्माता मनु भी धर्मरहित अर्थ व काम के परित्याग की सम्मति देते हैं-

परित्यजेदर्थकामौ यो स्यातां धर्मवर्जितौ।
धर्मश्चाप्यसुखोदर्क लोकविक्रुष्टमेव च।।[19]

महाकवि कालिदास ने भी भोग एवं योग के समन्वय का प्रभावशाली दृश्य अभिज्ञानशाकुन्तलम् के सप्तम दृश्य में प्रस्तुत किया। महर्षि कश्यप की तपोभूमि को देखकर दुश्यन्त विस्मित होकर कहता है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने।
तोये कांचनपद्मरेणुकपिशु धर्माभिषेकक्रिया।
ध्यानं रत्नशिलातलेषु विबुधस्त्रीसंनिधौ संयमो
यत्कांक्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिँस्तपस्यन्तमी।।[20]

अर्थात् ये तपस्वी लोग उन वस्तुओं के मध्य तपस्या कर रहे हैं जिन्हें पाने के लिए अन्य मुनि प्राणायाम पूर्वक वायु का अवरोध करके तप करते हैं यहाँ के कल्पवृक्षों के वन की वायु पीकर जीते हैं सुनहरे कमल के पराग से सुवासित जल में स्नान करते हैं रत्न शिलाओं पर बैठकर समाधि लगाते हैं और अप्सराओं के मध्य में बैठकर तप साधते हैं।

संस्कृत-वाङ्मय विषयासक्ति एवं विलासिता पूर्ण जीवन को केवल अनिष्टकारी ही नहीं मानता प्रत्युत् उसके परित्याग का मार्ग भी बताता है।

ईशावस्योपनिषद् भोगवाद के परित्याग के लिए त्यागवृत्ति के ग्रहण व लिप्सा के परित्याग को आवश्यक मानती है-

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।[21]

अर्थात् ईश्वर की दी गई वस्तुओं का त्याग पूर्वक भोग करो किसी के भी धन की अभिलाषा मत करो। ''तस्मिँस्तपस्यन्तमी'' के रूप में कालिदास भोगवाद से बचने के लिए जहाँ तप का उपदेश करते हैं वहीं ईशोपनिषद् त्याग वृत्ति को अपनाने का उपदेश देती है। 'सहस्रहस्त संकिर' के रूप में अथर्ववेद उन्मुक्त हाथ से दान का उपदेश कर संग्रहवृत्ति का निषेध करता है।[22]

निष्कर्षतः संस्कृतज्ञ चिन्तनकारों ने भोगवाद की अतिवादिता और कामुकता के अतिरेक को नियन्त्रित करने के लिए धर्म संवलित भोग का पक्ष प्रस्तुत किया। ताकि व्यक्ति का जीवन नैतिकता, सदाचार , शुचिता, धर्मनिष्ठा, संयम व अनुशासन से समाजोपयोगी बन कर समाज एवं राष्ट्र के सर्वांगीण विकास का सूत्रपात कर सके। अव्यवस्थित व स्वार्थपरक भोग अस्थिर होने से मानसिक विकृतियों को जन्म देकर परिवार, समाज, देश व विश्व के लिए विघटनकारी बन सकता है। भोगवाद के दुष्परिणामों की परम्परा का यथार्थ निदर्शन कराने वाली गीता के अधोलिखित वाक्य भोगवाद से बचने की प्रेरणा देते है:-

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते
संगात् संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।[23]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् विषयों का ध्यान करने से पुरुष की उनमें आसक्ति होती है कामना में बाधा से क्रोध होता है। क्रोध से सम्मोह होता है। सम्मोह से स्मृति नष्ट हो जाती है। स्मृति नाश से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि के नाश से व्यक्ति का ही नाश हो जाता है। यहाँ पुनः पाश्चात्य विचार से विसंगति लगती है। पाश्चात्य विचारक कहते हैं कि काम की वृत्ति दबा देने से अनेक प्रकार की मनोग्रन्थियाँ अथवा रोग उत्पन्न हो जाते हैं इन वृत्तियों के चरितार्थ होने से स्वास्थ्य ठीक रहता है। जबकि भारतीय विचारधारा काम व भोग के त्याग[24] का पक्ष रखती है-

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।[25]

कामनाओं एवं वासनाओं का अन्त नहीं होता। भोग से वे अग्नि में पड़े घृत से वृद्धि को प्राप्त ज्वाला के समान और भड़क उठती हैं। इसलिए भोग पर योग का, वासना पर साधना का, भौतिकता पर अध्यात्म का, प्रवृत्ति पर निवृत्ति का अंकुश लगाकर इनमें समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।

इस प्रकार भोग प्रधान जीवन शैली से मुक्ति के लिए संस्कृत वाङ्मय एवं उसमें निहित असंख्य सूक्ति रत्न पग-पग पर मार्ग निर्देशित करते हैं। इक्किसवीं शती के प्रगतिशील औद्योगिक एवं वैज्ञानिक क्रान्ति के युग में निरन्तर वृद्धि को प्राप्त भोगवाद की जिहीर्षा के लिए संस्कृत साहित्य से अपेक्षाएँ और अधिक बढ़ जाती हैं। यह कार्य चुनौतीपूर्ण तथा कठिन अवश्य है लेकिन असम्भव नहीं है। इस सम्बन्ध में जवाहरलाल नेहरू के ये उद्‌गार प्रासंगिक लगते हैं कि "इसमें से उन लोगों के लिए भी, जिन्होंने कि संस्कृत पढ़ी है, इस प्राचीन भाषा के भाव में पैठ सकना और उसकी पुरानी दुनिया में फिर रह सकना बहुत आसान नहीं है लेकिन हम कुछ हद तक ऐसा कर सकते हैं क्योंकि हम उन पुरानी परम्पराओं के वारिस हैं और वह पुरानी दुनिया हमारी कल्पनाओं में चिपटी हुई है।"[26]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाद-टिप्पणियाँ

1. काव्यादर्शः, (दण्डी), 1/33
2. ऋग्वेदः, 10/125/5
3. वैशेषिकसूत्रम् (कणाद) 1/1/2
4. (क) द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च। -मुण्डकोपनिषद्, 1/2
   (ख) अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया
   इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे।। ईशावास्योपनिषद्- 10
5. वृद्धास्तृष्णाजलापूर्णरालवालैः किलेन्द्रियैः।
   मूर्च्छामतुच्छां यच्छन्ति विकारविषपादपाः।। ज्ञानसारः 7/2
6. ईशावास्योपनिषद्-9
7. पूर्वोक्त- 10
8. नागभोगोपमा भोगा भीमा नरकपातिनः।
   तेषु कुर्यान्नरः संगं को वा यः स्यात्सचेतनः- पद्मपुराणम् 5/234
9. वित्तैषणां यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतैषणाम्।
   आत्मलोकैषणां देवकालेन विसृजेद् बुधः।। श्रीमद्भागवतम्। 10/84/38
10. शुक्रनीतिः 1/18
11. शिशुपालवधम्, माघ, 2/32
12. महाभारतम्, शान्तिपर्व, 162/89
13. अर्थशास्त्रम् (कौटिल्य), 1/7/6-7
14. श्रीमद्भगवद्गीता- 7/11
15. महाभारतम्, शान्तिपर्व, 123/15
16. कुमारसम्भवम्, (कालिदास), 5/38
17. आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतद् पशुभिर्नराणाम्।
   धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेणहीनाःपशुभिःसमानाः।। (हितोपदेशः, प्र. 11)
18. महाभारतम्, स्वर्गारोहणपर्व, 5/62
19. मनुस्मृतिः, 4/176
20. अभिज्ञानशाकुन्तलम् (कालिदास, 7/12
21. ईशावास्योपनिषद्,1
22. शतहस्तसमाहार सहस्त्रहस्त संकिर- अथर्ववेदः 3/24/5
23. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/26, 63
24. (क) यदा निवृत्तः सर्वस्मात् कामो योऽस्य हृदि स्थितः।
   तदा भवति सत्त्वस्थस्ततो ब्रह्म समश्नुते।। - महाभारतम्, शान्तिपर्व, 66/38
   (ख) भोगात्तदिच्छाविरतिः स्कन्धभारानुपत्तये।
   स्कन्धान्तरसमारोपस्तत्संस्कारविधानतः।। योगदृष्टिसमुच्चयः, 16
25. महाभारतम्, आदिपर्व, 65/50
26. हिन्दुस्तान की कहानी, पृ. 220, 1999 सन्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक साहित्य में वर्णित वस्त्र - एक विवेचन

- डॉ० भावना आनन्द
हरिद्वार

वस्त्र किसी भी समाज के अतीत को जानने व समझने के महत्वपूर्ण स्रोत होते हैं, जिनके माध्यम से तत्कालीन समाजिक एवं आर्थिक स्थिति की जानकारी तथा संस्कृति-सभ्यता से सम्बन्धित चेतना का ज्ञान होता है। वस्त्रों का प्रभाव धारण करने वाले के मन पर भी देखने को मिलता है, स्त्री व पुरुष द्वारा धारण किए जाने वाले वस्त्रों की भिन्न बनावट मात्र लिंग भेद से ही नहीं होते बल्कि एक सामाजिक परम्परा को परिलक्षित करते हैं।

यह अधिकांशत: सभी जानते हैं, कि प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य नग्न अवस्था में रहता था, लेकिन ज्यों-ज्यों उनके मस्तिष्क का विकास हुआ अपने-अपने आप को सुन्दर रूप से प्रदर्शित करने की जिज्ञासा उठी जिसके फलस्वरूप उसे विभिन्न पुष्प-पत्रों, जानवरों की खालों, नाखूनों को धारण करना प्रारम्भ कर दिया। **लारेन्स लांगनर** ने इन सभी प्राकृतिक उपकरणों द्वारा बने वस्त्रों को अपने मूल रूप में 'आविष्कार' माना है और मानव की हीनता की भावना का इन अविष्कारों को मूल प्रेरक माना है।[1]

इसके विपरीत पुरातत्वीय स्रोतों में देश के विभिन्न भागों में प्राप्त अभिलेख सिक्के, स्मारक, चित्रकला, उत्खनन, वैदिक ऋचाओं, ग्रन्थों में वस्त्रों के विभिन्न स्वरूपों का विस्तृत उल्लेख हुआ है। जिसके अध्ययन से उस युग की तत्सम्बन्धी परम्परा एवं मान्यताओं का स्पष्टीकरण अच्छी तरह से हो जाता है।

अत: यह निर्विवादरूपेण कहा जा सकता है, कि प्राचीन समय में चर्म निर्मित वस्त्रों का प्रचलन रहा होगा। तपस्वी एवं बनवासी मृगचर्म का व्याघ्र चर्म का भी प्रयोग करते थे।[2] कहीं-कहीं बाघ की खाल द्वारा निर्मित वस्त्रों का भी उल्लेख आता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कान्तमावक, प्रेयक, विसी, महाविसी, श्यामिका, कालिका, कदली, चन्दोत्तरा, शाकुला, सामूर, चीन-सी, सामूली, सातिना, वृक्षपुच्छा, नलतन्ला आदि नामों को देखने से चमड़ों की विविधता का अच्छा परिचय मिलता है।[3]

अर्थशास्त्र के अतिरिक्त अथर्ववेद से मुनियों द्वारा भूरे रंग का एवं आखेट से प्राप्त चर्म धारण करने का वर्णन मिलता है।[4] इसी प्रकार पंचविंश ब्राह्मण से भी इसी प्रकार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काले व सफेद दोहरे चर्म पहनने का वर्णन मिलता है।[5] वाजसनेयी संहिता तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में संमूर अर्थात् सांभर हिरण का चमडे के व्यापार का वर्णन मिलता है।[6]

पशु चर्म के अतिरिक्त ऊनी व रेशमी वस्त्रों का उल्लेख भी कई स्थानों में हुआ है। कोषेय शब्द जिनका प्रयोग रेशमी वस्त्रों के लिये किया गया था, प्राचीन समय में अधिक लोकप्रिय था। कुछ विद्वानों ने 'टसर' को 'कोषेय' का दूसरा नाम दिया है और सुझाव भी दिया है कि टसर संस्कृति के त्रसर शब्द का अपअंश है, जिनका उल्लेख ऋग्वेद व यजुर्वेद में आया है।[7] कोषेय का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में भी आता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में इसके लिए अलग ही सूत्र हैं।[8] रामायण में सीता को पीले रेशमी वस्त्र पहने बताया गया है।

(पति कोषेय वाससी - वाल्मीकि रामायण 2/40/9)

अर्थशास्त्र में रेशमी वस्त्रों के अन्तर्गत ही कपास से बने वस्त्रों का उल्लेख हुआ है। विभिन्न कपड़ों के नाम उनकी विशेषताएँ, लम्बाई-चौड़ाई, रंग-रूप तथा उनकी उत्पत्ति के स्थानों का विस्तृत वर्णन मिलता है। साथ ही पात्रौर्णसा पत्रों के रेशों से निर्मित रेशमी वस्त्रों का उल्लेख भी अर्थशास्त्र में हुआ है। पात्रों के तीन प्रकार के होते थे - मागधिक, पौण्डिक तथा सौवर्णकुड्यक। नागवृक्ष, लिकुच (बिड़हल), बकुल व वटवृक्ष उनके उत्पत्ति के स्थान में। इससे बने वस्त्र क्रमशः गोधूल, पीले, श्वेत तथा नवनीत वर्ण के होते हैं।[9]

चर्म व रेशमी वस्त्रों के अतिरिक्त ऊन निर्मित वस्त्रों का भी प्रचलन प्राचीन समय में होता आया है। ऊनी वस्त्रों के लिये रांकब शब्द प्रयोग होंता है। ऊनी वस्त्र भेड़ से प्राप्त होता था, एवं गंधार से आता था (सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धरणिमिवाविका - ऋग्वेद 126.7)। वैदिक साहित्य में भेड़ को ऊर्णावती तथा ऊन को ऊर्णा कहा गया है।[10] यजुर्वेद में ऊर्णम्रदसं अर्थात् मुलायम ऊन का भी वर्णन है।[11]

भेड़ के बालों के अतिरिक्त अर्थशास्त्रमें हिरन के बालों से बने ऊनी वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। ऊनी वस्त्रों पर कसीदे का काम भी होता था। कभी-कभी बुनाई के साथ उन पर आकृतियों का अंकन कर दिया जाता था। विभिन्न प्रकार के कई टुकड़ों को जोड़कर तथा जालीदार ऊनी वस्त्र भी उस समय बनते थे। संपुलिका, चतुराश्रिका, लम्बरा, कटवानक, प्रावरक, सतलिका आदि मृग के रोम से बनने वाले विशेष वस्त्र थे। इन वस्त्रों की बुनाई इकहरे, इहरे, तीहरे व चौहरे धागों से होती थी।[12]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपरोक्त वर्णित वस्त्रों से इतना तो स्पष्ट है कि प्राचीन समय में विभिन्न प्रकार के निर्मित वस्त्रों का विशेष चलन था। जिसकी समानता हम आज के वस्त्रों से भी कर सकते हैं। साथ ही यह भी ज्ञात होता है, कि ऋग्वेद और बाद के साहित्य में पहनने के कपड़ों के लिये साधारणत: वासान शब्द का प्रयोग हुआ है। वासस और वस्त्र के भी एक ही अर्थ होते हैं।

सुवसन का सव्यवहार खूबसूरत कपड़ों तथा अच्छी तरह से पहने गए वस्त्र दोनों के लिए हुआ है। सुरभि शब्द से पता चलता है कि पहनने के वस्त्र बदन पर ठीक बैठते थे। समाज में बढ़िया कपड़े पहनने वालों को मान दिया जाता था, ऐसा शतपथ ब्राह्मण में वर्णन प्राप्त होता है।[13]

जहाँ तक ऋतुओं के अनुकूल वस्त्र धारण करने का प्रश्न है, तो यदि हम प्राचीन साहित्य पर दृष्टि डालें तो पायेंगे की कालिदास के समय में भी ऐसा होता था। गर्मियों में प्राय: हल्के, रेश्मी वस्त्र जिन पर मुक्ता रत्न इत्यादि लगे रहते थे, धारण किए जाते थे।[14] वर्षा ऋतु में स्त्रियां अत्यन्त महीन उजा वस्त्र (प्रतनुमित प्रकूल)पहनती थी। शिशिर ऋतु में भयंकर सर्दी पड़ने पर स्त्रियां मोटे वस्त्र (गुरुणि बांससि) पहनती थी। बसन्त आते-आते शीत समाप्त हो जाती थी, इस कारण स्त्रियां मोटे वस्त्र उतारकर लाक्षारस से रंजित महनि व कालागुरू से धूमिल वस्त्र पहनती थी।[15]

इस प्रकार भारत में ऋतुओं के अनुकूल वस्त्र धारण करने की परम्परा प्राचीन हैं, जिसका स्पष्ट उदाहरण हम आज भी देख सकते हैं।

वैदिक साहित्य के अध्ययन से प्राप्त विवरणों के आधार पर ज्ञात होता है, कि प्राचीन समय में वस्त्रों को विभिन्न भोगों में विभक्त किया जाता होगा।

1. उष्णीय 2. उत्तरीय वस्त्र 3. अधोवस्त्र

1. उष्णीय:-

शिरोभूषा के रूप में प्रयोग आने वाले वस्त्रों को उष्णीय या पगड़ी कहा जाता था। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अथर्ववेद[16] तथा पंचविश[17] ब्राह्मण में आया हैं।

2. उत्तरीय वस्त्र:-

स्त्रियों द्वारा अपने शरीर के ऊपरी भाग को ढकने के लिए विभिन्न नामों से सम्बोधित किये जाने वाले उत्तरीय वस्त्रों का पता हमें वैदिक साहित्य से चलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल्मीकि रामायण में हमें स्तानोत्तरीय या स्तनाशुक नामक उत्तरीय धारण करने के प्रमाण प्राप्त होते हैं।[18]

नवीं-आठवीं शती के पूर्व के साहित्य में कुंचक, कूर्पासक, अंगिया आदि का जहाँ भी उल्लेख हुआ उसे पूरी बांह का कटि के नीचे पहनने वाला वस्त्र माना गया हैं।[19]

3. अधोवस्त्रः-

अधोवस्त्र धारण करने की प्रकृति प्राचीन समय से चली आ रही है एवं विभिन्न प्रकार के अधोवस्त्र हमेशा से स्त्रियों के आकर्षण का केन्द्र रहे हैं ऋग्वेद में इसे 'वाससअन्तरम्' की संज्ञा दी गई है। रामायण महाभारत में भी ऐसे संकेत मिलते हैं जो साड़ी को अधोवस्त्र सिद्ध करते हैं। ऋष्यमूक पर्वत पर उत्तरीय गिरा देने के कारण जब सीता के पास साड़ी या अधोवस्त्र ही बच गया था तो अशोक वाटिका में रावण को आता देख उन्होंने लज्जा के कारण जांघो से पेट बाहों से स्तनों को ढक लिया था।[20] इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि उस समय अधोवस्त्र आज की साड़ी की तरह नहीं होता था वरन् कटि के नीचे घुटनों वाला आज की धोती जैसा वस्त्र था।

'नीवि' नामक अधोवस्त्र भी प्राचीन समय में विशेष लोकप्रिय था 'नींवि' की उत्पत्ति 'नि' अर्थात् नीचे से ढ़कना या आच्छादित करना से कही गई है। नीवि इस ढंग से बांधते हैं जिससे उसमें सिलवटें पड़े और देखने में सुन्दर लगें।[21]

ऋग्वेद में भी यह शब्द कटिवस्त्र के लिये आया हैं महाभारत में रजस्वला द्रौपदी के सम्बन्ध में (**एक वस्त्र त्वाधनिविं**) का उल्लेख हुआ है।[22]

अतः उपरोक्त वर्णित विवेचना के आधार पर यही कहा जा सकता है, कि वैदिक साहित्य में वर्णित व प्रचलित वस्त्र सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। हमारे वैदिक साहित्य में न केवल भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्रों का वर्णन है बल्कि उनको कैसे पहना जाता था कैसे बनाया जाता था, उनकी रंगाई, बुनाई आदि का भी विशेष वर्णन हमें वैदिक साहित्य के मंत्रों विशेषतः ऋग्वेद, अथर्ववेद, वैदिक संहिताओं में स्पष्ट रूप से प्राप्त होता हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाद-टिप्पणियाँ

1. लारेन्स लांगनर - द इमपोटेन्स ऑफ वियरिंग क्लॉथ - पृ० 10
2. बलूनी दिनेशचन्द्र उत्तरांचल संस्कृति, लोकजीवन, इतिहास एवं पुरातत्व - पृ० 129
3. अर्थशास्त्र अधिकरण -1, अध्याय - 11, प्रकरण 29, पृ०- 129
4. अथर्ववेद 10.136.2
5. पंचविंश ब्राह्मण 17.1.15
6. वाजसनेयी संहिता - 30.15 तैत्तिरीय ब्राह्मण 3.2.13.1
7. डॉ० मिश्रा ममता - प्राचीन भारत में वस्त्र उद्योग - पृ० 33
8. चन्द्र मोती प्राचीन भारतीय वेशभूषा - पृ० -32
9. अर्थशास्त्र - अधिकरण - 2, अध्याय -11, प्रकरण-29, पृ०- 129, 131, 120, 112, 118
10. ऋग्वेद - 8.67.3, 7.36.3, 10.26.6
11. यजुर्वेद -2.2
12. अर्थशास्त्र - अधिकरण -2, अध्याय -11, प्रकरण - 29, पृ० - 107, 110, 130
13. चन्द्रमोती - प्राचीन भारतीय वेशभूषा - पृ०-16
14. राम लल्लन - रीतिकालीन - हिन्दी साहित्य में उल्लेखित वस्त्राभरणों का अध्ययन पृ०-52
15. ऋतु - 5/12/-6/15
16. अथर्ववेद - 15.2.1
17. पचविश ब्राह्मण - 17.1.14
18. रामायण - 5/19/3
19. राम लल्लन रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में उल्लेखित वस्त्राभरणों का अध्ययन - पृ० - 96
20. रामायण-51/19/3
21. चन्द्रमोती-प्राचीन भारतीय वेशभूषा- पृ० - 14
22. महाभारत-सभापर्व-अध्याय 67- श्लोक - 19

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेद की कुछ पहेलियां

डॉ० हरिहर प्रसाद
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर
पन्त नगर विश्वविद्यालय

भूमिका: पहेलियां तथ्यों को रहस्यमय रूप से प्रकट करती हैं। वेद के मंत्रों में प्रकृत जीव संसार से संबंधित सभी तथ्यों का वर्णन है। बुद्धिमान वेद-रत्न इन मंत्रों में अहिलौकिक और पारलौकिक दोनों रहस्यों का वर्णन मनुष्य के लाभ के लिये बताते हैं। इसी प्रकार वेद पहेलियों में गूढ़ अर्थ भरे होते हैं। प्रत्येक पहेली में कई अर्थ मिलते हैं। इस पत्र में दो पहेलियों पर विचार किया जायेगा और प्रत्येक पहेली के दो-दो अर्थ का वर्णन होगा।

प्रथम पहेली:

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थेऽअन्यान्या वत्समुपधापयेते।

हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रोऽ अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥ यजु० ३३.५॥

पदार्थः हे मनुष्यों! जैसे (स्वर्थे) सुन्दर प्रयोजन वाली (द्वे) दो (विरुपे) भिन्न भिन्न रूप से स्त्रियां (चरतः) भोजनादि आचरण करती हैं और (अन्यायान्या) एक अलग अलग समय में (वत्सम्) निरन्तर बोलने वाले एक बालक को (उप, घपयेते) निकट दूध पिलाती हैं उन दोनों में से (अन्यास्याम्) एक में (स्वधावान्) प्रशस्त शान्ति आदि अमृततुल्य गुणयुक्त (हरिः) मन को हरने वाला पुत्र (भवति) होता है दूसरों (शुक्रः) शीघ्रकारी (सुवर्चाः) सुन्दर तेजस्वी (अन्यस्याम्) दूसरी में हुआ (ददृशे) दिख पड़ता है। वैसे ही सुन्दर प्रयोजन वाले दो काले श्वेत भिन्न रूप वाले रात्रि दिन वर्तमान हैं और एक एक भिन्न भिन्न समय में एक संसार रूप बालक को दुग्धादि पिलाते हैं। इन दोनों से एक रात्रि में अमृतरूप गुणों वाला मन का प्रसादक् चन्द्रमा उत्पन्न होता है और द्वितीय दिन रूप बेला में पवित्रकर्ता, सुन्दर तेज वाला सूर्य रूप पुत्र दिख पड़ता है ऐसा तुम लोग जानों। ।।5।।

भावार्थः इस मंत्र में अनुमया भेदरूपलंकार हैं। यहां दो स्त्रियां संतान प्रयोजन वाली पृथक्-पृथक् वर्तमान भिन्न भिन्न समय में एक बालक की रक्षा करें। उन दोनों में हृदय को प्यारा महागुणी शान्तिशील बालक हो और दूसरी को शीघ्रकारी तेजस्वी शत्रुओं को दुःखदायी होवे।

इस मंत्र में 'द्वे विरूपे' दो भिन्न भिन्न रूप की स्त्रियों का वर्णन है जो एक वत्सम् की सेवा में लीन हैं, उसी के आधीन है। जब ऐसी परिस्थिति उपस्थित हुई तब आगे की रचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भ हुई। मंत्र में आगे की रचना दो स्वधावान्, हरिः, शुक्रः, सुवर्चा पुत्रों से प्रारम्भ किया है। सृष्टि कैसे बनी इस प्रश्न का उत्तर इस मंत्र में मिलता है। प्रश्नोपनिषद् में वर्णन किया जाता है कि प्रजापति ने सृष्टि रचना के लिये तप किया। इस तप से 'मिथुन' अर्थात् 'द्वित्व' उत्पन्न हुआ। इस द्वित्व का नाम 'प्राण' रखा गया इस द्वित्व से नानात्व उत्पन्न हुआ क्योंकि इस सृष्टि में नानात्व हैं। रयि तथा प्राण सापेक्षिक शब्द हैं। और एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक दूसरे के पूरक हैं। इस संदर्भ में जब मंत्र पर विचार किया जाता है 'वत्सम्' अर्थात् प्रजापति की सृष्टि रचना की इच्छापूर्ति के लिये 'द्वे विरूपे' अर्थात् 'द्वित्व' के द्वारा आगे की रचना प्रारम्भ हुई इन 'द्वे विरूपे' में एक को 'प्राण' और दूसरे को 'रयि' कहा गया। 'प्राण' घनात्मक-शक्ति और 'रयि' ऋणात्मक-शक्ति है। 'प्राण' चेतन अर्थात् जीव है जिस से चेतन जगत् की उत्पत्ति हो रही है। 'रयि' जड़ अर्थात् प्रकृति है जिससे जड़ जगत की उत्पत्ति हो रही है।

यह मंत्र वास्तव में में त्रैतवाद के सिद्धान्त को प्रतिपादित करता है। वैदिक सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि रचना के तीन कारण हैं, ईश्वर, प्रकृति और जीव। ये तीनों क्रमशः निमित्ति कारण 'उपादान कारण' 'साधारण कारण' हैं। ये तीन 'स्वयंभूः हैं अर्थात् इनको उत्पन्न करने वाला कोई नहीं है, वे अपने आप हैं, वे सदा से स्वयं वर्तमान हैं। इस संदर्भ में जब इस मंत्र पर विचार करते हैं तब इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि मंत्र में वर्णित 'वत्सम्' द्वे विरूपे' ये तीनों स्वयंभूः हैं। इन्हीं तीनों से सृष्टि रचना होती है। 'वत्सम्' निमित्त कारण है। 'द्वे विरूपे' दो भिन्न भिन्न रूप की स्त्रियों में गोरी स्त्री साधारण कारण और काली स्त्री उपादान कारण है।

वत्सम् अर्थात् ईश्वर की इच्छापूर्ति के लिये एक स्त्री अर्थात् प्रकृति से जड़ जगत् और दूसरी स्त्री अर्थात् जीव से चेतन जगत् की उत्पत्ति होती है।

मंत्र में वर्णित 'वत्सम्', 'द्वे विरूपे' ये तीनों सापेक्षिक शब्द हैं। संसार में किसी प्रकार के लिये ये तीन मुख्य कारण होते हैं। संसार में विकास पर जब ध्यान देते हैं। तब प्रत्येक क्रिया में 'द्वित्व' पाते हैं। इस द्वित्व में दो शक्तियां काम करती हैं जिन्हें हम प्राण तथा रयि कह सकते हैं। जैसाकि मंत्र के अर्थ में दो शक्तियां दिन और रात्रि का वर्णन है। दिन रूप बेलामें पवित्रकर्ता सुन्दर तेज वाला सूर्य दिख पड़ता है। दिन 'प्राण-शक्ति' का प्रतिनिधि है। इसी प्रकार रात्रि में अमृतरूप गुणों वाला मन का प्रसादक चन्द्रमा निकलता है। रात्रि रयि-शक्ति का प्रतिनिधि है। रात-दिन के द्वित्व से काल बनता है और काल से सृष्टि का चक्र चलता है। रात-दिन से ही सृष्टि में विकास कार्य हो रहा है।

ऊपर दिये गए विचारों के परिप्रेक्ष्य में यजुर्वेद के इस अध्याय के मंत्र 33,1,33,7,33,8 पर विचार करना उपयुक्त होगा। इन मंत्रों में सृष्टि में दिये अनेक प्राकृतिक वस्तुओं का वर्णन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जैसे पांच महाभूत, आकाश, अग्नि, वायु, जल तथा पृथ्वी। मंत्र 33.1 में 'सोमाः अन्यः वनर्षदः वायवः' का वर्णन है। अर्थात् ऐश्वर्य को प्राप्त करने हारे विद्युत् आदि अग्नि, वनों में रहने हारे पवन आदि सृष्टिस्थ पदार्थों को जाने तो उनसे बहुत उपकारों को ग्रहण कर सकते हैं। मंत्र के भावार्थ में ये वचन महर्षि दयानन्द ने कहा है।

मंत्र 33.7 में 'अग्निम् असपर्य्यन घृतैः औक्षन' अर्थात् अग्नि, घी व जल आदि का वर्णन है। इनके संयोग से शक्ति प्राप्त की जाती है, जिस से कई प्रकार की मशीनें चलती हैं। इसी शक्ति का प्रयोग कर कई प्रकार के यान तैयार किये जाते हैं, जिन्हें आवश्यकता अनुसार भिन्न भिन्न बेगों से चलाया जाता है। मंत्र के भावार्थ में महर्षि दयानन्द ने ऐसा कहा है।

मंत्र 33.8 में 'दिव मूर्द्धानं पृथिव्याः अरतिम् अग्निम् आ जनयन्त' अर्थात् आकाश में सूर्य है। उससे किरणों और तमाम प्रकार की ऊर्जा, जल, वायु और व्याप्त विद्युत् रूप अग्नि पृथ्वी को प्राप्त होती है इन सबको प्रयोग करके यंत्र और कलादि मनुष्यों को अपने लाभ के लिये बनाना चाहिये। महर्षि दयानन्द ने मंत्र के भावार्थ में ऐसा लिखा है। इन तीनों मंत्रों में सभी महाभूतों की उपयोगिता बतायी गयी है।

यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि कोई भी महाभूत एक अेकला लाभकारी नहीं हो सकता। इनका संगतिकरण लाभकारी होता है। मंत्र 33.5 में 'द्वे विरूपे' वत्सम् और दो पुत्रों, इन पांच का वर्णन है और इनमें संगतिकरण भी है। कोई दो महाभूत के दो भिन्न भिन्न रूप वाली स्त्रियां मान सकते हैं। अग्नि प्रकाशवान् और जल बिना प्रकाश की दो गोरी और काली स्त्रियां हैं। अग्नि ताप प्रदान करता है जल भाप पैदा करता है ये दो ताप और भाप अति उपयोगी पुत्रों के समान हैं। ताप और भाप एक बन्द चेम्बर में अत्यधिक दबाव पैदा करते हैं। जिसमें इतनी उर्जा होती है कि जिससे रेलगाड़ियां, हवाई जहाज या अन्य मशीनें चलती हैं। अब तो इस ऊर्जा से चन्द्रयान और अनेक प्रकार के मिसाइल भी बन गये हैं। संसार के लाभ के लिये अन्य महाभूतों में भी उपयोगी संगतिकरण है।

मंत्र 33.5 में दिये गए पहेली का समाधान इसी वेद के मंत्रों के द्वारा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से दिया गया।

द्वितीय पहेली

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।

सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित॥ यजु० ३४/१॥

पदार्थः मनुष्यों को चाहिये कि (सस्रोतसः) एक समान मनरूप प्रवाहों वाली (पञ्च) पांच ज्ञानेन्द्रियों की वृत्ति (नद्यः) नदी के तुल्य प्रवाहीरूप (सरस्वतीम्) प्रशस्त विज्ञानयुक्त वाणी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अपि, अन्ति) प्राप्त होती है (सा, उ) वह भी (सरित) में (पंचधा) पांच ज्ञानेन्द्रियों शब्दादि पांच विषयों का प्रतिपादन करने से पांच प्रकार की (तु) ही (अभवत्) होती है ऐसा जाने।।34/1।

भावार्थः इस मंत्र में वाचक लुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो बाणी पांच शब्दादि विषयों के आश्रित हुई नदी के तुल्य प्रवाहयुक्त वर्तमान है उसको जानकर के यथावत् प्रचारकर मधुलक्षण प्रयुक्त करें।

मंत्र में पांच विषय की ज्ञान की धारायें नदी के तुल्य प्रवाह कर रही हैं। ये ज्ञान की धारायें, सरस्वती में मिलती हैं। पांच प्रकार की धारायें पांच ज्ञानेन्द्रियों की वृत्तियां विज्ञानयुक्त बाणी द्वारा प्रवाहित होती हैं। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रियां अपने अपने विषय के अनुरूप ज्ञान की सरिता का प्रवाह करती हैं। इस प्रकार पांच विषयों के आश्रित हुई शब्दादि बाणी नदी के तुल्य प्रवाहयुक्त हैं। इस 'पञ्च नद्य' को व्यापक अर्थ में लेना चाहिये। अगर वेद को सरस्वती मान लिया जाये जहां परमात्मा ने सभी ज्ञान के भण्डार को केन्द्रित कर दिया है तब यहां शोध से यह पाया जा सकता है कि सृष्टि में कई प्रकार की 'पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति' अर्थात कई पांच प्रकार की ज्ञान की वृत्तियां नदी के तुल्य प्रवाहरूप प्रशस्त विज्ञानयुक्त बाणी को प्राप्त होती है। इस पत्र में केवल 'पञ्च नद्यः' वर्णन किया जायेगा।

पहला 'पञ्च' नद्यः'

यजुर्वेद के सूक्ति के अनुसार पुरुष पांच के भीतर प्रविष्ट है अर्थात् मनुष्य के पांच जीवन की सम्यक् साधना है- 1. वैयक्तिक चरित्र का निर्माण, 2. पारिवारिक चरित्र का निर्माण, 3. सामाजिक चरित्र का निर्माण, 4. राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण, 5. वैश्व चरित्र का निर्माण अर्थात् विश्व संस्था के लिये अपने कर्तव्य का पालन करना।

यजुर्वेद का मंत्र है-

'सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः'।
'इन्द्रस्य त्वा भागम्सोमेना तनच्मि विष्णो हव्यम् रक्ष'।। यजु० १.४।।

पदार्थः हे (विष्णो) व्यापक ईश्वर! आप जिस वाणी को धारण करते हैं। (सा) वह (विश्वायुः) पूर्ण आयु देने वाली (सा) वह (विश्वकर्मा) जिससे कि सम्पूर्ण क्रियाकाण्ड सिद्ध होती है और वह (विश्वधायाः) सब जगत् को विद्या और गुणों से धारण करने वाली हैं। यही तीन प्रकार की वाणी ग्रहण करने योग्य हैं। इसी मैं (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (भागम्) सेवन करने योग्य यज्ञ को (सोमेन) विद्या से सिद्ध किये आनंद से (आ, तनच्मि) अपने हृदय में दृढ़ करता हूँ तथा हे परमेश्वर! पूर्वोक्त यज्ञ संबंधी देने लेने योग्य द्रव्य या विज्ञान की (रक्ष) निरन्तर रक्षा कीजिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसा कि ऋषि दयानन्द ने भावार्थ में लिखा है तीन प्रकार की वाणी होती है। अर्थात् प्रथम वह जो ब्रह्मचर्य में पूर्ण विद्या पढ़ने या पूर्ण आयु होने के लिये सेवन की जाती है। दूसरी वह जो गृहस्थ आश्रम में अनेक क्रिया व उद्योगों में सुखों को देने वाली विस्तार से प्रकट की जाती है और तीसरी वह जो इस संसार में सब मनुष्यों के शरीर और आत्मा के सुखों की वृद्धि या ईश्वर आदि पदार्थों के विज्ञान को देने वाली वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में विद्वानों से उपदेश की जाती है। ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करते हुए पुरुष का पारिवारिक चरित्र का निर्माण करनातो उसका कर्तव्य है पर अंशकालिक रूप से सामाजिक और राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करना भी है। गृहाश्रम के बाद वानप्रस्थ आश्रम प्रारम्भ होता है। इस समय मनुष्य अपनी अहिलौकिक और पारलौकिक दोनों की समुन्नति करता है। अपनी शारीरिक और आत्मिक तथा सामाजिक और राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में अपना पूरा योगदान देता है। जीवन के अन्तिम वर्षों में मनुष्य संन्यास आश्रम में बौद्धिक और आध्यात्मिक स्तर पर अपना जीवन व्यतीत करता है। अपने जीवन का अनुभव और ज्ञान विश्व के समुदाय में बांटता है। वैश्व चरित्र के निर्माण का यह उत्तम अवसर है। मनुष्य के जीवन की पांच सम्यक् साधना ज्ञान की पञ्चम नद्यः है।

दूसरा 'पञ्च नद्य'

दूसरा -'पञ्च' नद्यः' श्रीमद्भगवत् गीता से लिया गया है। श्रीमद्भगवत् गीता के अध्याय 18 श्लोक 14 में श्रीकृष्ण ने संपूर्ण कर्मो के सिद्धि के लिये यह पांच हेतु कहे हैं।-

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।

विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्।।

मंत्रार्थः इस विषय में आधार और कर्ता तथा न्यारे-न्यारे करणें और नाना प्रकार की न्यारी-न्यारी चेष्टा एवं वैसे ही पांचवा हेतु दैव कहा गया है।

सम्पूर्ण कर्मों के सिद्धि के लिये पहला हेतु 'आधार' अर्थात् जिसके आश्रय कर्म किया जाये है। दूसरा हेतु कर्म करने वाला 'कर्ता' और तीसरा हेतु 'करण' अर्थात् जिन-जिन इन्द्रियादि को के और साधनों द्वारा कर्म किया जाये है। 'आधार', 'कर्ता' ओर 'करण' ये तीनों हेतु कर्म-प्रधान हैं ओर इनमें तीन विषयों का ज्ञान निहित है, चौथा हेतु नाना प्रकार की न्यारी-न्यारी चेष्टा ज्ञान-प्रधान है जो अपने में ही एक विषय हैं। पांचवा हेतु देव भक्ति-प्रधान है जो स्वयं एक गूढ विषय है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण कर्मो के सिद्धि के लिये ऊपर कहे पांच हेतु पांच ज्ञान की धारायें हैं जिनमें कर्ता को अपनी सिद्धि के लिये डुबकी लगानी पड़ती है। ये पांच हेतु पञ्च नद्यः हैं जो सरस्वती से मिलती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत साहित्य में स्तुत्यर्थक धातुओं के प्रयोगः एक विश्लेषण

डॉ० मीनाक्षी उपाध्याय (तिवारी)
एम.ए. पी-एच.डी., एडवांस जर्मन डिप्लोमा

भारतीय साहित्य में 'स्तुति' शब्द का प्रयोग वैदिक समय से चला आ रहा है। सबसे पहले ऋग्वेद में इस शब्द का प्रयोग मिलता है।[1] ब्राह्मण ग्रन्थों[2] तथा उपनिषदों[3] में भी स्तुति शब्द का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से मिलता है। निरुक्त में भी कई स्थानों में इस शब्द का प्रयोग बहुलता से है।[4] रामायण तथा महाभारत जैसे महाकाव्यों में स्तुति शब्द का प्रयोग किया गया है।[5]

महाभारत में स्तुति के समानार्थ स्तोत्र[6] तथा स्तव[7] शब्दों का उल्लेख मिलता है। श्रीमद्भगवद्गीता में स्तुति का प्रयोग किया गयाहै।[8] पुराणों में यह शब्द अनेक बार प्रयोग में लाया गया है।[9] लौकिक साहित्य में काव्यों तथा महाकाव्यों में 'स्तुति' शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया गया है जिससे यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से इस शब्द का प्रयोग होता चला आ रहा है।

स्तुति शब्द स्तु धातु से 'ष्टुञ् क्तिन्' अदादि गणीय भाव में 'क्तिन्' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न हुआ है।[10] स्तुति का अर्थ 'स्तवनं स्तुतिः' अर्थात् किसी की प्रशंसा, ईडा, स्तोत्र और नुति आदि है।[11] हलायुध कोष में स्तुति का अर्थ प्रशंसा, अर्थवाद, ईडा, नुति स्तव, विकत्थन और श्लाघा आदि है।[12] वैजयन्ती कोष में स्तुति का अर्थ शस्त्र, स्तोत्र और साम है।[13]

ऋग्वेद के अनुसार स्तुति अपने देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिये गाये जाने वाले गीत हैं।[14] यास्क के अनुसार जिन देवी देवताओं की स्तुति मंत्रों या सूक्तों में अधिक की गयी है उन देवी देवताओं के नामों का संकलन दैवतकाण्ड में किया गया है। इसका अभिप्राय है कि स्तुति शब्द देवताओं के गुण उनके नाम के कीर्तन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। दुर्गाचार्य[15] ने स्तुति का स्वरूप बताते हुए कहा है कि प्रत्येक ऋषि किसी न किसी ऋषि की वन्दना करता है। जिसका करण है अपनी इच्छाओं की पूर्ति करना। अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये वह अलग अलग देवों की उपासना करता है। शंकराचार्य के अनुसार भगवद्गुणसंकीर्तन ही स्तुति है। विष्णुसुहस्रनामस्तोत्र के शांकर भाष्य के 'स्तुवन्ताएं' अर्थात् गुणसंकीर्तनं कुर्वन्तः' प्राप्त है।[16] स्तुति का अर्थ अपने इष्टदेव के सम्पूर्ण शुद्ध गुणों का कीर्तन है। मधुसूदन आचार्य इष्ट के गुणकथन को स्तुति मनाते हैं।[17] स्तुति इष्ट के गुणों का गान है। इसमें स्तवन के साथ साथ सम्पूर्ण वैभव आदि की याचना समाहित रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक साहित्य में मन्त्र, छन्द, अर्क, शास्त्र, जरा, ऋचा, यजुष् और साम, शब्द स्तुति के व्याख्यात्मक अर्थ हैं। मन्त्र शब्द मन धातु से निष्पन्न है, जिसका प्रयोग ज्ञान, विचार और सत्कार इन तीन अर्थों में होता है।[18]

निरुक्त में मन्त्र शब्द के तीन प्रकार के अर्थ बताकर निर्वचन किया गया है। दिवादिगणीय मन धातु से 'मन्त्राः मननात्'[19] अर्थात् मन्त्र शब्द मन धातु से निष्पादित है।

तनादिगणीय मन धातु से निर्मित मन्त्र शब्द का प्रयोग सत्कार, स्तुति और पूजा के लिये होता है।[20] ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा तैत्तिरीय संहिता में स्तुति शब्द प्रार्थना के लिये प्रयुक्त होता है।[21]

छन्द शब्द 'छद्' धातु से बना है। 'छन्दासि छादनात्' अर्थात् निघण्टु में इस शब्द का अर्थ है स्तुति।[22]

ष्टुञ् धातु से निष्पन्न स्तोम शब्द 'स्तोमः स्तवनात्[23] स्तुतिपरक तुदादिगणीय ऋच् स्तुतौ धातु से ऋच शब्द बना है।[24] शुक्ल यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र की व्याख्या करते हुए महीधर ने ऋचों को स्तुत्यर्थक माना है।[25] 'यज्' धातु से यजुष् शब्द की रचना हुई है, जिसका अर्थ है-देवपूजा। 'यज्' धातु से औणादिक 'उ' प्रत्यय से यजुष् बना है। यास्क ने कहा है- 'यजुर्यजतेः[26]

'अर्क स्तवने धातु से निष्पन्न अर्कशब्द स्तुति स्तवन के लिये प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में अर्क शब्द स्तुति, स्तोत्र और संगीत के लिये प्रयोग किया जाता है।[27]

अर्च शब्द 'भ्वादिगणीय' अर्च-पूजायाम् धातु से निर्मित है। ऋग्वेद में स्तुति अर्थ में इसका प्रयोग किया जाता है।[28]

जरा शब्द भी स्तुत्यर्थक है। लौकिक संस्कृत में जरा शब्द का अर्थ वृद्धावस्था है। ऋग्वेद में इसका अर्थ स्तुति है।[29] निरुक्त में जरा शब्द स्तुति का पर्याय है।[30] जरिता शब्द का प्रयोग स्तोता के अर्थ में मिलता है।[31]

प्रशंसा शब्द भी स्तुति के अर्थ में प्रयोग किया जाता है, जो प्र उपसर्ग और शंस स्तुतौ धातु से बना है। ऋग्वेद में भी स्तुति के अर्थ में यह शब्द मिलता है।[32]

ईड स्तुतौ धातु से बना ईडे भी स्तुति के अर्थ में प्रयुक्त है।[33] श्रीमद्भागवतपुराण में अनेक स्थलों पर इसका विनियोग है।[34] नुति शब्द का प्रयोग स्तुति के लिए हुआ है। 'णु स्तुतौ' से क्तिन् प्रत्यय के संयोग से 'नुति' शब्द बना है।[35]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त स्तुति के पर्याय के रूप में विकत्थन, स्तव, स्तोत्र श्लाघा, शंसा और स्तवन आदि हैं।

आचार्य यास्क ने निघण्टु में 44 स्तुत्यर्थक धातुएं बतायी हैं, जो प्रस्तुत हैं: अर्चति, गायति, रेभति, स्तोभति, मूर्धयति, गृणाति, जरते, ध्वयते, नदति, पृच्छति, रिहति, धमते, कृणयति, कृपण्यति, पनस्यति, पनायते, वल्गयति, मन्दते, मन्दरेति, छन्दति, छदयते, शशमान: 'रञ्जयति', रजयति, शंसति यौति, रौति, पणयति, पणाते सपति- पिपृक्षा, मध्यति, वाजयति, पूजयति, मन्यते, नदति, रसति, स्तरति, वेदति, मन्द्रयते तथा जल्पति हैं।[36]

पाणिनीय धातुपाठ में स्तुत्यर्थक 19 धातुओं का उल्लेख मिलता है। सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार स्तुत्यर्थक उन्नीस विनियुक्त धातुएं निम्न हैं-

1.	अर्क स्तवने	1768
2.	अर्च पूजायाम्	1947
3.	ईड स्तुतौ	1089
4.	ऋचस्तुतौ	1386
5.	कत्थ श्लाघायाम्	37
6.	गा स्तुतौ	1181
7.	चाजृ पूजानिशामनयो:	944
8.	णु स्तुतौ	1110
9.	दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारपुतिमोदमस्वप्नकान्तिगतिषु	1102
10.	पणपनव्यवहारस्तुतौ च	469, 470
11.	भजसेवायाम्	1067
12.	मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु च	13
13.	मह पूजायाम्	776
14.	यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु	1071
15.	वदि अभिवादनस्तुत्यो:	11
16.	वर्णक्रियाव्यवहारगुणवचनेषु च	2088

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाद-टिप्पणियाँ

1. ऋग्वेद, 1.84.2, 8.2721, 6.34.1
2. शतपथ ब्राह्मण 7.5.2.39.
3. रामतापनीय उपनिषद् 30.
4. निरुक्त, 3.7.
5. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 15.32.
6. महाभारत शान्तिपर्व, 284, 56, 337.3 भीष्मपर्व, 23.2,3.
7. वही, शान्तिपर्व 47.110, 281.26
8. श्रीमद्भगवद्गीता, 11.21.
9. विष्णुपुराण, 20.14, श्रीमद्भागवतपुराण, 3.12.37
10. पाणिनि, अष्टाध्यायी, 3.3.94
11. अमरकोष, 1.6.11
12. हलायुध कोष, पृ. 725
13. वैजयन्ती कोष, 2.3.35
14. ऋग्वेद, 1.84.2, 6.34.1
15. दुर्गाविवृति (निरुक्त, 7.1)
16. शांकरभाष्य विष्णुसहस्रनाम, श्लोक 45
17. शिवमहिम्नस्तोत्र पर मधुसूदनी व्याख्या, पृ.1
    स्तुतिर्नामणुकथनं तच्च गुणज्ञानाधीनम्।।
    मधुसूदनीव्याख्या शिवमहिम्रस्तोत्र, पृ.1
18. सिद्धान्तकौमुदी, मनज्ञाने 1253 तथा मनुअवबोधने 1565.
19. निरुक्त, 7,12
20. दैवादिकमन्धार्तोर्मन्यते ज्ञायतेऽनेनेति मन्त्रः।
    ईश्वरीयादेशा अनेन ज्ञायन्ते इति भावः। -संस्कृते पञ्चदेवतास्तोत्राणि, पृ. 42
21. मन्यते विचार्यते सत्क्रियते वा ईश्वरीयादेशोऽत्र। तत्रैव, पृ. 42
22. निघण्टु, 7.12
23. निरुक्त, 7.12
24. ऋचयन्ति स्तुवन्नीति।-संस्कृतेपंचदेवतास्तोत्राणि, पृ. 41
25. महीधरभाष्य (शुक्लयजुर्वेदसंहिता), 1.1
26. निरुक्त, 7.12.
27. मोनियर विलियम्स Sanskrit English Dictionary-
28. ऋग्वेदसंहिता, 4.16.3
29. वही, 1.27.10
30. निरुक्त, 10.8.
31. निघण्टु, 3.6
32. Sanskrit English Dictionary- Moniar Williams.
33. अग्निमीडे पुरोहितम्-ऋग्वेद 1.1.1
34. श्रीमद्भागवतपुराण, 3.339.
35. हलायुध कोष, पृ. 725
36. निघण्टु (मूलपाठ) 3.14

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक संस्कृति में सामाजिक व्यवस्था

डॉ० कपिलदेव हरेकृष्ण शास्त्री

जिला भावनगर

भारतीय संस्कृति के विकास में वैदिक-धारा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस वैदिक-धारा को मनीषी चार भागों में विभक्त करते हैं वेद, ब्राह्मण वेदाङ्ग तथा वैदिक परिशिष्ट। यह धारा मूलतः वेदों से निकली है। अतः सांस्कृतिक दृष्टि से वेदों का महत्त्व संस्मरणीय है। वेद की महिमा सर्वत्र व्याप्त है। मनु ने तो डिण्डिम घोष करते हुए बार-बार वेदों की महिमा गायी है। **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। सर्वज्ञानमयो हि सः। सर्व वेदात् प्रसिध्यति** इत्यादि।

'वेद' शब्द विद् ज्ञाने धातु से निष्पन्न है, जिसका मौलिक व्युत्पत्तिजन्य अर्थ 'ज्ञान' है। इसीलिए उसे "**सर्वज्ञानमयो हि सः**" कहा है। विद्या और वेद इसीलिए समानार्थक शब्द हैं। '**मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्**' आपस्तम्ब द्वारा प्रदत्त इस परिभाषा के अनुसार मन्त्रभाग तथा ब्राह्मणभाग दोनों के लिए समानरूप से वेद शब्द का प्रयोग भारतीय साहित्यिक परम्परा में चला आ रहा है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष तथा छन्द ये छ वेदाङ्ग हैं। विभिन्न संस्कृतियों तथा विचारों के सम्पर्क अथवा संघर्ष के कारण वेदों की अध्ययनाध्यापन-परम्परा में कुछ न कुछ शैथिल्य आना स्वाभाविक था और उनके उच्चारण आदि की रक्षा के लिए वेद की सहायक विद्या के रूप में वेदाङ्गों का विकास हुआ है। वेदाङ्गों के अतिरिक्त वेदों के पाठ, उनके ऋषि, छन्द देवता आदि के परिज्ञानार्थ जो साहित्य हुए वह वैदिक परिशिष्ट के रूप में मान्य हुआ। इस वैदिक साहित्य की अनेक धाराएँ प्रकट हुई, जिनमें दार्शनिक-धारा का महत्व इसलिए मान्य है कि उससे अनेक समस्याएँ समाहित हुई है। वैदिक देवतावाद, उनका स्वरूप विवेचन वैदिक स्तोता का महत्त्व, वैदिक जीवन-दृष्टि तथा उसके चरम लक्ष्य, याज्ञिक कर्मकाण्ड वर्ण-विभाग की प्रवृत्ति आदि ऐसे प्रमुख बिन्दु हैं, उन्हें समष्टि से 'वैदिक संस्कृति' कहा जा सकता है। वैदिक संहिताओं में ऐसे अनेक स्थल हैं, ऐसी अनेक प्रार्थनाएँ हैं, ऐसे अनेक सूक्त हैं, जिनमें यह स्पष्टतया सिद्ध हो जाता है कि विश्व-शान्ति और विश्व-बन्धुत्व को चाहने वाली वैदिक-धारा का दृष्टिकोण एकाङ्गी न होकर व्यापक है। वह केवल आदर्शवाद की प्रतिष्ठापिका नहीं, यथार्थ की प्रतिपादिका भी है।

वैदिक-धारा का सामाजिक जीवन-

वैदिक संस्कृति का सामाजिक जीवन के सन्दर्भ में जो महत्त्वपूर्ण दायित्व है। वह 'समष्टि भावना'। यह सामाजिक जीवन का प्राणाधार है। इसका अर्थ है अन्य व्यक्तियों के साथ अपने हित के सम्पादन की कामना। सामान्यतः मनुष्य व्यष्टि-परक अधिक रहता है, किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक संस्कृति व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि पर अधिक बल प्रदान करती है। वैदिक प्रार्थनाओं, सूक्तों तथा अनेक मन्त्रों में समाज के हित की कामना की गयी है-

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव।।[१]

इस मन्त्र में सवितृदेव से प्रार्थना की गयी है कि जो हम सभी के लिए वास्तविक कल्याण है, उसे हमें प्राप्त कराइए। इसमें प्रार्थना करने वाला ऋषि विश्वकल्याण की कामना करता है। इसी प्रकार सुप्रसिद्ध गायत्री मन्त्र में भी उस सवितृदेव के प्रसिद्ध वरणीय तेजोमय स्वरूप का ध्यान किया गया है, जो समस्त मानव मात्र की बुद्धियों को प्रेरणा प्रदान करता है। ऋग्वेद के दशममण्डल में ऐसी प्रार्थनाएँ हैं, जो सामाजिक उत्कृष्ट भावनाओं को प्रकट करती है-

सं गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

देवा भागं यथापूर्वे संज्ञानाना उपासते।।[२]

ईशावास्योपनिषद् में '**अग्ने नय सुपथा राये**' आदि मन्त्र में अग्निदेव से सन्मार्ग प्रवृत्ति हेतु की गयी प्रार्थना भी समष्टि परक है। '**भद्रंकर्णेभिः शृणुयाम देवाः**' आदि मन्त्र में भी जो कामना व्यक्त की गयी है, वे समष्टि भावना ही है।

वैदिक संस्कृति में जहाँ समष्टि भावना पर बल दिया गया है, वहीं वैयक्तिक जीवन को भी सर्वथा है नहीं माना। यह एक अविस्मरणीय तथ्य है कि व्यष्टि से ही समष्टि बनती है। व्यक्तियों से ही समाज बनता है। अतः किसी भी मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन मे ऋत और सत्य, निष्पाप भावना, श्रद्धा आत्म-विश्वास, तप, ब्रह्मचर्य, व्रत, श्रम, वीरता, शत्रुसंहरण आदि की महिमा से ओत-प्रोत अनेक वेद मन्त्र उसके उत्कर्ष की कामना करते हैं। ऐसे भी अनेक वैदिक मन्त्र हैं, जो व्यक्ति के बौद्धिक तथा नैतिक विकास के साथ शारीरिक स्वास्थ्य तथा दीर्घायुष्य की निर्मल कामना करते हैं।

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि। आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देही।

.....यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आ पृण।।[१]

हे अग्निदेव! आप मेरे शरीर के रक्षक हैं, अतः मेरे शरीर को पुष्ट कीजिये, आयु के दाता हैं, अतः पूर्ण आयुष्य प्रदान कीजिये, मेरे शारीरिक स्वास्थ्य की न्यूनता को भी पूर्ण कीजिये। इसी प्रकार-

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पताम्।

चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम्।। यजुर्वेद

इस मन्त्र मे व्यक्ति के कल्याण की कामना व्यक्त की गयी है। प्राकृत जगत् में कार्य करने वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि, वायु आदि दैवी शक्तियों के साथ यज्ञ अर्थात् सामञ्जस्य पूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए मैं पूर्ण आयुष्य को प्राप्त करुँ। मेरी प्राण, आपन, व्यान, उदान आदि शक्तियाँ तथा नेत्र आदि इन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न करें। इस प्रकार मेरे व्यक्तित्व का विकास निर्बाध रुप से हो यही मेरी कामना है, अभिलाषा है। अथर्ववेद[2]में भी ऐसी प्रार्थनाएँ उपलब्ध है।

गृह्यकर्मकाण्ड-

गृहस्थ जीवन को व्यवस्थित एवं सुसंस्कृत बनाना ही 'गृह्यकर्मकाण्ड' का प्रधान लक्ष्य है। यद्यपि इसका सीधा सम्बन्ध गृह्यसूत्रों से है, तथापि इनका मूलरूप वैदिक श्रौत यज्ञ हैं। ये वैदिक श्रौत यज्ञ बहुद्रव्य साध्य होते थे और उनके सम्पादन में कष्ट भी होता था, अतः वे गृह्यकर्मकाण्ड के रूप में या स्मार्त यज्ञों में सीमित हो गये।

वैदिक संस्कार-

द्विजों के षोडश संस्कारों के विषय में मनु महाराज ने लिखा है-

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिद्विजन्मनाम्।

कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च॥

गार्भैर्होमैर्जातकर्म-चौड-मौञ्जी-निबन्धनैः।

बैजिकं गर्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥[3]

ब्राह्मण आदि वर्णो को इस लोक में तथा मृत्यु के पश्चात् पुण्यदायक पवित्र गर्भाधानादि संस्कार वैदिक मन्त्रों से कराना चाहिए। संस्कार करने का फल यह है कि इनसे गर्भ सम्बन्धी तथा बीज सम्बन्धी विकार नष्ट हो जाते हैं।

जिन लोंगो की गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त समस्त क्रियाएँ एवं संस्कार मन्त्रों से सम्पन्न होते हैं वे ही द्विज हैं और इन द्विजों को ही शास्त्रों के अध्ययन का अधिकार दिया गया है।

प्राणि जीवनशास्त्र और जनन विज्ञान-सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसन्धानों से यह स्पष्ट हो गया है कि ऋषियों द्वारा किये जाने वाले गर्भाधानादि संस्कार शुद्धि और स्वच्छता के लिए परमावश्यक है। इन संस्कारों का अनुष्ठान यद्यपि आज भी होता है, परन्तु वह मात्र परम्परा के पालन करने की दृष्टि से। विधिपूर्वक यदि वैदिक संस्कारों का अनुष्ठान किया जाये तो उसका फल अवश्य होता है।

विवाह संस्कार-

संस्कारों में भी प्रधान स्थान विवाह संस्कार है। इसका सारा स्वरूप वैदिक संस्कृति पर आधृत है। वर-पूजन, पाणिग्रहण, कन्यादान, अग्नि-प्रदक्षिणा, सप्तपदी, लाजाहोम आदि विवाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कार के प्रमुख कार्यो में प्रयुक्त वैदिक मन्त्रों का आशय मननीय है। 'वर' का सम्मान कर अभीप्सित या संकल्पित वस्तु दी जानी चाहिए। 'स्वसप्तनिवृत्तिपूर्वकपरस्तत्वोत्पादानं दानम्' दानकी इस परिभाषा में दाता दानयोग्य वस्तु पर से अपना अधिकार हटाकर प्रतिग्रहीता का अधिकार स्थापित करता है। ग्रहीता पाणिग्रहण के समय कन्या का हाथ पकड़ कर कहता है-

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।

भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥ (१)

अर्थात् सौभाग्य की समृद्धि के लिए मैं तुम्हारा हाथ ग्रहण करता हूँ, जिससे हम दोनों पूर्ण आयुष्य को प्राप्त करें। भग, अर्यमा और दानशील सवितु देवता ने प्रसादरूप में गृहस्थ धर्म के पालन के लिए तुम्हें मुझे दिया है।

अग्नि के समक्ष आज भी वर-वधू परस्पर सामञ्जस्यपूर्ण जीवन यापन करने की प्रतिज्ञा करते हैं-

मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु।

मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥(१)

इसी के साथ अन्य मन्त्रों का भी उच्चारण किया जाता है, जिनका आशय है कि यह जो तुम्हारा हृदय है, वह मेरे हृदय हो जाय तथा जो मेरे हृदय है वह तुम्हारा हृदय हो जाय। परस्पर हृदयों का आदान-प्रदान वैदिक संस्कृति की ही देन है। इस एकरूपता के वाद जो गृहस्थ जीवन व्यतीत होता है, वह कितना मधुर, सौहार्द्र-पूर्ण तथा सामञ्जस्ययुक्त होता है।

वैवाहिक विधि में वर-वधू की प्रतिज्ञाओं और प्रार्थनाओं के अतिरिक्त जो महत्त्वपूर्ण विषय है, वह है 'सप्तपदी'। वैवाहिक जीवन की सफलता के लिए जिन वस्तुओं की नितान्त आवश्यकता है, उन सभी का उल्लेख इस 'सप्तपदी' में किया गया है-

इषे एकपदी भव। सा मामनुव्रता भव। विष्णुत्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहून्।

ते सन्तु जरदष्टयः॥ एकमिषे द्वे ऊर्जे त्रीणि रायस्पोषाय चत्वारि मायोभवाय।

पञ्च पशुभ्यः षड् तुभ्यः सखे सप्तमदा भव सा मामनुव्रता भव॥(२)

वर वधू से कहता है कि प्रिये! हमारे वैवाहिक जीवन के सात लक्ष्य हैं-

(1) अन्नादि आवश्यक भोज्य-सामग्री (2) बल-शक्ति (3) आर्थिक सम्पत्ति

(4) सुख तथा मन की प्रसन्नता (5) सन्तान पालन (6) दीर्घायुष्य तथा

(7) परस्पर प्रेम। इनके अतिरिक्त जो लाजा होम व अन्य होम सम्पन्न किये जाते हैं। उस समय भी जिन मन्त्रों का उच्चारण होता है, वे मंगल कामना से ओत-प्रोत हैं। इस प्रकार वैदिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह-संस्कार असंयत, विलासपूर्ण भोग तथा ऐश्वर्य के वातावरण से बहुत परे उच्च आदर्शों का प्रतिपालक है और वास्तव में गृहस्थ जीवन के उत्तरदायित्वपूर्ण विषयों को समझने वाले दम्पती के लिए जीवन-संघर्ष में तथा राष्ट्रसेवा की भावना में प्रवृत्त होने का भी प्रतीक है।

पञ्च महायज्ञ-

वैदिक संस्कृति में पञ्च महायज्ञों का अनुष्ठान का एक अपिरहार्य कार्य है। गृह्य सूत्रों में इन यज्ञों के अनुष्ठान की विधि विवेचित है। इनका प्रचलन आज भी किसी न किसी रूप में प्रचलित है। मनु ने इन यज्ञों का सहेतुक प्रतिपादन किया।[3]

कर्मकाण्ड की दृष्टि को छोड़कर पञ्च महायज्ञों के इस अनुष्ठान का मौलिक अभिप्राय यही है कि प्रत्येक शिक्षित व प्रबुद्ध गृहस्थ सांसारिक समस्त प्राणियों के हित की कामना करता हुआ अपने वैयक्तिक जीवन का निर्वाह करें। 'सर्वभूत हितेरत:' का सिद्धान्त उसके लिए लाभप्रद है। इसी में आगन्तुक का सत्कार निहित है तथा कीट-पतङ्ग चतुष्पाद जीवों के जीवन की कामना भी विद्यमान है। क्योंकि चुल्ली, पेषणी, उपस्कर, कण्डनी और उदकुम्भ के दैनिक उपयोग में उनके द्वारा होने वाली जीवहिंसा को 'पञ्चसूना' कहते हैं। उस दोष के परिहारार्थ इस वैश्वदेव पञ्च महायज्ञ का विधान है। इस प्रकार पञ्च महायज्ञों का व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिए महत्त्व है।

अग्नि-पूजन

वैदिक संस्कृति का मूल आधार 'अग्निदेव' है। ''**अग्निर्वै देवानां मुखम्**'', ''**अग्निर्वैदेवानां होता**'', **अग्निर्वै योनिर्यज्ञस्य**'' आदि वचन प्रमाणित करते हैं कि उस युग में इसका कितना महत्त्व था। वैदिक कर्मकाण्ड में अग्नि को प्रमुख माना गया है। तथा इसे **'पुरोहित'** भी कहा गया है **'अग्निमिळे पुरोहितम्'**। कालान्तर में कर्मकाण्ड के निरीक्षक को पुरोहित कहा जाने लगा है। वैदिक संस्कृति से अनुप्राणित भारतीय संस्कृति व आधुनिक संस्कृति भी अग्नि के महत्त्व से सुपरिचित है। इसे आवश्यक जीवनाधायक तत्त्व माना गया है तथा आर्य इसे देवस्वरूप मान कर पूजते थे। आज भी **'अग्नि-पूजन'** का सामाजिक महत्त्व है।

पर्वोत्सव

वैदिक संस्कृति में अनेक पर्वोत्सवों का उल्लेख है। श्रावणी, आश्वयुजी, फाल्गुनी, कार्तिक आदि पर्व तथा इन्द्रध्वज आदि उत्सव वैदिक संस्कृति की देन हैं। यद्यपि वर्तमान में मनाये जाने वाले पर्वोत्सवों में वैदिक धारा से पर्याप्त भिन्नता आ गयी है, तथापि इनका मूल वैदिक संस्कृति में ही निहित है। आज के पर्वोत्सवों पर पौराणिक संस्कृति का अधिक प्रभाव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चातुर्वर्ण्य व्यवस्था

वैदिक संस्कृति के सामाजिक स्वरूप को स्पष्टतः समझने के लिए वर्तमान हिन्दू-समाज की व्यवस्था समझना आवश्यक है। वर्तमान हिन्दूसमाज की सबसे बड़ी विशेषता उनका जाति-भेद और वर्ण-भेद है। वर्ण चार हैं, किन्तु जातियाँ असंख्य हैं। मनीषियों का कथन है कि चार वर्णों के सङ्करत्व से अनेक जातियाँ बन गयीं। मनु ने कहा है-

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।

चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः॥ (१)

महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी इसका स्पष्ट संकेत किया है-

ब्रह्म-क्षत्रिय विट्-शूद्रा वर्णास्वाद्यास्त्रयो द्विजाः।

निषेकाद्याः श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः॥ (२)

वर्ण जाति विवेक प्रकरण में याज्ञवल्क्य ने चार वर्णों से सवर्ण, अनुलोमज व प्रतिलोमज सन्तानों की उत्पत्ति का क्रम स्पष्ट किया है तथा कुछ प्रमुख जातियों के मूल-स्वरूप का उल्लेख भी किया है। उनमें भी साङ्कर्य होने से उन जातियों की असंख्यता बन गयी है।

वैदिक संस्कृति में चार वर्णों की स्थिति को निम्नोक्त मन्त्र से प्रमाणित करता है-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यःकृतः।

ऊरु तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ (३)

जिस प्रकार शरीर के अङ्ग विभिन्न कार्यों का दायित्व लेकर कार्य में प्रवृत्त होते हैं तथा आत्मा के उपकारक होते हैं। उसी प्रकार चारों वर्ण अपनी-अपनी योग्यता और कार्यक्षमता के अनुरूप कार्य में प्रवृत्त हो तथा समाज का उपकार करने के लिए सन्नद्ध हो। इसी भावना से वर्ण व्यवस्था का प्रारम्भ हुआ था।

यजुर्वेद में उल्लेखित **'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो।' (२२.२२)**, इत्यादि मन्त्र प्रार्थनाएँ राष्ट्रीय एकता को प्रस्तुत करती हैं। वहाँ किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं था। सभी को अपनी-अपनी क्षमता के अनुरूप कार्य आवंटित था, सभी मिलकर उन्नति में सहायक होते थे।

वैदिक आदर्शों से अनुप्राणित वर्ण व्यवस्था का आधार मानवता के सम्मान के लिए होने से महत्त्वपूर्ण माना गया है। **''न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्''** का उद्घोष मानवीय गौरव की भावना को अभिव्यक्त करता है। वास्तविकता तो यह है कि वैदिक वर्णव्यवस्था में ऊंच-नीच की भावना के लिए कोई स्थान नहीं है। शूद्रवर्ण के व्यक्तियों ने भी वैदिक ऋषित्व

CC0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सम्मानपूर्ण पद को प्राप्त किया है। जो विषमता का विष आज की वर्णव्यवस्था में व्याप्त है, वह कृत्रिम है।

चातुराश्रम्य व्यवस्था-

चातुर्वर्ण्य के समान ही चातुराश्रम्य व्यवस्था क मूल स्वरूप वैदिक संस्कृति में उपलब्ध होता है। वैदिक साहित्य की औपनिषद् धारा में इसका स्वरूप स्पष्टत: चित्रित है। स्मृतियाँ भी इसे प्रमाणित करती हैं। प्रारम्भ में ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थ आश्रमों की महत्ता अधिक थी।[1]

सहृदयं साम्मनस्यमविद्वेषं कृणोमि व:।

अन्योऽन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।।

अनुव्रत: पितु:पुत्रो मात्रा भवतु सम्माना:।

जाया पत्ये मधुमती वाचं वदतु भद्रया।।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।

सम्यञ्च: सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।[2]

उपर्युक्त मन्त्र पारिवारिक जीवन में ऐक्य, सौहार्द और सद्भावना की कामना करते हैं। पुत्र को माता-पिता की आज्ञा में रहने की तथा पत्नी को अपने पति के प्रति मधुर और स्नेहयुक्त वाणी का व्यवहार करने की आज्ञा दी गयी है।

भाई-भाई के साथ तथा बहिन-बहिन के साथ द्वेष न करे। पारिवारिक जीवन में स्वर्गीय सुख और शान्ति लाने के लिए इससे बढ़कर और क्या आदर्श हो सकता है?

इस प्रकार हमारी मान्यता है कि आज का सभ्य कहलाने वाला मानव केवल सभ्यता के आवरण में लिपटा है। यदि वह वैदिक संस्कृति के मूल-स्वरूप को पहचान कर उसे अपने जीवन का लक्ष्य बनाये तो उसका जीवन नि:सन्देह सुख शान्तिपूर्ण हो सकता है, जिस संस्कृति में पुरुषार्थ चतुष्टय, अभ्युदय एवं नि:श्रेयस का सत्य स्वरूप निहित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाद-टिप्पणियाँ

1. शु. यजु. 30/3
2. ऋग्वेद 10/191/2
3. शु. यजु. 3/17
4. अथर्ववेद 19/60/1-2
5. मनु. 2/26-27
6. ऋग्वेद 10/85.36
7. पार. गृह्यसूत्र 1/8
8. वही 1/8
9. मनुस्मृति 3/68-74
10. मनुस्मृति 10/4
11. याज्ञ. स्मृति 2/10
12. यजु. 31/11
13. अथर्ववेद 11/5/17-24 ऋग्वेद 10/85. 24, 32, 46, 47
14. अथर्ववेद 3/30/1-3

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक वांङ्मय में वर्णित राजतन्त्र में लोकतन्त्र

डॉ० ममता गंगवार

रीडर एवं विभागाध्यक्षा- इतिहास विभाग

महिला महाविद्यालय

किदवई नगर, कानपुर

राजनीति मानव जीवन का आवश्यक एवं महत्वपूर्ण पहलू है। वैदिक-वाङ्मय में वर्णित राजनैतिक व्यवस्था सुव्यवस्थित, कल्याण केन्द्रित और सर्वाभिमुखी दृष्टिगोचर होती है। वैदिक काल में ऐसा निरंकुश राजतंत्र नहीं था, जिसमें प्रजा की सहभागिता और हित निहित न हों।

वैदिक सभ्यता और संस्कृति से आर्यों की संस्कृति का बोध होता है। जब आर्य भारत आये, वे सभ्यता के क्षेत्र में अच्छी प्रगति कर चुके थे। शिकारी की दशा से आगे बढ़कर पशुपालक और कृषक की दशा में पहुँच चुके थे। ऋग्वैदिक काल में राजनैतिक व्यवस्था की सबसे छोटी इकाई कुटुम्ब थी। संयुक्त परिवार की प्रथा प्रचलित थी तथा सबसे अधिक आयु का व्यक्ति कुटुम्ब का प्रधान होता था। अनेक कुटुम्बों का समूह ग्राम (अधिकारी-ग्रामीणी), कई ग्रामों का समूह 'विश' (अधिकारी-विशपति), कई विश का समूह 'जन' (अधिकारी-गोप) तथा कई विश का समूह राष्ट्र (अधिकारी-राजा) का निर्माण करता था। 'जन' का संगठन एक बड़े परिवार के समान था, जिसमें यह विचार विद्यमान था कि उसके सब व्यक्ति आदि पुरुष की सन्तान हैं और एक ही परिवार का अंग हैं। वैदिक राजा वैधानिक था तथा गोपथ ब्राह्मण' में राजा को सम्राट, स्वराट्, सर्वराट् तथा सर्वराट् शब्दों से सम्बोधित किया गया है।

आर्यों के राजत्व के विचार को शासन की उत्पत्ति से सम्बन्धित कुछ दन्तकथाओं से आर्यों के उभरते हुए राजनैतिक संगठन की प्रक्रिया जानी जा सकती है, इनके अनुसार देवों और दानवों में युद्ध हुआ। इसमें देवों की पराजय होती दिखाई पड़ने लगी, इसलिए वे सब एकत्र हुए और अपने नेतृत्व के लिए अपने में से एक का राजा पद हेतु चुनाव किया। अन्त में उनकी विजय हुई। इस प्रकार की अन्य दन्त कथाएँ भी बताती हैं कि कैसे राजतन्त्र का विचार उत्पन्न हुआ। कुलों के समूहों के रूप में 'जनों' का संगठन हुआ और आरम्भ में 'जन' का प्रधान केवल जन का नेता होता था। विद्वानों का मानना है कि 'जन' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में 275 बार तथा विश शब्द का प्रयोग 170 बार हुआ है विश का प्रयोग भी कबीले के लिए ही हुआ है, जिसकी स्थापना लड़ाई के उद्देश्य से की गई थी, क्योंकि ग्रामों में निरन्तर लड़ाई होती थी और इसे संग्राम कहा जाता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वैदिक काल में सप्त सिन्धु प्रदेश एवं उसकी समीपवर्ती भू-भाग विभिन्न राज्यों में विभक्त था। इनमें अनु, द्रस्यु, यदु, उर्वश, पुरु तृत्सु, भरत इत्यादि मुख्य थे। ऐतरेय ब्राह्मण[2] में ऐन्द्र महाभिषेक के संदर्भ में वैदिक युगीन भारत की शासन पद्धतियों का पता चलता है। आठ प्रकार के संविधान इस समय लागू थे। ऐतरेय ब्राह्मण में जिन शासन प्रणालियों का वर्णन है वे इस प्रकार हैं- साम्राज्य, भौज्य, स्वराज्य, वैराज्य राज्य, पारमेष्ठ्य, माहाराज्य, आधिपत्य तथा सामन्तपर्यायी इत्यादि। इनमें से कुछ प्रजातन्त्रात्मक तथा कुछ राजतंत्रात्मक थी। वेदों के अध्ययन से विदित होता है कि उस युग में प्रजातंत्रमूलक राजतंत्र विद्यमान था। वेदों में राष्ट्र या देश शब्द का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद[3] के एक मन्त्र में 'राष्ट्राणि' शब्द का उल्लेख कई राष्ट्रों की सत्ता को प्रदर्शित करता है। ऐतरेय ब्राह्मण[4] में वर्णन प्राप्त होता है कि राजसत्ता का उदय पारस्परिक अनुबंध से हुआ- असुरों से विभिन्न दिशाओं में पराजित देवगण आत्मविश्लेषण से इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वे राजा न होने के कारण ही बार-बार पराजित हुए। देवों ने दानवों पर विजय प्राप्त करने के लक्ष्य से 'सोम' को राजा बनाया और वे सफल हुए। आगे चलकर मनुस्मृति प्रभृति ग्रंथों में भी विस्तारपूर्णव यही सिद्धान्त दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद में राजा को सूर्य के समान तेजस्वी, इन्द्र के समान वीर तथा वरुण के समान दानी बताया गया है तथा प्रजा के लिए निर्देश दिये गए हैं, कि प्रजा को राजा की आज्ञा माननी चाहिए तथा राजा प्रजा के सुख-दु:ख का सदैव ध्यान रखे, राजा पिता या ईश्वर होता है तथा प्रजा पुत्रवत् होती है। राजा भूमि का स्वामी न होकर 'जन' का पिता था। भू-स्वामित्व के अभाव में राजा आरम्भ में स्वेच्छाचारी होने की आवश्यकता महसूस नहीं करता था। उपनिषद बतलाते हैं, कि प्रारम्भ में अत्यधिक आत्मानुशासन के परिणामस्वरूप अपराधियों का बोलबाला न होने के कारण राजसत्ता की कोई आवश्यकता नहीं थी। समाज में धर्म ही सबका नियंत्रक था और बाद में भी राजसत्ता का स्थान धर्म की अपेक्षा गौण ही रहा।

राजा की नियुक्ति परम्परागत प्रथानुसार या निर्वाचन द्वारा होती थी। राजा के वरण करने का कार्य 'विश' के जिन व्यक्तियों के सुपूर्द था, उन्हें राजकृत: (राजा को नियत करने वाला) कहते थे। राजकृत: स्वयं भी राजा कहलाते थे। राजा के पद का वरण किया गया व्यक्ति इन 'राजान: राजकृत:' का मुखियामात्र माना जाता था।

राजा का निर्वाचन- ऋग्वेद (10/173/1-6) तथा अथर्ववेद (3/4/1-7) के कई सूक्तों में राजा के निर्वाचन का उल्लेख है। अथर्ववेद में राजा के निर्वाचन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण वर्णन है- 'सहर्ष हम तुम्हारा अपने अन्दर आवाहन करते हैं। तुम हमारे बीच में अविचल रूप से ध्रुव होकर स्थित रहो। सब प्रजा तुम्हें चाहे, तुमसे राष्ट्र का अधिकार कभी छीनना न पड़े। यहीं रहकर तुम उत्कर्ष करो, कभी तुम्हारा पतन न हो, कभी तुम विचलित न हो, इन्द्र के समान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम ध्रुव होकर रहो और इस राष्ट्र को धारण करो। ये पर्वत सुदृढ़ रूप से स्थिर है, यह द्युलोक भी भलीभाँति स्थिर है, इसी प्रकार प्रजाओं का यह राजा भी ध्रुव रूप से स्थिर रहे। राजा वरुण, देव वृहस्पति, इन्द्र और अग्नि इस राजा को ध्रुव रूप से राष्ट्र को धारण करने की शक्ति दें।[5] अथर्ववेद के उक्त मंत्रों से स्पष्ट होता है कि प्रजा अपने निर्वाचित राजा के लिए इच्छा व कामना करती थी कि गुणसम्पन्न राजा ध्रुव रूप से राज्य का शासन करे तथा पृथ्वी, पर्वत और द्युलोक आदि के समान अपने पद पर स्थिर रहे। वरुण, वृहस्पति, इन्द्र आदि देवता उसे राजकीय पद पर स्थायी रूप से कार्य कर सकने की शक्ति दें। अपने उत्तरदायित्वों को निर्वाह न कर पाने पर राजा से राष्ट्र का अधिकार छीना जा सकता था अर्थात् उसे राजा के पद से च्युत भी किया जा सकता था। राजा के पद पर ऐसे व्यक्ति का ही वरण किया जाता था जो उसी 'जन' का हो जिससे राष्ट्र का निर्माण हुआ है। अथर्ववेद के एक मंत्र में कहा भी गया है, 'मैं राजा राष्ट्र का अपना व्यक्ति हूँ, मैं अपने को अवश्य उत्तम बनाऊँगा।'[6] एक अन्य मन्त्र में राजा को 'अन्तरभू:' कहा गया है[7], जिसका अर्थ है वह अपने अन्दर अर्थात् 'जन' का है।

यजुर्वेद के एक मंत्र में राजा के वरण के सम्बन्ध में कहा गया है- 'सब देव लोग महान् फल के लिये, सबसे ज्येष्ठ होने के लिये, महान् जनराज्य के लिए और इन्द्रों के इन्द्र होने के लिए इस व्यक्ति को प्रतिस्पर्धा से विरहित करते हैं।[8] प्रजा राजा का वरण इसी प्रयोजन से करती है कि वह सब प्रकार की विपत्तियों से त्राण करें।[9] राजा को वरण कर नियुक्त करने की कोई निश्चित अवधि नहीं होती थी। अथर्ववेद में कहा गया है- 'हे राजन्, तू सुप्रसन्न रूप से राष्ट्र में दसवीं अवस्था तक शासन करता रहे।'[10] सत्यकेतु विद्यालंकार के अनुसार 'दशमी अवस्था 90 वर्ष से ऊपर की आयु को कहते हैं। अत: राजा से आशा की जाती थी कि वह वृद्धावस्था तक राष्ट्र का शासन संचालित करता रहे। कतिपय कारणों से राजा को निर्वासित भी किया जा सकता था और जनता उसे पुन: राजा पद पर अधिष्ठित करना चाहे तो उसे निर्वाचन से वापस बुलाया जा सकता था।

'राजकर्तार: राजन:' जब किसी व्यक्ति को राजा के पद के लिए वरण कर लेते थे, तब राजा के चिह्न के रूप में उसे वे एक 'मणि' प्रदान करते थे।' सम्भवत: यह मणि एक 'पर्ण' (पत्ते) के रूप में होती थी। राजशक्ति को सूचित करने के लिये राजा इस पर्ण-शाखा को धारण करता था। अथर्ववेद के एक मंत्र में राजा द्वारा कहा गया है- 'हे पर्ण, धीवान्, रथकार और मनीषी कर्मार व मेरे चारो और उपस्थित सब जन मेरी सहायता करें। हे पर्ण, सूत, ग्रामणी व राजकृत: राजा और मेरे चारो ओर उपस्थित सब जन मेरी सहायता करें।'[12] इस मंत्र में इंगित किया गया है कि 'पण' एक ऐसा राजचिह्न है, जिसे सम्बोधन कर राजा राष्ट्र के प्रमुख पुरुषों व सर्वसाधारण के सहयोग की प्रार्थना करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा का राज्यभिषेक- ब्राह्मण ग्रंथ व वैदिक साहित्य में निर्वाचित राजा की पीठ पर दण्ड द्वारा आघात कर उसे अपने कर्त्तव्यों का स्मरण कराया जाता है और रत्नी लोग उसे रत्नहवि प्रदान करते हैं। रत्नी लोग ही राजा को राजचिह्न का सूचक रत्न अथर्ववेद में वर्णित पर्णमणि प्रदान किया करते थे। राज्याभिषेक के समय राजा को व्याघ्र चर्म पर बैठाया जाता तथा उसके पराक्रम की कामना की जाती थी। अथर्ववेद के मंत्र में वर्णित है- 'तू स्वयं व्याघ्र है। इस व्याघ्रचर्म पर बैठकर सब दिशाओं में विक्रम कर। सब विशः (प्रजा) तुझे चाहें।[13] राजा के सिंहासन पर आसीन होने पर सब जलों से अभिषिक्त किया जाता था। एक वैदिक मंत्र के अनुसार 'तुझे हम सब जलों के वर्चस् से अभिसिञ्चित करते हैं।[14] ये जल सम्भवतः जनपद या राष्ट्र की सब नदियों व जलाशयों से लिया जाता था जैसी प्रथा भारत में बाद में भी बनी रही। राज्याभिषेक के समय राजा को कर्तव्यों से परिचित कराता हुआ पुरोहित कहता है- 'यह राज्य तुम्हें कृषि के लिये, क्षेम के लिए, समृद्धि के लिए और पुष्टि के लिए सौंपा गया है। तुम इसके संचालक, नियामक और ध्रुवरूप से धारणकर्ता हो। सार्वजनिक कल्याण हेतु इस राज्य के राजपद पर तुम्हें अभिषिक्त किया जा रहा है।[15] यजुर्वेद में एक और स्थल पर कहा गया है- 'हे अग्निरूप राजन्! तू हम प्रजाओं के लिये मंगलकारी होकर इस राष्ट्र में आसीन हो तत्पश्चात् राजधर्म में आसीन हो जाओं।'[16] वेदों[17] में अनेक स्थानों पर राजा के कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है- राष्ट्र के नियंत्रक राजा तुम दृढ़तापूर्वक उत्तरदायित्वों को संभाली, कृषि उन्नति, जनकल्याण, आर्थिक समुन्नति तथा राष्ट्र की सुदृढ़ता के लिए यह राष्ट्र तुम्हें दिया जा रहा है। राजा विद्वानों व व्यापारियों की रक्षा करें, व्यापार और शिक्षा को संरक्षण दें, प्रजा की सुरक्षा करें तथा प्रजा में सुरक्षा की भावना पैदा करें व उसे निर्भय बनायें। ऋग्वेद[18] में उक्त कर्त्तव्यों के अतिरिक्त अर्थव्यवस्था को ठीक रखने के लिए कठोरता से कर वसूलने के भी निर्देश दिये गए हैं।

राजा की प्रतिज्ञा- राजा राष्ट्र रक्षा का उत्तरदायित्व स्वीकार करते हुए अभिषेक के समय धर्मानुयायियों और प्रजाजनों के समक्ष सत्यनिष्ठा से शपथ लेता था। ऐतरेय ब्राह्मण के मंत्रानुसार राजा कहता है कि, 'जिस रात्रि में मेरा जन्म हुआ और जिस रात्रि में मेरी मृत्यु होगी, उन दोनों के मध्य में मैंने जो भी इष्टापूर्ण (पुण्य कर्म) किये हों, वे सब नष्ट हो जायें और मैं स्वर्ग, समस्त शुभ कर्म, आयु और सन्तान से वंचित हो जाऊँ, यदि मैं किसी भी प्रकार से देश और जनता के साथ द्रोह करुँ।[19] तदन्तर पुरोहित राजा की पीठ पर पलाश की छड़ी से एक हल्का प्रहार (दण्ड) करता था। उसका यह आशय होता था कि राजा अदण्डनीय है।[20] **धर्म की उदारता और शासक-शासित के बीच समानता का यह उच्च आदर्श केवल वैदिक संस्कृति में ही देखने को मिलता है।** विशेषाधिकार प्राप्त कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार की अहंमन्यता तथा दूसरे की उपेक्षा का अहंकार अनुभव नहीं करे, इसके लिए पूरी व्यवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चित थी। अतः ऐसा विदित होता है कि राजा का उत्तरदायित्व देश व प्रजा की रक्षा व पालन तो था ही साथ ही देश व जनता के साथ विश्वासघात अक्षम्य अपराध भी था। अथर्ववेद[21] के सूक्त के अनुसार अपने कर्त्तव्य विमुख होने पर राजा को पद से च्युत कर देश से निर्वासित कर दिया जाता था तथा अपने दोषों को स्वीकार करने पर उसका पुनः निर्वाचन हो जाता था। इस पुनः स्थापना तथा प्रजा द्वारा राजा के संवरण का उल्लेख अथर्ववेद के सूक्तों[22] में विशदतया किया गया है।

अतः जिस राजा का निर्वाचन विश द्वारा तथा निश्चित इकरार करके राष्ट्र पर शासन स्थापित हो, वह निरंकुश और स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता था। उसकी स्थिति 'समानों में 'ज्येष्ठ' जैसी होती थी, इसी कारण वैदिक युग के शासन को 'जनतंत्रात्मक या लोकतंत्रात्मक राज्य' (जन या जनता का राज्य) कहा जा सकता है।

सभा और समिति- राजा राष्ट्र का शासन स्वेच्छाचारितापूर्वक नहीं कर सकता था। क्योंकि इस युग में सभा और समिति नामक संस्थाएँ थीं, जो न केवल राजकार्य में राजा की सहायता करती थी, अपितु उस पर नियंत्रण भी रखती थीं। विद्वानों ने इन संस्थाओं को विश (जनता) द्वारा निर्वाचित सदस्यों की स्थाई व अचल संस्था माना है।

अथर्ववेद[23] के एक मंत्र में राजा प्रार्थना करता है- 'सभा और समिति प्रजापति की विदुषी दुहिताएँ हैं, वे मेरी रक्षा करें। वे मुझे उत्तम शिक्षा (समुचित परामर्श) दें, संगत में एकत्र हुए 'पितर' लोग समुचित भाषण करें।' अतः स्पष्ट होता है कि सभा और समिति प्रजापति की दुहिताएँ हैं, जिन्हें राजा ने नहीं बनाया अपितु ईश्वरीय विधान का परिणाम हैं। पितर शब्द का अभिप्राय सम्भवतः वृद्ध (सभा के सदस्य) है। इन संस्थाओं में विविध विषयों पर विचार-विमर्श व वाद-विवाद हुआ करता था। समिति का उल्लेख ऋग्वेद में छः बार मिलता है जो मण्डल 1 से 10 के बीच है, जबकि सभा का उल्लेख आठ बार हुआ है जिसमें ऋग्वेद के प्रारम्भिक अंशों में चार बार हुआ है और बाद के अंशों में चार बार है। अतः सभा अधिक पुरानी संस्था थी। समिति का गठन किसी न किसी प्रकार के प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त पर होता था। परवर्तीकाल में राजकुल के लोग भी इसमें शामिल हुए तथा सामान्य लोग भी सदस्य थे। अथर्ववेद के जिस सूक्त में राजा के ध्रुव रहने की कामना की गई हैं, उसी में राजा की समिति भी ध्रुव रहे, कहा गया है। ऐसा माना जाता है कि समिति सम्पूर्ण 'विश' की संस्था थी, और उसमें जन के सब लोग एकत्र होते थे। ऐसा भी सम्भव है कि कतिपय प्रमुख व्यक्ति ही इसमें सम्मिलित होने का अधिकार रखते हों। इन संस्थाओं में अच्छे लोग एकत्र होकर उत्तमोत्तम रीति से अपने विचारों को प्रकट करते थे। 'समिति के प्रत्येक सदस्य की आकांक्षा स्वयं को श्रेष्ठ वक्ता सिद्ध करने की होती थी'[24] जिससे कि अपनी बात का प्रभाव निर्णयों पर डाल सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समिति में राजा को भी उपस्थित रहना पड़ता था। वैदिक साहित्य में बहुधा राजा के समिति में सम्मिलित होने का वर्णन है।[25] ऋग्वेदीय संज्ञान सूक्त में समिति में भाग लेने वालों के संदर्भ में वैचारिक एकता पर बल दिया गया है।[26] ऋग्वेद[27] तथा अथर्ववेद[28] से ज्ञात होता है कि समिति राजा का चुनाव कर राष्ट्र का भार वहन करने का आग्रह करती थी, चयनित राजा से कहा जाता था कि उसे जनता ने राजपद पर चुना है। वह राष्ट्र के कन्धे पर बैठे तथा भौतिक समृद्धि का विकास करे।[29] ऋग्वेद[30] में भी समिति में जाने वाले सच्चे राजा का निर्देश उपमानरूपेण किया गया है। छान्दोग्य के अनुसार जब श्वेतकेतु आरुणेय गौतम पाञ्चालों की समिति में आ गये थे, तब उनके राजा प्रवाहण जैबलि वहाँ उपस्थित थे तथा उनसे पाँच आध्यात्मिक प्रश्नों को पूंछा था।[31] इस घटना से विदित होता है कि समिति जातीय राष्ट्र सभा ही न थी, वरन् एक जातीय साहित्य सभा के समान भी थी। सभा और समिति का भेद वैदिक साहित्य से स्पष्ट नहीं होता पर विद्वानों का मत है कि समिति बड़ी और सम्पूर्ण 'विशः' (प्रजा) का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था थी। सम्भवतः राष्ट्र के अन्तर्गत ग्रामों के ग्रामणी उसमें सम्मिलित होते थे और साथ ही विश के कतिपय प्रमुख व्यक्ति- सूत, रथकार व अन्य शिल्पी आदि भी उपस्थित होते थे। समिति के पति (अध्यक्ष) को ईशान कहते थे। समिति की अध्यक्षता राजा करता था परन्तु समिति का कार्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक था। राजा का निर्वाचन, राजा के कर्त्तव्य निर्धारण, कर्त्तव्य निर्वाहन न करने पर राजा को पदच्युत करना और राज्य से निर्वासित कर देना, प्रायश्चित आदि करने पर राजा को पुनः राजगद्दी पर बैठाना, राष्ट्रीय आय-व्यय और जनता के योगक्षेम आदि के लिए उत्तरदायी राज्य में अन्याय, अत्याचार और अराजकता को रोकना आदि महत्वपूर्ण कार्य समिति के थे।[32]

सभा- ऋग्वेद में सभा का उल्लेख अत्यन्त आदरपूर्वक आठ बार हुआ है, एक मंत्र में श्रेष्ठ पुरुषों के सभा में पधारने से सभी के प्रसन्न होने का वर्णन है।[33] सभा के सदस्य 'सभासद' कहे जाते थे। सभा नामक संस्था छोटी थी, पर उसके सदस्य केवल बड़े लोग (पितरः व वृद्ध) ही होते थे। सभा में राजा, वृद्ध, धनाढ्य एवं विद्वतजन सभी सम्मिलित होते थे। अर्थात् ज्ञात होता है कि सभा में सम्पूर्ण 'विशः' एकत्र नहीं होती थी, अपितु उसके कतिपय प्रतिष्ठित व वृद्ध लोग (बड़े) ही उसमें सम्मिलित होते थे। कुछ भी निर्णय लेने से पूर्व राजा के लिए सभा में विचार विनिमय करना आवश्यक था। सभा और समिति के विषय में प्राप्त वेद मन्त्रों के आलोचनात्मक अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि सभा व्यापक आधार पर निर्मित संस्था थी। अथर्ववेद[34] में सभा को नरिष्टा कहा गया है, जिसका प्रधान कार्य न्याय करना था। सायणाचार्य ने नरिष्ट शब्द के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, 'बहुत से लोग एक साथ मिलकर जो बात कहें उसका दूसरों को उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि बहुत सी बात का उल्लंघन नहीं किया जा सकता अत: सभा को नरिष्ट कहते हैं।' नरिष्ट शब्द का अर्थ अनुल्लंघनीय है। बहुमत से सभाओं में जो कुछ निर्णीत होता था,उसे अनुल्लंघनीय माना जाता था। सभा का प्रमुख कार्य न्याय करना था। यजुर्वेद में वर्णित है कि न्यायकार्य करते हुए सभासद लोगों से अनजाने में या जानबूझ कर जो भूल हो जाती थी उसे पाप कहा गया है और उससे छूटने के लिये प्रार्थना की गई है। सभासदों के बीच किसी विशेष प्रश्न पर स्वतन्त्रतापूर्वक विवाद होता था तथा निर्णीत सिद्धान्त सबके लिए मान्य व अनिवार्य होते थे। पारस्कर गृह सूत्र[35] में सभा के लिए 'नादि' तथा 'त्विषि' शब्दों का प्रयोग किया गया हैं। सभा उच्च न्यायालय का कार्य सम्पादित करती थीं। इन्हीं की सहायता से राजा अपने कार्य का निर्वहन करता था।

सभा और समिति के विषय में वैदिक साहित्य के आलोचनात्मक अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि सभा एक व्यापक आधार पर निर्मित राजनैतिक संस्था थी, जिसकी अपेक्षा समिति का स्वरूप चुने हुए प्रतिनिधियों से निर्मित होता था। इन दोनों की तुलना क्रमश: आधुनिक लोकतंत्र की राजनैतिक संस्थाओं, लोक-सभा व राज्य सभा से की जा सकती है। इन दोनों के परामर्शों की उपेक्षा वेदकालीन राजा कदापि नहीं कर सकता था। ये तथ्य स्पष्ट करते हैं कि वैदिक युग में राजनैतिक दृष्टि से प्रचुर प्रबुद्धता एवं जागृति विद्यमान थी।

पुरोहित- राजा के दायित्वों में **पुरोहित** का महत्वपूर्ण योगदान माना गया है। राष्ट्र संचालन से सम्बद्ध अंगों में पुरोहित अग्रणी या मुख्य माना जाता था। वह न केवल धर्माचार्य था अपितु राजनीतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण व्यक्ति माना जाता था। ऐतरेय ब्राह्मण में राजा को सबका अधिपति, ब्राह्मणों तथा धर्म का रक्षक माना गया है साथ ही यह भी निर्देशित किया गया है कि कोई भी कार्य करने से पूर्व क्षत्रिय (राजा) को ब्राह्मण (पुरोहित) के पास जाना चाहिए, क्योंकि उससे यश प्राप्त होता है।[36] राजा के अभिषेक, दीक्षा एवं धर्म कार्यों के साथ-साथ युद्ध काल में भी प्रजा के कल्याण हेतु राजा की विजय तथा रक्षा हेतु देवताओं से प्रार्थना करता था। पुरोहित के राजा के रक्षक, सहचर एवं परामर्शदाता होने के प्रमाण भी मिलते हैं। तृत्सु राजा सुदास के यहाँ, विश्वामित्र तथा वशिष्ठ राजा शान्तनु के यहाँ, भरद्वाज राजा दिवोदास और देवापि के यहाँ आदि पुरोहित के रूप में नियुक्त थे।[37] अपने आश्रयदाता राजाओं के विरोधी अन्य राजाओं से पुरोहित की भी शत्रुता होती थी। अत: प्रजाकल्याण में राजा की अभिरुचि बनाये रखने, राजा को विराट मानव धर्म की ओर प्रवृत्त करने, राजनीतिक दृष्टि से राजा के समस्त सार्वजनिक कार्यों, न्याय व्यवस्था और प्रशासकीय कार्यों में पुरोहित का प्रभावशाली योगदान रहता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वैदिक काल की अपेक्षा उत्तरवैदिक काल में राजा की सहायतार्थ पदाधिकारियों की संख्या में वृद्धि हुई तथा अनेक विभाग स्थापित किये गये। राजा मंत्रियों की सहायता से शासन चलाता था, जो रत्निन नाम से सम्बोधित थे। शतपथ ब्राह्मण[38] में एकादश रत्निन उल्लिखित हैं- सेनानी (सेनापति), पुरोहित, महिषी (महारानी), सूत (इतिहास लेखक), ग्रामणी (वैश्य), क्षत्ता (आय-व्यय अधिकारी), संग्रहीता (कोषाध्यक्ष), भागदुध (राजस्व-अधिकारी), अक्षावाप (आय-व्यय निरीक्षक), गोविकर्त (अरण्यपाल) तथा पालागल (दूत या विशिष्ट संदेश वाहक) उल्लिखित विवरण से ज्ञात होते हैं। तैत्तिरीय संहिता तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में यह नामावली इस प्रकार दी गई है- ब्रह्मन (पुरोहित), राजन्य महिषी (पटरानी) वावाता (राजा की प्रेयसी), परिवृक्ती (राजा की उपेक्षिता पत्नी) सेनानी (सेनानायक) सूत (सारथी) ग्रामीण (ग्राम-प्रधान), क्षतृ (कोषाधिकारी), संग्रहितृ (कोषाध्यक्ष), भागदुध (कर संग्रह करने वाला या भोजन वितरण करने वाला) और अक्षावाप (जुएधर का अधिकारी)।[39] मैत्रायणी संहिता में भी रत्नियों के नाम इस प्रकार दिये गये हैं- ब्रह्मन्, राजन्, महिषी, परिवृक्ती, सेनानी, संग्रहितृ, क्षतृ, सूत्र, वैश्यग्रामीण, भागदुध, तक्ष (तक्षक- बढ़ई) रथकार, अक्षावाप और गोवितर्क।[40]

उपर्युक्त रत्निन के अतिरिक्त कतिपय राजकीय अधिकारी भी विभिन्न विभागों के अध्यक्ष होते थे -अन्नपति, पशुपति, पथिपति, क्षेत्रपति, अश्वपति, अश्वप, हस्तिप, गोपाल, अविपाल, अजपाल, अरण्यपति, वनपति, वनप, दावप, व्रातपति आदि।

सैन्य सेवा, व्यापार-वाणिज्य, यातायात तथा गृह सेवा से सम्बद्ध अनेक अधिकारी, कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे जो राजा को शासन में, राष्ट्र की सुरक्षा व शक्ति वृद्धि में पूरा-पूरा सहयोग देते थे।

अतः उल्लिखित विवरण से ज्ञात होता है, कि राजा निरंकुशता व स्वेच्छाचारिता से कोई कार्य नही कर सकता था। वह राष्ट्र व प्रजा के हित में सभा समिति, रत्निन्, पुरोहित अन्य विभाग सम्बन्धी अधिकारी आदि के सहयोग से शासन चलाता था। सभा और समिति अर्थात् प्रजा के प्रतिनिधियों का राजा पर नियन्त्रण या अंकुश रहता था। यदि हम कहें, कि वैदिक कालीन राजनीतिक व्यवस्था राजतंत्र में निहित लोकतंत्र थी तो अतिश्योक्ति न होगी। क्योंकि वैदिक कालीन राजनैतिक विकास में मानवमात्र का समुचित स्थान था और उसमें नागरिकता के ऊँचे से ऊँचे आदर्शों व सिद्धान्तों को पोषित किया जाता था, जिसमें व्यक्ति के आत्मविकास के लिये सम्पूर्ण अवसर प्राप्त थे। सभा और समिति का कार्य **लोकसभा व विधान सभा** की भाँति पुरोहित का काम **सचिव** की भाँति, रत्निन का काम **मंत्रिमण्डल** की भाँति व्यवस्थित व सुचारु रूप से स्थापित था। विभिन्न विभागों पर भी अपने-अपने क्षेत्र के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यों का पूरा दायित्व दिया गया था। सभा सर्वोच्च न्यायालय के समान शक्तिशाली के समान शक्तिशाली व महत्वपूर्ण थी। राजा का पद भी स्थाई नहीं था, क्योंकि राजा के दीर्घ शासन की कामना के साथ-साथ राजा यदि अपने दायित्वों को कुशलता से संभाल नही पाता या किसी प्रकार की गड़बड़ी या देश व प्रजा से द्रोह करता तो उसे उसके पद से हटाया व निर्वासित भी किया जा सकता था। राजपद से सम्बन्धित विभिन्न सिद्धान्तों को दर्शाते हैं, वेदकालीन राजनैतिक विकास प्रगतिशील थे। राज्य संस्था अथवा शासन का सूत्रपात परिवार की संरचना के आधार पर हुआ था जैसे- पिता परिवार का मुखिया, परिवार का रक्षक व शासक होता है वैसे ही राजा और प्रजा का सम्बन्ध पितृ प्राधान्य सिद्धान्त को दर्शाता है। राज्य सुव्यवस्था, सुरक्षा न्याय तथा शान्ति का प्रतीक था। राज्य के ऐहिक, पारलौकिक, भौतिक एवं आध्यात्मिक सभी प्रकार के हितों की रक्षा वैदिक, राजनीतिक प्रणाली में निहित थी। **अतः ऐसी राजनीति प्रणाली जो सदियों वर्ष पूर्व (वैदिक काल में) भारत में प्रचलित थी, आज भी एक आदर्श रूप में मानी जाती है, जिसका उदाहरण हमें इंग्लैण्ड की राजनीतिक व्यवस्था में मिलता है, आधुनिक यूरोप के विभिन्न दार्शनिकों व प्रजा ने ऐसी प्रणाली को सर्वश्रेष्ठ आदर्श व अनुकरणीय माना है।** लोक संस्थाएँ ऋग्वैदिक युग से ही भारतीय शासन पद्धति की मौलिक संस्थाओं के रूप में कार्यशील थीं।

पाद-टिप्पणियाँ

1. गोपथ ब्राह्मण भाग- 1-5/8/8-12
2. ऐतरेय ब्राह्मण- 8/14
3. अथर्ववेद- 19/3/30
4. ऐतरेय ब्राह्मण- 1/14
5. अथर्ववेद- 6/87/1-2,6/88/1-2
6. अथर्ववेद- 3/5/2 'अहं राष्ट्रस्यभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः।
7. अथर्ववेद - 3/8/7/1
8. यजुर्वेद- 9 / 40
9. 'क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दः भुवनेषु रूढ़ः।
10. अथर्ववेद- 3/4/7
11. तदेव, 1/29/1-6
12. तदेव, 1/5/6-7

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

13. तदेव, 4/8/4
14. तदेव, 4 /8/ 5
15. यजुर्वेद- 22 / 9
16. तदेव, 7/12
17. यजुर्वेद- 11/15, 9/22 ऋग्वेद- 1/54/11 अथर्ववेद- 7/35/1, 13/ 1 /34 आदि
18. ऋग्वेद- 7/45
19. ऐतरेय ब्राह्मण- 8/3/15
20. शतपथ ब्राह्मण- 5/4/4/7 (यां च रात्रिमजायेऽहं यां च प्रेतोऽस्मि, तदुभयमन्तरेण इष्टापूर्त में लोकं सुकृतमायुः प्रजां वृञ्जीथा यदि ते द्रृह्मेयमिति)
21. अथर्ववेद- 2/88/3
22. तदेव, 3/3, 3/4
23. तदेव 7/1/63
24. तदेव 7/12/1-2
25. ऋग्वेद- 9/92/6- 'राजा न सत्यः समितीरियानः'
26. तदेव, 10/191/3 'समानो मन्त्रः समितिः समानी समानमनः सह चित्तमेषाम्'
27. ऋग्वेद- 10/173/1
28. अथर्ववेद - 6/87/1
29. तदेव 3रु42
30. ऋग्वेद- 9/92/2/6
31. छन्दोग्य- 5/3
32. अथर्ववेद- 6/88/3, 3/3/4-5, ऋग्वेद-10/173/1
33. ऋग्वेद 10/71/10- 'सर्वे नन्दति यशसागतेन सभासाहेन संख्या सखायः।
34. अथर्ववेद- 7/12/2
35. पारस्कर गृहसूत्र-3/13
36. ऐतरेय ब्राह्मण- 38/39/3, शतपथ ब्राह्मण- 4/1/4/6
37. ऋग्वेद - 7/18/3, अथर्ववेद- 3/19, ऐतरेयब्राह्मण-8/5/3
38. शतपथ ब्राह्मण- 5/3/11-13
39. तैत्तिरीय संहिता - 1/8/9/1 आदि और तैत्तिरीय ब्राह्मण- 1/7/3/1
40. मैत्रायणी संहिता- 2/6/5, 4/3/8

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद्भगवद्गीता

मंजुनाथ एस.जी.
सहायक-आचार्यः
आदर्श वेदान्त विभागः
श्रीभगवानदास-संस्कृत-महाविद्यालयः
हरिद्वारम्।

प्रवृत्तिनिवृत्त्यन्यतरबोधकत्वेन शास्त्रस्य शास्त्रत्वमिति दार्शनिकानां प्रवादः। तच्छास्त्रं निगमागमवेदादिनाम्ना प्रसिद्धमिति नाविदितं समेषामास्तिकविदुषाम्। शारीरिकसूत्ररचयिता बादरायणोऽपि एवमभिप्रेत्यैव **शास्त्रयोनित्वात्**[1] इति सूत्रे शास्त्रशब्दं प्रायुक्त। शास्त्रं नाम वेदः। 'विद ज्ञाने' इति ज्ञानार्थकाद् विद्धातोर्घञि प्रत्यये कृते वेद इति रूपं निष्पद्यते। एवं वेदशब्दो ज्ञानार्थकः।

स च वेदः ब्रह्मणो मुखारविन्दादप्रयत्नेन लीलान्यायेन निःश्वासवदाविर्बभूव। यथा- **अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतत्**[2] इति श्रुतेः। स च ऋग्यजुस्सामाथर्वात्मना व्यासमहर्षिणा चतुर्धा विभक्तः। एकैकोऽपि वेदः 'संहिता' 'ब्राह्मणम्' 'आरण्यकम्' उपनिषत्' इति चतुर्धा विभज्यते। तत्र समग्रोऽयं वेदराशिः प्रवृत्तिधर्मं वा निवृत्तिधर्मं वा प्रतिपादयति। निवृत्तिधर्मः वेदस्यान्तिमे भागे उपनिषत्सु प्रतिपाद्यते उपनिषद्भिन्नवेद भागे प्रवृत्तिधर्मः प्रतिपाद्यते। स्वाध्यायोऽध्येतव्यः[3] इत्यध्ययनविधिना स्वाध्यायस्याध्ययनं विधीयते। अध्ययनश्चावगतिपर्यन्तम्। वेदार्थावागतिश्च अङ्गादीनामध्ययनसहकृता भवति। अत एव महर्षिणा पतञ्जलिना कर्तव्यत्वेन समादिश्यते यत्-

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च[4] इति।।

श्रीमद्भगवद्गीतायाः वेदार्थोपबृंहकत्वम्-

वेदस्य सर्वस्यार्थं विशदं प्रकाशयितुमेव भगवान् श्रीकृष्णः गीतामगासीदिति निश्चप्रचम्। वेदश्च कर्मोपासनाज्ञानकाण्डात्मना त्रिधा विभक्तः। वेदार्थबोधक-त्वादेवाष्टादशाध्यायी श्रीमद्भगवद्गीतापि काण्डत्रयात्मिका। तदुक्तम्-

यत्प्राप्तये समारब्धा वेदाः काण्डत्रयात्मकाः।।
कर्मोपास्तिस्तथा ज्ञानमिति काण्डत्रयं क्रमात्।
तद्रूपाष्टादशाध्यायी गीता काण्डत्रयात्मिका।।[5] इति।।

तत्र तावद्गीतायां प्रथमषट्के कर्म तत्त्यागः त्वंपदार्थश्च कथ्यते। द्वितीयषट्के भगवद्भक्तिः तत्पदार्थश्च निगद्यते। तृतीयषट्के ज्ञानं तत्त्वंपदार्थयोरैक्यञ्चोच्यते। एवं वेदार्थसर्वस्वमत्र स्थितमिति कृत्वैव कथ्यते-

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिस्सृता।।[6] इति।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदस्य सारत्वादेव वेदोपबृंहणभूतानां स्मृतीतिहासपुराणानामपि सारभागत्वमस्यां सुतरां समायाति। अत एवोक्तं महर्षिणा व्यासेन **एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम्**[७] इति। किञ्च स्वयमुक्तं भगवता-

गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे चोत्तमं गृहम्।
गीता मे परमा विद्या ब्रह्मरूपा न संशयः॥[८] इति।

वेदस्यान्तिमो भागः ज्ञानकाण्डमित्यभिधीयमानः उपनिषत्। उप, निपूर्वकात् षदलृविशरणगत्यवसादनेषु इति धातोः क्विकपि व्युत्पन्नस्य उपनिषच्छब्दस्य अर्थोऽस्ति संसारबन्धनानि विशीर्य, विनाश्य च मुमुक्षुं ब्रह्मणः अतीवसन्निकटं प्रापयति या विद्या सा उपनिषदिति। तथा च वक्ष्यति **निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते,**[९] **ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्यः**[१०] इति। धर्मार्थकाममोक्षेषु चतुर्विधपुरुषार्थेषु परमपुरुषार्थस्य मोक्षस्य साक्षात्साधनभूता उपनिषद् एव गावः, भगवान् श्रीकृष्ण एव दोग्धा, अर्जुनश्च वत्सः, सुधियः भोक्तारः, दुग्धामृतञ्चेयं श्रीमद्भगवद्गीता। तथाहिं-

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥[११]

इत्थं भगवता वेदव्यासेनैवासकृदनेकधा सुश्लोकिता।

श्रीकृष्णेनार्जुनायोपदिष्टामिमां गीतां व्यासः सप्तभिः श्लोकशतैः उपनिबबन्ध। तत्र तावत् कृष्णोक्तश्लोकाः पञ्चसप्तत्युत्तरपञ्चशतम्, अर्जुनोक्तश्लोकाः चतुरशीतिः, संजयोक्तश्लोकाः चत्वारिंशत्, धृतराष्ट्रोक्तश्लोक एकः। तदुच्यते-

पञ्चसप्ततियुक्तानि श्लोकानां प्राह केशवः।
शतानि पञ्च पार्थस्तु चतुरशीतिमेव च।
चत्वारिंशत् संजयोक्ता राज्ञैक इति तन्मतिः॥ इति

श्रीमद्भगवद्गीतायाः तात्पर्यम्-

गीतायाः परमं तात्पर्यं किमित्यत्र शास्त्रीयो विमर्शः। तत्र सायणमाधवाचार्यैः[१२] लिङ्गषट्कं दर्शितम्।

यथा-

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्।
अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये॥ इति

'लीनमर्थं गमयति' इति व्युत्पत्त्या उपक्रमोपसंहारादिभिः षड्विधलिङ्गैः तात्पर्यनिर्णयः क्रियते। प्रकरणप्रतिपाद्यं विषयमादावुपक्रम्यान्ते तस्यैवोपपादनमुपक्रमोपसंहारौ। प्रतिपाद्यस्यार्थस्यासकृत् प्रतिपादनमभ्यासः। प्रतिपाद्यस्याद्वितीयवस्तुनः प्रमाणान्तराविषयत्वमपूर्वता। अनुष्ठानस्य श्रूयमाणं यत् प्रयोजनं तत् फलम्। प्रतिपाद्यस्य वस्तुनः स्थाने प्रशंसनमर्थवादः। प्रतिपाद्यविषयं प्रमाणयितुं या युक्तिरुपस्थाप्यते सा उपपत्तिः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद्भगवद्गीतायाः उपसंहारश्लोकः-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यः मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥[१३] इति।

उपक्रमश्लोकश्च-

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥१४ इति।

अत्र उपक्रमः 'अन्वशोचः' उपसंहारः 'मा शुचः'। अतः शोकतारणकारणप्रदर्शने एव गीतायाः तात्पर्यम्। तथा च श्रुति **तरति शोकमात्मवित्**[१५], **तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**[१६] इति गीतायाः अयमेव प्रतिपाद्यो विषयः आत्मवित् इत्यनेन ज्ञानमेव शोकतारणकारणमिति ज्ञायते। तदेवोच्यते उपक्रमे **नानुशोचन्ति पण्डिताः** इति।

किन्तु उपसंहारे शोकतारणकारणत्वेन मामेकं शरणं व्रज इति भगवच्छरणागतिरूक्ता। कथमिदं वैरुध्यमुच्यते? अत्रोपक्रमोपसंहारयोर्विरोधे कतरस्य प्राबल्यमिति चिन्तायाम् **असञ्जातविरोधि न्यायः** आश्रयणीयः। उपक्रमकथनवेलायामुपसंहारस्यासञ्जातत्वादुपक्रमस्यैव प्राबल्यम्। उपसंहारकथनवेलायामुपक्रमस्य पूर्वमेव सिद्धत्वात् सञ्जातविरोधित्वेनोपसंहारस्य दौर्बल्यम्।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेंक शरणं व्रज[१७] इत्युक्तत्वात् भगवच्छरणागतिः गीतायाः तात्पर्यमिति प्रतिपादनार्थं केचन **शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्**[१८] इति श्लोकमुपक्रमरूपेण कथयन्ति। किन्तु तैरवगन्तव्यं यत् स चार्जुनोक्तः श्लोकः, न तु भगवता श्रीकृणेनेति। किञ्च समग्रगीतोपदेशानन्तरमर्जुनेन **करिष्ये वचनं तव**[११] इत्युक्तत्वात् कर्मणि गीतायाः तात्पर्यमिति प्रतिपादयन्ति। किन्तु तन्नसमीचीनम्, यतो हि कर्म साक्षात् मोक्षसाधनमित्युपनिषदः नाङ्गीकुर्वन्ति। यथा-**न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्वामानशुः**[२०] इति।। अतः उपनिषत्सारस्वरूपगीतायाः तात्पर्यं कर्मेति वक्तुं न शक्यते। एवमेवोपासनमपि गीतायाः न तात्पर्यम्, मानसिककर्मरूपत्वात्। तर्हि भगवच्छरणागतिः कर्मोपासनानि च किमर्थमुक्तानि? इति चेत् आत्मज्ञानं प्रति तानि अङ्गानि भवन्ति। यथा कर्मणा चित्तशुद्धिः, चित्तशुद्धिद्वारा ज्ञानोत्पत्तिः। अतः श्रीमद्भगवद्गीतायाः तात्पर्यमात्मज्ञानमेव शोकतारणोपाय इति प्रत्येतव्यम्।

श्रीमद्भगवद्गीतायाः प्रयोजनम्-

समेषामपि सर्वकर्मादौ प्रयोजनं किमिति जिज्ञासा समुदेति। यतो हि 'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते' इति। यावत्पर्यन्तं प्रयोजनं न ज्ञायते तावत्पर्यन्तं जनाः तन्न स्वीकुर्वन्ति। अत एवोक्तम्-

सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित्।
यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत् केन गृह्यते॥[२१] इति।

तस्मात् प्रवृत्तिनिवृत्त्यन्यतरबोधकवेदसारभूतगीताशास्त्रे जनानां प्रवृत्त्यर्थं तस्य प्रयोजनं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथयन्तिश्रीमधुसूदनस्वामिनः-

सहेतुकस्य संसारस्यात्यन्तोपरमात्मकम्।
परं निःश्रेयसं गीताशास्त्रस्योक्तं प्रयोजनम्।।[२२] इति

संसारनिवृत्तिः गीतायाः प्रयोजनम्। संसारश्चाविद्याकल्पितः नामरूपात्मकः संसरणशीलश्च भवति। ब्रह्मणो विवर्तरूपसंसारस्य नामरूपांशद्वयव्यवहारस्तु अविद्यापरिणामात्मकः। यथा-

अस्ति भाति प्रिंय रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम्।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततोद्वयम्।[२३] इति।

विद्याकल्पितसंसारस्य निवृत्तिस्तु विद्यया एव सम्भवति। तदुक्तं विद्यारण्यस्वामिभिः-

संसारः परमार्थोऽयं संलग्नः- स्वात्मवस्तुनि।
इति भ्रान्तिरविद्या स्याद्विद्ययैषा निवर्तते।।[२४] इति।

एवं विद्यया निवर्त्यस्य संसारस्य मिथ्यात्वं सिद्धम्। तर्हि किमिदं मिथ्यात्वम्? तत्रोक्तम्-

ज्ञानप्रयुक्तावस्थितिसामान्यविरहप्रतियोगित्वं मिथ्यात्वम्।
अवस्थितिश्च द्विधा, स्वरूपेण कारणात्मना च सत्कार्यवादाभ्युपगमात्[२५] **इति।**

स्वरूपेण नाशे कारणं तथैव तिष्ठति, पुनः कार्य भवितुं शक्यते। यथा घटः स्वरूपेण नश्यति चेदपि कारणं मृत्तथैव तिष्ठति, तेन पुनः कार्यं भवितुं शक्यते। अत एव मधुसूदनसरस्वतीभिः सहेतुकस्य संसारस्य बाधः गीताशास्त्रस्य प्रयोजनमित्युक्तम्। **अज्ञानस्य स्वकार्येण प्रविलीनेन वर्तमानेन वा सह ज्ञानेन निवृत्तिर्बाधः इति कथयन्ति**[२६]**। तत्वमसि**[२७]**, अहंब्रह्मास्मि**[२८] इत्यादि श्रुतिशिरोभूतोपनिषद्वाक्यैः वेदार्थप्रतिपादकगीतया च सकार्येणसंसारस्यात्यन्तिकनिवृत्तिरधिष्ठानसाक्षात्करेण जायते। यथा-

तत्वमस्यादिवाक्योत्थसम्यग्धीजन्ममात्रतः।
अविद्यासहकार्येण नासीदस्ति भविष्यति।।[२९] इति।

तथा च संसारस्यात्यन्ताभावसंपादनं गीतायाः परमं प्रयोजनमिति सिद्धम्। अयं ग्रन्थः अज्ञाननिवृत्तिपूर्वकपरमार्थत्त्वप्राप्तिसाधनीभूतः आत्मानात्मज्ञानादिना निखिलमुमुक्षुजनानुपकुर्वन् संसारबन्धंशिथिलीकुर्वन् **विलसति।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाद टिप्पणियाँ-

1. ब्र.सू. 1.1.3
2. बृ.उप. 2.4.10
3. तैत्ति. आ. 10.2.1
4. म.भा. पस्पाशाह्निकम्।
5. भ.गी. मधुसूदनी 3.4
6. महाभारतम्, भीष्मपर्व: 43.1
7. गीतामाहात्म्यम् 7
8. वराहपुराणम्
9. कठोपनिषत् 1.3.15
10. तत्रैव 2.3.18
11. भ. गी. मङ्गलाचरणम्4
12. स.द.सं. पूर्णप्रज्ञदर्शनम्
13. भ.गी. 18.66
14. तत्रैव 2.11
15. छा. उ. 7.1.3
16. श्वेताश्च० उ० 3.8
17. भ.गी. 18.66
18. तत्रैव 2.7
19. तत्रैव 18.73
20. म. ना. उ. 10.5
21. श्लो.वा. प्रतिज्ञासूत्रम् 12
22. भ.गी.गूढार्थदीपिका 2
23. वेदान्तपरिभाषा
24. पञ्च्दशी 6.10
25. अद्वैतसिद्धि:, तृतीयमिथ्यात्वम्।
26. विवरणाचार्या:।
27. छा. उ. 1.4.10
28. बृ.उ. 1.4.10
29. सुरेश्वरवार्तिकम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिकी राष्ट्रीय एकता की वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ0 आशा रानी पाण्डेय
रीडर संस्कृत विभाग
डी0जी0 कालेज, कानपुर

संस्कृत भाषा विश्व की सर्वश्रेष्ठ भाषा है। इसे जो सुरभारती 'देववाणी' आदि उपाधियों से समलंकृत किया है, उसका उद्देश्य मात्र हमारे ऋषि मुनियों का संस्कृत के प्रति अति अनुराग ही नहीं रहा है, अपितु उसके पीछे संस्कृत में निहित वे भाव हैं, जो चिरन्तन, शाश्वत तथा सत्यनिष्ठ हैं, तथा जो हमारे ऋषियों के कठिन तप एवं चिन्तन के परिचायक हैं। जब अपनी सभ्यता पर अभिमान करने वाली जातियां जंगलों में भ्रमणकर अपने भावों को संकेतों के माध्यम से व्यक्त किया करती थी उस समय हमारे ऋषि मुनि (आर्य लोग) सरस्वती के किनारे देववाणी में सामगान किया करते थे। दर्शन एवं वेदों के द्वारा जगत् की सम्पूर्ण गुत्थियों को सुलझा कर उन्होंने अपने उन्नत मस्तिष्क का परिचय दिया है। एतदर्थ हमारे देश भारत को सम्पूर्ण मानव सभ्यता का गुरु माना जाता है। भारत को जगद्गुरु के इस महिमामय पद पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय निःसन्देह संस्कृत भाषा को है -

''एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षरेन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥''

भारत एक अखण्ड राष्ट्र है। भारत की श्रेष्ठता के कारण ही हम ''धन्याभारतवसुन्धरा'' ''वयं भारतीयाः वयं भारतीयाः'' इत्यादि का उद्घोष अत्यन्त गर्व से करते हैं। मनुष्य ही नही अपितु देवता भी इसका गौरवगान मुक्तकण्ठ से करते हैं।

''गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तुते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्यदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्''[2]॥

संस्कृत भाषा का महत्व भारत ही नही अपितु विश्व में भी स्वीकरणीय, सम्माननीय एवं महनीय है। राष्ट्रीय एकता का मूलाधार संस्कृत भाषा ही है इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं हैं। परन्तु इस विषय पर प्रकाश डालने से पूर्व आइए हम राष्ट्र की अवधारणा पर विचार करें। सृष्टि ईश्वर कृत व मनुष्यकृत दो प्रकार की होती है। राष्ट्र की उत्पत्ति मनुष्यों के द्वारा होती है। मनुष्यों की सृष्टि की उत्पत्ति हेतु वेदों ने तप की आवश्यकता मानी है।

''श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रहमणा। भद्रमिच्छन्त ऋषयः तपो स्वर्विद दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रम् बलमोजश्च जातम् तदस्मैदेवा उपसन्नमन्तु॥''[3]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ राष्ट्र नहीं होता वहाँ जनता नानाप्रकार की अभद्र आपत्तियों से ग्रसित हो जाती है। राष्ट्र ही समग्र जनता को एक विधान देकर तथा दण्ड का आश्रय लेकर कल्याणमयी स्थिति उत्पन्न करता है जिससे जनता निर्भय होकर तथा कर्तव्यपरायण बनकर सुखशान्ति का अनुभव करती है। तप के कई रूप होते हैं। राष्ट्र के प्रति सच्ची निष्ठा एवं लगन भी एक प्रकार का तप है।

राष्ट्र सर्वथा संकल्पना नहीं है, अपितु विश्व में अत्यन्त प्राचीन आदि ग्रन्थ में राष्ट्र शब्द बार-बार प्रयुक्त हुआ है। दसवां मण्डल इसका प्रमाण है जिसमें राष्ट्र का मुख्य पुरोहित राजा को अभिषिक्त करने के उपरान्त उसको उपदेश और आदेश देता है।

'इह राष्ट्रमुधारय'

अर्थववेद में भी राष्ट्र के सन्दर्भ में -

'सानो भूमिस्त्विषितूत्तमे बलं राष्ट्रे दधातु' में कहा गया है। ''याज्ञवल्क्य के शुक्लयजुर्वेद में भी-

आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधि महारथो जायताम्।।''

अर्थात् हमारे राष्ट्र में शूर धुनर्धर युद्धकला निपुण क्षत्रियों का जन्म हो।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है -

''राजानो वैराष्ट्र भृतस्ते हि राष्ट्राणि विभ्रति।।''

इस प्रकार की सुन्दर राष्ट्र की अवधारणा सर्वप्रथम संस्कृत ने ही दी है।

राष्ट्र शब्द सर्वधातुभ्यः, ट्रन् इस उणादि प्रत्यय के संयोग से 'रासुशब्दे' अथवा 'राजृशोभते' धातु से बना है। जिसका अर्थ है राज्य, देश, साम्राज्य।

शतपथ ब्राह्मण में राष्ट्र की अवधारणा इस प्रकार व्यक्त की गई है - श्री ''वैशष्ट्रिम'' अर्थात् समृद्धि युक्त ओजस्वीजन ही राष्ट्र हैं। राष्ट्र का स्वरूप स्वः से प्रारम्भ होता है। स्वराष्ट्र का मूल बिन्दु है और परिवार, समाज, व्यक्ति, राष्ट्र आदि स्व के विस्तार का परिणाम। स्वः का विस्तृत विशाल अहं से वयम् तक का भाव जिसमें परिवार, समाज और उसके आवश्यक उपादानों का समावेश हो उसे राष्ट्र की गरिमा से मण्डित किया जा सकता है। किसी भी राष्ट्र की परिधि पहाड़ों एवं पत्थरों से घिरे भू-भाग के द्वारा ही नही व्यक्त की जा सकती अपितु उसमें किसी भू-भाग में समूह रूप से वसे जन-जन की मनोभूमि की संगठित मानसिकता भी समाविष्ट रहती है। संस्कृत भाषा में इसी समूह भाव में रहने की कामना का कितना सुन्दर निदर्शन हुआ है -

''संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते''5।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् संग-संग चलो, संग बोलो तुम्हारे मन एक हो जैसा देवता पहले से करते आये हैं, उसी प्रकार बराबर करो।

और भी-

"समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।"[16]

अर्थात तुम लोगों के समस्त संकल्प समान हो, समस्त हृदय एक हों, और अन्तःकरण समतुल्य हो, जिससे तुममें एकत्व का संचार हो। राष्ट्रीय एकता का आधार है राष्ट्र प्रेम। राष्ट्र प्रेम की भावना दो प्रमुख रूपों में परिलक्षित होती है -

1. **राष्ट्र की आन्तरिक सत्ता के प्रतिनिष्ठा**
2. **राष्ट्र की वाह्य सत्ता के प्रतिनिष्ठा।**

राष्ट्र की वाह्य सत्ता भौतिक और भौगोलिक होती है। जिसमें काव्य के माध्यम से राष्ट्र की भौगोलिक, भौतिक सम्पन्नता तथा सौन्दर्य का वर्णन और उसकी प्राकृतिक आकृति के प्रति अभिमान की भावना के द्वारा राष्ट्र प्रेम की भावना व्यक्त की जाती है। संस्कृत भाषा में राष्ट्र के बाह्य स्वरूप का सुन्दर चित्रण हुआ है।

"उत्तरंयत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षतद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥"[17]

"गंगा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदा सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिकुरू॥"[18]

राष्ट्र की आन्तरिक सत्ता अत्यन्त व्यापक और विशाल होती है तथा जो अन्तस् चेतना की सही और सम्पन्न अभिज्ञान है। इसके अन्तर्गत राष्ट्र की धार्मिक, अध्यात्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं राजनैतिकता के प्रति सजगता एवं गौरव की भावना निहित रहती है। संस्कृत भाषा में राष्ट्र प्रेम के इन घटकों की मुक्तामालाएं वैदिक युग से लेकर अद्यावधि यत्र तत्र सर्वत्र परिलक्षित हो रही हैं। संस्कृत साहित्य ने घोर संकट की घड़ियों में हमारा मार्गदर्शन किया है। हताश-निराश देशवासियों में नए संकल्प और नवीन उत्साह का संचार किया है -

"उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निवोधत"[19]

धर्म और संस्कृत की रक्षा की है और विपर्यस्तिप्राय राष्ट्रों को एकता के सूत्र में आबद्ध करने की प्रेरणा दी है। सम्पूर्ण वेदसाहित्य राष्ट्रीय एकता, चेतना, एवं अखण्डता के विचारों से ओत-प्रोत है। जिसमें प्रगतिशील राष्ट्र के चरम उत्थान और राष्ट्र वासियों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख-समृद्धि के लिये एकात्मभाव से परिपूर्ण आकांक्षाओं को बार-बार व्यक्त किया गया है -

''सूर्यत्वर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त,
जनभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं में दत्त
विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुस्मै दत्त,
स्वराजस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैदत्त॥''[10]

अर्थात - हे देव तुम सूर्य के तुल्य तेज वाले हो, राष्ट्र के देने वाले हो मुझे (सूर्यसा तेजस्वी) राष्ट्र दो। हे देवों तुम जन कल्याणकारी हो मुझे (विश्व कल्याणकारी) राष्ट्र दो। हे देवों तुम विश्व के पालक हो, राष्ट्र के देने वाले हो। तुम मुझे (विश्व कल्याणकारी) राष्ट्र दो। हे देवों तुम स्वयं प्रकाशमान हो, राष्ट्र के देने वाले हो मुझे स्वराज्य वाला राष्ट्र दो। राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता का पोषक वेद का यह मन्त्र भेद-भाव की नीति का परित्याग करने पर बल देता है -

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्योअन्यस्मै वल्गुवदन्त एवं सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि॥3/30/5 (अथर्ववेद)

तात्पर्य यह है कि प्रभु का मानव मात्र के लिये आदेश है कि तुम क्षुद्रता से पृथक् रहकर महान् बनो और महान् पुरुषों का सम्मान करो। तुम ज्ञान-विज्ञान में ऊँचे उठों और भेद-भाव को प्रश्रय न दो। कार्य सिद्धि हेतु मिलकर कार्य करो। एक धुरी के नीचे समवेत होकर प्रगति के पथ पर आगे बढ़ो। परस्पर मीठी वाणी बोलते हुये जीवन यात्रा में बढ़े चलो। मैं तुम्हें समान मन और समान धारणशक्ति से सम्पन्न करता हूँ।

उपर्युक्त वेद मन्त्र में द्रोह तथा विरोध भाव से पृथक् रहकर मानवमात्र को प्रेम पूर्वक जीवन व्यतीत करने का कितना चारु एवं सारगर्भित वर्णन प्रस्तुत किया गया है। विपत्तियों से डट कर संघर्ष करना और आनन्द का उपभोग करना हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। हम सब एक पिता की सन्तान हैं। सबको समान बन्धुता के सूत्र में आबद्ध होकर सौभाग्य एवं समृद्धि के लिये प्रेरित करते हुये एक वेद मन्त्र का अवलोकन करें।

''सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि एक श्रुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु॥''11

प्रत्येक प्राणी का कल्याण हो ऐसी सर्वोदय की उत्कृष्ट भावना संस्कृत के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा में कहां सम्भव है -

अजीतयेऽअहतये पवस्य स्वस्तये सर्वतातये वृहते।
तदुशन्ति विश्व इमे सखायः तदहं वश्मि पवमान सोम॥ ऋ० 9/96/4

अर्थात- हे सोम तुम अपनी शक्ति से सदैव समवेत रहते हो। मुझे भी ऐसी शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो जिससे मुझे कोई जीत न सके। मुझे कोई हानि न पहुंचा सके, मेरी यह भी कामना है कि सर्वत्र स्वस्ति का संचार हो और एक वृहत्सर्वोदय की कल्याणकारी स्थिति का उदय हो। यह मेरी ही नहीं मेरे सभी मित्रों की कामना है। समस्त संस्कृत वाङ्मय में राष्ट्रीय चेतना एकता, एवं अखण्डता के विषय में गहन चिन्तन एवं मनन हुआ है। "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या" की दृढ़ प्रतीति राष्ट्रीयता की नींव मानी गयी है। राष्ट्र के प्रति अटल निष्ठा राष्ट्रगौरव की रक्षा के प्रति नागरिकों के दायित्व का स्पष्ट वर्णन वेदों में दृष्टिगोचर होता है। अथर्ववेद में मातृभूमि का वन्दन करने का भाव राष्ट्रीय चेतना का ही भाव है जिसमें अपनी मातृभूमि और राष्ट्र के प्रति अपनत्व की भावना से भरे वचनों का सुन्दर परिपाक है। रामायण और महाभारत जैसे आर्षकाव्य ने हमारी राष्ट्रीय अस्मिता को अनेक संकटपूर्ण कालखण्डों में सुरक्षित रखा है। ये वे अमूल्य निधि हैं जिनसे मानवसमूह तथा राष्ट्रजीवन को प्रेरणा मिलती रहेगी। चाणक्य जैसे चतुर राजनीतिज्ञ द्वारा, राजा और राष्ट्रोत्सर्ग के लिये करणीय आचरणों का वर्णन आज भी प्रासंगिक एवं सर्वजन ग्राह्य है। राष्ट्रहित एवं व्यक्तिगतहित की टकराहट में राष्ट्रहित को प्राथमिकता प्रदान करने का कितना सुन्दर दृष्टान्त महाकवि भवभूति ने राम के चरित्र के द्वारा व्यक्त किया है -

"स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।।"[12]

अर्थात लोकानुरंजन हेतु प्रिया जानकी का त्याग करते हुये राम को व्यथा नहीं होगी लोकाराधन की वेदी पर अपने निजी सौख्य को तिलाञ्जलि देना राम की कर्तव्यनिष्ठा का, आदर्श भूपतित्व का उज्ज्वल निदर्शन है। स्वयं विकास के साथ ही सम्पूर्ण विश्व के विकास की कामना संस्कृत साहित्य की सबसे बड़ी विशिष्टता है। यह साम्राज्यवाद के स्थान पर मानवतावाद को विश्वप्रभुसत्ता के स्थान पर विश्वबन्धुत्व के भाव को स्वीकार करती है। अतः संस्कृत भाषा स्वत्व एवं परत्व के भाव से सम्पूर्ण विश्व को आत्मवत् देखती है -

"अयं निजःपरोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।"[13]

किसी भी राष्ट्र की एकता उस राष्ट्र के व्यक्ति तथा उनके चरित्र पर आधारित होती है। राष्ट्रीय एकता को पारिवारिक सन्दर्भ में देखें तो हम पायेंगे कि हमारे ऋषि मुनियों ने राष्ट्र को एकता एवं अखण्डता के सूत्र में पिरोए रखने के लिये संयुक्त परिवार की संकल्पना प्रस्तुत की। संयुक्त परिवार में केवल भौतिक सुख सुविधा ही नहीं अपितु भावनात्मक सुविधा भी प्राप्त होती थी। बीमारी, तंगहाली आदि कष्टों के मध्य एक दूसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
को सहयोग करने की भावना प्रमुख थी। पारिवारिक सुखशान्ति हेतु स्वयं के सुखों का परित्याग कर देना संयुक्त परिवार की आत्मा थी। पिता की आज्ञा हेतु राम का वनगमन राम के साथ लक्ष्मण का वनगमन, भरत का राम के प्रति प्रेम आदि प्रसंग पारिवारिक उत्सर्ग की उदात्त भावना को ही व्यक्त करते हैं। परन्तु आज स्वत्व एवं परत्व की भावना इस महत्तम पारिवारिक अमृत कल्प संगठन को प्रदूषित कर रही हैं जिसके कारण आज संयुक्त पारिवारिक संगठन भी प्रभावित होता हुआ परिलक्षित हो रहा है। सभी के भाव विचार मन समान हों कोई किसी से द्वेष न करे वेद का यह संदेश सार्वकालिक, सार्वभौमिक एवं मानवमात्र के लिये है। परिवार में जिस कौटुम्बिकता का भाव दिखाई पड़ता है यदि यह समाज में दिखाई पड़ने लगे तो राष्ट्रीय एकता के साथ ही विश्व कल्याण की घड़ियां निकट आ सकती है। मै पूर्व में ही यह बताने का प्रयास कर चुकी हूँ कि राष्ट्र के समस्त घटक एवं वस्तु के प्रतिनिष्ठा तथा अपनत्व की भावना का नाम राष्ट्रीय चेतना है। राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय चेतना में देशानुराग सदैव प्राणवान् रहता है। राष्ट्रीय एकता की अभिव्यक्ति राष्ट्र की स्वतन्त्रता की अभिलाषा, उत्सर्ग, बलिदान, त्याग एवं समर्पण की भावना राष्ट्र की सम्पन्नता एवं अखण्डता की कामना के द्वारा अभिव्यक्त होती है। परन्तु खेद है कि सम्प्रति राष्ट्र के प्रति ये उदात्त एवं निर्मल भावनाएं तिरोहित होती जां रही हैं। विश्वबन्धुत्व एवं राष्ट्र प्रेम की भावना मृतप्राय है। मानवता एवं राष्ट्रीयता का अस्तित्व खतरे में है। स्व की प्रबलतम भावना के कारण आज सम्पूर्ण व्यक्ति राष्ट्र एवं विश्व के मध्य संघर्ष बढ़कर तृतीय विश्वयुद्ध के विनाशकारी कगार पर अग्रसर हैं सम्प्रति देश की एकता एवं अखण्डता खतरे में हैं सर्वत्र विनाश एवं पतन का ही ताण्डव परिलक्षित हो रहा है इसका कारण क्या है? युगों-युगों तक सभी को शिक्षित करने वाले महनीय गुणों से परिपूर्ण तथा सभी के ऊर्ध्वारोहण की कामना करने वाले हमारे देश की इस शोचनीय दशा का हेतु क्या है। अत्यन्त चिन्तन एवं मनन करने के बाद मुझे इस विकराल समस्या के दो मूलभूत कारण ही समझ में आते हैं - एक आत्मविस्मरण तथा दूसरा पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण।

आज हम सभी भारतीय अपनी सांस्कृतिक धरोहर को विस्मृत करते जा रहे हैं। सम्पूर्ण मानवता भौतिकवाद की मृगमरीचिका में फंसकर स्वपथ से भटक गयी है। आवश्यकता हैं इसे आत्मबल से संयुक्त कर आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर प्रवृत्त करने की। दूसरे कारण का स्पष्ट प्रभाव हम जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करते हुये देख सकते हैं। यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है कि हम अपनी समय सिद्ध उपयोगी पद्धतियों का परित्याग कर पाश्चात्य अनुपयोगी पद्धतियों को अपनाने हेतु प्रयत्नशील है। पश्चिमी सभ्यता ने हमारे पारिवारिक, सामाजिक एवं शैक्षिक ढांचे को प्रभावित तथा विघटित किया है। संस्कृत भारत की आत्मा है और आत्मा की उपेक्षा करने का अर्थ होगा भारत जैसे महान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र की मृत्यु क्योंकि इतिहास प्रमाण है कि जिस भी राष्ट्र ने अपनी सभ्यता और संस्कृति का परित्याग किया वे सब शनैः-शनैः कालकवलित हो गये।

अतः हमें संस्कृत साहित्य में निरूपित अपनी वैभवपूर्ण, सर्वजनहिताय, सर्वकल्याणकारी स्वत्व एवं परत्व की सीमा से परे 'वसुधैवकुटुम्बकम्' 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' सर्वधर्मसमभाव, 'कामये दुःखतप्तानाम प्राणिनाम् आर्तिनाशनम्', 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। तथा मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे'' को प्राणतत्व के रूप में स्वीकार करने वाली संस्कृत भाषा को उसके समग्र वैभव के साथ स्वीकार करना ही होगा।

अन्त में मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहूँगी कि संस्कृत भाषा में रचित साहित्य में मानवता राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय रक्षा आदि के परिप्रेक्ष्य में बहुधा गम्भीर चिन्तन किया गया है। निर्भीकता, आत्मविश्वास, दृढ़ता, धैर्य, धर्म, अहिंसा आदि उच्चतम दैवीय सम्पत्ति किसी भी राष्ट्र, समाज मानवजाति एवं मानव की रक्षा के अभेद्य कवच है तथा ये राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के मूलाधार हैं यदि कोई भी राष्ट्र या समाज इनको ईमानदारी के साथ आत्मसात करता है तो उसे विश्व की कोई शक्ति कदापि तिरस्कृत नहीं कर सकती। अपितु इन सद्गुणों के द्वारा विजय श्री सदैव उसी का वरण करेगी। क्योंकि समस्त सभ्यता का मूल संस्कृत वाङ्मय में ही निहित है। भारत की सर्वविध उन्नति संस्कृत से ही सम्भव है -

''भारतस्योन्नतिर्शान्तिः भवेत संस्कृत भाषया।
वदामि करमुद्धृत्य, सर्वेषां सदसि स्थितः॥''

पाद-टिप्पणियाँ

1.	मनुस्मृति	:	2/20
2.	विष्णुपुराण	:	अ02, म0 3 श्लोक 24
3.	अथर्ववेद का0	:	12/5/1
4.	शतपथ ब्राह्मण	:	6/7/3/7
5.	ऋग्वेद	:	10,19/म0-4
6.	ऋग्वेद	:	19/म0 4
7.	विष्णुपुराण	:	19/म0 4
8.	आह्निक सूत्रावली:		स्नान प्रसंग 106
9.	कठोपनिषद्	:	1/3/4
10.	यजुर्वेद	:	10/4
11.	अथर्ववेद	:	3/30/7
12.	उत्तररामचरितम्	:	प्रथम अंक
13.	पंचतंत्र (अपरीक्षित कारकम्)	:	3/37

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

श्री स्वामी श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र के प्रकाशन

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	कीमत रु.
1.	स्वामी श्रद्धानन्द	500 रु.
2.	वेद का राष्ट्रिय गीत	200 रु.
3.	श्रुतिपर्णा	95 रु.
4.	वैदिक साहित्य संस्कृति एवं समाज दर्शन	500 रु.
5.	वेद और उसकी वैज्ञानिकता	300 रु.
6.	शोध सारावली	220 रु.
7.	भारतवर्ष का इतिहास (दो खंडों में)	350 रु. प्रति खंड
8.	क्लासिकल राइटिंग ऑन वैदिक एण्ड संस्कृत लिट्रेचर	80 रु.
9.	दीक्षालोक	500 रु.
10.	स्वामी श्रद्धानन्द के सम्पादकीय लेख	500 रु.
11.	स्वामी श्रद्धानन्द की सम्पादकीय टिप्पणियां	450 रु.
12.	कुलपुत्र सुनें	300 रु.
13.	ग्लिम्पस आफॅ इनवायरमेन्टल परसेप्ट्स ऑफ वैदिक लिट्रेचर	50 रु.
14.	स्वामी श्रद्धानन्द समग्र मूल्यांकन	300 रु.
15.	पं0 इन्द्रविद्यावाचस्पति कृतित्व के आयाम	300 रु.
16.	बातें मुलाकातें	125 रु.
17.	वेदों की वर्णन शैलियां	50 रु.
18.	हिन्दी काव्य को आर्यसमाज की देन	400 रु.
19.	श्रुति विचार सप्तक	500 रु.
20.	स्तूप निर्माण कला	55 रु.
21.	ईशोपनिषद्भाष्य	40 रु.
22.	इन्द्रविद्यावाचस्पति	40 रु.
23.	भारतवर्ष का इतिहास (तृतीय खंड)	55 रु.
24.	अग्निहोत्र	25 रु.
25.	वेद विमर्श	25 रु.
26.	आधुनिक भारत में वक्तृत्व कला की प्रगति	25 रु.
27.	आहार	35 रु.
28.	वैदिक वन्दना गीत	25 रु.
29.	ऋषिदेव विवेचन	25 रु.
30.	विष्णु देवता	25 रु.
31.	सोम	20 रु.
32.	ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार	25 रु.
33.	अध्यात्म रोगों की चिकित्सा	40 रु.
34.	गुरुकुल की आहुति	12 रु.,
35.	ब्राह्मण की गौ	25 रु.
36.	ऋषि-रहस्य	25 रु.
37.	धर्मोपदेश (भाग प्रथम और द्वितीय)	25 रु. प्रति खंड
38.	वैदिक कर्त्तव्य शास्त्र	40 रु.
39.	मेरा धर्म	500 रु.
40.	गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय कलेण्डर भाग-1	250 रु.

विश्वविद्यालय से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं का विवरण

1.	गुरुकुल पत्रिका	वार्षिक मूल्य 100 रु.
2.	वैदिक पॉथ	वार्षिक मूल्य 100 रु.
3.	प्राकृतिक एवं भौतिकीय शोध विज्ञान पत्रिका	वार्षिक मूल्य 500 रु.
4.	आर्य भट्ट	वार्षिक मूल्य 100 रु.
5.	गुरुकुल बिजनेस रिव्यू (GBR)	वार्षिक मूल्य 100 रु.

नोट :- ये सभी पुस्तकें कुलसचिव, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के नाम ड्राफ्ट भेजकर निम्न पते से प्राप्त की जा सकती है। क्रमांक १ से १२ एवं क्रमांक १८ तथा १९ पर ५० प्रतिशत तथा अन्य सभी पुस्तकों पर २० प्रतिशत की छूट देय है।

पुस्तकें मंगाने का पता :- पुस्तकालयाध्यक्ष/व्यवसाय प्रबन्धक, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार-२४९४०४ (उत्तराखण्ड)

मुद्रक : किरण ऑफसैट प्रिंटिंग प्रेस, कनखल, हरिद्वार फोन : 01334-245975

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ISSN 0976-8017

॥ ओ३म् ॥

गुरुकुल पत्रिका

(प्राच्य विद्याओं की अन्ताराष्ट्रिय शोध पत्रिका)

अक्टूबर-दिसम्बर 2012

वर्ष 64

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रधान सम्पादक

प्रो. महावीर

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार-249404

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ISSN 0976-8017

ओ३म्

गुरुकुल - पत्रिका

(प्राच्य विद्याओं की अन्तराष्ट्रिय शोध पत्रिका)

Vol : 64

अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर - 2012

सम्पादक

डॉ. महावीर

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार-२४९४०४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक मण्डल

संरक्षक मण्डल:

श्री सुदर्शन शर्मा
कुलाधिपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पद्मश्री देवेन्द्र त्रिगुणा
परिद्रष्टा, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रो. स्वतन्त्र कुमार
कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आचार्य रामनाथ जी वेदालङ्कार
भूतपूर्व आचार्य एवं उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रधान सम्पादक:

डॉ. महावीर
अध्यक्ष- संस्कृत विभाग एवं आचार्य गुरुकुल कांगड़ी वि०वि०, हरिद्वार

सम्पादक मण्डल:

डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री, अध्यक्ष - वेद विभाग
डॉ० सत्यदेव निगमालंकार, अध्यक्ष- वैदिक शोध संस्थान
डॉ० ब्रह्मदेव विद्यालंकार, प्रोफेसर- संस्कृत विभाग

प्रकाशक:

प्रो. ए. के. चोपड़ा
कुलसचिव, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वित्त अधिकारी:

श्री आर०के० मिश्रा
वित्ताधिकारी, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

			पृष्ठ संख्या
❖	सम्पादकीय	प्रो0 महावीर	
1.	यजुर्वेद-काव्यामृत	डॉ. विजयवीर विद्यालंकार	(v)
2.	वेदव्याख्या की आर्ष पद्धति	डॉ० ज्वलन्त कुमार शास्त्री	1
3.	पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय पुरस्कार से आचार्य प्रो० महावीर सम्मानित		22
4.	पाणिनीय व्याकरण में आगम का स्वरुप	डॉ० गोपाल कृष्ण	29
5.	भारतीय संस्कृति में धर्म की अवधारणा	डॉ० संगीता विद्यालंकार	30
6.	वेदों में लोक कल्याणकारी राज्य	डॉ० डॉली जैन	40
7.	प्रातिशाख्यप्रणयनप्रयोजनानि	डॉ० दानपति तिवारी	44
8.	वैदिक वाङ्मय में वस्त्र विज्ञान	डॉ० प्रज्ञा जोगेश जोशी	51
9.	सौन्दर्य की अवधारणा	डॉ० विजय इन्दु	54
10.	वेदों की यथार्थ संख्या	डॉ० दीनदयाल वेदालङ्कार	77
11.	वाल्मीकि रामायण-राजनय निरुपण	डॉ० श्रीमती सुशीला सिंह	87
12.	कालिदास के धार्मिक वर्णन में लोक कल्याण	डॉ० सुरचना त्रिवेदी	91
13.	पुराणों में तंत्री-वाद्य का महत्त्व	डॉ० निशा पाठक	97
14.	आधुनिक कथा साहित्य में बनमालीविश्वालकृत 'जिजीविषा'	डॉ० निरुपमा त्रिपाठी	104
15.	कालिदास के काव्यों में प्राचीन अर्वाचीन संस्कृतियों की उद्भावना	डॉ० वत्सला उपाध्याय	109
16.	वेद और गणित विद्या	डॉ० चन्द्रकान्त गर्जे	113
17.	भवभूति के स्त्री पात्र: एक अध्ययन	डॉ० राजिन्द्रा शर्मा	125
18.	संस्कृत व्याकरण में माधुर्य	डॉ० आशारानी पाण्डेय	130
19.	आधुनिक हिन्दु विधि प्राविधानानां स्रोतांसि	डॉ० वेदप्रकाश उपाध्याय	137
20.	वैदिक वांङ्मये योगतत्त्वस्य आधुनिक सन्दर्भे उपादेयता	डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित	144
21.	वेदाङ्ग-विश्लेषण	डॉ० मीनाक्षी उपाध्याय	152
22.	वैदिक वाङ्मय में सोमयाग का स्वरुप	उमा आर्या	157
23.	गीता एवं तिरुक्कुरळ्	डॉ० अर्चना दुबे	162
24.	धर्म का स्वरुप	डॉ० हरिराम मिश्र, डॉ दिव्य मिश्रा	170
			177

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

25.	धर्मशास्त्रीयानुबन्धचतुष्टयविचार:	मनोज कुमार मिश्र	182
26.	व्याकरण वेद मूलकत्वम्	डॉ० कपिलदेव हरेकृष्ण	185
27.	वैदिक वांङ्मय में वाक् शक्ति	डॉ० राजेश कुमार पौलस्त	190
28.	संस्कृत साहित्ये अहिंसा	डॉ० सुनीता शर्मा	200
29.	स्वामी विवेकानन्द का आधुनिक एवं वैज्ञानिक चिन्तन	डॉ० ममता ध्यानी	203
30.	आनन्द रामायण में वर्णाश्रम व्यवस्था	डॉ० रेनू गुप्ता	208
31.	देवयान एवं पितृयाण मार्ग	सहदेव शर्मा	213
32.	महर्षि दयानंद सरस्वती की वैचारिक प्रखरता एवं सुशासन व्यवस्था	डॉ0 शिव कुमार चौहान	216
33.	Subject: Economical negligence of Education boards while planning textbooks.	Dr. Mrs Pradnya Sharad Deshpande	219
34.	Role of Later Vedic Arts & Crafts in State Urbanization; A Study	Priya Saxena	226
35.	नारी मर्यादा के संरक्षक श्रीकृष्ण	डॉ० (श्रीमति) विभा अग्रवाल	230

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

कविता कामिनी कान्त महाकवि कालिदास ने रात्रि की विदाई पर चन्द्रमा के अस्त होने का और दिन के आगमन पर सूर्योदय का अत्यन्त भावपूर्ण मनोहर चित्रण किया है।

'यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्
अविष्कृतोऽरूणपुरस्सर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां,
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु।। अभिज्ञान शाकुन्तलम

एक और औषधियों के स्वामी चन्द्रमा का अस्त होना, दूसरी ओर सारथी अरूण को आगे रखते हुए भगवान् भास्कर का प्रकट होना, मानो संसार की सुख-दुःख, सम्पद्-विपद् की दशा को ही प्रतिपादित करता है। इसी प्रकार मेघदूत में भी जीवन के इसी स्वरूप को अन्य प्रकार से स्पष्ट करते हुए कवि कुलगुरू कालिदास की वाणी इस प्रकार प्रस्फुटित होती है-

कस्यात्यन्तं सुखमपनतं दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।। मेघदूत

जीवन में किसको सदा सुख या दुःख प्राप्त होता है, जैसे रथचक्र निरन्तर नीचे-ऊपर घूमता रहता है, वैसे ही जीवन की दशा भी सतत परिवर्तित होती रहती है।

निरूक्तकार ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ निरुक्त में 'जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते और विनश्यति' इन षड्भाव विकारों द्वारा मानव जीवन की निरन्तर परिवर्तन शीलता को सत्यापित किया है।

प्रकृति में यह परिवर्तन सतत चलता रहता है। कभी वसन्त तो कभी शिशिर, कभी प्रचण्ड शीत तो कभी प्रचण्ड आतप और कभी मूसलाधार वर्षा, कभी शैशव पुनः किशोर तत्पश्चात् यौवन और वार्धक्य के अनन्तर जीवन का अवसान। कभी काले घने केश तो कभी धवल-विरल बाल। कितना विचित्र है, यह जीवन। समय का पक्षी कितनी तीव्र गति से उड़ता चला जाता है। अभी कुछ समय पूर्व ही तो हमने 2012 का अभिनन्दन किया था, अब यह विदा हो रहा है और 2013 का शुभागमन हो रहा है। विदा होता हुआ प्रत्येक क्षण, प्रत्येक दिन, प्रत्येक माह, प्रत्येक वर्ष और प्रत्येक पर्व हमें कुछ कहता है। हमारी चारों ओर एक संगीत सदैव गूंजता रहता है। काश, यदि हम उस मधुर संगीत को सुन पायें, उससे कुछ ग्रहण कर पायें।

अभी-अभी विजयादशमी और दीपावली के अत्यन्त पावन पर्वों को हमने हर्षोल्लास के साथ मनाया, 23 दिसम्बर को हम अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान दिवस मनायेंगे। राष्ट्र निर्माण हेतु तन-मन-धन हंसते-हंसते समर्पित कर देने वाले उस अनोखे महात्मा की जीवनगाथा भी अद्भुत है। दुर्व्यसनों के पङ्क में फंसा हुआ, परमात्मा पर विश्वास न करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला, आधुनिक शिक्षा पद्धति में शिक्षित, यानि कि बिगड़ा हुआ युवक, पारसमणिरूप महर्षि दयानन्द के संसर्ग से सुवर्ण के समान दीप्त और चन्दन के समान सुरभित, सूर्यसम तेजस्वी और चन्द्रवत् शीतल बनकर मानवता का रक्षक मसीहा बन जाता है। जालन्धर की भूमि से चलकर हिमालय के चरणों में, पावन सलिला भगवती भागीरथी के तट पर गुरुकुल रूपी विद्या का ऐसा मन्दिर बनाता है, जहाँ शिक्षा प्राप्त करने वाले ब्रह्मचारी, ब्रह्मचर्य की शक्ति, वेद के ज्ञान और देशभक्ति के रंग में रंगकर जीवन के विविध क्षेत्रों में प्रवेश करके एक नया इतिहास बनाते हैं। गुरुकुल के आचार्यों एवं स्नातकों का एक स्वर्णिम युग रहा है। स्वाधीनता संग्राम में महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द एवं उनके देशभक्त प्रिय स्नातकों ने जो त्याग और बलिदान का परिचय दिया है, उसे कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

किन्हीं कारणों से स्वधर्म का परित्याग कर दूसरे धर्म को स्वीकार कर लेने वाले अपने भाइयों को पुनः गले लगाने वाले स्वामी श्रद्धानन्द को स्मरण कर हृदय श्रद्धा से भर आता है। राष्ट्रभाषा हिन्दी और देवभाषा संस्कृत को समृद्ध बनाने के लिये स्वामी जी ने जो कुछ किया वह सदा स्मरण रहेगा। स्वधर्म, स्वभाषा, स्वसंस्कृति और स्वदेश की रक्षा के लिये सर्वस्व न्यौछावर करने वाले महापुरूषों के स्मरण मात्र से विचार पवित्र हो जाते हैं।

संसार में जो आया है, उसे एक दिन जाना है। अतः ऐसा काम करें कि अमर हो जायें।

''परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन वंशः याति समुन्नतिम्।।''

महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, सरदार भगतसिंह, सुभाषचन्द्र बोस, चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल, योगी अरविन्द, महाकवि रविन्द्रनाथ टैगोर, डॉ० भीमराव अम्बेड़कर, डॉ० केशव बलिराम हेड़गेवार, श्री लालबहादुर शास्त्री आदि महापुरूष अपने महान् व्यक्तित्व एवं कर्तव्य से सदा अमर रहेंगे।

विदा होते हुए दिसम्बर माह के अन्त में और नये उत्साह के साथ आते हुए नव संवत्सर की मंगल नव बेला में आप सब भाई, बहनों का स्वागत, अभिनन्दन करते हुए गुरुकुल पत्रिका का अंक आपके कर कमलों में सस्नेह सादर समर्पित कर रहा हूँ, और परमपिता से विनम्र प्रार्थना करता हूँ, कि हम सब भारतवासी देशभक्ति के भाव से परिपूर्ण होकर 2013 में भारत माता के गौरव, वैभव एवं कीर्ति को दिग् दिगन्त में फैला दें और श्रेष्ठ गुणों से अपने मानव जीवन को विभूषित कर जीवन धन्य बनायें।

- प्रो. महावीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेद-काव्यामृत अथ सप्तदशोऽध्यायः

डॉ॰ विजयवीर विद्यालंकार
पूर्व संकायाध्यक्ष, उस्मानिया वि.वि., हैदराबाद

अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्भ्यऽओषधीभ्यो वनस्पतिभ्योऽअधि सम्भृतं पयः।
तां नऽइषमूर्जं धत्त मरुतः सꣳराणाऽअश्मँस्ते क्षुन् मयि तऽऊर्ग्यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥१॥

सम्यक् दानशील समान, कार्यकुशल हे मनुज जनो!
पर्वत तुल्य आकारवान् मेघस्थविद्युत् ओज चुनो॥
जलाशयों जौ आदि धान्य, पीपलादि वनस्पति गहो।
रस युक्त जलों अन्न पराक्रम, नित विद्युत् के साथ बहो॥
हे मनुष्य जो तेरा मेघ-विषय में, रस्य पराक्रम है।
सो सुख-दुःख में एक समान, सहायक हम सबका क्रम है॥1॥

इमा मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं
च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च
नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च
परार्द्धश्चैता मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके॥२॥

यज्ञवेदी और घर के काम आने वाली ये ईंटें हैं।
दुधारी गौओं के समान, सुख के साधन ये समेटे हैं॥
शीतोष्ण वर्षा वायु आदि से, ये रक्षा नित करती हैं।
यज्ञाहुति से जल-वायु शुद्धकर, सर्वानन्दित करती हैं॥

ऋतव स्थऽऋतावृधऽऋतुष्ठा स्थऽऋतावृधः।
घृतश्च्युतो मधुश्च्युतो विराजो नाम कामदुघाऽअक्षीयमाणाः॥३॥

स्त्री वसन्तवत् सुखकारी, पति को प्रसन्न करने वाली।
ज्यों नदियाँ जल से बढ़ती, त्यों सत्याश्रित रहने वाली॥
घृतादि पदार्थों की वर्धक, मधु-वाणी व्यवहारों वाली।
निन्दादि से दूर रहे, चिरजीवी हो जीने वाली॥
विविध गुणों से ज्योतित हो, कामना पूर्ण करने वाली।
ऋतु गौवत् समयानुकूल, पति के काम आने वाली॥३॥

समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परि व्ययामसि।
पावकोऽअस्मभ्यꣳशिवो भव॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि तुल्य तेजस्वी सभापति, सब से सम व्यवहार करो।
प्रजा-हितकारी, पावन बन, धार्मिकता का आचार करो।।४।।

हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परि व्ययामसि।
पावकोऽअस्मभ्यꣳशिवो भव।।५।।

ज्यों अग्नि या वस्त्र शीत से, दुःख निवारण करते हैं।
त्यों राजा पीड़ित प्राणी को, ढककर रक्षण करते हैं।।५।।

उप ज्मन्नुप वेतसेऽवतर नदीष्वा। अग्नेपत्तिमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि
सेमं नो यज्ञं पावकवर्णꣳशिवं कृधि।।६।।

अग्नि सम तेजस्विनी, विदुषी तू विद्यालंकृता।
नद-नदीवत् तत्परा, तुझ में है नित गतिशीलता।।
अग्नि तुल्य प्रकाशिता, गृहस्थ-यज्ञ किया करो।
कल्याणकारी कर्म में, मन को प्रवृत्त किया करो।।६।।

अपामिदं न्ययनꣳसमुद्रस्य निवेशनम्।
अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यꣳशिवो भव।।७।।

सागर है आधार जलों का, सागर का आधार भूमि है।
है आकाश आधार भूमि का, गृहस्थाधार आवस-भूमि है।।
सद्गृहस्थ मांगल्य आचरण, मिल-जुलकर नित किया करो।
श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों को शिक्षा नित दिया करो।।७।।

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया।
आ देवान् वक्षि यक्षि च।।८।।

अग्नि-समान स्वयं पावन, अन्यों को पावन करते हो।
दिव्य गुणान्वित दीप्तिमान, उपदेश लुभावन देते हो।।
आप्त पुरुष आनन्द प्रदायक, सत्य मधुरवाणी युत हो।
प्राणिमात्र के प्रसन्नकारक, सूर्य-समान विभावित हो।।८।।

स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ२ऽइहावह।
उप यज्ञꣳहविश्च नः।।९।।

पवित्रात्मा तेजस्वी, अग्नि-समान विद्वज्जन होते हैं।
सत्यासत्य-विवेकी आप्त, अन्यों के पाप सदा धोते हैं।।
दिव्य गुणों को धारण करके, सद्गृहस्थ हो जीते हैं।
होमाग्नि से प्राप्त द्रव्यवत्, विद्या-रस को पीते हैं।।९।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पावकया यश्चितयन्त्या कृता क्षामन् रुरुचऽउषसो न भानुना।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रणऽआ यो घृणे न ततृषाणोऽअजरः॥१०॥

जैसे सूर्य और चन्द्र, स्वदीप्ति से सुशोभित होते हैं।
वैसे ही सती स्त्री संग श्रेष्ठ पति, सदा विराजित होते हैं॥
उत्तम सेना से सेनापति, प्रति नित्य समुद्यत रहते हैं।
प्रचण्ड वेग से युद्ध भूमि में, मार-धाड़ नित करते हैं॥१०॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽअस्त्वर्चिषे।
अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यꣳशिवो भव॥११॥

स्वयं पवित्र निष्पक्षभाव, सत्कारयोग्य न्यायाधिप हो।
दुःख-निवारण भाव-प्रवण, कर्तव्य-कर्म सेवा-तप हो॥
दुष्ट निवारण हेतु न्याय युत, आज्ञा-दान विधायक हो।
सत्कार योग्य सामर्थ्य युक्त नित, सत्य-न्याय प्रकाशक हो॥११॥

नृषदे वेडप्सुषदे वेड् बर्हिषदे वेड् वनसदे वेट् स्वर्विदे वेट्॥१२॥

जिस देश में न्यायाधिकर्ता, नौका-प्रचालक नेक हो।
प्रजा-पालक वन्यवासी, सेना-विनायक टेक हो॥
सुखों के प्रापक विद्वान् औ' उत्साहवर्धक रेख हो।
होती वहीं सुख-वृष्टि है और सब की देख-रेख हो॥१२॥

ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाꣳसंवत्सरीणमुप भागमासते।
अहुतादो हविषो यज्ञेऽअस्मिन्त्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य॥१३॥

आभ्यन्तर अग्नि के धारक, भ्रमणशील संन्यासी हैं।
वेदार्थ प्रबोधक परोपकारक, विद्वज्जन योगाभ्यासी हैं॥
ऐसे संन्यासी यज्ञशील विद्वानों से भी बढ़कर हैं।
हवनीय घृतादिक ही पदार्थ, भोगे जो इनको हितकर हैं॥१३॥

ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुरऽएतारोऽअस्य।
येभ्यो नऽऋते पवते धाम किं चन न ते दिवो न पृथिव्याऽअधि स्नुषु॥१४॥

योगिराज उत्तम विद्वान् ही, उस परमेश्वर को जाने।
सम्पूर्ण प्राणियों को पावन, करने को ही जीवन माने॥
जीवन मुक्ति-दशा में, पर-उपकार-कर्म तल्लीन रहे।
विदेह-मुक्ति-अवस्था में वे, सूर्य लोक में न लीन रहे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिवी पर भी नियम रूप से, वे निवास नहीं करते हैं।
ईश्वर में स्थिर होकर के वे, अव्याहत विचरण करते हैं।।१४।।

प्राणदाऽअपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः।
अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यꣳशिवो भव।।१५।।

राजा वही जो न्याय को, प्रति नित्य बढ़ाने वाला हो।
विद्वान् वही जो विद्या से, हर न्याय जनाने वाला हो।।
राजा नहीं वह जो प्रजाजन को प्रपीडित करता हो।
विद्वान् नहीं वह जो अन्यों को ज्ञानामृत नहीं देता हो।।
प्रजा नहीं वह जो नीतिज्ञ राजा की सेवा नहीं करती हो।
राजा विद्वान् प्रजाजन से ही, नित मंगलकारी धरती हो।।१५।।

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्युत्रिणम्।
अग्निर्नो वनते रयिम्।।१६।।

ज्यों अग्नि निज तीव्र तेज से, तृण आदि को जलाती है।
त्यों विद्वानों की विद्या, अवगुण को नित्य गलाती है।।
ज्यों बिजली सब विध पदार्थ का, नित्य प्रसेवन करती है।
त्यों विद्या की सत् सेवा, अविद्या को हर लेती है।।१६।।

यऽइमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः।
सऽआशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ२ऽआविवेश।।१७।।

वह परमेश्वर जगत्-रचयिता धारणकर्ता पालक है।
सब लोकों पर छाये रहता, प्रलय-काल में ग्राहक है।।
सब पदार्थ का वही है दाता, वह सर्वत्र विराजित है।
वही है सब का ज्ञाता और सभी का एक उपासित है।।१७।।

किꣳस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित्कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः।।१८।।

इस जग का आधार कौन है और कहाँ वह रहता है?
किस कारण उत्पन्न किया है और कहाँ क्या करता है?
वह जगदीश्वर कार्य-जगत् को, उत्पन्न सदा से करता है।
वह अपनी व्याप्ति से, सब जग को आच्छादित करता है।।
वह अपनी सर्वज्ञ दृष्टि से, सब को ही नित लखता है।
पाप-पुण्य का फल देने, भोगने जगत् को रचता है।।१८।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देवऽएकः॥१९॥

सूक्ष्माति सूक्ष्म सब से महान्, वह निराकार परमेश्वर है।
अतुलित वह सामर्थ्यवान्, सर्वत्र व्याप्त जगदीश्वर है॥
जगत्-रचयिता विनाशकर्ता, एकमात्र वह ईश्वर है।
उसकी ही उपासना करना, उससे नहीं कोई बढ़कर है॥१९॥

किꣳस्विद्वनं कऽउ स वृक्षऽआस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन्॥२०॥

मन निग्रह करने वाले, योगीजनो उसको जानो।
छिद्यमान संसार बनाने वाले को, तुम पहचानो॥
इस समस्त संसार का निमित्त कारण, वह परमेश्वर है।
दृश्य प्रकृति उपादान कारण है, उस पर ईश्वर है॥
उसके ही विज्ञान से, जीवों का कल्याण हुआ करता।
सकल भुवन का एकमात्र वह, कर्ता धर्ता संहर्ता॥२०॥

या ते धामानि परमाणि यावमा या माध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः॥२१॥

उस तीन लोक के स्वामी ने, अन्नादि हमें है प्रदान किया।
लेन-देन-व्यवहार-कुशलकर, जन्म-नाम और स्थान दिया॥
सत्पुरुषों को ऐश्वर्यवान् और हृष्ट-पुष्ट बलवान किया।
शुभ कार्यों में प्रेरितकर, सत् शिक्षा से कल्याण किया॥२१॥

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम्।
मुह्यन्त्वयेऽअभितः सपत्नाऽइहास्माकं मघवा सूरिरस्तु॥२२॥

गुणी गुणों को जाने पहचाने, उनका उपयोग करे।
प्रति पदार्थ का ज्ञान प्राप्त कर, हर पदार्थ का भोग करे॥
इससे दरिद्रता मिट जाए, आलस्य हमेशा हट जाए।
शत्रु-प्रलय भी हो जाए, विद्वान् स्वयं भी हो जाए॥२२॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजेऽअद्या हुवेम।
स नो विश्वानिं हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा॥२३॥

त्राता हो जो वेदवाणी का, मन-समान गतिवाला हो।
सब कर्मों में कुशल, महात्मा, धर्म-कर्म-मतिवाला हो॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्षपात आलस्य छोड़, आत्मा-शरीर-बलवाला हो।
ऐसा ही राजा हो, जो सुखदायक सब गुणवाला हो।।२३।।

विश्वकर्मन् हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत्।।२४।।

सब शुभ कर्मों का सेवन करने वाले हे सभापति।
ऐसे मन्त्री आदि को करो नियुक्त, बने जो प्रजापति।।
सब विध पदार्थ की वृद्धि से जो, राज्य-कोश समृद्ध करे।
निष्पक्ष न्याय सम्मत कर्मों से, प्रजा-सौख्य प्रवृद्ध करे।।२४।।

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेनेऽअजनन्नम्नमाने।
यदेदन्ताऽअददृहन्त पूर्वऽआदिद् द्यावापृथिवीऽअप्रथेताम्।।२५।।

न्यायशील का रक्षक, योगाभ्यासी शान्त मन वाला हो।
धैर्यवान द्यावा पृथिवी सम, विनयशील-जन वाला हो।।
हो राजा प्रख्यात प्रजा मत का आदर जो करता हो।
वही राज्य सुस्थिर होता, अभिवृद्धि सदा जो करता हो।।२५।।

विश्वकर्म्मा विमनाऽआद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् परऽएकमाहुः।।२६।।

जगत् रचयिता सबका धारक, पोषक वह परमेश्वर है।
अद्वितीय विज्ञानयुक्त, सर्वोत्तम सत् सर्वेश्वर है।।
देख रहा है सब को वह, सर्वत्र व्याप्त नित होकर है।
स्वयं समर्थ सत्कर्म-सहायक, सुख-साधक वह ईश्वर है।।२६।।

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधाऽएकऽएव तꣳसम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या।।२७।।

जो हमारा है पिता, माता विधाता एक है।
जो देवों में एक देव है, जन्म हमारे अनेक हैं।।
हम उसी से पूछते हैं, जाना हमें किस ओर है।
और इस जीवन-मरण का, अन्ततः क्या छोर है।।२७।।

तऽआयजन्त द्रविणꣳसमस्माऽऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना।
असूर्त्ते सूर्त्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि।।२८।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण विद्यावान् स्तोता, वेद-वेत्ता को गहो।
प्रत्यक्ष और परोक्ष लोकों के पदार्थों में रहो।।
धार्मिक जनों की भाँति, धर्माचरण-धन-अर्जन करो।
आज्ञा उसी की मानकर, तुम नित्य ईशार्चन करो।।२८।।

परो दिवा परऽएना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्य्यदस्ति।
कꣳस्विद् गर्भं प्रथमं दध्रऽआपो यत्र देवाः समपश्यन्त पूर्वे।।२९।।

सब से परे सब से निराला, ग्राह्य वह परमेश है।
सूक्ष्माति सूक्ष्म व श्रेष्ठ, धारक, विद्वज्जनों का विशेष है।।
अनादि चेतनमात्र और महान् सब से ज्येष्ठ है।
परब्रह्म और उपास्य वह, आश्रेय सब से प्रेष्ठ है।।२९।।

तमिद् गर्भं प्रथमं दध्रऽआपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः।।३०।।

योगीजन जिसको ध्याते हैं, उस योगेश्वर को ध्याओ।
बाह्य जगत् से ध्यान हटाकर, अन्तर्मन में ही पाओ।।
वही लोक-लोकान्तर का, आश्रय और सबका कारण है।
उससे ही जीवों का जीवन, बाह्य दृश्य और तन-मन है।।३०।।

न तं विदाथ यऽइमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृपऽउक्थशासश्चरन्ति।।३१।।

अज्ञान अन्धकाराच्छादित, जो वादानुवाद में रहते हैं।
योग छोड़ शब्दार्थ-जाल, खण्डन-मण्डन में रहते हैं।।
ऐसे अज्ञानी जन बोलो, परमात्मतत्व को क्या जाने।
सूक्ष्मातिसूक्ष्म वह परमात्मा, आडम्बर से क्या पहचाने।।३१।।

विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देवऽआदिद् गन्धर्वोऽअभवद् द्वितीयः।
तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात्पुरुत्रा।।३२।।

सब से पहले दिव्य स्वरूप, वायु का उद्भव होता है।
तदनन्तर पृथिवी के धर्ता का सूर्योदय होता है।।
धान्यौषधि जल प्राण, गर्भ-धारण-विधान वह करता है।
तब जाकर मेघों को बनाकर, नित्य सृष्टि को धरता है।।३२।।

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
संक्रन्दनोऽनिमिषऽएकवीरः शतꣳसेनाऽअजयत्साकमिन्द्रः।।३३।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनुर्वेद ऋग्वेदादि शास्त्र का, ज्ञाता हो जो निर्भय हो।
सब विद्याओं में जो कुशल हो, अति बलवान धर्ममय हो।।
अपने स्वामी, राज्य के प्रति, निष्ठायुक्त हो जितेन्द्रय हो।
धीर-वीर और युद्ध-कुशल, सेनापति-पद पे निरामय हो।।३३।।

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा।।३४।।

रिपु-संहारक कर्मशील, योद्धा को सेनापति करो।
रण-कौशल संगठक बली को, शस्त्रास्त्रों से युक्त करो।।
अजित शत्रु को विजित कराने वाले को चमूपति करो।
शत्रुंजय-संग सहनशील बन, राज्यों के अधिपति करो।।३४।।

सऽइषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सश्ंस्त्रष्टा स युधऽइन्द्रो गणेन।
सःसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता।।३५।।

सेना हो शिक्षित तगड़ी, हो हाथों में हथियार भरे।
बन्दूक तोप आग्नेय अस्त्र को, देख शत्रु-कतार ड़रे।।
शक्ति युक्त रसपान करे, शत्रु पे धनुष से वार करे।
युक्ति युक्त सेना-बल को लख, शत्रु हाहाकार करे।।३५।।

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ२।।ऽअपबाधमानः।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेद्ध्यविता रथानाम्।।३६।।

धार्मिक वृद्धों या सेनाओं के रक्षक हे चमूपति।
शुभु-दलनरत प्रबल प्रभंजन, रथारूढ हे महारथी।।
मार-काट करते आगे ही आगे बढना सैन्यपति।
प्रजाजनों की रक्षा में, रत रहना हे राज्याधिपति।।३६।।

बलविज्ञायः स्वविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमानऽउग्रः।
अभिवीरोऽअभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित्।।३७।।

शस्त्रास्त्र से सज्जित समुद्यत, सेनापति आगे बढ़े।
बलवान वीर सुधी सजग, सैनिक सदा रण में भिड़े।।
रण-कुशल तत्काल चिन्तक के हो निर्णय अति कड़े।
आकाश पृथिवी और सागर के गति-रथ से लड़े।।३७।।

CC-0. In Public Domain, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा।
इमꣳसजाताऽअनु वीरयध्वमिन्द्रꣳसखायोऽअनु सꣳरभध्वम्॥३८॥

एक देशज आपसी सहयोग से मिलकर रहो।
शरीर बल बुद्धि समन्वित, सैन्य से सिलकर रहो॥
शत्रु गोत्र समूल छेद, रिपु-भूमि को हरकर रहो।
निज राज्य को सम्पन्नता से, नित्य तुम भरकर रहो॥३८॥

अभि गोत्राणि सहसाऽगाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकꣳसेना अवतु प्र युत्सु॥३९॥

धार्मिक जनों में करुण, दुष्टों के प्रति जो कठोर हो।
सब ओर से रक्षा करे सबकी, जो भाव-विभोर हो॥
ऐसा गुणी बलवान ही, सेनापति के योग्य है।
परमवीर पराक्रमी से, वसुन्धरा नित भोग्य है॥३९॥

इन्द्रऽआसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुरऽएतु सोमः।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीतां मरुतो यन्त्वग्रम्॥४०॥

वायुवत् बलवान सेना को प्रशिक्षित जो करे।
संगठित सेना करे, अधिकार की रक्षा करे॥
पद्मव्यूहादिक रचा, नित युद्ध की शिक्षा करे।
ऐसे ही सेनाध्यक्ष को, निज राज्य में दीक्षा करे॥४०॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञऽआदित्यानां मरुताऽशंर्द्धऽउग्रम्।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्॥४१॥

युद्ध-घोष जय-जय निनाद से, रणांगन में प्रस्थान करें।
आदित्य ब्रह्मचारी सेनापति, सदा विजय मैदान करे॥
वीरों को हर्षित प्रोत्साहित कर, सामर्थ्य प्रदान करे।
शत्रुंजय न्यायादि गुणान्वित का ही सब गुणगान करें॥४१॥

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनाऽंसि
उद् वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः॥४२॥

शत्रु-रूप मेघों का हन्ता, सूर्य-समान सेनापति हो।
ऐश्वर्यवान् शस्त्रास्त्र युक्त, सेनांग युक्त सीमापति हो॥
वीरों का मन दृढतर हो और अश्व सैन्य प्रशिक्षित हो।
सेना के रथ आदियान, नित युद्ध हेतु उत्कर्षित हों॥४२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं याऽइषवस्ता जयन्तु।
अस्माकं वीराऽउत्तरे भवन्त्वस्माँ२ऽउ देवाऽअवता हवेषु॥४३॥

रथ आदि यानों के ऊपर, ध्वज आदि प्रस्थापित हों।
विजयेच्छुक सत् न्याय प्रकाशक, सेनापति उद्भासित हो॥
समरांगण में आगे ही आगे वीरों की कतार बढ़े।
सदा सुरक्षित विजयी होकर, सफलता के सोपान चढ़े॥४३॥

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम्॥४४॥

शत्रु-सैन्य के प्राणों को, हरने रानी संग्राम करे।
शूर-वीर क्षत्राणी बन, रण में शत्रु-अवसान करे॥
सच्चरित्र स्त्री-सेना हो, शुत्र-दल हृदय विदीर्ण करे।
तहस-नहस सेना करके, शत्रु को जीर्ण-शीर्ण करे॥४४॥

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते।
गच्छामित्रान् प्र प्रद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः॥४५॥

स्त्री-सेनापति शस्त्रास्त्रों से, सज्जित और सुदक्षित हो।
विद्वानों से शंसित शिक्षित, सैन्य-ज्ञान-प्रशिक्षित हो॥
एक-एक शत्रु को मार निःशेष शत्रु हो, वार करे।
वीरों का उत्साह बढ़ा, कायर को कारागार करे॥४५॥

प्रेता जयता नरऽइन्द्रो वः शर्म्म यच्छतु।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ॥४६॥

शत्रु-विदारक सेनानायक, वीरों का प्रोत्साहक हो।
गृह धन-धान्य वस्त्रादि प्रदायक, यथौचित्य सत्कारक हो॥
सुदृढ़ भुजा-सम्पन्न वीर, शत्रु जन का नित नाश करे।
सेनापति प्रेरणा उन्हें दे, कभी उन्हें न निराश करे॥४६॥

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न नऽओजसा स्पर्द्धमाना।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथामीऽअन्योऽअन्यन्न जानन्॥४७॥

शुत्र-सैन्य जब प्रबल वेग से, धावा बोल सबको घेरे।
तोप आदि शस्त्रास्त्र-प्रहारों से, शत्रु को तुरत चीरे॥
वाष्प-वायु से मेघाच्छादित करदे, सब समरांगण को।
कोई किसी को दिखे न सैनिक, करदे धूमाच्छादन को॥४७॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखाऽइव।
तन्नऽइन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म्म यच्छतु विश्वाहा शर्म्म यच्छतु॥४८॥

बाल बिखेरे अस्त-व्यस्त, बालक ज्यों भागे-फिरते हैं।
उसी तरह रण में सैनिक, बाणादि लिये घिर, गिरते हैं॥
मूर्छित घायल थके सैनिकों का, झट से उपचार करो।
मृतकाश्रित को आश्रय दो, मृतकों का दाह-संस्कार करो॥४८॥

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम्।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु॥४९॥

मर्मस्थलों की कवच आदि से, रक्षा हित नित्य उपाय करें।
रोग-निवारक औषधादि से, सैनिक को प्रचुर सहाय करें॥
उन्नत विद्या न्यायादि गुणान्वित, सेनापति यह ध्यान रखे।
योद्धा वीर प्रोत्सहित हों, ऐसी सुविधा की पहचान रखे॥४९॥

उदेनमुत्तरां नयाग्ने घृतेनाहुत।
रायस्पोषेण सꣳसृज प्रजया च बहुं कृधि॥५०॥

घृतादि पदार्थों से परितृप्त, अग्नि-समान हे सेनानी।
विजयी वीरों को धन पद-वृद्धि से सत्कृत कर दानी॥५०॥

इन्द्रेमं प्रतरां नय सजातानामसद्वशी।
समेनं वर्चसा सृज देवानां भागदाऽअसत्॥५१॥

विजित शत्रु से प्राप्त धनादिक, भृत्यों में वितरण करे।
अंश-दान दे राज्य-कोश को, भृत्य-धर्म आचरण करे॥५१॥

यस्य कुर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्द्धया त्वम्।
तस्मै देवाऽअधि ब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः॥५२॥

विद्वान् पुरोहित यजमानों को, सद् उपदेश प्रदान करे।
यजमान पुरोहित का धन आदिक से, सदैव सम्मान करे॥५२॥

उदु त्वा विश्वे देवाऽअग्ने भरन्तु चित्तिभिः।
स नो भव शिवस्त्वꣳसुप्रतीको विभावसुः॥५३॥

वेदादि शास्त्रों का विद्वान् सभापति, विद्या-वृद्धि करे।
विविध गुणान्वित होकर जग में, प्राप्त सदैव प्रसिद्धि करे॥५३॥

पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः।
रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्तीः रायस्पोषेऽअधि यज्ञोऽअस्थात्॥५४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे विद्वानों की विदुषी स्त्री, विवेकिनी होती है।
दुष्ट बुद्धि तज सत्कर्मों में, नित प्रवर्तनी होती है।।
वैसे ही अच्छा राजा जो, सन्मार्ग-सदाशय होता है।
सकलैश्वर्य सम्पन्न स्वयं बन, प्रजा का आश्रय होता है।।५४।।

समिद्धेऽअग्नावधि मामहानऽउक्थपत्रऽईड्यो गृभीतः।
तप्तं घर्म्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा यद्यज्ञमयजन्त देवाः।।५५।।

जैसे विद्वज्जन अग्निहोत्र यज्ञादिक नियमित करते हैं।
विद्यायुक्त वेद मन्त्रों से, स्वाहायुत आहुति देते हैं।।
उसी भाँति अत्यन्त पूज्य, स्त्रोतों से आहुति दिया करो।
नित्यकर्म यह अनुष्ठान, यज्ञादिक दैनिक किया करो।।५५।।

दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः।
परिगृह्य देवा यज्ञमायन् देवा देवेभ्योऽअध्वर्य्यन्तोऽअस्थुः।।५६।।

यज्ञशील विद्वान् दिव्य गुण-प्राप्ति हेतु यज करते हैं।
धारणशील सेव्य होता में, श्री-धी-निवास युज रहते हैं।।
शतधार दुग्ध का अधीश, यजमान सदा वह होता है।
विद्या-दाता उद्यमी गृहस्थी, अग्निहोत्र नित करता है।।५६।।

वीतꣳहवि शमितꣳशमिता यजध्यै तुरीयो यज्ञो यत्र हव्यमेति।
ततो वाकाऽआशिषो नो जुषन्ताम्।।५७।।

यज्ञ-समय शान्त्यादि गुणों से युक्त ही याज्ञिक हुआ करे।
यज्ञाग्नि में रोग विनाशक, पौष्टिक पदार्थ हवि दिया करे।।
आहुत पदार्थ आकाश में जाकर, अभीष्ट को ले आता है।
उच्चारित वेदमन्त्रों से याज्ञिक, वांछित फल को पाता है।।५७।।

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँऽअजस्त्रम्।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः।।५८।।

हरित वर्ण की सूर्य किरण, संसार की रक्षा करती है।
विविध पदार्थों को प्रदान कर, उनकी पुष्टि करती है।।
रंग-बिरंगी किरणें, सब लोकों की रक्षा करती हैं।
अत्यन्त प्रकाशित सूर्य रश्मियाँ, सुख की सृष्टि करती हैं।।५८।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमानऽएष दिवो मध्यऽआस्तऽआपप्रिवान्रोदसीऽअन्तरिक्षम्।
स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम्॥५९॥

पृथिवी औ' द्यूलोक मध्य, यह सूर्य-प्रकाश अवस्थित है।
विमान-समान विराजित होकर, सूर्य तेज यह भासित है॥
पृथिवी-स्थित जल का आकर्षक, यही वृष्टि का कारक है।
सबको करता यह आकर्षित, सबका यही प्रकाशक है॥५९॥

उक्षा समुद्रोऽअरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्पात्यन्तौ॥६०॥

द्यूलोकस्थ सूर्य, समस्त आकाश प्रकाशित करता है।
यही वृष्टि का सेचक, इसी से वर्षा जल गिरता है॥
इसके लाल किरण से, रोगादिक का निवारण होता है।
पृथिवी-चन्द्र-लोक आकर्षक, विद्युत् को गति देता है॥६०॥

इन्द्रं विश्वाऽअवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमꣳरथीनां वाजानाꣳसत्पतिं पतिम्॥६१॥

आकाश-समान वह सर्वेश्वर, सब स्थानों पर सम्व्यापक है।
रमणीय प्रशस्त व सुखदायक, वह श्रेष्ठ पदार्थ प्रदायक है॥
ज्ञान बलों का वह रक्षक, अविनाश जगत् का पालक है।
वेदमन्त्र जिसकी स्तुति करते, वही त्रिलोक का कारक है॥६१॥

देवहूर्यज्ञऽआ च वक्षत्सुम्नहूर्यज्ञऽआ च वक्षत्।
यक्षदग्निर्देवो देवाँ२ऽआ च वक्षत्॥६२॥

यज्ञरूप वह ईश्वर हमको, सत्य को प्राप्त कराता है।
दिव्य गुणों का प्रापक वह, असत्य से दूर कराता है॥
मोक्षादि-सुखदायक एक उपास्य वही जगदीश्वर है।
प्रकाशरूप भोगों का दाता, एक वही देवेश्वर है॥६२॥

वाजस्य मा प्रसवऽउद्ग्राभेणोदग्रभीत्।
अधा सपत्लानिन्द्रो मे निग्राभेणाधराँ२ऽअकः॥६३॥

विज्ञानोत्पादक ईश्वर, सज्जन का पालन करता है।
दुष्टों का निग्रह करके नित, उनका ताड़न करता है॥
उसी भाँति सेनापति, शस्त्रास्त्रों का नित निर्माण करे।
दुष्टों को बन्धित करके, धार्मिक जन का नित त्राण करे॥६३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवाऽअवीवृधन्।
अधा सपत्तानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम्॥६४॥

उत्कृष्ट जनों की रक्षा और निकृष्ट जनों को दूर करो।
वेद-विरुद्ध आचरणहीन को, झट से चकनाचूर करो॥६४॥

क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यꣳहस्तेषु बिभ्रतः।
दिवस्पृष्ठꣳस्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम्॥६५॥

युद्ध-क्षेत्र में अश्वादि पर, बैठे-बैठे भोजन करना।
समय व्यर्थ न जाने पाए, शत्रु-शिरच्छेदन करना॥६५॥

प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरोऽअग्निर्भवेह।
विश्वाऽआशा दीद्यानो विभाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥६६॥

शत्रुदाहक सभापति के, पूर्वादि दिक् अनुकूल हों।
अग्रगामी अग्निवत्, आग्नेयास्त्र उसके दुकूल हों॥
सत्कार्य-प्रेरक बुधजनों से युक्त हो, द्युतिमान हो।
मनुज गौ आदि के हित, अन्नादि युत धृतिमान हो॥६६॥

पृथिव्याऽअहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम्॥६७॥

योगांगो के अनुष्ठान से, योगी ऊपर उठ जाता है।
अणिमादि सिद्धि के द्वारा, परमात्मा को पाता है॥
उसके बाद अनवरत गति से, अभीष्ट स्थान को जाता है।
सुख स्वरूप उस परम ज्योति को, पा आनन्दित रहता है॥६७॥

स्वर्यन्तो नापेक्षन्तऽआ द्याꣳरोहन्ति रोदसी।
यज्ञं ये विश्वतोधारꣳसुविद्वाꣳसो वितेनिरे॥६८॥

जो पण्डित योगीजन, योगाभ्यास नियमतः करते हैं।
द्यूलोक और पृथिवी पर, स्वेच्छा से विचरण वे करते हैं॥
ज्यों शिक्षित घोड़ों को सारथि, अभीष्ट पर ले जाता है।
वैसे ही जितेन्द्रिय योगी, परमानन्द को पाता है॥६८॥

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम्।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्य्यन्तु यजमानाः स्वस्ति॥६९॥

अग्नि तुल्य विद्या से प्रकाशित, विद्वानों में विद्वान् बनो।
अविद्वानों से सद्व्यवहार करो सदैव विद्वान् जनो॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञेच्छुक सम प्रीति युक्त, परिपूर्ण-ज्ञान विद्वान् बनो।
समभाव और सद्भाव युक्त, सन्मार्ग करो विद्वान् जनो।।६९।।

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳसमीची।
द्यावाक्षामा रुक्मोऽअन्तर्विभाति देवाऽअग्निं धारयन् द्रविणोदाः।।७०।।

जैसे माता और धायी, बालक का पालन करती हैं।
जैसे रात्रि और उषा, पृथिवी का पोषण करती हैं।।
वैसे ही सब पुत्र तुल्य, आपस में सम व्यवहार करो।
विद्यादि धनों को पाकर के, मानवता का विस्तार करो।।७०।।

अग्ने सहस्त्राक्ष शतमूर्द्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्त्रं व्यानाः।
त्वꣳसाहस्त्रस्य रायऽईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा।।७१।।

अग्नि-समान योग विद्या से, योगी प्रकाशमय होता है।
प्राण व्यान पर संयम करके, अमित देहमय होता है।।
विपुल धनों का स्वामी होकर, आदरणीय हो जाता है।
सत्यवाक् सामर्थ्यवान् वह, सेवनीय हो जाता है।।७१।।

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद।
भासान्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिशऽउद् दृꣳह।।७२।।

प्रकाशमान हे योगिराज, शुभ लक्षण से संशोभित हो।
मन और आत्मा के बल से संयुक्त, आप आह्लादित हो।।
अति प्रकाशमय सूर्य-पुंज सम, भू पर आप विराजित हो।
राजनीति का पाठ पढ़ा, उन्नति-वाहक आराधित हो।।७२।।

आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमासीद साधुया।
अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत।।७३।।

सर्व प्रथम सत्कार योग्य, आमन्त्रणीय योगी जन हैं।
योगाभ्यास-प्रकाशित आत्मा और स्वच्छ इनके मन हैं।।
अपने श्रेष्ठ कर्मों से योगी, प्रभु-निवास नित करते हैं।
दिव्यात्मा योगी सिद्धान्तों पर दृढ़ होकर रहते हैं।।७३।।

ताꣳसवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम्।
यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीनाꣳसहस्त्रधारां पयसा महीं गाम।।७४।।

उस वरेण्य स्वीकार योग्य, परमेश्वर को जो ध्याता है।
वही वेद-विद्या द्वारा, उस वेदेश्वर को पाता है।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह सर्वोत्पादक अद्भुत, उत्तम बुद्धि का दाता है।
ज्ञेय विषय का ज्ञान करा, वाणी को पूर्ण बनाता है।।७४।।

विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवीꣳषि जुहुरे समिद्धे।।७५।।

संस्कारवान् जिस योगिराज का, पुनः जन्म जब होता है।
संस्कार-प्रबलता के कारण, वह योग चाहने लगता है।।
उसका जो सेवन करता है, वह भी योगी बन जाता है।
होमाग्निवत् दुःख-क्लेश को, ईंधन-समान जलाता है।।७५।।

प्रेद्धोऽअग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्त्रया सूर्म्या यविष्ठ।
त्वाꣳशश्वन्तऽउपयन्ति वाजाः।।७६।।

अग्नि-समान योग विद्या से, योगी जब दुःख दहाता है।
शुद्धात्मा होकर योगी तब, अति प्रदीप्त हो जाता है।
अणिमादि सिद्धि द्वारा, ऐश्वर्य प्राप्त वह करता है।
अन्यों को भी योग विद्या दे, परमेश्वर को पाता है।।७६।।

अग्ने तमद्याश्वन्न स्तोमैः क्रतुन्न भद्रꣳहृदिस्पृशम्।
ऋध्यामा तऽओहैः।।७७।।

विद्युत-समान पराक्रमयुत, विद्वान् अश्ववत् ज्ञान गहे।
भद्रभावना से अन्यों को भी, अपना विज्ञान कहे।।
विद्वानों का ज्ञान सभी के, हृदय-तल छूने वाला हो।
विद्वानों का उपदेश सभी की, उन्नति कराने वाला हो।।७७।।

चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवाऽइहागमन्वीतिहोत्राऽऋतावृधः।
पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहादाभ्यꣳहविः।।७८।।

जैसे घृत समिधा से, यज्ञाग्नि की ज्वाला बढ़ती है।
वैसे ही विज्ञानों से, उन्नति की धारा बहती है।।
सत्यकाम विद्वान् लोग, उस योग्यकाम का ध्यान करें।
अहिंसनीय हवि से प्रतिदिन, पावन यज्ञानुष्ठान करें।।७८।।

सप्त तेऽअग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्तऽऋषयः सप्त धाम प्रियाणि।
सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा।।७९।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि की गायत्री आदि, छन्द सात समिधाएँ हैं।
काली कराली लपट-रूप, इसकी सात ज्वालाएँ हैं।।
प्राण अपान व्यान समान उदान आदि, सात ऋषि हैं।
जन्म स्थान नाम पुरुषार्थ चतुष्टय विद्वत् कृषि हैं।।७९।।

शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माँश्च।
शुक्रश्चऽऋतपाश्चात्यꣳहाः।।८०।।

विशुद्ध ज्योति विचित्र ज्योति, सत्य ज्योति परमेश्वर है।
ज्योतिर्मय शीघ्र गतिवाला, शुद्ध स्वरूप विश्वेश्वर है।।
पाप निहन्ता सत्य सुरक्षक, ज्योतिर्मय अविनश्वर है।
स्तुत्य वही गुणधार्य वही, सबका सब कुछ जगदीश्वर है।।८०।।

ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च।
मितश्च सम्मितश्च सभराः।।८१।।

समद्रष्टा विद्वान् सदा, सम्मान सभी से पाता है।
असत्यादि व्यवहार छोड़कर, सत्यनिष्ठ बन जाता है।
विद्वानों के संग आचरण, श्रेष्ठ सदा वह करता है।
सद्व्यवहार परायण होकर, कार्य सिद्ध कर लेता है।।८१।।

ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च।
धर्त्ता च विधर्त्ता च विधारयः।।८२।।

सत्य ज्ञानमय अविनाशी, श्रेष्ठाति श्रेष्ठ वह ईश्वर है।
दृढ निश्चय आधार सभी का, धार्य वही धरणीश्वर है।।८२।।

ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च।
अन्तिमित्रश्च दूरेऽअमित्रश्च गणः।।८३।।

विज्ञान-प्रवर्धक सत्योन्नायक, सेना को जिताने वाला है।
धर्मवीर शूरों को बचा, शत्रु को रुलाने वाला है।।८३।।

ईदृक्षासऽएतादृक्षासऽऊ षु णः सदृक्षासः प्रतिसदृक्षासऽएतन
मितासश्च सम्मितासो नोऽअद्य सभरसो मरुतो यज्ञेऽअस्मिन्।।८४।।

यथायोग्य व्यवहारशील, निष्पक्ष शास्त्रविँद् वक्ता हो।
तुला की तरह सत्यासत्य विवेकी, आप्त प्रवक्ता हो।।
विज्ञान युक्त और समदर्शी, अन्यों का ज्ञान प्रदाता हो।
भृत्यादि स्वाश्रित जनका, पोषण-भरणादि विधाता हो।।८४।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च।
क्रीडी च शाकी चोज्जेषी॥८५॥

स्वजनों का संरक्षक, भोज्य पदार्थों से भण्डार भरे।
शत्रु का सन्तापक, घर में शंसा से जो सदा घिरे॥
मनमौजी स्वभाव वाला औ' युक्ति युक्त सब कार्य करे।
उसी गृहस्थी का गृहस्थ जीवन विजयी बनकर निखरे॥८५॥

इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्।
एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु॥८६॥

ज्यों शास्त्रज्ञ विद्वान् ईश की, आज्ञा के अनुकूल चले।
उसी तरह रक्षक राजा, जन-जन के हित अनुकूल चले॥
ज्यों अध्यापक औ' उपदेशक, सुख-हित अमित उपाय करे।
उसी तरह आपस में, एक-दूजे को नित्य सहाय करे॥८६॥

इमꣳस्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये।
उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियꣳसदनमाविशस्व ॥८७॥

जैसे बालक और बछड़े, पीकर के दूध को बढ़ते हैं।
खाकर के पौष्टिक चारा, घोड़े शीघ्र से दौड़ते हैं॥
उसी भाँति भोजन सुपाच्य ले, मनुज नियम-आचरण करे।
जीवन-नौका भव-सागर से, सुखपूर्वक अवतरण करे॥८७॥

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम।
अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम्॥८८॥

सागर-जल में निहित अग्नि का, अन्वेषण विज्ञान करे।
यन्त्रों में उपयोग निमित्त, विद्वान् प्राप्त नित ज्ञान करे॥
अग्नि का जल ही कारण है, जल से ही यह बढ़ती है।
घृत से अग्नि बढ़ती, जल से अन्नादि वस्तुएँ मिलती हैं॥८८॥

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ२ऽउदारदुपाꣳशुना सममृतत्वमानट्।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः॥८९॥

ज्यों किरणें सागर जल को ले, मधुरिम मेघ बनाती हैं।
अमृतमय जल को करके, धरती पर जल बरसाती हैं॥
उसी तरह विद्वानों की वाणी, अमृतमय होती है।
भौतिक दुःख से दूर कराके, मोक्षास्वाद कराती है॥८९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद् गौरऽएतत्॥९०॥

चारों वेद सींगों समान हैं, वेद ज्ञान कहलाते हैं।
चारों वेदों के विद्वान्, सचमुच ब्रह्मा कहलाते हैं॥
ऐसे ब्रह्मा के उपदेश, घृत के समान बलकारी हैं।
गृह-व्यवहार-कार्य में हितकर और परम उपकारी हैं॥९०॥

चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽअस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽअस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ२॥ऽआविवेश॥९१॥

प्रातः मध्य और सायं सवन, यज्ञ-प्राप्ति के साधन हैं।
शृंगों समान चार वेद हैं, दो सिर अस्त औ' उदयन हैं॥
गायत्री आदि सात छन्द, इस यज्ञ के हस्तेन्द्रिय सम हैं।
तीन प्रकारों से है बन्धा यह, मन्त्र ब्राह्मण कल्प-द्रुम हैं॥
महादेवता यज्ञ सदा यह, सुख बरसाने वाला है।
तीनों सवन शब्द करता, सबको हर्षाने वाला है॥(१)॥

भूत भविष्यत् वर्तमान, इस शब्दशास्त्र के पगत्रय हैं।
नाम आख्यात उपसर्ग निपात, इसके सींग चतुष्टय हैं॥
नित्य कार्य को जान यही तू, शब्द-पुरुष के दो सिर हैं।
प्रथमा आदि विभक्तियाँ, इसके तू समझ सप्त कर हैं।
हृदय कण्ठ और सिर में बन्धित, शुद्धाशुद्ध प्रकाशक है।
सुखवर्षक शब्दायमान, मनुजों में वेद-प्रवेशक हैं॥(२)॥९१॥

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन्।
इन्द्रऽएकꣳसूर्यऽएकञ्जजान वेनादेकꣳस्वधया निष्टतक्षुः॥९२॥

वेदज्ञ विद्वज्जन की वाणी में, त्रिविध ज्ञान निहित होता है।
स्थूल सूक्ष्म कारण-विज्ञापक, ज्ञान सघन विहित होता है॥
बिजली सूर्य प्रकाश तुल्य, प्रकाशित बोध हुआ करता है।
आप्त उत्तम शास्त्रज्ञ जनों से, जन-जन-प्रबोध हुआ करता है॥९२॥

एताऽअर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे।
घृतस्य धाराऽअभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्यऽआसाम्॥९३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो सच्ची वाणी हृदयों से, सहसा निःसृत होती है।
अग्न्याहुत घृत की धारा सम, सदा प्रकाशित होती है।।
विविध कार्य प्रसाधिका बनकर, तेज रूपिणी होती है।
विरोधियों को खण्डित करती, प्रसादकारिणी होती है।।९३।।

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेनाऽअन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः।
एतेऽअर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगाऽइव क्षिपणोरीषमाणाः।।९४।।

अन्तः शुद्ध यह पावन वाणी, सरितवत् प्रवहित होती है।
शास्त्रादि विज्ञान-ज्ञान से संयुक्त अभिहित होती है।।
ज्यों भयभीत हरिणी अति गति से, भागी-भागी फिरती है।
वैसी ही पावन वाणी, इस भव-सागर से तिरती है।।९४।।

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः।।९५।।

नदी-समान धारा प्रवाह और वायु-समान शीघ्रगामी।
अश्व-समान अति गतिशीला, सर्वत्र कीर्ति की अधिगामी।।
सार्थक शब्द प्रवर्तनशीला, सार युक्त तेजस खानी।
अन्यों पर अत्यन्त प्रभावित, करने वाली हो वाणी।।९५।।

अभिप्रवन्त समनेव योषाः कल्याणः स्मयमानासोऽअग्निम्।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः।।९६।।

विज्ञानवान् जन शब्द-अर्थ-सम्बन्ध-प्रकाशित वाणी कहें।
अन्यों का मन हरने वाली, कल्याणकारिणी वाणी कहें।।
छल-कपट राहित्य ज्ञान से शुद्ध, सदा सद्वाणी कहें।
विद्या-ज्ञान-विभूषित विधिवत्, सदा विहित ही वाणी कहें।।९६।।

कन्याऽइव वहतुमेतवाऽउऽअज्यज्जानाऽअभि चाकशीमि।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धाराऽअभि तत्पवन्ते।।९७।।

ज्यों कन्या अनुरूप पति को, पाकर शोभित होती है।
वैसे ही व्यवहार-सिद्धि में, मनुजों की गति होती है।।
यज्ञ-सिद्धि में विद्वद्वाणी, प्रबल प्रवाहित होती है।
ऐश्वर्यशालिनी ज्ञान वाहिनी, बनी प्रभावित करती है।।९७।।

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते।।९८।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद् गृहस्थ नित सदाचार युत, सत्कर्मों में प्रवृत्त रहें।
सद्वाणी गौ-दुग्ध घृतादिक से, सदैव सम्पृक्त रहें।।
गार्हस्थ्य सुखों की वृद्धि और कल्याण-मार्ग-संयुक्त रहें।
विद्वत्सम सुमधुर गुणशाली, वाणी से नित युक्त रहें।।९८।।

धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्युन्तरायुषि।
अपामनीके समिथे यऽआभृतस्तमश्याम मधुमन्तं तऽऊर्मिम्।।९९।।

।। इति सप्तदशोऽध्यायः ।।

हे जगदीश्वर इस सृष्टि में, आप ही आप विराजित हैं।
आकाश-समान व्यापक स्वरूप में, सब भुवनों में व्यापित हैं।।
हमको सब विध दो पदार्थ, हम यथायोग्य व्यवहार करें।
आहार-विहार परिश्रम से कर, अपना औ' पर उपकार करें।।९९।।

।। सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदव्याख्या की आर्षपद्धति और स्वामी दयानन्द सरस्वती

डॉ० ज्वलन्त कुमार शास्त्री,
रीडर संस्कृत, राजर्षि रणञ्जय सिंह
पी०जी०, कालेज, अमेठी

वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ हैं। वेद के वेदत्व एवं सर्वाङ्गपूर्णता पर संसार के वे सभी विद्वान् मुग्ध हैं, जिन्होंने विमल वैदिक ज्ञान के अनुसन्धान में अपना समय व श्रम दिया है। फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् वाल्डेयर का मत है-''केवल इसी देन (ऋग्वेद) के लिए पूर्व का पश्चिम ऋणी रहेगा। फ्रेंच लेखक क्यूजिन का कहना है-''संसार की सभी प्राचीन जातियों में ईश्वर के लिए आये हुए सभी शब्द वैदिक 'देव' शब्द से निकले हैं।

वैदिक ज्ञान के उपदेष्टा ऋषियों की परम्परा ब्रह्म से लेकर महाभारतकालीन जैमिनि ऋषि पर्यन्त है। वैदिक मन्त्रार्थ के वास्तविक परिज्ञान के लिए ऋषियों की दृष्टि से वैदिक संहिताओं को देखना होगा। आधुनिक काल के वैदिक ऋषि स्वामी दयानन्द सरस्वती की यह अपूर्व देन है कि उन्होंने वैदिक ऋचाओं के मर्म या हार्द को समझने के लिए आर्ष ग्रंथों का अवलम्बन लिया। ऐतरेय, याज्ञवल्क्य, गोपथ, कपिल, कणाद, गोतम, व्यास, जैमिनि, यास्क, मनु, पाणिनि और पतंजलि प्रभृति ऋषियों के वैदिक व्याख्या ग्रंथ शाखा-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषद्-दर्शनशास्त्र-वेदाङ्ग-उपाङ्ग की सहायता से ऋषि ने वैदिक मन्त्रों का स्वारस्य हमारे समक्ष प्रकट किया।

वेदार्थ के सम्बन्ध में योरोपीय विद्वानों को हम दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं-

(1) प्रथम श्रेणी में वे विद्वान् हैं, जो तुलनात्मक भाषा विज्ञान, धर्म-दर्शनऔर पुराकथा के आधार पर वेदार्थ करने के पक्षधर हैं। इन विद्वानों में प्रमुख हैं- प्रो० बरनफ, प्रो० रॉथ, प्रो० बेनफे, प्रो० लुडविग, प्रो० ग्रासमान, प्रो० वेबर तथा ओल्डेनवर्ग।

(2) द्वितीय कोटि में वे विद्वान् हैं जो वेदार्थ की मध्यकालीन परम्परागत शैली पर विशेष बल देते हैं और इनका मानना है कि तुलनात्मक भाषा विज्ञान वेदार्थ की परम्परागत पद्धति को चुनौती देने में समर्थ नहीं हैं। अत: परम्परागत वेदार्थ ही प्रामाणिक है। इस मत के विद्वानों में प्रमुख है:- प्रो०एच०एच० विल्सन, प्रो० बैलेण्टाइन प्रो० गोल्डस्टुकर, प्रो० वी० कानेल, प्रो० डब्ल्यू० एफ० बेब्स्टर प्रो० ग्रिफिथ, पिशेल तथा गेल्डनर।

वेदों का प्रथम भाष्य-शाखाएँ

वेद चार हैं और शाखाएँ 1131 कही गई हैं। स्वामी जी का निष्कर्ष है कि मूलत: वेद चार ही हैं 1127 इनकी शाखाएँ है। अर्थात् मूल संहिता एक होने पर भी उसकी अनेक शाखाएँ हो गई हैं। भाष्यकार पतंजलि कहते हैं- वेद मन्त्र या ऋचाएँ नहीं रची जाती क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
वे नित्य हैं उनके अर्थ भी नित्य है: किन्तु शाखाओं की वर्णानुपूर्वी अनित्य हैं काल, देश, व्यक्ति और अध्ययन-अध्यापन में उच्चारणगत अन्तर के कारण पाठभेद हुए हैं।[1] निष्कर्षत: वेद की शाखाएँ न तो वृक्षो की शाखाओं की भाँति हैं और न नदी की शाखाओं की भाँति हैं प्रत्युत वे पठन-पाठन-भेद से सम्प्रदायजन्य अध्ययन का ही विशेषरूप है।[2] याजुष संहिता के 18 वे अध्याय के 18 वे मन्त्र का अंश है- भ्रातृव्यस्य वधाय। भ्रातृव्य शब्द दो अर्थो वाला है। (1) भतीजे अर्थवाला भ्रातृव्य शब्द व्यत्प्रत्ययान्त होने से अन्तस्वरित होता है।[3] जबकि (2) शत्रु अर्थवाला भ्रातृव्य शब्द व्यन् प्रत्ययान्त होने से आद्युदात्त होता है।[4]

इसी कारण याजुष संहिता के काण्वशाखाकार ने स्पष्टार्थ की प्रतीति के लिए शत्रुबोधक 'द्विषतो वधाय' यह पाठ कर दिया। इससे स्पष्ट है कि पठन-पाठन, उच्चारण, देश-काल तथा गान आदि की प्रक्रियागत भेदों के अतिरिक्त अर्थ की स्पष्टता भी शाखा-निर्माण के कारणों में एक है।

वेदो का द्वितीय भाष्य-पदपाठ:- वेदभाष्य की प्रारम्भिक परम्परा में हम द्वितीय चरण के रूप में पदपाठकारों को वेदों का परोक्ष भाष्यकार मान सकते हैं। उदाहरणार्थ-

ऋग्वेद के ''यदिन्द्रचित्र मेहनास्ति- **त्वादातमद्रिव:-** ''(ऋग्वेद 5/39/1) इस मन्त्र के 'मेहना' पद के सन्दर्भ में निरुक्त के टीकाकार स्कन्दस्वामी ने लिखा है-'' एकमिति शाकल्य: त्रीणि इति गार्ग्य:। अर्थात् पदपाठकार शाकल्य के अनुसार यह एक पद है जबकि दूसरे पदकार गार्ग्य के अनुसार इनमें तीन पद है। इसी स्थिति को ध्यान में रखते हुए आचार्य यास्क ''मेहना'' पद का निर्वाचन करते समय शाकल्य का पदपाठ मानकर उसका अर्थ ''महनीयम्'' करते है। साथ ही गार्ग्य के पदपाठ को भी स्वीकार करके उसका अर्थ 'मे इह नास्ति' भी कर देते हैं।[5]

ब्राहमणों के रचयिता ऋषि भी वेदभाष्यकार हैं- वेदार्थ की विविध प्रक्रियाओं में याज्ञिक अर्थ की प्रक्रिया पूर्णरूपेण ब्राह्मण-ग्रंथो पर ही आश्रित है। ऐतिहासिक अर्थ-प्रक्रिया का संकेत भी ब्राहमण ग्रंथों में ही पाया जाता है। निरूक्त की निर्वचन प्रक्रिया का श्रोत भी ब्राह्मण ग्रंथ हैं। यथा-

	शतपथ ब्राह्मण	-	निघण्टु
1.	अभीशवो वै रश्मय: 6	-	अभीशव: रश्मिनामसु 7
2.	अन्नं वा आप: 7	-	अन्नम् उदकनामसु 10
3.	आपो हि वै सत्यम् 8	-	सत्यम् उदकनामसु 11
4.	मनुष्या वै जन्तव: 12	-	जन्तव: मनुष्यनामसु 14
5.	रसेनान्नेन 13	-	रस: अन्ननामसु 15

यास्क द्वारा अर्थ निर्वचन तथा 'निघण्टु' संग्रह की पृष्ठभूमि शारवाग्रंथों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों पर ही आधारित है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	तैतिरीयसंहिता	-	निरुक्त
1	सोऽरोदीत्, यद रोदीत् तद्रुद्रस्य रूद्रत्वम्- तै.स. 1/5/1/2	-	(1) रूद्रो.....रोदयते: (निरुक्त 10।5)
2	उदानिषुर्महीरिति यस्मादुदकमुच्यते (तै० सं० 5।6।1।3)	-	(2) उदकं कस्मादुनत्तीति सत: (निरुक्त 2/24)
3	तद् भूमिरभवत् ताम् प्रथयत्। सा पृथिव्यभवत्। (शत. ब्रा० 6।1।3।7)	-	(3) प्रथनात् पृथिवीत्याहु: (निरूक्त 1/14)

इसीलिए तैत्तिरीयसंहिता के भाष्य में भट्टभास्कर ने लिखा है- 'ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्यानग्रन्थ:।[16] ऋग्वेदभाष्यकार स्कन्दस्वामी भी लिखते हैं- :शतपथे अर्थविवरणप्रदर्शनार्थ।[17] काण्वसंहिता के भाष्य में आचार्य सायण ने भी लिखा है- 'तत्र शतपथ ब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यान रूपत्वात्।[18] इसीलिए स्वामी दयानन्द जी ब्राह्मणग्रंथों को वेद-व्याख्या ग्रंथ मानते हैं तथा चार मूल संहिताओं की ही वेद-संज्ञा स्वीकार करते हैं। स्वामीजी ने स्पष्टत: लिखा है- ''ब्राह्मणं वेदानामिमानी व्याख्यानानि ब्राह्मणानि।''19

आर्षद्धति के पुनरुद्धर्त्ता ऋषि दयानन्द:- (1) निघण्टु (1।1) में पृथिवी के नामों में 'गोत्रा' पद पढ़ा गया है। सायण ने ऋग्वेदभाष्य में 'गोत्रा' पद का कहीं भी पृथिवी अर्थ नहीं किया है। फलत: देवराज यज्वा ने जब निघण्टु की टीका लिखी तो इस पद के सम्बन्ध में 'निगमोऽन्वेषणीय:' लिखकर विराम लगा दिया।' निरुक्तालोचन' के कर्ता पं० सत्यव्रत सामश्रमी लिखते हैं-

''बहुमन्त्रेषु श्रूयते गोत्रापदं, परं न तत् क्वापि पृथिवीपरमिति भाव:। एवञ्च गोत्रेत्यस्य पृथिवीनामसु पाठ: किं मुधैव। नो चेदवश्यं सायणादिव्याख्यातृणामेव तत्र तत्र मन्त्रेषु व्याख्यागतं दूषणमूरीकार्यम्।'' अर्थात्-अनेक मन्त्रों में श्रूयमान 'गोत्रा पद कहीं तो पृथिवीवाचक होना चाहिए। सायणभाष्य में यह मन्त्रपद कहीं भी पृथिवी अर्थ मे व्याख्यात न होने से सायणभाष्य का यह दूषण समझना चाहिए।

यद्यपि स्वामी दयानन्द का ऋग्वेदभाष्य सप्तम मण्डल के 61 वे सूक्त के 2 रे मन्त्र तक है। पुनरपि ऋग्वेद के 6।65।5 के[20] के मन्त्रभाष्य में स्वामी जी ने मन्त्रान्तर्गत 'गोत्रा' पद का भूमि अर्थ किया है-

''(गोत्रा) भूमि:। गोत्रेति पृथिवीनाम)। निघण्टु 1/1 (गोत्रा) पृथिवी के समान। वा.....21''

2. 'नम: कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च' (यजु०16/2/9) नमो वञ्चते परिवञ्चते.....स्तायूनां पतये नम: (यजु०16।21)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्यकार उवट एवं महीधर के अनुसार नीलग्रीव जटाजूटधारी रुद्र देवता ही ठग, चोर लुटेरे एवं तस्कर आदि रूपों में हैं, उनको नमस्कार। ऐसा क्यों है, इसका समाधान महीधर यह देते हैं- ''रुद्रो लीलया चोरादिरूपं धत्ते। यद्वा रुद्रस्य जगदात्मकत्वात् चोरादयो रुद्रा एवं ध्येया:।'' अर्थात् रुद्र ही लीला से चोर आदि का रूप धारण कर लेता है अथवा क्योंकि रुद्र जगदात्मक है अत: चोर आदि भी रुद्र समझना चाहिएँ। जबकि स्वामी दयानन्द यजुर्वेद के इस 16 वें अध्याय को अपने भाष्य में एक आदर्श राष्ट्र के स्वरूप का वर्णन मानते हैं। उनके अनुसार राजा या सेनापति रुद्र है, क्योंकि वह शत्रुओं को रूलाता है 'नम:' पद का अर्थ स्वामीजी ने वैदिक कोष 'निघण्टु' के अनुसार यथायोग्य अन्न सत्कार या वज्रप्रहार किया है अर्थात् जो राजकीय सेवक अधिकारी हैं उनको अन्न आदि से सत्कार तथा चोर, लुटेरे आदि हैं , उन पर बज्र प्रहार होना चाहिए।

2. कर्मकाण्डीय व्याख्यानुसार यजुर्वेद के 22वें अध्याय से 25वें अध्याय तक अश्वमेघ यज्ञ का वर्णन हैं। इसमें 27 वें अध्याय के 19 से 31 तक के मन्त्रों का महीधरकृत अर्थ अश्लील है। स्वयं महीधर भी इन मन्त्रों का अर्थ अश्लील समझते हैं अत: इन मन्त्रों के बाद 32वें मन्त्र के अर्थ में वे लिखते हैं- ''अश्व के संस्कार के लिए जो हमने अश्लील भाषण किया है और उससे जो हमारे मुख दुर्गन्धित हो गये हैं, उन्हें यह यज्ञ पुन: सुगन्धित कर देवे। (अश्लीलभाषणेन दुर्गन्धं प्राप्तानि मुखानि सुरभीणि यज्ञ: करोत्वित्यर्थ: (यजु० 23।32 का महीधरभाष्य)।''

यदि मुख दुर्गन्धित होने की इतनी ही चिन्ता थी तो अश्लील अर्थ किया ही क्यों?

वस्तुत: न उन मन्त्रों का अर्थ अश्लील है, न ही इस 32 वें मन्त्र का यह अभिप्राय है जो महीधर ने लिखा है। स्वामी दयानन्द ने अपनी 'ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका' के भाष्य करणशंका समाधानादि विषय में उक्त मन्त्रों के महीधरकृत अर्थ देकर फिर शतपथब्राहमण का वाक्य उद्घृत करते हुए इन मन्त्रों के सत्यार्थ प्रकाशित किये हैं।

4. **चत्वारिवाक् परिमिता पदानि**
तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिण:।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति
तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।।

(ऋ०1/164/54)

इस मन्त्र का अर्थ है-चार वाणी के परिमित पद है। उनको जो मनीषी ब्राह्मण हैं, वे जानते हैं। उन चारों में से तीन गुहा में निहित हैं, जो इंगित नहीं होते। वाणी के चतुर्थ भाग को ही मनुष्य बोलते हैं।

इस मन्त्र के व्याख्यान में भाष्यकार पतंजलि लिखते हैं- 'चत्वारि पदजातानि नामाख्यातो -पसर्ग निपाताश्च।' अर्थात्- वाणी के चार प्रकार के पद नाम, व्याख्यात, उपसर्ग और निपात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। महाभाष्यकार के इस व्याख्यान को टीकाकार नागेश स्पष्ट नहीं कर सके और परा, पश्यन्ती, मध्यमा, बैखरी रूपी चार पदजात की चर्चा कर दी। यहाँ विचारणीय यह है कि भाष्यकार पतञ्जलि जब स्पष्टरूप से नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात रूप चार पदों का ग्रहण करते हैं, तब परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी रूप भेद की चर्चा भाष्यकारीय व्याख्यान में सर्वथा अप्रासङ्गिक है। वैसे इस मन्त्र के स्वतन्त्र व्याख्यान में 'परापश्यन्ती मध्यमा और वैखरी रूप भेदों का ग्रहण हो सकता है, जैसा कि भट्टभास्कर मिश्र ने तैत्तिरीयसंहिता (2।8।8) में स्वतन्त्ररूप में किया हैं।

ऋषिदयानन्द के इस मन्त्र के व्याख्यान से महर्षि पतञ्जलि का पूर्वोक्त व्याख्यान स्पष्ट हो जाता है- ''विदुषामविदुषां चेयानेव भेदोऽस्ति- ये विद्वांसः सन्ति, ते नामाख्यातो पसर्गनिपातांश्च चतुरोजानन्ति। तेषां त्रीणि ज्ञानस्थानानि सन्ति, चतुर्थं सिद्धं शब्दंसमूहं प्रसिद्धे व्यवहारे वदन्ति। ये चाऽ विद्वांसस्ते नामाख्यातोपसर्गनिपातान्न जानन्ति, किन्तु निपातरूपं ज्ञानसाधनरहितं सिद्ध शब्दं प्रयुञ्जते।'' अर्थात्- विद्वान् और अविद्वानों में इतना ही भेद है कि जो विद्वान् हैं, वे नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात इन चारों को जानते हैं। उनमें से तीन ज्ञान में रहते हैं, चौथे सिद्ध शब्दसमूह को प्रसिद्ध व्यवहार मे सब कहते (बोलते) हैं। और जो अविद्वान् हैं वे नाम, आख्यात उपसर्ग और निपातों को नहीं जानते, किन्तु निपातरूप साधन-ज्ञान-रहित प्रसिद्ध शब्द का प्रयोग करते हैं। इस सम्बन्ध में पं० युधिष्ठिर मीमांसक की टिप्पणी अति महत्वपूर्ण है-

''यहाँ स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'निपात' का अर्थ वैयाकरणों का पारिभाषिक नहीं लिया। वे इसका अर्थ 'निपात्यन्ते इति निपाताः' अर्थात् रूढाः=प्रकृतिप्रत्ययविभागशून्य अर्थ स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार उनके मत में यौगिक=प्रकृति प्रत्यय के विभाग से युक्त सिद्धनाम=सुप् आदि विभक्ति युक्त, **आख्यात**=तिङादिविभक्तियुक्त, **उपसर्ग** धातु से जुड़ा हुआ अंश, इन तीन में प्रकृति-प्रत्ययकृत भिन्नता के कारण ये भेद बुद्धि में स्थित हैं, अर्थात् बौद्धिक हैं। अतः मनीषी ब्राह्मण वैयाकरण ही प्रकृति-प्रत्यय-संयुक्त रूप को देखते हैं। जन साधारणतो 'देवदत्तः ग्रामम् उपसर्पति' आदि सिद्ध रूपों का ही प्रयोग करते हैं। अर्थात् वे प्रकृति-प्रत्यय- विभाग कल्पना पुरस्सर शब्दों का प्रयोग नहीं करते। रूढ़ शब्द का अर्थ है- अर्थविशेष में प्रयुज्यमान वर्णानुपूर्वीविशिष्ट शब्द। 'निपात' शब्द का रूढ़ अर्थ में प्रयोग स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्वीय उणादि वृत्ति में बहुत्र किया है। यथा-

रवष्पादयः पप्रत्ययान्ता निपाताः (3।28)

शुकादयः कप्रत्ययान्ता निपाताः (3।42)।

यहाँ 'निपाताः' का अर्थ 'रूढ़ाः' ही है। इस 'निपात' शब्द में कर्म में घञ् प्रत्यय है। निपातन रूढ़ शब्दों का ही होता है, यौगिकों का नहीं। यह वैयाकरणप्रसिद्ध तत्व है।''[22]

4. वेदविषयक प्राचीन ऋषियो की मान्यताएँ मध्यकालीन सायण-महीधरीयभाष्य से पुष्ट

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होती। मध्यकालीन यज्ञिय कर्मकाण्ड की परम्परा से बोझिल सायण की वेदव्याख्या ऐतरेय, याज्ञवलक्य, गोपथ, मनु, यास्क, पाणिनि, पतञ्जलि, कणाद, कपिल, गोतम और व्यास प्रभृति ऋषियों के वेदविषयक दृष्टिकोण के विपरीत है। और दूसरा कारण इसका यह है कि सायण महीधर आदि ने अपने काल मे प्रचलित कर्मकाण्ड की पद्धति को सृष्टि के आदिकाल से ही प्रचलित मान लिया। यही नहीं अपितु समकालीन धार्मिक विश्वास, पौराणिक कथाएँ और लौकिक पद्धतियों को भी सायण ने प्राचीन वेदमन्त्रों में सोचना प्रारम्भ किया, जबकि वैदिक ऋषियो के वातावरण से भाष्यकार सायण (ईसा की 14 की शताब्दीं) का वातावरण सर्वथा भिन्न था। अत: प्राचीन वैदिक मन्त्रों तथा सायण भाष्य के बीच परम्परा का सुदीर्घ विच्छेद दिखाई पड़ता है। वैदिक-मन्त्रो के आविर्भावकाल से लेकर मध्यकालीन वेदभाष्यकारों के समय तक कोई ऐसी परम्परा नहीं मिलती जो अविच्छिन्न रूप से चलती रही हो। अग्रिम प्रमाण इस तथ्य की पुष्टि करेंगें।

(क) सायणाचार्य ने ''इदं विष्णुर्विचक्रमे'' (ऋ०1।22।17) मन्त्र से वामन अवतार तथा 'वराहेण पृथिवी संविदाना' (अथर्व० 12।1।48)मन्त्र से वराह-अवतार सिद्ध करने का प्रयास किया है। जबकि इस ऋग्वेदीय मन्त्र की सूर्यपरक व्याख्या निरुक्त में की गई है।

(ख) अदोय द्दारु प्लवते सिन्धो: पारे अपूरूषम्। (ऋग्वेद10।155।3)

मन्त्र में 'दारु' पद का 'दारुमयं पुरुषोतमाख्यं देवताशरीरंम्' जैसा साम्प्रदायिक अर्थ सायणाचार्य ने लिया जबकि इस सूक्त का देवता 'अलक्ष्मीघ्नम्' है।

(ग) ते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखै: (ऋग्० 7/99/3)

इस मन्त्रांश का सायण ने 'पृथिवीं प्रथिता-मिमां भूमिमभित: सर्वत्रस्थितै: मयूखै: पर्वतै: दाधर्थ धारितवान् असि'' अर्थ किया है। इस पर सामश्रमी जी की टिप्पणी है कि 'मयूख' का पर्वत अर्थ अश्रुतपूर्व है- ''अश्रुतपूर्व: पर्वतार्थस्तत्र प्रकृतार्थस मन्वयासमर्थत्यैव तैनाश्रित इति।''

अर्थात्-प्रकृतमन्त्र का वास्तविक अर्थ की संगति लगाने में असमर्थ होने के कारण सायण ने यहाँ 'मयूख' शब्द का अश्रुत पूर्व पर्वत अर्थ किया है।

इस मन्त्र का देवता 'विष्णु' है। जिसका अध्यात्म में परमेश्वर अर्थात ब्रह्म अर्थात् तथा परमात्मा तथा अधिदेव में 'सूर्य' दोनो अर्थ संगत हो सकते हैं। अत: इस मन्त्र के 'मयूखै:' पद का स्वामी दयानन्द कृत सत्य अर्थ यह है-

''ज्ञानप्रकाशादिगुणै: रश्मिभिर्वा। मयूख इति रश्मिनामसु पठितम् (निघण्टु:)

अर्थात्- अध्यात्म में परमेश्वर ज्ञान प्रकाशादि गुणों से पृथिवी को धारण करता है। अधिदेव में सूर्य अपनी रश्मियों से इस पृथिवीलोक को धारण करता है।

ओं नम: ऋषिभ्य: पूर्वजेभ्य:
पृथिकृद्भ्य: ''(ऋग् 10।10।15)

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाद टिप्पणियाँ-

1. ननु चोक्तं नहि छन्दांसि क्रियन्ते नित्यानि छन्दांसि इतिं यद्यप्यर्थो नित्यः या त्वसौ वर्णानुपूर्वी साऽनित्या तद्भदाच्चैतद् भवति काठकं कालापकं मौदक पैप्पलाद-कमिति। (पातञ्जल-महाभाष्यम् 4।6।101)।
2. तत्त्वतो नहि वेदशाखा वृक्षशाखेव नापि नदीशाखेव प्रत्युताध्येतृभेदात् सम्प्रदायभेदजन्याध्ययन विशेषरूपैव। (पं० सत्यव्रत सामश्रमी-ऐतरेयालोचन)।
3. 'भ्रातुर्व्यच्च' (अष्टाध्यायी 4।176)
4. 'व्यन्सयत्ले' (अष्टा० 4।1।145) तथा 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा० 6।1।179)।
5. (क) यदिन्द्र (चित्र) चायनीयं मंहनीयं घनमस्ति यन्म इह नास्ति इति वा (निरुक्त 41)
   (ख) भाष्यकारेणोभयोः शाकल्यगार्ग्ययोरभिप्रायावत्रानुविहितौ (निरूक्त-दुर्गटीका-4।1)।
6. शतपथ ब्राह्मण-5।4।6।14
7. शतपथ ब्राह्मण-13।8।1।9
8. शतपथ ब्राह्मण-7।4।1।6
9. निघण्टु- 1।5
10. निघण्टु- 1।12
11. निघण्टु- 1।12
12. शतपथ ब्राह्मण- 7।6।1।32
13. शतपथ ब्राह्मण- 7।2।2।10
14. निघण्टु 2।7
15. निघण्टु 2।3
16. तैत्तिरीयसंहिताभाष्य 1।5।1
17. ऋग्वेदभाष्य 1।32।10 तथा 130।10
18. काण्वसंहिताभाष्यम्, पृ०8
19. अनुभ्रमोच्छेदन, पृ०6 (संवत् 1937 विक्रमीयः)।
20. इदा हित उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति।
    वर्केण विमिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणममवद्भवहूतिः।।
    (ऋग्वेद 6।65।5)
21. ऋग्वेद 6।65।5 का दयानन्दभाष्य
22. महाभाष्यम् (पतञ्जलिमुनि-विरचितम्) हिन्दी व्याख्या-सहितम्, प्रथमोभागः, (व्याख्याकारः-युधिष्ठिरो मीमांसकः) पृ० 30-31 प्रथम संस्करण, वि०सं० 2036 (सन् 1979ई०)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय पुरस्कार से आचार्य प्रो० महावीर सम्मानित

11 नवम्बर 2012 सांय 4:00 बजे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के निराला सभागार में नगर के गणमान्य सुप्रतिष्ठित साहित्यकारों, वैदिक विद्वानों तथा समाजसेवी बन्धुओं की गरिमामयी उपस्थिति में सम्मान-समारोह आयोजित किया गया। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निवर्त्तमान न्यायमूर्ति माननीय श्री ए.के. योग, वैदिक विद्वान् डा० ज्वलन्त कुमार शास्त्री, कन्या गुरुकुल हाथरस की आचार्या कमला जी, न्यास के अध्यक्ष श्रीमान् राधेमोहन जी ने तिलक, माल्यार्पण, अंगवस्त्र, स्मृति चिह्न एवं ग्यारह हजार की राशि भेंट कर प्रो० महावीर जी का अभिनन्दन एवं सम्मान किया। वैदिक वाङ्मय की उच्चतम सेवा करने वाले वैदिक विद्वानों को यह पुरस्कार दिया जाता रहा है।

पं० वीरसेन वेदश्रमी, स्वामी ब्रह्ममुनि जी पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, पं० युधिष्ठिर मीमांसक सदृश उच्चकोटि के विद्वान् इस सम्मान को पूर्व में प्राप्त कर चुके हैं।

प्रो० महावीर इससे पूर्व मुम्बई के वेद-वेदाङ्ग-पुरस्कार, नागपुर के आर्य-विभूषण पुरस्कार, भारतमाता मन्दिर के समन्वय पुरस्कार, पानीपत के आर्य सेवा पुरस्कार आदि से सम्मानित किये जा चुके हैं।

उत्तराखण्ड संस्कृत अकादमी के उपाध्यक्ष पद को विभूतिष करने वाले, गुरुकुल कांगड़ी विश्विद्यालय के उपकुलपति पद को अलंकृत करने वाले और वर्त्तमान में संस्कृत विभागाध्यक्ष तथा आचार्य पद को सुशोभित करने वाले प्रो. महावीर ने न केवल देश में अपितु इंग्लैण्ड, अमेरिका और नेपाल आदि देशों में वैदिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया है।

मुख्य अतिथि न्यानमूर्ति श्री ए. के. योग के भाषण में उस समय सभागार भारी करतल-ध्वनि से गूंज उठा, जब उन्होंने जर्मन विद्वान् प्रो० मैक्समूलर का वह पत्र पढ़ा जिसमें उन्होंने महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा था कि स्वामी जी के वेदभाष्य को पढ़कर वेदों के सम्बन्ध में उनकी सारी भ्रान्तियां दूर हो गयी थीं।

न्यास के अधिकारियों का आभार प्रकट करते हुए प्रो० महावीर ने कहा कि वेद हमारी अक्षय निधि है और भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। अतः हमें वेद ज्ञान का प्रचार-प्रसार हर प्रकार से करना चाहिये। वेद की सेवा राष्ट्र सेवा है।

'वैदिक अर्थव्यवस्था' 'वाल्मीकि रामायण में रस विमर्श', 'महाकवि कालिदास' आदि ग्रन्थों के लेखक डॉ० महावीर को यह पुरस्कार उनकी कृति 'ऋक्सूक्त-मञ्जूषा पर दिया गया।

कार्यक्रम का सञ्चालन सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् एवं न्यास के यशस्वी मन्त्री डॉ० आनन्द कुमार श्रीवास्तव ने किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाणिनीय व्याकरण में आगम का स्वरूप

डॉ० गोपालकृष्ण
मकान नं० 673/34
हरिसिंह कालोनी, रोहतक।

व्याकरण ग्रन्थों में आगम का स्थान महत्त्वपूर्ण माना गया है। अतः वैदिक युग से लौकिक युग तक आगम के अर्थ, परिभाषा, प्रकार आदि के विषय में यत्र-तत्र चिन्तन होता रहा है। जिसका विवेचन निम्न रूप में जान सकते हैं।

व्युत्पत्त्यर्थः-

सारस्वत-व्याकरण के अनुसार ''आगच्छति इति'' इस व्युत्पत्ति से आङ् उपसर्ग पूर्वक गम् धातु से कर्ता अर्थ में 'अ' प्रत्यय होकर 'आगम' शब्द सिद्ध होता है। तदनुसार जो अतिरिक्त रूप से आ जाता है उसे 'आगम' कहते हैं, इसलिए अन्वर्थ संज्ञा है, साथ ही महती भी। गम् धातु गत्यर्थक है किन्तु 'आङ्' इस उपसर्ग के आ जाने पर इसका अर्थ हो जाता है ''आ जाना इसी आ जाना अर्थ को लेकर यहाँ अन्वर्थता स्वीकार की गई है[1] इसी प्रकार संस्कृत व्याकरण की महान् विभूति पाणिनि ने भी 'आङ्' उपसर्ग पूर्वक गम्लृ-गतौ[2] धातु से भाव तथा करण-अर्थो में 'घञ्' प्रत्यय करके आगम शब्द सिद्ध किया है।

शब्दकोशकारों के मतानुसार 'आगम' शब्द का अर्थः-

विभिन्न शब्दकोशकारों ने 'आगम' शब्द के बहुधा पर्याय बतलाये हैं; यथा-

1. डॉ० ईश्वरचन्द्र शर्माः- परिजात-कोशकार डॉ० ईश्वर चन्द्र शर्मा ने आगम शब्द की आ+गम्+घञ व्युत्पत्ति दर्शाते हुए चौदह अर्थ किये हैं।[3]

1. आना, पहुँचाना।
2. प्राप्ति।
3. दर्शन होना।
4. अधिग्रहण।
5. जल का प्रवाह।
6. लिखित प्रमाण।
7. उत्पत्ति।
8. सञ्चय।
9. परम्परागत-विधि।
10. धार्मिक लेख, शास्त्र।
11. विज्ञान या दर्शन।
12. उपसर्ग, प्रत्यय।
13. व्याकरण में वर्णे की वृद्धि
14. यात्रा।

आदित्येश्वर कौशिकः-

संस्कृत-हिन्दी कोशकार आचार्य आदित्येश्वर कौशिक ने 'आगम' शब्द के आना या पहुँचना, सम्पत्ति में वृद्धि, विज्ञान या दर्शन, वेद शास्त्र ग्रन्थ, व्याकरण में अधिक वर्ण का आना अर्थ किये हैं।[4]

वामन शिवराम आप्टेः-

संस्कृत-हिन्दी कोशकार आचार्य वामन शिवराम आप्टे ने भी 'आगम' शब्द आ+गम्+घञ् निष्पन्न मानतें हुए 19 अर्थो का उल्लेख किया है।[5]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1. आना, पहुँचना, दर्शन देना।
2. अधिग्रहण।
3. जन्म, मूल, उत्पत्ति।
4. धन-आदि का संकलन या संचय।
5. बीजक या प्रमाणक।
6. बीजक या प्रमाणक।
7. ज्ञान।
8. आय, राजस्व।
9. किसी वस्तु का वैध अधिग्रहण।
10. सम्पत्ति की वृद्धि।
11. परम्परागत सिद्धान्त या उपदेश।
12. शास्त्राध्ययन, वेदाध्ययन।
13. विज्ञान, दर्शन।
14. वेद, धर्म ग्रन्थ।
15. चार प्रकार के प्रमाणों में से अन्तिम जिसे नैयायिक शब्द या आप्त वाक्य कहते हैं।
16. उपसर्ग या प्रत्यय।
17. (शब्द साधन में) वर्ण की वृद्धि या अन्तःक्षेप।
18. वृद्धि।
19. सिद्धान्त या ज्ञान।

द्वारका प्रसाद शर्मा व पं० तारिणीश झाः-

संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ के संपादक द्वारकाप्रसाद शर्मा एवं तारिणीश झा ने भी 'आगम' शब्द आ+गम्:घञ् से निष्पन्न मानते हुये, अर्थ किये हैं- आना या आगम, उपलब्धि या प्राप्ति, जन्म या उत्पत्ति, (धन की) प्राप्ति, (पानी की) धारा, बहाव, लिखित प्रमाण ज्ञान, आमदनी या आय, वैध उपाय से प्राप्त कोई वस्तु, सम्पत्ति की वृद्धि, परम्परागत सिद्धान्त या विधि शास्त्र, पवित्र ज्ञान, विज्ञान, वेद, न्याय के चार प्रमाणों में से अन्तिम प्रमाण, उपसर्ग, विभक्ति या प्रत्यय, किसी अक्षर का संयोग या मिलावट, साक्षिपत्र, सिद्धान्त, आनेवाला समय, उपक्रम, शब्द साधन में किसी वर्ण की वृद्धि।[6]

डॉ० धर्मेन्द्र कुमार गुप्त व विपिन चन्द्र बन्धुः-

पद्म चन्द्र कोश के संपादक डॉ० धर्मेन्द्र कुमार एवं विपिनचन्द्र बन्धु ने भी 'आगम' शब्द की आ+गम्+घञ् करके निष्पति मानी है तथा अनेक अर्थों का उल्लेख किया है- आना, आगमन, प्राप्ति, उपलब्धि, जन्म, उत्पत्ति, आमदनी, (पानी की) धारा या प्रवाह, लिखित प्रमाण, ज्ञान, वैध उपाय से प्राप्त कोई वस्तु, परम्परागत विधि या सिद्धान्त, संदिग्ध अर्थ को सिद्ध करने वाला व्यवहार, जैसे-शिवमुख से आया, उमा के कानों में गया, विष्णु ने माना अतः आगम हुआ "आगत विश्वम्बन्त्रेभ्यो गतं च गिरिजा श्रुतौ। मतं च वासुदेवस्य तस्मादागममुच्यते।" पवित्रज्ञान, विज्ञान, वेद न्याय के चार प्रमाणों में से अर्थात् शब्द प्रमाण, उपसर्ग, विभक्ति या प्रत्यय, शब्द साधन में किसी अक्षर का संयोग या मिलावट, साक्षिपत्र, सिद्धान्त, आने वाला समय, उपक्रम्, किसी वर्ण की वृद्धि।[7]

नालन्दा विशाल-शब्द सागरः-

नालन्दा विशाल-शब्द सागर कोश में 'आगम' शब्द के 13 अर्थों का उल्लेख किया है-

1. आगमन।
2. भविष्यकाल।
8. उत्पत्ति।
9. वेद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3. आमद।
४. होनहार।
५. समागम
६. आय, आमदनी।
७. व्याकरण में किसी शब्द-साधन में वह वर्ण जो बाहर से लाया जाए।
10. शास्त्र।
११. तन्त्रशास्त्र।
१२. योगशास्त्रानुसार शब्द प्रमाण
१३ नीतिशास्त्र।८

Theodore benfey:- संस्कृत-अंग्रेजी शब्दकोशकार Theodore benfey ने 'आगम' शब्द के १० अर्थ किये हैं[९]-

१. **Arrival**
२. **Occurrence**
३. **Stream**
४. **Afflux**
५. **Report**
६. **Knowledge**
७. **Sacred science**
८. **A work on Sacred science**
९. **A Preciept**
१०. **A legal title**

अर्थ एवं परिभाषायें:-

संहिताओं में प्रत्यक्ष रूप से तो आगम को परिभाषित नहीं किया गया है, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से अर्थ का संकेत अवश्य मिलता है। ऋग्वेद संहिता में आगम को सूर्य का वाचक स्वीकार किया गया है।[10] अथर्ववेद संहिता में भी आगम शब्द 'उत्पन्न होना' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[11]

प्रातिशाख्यों में 'आगम' शब्द का सर्वप्रथम ऋग्वेद प्रातिशाख्य में पारिभाषिक संज्ञा के रूप में प्रयोग मिलता है- 'लोपागमविकारश्च प्रकृतिर्विक्रम: क्रम:[12] तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में इस संज्ञा का प्रयोग-'अकार आगम-विकारिलोपिनाम्'[13] तथा वाजसनेयि प्रातिशाख्य में 'तेनेत्यागम:'[14] कहकर प्रयोग किया है। अथर्ववेद प्रातिशाख्य में भी यह संज्ञा प्रयुक्त हुई है- 'वर्णलोपागमह्रस्वदीर्घप्लुतात्मने'।[15] अन्य अनेक प्रातिशाख्यों में आय[16],उपजन[17] तथा व्यवधान[18] इत्यादि आगम के वाचक शब्दों का प्रयोग किया गया है जोकि आना अर्थ का द्योतन करते हैं।

दार्शनिकों ने 'आगम' को परिभाषित करते हुए न्यायशास्त्र में कहा है- 'अयमेव आप्तवाक्यम् इति आगम:।[19] लेकिन यहाँ पर आगम का अर्थ शब्द प्रमाण है। वाचस्पति मिश्र ने तत्त्ववैशारदी में आगम की व्याख्या करते हुए कहा है-'आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्माद् अभ्युदयनि:श्रेयसोपाया: स: आगम:।[20] अर्थात् आगम वह शास्त्र है, जिसके द्वारा भोग और मोक्ष के उपाय बुद्धि में आते हैं अत: यहाँ 'आम: शब्द शास्त्र के रूप में प्रयुक्त हुआ है। बौद्ध दर्शन के अनुसार शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विहेषक, उच्चाटन मारण तथा ध्यानयोग इन सात लक्षणों से युक्त ग्रन्थ को आगम कहते हैं।[21] अत: निष्कर्षत: दर्शनशास्त्र में 'आम' शास्त्र के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

स्मृतिकारो ने भी आगम को परिभाषित करते हुए कहा है-

स्वत्वहेतु: प्रतिग्रहक्रयादि: आगम:।[२२]

यहाँ स्मृतिकारों ने 'आगम' को साक्षिपत्र अर्थ में प्रयुक्त किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याकरण परम्परा में आगम की परिभाषा

महर्षि पाणिनि तथा उनसे उत्तरवर्ती आचार्यों ने 'आगम' को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया है, लेकिन कुछेक स्थानों पर 'आगम' को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने एक स्थान पर आगम को परिभाषित करते हुए लिखा है-

'आगमश्च नामापूर्वः शब्दोपजनः'।[२३]

अर्थात् आगम तो एक नये शब्द की वृद्धि का नाम है।

सारस्वत व्याकरण में भी परिभाषित करते हुए कहा है-

'मित्रवदागमः'।[24] अर्थात् आगम मित्र के समान होता है।

स्वयं महर्षि पाणिनि ने भी आगम को परिभाषित नहीं किया। परन्तु उन्होंने आगम की विधियों को दर्शाया है।[25]

भाषाविज्ञान में आगम की परिभाषा

अनेक भाषा शास्त्रियों ने स्व-२ लिखित भाषा विज्ञान सम्बन्धित ग्रन्थों में 'आगम' को परिभाषित किया है। जोकि निम्नवत् द्रष्टव्य है-

डॉ0 कपिलदेव द्विवेदीः- उच्चारण की सुविधा के लिए शब्दों के आदि, मध्य या अन्त में कुछ ध्वनियाँ जोड़ दी जाती है: इन्हें आगम कहते हैं।[27]

डॉ0 देवेन्द्रनाथ शर्माः-

कभी-कभी ऐसा होता है कि शब्द में ऐसे संयुक्ताक्षर आ जाते हैं जिनका उच्चारण आसानी से नहीं हो पाता। अतः किसी स्वर की सहायता लेकर उसका उच्चारण करना अधिक सुविधाजनक मालूम होता है।'' शब्द में नयी ध्वनि का आ जाना आगम कहलाता है। आगम स्वर और व्यञ्जन दोनों का हो सकता है।[27]

डॉ0 हरिशचन्द्र वर्माः-

जब किसी शब्द में किसी नये स्वर या व्यञ्जन का समावेश होता है तो वह आगम कहलाता है। स्वर अथवा व्यञ्जन का समावेश शब्द के आदि, मध्य और अन्त में कहीं भी हो सकता है।[28]

डॉ0 कर्ण सिंहः-

किसी शब्द में पहले से अविद्यमान किसी नई ध्वनि का आकर शब्द के आदि, मध्य या अन्त में जुड़ जाना 'आगम' कहलाता है।[29]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 'आगम' शब्द व्यापक अर्थ का द्योतन करता है। व्याकरणिक दृष्टिकोण से कहा जा सकता है कि-किसी प्रकृति अथवा प्रत्यय को वर्णवृद्धि के लिए कहे जाने वाले वर्णनसमूह का नाम 'आगम' है। यह निश्चित व्यवस्था के अन्तर्गत मित्रवत् भाव से जुड़ता है।

आगम- वैयाकरणों द्वारा प्रदत्त एक उपदेशः-

'आगम' वैयाकरणों द्वारा प्रदत्त एक-उपदेश है। अष्टाध्यायी में पठित 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्'[30] सूत्रस्थ 'उपदेशे' पद की बहुधा व्याख्या की गई। काशिकाकार ने 'उपदिश्यतेऽनेनेत्युपदेशः,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रवाक्यानि-सूत्रपाठः खिलपाठश्च'[31] कहा है। अर्थात् इससे उपदेश दिया जाता है, अतः उपदेश कहलाता है। शास्त्रवाक्य उपदेश है। तद्यथा-सूत्रपाठ (अष्टाध्यायी) और खिलपाठ (धातुपाठ)। डॉ० वेदपाल भास्कर [32] ने उपर्युक्त सूत्र की टिप्पणी में पाणिनि मुनि विरचित निम्न पाँच ग्रन्थों का नाम उपदेश बताया है-

1. अष्टाध्यायी।
2. धातुपाठ।
3. उणादिसूत्र।
4. गणपाठ।
5. लिङ्गानुशासन।

कतिपय आचार्य उपर्युक्त पाँच ग्रन्थों के अतिरिक्त वार्तिक, आगम और आदेश को भी उपदेश में परिगणित करते हैं।[33] तद्यथा-

धातु सूत्र गणोणादि वाक्य लिङ्गानुशासनम्।
आगम-प्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः।।

यही नहीं कुछ वैयाकरणों ने तो प्रत्याहार-सूत्र, धातुपाठ, गणपाठ, प्रत्यय, आगम और आदेश इनको ही उपदेश कहा है।[34]

प्रत्ययाः शिवसूत्राणि आदेशा आगमस्तथा।
धातुपाठो गणपाठ उपदेशाः प्रकीर्तिताः।।

अतः 'आगम' महर्षि पाणिनि द्वारा उपदिष्ट व्याकरण-शास्त्र सम्बन्धी एक-उपदेश है जिसका शब्द रचना के लिए महर्षि् पाणिनि से पूर्ववर्ती वैयाकरणों ने भी अपने-अपने द्वारा रचित सूत्र पाठ में उल्लेख किया है।

आगम और उनकी अनुबन्ध प्रक्रियाः-

आगमों की अनुबन्ध-प्रक्रिया को जानने से पहले 'अनुबन्ध' को जान लेना आवश्यक है। 'अनुबन्ध' का पद-रचना में विशिष्ट महत्व है। महर्षि पाणिनि ने सूत्रपाठ में जिस इत्संज्ञा का प्रयोग किया है वार्तिकार ने उसके लिए 'अनुबन्ध' शब्द का प्रयोग किया है,[35] सूत्रकारने इसकी कोई परिभाषा नहीं दी है। तथापि पाणिनि ने यह निर्देश अवश्य कर दिया है कि अनुनासिक स्वर व व्यञ्जन कब और कहाँ इत्संज्ञक कहलाते हैं।

'अनुबन्ध' शब्द 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'बन्ध-बन्धने' धातु से निष्पन्न है। 'अनु' का सामान्य अर्थ है-पश्चात्। अतः 'अनुबन्ध' का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ- 'पश्चात् संयुक्त होने वाला है। परन्तु यह सामान्य अर्थ उक्त सन्दर्भ में सङ्गत नहीं बैठता क्योंकि पाणिनीय शब्दानुशासन में अनुबन्ध न केवल अन्त में वरञ्च आदि और मध्य में भी जुड़े हुए हैं। महर्षि पाणिनि ने इन्हीं अनुबन्धों के लिए 'इत्' संज्ञा शब्द का प्रयोग किया है तथा इत्संज्ञक वर्णों के लोप का विधान भी किया है।

पाणिनि-उपदिष्ट इत्संज्ञक-सूत्रः-

महर्षि पाणिनि ने अपने सूत्रपाठ (अष्टाध्यायी) के प्रथमाध्याय तृतीय पाद में 2 से 9 संख्या तक इत्संज्ञक सूत्रों का पाठ किया है। इन आठ सूत्रों में से केवल दो ही सूत्र ऐसे हैं जो आगमों के इत्संज्ञक वर्णों को दशाते हैं-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपदेशेऽजनुनासिक इत्

हलन्त्यम्।

इन दोनो सूत्रों में से प्रथम सूत्र के अनुसार आगमों में विद्यमान अनुनासिक स्वरों की तथा द्वितीय सूत्र के अनुसार आगमों में विद्यमान अन्तिम व्यञ्जन की इत्संज्ञा होती है। तथा उनका लोप रूपी कार्य सम्पन्न किया जाता है। इस इत्संज्ञा के कारण ही स्वयं पाणिनि ने आगमों की प्रयोग विधि स्पष्ट की है और वैयाकरणों ने त्रिविध आगम को स्वीकार किया है। जिसका विवेचन शोध -पत्र में आगे किया जायेगा।

अब आगमों में विद्यमान अनुबन्धों व उनके प्रक्रिया-स्वरूप को दर्शाने वाली निम्न तालिकायें द्रष्टव्य हैं-

1. **टित् - आगमस्थ अनुबन्ध एवं प्रक्रिया स्वरूप दर्शन तालिका**

क्र0सं0	आगम	अनुबन्ध	प्रक्रिया-स्वरूप
1.	अट्	ट्	अ
2.	आट्	ट्	आ
3.	आपतुँट्	उँ, ट्	आपत्
4.	इट्	ट्	इ
5.	ईट्	ट्	ई
6.	कुँट्	उँ, ट्	क्
7.	ङुँट्	उँ, ट्	ङ्
8.	जुँट्	उँ, ट्	ज्
9.	डुँट्	उँ, ट्	ड्
10.	णुँट्	उँ, ट्	ण्
11.	तमँट्	अँ, ट्	त्
12.	तुँट्	उँ, ट्	त्
13.	थँट्	अँ, ट्	थ्
14.	थुँट्	उँ, ट्	थ्
15.	दुँट्	उँ, ट्	द्
16.	घुँट्	उँ, ट्	घ्
17.	नुँट्	उँ, ट्	न्
18.	पुँट्	उँ, ट्	प्
19.	मँट्	अँ, ट्	म्
20.	मुँट्	उँ, ट्	म्
21.	मूँट्	ऊँ, ट्	म्
22.	याट्	ट्	या
23.	यासुँट्	उँ, ट्	यास्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

24.	यिँट्	इँ, ट्	य्
25.	युँट्	उँ, ट्	य्
26.	रूँट्	ऊँ, ट्	र्
27.	शुँट्	उँ, ट्	श्
28.	स्याट्	ट्	स्या
29.	सीयुँट	उँ, ट्	सीय्
30.	सुँट्	उँ, ट्	स्

उपर्युक्त सभी आगमों के अन्त में विद्यमान 'ट्' इत्संज्ञक होने के कारण ही ये सभी आगम टित्-आगम कहलाते हैं।

2. कित् - आगमस्थ अनुबन्ध एवं प्रक्रिया स्वरूप दर्शन तालिका

क्र0 सं0	आगम	अनुबन्ध	प्रक्रिया-स्वरूप
1.	असुँक्	उँ, क्	अस्
2.	आदुँक्	उँ, क्	आद्
3.	आनुँक्	उँ, क्	आन्
4.	इथुँक्	उँ, क्	इथ्
5.	कुँक्	उँ, क्	क्
6.	गुँक्	उँ, क्	ग्
7.	जुँक्	उँ, क्	ज्
8.	टुँक्	उँ, क्	ट्
9.	णुँक्	उँ, क्	ण्
10.	तिथुँक्	उँ, क्	तिथ्
11.	तुँक्	उँ, क्	त्
12.	थुँक्	उँ, क्	थ्
13.	दुँक्	उँ, क्	द्
14.	नींक्	ईं, क्	नी
15.	नुँक्	उँ, क्	न्
16.	पुँक्	उँ, क्	प्
17.	बुँक्	उँ, क्	ब्
18.	मुँक्	उँ, क्	म्
19.	यँक्	अँ, क्	य
20.	युँक्	उँ, क्	य्
21.	लुँक्	उँ, क्	ल्
22.	रिँक्	इँ, क्	रि
23.	रींक्	ईं, क्	री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

24.	रूँक्	उँ, क्	र्
25.	वुँक्	उँ, क्	व्
26.	षुँक्	उँ, क्	ष्
27.	सँक्	अँ, क्	स्
28.	हुँक्	उँ, क्	ह्

इन उपर्युक्त सभी आगमों के अन्त में विद्यमान 'क्' इत्संज्ञक वर्ण होने के कारण ही ये सभी आगम कित्-आगम कहलाते हैं।

३. **मित् - आगमस्थ अनुबन्ध एवं प्रक्रिया स्वरूप दर्शन तालिका**

क्रम सं0	आगम	अनुबन्ध	प्रक्रिया स्वरूप
1.	अम्	म्	अ
2.	आम्	म्	आ
3.	असुँम्	उँ, म्	अस्
4.	इम्	म्	इ
5.	उम्	म्	उ
6.	नाम्	म्	ना
7.	नुँम्	उँ, म्	न्
8.	पुँम्	उँ, म्	प्
9.	मुँम्	उँ, म्	म्
10.	रँम्	अँ, म्	र्

यहाँ उपर्युक्त सभी आगमों के अन्त में विद्यमान 'म्' इत्संज्ञक वर्ण होने के कारण ही ये सभी आगम मित्-आगम कहलाते हैं।

<u>आगम के प्रकार एवं प्रक्रियाः-</u>

महर्षि पाणिनि - उपदिष्ट आगम मुख्य रूप से तीन प्रकार के हैं। यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है। पाणिनीय व्याकरण परम्परा के आचार्यो ने भी इसे एकमत होकर स्वीकार किया है।

शोधपत्र के अत्यधिक विस्तार से बचने के लिये उपर्युक्त तीनों आगमों की सम्पूर्ण प्रक्रिया का विवेचान करना उचित नहीं है। क्योंकि सम्पूर्ण प्रक्रिया शोध-प्रबन्ध का विषय बन जाती है।

<u>आगम का आगमी के साथ सम्बन्धः-</u>

ट्-कित् आदि आगम जिसको उद्देश्य करके विधान किये जाते हैं। वह आगम उस आदमी का अवयव हो जाता है। इसलिये आगमीबोधक शब्द से आगम विशिष्ट का ग्रहण होता है। आचार्य भट्टोजिदीक्षित ने आगम-आगमी के सम्बन्ध का स्पष्ट उल्लेख करते हुए लिखा है[10] कि-आगम जिसको उद्देश्य करके विधान किया जाता है, वह आगम सूत्र के द्वारा आगमी के अवयव के रूप में बोधित किया जाता है और आगम जब आगमी के अवयव के रूप में बोधित कर दिया जाता है तो आगमीबोधक शब्द से उसका ग्रहण किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि आगम-आगमी का परस्पर अवयव-अवयवी सम्बन्ध होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगम और उनकी स्वर-व्यवस्थाः-

जो टित-कित् मित् आगम होते हैं, उनमें किसी उदात्तादि (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित) विशेष स्वर का विधान नहीं किया है, वहाँ क्या स्वर होना चाहिए? इस विषय का उत्तर देते हुए महाभाष्यकार ने कहा है कि-

''आगम अनुदात्ता भवन्ति।'' (सू0/३/१/३)

अर्थात् टित्-आदि आगम सामान्य रूप से अनुदात्त स्वर वाले होते हैं।

यद्यपि 'अर्थवत०',37 परिभाषा के अनुसार जो प्रत्यय अथवा प्रकृति का स्वर होता है, यदि वही स्वर आगम का भी होता हो, तो एक पद में दो स्वर नहीं रहते। इसलिए 'भविता' इत्यादि में आगम भी अनुदात्त विधान किये हैं।

इसमें ज्ञापक यह है कि 'यासुट् परस्मै०'38 इस सूत्र में उदात्तादि करने का यही प्रयोजन है कि आगम सब अनुदात्त स्वर वाले होते हैं। इससे (यासुट् को) उदात्त प्राप्त नहीं था और जो प्रत्यय को आद्युदात्त स्वर होता है, वह आगम (अयासुट) को नहीं प्राप्त था। इसलिए उदात्त कहा है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि आगम सामान्य रूप से अनुदात्त स्वर वाले होते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूचिः-

1. पाणिनीय धातुपाठ - 1/709
2. पाणिनीय और सारस्वतीय
3. परिजात कोश, पृ. 123
4. संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 30
5. संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 140
6. संस्कृत शब्द कौस्तुभ, पृ. 176
7. पद्मचन्द्र कोश, पृ. 109
8. नालन्दा विशाल शब्द सार, पृ. 120
9. Sanskrit-English Dictionary, Pge-70
10. ऋग्वेद संहिता, 6/52/5 (देवा ओहानोऽवसागमिष्ठ)
11. अथर्ववेद संहिता, 6/81/2 (तं त्वमागमयागमे)
12. ऋग्वेद प्रातिशाख्य, पृ. 25
13. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, पृ. 1.123
14. वाजसनेयि प्रातिशाख्य,. 1.137
15. अथर्ववेद प्रातिशाख्य, 3.223
16. ऋग्वेद प्रातिशाख्य,
17. ऋग्वेद प्रातिशाख्य, 4.84 पुरूपृयुविधिपूवषु शकार उपजायते
18. ऋक्० वृ०, 4.5.4 (पूर्वरूपं करोतौ प्रत्यये सकारो व्यवधीयते)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

19. न्याय सूत्र, 1.1.7
20. तन्त्रवार्तिक, 1.6
21. भारतीय दर्शन परिभाषा कोश
22. मनुस्मृति 8/200, याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/27
23. महाभाष्य, सप्तम आह्निक, पृ. 423
24. सारस्वत व्याकरण, 1/12
25. अष्टाध्यायी, 1/1/45, 1/1/46
26. भाषा एवे भाषा शास्त्र, पृ. 253
27. भाषा विज्ञान की भूमिका, पृ. 85
28. भाषा और भाषाविज्ञान, पृ. 163
29. सरल संस्कृत भाषाविज्ञान, पृ. 102
30. अष्टाध्यायी, 1/3/2
31. काशिका-सूत्र, 1/3/2,पृ. 246
32. वही, पृ. 247
33. काशिका, पृ. 247
34. लघु सिद्धान्त कौमुदी, पृ. 5
35. वार्तिक, 17, (महा०अ० 1, पा० 1, पस्पशा० 1)
इत्संज्ञका अनबन्धाः (परिभाषेन्दु शेखर, पृ. 19)
36. परिभाषा, पृ.41
37. परिभाषा, संख्या, 11
38. अष्टाध्यायी, 3/4//103

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय संस्कृति में धर्म की अवधारणा

डॉ० संगीता विद्यालंकार
प्राचार्या
कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, हरिद्वार।

धर्म शब्द का मानव जीवन के साथ अटूट तथा शाश्वत सम्बन्ध है। धर्म भारतीय संस्कृति का प्राण है। धर्म शब्द धृ धातु से निष्पन्न है। 'धारणाद् धर्म इत्याहुः धीयते लोकः अनेन इति धर्म धारयति धारयते वा लोकम् इति धर्मः' अर्थात् मानव शरीर जिसको धारण करता है, अथवा जिसको धारण किया जाता है वह धर्म है। निश्चय ही धर्म एक ऐसा व्यापक शब्द है, जिसका हम दैनिक जीवन में नित्य प्रयोग करते हैं। सामान्य व्यक्ति धर्म शब्द हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, सिक्ख धर्म लेते हुये तत् तत् समुदाय के उपासना स्थल का ज्ञान करता है, अथवा गेरुआ वस्त्र धारित सन्तो को अथवा कर्मधारी ब्राह्मणों को धर्म से जोड़ता है।

अतः यहाँ यह स्पष्ट है कि धर्म शब्द की कोई पूर्ण निश्चित परिभाषा देना कठिन है। मूलतः धर्म मानव की आन्तरिक भावना का द्योतक है तथा सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति भी है। कुछ विद्वान् धर्म के सैद्धान्तिक पक्ष को ही स्वीकार करते हैं। और कुछ के मत में धर्म का भावात्मक पक्ष ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और कुछ विद्वान् धर्म के व्यावाहारिक तथा क्रियात्मक पक्ष को विशेष महत्व देते हुये धार्मिक अनुष्ठानों को स्थान देते हैं। इनमें कोई भी दृष्टिकोण उसके स्वरूप की पूर्णतः सन्तोषप्रद व्याख्या नहीं कर पाता है। अतः धर्म शब्द का कोई स्पष्ट और निश्चित अर्थ समझना कठिन हैं।

भारतीय संस्कृति में धर्म शब्द व्यापक अर्थ में लिया गया है। वेदों उपनिषदों भगवद्गीता महाभारत तथा भारतीय दर्शनों में धर्म शब्द की सविस्तार व्याख्या की गई है। वेदों में धर्म को विश्व की व्यवस्था अथवा उसके मूल नियम के अर्थ में ग्रहण किया गया है धर्म ही विश्व का मूल तत्व या आधार है। 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।'

उपनिषदों में धर्म को सत्य और कर्तव्य से जोड़कर अनिवार्यतः नैतिकता के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार सत्य तथा धर्म मूलतः एक है।[2] आध्यात्मिक उत्थान ही उपनिषद् धर्म का मूल तत्व है। उपनिषदों में ज्ञान के वास्तविक रूप को स्पष्ट किया गया है। आध्यात्मिक उत्थान के लिये उपनिषदों में उपासना की योजना प्रस्तुत की गयी है।

भगवद्गीता तथा धर्मशास्त्रों में भी धर्म का यही अर्थ स्वीकार किया गया है भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इसी अर्थ में स्वधर्म पालन की शिक्षा दी है[3] -

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझाया कि तू क्षत्रिय है प्रजा और शासन की रक्षा करना तेरा धर्म है। इस प्रकार गीता में अपने-अपने धर्म का पालन करते हुए कर्म करने की शिक्षा दी गई है। राष्ट्रकवि दिनकर ने अपने ग्रन्थ कुरुक्षेत्र में इसी भाव को अभिव्यक्त किया है-

है बहुत देखा सुना मैने मगर भेद खुल पाया न धर्माधर्म का
आज तक ऐसा कि रेखा खींचकर
बांट दूँ मैं पुण्य को और पाप को।।
और भी -
व्यक्ति का है धर्म तप, करुणा क्षमा
व्यक्ति की शोभा विनय भी त्याग भी
किन्तु उठता प्रश्न जब समुदाय का।
भूलना पड़ता हमें तप त्याग को।।[4]

भागवत में भी उल्लिखित है कि वेदों जो कुछ कहा गया है वह धर्म है। इसके विपरीत सब अधर्म है। जैमिनीसूत्र में भी लिखा में कि वेद जिसकी घोषणा करे वह धर्म है। चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।[5] वेदानुकूल आचरण ही धर्म का प्रधान लक्षण है। वैशेषिक दर्शन में यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धि स धर्मः - धर्म वह है जो मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक अभ्युदय में सहायक हो।[6]

मनुस्मृति में भी धर्म के व्यापक अर्थ को स्वीकार किया गया है। मनु कोई व्यक्ति नहीं अपितु संस्था थे। मनु ने जिस धर्म को स्पष्ट किया वह मनु धर्म या मानव धर्म कहलाया। मनु के अनुसार धर्म मानव के कर्तव्य बोध के लिए है। मनुस्मृति में वर्णाश्रम धर्म का उल्लेख है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने वर्ण तथा आश्रम के अनुरूप समस्त कर्तव्यों का पालन करना चाहिये।

मनु के अनुसार धर्म के निम्नलिखित दस लक्षण हैं -

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

धृति (धैर्य), क्षमा (सहनशीलता), संयम, अस्तेय चोरी न करना शौच सभी प्रकार की स्वच्छता, इन्द्रियनिग्रह अपनी सभी इन्द्रियों को वश में रखना धी-विवेकशीलता, विद्या सभी प्रकार का ज्ञान सत्य के अनुरूप आचरण करना, अक्रोध कभी क्रोध न करना।

धर्म के उपर्युक्त जिस दस प्रकार के लक्षणों का वर्णन किया गया है, वह मनुष्य के व्यक्तिगत तथा सम्पूर्ण मानव जीवन के सर्वांगीण विकास या कल्याण के लिये निश्चय ही आवश्यक है।

मनुस्मृति के अनुसार धर्म की सामान्य परिभाषा यह है-

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।[7]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रुति, स्मृति, सदाचार और आत्मा अनुकूलता यही साक्षात् धर्म के चार लक्षण है अर्थात् कसौटी है। इसका अर्थ है कि धर्मशास्त्र का ज्ञान कोई ठहरा हुआ ज्ञान नही है। वह वेद से परिभाषित है, स्मृति, सदाचार से और सदाचार अपनी अनुकूलता से इसलिए शास्त्र एक जड वस्तु नहीं है। यह निरन्तर अनुभव से समृद्ध एवं समृद्धता से होने वाला अनुभव है।।

सामाजिक व्यवस्था भी धर्म का प्रमुख अंग है। प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्र वेदों का सार है, और उसका सूत्ररूप समझा जाता है। भारतीय समाज की व्यवस्था पूर्णत: इन्हीं धर्मशास्त्रों पर निर्भर है। मनु के धर्म का आधार भी वर्णाश्रम धर्म है।[४] वर्णाश्रम धर्म के अलावा देशधर्म, कुलधर्म आदि की योजना भी प्रस्तुत की गयी है। वेदों के बाद वेदांगो का क्रम है। वेद में कल्प नामक वेदांग के तीन वर्ग माने गये हैं। श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र। इन धर्मशास्त्रों का सम्बन्ध समाज से है। सामाजिक व्यवस्था वाले ये धर्मसूत्र सामाजिक और नैतिक रीतियों से ओतप्रोत थे। वास्तव में इन धर्मसूत्रों में सर्वप्रथम समाज की व्यवस्था से सम्बन्धित सही कानून की व्यवस्था की गयी थी।

पौराणिक धर्म में अनेक धार्मिक अनुष्ठान, क्रियाकलाप मिलते हैं, जिनमें भक्ति व व्रत प्रमुख हैं। बौद्ध धर्म में शील और अष्टांगिक मार्ग को धर्म के अन्तर्गत मानकर उसके नैतिक पक्ष को विशेष महत्व दिया गया है। बुद्ध ने धर्म को एक ऐसी जीवन पद्धति के रूप में ग्रहण किया जिसके अनुसार मनुष्य अपना जीवन व्यतीत करता है, जिसमें स्वकर्तव्य पालन का विशेष महत्व है।

जैन धर्म में अहिंसा पर सबसे अधिक बल दिया गया इसके अनुसार कीट पतंगों को मारना भी पाप था। जैन धर्म में समानता जात-पात पर विशेष ध्यान दिया है। जैन धर्म ने भी ईश्वर की सत्ता का निषेध किया और उनके मत में सामान्य व्यक्ति ही अपने दिव्य गुणों के कारण 'जिन' 'अर्हत्' बन जाता है। 'जिन' से तात्पर्य जीतने वाला 'अर्हत्' का अर्थ पूजनीय होता है। इनके ईश्वर तीर्थंकर कहलाते हैं। जैन धर्म में 24 तीर्थंकर माने गये हैं। महावीर अन्तिम तीर्थंकर हुए हैं।

भारतीय परम्परा में धर्म और दर्शन एक दूसरे के पूरक माने गये हैं यहाँ जितनी धर्म की मान्यता और सम्मान है, उतना ही दर्शन के प्रति भी। दर्शन बौद्धिक चिन्तन तथा विश्लेषण है तो धर्म आस्था और श्रद्धा का द्योतक है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उत्तरोत्तर जितना अधिक विकास हुआ है, धर्म और दर्शन के क्षेत्र भी उतने अधिक व्यापक होने लगे। वस्तुत: धर्म और दर्शन में मौलिक अन्तर है।

1. दर्शन बौद्धिक होने के कारण मानव समस्याओं का समाधान खोजता है पर धर्म में भय आशा, निराशा आस्था चमत्कार आदि का स्थान प्रधान है। धर्म में परम शक्ति की आराधना करके उसके साथ सम्बन्ध जोड़ा जाता है। जबकि दर्शन ज्ञान के द्वार खोलता है।
2. दार्शनिक क्रियाऐं चिन्तन, मनन तर्क प्रधान होती है, जबकि धार्मिक क्रियाऐं प्रार्थना पूजा पाठ निवेदन तीर्थ स्नान आधारित है।
3. दर्शन में परम सत्य परम तत्व की खोज की जाती है, जबकि धर्म में भक्ति तथा ईश्वर के प्रति समर्पण प्रधान होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ मौलिक अन्तर होते हुए भी धर्म और दर्शन एक दूसरे के पूरक हैं दोनों का ध्येय मानव का सुख समृद्धि करना है। आरम्भ में बौद्ध और जैन धर्म को दर्शन की संज्ञा प्राप्त नहीं थी, क्योंकि इसमें आस्था और आचरण का विशेष स्थान था।

धर्म एवं विज्ञान - मानवीय चिन्तन में विज्ञान एवं धर्म का स्रोत एक है। फिर भी धर्म और विज्ञान में अन्तर है। धार्मिक मनोवृत्ति व्यक्तिगत होती है। प्रत्येक व्यक्ति का धर्म के प्रति एक अपना दृष्टिकोण होता है। इसकें विपरीत वैज्ञानिक प्रवृत्ति वस्तुपरक होती है। इसमें संवेग का कोई स्थान नहीं होता। एक वैज्ञानिक को विज्ञान के निष्कर्षो को मानने में किसी प्रकार का कोई संकोच नहीं होता। धर्म का सम्बन्ध आन्तरिक जीवन से है, पर विज्ञान इसके विपरीत बाहरी दुनिया से सम्बन्धित है। विज्ञान का सम्बन्ध तथ्यों से है। भौतिक शास्त्र का सम्बन्ध भूत से है और धर्म का सम्बन्ध मूल्यों से है।

धर्म और विज्ञान हमारे जीवन के आवश्यक अंग है। ज्ञान के अनेक पहलु हैं पर धर्म ज्ञान का एक पहलू है। और विज्ञान का दूसरा पहलू। फिर भी इनमें गहरा सम्बन्ध है। धर्म और विज्ञान को एक दूसरे से पृथक् करना व्यावहारिक जीवन के लिए घातक सिद्ध होगा। विज्ञान और धर्म पङ्गुबन्धन्याय है। धर्म के अभाव में विज्ञान पंगु है और विज्ञान के अभाव में धर्म अन्धा है।

हम सबके लिये अनिवार्य है कि हम अपने धर्म के साथ-साथ दूसरे धर्मो का भी समान रूप से आदर करना सीखें। धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता पर आधारित सर्व धर्म समभाव का निष्ठापूर्वक पालन हम सबके लिए आवश्यक है। भारत जैसे विशाल देश में जहाँ अनेक धर्म, धार्मिक कर्मकाण्ड, रीति-रिवाज एवं आस्थाए है, वहाँ धार्मिक सहिष्णुता ही सभी नागरिकों को समता एवं मातृत्व में बांध सकती है। यही मार्ग ऐसा है जो संसार में शान्ति, सहयोग एवं सद्भाव की स्थापना करने में सक्षम हैं।

पाद-टिप्पणियाँ

1. मनुस्मृति 2/6
2. बृहदारण्यकोपनिषद्
3. गीता
4. कवि दिनकर
5. वैशेषिक दर्शन
6. मनुस्मृति
7. मनुस्मृति 2/16
8. मनुस्मृति 2/7
9. मनुस्मृति 2/12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वेदों में लोककल्याणकारी राज्यः राजा के परिप्रेक्ष्य में'

डॉ० डॉली जैन
612, गौतम बुद्ध निवास
वनस्थली विद्यापीठ
टॉक (राज.)

वैदिक काल से ही भारतीय राज्यवस्था जनतांत्रिक मूल्यों की चेतना से युक्त एवं उसी के आधार पर उद्भूत हुई जो कालान्तर में विकसित और रूपान्तरित होती गई। संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदों के अनन्तर सूत्र साहित्य, आर्ष साहित्य, पौराणिक साहित्य में वर्णित राज्यवस्था अपने भीतर न्यूनाधिक रूप से लोककल्याण के सनातन भारतीय मूल्य समाहित किये रही।

अपने वर्तमान स्वरूप में लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा बीसवीं शताब्दी की एक प्रमुख अवधारणा है। कल्याणकारी सिद्धान्त राज्य को एक कल्याणकारी संस्था मानते हुए इस बात का प्रतिपादन करता है कि राज्य के द्वारा वे सभी कार्य किए जाने चाहिये जो व्यक्तियों के कल्याण में हों। साधारणतः लोककल्याणकारी राज्य का तात्पर्य एक ऐसे राज्य से है जिसके अन्तर्गत शासन की शक्ति का प्रयोग किसी वर्ग विशेष के कल्याण हेतु नहीं वरन सम्पूर्ण जनता के कल्याण के लिये किया जाता है। इस रूप में लोककल्याणकारी राज्य का विचार नया नहीं है।

भारत में प्राचीनकाल से रामराज्य की जो धारणा प्रचलित है, वह एक ऐसे राज्य का प्रतीक है, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति का स्वतन्त्र रूप से सर्वांगीण विकास करने का प्रयत्न किया जाता है। यद्यपि भारतीय परम्परा में जनपद के दैवी उदय का प्रतिपादन कियागया है लेकिन इसके साथ ही उन्होंने नरेश के कर्तव्यों की विस्तृत विवेचना की है और उनका मूल विचार है कि राजा के सभी कार्य लोकल्याण की दृष्टि से किये जाने चाहिये।

वेदों में राजा के लोककल्याणकारी स्वरूप का चित्रण किया गया है। यजुर्वेद में एक स्थान पर उल्लेख आया है कि राजा मनुष्यों के लिये उसी प्रकार उपयोगी उपकारक तथा उनका पालक है जैसे अग्नि, गृहपतियों के लिये है, इन्द्र के समान विपुल धन का दाता, कर्तव्यपालन में मित्रवरुण के समान विविध प्रकार के ज्ञान को धारण करने में अथवा महान् धन के स्वामी होने में पूषा के समान, सभी के कल्याण करने में अथवा सुख देने में द्यु और पृथिवी के समान, और जो अपनी सन्तति रूप प्रजा के लिये माता के समान है।[1] वैदिक राजा अपने अधीन प्रजा के श्रेय और प्रेय मार्गों को उसके लिये प्रशस्त करने का यथा संभव प्रयत्न करता रहता था।[2] प्रजा के कल्याण का कर्तव्य ऋग्वेद में इस प्रकार उल्लिखत है जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजावत्सल राजा प्रजा के हित के लिये कार्य करते हैं वैसे ही अमर अग्नि हमारे लिये हितकर कार्य का सम्पादन करें।[3] वेदों में उपलब्ध राजा के लोककल्याणकारी कार्यों का आधुनिक दृष्टिकोण से इस प्रकार विवेचन किया जा सकता है।

१. आन्तरिक सुव्यवस्था सम्बन्धी कार्यः

आधुनिक लोकल्याणकारी राज्य का एक कर्तव्य है कि वह आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था बनाये रखते हुए व्यक्तियों को जीवन की सुरक्षा का आश्वासन दे। इस कार्य को पूर्ण करने के लिये राज्य सेना और पुलिस रखता है। सरकारी कर्मचारी व न्याय की व्यवस्था करता है।

वेदों में राजा के इस प्रकार के कर्तव्य निश्चित किये गये हैं। राजा का कर्तव्य है कि सूर्य के समान अन्यायरूपी अंधकार का नाश करके श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा तथा दस्युजनों की ताड़ना करें।[4] दुष्टकर्म करने वाले मायावी जनों की माया अर्थात् छलयुक्त बुद्धियों को निरन्तर नष्ट करें।[5] सत्यभाषणादि व्यवहार रहित पुरुष के समान झूठे आचार से युक्त जन को मारे, उस प्रकार के किसी दुष्ट पुरुष को दण्ड दिये बिना न छोड़ें।[6] राजा से प्रार्थना की गयी है कि हे दुष्ट पुरुषों के नाशकर्ता राजन्! आप उत्तमता के साथ सुख वृद्धि करो, बुरे आचार को जड़ सहित तोड़ो उसके ऊपर प्रतापयुक्त वज्र फेंको, ब्रह्मद्वेषी को अच्छे प्रकार से काटो।[7]

वेदों में राजा के न्यायिक कार्यों का भी उल्लेख मिलता है। राजा से न्याय व्यवस्था सुदृढ़ रखने व तदर्थ दुष्ट हिंसकों के प्रति मन्यु धारण करने वाले न्यायाधीशों की नियुक्ति करने की प्रार्थना की गयी है।[8] राजा से अपेक्षा की गयी है कि वह सर्वत्र भ्रमण करके, वस्तुस्थिति जानकर प्रजा को शीघ्रता से न्याय दिलाकर प्रजा की रक्षा करें।[9]

शत्रुनाश तथा राज्यरक्षा के लिये राजा से सेना की व्यवस्था करने को कहा गया है।[10] एक मंत्र में सूर्य तथा मेघ के युद्ध का दृष्टान्त देकर राजा को आदिष्ट किया गया है कि जिस प्रकार सूर्य अपनी विशाल सेना से मेघ को छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार आप पूर्णबल से शत्रु को जीतिए। ऋग्वेद।[11] ऋग्वेद में अन्यत्र भी अनेक ऋचाओं में सेना द्वारा शत्रुनाश तथा प्रजा रक्षण की चर्चा हुई है।[12]

(२) कृषि, शिल्प तथा व्यापार का नियमन और विकासः

लोककल्याणकारी राज्य के दायित्व एक ऐसे राज्य के द्वारा पूरे किये जा सकते हैं जो आर्थिक दृष्टि से पर्याप्त सम्पन्न हों। अतः इस प्रकार के राज्य द्वारा कृषि, शिल्प तथा व्यापार के नियमन एवं विकास का कार्य किया जाना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों में राजा इस प्रकार के कार्यों का अनेकशः उल्लेख मिलता है। वेद में एक स्थान पर उल्लेख अया है कि हे राजन्! यह राष्ट्र तुझे दिया गया है। हम तुझे कृषि के लिये सुख समृद्धि के लिये.....पोषण हेतु और सार्वजनिक कल्याण हेतु इस राज्य में राजपद पर अभिषिक्त कर रहे हैं।[13] इसी प्रकार अग्नि से प्रार्थना है कि हे अग्नि (सम्राट्)! तू हमें अन्न दे जिसके खाने से हमारे पुत्र वीर हो जाएं।[14] राजा का कर्तव्य है कि वह देखे कि उसके राज्य में ऐसी उत्तम कृषि हो जिसके अन्नों को खाने से राष्ट्र के पुत्र बलशाली बन सकें। इसी प्रकार हे अग्नि! (सम्राट्)! पर्वतों, ओषधियों अर्थात् सब प्रकार के अनाजों और जलों में जो धन है तू उन सबका राजा है।[15] अर्थात् राजा को चाहिये कि वह पर्वतों और जलों में होने वाले पदार्थों तथा भांति भांति के अनाजों की कृषि की उन्नति कराके उनसे राष्ट्र के धन की वृद्धि करें।

राजा को जल की नालियों अथवा नहरों का प्रसार करने का भी निर्देश दिया गया है।[16] राजा से भौतिक सुख समृद्धि की व्यवस्था करने की अपेक्षा भी की गयी है।[17]

अथर्ववेद में वणिक् सूक्त में राजा से व्यापार व वाणिज्य को नियमित करने की प्रार्थना की गई हैं ''मैं वणिक् इन्द्र को प्रेरणा करता हूं वह हमारे पास आये और हमारे आगे चलने वाला बने, वह हमारा स्वामी व्यापार के विघातक शत्रुओं को, मार्ग रोककर बैठने वाले चोर डाकू आदि को और व्याघ्र आदि पशुओं को हटाता हुआ मेरे लिये धनदा बनें।[18]

यहां इन्द्र को वणिक् कहा गया है। इन्द्र (सम्राट्) से उपलक्षित राज्य को वाणिज्य की अभिवृद्धि में विशेष अभिरुचि लेने के कारण उपचार से इन्द्र को वणिक् ही कह दिया गया है। 'हमारे आगे चलने वाला बने' का अभिप्राय यह है कि राजा को चाहिये कि वह अपने विशेषज्ञ पुरुषों द्वारा सदा ही राष्ट्र के लोगों को वाणिज्योन्नति के उपाय बताकर उसका नेतृत्व करता रहे। उन्हें मार्ग सुझाता रहे।

एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि हे सम्राट् (अग्ने)! हम जिस मार्ग पर दूर चले जाते हैं। इस हिंसा (शरणि)[19] को हमारे लिये सह्य बना दे। हमारा प्रेपण अर्थात् देशान्तर में ले जाकर बेची जाने वाली वस्तुएं ओर उनका विक्रय हमारे लिये सुखकारी हो तथा प्रतिपण अर्थात् देशान्तर से लाकर अपने देश में बेची जाने वाली वस्तुएं मुझे लाभवान बनायें। मिलकर रहने वाले हम और तुम दोनों हे अग्ने! इस हव्य का सेवन करें, वाणिज्य में लगाया हुआ और उससे लाभ में प्राप्त हुआ धन हमारे लिये सुखकारी हो।[20]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वाणिज्य के लिये हम जिस मार्ग पर दूर जाते हैं' इस वाक्य से यह सूचना मिलती है कि धनाभिलाषी वणिकों को अपनी चीजें दूर दूर देशों में ले जाकर बेचनी चाहिये और वहां की वस्तुएं अपने देश में लाकर बेचनी चाहिये। मार्ग में होने वाली हिंसा को सह्य बना दे' इस वाक्य का भाव यह है कि राजा को चाहिये कि वह मार्गों को सब प्रकार की हिंसा से शून्य-सर्वथा निष्कंटक बना दे जिससे व्यापारी स्वच्छन्दता के साथ इधर-उधर जा सकें। हम दोनों मिलकर हव्य का सेवन करें। इसका अभिप्राय: यह है कि राजा और व्यापारियों को परस्पर अनुकूल रहना चाहिये।

राजा को भिन्न भिन्न प्रकार के शिल्पों की अभिवृद्धि भी करनी चाहिये। इससे सम्बद्ध अनेक उद्धरण वेदों में प्राप्त होते हैं। यथा राजा से प्रार्थना है कि हमारे द्वारा स्तुति किये जाने वाले हे सम्राट्! धनों की प्राप्ति के लिये आप राष्ट्र में यशस्वी शिल्पी लोगों का निर्माण कीजिए।[21] इसी प्रकार हे सम्राट्। आप शिल्पी लोगों के (कारवे) शरीरों को बनाने वाले और उन्हें प्रकृष्ट मननशील ज्ञान देने वाले होइए। हे कल्याणकारी राजन! आप सब प्रकार का धन देते हो।[22]

शिल्पियों के शरीरों को बनाने का भाव यह है कि राजा अपने राष्ट्र के शिल्पियों के शरीरों पर किसी प्रकार के आघात न आने दें, रोगों से भी उनकी रक्षा करें। इस वाक्य का दूसरा भाव यह है कि राजा को अपने राष्ट्र में शिल्पियों को तैयार करना चाहिये।

(३) आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी कार्य:

लोककल्याणकारी राज्य का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी होता है। इसमें रोजगार और समानता मुख्य है। वेदों में प्रत्यक्ष रूप से रोजगार का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु युद्धों में प्राप्त हुए धन को प्रजा में बांटने का उल्लेख मिलता है।[23] वेद में स्थान स्थान पर सम्राट् को प्रजाओं को ऐश्वर्य देने वाला कहा गया है।[24]

यथा- हे इन्द्र! तुम हमारी ओर वरण करने योग्य अदभुत धन भेजो। हे इन्द्र! तुम सैकड़ों प्रकार का बहुत सा धन दोनों हाथों में लेकर हमारे ऐश्वर्य के लिये हमें दों और हमारी बुद्धियों को तीक्ष्ण करो।[25] हे अग्नि! तुम हमारे लिये सब प्रकार के धनों को दो।[26] हे इन्द्र! मनुष्यों के योग्य, सुख की वर्षा करने वाले सब प्रकार के धन तुम हमें हमारे हर्ष के लिये दो।[27]

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि वेद में सम्राट् का यह कर्तव्य है कि वह प्रत्येक प्रजाजन को अन्न, धन, ऐश्वर्य प्रदान करे। इसके लिये राजा सब प्रजाजनों को श्रम करने के लिये प्रेरित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है। इस प्रकार के उपदेश भी अनेकशः हैं। यथा- इन्द्रादि देव जो कुछ न कुछ उत्पन्न करता रहता है उसी को चाहते हैं। सोया पड़ा रहने वाले आलसी को वे नहीं चाहते, वे देव स्वयं भी आलस्य रहित होकर सुख देने वाले कार्यों को करते रहते हैं।[28]

इसी प्रकार हे इन्द्र! कुछ भी उत्पन्न न करने वाले सब लोगों को मार दो। जो इन्द्र कुछ भी उत्पन्न न करने वाले व्यक्ति का वध करने वाला है।[29] इस प्रकार इन उद्धरणों से प्रजाजन को श्रम अर्थात् रोजगार करने का संदेश राजा देता है। एक स्थान पर राजा द्वारा अंधे तथा पंगु अनाथादिकों का पालन करने का उल्लेख प्राप्त होता है।[30]

समानता का उपदेश तो वेदों में अनेकशः मिलता है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में साथ चलने, साथ बोलने, एक समान मन से चिंतन-मंत्रणा करने की प्रेरणा दी गयी है।[31]

इस प्रकार वेदों में लोकल्याणकारी राज्य द्वारा किये जा रहे सभी प्रकार के कार्य राजा द्वारा किये जाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। राजा प्रजा के सर्वविध कल्याण के लिये उत्तरदायी होता था। राज्याभिषेक के समय उसे इसका स्मरण कराया जाता था- हे राजन! तेज की प्राप्ति हेतु ब्रह्मतेज की प्राप्ति हेतु अविद्या और रोग निवारण हेतु, पराक्रम के लिये, अन्नादि की वृद्धि के लिये, विद्युत् के समान बल के लिये, राज्यश्री के लिये ऐसे सभी सार्वजनिक कल्याण के लिये तेरा राज्याभिषेक कर रहा हूं। वेदों में उपलब्ध राजा के लोककल्याणकारी स्वरूप व कार्यों का निष्कर्ष इस प्रकार समझा जा सकता है।

1. वेदों में उपलब्ध राजनीतिक व्यवस्था आधुनिक लोकतंत्र की विशेषतओं से युक्त है।
2. वेदोक्त राजा में वर्तमान कार्यपालिका, व्यवस्थापिका व न्यायपालिका तीनों के कार्य सन्निहित हैं।

अतः लोकल्याणकारी राज्य की अवधारणा का प्रारंभ पाश्चात्य देशों से न मानकर इसका आरंभ भारतीय परम्परा को माना जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1. आविर्मर्यो आवित्तो अग्निर्गृहपतिरावित्त इन्द्रो। वृद्धश्रवा आवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतावित: पूषा विश्ववेदा:। आवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुव:वातित्तादितिरूरूशर्म्मा।। वा.सं. 10/9
2. अस्मे वो अस्तिवन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वंचासि संतुव:।
नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या इयं ते राज्यन्तासियमनो।
धुवोऽसि धरुण:। कृष्यै त्वा क्षमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा।। यजु.सं.-9/22
3. अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे, विशां न विश्वो, अमृत: स्वाधी:। ऋग्वेद- 1/70/2
4. आर्याय नि सव्यत: सादि दस्युरिन्द्र। ऋग्वेद-2/11/18
5. नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्। ऋग्वेद-2/11/10
6. सुन्वदयो रून्धया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिद्व्रतम् ऋग्वेद-1/132/4
7. उद्वृह रक्ष: सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यगं शृणीहि।
आ कीवत: सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य।। ऋग्वेद-3/30/17
8. प्र यो मन्युं रिरिक्षतो मिनात्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्याम्। ऋग्वेद-7/36/4
9. भवान् सर्वत्र भ्रमित्वा सद्यो न्यायं कृत्वा सर्वस्य रक्षां कुर्यात्। द.भा. ऋग्वेद-4/32/2
10. स सन्तु त्या अरातय: बोधन्तु शूर रातय:। ऋग्वेद-1/29/4
11. इन्द्रश्च यद्युयुद्याते अहिश्चोता परीभ्यो मधवा विजिग्ये। ऋग्वेद-1/32/13
12. ऋग्वेद-1/32/11-12, 1/36/15, 1/11/18
13. वा.सं.-9/22
14. रयिं वीरवतीमिषम्। ऋग्वेद-1/12/11
15. या पर्वतेष्वोषधी ष्वप्सु...असि तस्य राजा। ऋग्वेद-1/59/3
16. नम: स्रुत्याय च पथ्याय च नम: काट्याय च नीप्य च नम: कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च। यजु.सं.-16/37
17. वा.सं.-9/22
18. इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि सं न ऐतु पुरएता नो अस्तु।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु। मह्याम्।। अथर्ववेद-3/15/1
19. शू हिंसायाम् अर्तिसुधृधमी औणादिक: अनि:।
20. इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम्।
शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपण: फलिनं: मां कृणोतु।
इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च। अथर्ववेद-3/15/4
21. त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारूं कृणुहि स्तवान:। ऋग्वेद-1/31/8
22. तनूकृद् बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण विश्वमोपिषे। ऋग्वेद-1/31/19

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

23. समिन्द्रो गा अजयत् सं हिरण्या समश्विया मधवा यो ह पूर्वीः।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकै रायो विभक्ता संभरश्च वस्वः। ऋग्वेद-4/17/11

24. सं चोदय चित्रमवार्ग् राध इन्द्र वरेण्यम्। ऋग्वेद-1/9/5

25. सं गृभाय पुरू शतो भया हस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर। ऋग्वेद-1/81/7

26. अस्म विश्वानि द्रविणानि धेहि। ऋग्वेद-5/4/7

27. विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ऋग्वेद-6/19/6

28. इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः। ऋग्वेद-8/2/18

29. वीलोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधः। ऋग्वेद-1/101/4

30. संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवाभागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।
समानो मन्त्रः सीमिति समानो समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति। ऋग्वेद-10/191/2-3

31. अनु द्वा जहिता न्योन्ध श्रोणं च वृत्रहन्।
न तत्ते सुम्नमष्टवे। ऋग्वेद-4/30/19

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Varanasi.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रातिशाख्यप्रणयनप्रयोजनानि'

डॉ०- दानपति तिवारी
अध्यक्षः संस्कृत-विभाग
का.सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
फैजाबाद (उ०प्र०)

वैदिकध्वनिविज्ञानस्य क्षेत्रे शिक्षाग्रन्थानां प्रातिशाख्यग्रन्थानां च महत्त्वपूर्णं योगदानं विद्यते। वैदिकध्वनीनां वैज्ञानिकं विवेचनं यत्र विहितं तद्वैदिकध्वनिविज्ञानुच्यते। प्रातिशाख्येषु शिक्षासु च वेदप्रयुक्तवर्णानां संख्या, तेषामुच्चारणप्रकारः, विभाजनं स्थलविशेषे व्यञ्जनयोः व्यञ्जनानां च संयोगे तेषामुच्चारणप्रक्रिया च वैज्ञानिकदृष्ट्या विहिता। प्राचीनाचार्यैः वैदिकध्वनिविज्ञानकृते शिक्षासंज्ञा प्रयुक्ता। वेदानां प्रतिचरणमधिकृत्य प्रातिशाख्यानामपि प्रणयनं कृतम्। शिक्षाग्रन्थाः द्विधा सामान्याशिक्षा विशिष्टाशिक्षा चेति। सामान्यायां शिक्षायां सर्वान्वेदानधिकृत्य विषयाः प्रतिपादिताः यथा पाणिनिशिक्षा परञ्च विशिष्टायां किञ्चिद्वेदविशेषमधिकृत्य यथा ऋग्वेगमधि कृत्य शौनकशिक्षा, सामवेदमधिकृत्य नारदीयशिक्षा इत्यादयः। प्रातिशाख्येषु तु वेदानां चरणविशेषमधि कृत्य विधानानि विहितानि। यथा ऋग्वेदचरणस्य ऋग्वेदप्रातिशाख्यम्, कृष्णयजुश्चरणस्य तैत्तिरीयप्रातिशाख्यम्, शुक्लयजुश्चरणस्य वाजसनेयिप्रतिशाख्यमपरनामा शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्यम् अथर्वचरणस्याथर्ववेदीया चतुरध्यायिका अथर्ववेदप्रातिशाख्यमिति च प्रातिशाख्यद्वयम् तथा च सामवेदस्य ऋक्तन्त्रनामकं प्रातिशाख्यम्।

'शाखां शाखां प्रतिशाखं, प्रतिशाखं भवं प्रातिशाख्यम्' इति व्युत्पत्यानुसारं केचित् प्रातिशाख्येषु शाखाविशेषमधिकृत्यः विषयाः वर्तिताः इति मन्यन्ते परञ्चा न तावत्। यतोहि व्युत्पत्यामस्यां प्रातिशाखं प्रतिचरणस्य द्योतकां यथा वृक्षं वृक्षं विद्योतते विद्युत्। एवमेव प्रतिशाखं= चरणविशेषम्। एवं प्रातिशाख्येऽपि चरणविशेषमधिकृत्य विज्ञानमिति ज्ञायते।

मन्त्राणां बाह्यस्वरूपस्य सुरक्षार्थं प्रातिशाख्या प्रणयनं कृतं वर्तते। मन्त्राः पदानां पदाश्च वर्णानां सङ्घट्टनं विद्यते। एवं वर्णां पदानां मूलघटकाः सन्ति। मन्त्राणामभीष्टोच्चारणाय वर्णानां समुचितोच्चारणस्य ज्ञानमपेक्षितम्। अतएव मन्त्राणामभीष्टोच्चारणार्थं स्वचरणस्य मन्त्रेषु प्रयुक्तानां वर्णानां संख्या, तेषामुच्चारणप्रकारः कतिपयवर्णानां स्वरूपः संयोगस्थले व्यञ्जनानामुच्चारण-वैशिष्ट्यम् इत्यादिविषया निरूपिताः सन्ति। सन्धिविधिनां संहितानिर्माणपद्धतिविवेचनं प्रातिशाख्यानां वैशिष्ट्यम् इत्यादिविषया निरूपिताः सन्ति। सन्धिविधिनां संहितानिर्माणपद्धतिविवेचनं प्रातिशाख्यानां प्रमुखं प्रतिपाद्यम्। स्वचरणे समुपलब्धानां सन्धीनामपि निरूपणं तत्रविहितम्। एवं प्रातिशाख्येषु तत्तच्चरणोपलब्धानां वर्णानां वैज्ञानिकदृष्ट्या गभीरचिन्तंनेन सह विवेचनं तथा च सन्धीनां सम्यग्दृष्ट्यानिरूपणं वर्तते।

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदात्तादयः स्वराः वैदिकभाषायाः प्रमुखं वैशिष्ट्यम्। स्वरपरिवर्तनेन मन्त्राणाम् परिवर्तनं जायते। अतएव अभीष्टार्थप्राप्त्यर्थं मन्त्राणामभीष्टस्वरेणोच्चारणमत्यावश्यकम्। यद्यभीष्टस्वरेण मन्त्राणामुच्चारणं न भवति तत्राभीष्टार्थप्राप्तिः न भवति। तत्राभीष्टफलस्थानेऽनिष्टं प्राप्तं शक्यते। यथोक्तं पाणिनिशिक्षायाम्-

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रोयजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।। (पा.शि.)

मन्त्राणामभीष्टार्थनिर्धारणाय स्वरविषयाप्यत्र विहिताः। तत्रोदात्तादिस्वराणामुच्चचारण-प्रक्रिया स्वरितस्वरस्य स्वरूपं तस्य भेदाः कम्पस्वरश्चात्र विवेचितः। येन विना मन्त्राणामभीष्टार्थ-निर्धारणं कर्तुं न शक्यते। अतएव स्वराणामवबोधनार्थं प्रातिशाख्यानामध्ययनमनिवार्यम्। मन्त्रार्थ-निर्धारणे पदपाठस्यपिमहत्युपयोगिता पदपाठं विना मन्त्रार्थनिर्धारणमशक्यम् यतोहि मन्त्रे पदाः प्रयुक्ताः भवन्ति। अतएव मन्त्रार्थावबोधनाय तत्र प्रयुक्तपदार्थज्ञानमपेक्षितम्। प्रातिशाख्येषु स्वचरणप्रयुक्तपदानां ज्ञानाय पदपाठस्यापि नियमाविहिता येन पदार्थज्ञानं भवति। पदार्थज्ञानेनैव मन्त्रार्थनिर्धारणं जायते। संहितापदयोः सुरक्षार्थं क्रमपाठोऽपि महदुपयोगी भवति। यतोहि संहितायां मन्त्रस्यैवं रूपं तथा च पदपाठे पदानां रूपमेव दृश्यते, परञ्च क्रमपाठे संहितायाः पदानां च रूपं प्राप्यते। क्रमपाठस्य द्विपदक्रमे त्रिपदक्रमे च संहितायाः मूलरूपं पदानाञ्च मूलरूपं ज्ञायते। एवं क्रमपाठस्यापि महत्त्वं सिद्धति। क्रमपाठस्यापि विषयाः क्रमपाठपद्धतिश्च प्रातिशाख्येषु स्वचरणमधिकृत्य निर्दिष्टा।

भाष्यकारोवटानुसारं शिक्षाछन्दोव्याकरणेषु सर्वान्वेदानधिकृत्य सामान्यानि विधानानि विहितानि तानिविधानानि चरणेऽस्मिन्नेवंप्रकारेण सन्तीति विवेचनं प्रातिशाख्ये वर्जित्। यथोक्तम्-

शिक्षाछन्दोव्याकरणैः सामान्येनोक्तलक्षणम्।
तदेवमिह शाखायामिति शास्त्रप्रयोजनम्।। (ऋ.प्रा. 1.1 पर उ.भा.)

ननु शिक्षायान्तु सर्वान् वेदानधिकृत्य विषयाः वर्णिताः कथनमिमसमीचीनम् यतोहि शौनकाशिक्षायामृग्वेदमधिकृत्य, याज्ञवल्क्यशिक्षायां शुक्लयर्जुवदमधिकृत्य, व्यासशिक्षायां कृष्णयजुर्वेदमधिकृत्य माण्डूक्याशिक्षायामथर्ववेदमधिकृत्य, नारदीयाशिक्षायां सामवेदमधिकृत्य विषयाः विवेचिताः। अतएवोवटस्य कथनमसङ्गतं प्रतीतये। परञ्च नैतच्छङ्का कार्या यतोहि पूर्वमेवोक्तं यत् शिक्षाग्रन्थाः द्विविधां भवन्ति-सामान्या शिक्षा विशिष्टा शिक्षा च। उवटस्य कथनेन सामान्या शिक्षा गृहीतव्या, न तु विशिष्टा। यतोहि सामान्यायां शिक्षायां सर्वान् वेदानधिकृष्य विषयाः विवेचिताः सन्ति।

वेदाध्येतृणां कृते यज्ज्ञानमपेक्षितं तद्विधानं तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये सूत्रकारेण सूत्रितं-

गुरुत्वं लघुता साम्यं ह्रस्वदीर्घप्लुतानि च।
लोपागमविकासश्च प्रकृतिविक्रमः क्रमः।।
स्वरितोदात्तनीचत्वं श्वासो नादोऽगमेव च।
एतत्सर्वं तु विज्ञेयं छन्दोभाषामधीयता।। (तै.प्रा. 24/5)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्रैवाचार्याणां कृतेऽप्यपेक्षितं ज्ञानं विहितम्-

पदक्रमविशेषज्ञो वर्णक्रमविचक्षणः।
स्वमात्रविभागज्ञो गच्छेदाचार्यसंसदम्।। (तै.प्रा. 24/6)

एते सर्वे विषयाः प्रातिशाख्येषु प्रतिपादिताः सन्ति। सर्वेषामेतेषां विषयाणामवबोधनाय प्रातिशाख्यानामनुशीलनमपरिहार्यम्।

कात्यायनेन **'वर्णदोषविवेकार्थम्' (वा.प्रा. १.२६)** इति प्रातिशाख्यानांप्रयोजनं निर्दिष्टम्। वस्तुतस्तु मन्त्राणामभीष्टार्थनिर्धारणाय तत्प्रयुक्तपदानां वर्णानाञ्चाभीष्टोच्चारणमत्यावश्यकम्। प्रातिशाख्येषु वर्णानामभीष्टोच्चारणप्रक्रिया वर्जिता। अतएव वर्णानामुच्चारणदोषपरिहारार्थं प्रातिशाख्यानामध्ययनमत्यावश्यकम्। एवं कथितुं शक्यते यत् प्रातिशाख्यग्रन्थाः व्याकरणग्रन्थेषु शिक्षाशास्त्रेषु च विहितानां विधानानां तत्तच्चरणविशेषेषु यद्वैशिष्ट्यं तत्सर्वं प्रतिपादयन्ति।

वाजसनेयिप्रातिशाख्यभाष्यकारोवटानुसारं जपादिक्रियासु सम्यक्पाठस्य ज्ञातारमेवाधिकारं भवति, नान्यस्य। अतएव सम्यक्पाठस्य सिद्धये प्रातिशाख्यशास्त्रस्याध्ययनं अवश्यमेव कर्त्तव्यम्-

जपादौ नाधिकारोऽस्ति सम्यक्पाठमजानतः।
प्रातिशाख्यमतो श्रेयः सम्यक्पाठस्य सिद्धये।। (वा.प्रा. उ.भा.)

एवं स्पष्टमिदं यत् वेदानां चरणविशेषेषूपलब्धानां पदानां वर्णानामुदात्तादिस्वरणाञ्चाव-बोध्नार्थंतच्चरणस्य प्रातिशाख्यस्याध्ययनमपरिहार्यम्। प्रातिशाख्यज्ञानं विना वेदस्य वाह्यस्वरूपस्य सम्यक् ज्ञानं भवितुं नार्हति। बाह्यस्वरूपस्यावबोधनं विना मन्त्रार्थनिर्धारणमप्यशक्यम्। अतः वेदाध्यायकामामध्येतृणां च कृते प्रातिशाख्यमवश्यमेवध्येतव्यमिति शम्।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक वाङ्मय में वस्त्रविज्ञान

डॉ0 प्रज्ञा जोगेश जोशी
लेक्चरर, महर्षि वेद विज्ञान
अकादमी, अहमदाबाद, गुजरात

वस्त्र मानव संस्कृति एवं सभ्यता के परिचायक हैं। प्रारम्भिक काल से ही मनुष्य तन ढ़कने के लिए सतत प्रयत्नशील रहा है। इसके लिए उसने आरम्भ में घास, पेड़, पौधे, पत्र, छाल, पशुओं के चर्म आदि का सहारा लिया। कालान्तर में संस्कृति और सभ्यता के विकास के साथ-साथ ही मनुष्य की अभिरुचि एवं परिष्कृत प्रज्ञा ने उसे वस्त्रनिर्माणकला की ओर अग्रसर किया।

कला मानव व्यक्तित्व को विकसित करने का साधन है और यह विकास सर्वदा युग सापेक्ष होता है। वस्त्रविद्या भी ऐसी ही कला है, जो युग के साथ परिवर्तित तो होती रही है लेकिन अपने महत्व को कदापि कम नहीं होने दिया है।

वात्स्यायन के कामसूत्र में निरूपित चौंसठ कलाओं के अन्तर्गत 'सूचीवानकर्माणि' अर्थात् सीना, पिरोना, जाल बुनना, 'सूत्रक्रीड़ा' अर्थात् धागे से पशु-पक्षियों के चित्र (आकार) बनाना, 'दशवसनाङ्राग' अर्थात् दांत, वस्त्र और शरीर को रंग कर भव्य बनाना, 'नेपथ्यप्रयोगः' अर्थात् वस्त्राभरणसज्जा, 'वस्त्रगोपनानि' अर्थात् वस्त्रों के दोषों को छिपाने की कला आदि वस्त्र सम्बन्धित कलाओं के निर्देश प्राप्त होते हैं। शुक्राचार्य कृत 'नीतिसार' एवं बसवेन्द्र विरचित 'शिवतत्त्वरत्नाकर' में भी चौसठ कलाओं के अंतर्गत सूत और रस्सी का ज्ञान, कपड़ा बुनना, वस्त्र सम्मार्जन, वस्त्रराग, सूचीकर्म, चर्मक्रिया, अम्बरक्रिया सम्बन्धित उल्लेख उपलब्ध होते हैं।

वैदिक वाङ्मय में वस्त्र के लिए 'वस्त्र','वासम्', 'वसन्','अंशुक', 'अम्बर', 'पट','चीर','चीवर','चैल' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

वस्त्र :

(वस् + ष्ट्रन्, वैदिक तत्सम्, परिधान, कपड़ा, वेशभूषा) ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में 'वस्त्र' परिधान (पहिनने के कपड़ों) का द्योतक है। महाभारत तथा महाभाष्य[2] दोनों में 'वस्त्र' का उल्लेख 'परिधान' के अर्थ में हुआ है। वस्त्रों का धारण करना मुख्य रूप से शारीरिक सुरक्षा के लिए ही माना गया है।[3] एक मंत्र में कुलों द्वारा वस्त्र प्राप्त करने का वर्णन मिलता है।[4] विवाह के अवसर पर वधू के द्वारा धारण किये जाने वाले वस्त्रों को 'वाधूय वस्त्र' कहा गया है।[5]

वासस्:

(वस्(आच्छादने)+णिच्+असुन् संस्कृत तद्भव, वस्त्र, परिधान) 'वस्त्र'[16] या 'वासस्'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्यत: स्त्री एवं पुरुष दोनों के सिले हुए और बिना सिले हुए सभी प्रकार के वस्त्रों - सूती, रेशमी, ऊनी-के लिए प्रयुक्त हुआ है।

अंशुक:

(अंशव: सूत्राणि विषयायस्य अंशु+क्, संस्कृत तद्भव, ऊपर पहनने का वस्त्र) सूत्रों से निर्मित होने के कारण वस्त्र को 'अंशुक' कहा गया है।

'वसन्','वासस्','अंशुक' एवं 'अम्बर' - आदि शब्दों का प्रयोग पहनने के वस्त्रों के लिए हुआ है।[7]

पट:

(पट (वेष्टने करणे) घञर्थे क:, संस्कृत तद्भव, वस्त्र) पट का प्रयोग सामान्यतया 'वस्त्र के अर्थ में हुआ है।[8] जैसे क्षौमपट, कौशेय पट, कार्पासिक पट।

चीर:

(चि (चयने)+रक् दीर्घश्च, वैदिक तत्सम्, निम्न श्रेणी का कपड़ा, चिथड़ा, फटा पुराना कपड़ा) तैत्तिरीय आरण्यक[9] में 'चीर' का प्रयोग फटे-पुराने अथवा निम्न श्रेणी के वस्त्र के अर्थ में हुआ है। रामायण, महाभारत गौतम गृह्यसूत्र, संस्कृत अंग्रेजी कोश आदि में भी 'चीर' का प्रयोग अति साधारण कोटि के वस्त्र के अर्थ में हुआ है।[10] घास के बने हुए वस्त्र 'कुशचीर' कहलाते थे। ये वस्त्र अति साधारण स्तर के होते थे, जिसे वनवासी मुनिजन पहनते थे। इस तरह यह एक अति साधारण कोटि का और महीन वस्त्र होता था। संभवत: यह बिना सिला हुआ, कम चौड़ा खण्ड़ित और छोटा वस्त्र होता था। वन जाते समय राम राजसी वस्त्रों को त्याग कर मुनिजनोचित 'चीर' वस्त्र धारण करते हैं।[11]

चीवर:

'चीवर' शब्द संन्यासियों के वस्त्रों के लिए प्रयुक्त होता था।[12] जैन, बौद्ध भिक्षुओं में यह शब्द विशेष प्रचलित था।

चेल:

'चेल' सिले-सिलाये या बिना सिले पहने हुए वस्त्र के लिए प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है। इतनी हल्की वर्षा, जिससे खुले स्थान में चलनेवाले के वस्त्र गीले हो जायें, 'चेलक्नोप' कहलाती थी[13]

इसके अलावा 'अधिवास:' 'नीवि' 'द्रापि','शामुल्यादि' पद विशिष्ट वस्त्र के परिधान के द्योतक हैं। महीन वस्त्र के लिए 'सूक्ष्मवस्त्र' का प्रयोग मिलता है। बहुमूल्य या कीमती वस्त्रों के लिए 'महार्ह' या 'बरार्ह' शब्द का प्रयोग मिलता है।[14] नये कपड़े 'आहतवस्त्र' कहलाते थे।[15] जिन वस्त्रों की बिनाई भली प्रकार की जाती थी और जो उत्तम श्रेणी के वस्त्र होते थे वे 'सुसंवीत' कहलाते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर के अधोभाग में धारण किये गए वस्त्र को 'नीवि' कहा गया है।[16] इसे कटि भाग में धारण करने का वर्णन मिलता है।[17] इस वस्त्र को स्त्री एवं पुरुष दोनों द्वारा धारण करने का प्रावधान है। शरीर को पूर्ण रूप से आच्छादित करने वाले वस्त्र को 'उपवासस्' का नाम दिया गया है।[18] 'द्रापि' शब्द भी उपर्युक्त अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।[19] यह उत्तरीय वस्त्र के प्रतीक के रूप में स्वीकृत है। रङ्गहीन ऊनी एवं रेशमी वस्त्र को 'तार्प्य' कहा गया है। 'बर्हिण वासस्' भी मुनि वस्त्र था, जिसे ऋषिमुनिगण वनजीवन यापन करते हुए धारण करते थे। यह भी एक अधोवस्त्र था।

उत्तरीय और अन्तरीय :

काशिकाकार ने शरीर को वास्त्रयुगिक[20] कहा है अर्थात् वस्त्रयुग से शरीर की शोभा बढ़ती है। यह कथन इस बात का प्रमाण है कि सामान्यत: लोग शरीर पर दो वस्त्र धारण करते थे। ये वस्त्र अन्तरीय और उत्तरीय कहलाते थे। अन्तरीय शरीर में पहना जानेवाला वस्त्र था और उत्तरीय ओढ़ा जानेवाला। सामान्यतया उत्तरीय वस्त्र छोटा होता था और अन्तरीय बड़ा, किन्तु कभी-कभी दोनों का आकार बराबर भी रहता था।

यद्यपि वेद में 'उत्तरीय' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। इस शब्द का प्रथम प्रयोग हमें सूत्रग्रंथों के ऊपर पहने जाने वाले वस्त्र के अर्थ में प्राप्त होता है। महाकाव्यों में भी उत्तरीय का अर्थ है- 'ऊपर परिधेय वस्त्र'। रामायण काल में स्त्रियाँ शरीर के ऊपरी भाग में 'उत्तरीय' धारण करती थीं, जो दुपट्टे के समान होता था। हरण के समय सीता का उत्तरीय आकर्षक एवं सुवर्ण समान देदीप्यामान था। इससे पता चलता है कि यह उत्तरीय पीतवर्ण का था। रावण द्वारा हरण किए जाते समय सीता अपने इसी उत्तरीय में आभूषणों को बाँधकर वन में गिरा देती है।[21]

शतपथ ब्राह्मण में 'प्रावरण' उत्तरीय वस्त्र' (Upper garment) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[22] पंतजलि[23] ने 'प्रावरक' का प्रयोग 'उत्तरीय वस्त्र' किया है। पाणिनि ने 'प्रावार' तथा 'बृहत्या' को आच्छादन (शाल या चादर) कहा है।[24]

प्राचीन पुराणों के पर्यालोचन से भी ज्ञात होता है कि धार्य-वस्त्रों की संख्या दो ही रहती थी। विष्णुपुराण के गृहस्थ सम्बन्धी सदाचार के प्रसंग में कहा गया है कि गृहस्थ पुरुष सदा संयमपूर्वक रहकर बिना कहीं से कटे हुए दो वस्त्र धारण करे।[25] हरिवंश में एक स्थल पर उल्लेख है कि बलराम ने नूतन जलधर के समान कान्तिवाले दो नीले वस्त्र धारण कर रखे थे।[26] मत्स्यपुराण में सारस्वत नामक व्रत के अवसर पर ब्राह्मण को दो वस्त्र देने का निर्देश है।[27] परिधानार्थ प्रयोजनीय वस्त्रों में उत्तरासंग या उत्तरीय तथा अधोवसन प्रमुख थे। मत्स्यपुराण के एक स्थल पर वीरक को उत्तरासंग धारण किये हुए चित्रित किया गया है।[28] इसी पुराण के ही स्थलान्तर पर हिमालय की तलहटी में विद्यमान देवदास वनों की उपमा अधोवसन से तथा उन्नत शिखरों को ढ़कने वाले बादलों की उपमा उत्तरीय से दी गई है।[29]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त चर्चा से दो बातें प्रकाश में आती हैं, एक तो यह कि वस्त्रों में कुछ ऐसे थे जो पहने जाते थे और कुछ ऐसे थे जो ओढ़े जाते थे। पहने जाने वाले वस्त्र शरीर से चिपके रहते थे और उत्तरीय उनके ऊपर रहते थे जैसे कि नाम से स्पष्ट हैं, अन्तरीय वर्तमान धोती या साड़ी के स्थान पर थे और उत्तरीय चादर या दुपट्टे के स्थान पर। दूसरी बात यह है कि कभी-कभी उत्तरीय और अंन्तरीय दोनों बिना सिले धोती जैसे रहते थे परन्तु प्रायः दोनों भिन्न प्रकार के होते थे और उनका अन्तर स्पष्ट देखा जा सकता था।

इन दोनों प्रमुख वस्त्रों के अतिरिक्त कंचुक[30], चोलक[31], अन्तर्वास[32], उष्णीष[33], आदि वस्त्रों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

वस्त्र उद्योग :

वैदिक काल का सबसे महत्वपूर्ण उद्योग- धन्धा सूत कातना व कपड़ा बुनना था। ऋग्वेद में कई स्थानों पर चरखे द्वारा सूत कातने व कपड़ा बुनने के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[34] ऋग्वेद में कपड़ा बुनने वाले को 'वय' कहा गया है।[35] पूषा को उनका कपड़ा बुनने वाला कहा गया है। 'सिरि' (जुलाही) शब्द भी कदाचित् उसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'तन्तु','तन्त्र','ओतु','तसर','मयूरव' आदि शब्द जिनका प्रयोग ऋग्वेद में आता है, बुनने की कला से सम्बन्धित थे।36 ऋग्वेद में एक मन्त्र में काव्य करने की तुलना कपड़ा बुनने के साथ की गई है जिस प्रकार कवि स्थान-स्थान से शब्द लेकर काव्यरचना करते हैं उसी प्रकार भिन्न-भिन्न सूत्रों को लेकर जुलाहें कपड़ा बुनते हैं।[37] अन्य एक निर्देश में दर्शाया है कि 'वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति'।[38] अर्थात् 'माताएँ पुत्र के लिए वस्त्र बुनती हैं। तथा 'वासोवायोऽवीनामा वासांसि मर्मृजत्'39 अर्थात् 'तन्तुवाय भेड़ की ऊन के सुन्दर वस्त्र बुनता है।'

'तन्तु' शब्द 'ताना' के लिए प्रयुक्त हुआ है।[40] रेशे से निर्मित धागे ही वस्त्र के मुख्य आधार हैं। इन्हें ही दोनों ओर में ताना ही वस्त्र का प्रमुख आधार है और बाना उसका सहयोगी। ताना-बाना वस्त्र निर्माण की क्रिया का आवश्यक अंग है। अथर्ववेद[41] में दिन और रात्रि को ताने-बाने से उपमित किया है जो काल रूपी वस्त्र बुनती हुई दो बहिनें हैं। अन्यत्र ऋग्वेद के मन्त्र ताने के समान तथा यजुर्वेद के मन्त्र बाने के समान कहे गये हैं।[42] ब्रह्म के स्वरूप तथा उसका साथ सृष्ट पदार्थो का सम्बन्ध बताने के लिए भी ताने-बाने का आश्रय लिया गया है।[43]

कढ़ाई बुनाई :

वैदिक काल में स्त्रियाँ अर्थसम्पादन के लिए प्रयत्नशील थी। सूत कातना, कपड़े बुनना तथा ऊन पर करचोबी-गूथने आदि काम विशेषतः स्त्रियाँ करती होगी ऐसे दृष्टांत प्राप्त होते हैं। यथा 'वयत्री' शब्द का उल्लेख पंचविंश ब्राह्मण[44] में हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ कपड़े बुनने का काम करती थी, तथा कढ़ाई का काम भी करती थी।[45] शतपथ ब्राह्मण में भी दर्शाया गया है कि सूत कातने का काम स्त्रियाँ करती थी।[46] अन्यत्र एक निर्देश है कि उनमें से कपड़ा बनाने का काम स्त्रियों का विशेष कर्म माना जाता था।[47]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौटिल्य अर्थशास्त्र अनुसार जो स्त्रियाँ विकलांग हो या जिसका पति मर गया हो या विदेश चला गया हो ऐसी स्त्रियों को घर पर बैठ कर रुई पहुँचाने का तथा सूतर मंगवाने की खास सुविधा बुनाई निरीक्षक को करनी पड़ती थी।[48] संक्षेप में स्त्रियाँ अपने फजूल समय में कढ़ाई बुनाई का काम करके थोड़ी बहुत कमाई कर सकती थी।

वस्त्रों पर शिल्प एवं जरीकामः

वैदिक काल में प्रायः वस्त्रों पर शिल्प का काम होता था। सुनहरे शिल्प से वस्त्र में चमक आ जाती थी। विशेषतः राजाओं के वस्त्र के संकेत है। वस्त्रों को जरी आदि से सजाया भी जाता था। मरुतों के बारे में कहा है कि वे सुवर्ण से सज्जित वस्त्र धारण करते थे।[49] वरुण के बारे में भी कहा गया है कि वह 'हिरण्ययः द्रापि' धारण करता है।[50] द्रापि आदि विभिन्न प्रकार के वस्त्र जिन्हें कदाचित् सुवर्ण आदि के तारों से सजाया जाता था।

ब्रह्मवैवर्त पुराण[51]में गोपियों को 'कांचन' वस्त्रों को वहन करने वाली बताया है। कांचन वस्त्र से आशय जरी के कार्ययुक्त वस्त्रों से लिया जा सकता है।

सुनहरें धागों से कढ़े वस्त्र 'कनक पट्टाभम्' कहलाते थे। सीताहरण के समय उनका वस्त्र सुनहरे धागों से पिरोया हुआ एवं पीले वर्ण का था।[52] रामायण काल में तो कढ़े हुए या किनारीदार वस्त्र निर्माण कला का पूर्णरूप से विकास हो चुका था। रावण सुनहरें सूत के कपड़े को धारण करता था।[53] अम्बर कभी-कभी रत्नादि से जड़कर तैयार किया जाता था, जिसे 'रत्नाम्बर' कहते थे। अधिकांशतः धनी वर्ग एवं राजगण इस वस्त्र को धारण करते थे। क्योंकि यह अत्यन्त बहुमूल्य होता था।

कपड़ों पर किया जाने वाला शिल्प 'पेशस्'[54] कहलाता था। इस कार्य में निपुण स्त्रियों को 'पेशस्कारी'[55] कहा है। धोती के किनारों पर आकर्षक कढ़ाई भी की जाती थी।[56] इस प्रकार कढ़े हुए वस्त्रों का निर्माण स्त्रियों का संभवतः नियमित व्यवसाय हुआ करता होगा।

सिलाई एवं उसके सहायक उपकरणः

परिधान के लिए दो प्रकार के वस्त्रों का व्यवहार होता था। बिना सिले तथा सिले हुए। ऋग्वेद में कहा है कि-'त्रिवृत तन्तु तन्वानः परिव्यत' अर्थात् तीन गुना धागे बनाकर कपड़ा बुना जाना चाहिए। 'तंतु मा छेदि'[57] जैसे कथन तंतु की दृढ़ता को बनाये रखने का संकेत देते हैं। धागे को मजबूत बनाने तथा वस्त्र की बनावट को अधिक सुंदर, आकर्षक बनाने के लिए दो-तीन धागों को इकट्ठा किया जाता है।

ऋग्वेद में 'तुन्न' शब्द प्राप्त होता है, जहाँ इसका अर्थ है 'प्रहार किया हुआ' या 'कटा हुआ'। इसी से आगे चलकर 'तन्तुवायः' का अर्थ 'दरजी' हो गया। क्योंकि वह भी वस्त्र काटने का कार्य करता है। रामायण में 'तन्तुवायः' का अर्थ 'दरजी' है। मनुस्मृति[59] में भी 'तन्नवायः' का दरजी के अर्थ में प्रयोग प्राप्त होता है। रामायण युग में तो एक पेशे के रूप समाज मे वस्त्र सिलने का कार्य प्रारम्भ हो गया था। अयोध्या में 'तन्तुवायः' अधिक मात्रा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवास करते थे, जो भरत के साथ राम को अयोध्या लाने के लिए वन को जाते हैं।[60]

वस्त्र बुनने के साधनीभूत यन्त्र भी वेदों में उल्लिखित हैं। यजुर्वेद में 'वेमन्'[61] (=करधा), 'सीसं' 62 (=लोहे का बोझ जिससे कपड़ा ठीक प्रकार लपेटा जा सके) 'तसर63, नाल, जिसका उपयोग कपड़ा बुनने में होता है आदि का उल्लेख मिलता है।

वेदों में सूची का प्रयोग 'सुई' के अर्थ में प्राप्त होता है।[64] रामायण में भी सूची शब्द का प्रयोग वस्त्र सीने के उपकरण के लिए हुआ है।[65] पातञ्जल महाभाष्य में तीक्ष्ण सुई से सिने का उल्लेख किया है।[66] तीक्ष्ण सूची सूक्ष्मतर वस्त्रों की सिलाई के लिए काम में आती थी। उन्होंने अच्छी तरह सी कर तैयार किये गये वस्त्रों की ओर संकेत किया है।[67] नये वस्त्रों को 'सूची' (सुई) से सील कर तैयार किया जाता था।[68] पुराने वस्त्रों को फट जाने पर सुई से पुनः उत्स्यूत या रफू करने का भी उस वक्त प्रचार था।[69]

वस्त्रों के प्रकार :

वैदिक काल में शरीर को ढ़कने के लिए सूति, रेशमी, ऊनी कपड़ों के अतिरिक्त चर्म, वल्कल आदि वस्त्रों के प्रयोग की प्रथा थी। इन वस्त्रों को हम निम्न मुख्य श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं।

(1) सूतीवस्त्र :

कार्पासिक वस्त्र को 'सूतीवस्त्र' कहा जाता है। कार्पासिक वस्त्र कपास या रुई से बनता है।[70] वैदिक ऋषि कर्पास से वस्त्र तैयार करने की सारी प्रक्रिया से परिचित थे। उन्होंने ने कर्पास को 'पिचव्य' कहा है।[71] लंका में हनुमान की पूंछ में कपास के पुराने थीगड़े लपेटे जाते हैं।[72]

(2) रेशमीवस्त्र :

कृमिज, कौशेय एवं क्षौम शब्द से रेशमी वस्त्र का बोध होता है। अमरकोष में रेशम के पर्याप्त शब्दों में 'कृमिज' शब्द आया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में 'कृमिज' शब्द के प्रयोग से साफ-साफ रेशमी वस्त्रों के उपयोग का ज्ञान होता है।[73] रामायण में 'कौशेय' का अर्थ (बहुमूल्य) रेशमी वस्त्र है। 'कोश' से बनने के कारण इसे 'कौशेय' कहते थे। 'कोशः' वस्तुतः कृमि-कोश होते थे। ये कृमि हरी पत्ती खाकर जीते थे और कोश प्रजनन करते थे। महाभाष्यकार ने इस तथ्य का विचार किया है कि कौशेय को कोश का विकास माना जाय या कोश से संभूत। अन्ततोगत्वा उन्होंने कोश के ही विकास को 'कौशेय' माना है।

यह एक उत्तम प्रकार का वस्त्र था, जिसे अधिकांशतः रानियाँ धारण करती थीं। वनवास जाते समय सीता ब्राह्मणों को दान में अनेक वस्तुओं के साथ कौशेय वस्त्र भी देती हैं।[74] इससे व्यंजित होता है कि ब्राह्मण लोग भी प्रायः 'कौशेय' पहनते थे। सीता को अनेक बार 'कौशेयवासिनी' कहकर सम्बोधित किया गया है। रावण की अशोकवाटिका में चेटियों से घिरी हुई सीता मलिना और निरानन्दा होने पर भी 'कौशेय वस्त्रा' थी। कौशेय वस्त्रा को विभिन्न रंगों से रंगकर भी पहना जाता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्षुम' नामक तन्तु से निर्मित होने के कारण उसे 'क्षौम' भी कहा गया है। गोभिल गृह्यसूत्र में 'क्षौम' का अर्थ 'रेशमी' वस्त्र किया गया है। रामायण में भी 'क्षौम' का अर्थ 'रेशमी' वस्त्र है। 'क्षौम' के साथ बाल्मीकि ने 'महार्ह' विशेषण का प्रयोग किया है, जिससे सूचित होता है कि यह एक उत्तम श्रेणी का बहुमूल्य (महर्षि) वस्त्र था। दासी मन्थरा को 'क्षौमवासिनीं' कहा गया है। विवाह के पश्चात् सीता, उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति चारों वधुएँ 'क्षौमवास'धारण करती है। रानी कैकेयी 'पाण्डुरक्षौमवास' अर्थात् पीले वर्ण का रेशमी वस्त्र पहनती थी।[75]

क्षौम वस्त्र अधिक मुलायम, बारीक एवं बहुमूल्य होता था। यह क्षुमा या अलसी के पौधो के रेशों से तैयार किया जाता था।[76] पूजा-अर्चना के समय भी प्रायः इसी वस्त्र को धारण किया जाता था। राम के युवराज्याभिषेक के दिन कौशल्या 'क्षौमवासिनी' होकर देवालय में पूजन के लिए जाती है।[77] उस दिन राम भी पूजा हेतु 'क्षौम' धारण करते हैं। उत्सवों के अवसर पर भी क्षौम वस्त्र धारण किया जाता था।[78]

क्षौम वस्त्र संभवतः मखमली वस्त्र है। नल-कूबर को उक्त वस्त्र से युक्त बताया गया है।[79] श्रीराधा पर क्षौम वस्त्र के साथ-साथ कुछ चित्रित वस्त्र भी बताए गये हैं।[80] शुक्रयाग की यष्टि पर नन्दजी द्वारा क्षौमवस्त्र का प्रयोग किया जाता है, इससे प्रतीत होता है कि तत्कालिक समाज में इसे मांगलिक एवं पुनीत माना जाता था।

(3) ऊनी वस्त्र :

मृग के रोये से निर्मित वस्त्र को ऊनी वस्त्र कहा जाता है। अथर्ववेद[81] में कम्बल का प्रयोग 'ऊनी कम्बल' के अर्थ में हुआ है। रामायण में 'कम्बल' का प्रयोग वस्त्र के लिए हुआ है। महाभारत तथा पतंजलि ने भी 'कम्बल' का अर्थ 'कम्बल' किया है। कम्बल रामायण युग का एक प्रसिद्ध ऊनी वस्त्र था, जो आजकल के समान ओढ़ने के कार्य में आता था। उस युग में कम्बल पर्याप्त मात्रा में बनाये जाते थे, कम्बल बनाने वाले 'कम्बलकारकाः' कहलाते थे। अयोध्या में पर्याप्त मात्रा में 'कम्बलकारकाः' निवास करते थे।

कम्बल का व्यवहार प्राचीन काल में बहुत था। शाकट के समान कम्बल भी निश्चित आकार के तथा निश्चित वजन के बनते थे। सामान्यतया ये ही कम्बल बाजार में बिकते थे और इन्हें 'पण्यकम्बल' कहते थे।[82] 'पण्यकम्बल' विशिष्ट कम्बलों की संज्ञा थी। सामान्य तौर पर अन्य विक्रेतव्य कम्बलों को भी 'पण्यकम्बल' कहते थे। पण्यकम्बल 'उर्णापलशतम्' से बनता था, जिसका वजन लगभग पाँच सेर होता था। एक कम्बल भर ऊन को कम्बल्य' कहते थे।[83] अतः कम्बल्या उर्णा का अर्थ पांच सेर ऊन होता था। कम्बल बनाने के योग्य सामान्य ऊन 'कम्बलीय' कहलाती थी। 'काम्बल्य' संज्ञा विशिष्ट परिमाण की द्योतक थी। पण्यकम्बलों का प्रचार बहुत अधिक था। कम्बल प्रायः शुक्ल वर्ण के बनते थे। शिष्ट वर्ग में शुक्लवर्णीय कम्बलों का प्रचार अधिक था। भाष्यकार ने सर्वत्र 'शुक्ल कम्बल' का ही उल्लेख किया है।[84]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्यकार ने 'कुतप' वस्त्र की चर्चा भी की है। उन्होंने 'कुतप' वस्त्र पहनने वाले सौश्रुती की 'कुतप सौश्रुत' संज्ञा दर्शाई है। कुतप हल्का, गरम, ऊनी कम्बल या शाल होता था। यह पर्वतीय विशेषत: नेपाली ऊन का बना होता था। कुतप के समान 'रांकव कम्बल' भी प्रसिद्ध थे, जो रंकु-प्रदेश में बनते थे। ये कम्बल बड़े मजबूत बनाये जाते थे, जो वर्षो तक नहीं फटते थे। भाष्यकार ने कम्बल को 'अजरिता' कहा है[85], जिसका अर्थ है 'न फटनेवाला'।

वैदिक वाङ्मय में 'अविक' का प्रयोग 'ऊन' के लिए हुआ है।[86] ऊनी वस्त्र बनाने में भेड़ के ऊन का बहुतायत से प्रयोग किया जाता था, अतएव 'आविक' का अर्थ ही 'ऊनी वस्त्र' हो गया। रामायण में भी 'आविक' का यही अर्थ है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में वह्नि-शुद्ध अर्थात् ऊनी वस्त्र का बाहुल्येन प्रयोग होता था। धारण करने में तथा भेंट देने में इस वस्त्र का अधिकांशत: प्रयोग देखा जाता है। देव, देवेतर तथा मानवादि सभी वर्ग के प्राणी इस वस्त्र को धारण करते पाये जाते हैं। भाण्डीर वन में श्रीराधा वह्नि-शुद्ध वस्त्र पहने दिखाई गई हैं। राजा भीष्मक द्वारा श्रीकृष्ण को वह्नि-शुद्ध वस्त्र-युगल प्रदान किया जाता है। गणेशोत्सव में अग्नि द्वारा वह्नि-शुद्ध वस्त्र देने का वर्णन यहाँ आया हैं।[87]

(4) मृगचर्म:

जिस वस्त्र को गुरुकुल के छात्र धारण करते थे उसे 'अजिन' कहा जाता था।[88] अजिन तथा कुश के बनें वस्त्रों का प्रयोग यज्ञ के पवित्र अवसर पर किया जाता था[89] परन्तु यह वैदिक काल का साधारण परिधान न था। प्राचीन काल के परिधान की बहुमूल्य स्मृति के रूप में ही अजिन वस्त्र देवपूजा तथा अभिषेक सम्बन्धी दीक्षा के विशेष और पवित्र अवसरों पर धारण किये जाते थे, न कि साधारण अवसरों पर। वैदिक साहित्य में यह शब्द मृग तथा बकरे के चर्म का द्योतक है, किन्तु शतपथ ब्राह्मण में इसका चर्म परिधान के अर्थ में भी प्रयोग प्राप्त होता है।

परवर्ती साहित्य में 'अजिन' का अर्थ है पशुओं की खाल, जिसे मुनिगण वस्त्र के रूप में धारण करते थे। यह खाल बाघ सिंह, हाथी और विशेषकर काले मृग की होती थी। रामायण में 'कृष्णाजिन' (मृगचर्म) का उल्लेख हुआ है, जिसे राम-लक्ष्मण तापस् जीवन व्यतीत करते हुए वन में पहनते हैं। यह एक अधोवस्त्र था।[90] 'तूलाजिन' एक मुलायम मृगचर्म को कहते थे, जो रुई जैसा मुलायम मृगछाला की बनी होती थी।[91]

(5) वल्कल वस्त्र:

वैदिक साहित्य में 'वल्क' शब्द प्राप्त होता है, जिसका अर्थ है 'वृक्ष की छाल।'[92] याज्ञवल्क्य ने 'वल्कल' का अर्थ 'वृक्ष की छाल' या वल्कल पोषाक' किया है।[93] रामायण, महाभारत आदि महाकाव्यों में भी 'वल्कल' का प्रयोग उपर्युक्त अर्थ में हुआ है। यह वल्कल वृक्ष की छाल का बनता था, वन-निवासी तपस्वी मुनिगण वस्त्र के रूप में धारण करते थे। मुनिव्रत धारण करने वाले महर्षि वाल्मीकि वाल्कल वस्त्र धारण करते थे।[94] वल्कल का प्रयोग अधोवस्त्र के रूप में किया जाता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जुनवृक्ष की छाल से निर्मित वस्त्र का प्रयोग किया जाता था। इस का वर्ण श्वेत होता था। वानर जातियाँ विशेषकर इसे वस्त्र के रूप में प्रयोग करती थीं। हनुमान श्वेत वर्ण का अर्जुनवस्त्र धारण करते थे।[95] शण की छाल में से निर्मित 'शण्वल्क' भी धारण किये जाते थे। रामायण में शण (सन) के रेशों से भी कपड़े तैयार किये जाते थे, किन्तु रामायण में इसका अपेक्षाकृत कम उल्लेख प्राप्त होता है। सन से रस्सियाँ इस युग में बनाई जाती थी। लंका में हनुमान को शण की रस्सियों से बाँधा जाता है।[96]

विभिन्न रंगो के वस्त्र :

समाज में उस वक्त भी नाना प्रकार के एवं अनेक रंगो के वस्त्र पहनने का प्रचलन था। सामाजिक एवं धार्मिक उत्सवों के अवसर पर राजगण एवं प्रजागण अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न रंगो में रंगे हुए वस्त्र धारण करते थे। रंग-बिरंगे वस्त्रों वाले देवदत्त को पतंजलि ने 'विचित्राभरण' कहा है।[97] 'तेन रक्तं रागात्'[98] के प्रसंग में भाष्यकार ने नीली मंजिष्ठा, शुक्ल, कर्दम, कषाय, हरिद्रा, पीत आदि अनेक रंगों से वस्त्रों के रंगे जाने का उल्लेख किया है। फिर भी शुक्ल वर्ण का प्रचार उच्च संस्कृत लोगों मे अधिक था। वस्त्र, शाटी और कम्बल के साथ उन्होंने सर्वदा 'शुक्ल' विशेषण का प्रयोग किया है।[99] कभी तो 'शुक्लतर' विशेषण भी प्रयुक्त हुआ है। लाल वस्त्र भी प्रयोग में आते थे। भाष्यकार ने कहा है कि 'दो लाल वस्त्रों के बीच रखा हुआ शुक्लवस्त्र भी लाल दिखाई देता है।[100]

पुराणों[101] में ब्रह्मा, सावित्री एवं दुर्वासा ऋषि को श्वेतवस्त्रधारी बताया गया है। विरहावस्था में श्रीराधा द्वारा भी श्वेतवस्त्र धारण करने का उल्लेख प्राप्त है। ऋषिमुनियों और देवों द्वारा श्वेतवस्त्र धारण के वर्णन से उक्त वस्त्र के पावनत्व का बोध होता है। मनुस्मृति[102] में भी श्वेतवस्त्र का प्रयोग प्राप्त होता है।

पीले रंग से रंगे हुए वस्त्र को 'पीतवास' कहते थे। श्वेत एवं धौतवस्त्र तथा वस्त्रयुगल के प्रयोग के साथ-साथ पीले वस्त्र धारण का वर्णन भी पुराणों में हैं। श्रीकृष्ण को पीतवस्त्रधारी कहा गया है।[103] शंख-चक्र-गदा-पाणियुक्त विष्णु 'पीतवास' धारण कर के प्रकट होते थे।[104] पंचवटी में अपहरण के वक्त सीताने 'पीतवास' धारण किये हुए थे।[105]

लाल रंग से रंगे हुए वस्त्र को 'रक्तवासस्' या 'रक्ताम्बर' कहते थे। राक्षसों को लाल रंग विशेष प्रिय था अत एव उन्हें 'रक्तवाससा:' और 'रक्ताम्बरधरा:' कहा गया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में मूल-प्रकृति को रक्तवस्त्र धारण किये बताया है।[106] रक्तवस्त्र का उल्लेख वायुपुराण, विष्णुपुराण तथा वाल्मीकि रामायण में भी मिलता है।[107] रामायण में कृमिराग का अर्थ है रक्तवर्ण। कृमिराग में वस्त्रों को रंगने की प्रथा थी। तारा वालिवध के अवसर पर कृमिरागपरिस्तोम (लाल रंग के पलंग पेशों) का उल्लेख करती हैं।[108]

महाभारत में कषाय का अर्थ 'गेरुआ' रंग किया गया है।[109] संन्यासी, वनवासी, मुनिजन, अधिकांशत: 'कषायवस्त्र' धारण करते थे। पंचवटी में सीता के सम्मुख भिक्षु वेश में

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते समय रावण एक स्वच्छ 'कषाय' वस्त्र ओढ़ लेता है।[110] राज़महलों में रखवाली करने वाले द्वारपाल भी 'कषाय' वस्त्र धारण करते थे। राम के अंत:पुर की रखवाली करने वाले द्वारपाल गेरुए रंग के वस्त्र धारण करते थे।[111] वाल्मीकि आश्रम में निवास करती हुई सीता 'कषाय' वस्त्र धारण करती है।[112]

विधवा स्त्री को 'काला' वस्त्र पहनने का वर्णन प्राप्त होता है। यत्र-तत्र असित वस्त्र के अतिरिक्त 'रक्त' वस्त्र भी विधवा द्वारा धारणीय बताया गया है।[113]

महाभारत में दर्शाया गया है कि 'द्रोण एवं कृप सफेद रंग की धोती पहनते थे। कर्ण पीले और अश्वत्थामा व दुर्योधन नीले वस्त्रों का उपयोग करते थे। विराटपुरी में युद्ध करते हुए अर्जुन के हाथों परास्त होकर द्रोणाचार्य आदि महारथी जब ज्ञानशून्य अवस्था में अपने रथ में पड़े हुए जा रहे थे तो उनके पहने हुए कपड़े निकाल लाने के लिए अर्जुन ने उत्तर से कहा था इस प्रसंग में प्रत्येक वस्त्रों का रंग बताया गया है।[114] बलदेव नीले रंग के वस्त्र पहनते थे।[115] भगवती राधा पर भी एक स्थान पर नीला वस्त्र बताया गया है।[116]

इसी प्रकार प्राचीन काल में रंग-बिरंगे वस्त्रों का (नानावर्णाम्बरस्रजम्) उल्लेख प्राप्त होते हैं तथा इन विभिन्न रंगों में रंग कर लोग अपनी-अपनी अभिरुचि अनुसार वस्त्र धारण करते थे। परवर्ती साहित्य में अप्सराओं को विचित्र वेष में प्रेमीजनों को लुभानेवाले वस्त्रों में चित्रित किया गया है। अभिसारिका के रूप में रंभा मेघों के सदृश नीला वस्त्र धारण करती है।[117]

ऋतु अनुसार वस्त्र धारण:

भारद्वाज ऋषि कृत 'यंत्रसर्वस्व' नामक ग्रन्थ के 'बृहद्विमानशास्त्र' नामक प्रकरण के 'वस्त्राधिकरण'118 में कपर्दी मुनि कृत 'पटसंस्काररत्नाकर' नामक ग्रन्थ का सन्दर्भ देते हुए व्याख्याकार बोधानन्द ने विमानचालक (Pilot) एवं यात्रियों (Passangers) के ऋतुओं के अनुसार विभिन्न प्रकार के पहिनने तथा ओढ़ने के वस्त्रों का वर्णन किया है। इन वस्त्रों के आवश्यक संस्कार, उनको रंग, गुण और उनकी जाति के सन्दर्भ में पड़ने वाले भेदों का सूचन किया है।

अनन्त सूर्य किरण शक्तियों की विचित्रता के भेद से वसन्तादि छ: ऋतुएँ होती हैं।[119] इस अनन्त सूर्यों के शक्तिसमूह से विष और अमृत के विभाग से ऋतु शक्तियाँ भिन्न-भिन्न हो जाती हैं। छेदिनी=अंगछेदन करने वाली, रक्तपा-रक्त पीने वाली, मेधा-मद:, मांस, चिकनाई, सिरा, आहारवाली-क्रम से संख्या में ऋतुओं की विष शक्तियाँ है। जो कि आकाशमार्ग में विमानयात्रियों के त्वचा, मांस, मेद, मज्जा-चर्बी, हड्डी, रक्तसिरा आदि वेर बीजों- शरीर के तत्वों को नष्ट करती हैं अत: शरीर के तत्वों की रक्षा हेतु कपर्दी मुनि ने ऋतुशक्ति अनुसार वस्त्रों के भेद निरूपित किये है।[120] इसमें दर्शाया है कि विभिन्न प्रकार की औषधियों के बीजों एवं अलसी, तुलसी, आमला, शमी, रुचिका = सरसव- इन पांच तेलों से सिद्ध किये गए वस्त्रों को धारण करने से 'Pilot' की मेधा एवं धातु की वृद्धि होती है। जड़ता कम करती है, अंगों

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का रक्षण करती है तथा अवकाश में स्थित पच्चीस विष शक्तियों से चमड़ी,मांस, अस्थि, स्नायु, रक्त, सिरा आदि बीजभूत तत्त्वों की रक्षा करती हैं। यहाँ विभिन्न औषधियों एवं तेलों से वस्त्रों को संस्कारित करते वक्त उपयुक्त 'तन्तुमुखयन्त्र, मूषा (= कृत्रिम बोतल), कूर्मव्यासटिका (=कछवे के आकार वाले कुण्ड, भस्त्रा (=धमन?), गर्मतापयन्त्र आदि साधनों के नाम भी प्रयुक्त हुए है।[121]

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में भी ऋतु अनुसार वस्त्रधारण का विधान किया गया है। भावप्रकाश में निर्देश है कि शीतऋतु में कौशेय वस्त्र (पीताम्बर और तसर) तथा ऊनी वस्त्र एवं लाल वस्त्र धारण करने चाहिए। ये सब वात तथा कफ को दूर करने वाले हैं।

ग्रीष्म ऋतु अर्थात् उष्ण काल में कषाय वस्त्र पवित्र, सुशीतल और पित्त का नाशक कहा गया है अत: उसे धारण करना उचित है। उसमें भी लघु अर्थात् पतला कषाय वस्त्र ग्रीष्म काल में अधिक प्रशस्त होता है। वर्षा ऋतु में सफेद (शुक्ल) शुभ को देनेवाला तथा आतप का निवारण करने वाला है। यह न तो उष्ण है और न शीतल ही है, अत: ऐसा ही वस्त्र वर्षाकाल में धारण करना चाहिए।122 इतना ही नहीं नवीन सफेद वस्त्र यश को देने वाला, काम का उद्दीपन करने वाला आयुवर्धक, शोभा बढ़ाने वाला, आनन्ददायक, त्वचा के लिए हितकारी, वशीकरण तथा रुचि को उत्पन्न करने वाला होता है।[123] अत: सफेद वस्त्रों को औरों की अपेक्षा पवित्र समझा जाता है।[124] अच्छे श्वेत वस्त्र पहनना हमारी पुरानी पैतृक प्रवृत्ति भी है।[125]

वर्णानुसार वस्त्र परिधान:

विभिन्न वर्णो के ब्रह्मचारियों की वेषभूषा भिन्न-भिन्न प्रकार की होती थी। आपस्तम्ब का कथन है कि प्रथम तीन वर्ण के ब्रह्मचारियों का वस्त्र क्रमश: पटुआ, सन तथा मृगचर्म का होना चाहिए। इसी सूत्रकार ने तीन वर्णो के उत्तरीय के लिए भेड़ का चर्म या कम्बल और अधोवस्त्र के लिए क्रमश: लाल, हरा तथा हल्दी के रंग का उल्लेख किया है। अन्य स्थान पर इसी प्रकार के एक कथन से यही ज्ञात होता है कि ज्ञानवृद्धि के इच्छुक ब्रह्मचारी के लिए मृगचर्म, सैनिक-शक्ति के इच्छुक ब्रह्मचारी के लिए रुई का वस्त्र तथा ज्ञान एवं शक्ति दोनों के इच्छुक ब्रह्मचारी के लिए दोनों प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग उत्तरीय अधोवस्त्र के लिए किया जा सकता है।[126]

सूत्र साहित्य से विभिन्न वर्णो के लिए विभिन्न पदार्थो से निर्मित वस्त्रों के कौपीन का उल्लेख उपलब्ध होता है। गौतम के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के कौपीन का वस्त्र क्रमानुसार शण् (सन्), क्षौम (अलसी आदि का रेशा) तथा कुतप (कम्बल) से निर्मित होना चाहिए, जबकि अन्यत्र उन्होंने सभी वर्णो के लिए कार्पास वस्त्र निर्धारित किया है।[127] आपस्तम्ब तथा आश्वलायन गृह्यसूत्र में ब्राह्मण के कषाय (गेरुआ), क्षत्रिय के मञ्जिष्ठ (तूही) तथा वैश्य के हारिद्र (पीला) वस्त्रों का उल्लेख मिलता है।[128]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत काल में भी ब्राह्मण सफेद वस्त्र एवं सफेद यज्ञोपवीत पहनते थे। द्रोणाचार्य के वर्णन में तो यही पाया जाता है। अन्यत्र कहा गया है कि ब्राह्मण मृगचर्म भी धारण करते थे। भीम और अर्जुन कृष्ण के साथ जरासन्ध की नगरी गये थे तो उन लोगों ने सफेद कपड़ें पहने थे। उनकी वेषभूषा देखकर जरासन्ध ने उन्हें ब्राह्मण समझा था।[129] यह वर्णन भी इसका प्रमाण है कि ब्राह्मण सफेद वस्त्र पहनते थे। राजा (क्षत्रिय) प्रावार नामक बहुमूल्य वस्त्र पहनते थे।[130]

समय एवं प्रसंगानुरूप विभिन्न वस्त्रों का व्यवहार:

लोग हमेशा एक ही तरह के कपड़े नहीं पहनते थे। समयानुसार, प्रसंगानुसार अलग-अलग तरह के वस्त्र पहनते थे। गीले कपड़े पहन के नहाने का नियम था। शयन के समय, काम-काज के समय, पूजा-पाठ के समय अलग-अलग तरह के वस्त्र पहनने का विधान मिलता है।[131] सामान्यत: पूजा, तपस्या के अवसर पर श्वेतवस्त्र, उत्सवों के समय रक्तवर्ण तथा शोक के अवसरों पर कृष्णवर्ण का व्यवहार होता था। भोजन, होम तथा देवर्चनादि अवसरों पर वस्त्र-युग्म धारण करने का उल्लेख है।[132] इस उल्लेख से पता चलता है कि दैनन्दिन कार्य के वस्त्र एवं रात्रिकालीन वस्त्र भिन्न होते थे। वैवाहिक अवसरों पर भी वस्त्रों का जोड़ा देने की प्रथा दिखाई देती है जिसके अनुसार राजा भीष्मक श्रीकृष्ण को वस्त्रयुग्म प्रदान करते हैं।[134] गृहस्थ के लिए अलग-अलग समय में अलग-अलग वस्त्रों को पहनने का विधान है।[135]

यज्ञ करते समय पुरोहितों को पहनने के लिए विशेष प्रकार के वस्त्र का प्रावधान था। शतपथ ब्राह्मण से पता चलता है कि कुछ यज्ञों में घास से निर्मित अधोवस्त्रों का प्रयोग किया जाता था।[136] यहाँ हमें यज्ञ समय पहने जाने वाले वस्त्रों के बारे में पता चलता है, जिनमें सादा और ऊन का वस्त्र, मुख्यवस्त्र के नीचे पहने जाने वाला वस्त्र जिसे 'तार्प्य' कहते हैं। अधिवास की तरह एक ब्राह्म वस्त्र और सिर पर बांधे जाने वाली पगड़ी (उष्णीय) का उल्लेख है। शतपथ में जिस यज्ञीय वस्त्र का वर्णन है उसमें तार्प्य, पाण्डव, अधिवास और उष्णीय विशेष उल्लेखनीय है।[137] 'तार्प्य' एक प्रकार का रेशमी वस्त्र होता था, जिसका अधिवास के रूप में उपयोग किया जाता था। 'पाण्डव' एक ऊनीवस्त्र होता था। 'अधिवास' ऊपर पहने जाने वाले चोगे का नाम था और उष्णीय (पगड़ी, अंगोछा) को सिर पर बाँधा जाता था। यहाँ राजा राज्यभिषेक के अवसर पर विशेष कपड़े पहनता था। लेकिन दैनिक व्यवहार में 'रेशमी' वस्त्र धारण करता था। सिर पर पगड़ी पहनता था।[138]

स्त्रियाँ याज्ञिक कर्मकाण्डों के अवसर पर 'कौशवस्त्र' धारण किया करती थी। कौश का तात्पर्य रेशमी (कौशेय) से है और कुश द्वारा निर्मित था। कभी-कभी यज्ञानुष्ठान के अवसर पर मृगचर्म भी धारण किया जाता था।[139] भोजन बनाने के समय भिन्न प्रकार के वस्त्र धारण किये जाते थे जिस 'सूदवेश' कहा जाता था। राजा सौदास के राजमहल में एक राक्षस धोखें से रसोई बनाने वाले का वस्त्र धारण कर लेता है।[140] युद्ध के लिए जाते हुए वीर रक्तवस्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् लाल रंग के कपड़े पहनते थे। लाल रंग में एक तरह की उत्तेजना होती है इसी कारण शायद ऐसा रिवाज था।[141]

वात्स्यायन कामसूत्र में कहा है कि अपनी अवस्था के अनुरूप अपनी नौकरी-पेशा के अनुरूप, अपनी धनसंपत्ति के अनुरूप अपनी योग्यता के अनुरुप तथा अपने कुल-देश व जाति के अनुरूप वस्त्र धारण करने चाहिए। इसी प्रकार अवस्था के अनुरूप ही वाणी का भी प्रयोग करना चाहिए।[142] इसी तरह अलग-अलग देशों में अलग-अलग तरह के वस्त्र व्यवहृत होते थे। यथा राजसूय यज्ञ में पधारे हुए सिंहल के लोगों के मणि खचित वस्त्र थे। पर्वतीय किरात पशुओं के चमड़ से अपनी लज्जा ढ़कते थे।[143]

परिधान के लिये वर्ज्य वस्त्र :

ब्रह्मवैवर्त पुराण में मैले वस्त्र धारण किये हुए भिक्षुक का तथा रुखे और मलिन वस्त्र धारण किये ब्राह्मण का निर्देश आता है।[144] यद्यपि शास्त्र ग्रंथों में मैले वस्त्र धारण करने पर निषेध दर्शाया गया है। क्योंकि वह खुजली तथा कृमि को उत्पन्न करने वाला और अत्यन्त ग्लानि तथा अशोभा और दरिद्रता को भी उत्पन्न करने वाला होता है।[145]

लाल, रंग-बिरंगे, काले, चमकीले एवं फटे वस्त्रों को धारण नहीं करना चाहिए।[146] दूसरों के द्वारा पहने हुए जूते, माला, वस्त्र, यज्ञोपवीत, धोती, आभूषण, कंघा आदि का प्रयोग नही करना चाहिए।[147] दूसरे का पहना हुआ तथा बिना पल्ले का वस्त्र पहनना वर्जित था।[148] अत्यंत विकृत, बेढंगा तथा विचित्र वस्त्र नहीं धारण करना चाहिए।[149]

चरकसंहिता में भी कहा है कि सदा स्वच्छ वस्त्र धारण करना चाहिए। भद्र पुरुषों को कशाय़ वस्त्र धारण करना चाहिए।[150] अभद्र, अनुचित तथा बेढंगा, अमंगलसूचक वेष नही धारण करना चाहिए। अत्यंत उत्कट तथा नीलवर्ण का वस्त्र नहीं पहनना चाहिए।[151] चाणक्यसूत्र में कहा है उद्दंडतासूचक वेष नहीं धारण करना चाहिए। संपत्तिवान होते हुए फटा-पुराना, गन्दा तथा बिना किनारी का कपड़ा नहीं पहनना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से पता चलता है कि शास्त्रग्रंथों में मलिन, फटे-पुराने बेढ़ंगे, विकृत, चित्रविचित्र, अमंगलसूचक अनुचित वस्त्रों को परिधान के लिए निषिद्ध माना है इससे विपरीत प्रक्षालित शुद्ध व स्वच्छ वस्त्र धारण कने पर बल दिया है।[153] सुन्दर कल्याणसूचक वस्त्रों को धारण करने की हिदायत दी है।[154] सुन्दर वस्त्र प्रसन्नता बढ़ाने वाला, राक्षस बाधा को दूर करने वाला, धन देने वाला, प्रयोजन सिद्ध करने वाला, ओज उत्पन्न करने वाला, यश प्रदान करने वाला, सौभाग्य दिलानेवाला, दरिद्रता को नष्ट करने वाला, सभाओं में सम्मान दिलाने वाला तथा आरोग्य प्रदान करने वाला होता है, अतः स्वच्छ, सुन्दर एवं कल्याणप्रद वस्त्र ही धारण करना उचित हैं।[155]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक्षत्रानुसार नूतन वस्त्र धारण से फलप्राप्ति :

बृहत्संहिता में 'वस्त्रच्छेदनलक्षणम्'[156] अध्याय में अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों में नूतन वस्त्र धारण करने से कौन-सा फल प्राप्त होता है इसकी चर्चा की गई है। यहाँ नक्षत्रों के नाम तथा उसमें नूतन वस्त्र धारण करने से प्राप्त होने वाले फल को दर्शाया गया है।

अश्विनी	–	अनेक सुन्दर वस्त्रों की प्राप्ति होती है।
भरणी	–	वस्त्रों की चोरी हो जाती हैं।
कृतिका	–	वस्त्र अग्नि से जल जाते है।
रोहिणी	–	अर्थ सिद्धि एवं प्रचुर द्रव्य प्राप्त होता है।
मृगशीर्ष	–	वस्त्रों को चूहे से काटने का भय रहता है।
आर्द्रा	–	मृत्यु का भय उत्पन्न होता है।
पुनर्वसु	–	मंगलदायी शुभप्रसंगो का आगमन होता है।
पुष्यनक्षत्र	–	द्रव्य की वृद्धि होती है।
आश्लेषा	–	वस्त्रों का नाश होता है।
मघा	–	मृत्यु का भय उपस्थित होता है।
पूर्वाफाल्गुनी	–	राजभय आ सकता है।
उत्तराफाल्गुनी	–	धन प्राप्ति होती है।
हस्त	–	कार्यों की सिद्धि होती है।
चित्रा	–	शुभप्रसंगो का आगमन होता है।
स्वाति	–	मिष्टान्न की प्राप्ति होती है।
विशाखा	–	लोकप्रियता प्राप्त होती है।
अनुराधा	–	सहृदयी मित्रों का मिलन होता है।
ज्येष्ठा	–	वस्त्रों का विनाश होता है।
मूल	–	जल-भय उत्पन्न होता है।
पूर्वाषाढा	–	व्याधि का उपद्रव होता है।
उत्तराषाढा	–	मिष्टान्न की प्राप्ति होती है।
श्रवण	–	नेत्ररोग की उत्पत्ति होती है।
घनिष्ठा	–	धान्य की उपलब्धि होती है।
शतभिषा	–	विष से महाभय उत्पन्न होता है।
पूर्वाभाद्रपदा	–	जल से भय उत्पन्न होता है।
उत्तराभाद्रपदा	–	पुत्र की प्राप्ति होती है।
रेवती	–	मूल्यवान रत्नों की उपलब्धि होती है।

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि विवाह के प्रसंग में, राजा के सम्मान के प्रसंग में अथवा ब्राह्मणों की संमति से या आदेश से अशुभ गुणरहित नक्षत्रों में भी नवीन वस्त्र धारण करना शुभ माना गया है।[157] कुछ श्लोकों में वस्त्रों के भिन्न-भिन्न भागों में पड़े छेद, दाग या चीरों का भी आचार्य वराहमिहिर ने फलकथन किया है।

संपूर्ण नव समान भागों में विभाजित करके, उसके चार कोनों के चार भागों में देव निवास करते हैं। वस्त्र के आरम्भ के और अन्त के दोनों कोनों के दो मध्य भागों में मनुष्य बसते हैं, तथा शेष तीन विभागों में दानव बसते हैं यह विभाजन शय्या, आसन और पादुकाओं के लिए जानना[158] जैसे-

देव	दानव	देव
मनुष्य	दानव	मनुष्य
देव	दानव	देव

फटे, जले या लिप्त पुराने एवं नूतन वस्त्र के शुभाशुभ फल:

जो वस्त्र श्याही, गोमय (=गोबर), कीचड़ आदि से लिप्त हो या फटा हुआ हो, जला हुआ या उसका चीथड़ा नीकल गया हो तो उसका शुभ फल या अशुभ फल जानना आवश्यक है। यदि वस्त्र नवीन हो तो उसका शुभाशुभ फल सम्पूर्ण प्राप्त होता है, यदि थोड़ा इस्तेमाल किया हुआ हो तो उसका फल मध्यम प्रकार का होता है। यदि पुराना वस्त्र हो तो फल नहीं वत् होता है। यद्यपि वह वस्त्र उत्तरीय (उपरना, दुपट्टा) हो तो उसका शुभाशुभ फल अधिक होता है।

यदि वस्त्र राक्षस (दानव) भाग से लिप्त हो या फटा हुआ हो तो उस वस्त्र को धारण करने वाले के लिए व्याधि या मृत्यु भय उत्पन्न करेगा। मनुष्य के मध्यभाग में लिप्त हो या फटा हुआ हो तो धारण करने वाले को पुत्र लाभ या उसके तेज की वृद्धि करेगा। यदि देवों के भाग से वस्त्र लिप्त हो या फटा हुआ हो तो भोगवृद्धि होगी। जो वस्त्र प्रान्त (छेड़े) के सर्व भागों में लिप्त हो या फटा हुआ हो तो महर्षियों के मतानुसार अनिष्ट एवं अमंगल फल प्रदान करता है।

यदि राक्षसों के भाग में भी छत्र, ध्वजा स्वास्तिक, वर्धमान, बिल्ववृक्ष, कुम्भ, कमल, तोरण आदि मंगल चिह्नों के आकार के छेद पड़े तो मनुष्य को अतिशीघ्र लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।[159] यदि देवताओं के भाग में भी वस्त्र के ऊपर कंक, मेढ़क, घुवड़, कपोत, काक, मांसभक्षी, पक्षी, शृगाल, गर्दभ, उष्ट्र, सर्पादि जैसे आकार के छेद पड़े तो उस वस्त्र धारण करने वाले मनुष्य के लिए भय उपस्थित करता है।[160]

संक्षेप में इतना कहूँगी कि वेद का प्रतिपाद्य वस्त्र-विज्ञान के तत्वों का विश्लेषण नहीं है। उनमें प्रसंगवश ही अनेक तत्त्वों की चर्चा हुई है अत: वैदिक वाङ्मय में प्राप्त तथ्यों का उपर्युक्त विवेचन तत्कालीन ऋषियों के वस्त्रविज्ञान विषयक बोध का निदर्शन मात्र है। महर्षियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के चिन्तन एवं सृजनशक्ति का दृश्य रूप हैं, जिसे इस लेख द्वारा अभिव्यक्त करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

दूसरी बात यह है कि 'बृहद्विमानशास्त्र' का 'वस्त्राधिकरण' प्रकरण, उसमें निर्दिष्ट कपर्दी मुनि कृत 'पटसंस्काररत्नाकर' नामक ग्रन्थ, वराहमिहिर कृत 'बृहत्संहिता' का 'वस्त्रच्छेदनलक्षणम्' प्रकरण तथा रामदैवज्ञविरचित 'मुहूर्तचिन्तामणि' ग्रन्थ में प्राप्त निर्देश इन सब पर गम्भीर अनुसन्धान आवश्यक है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि वैदिक काल में वस्त्रविज्ञान पूर्ण रूप से विकासित था।

पादटीप

1. कामसूत्र पृ॰103 से 114
2. महाभाष्य 1/2/1
3. अथर्व. 6/5/26
4. वही 2/1/3
5. वही 14/2/41
6. वा.रा. 1/13/10, ऋ, 1/34/1, 1/115/4, 1/162/16, 2/3/24, 10/26/6
7. रामायण कालीन संस्कृति-नानूराम व्यास-पृ॰ 53
8. महाभाष्य 6/2/127 काशिका
9. तै॰ आ॰ 7/4/12
10. Sanskrit English Dictoionary-Monier williams P-399
11. वा.रा.2/104/121
12. महाभाष्य 3/1/20
13. वही 3/4/33
14. वा.रा.5/47/4
15. वही 2/85/59
16. Vedic Index-Vol-I, P-516
17. अथर्व. 8/6/20, ब्र.वै.पु.प्र.खं. 11/14-20
18. अथर्व. 14/2/46,65
19. वहीं. 5/7/10,13/3/1
20. महाभाष्य, 5/1/99
21. वा.रा. 3/52/2
22. Sanskrit English Dictionary-Monier Williams-P.709
23. महाभाष्य, 1/1/27, 2/1/69
24. अष्टा, 5/4/6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

25. विष्णु, पु. 3/12/2
26. हरि.पु. (वि.प.) 46/27
27. मत्स्य, पु. 65/21
28. वही, 153/54
29. वही, 116/4
30. ब्रह्मा. पु. 4/32/3, मत्स्य.पु. 261/42, हरि.पु. (वि.प.) 42/17
31. मत्स्य. पु. 260/4
32. हरि.पु. (वि.प.)72/26
33. वही, 1/14, 42/17
34. Indo Aryan Polity-A.C.Basu-P.116
35. ऋ. 2/3/6
36. ऋ. 6/9/2-3, 10/71/9, 10/86/5
37. वही. 10/106/1
38. वही. 5/47/6
39. वही. 10/26/6
40. अथर्व. 10/7/43
41. वही. 10/7/82
42. वही. 15/3/6
43. ऋ. 10/2/37-38
44. पंच. ब्रा. 2/1/4/2
45. यजु. 30/1
46. श.ब्रा. 5/3/5/18
47. वही 14/4/7/36
48. कौ. अर्थ. 2/23
49. ऋ. 5/55/6
50. वही. 1/25/13
51. ब्र.वै.पु.कृ.खं. 28/45
52. वा.रा. 5/13/44
53. वही. 5/47/4
54. यजु. 30/9
55. तै.ब्रा. 3/4/5/1
56. अथर्व. 14/2/51

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

57. ऋ 2/28/5
58. वा. रा. 17/67/19
59. मनु. स्मृ. 4/114
60. वा.रा. 2/77/15
61. यजु. 19/23
62. वही. 19/80
63. ऋ. 10/130/2
64. वही 2/32/4, अथर्व, 11/10/3
65. वा.रा. 3/47/41
66. महाभाष्य. 1/2/2
67. वही 1/1/56
68. ऐ.ब्रा. 12/7
69. कौ.ब्रा. 1/5, महाभाष्य. 1/4/60
70. ब्र.वै.पु.प्र.खं. 23/65
71. महाभाष्य. 5/1/2
72. वा.रा. 5/51/6
73. ब्र.वै.पु.प्र.खं. 23/65
74. वा.रा. 2/29/13
75. वही 2/7/5
76. हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन-वासुदेवशरण अग्रवाल-पृ॰ 76
77. वा.रा. 2/4/20
78. वही 2/6/7
79. ब्र.वै.पु.प्र.खं. 14/32
80. वही 49/16
81. अथर्व. 16/2/66-67
82. महाभाष्य 6/2/42
83. वही. 5/1/3
84. वही. 1/1/64
85. वही. 3/1/105
86. बृ.उप. 2/3/6
87. ब्र.वै.पु.प्र.खं. 15/8,22 108/96, 13/9
88. अथर्व. 5/21/7

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

89. वही 11/5/6
90. वा.रा. 3/9/1-12
91. वही 2/27/11
92. तै.सं. 2/5/3/5, 3/7/4/2, तै.ब्रा. 1/4/7/6
93. Sanskrit English Dictionary-Monier Williams- P.928
94. वा.रा. 3/9/1-12
95. वही 5/30/1
96. वही 5/46/44
97. महाभाष्य 1/4/2
98. वही. 4/2/1
99. वही 1/2/40
100. वही. 1/4/64, 2/2/24
101. ब्र.वै.पु.ब्र.खं. 3/30-31, 4/2 वायु.पु. 12/13, मत्स्य.पु. 59/13
102. मनु. स्मृ. 4/35
103. ब्र.वै.पु.ब्र.खं. 2/18-19, वायु.पु. 23/2, विष्णु पु. 5/17/21, भा.पु. 10/3/9
104. वा.रा. 1/14/15
105. वही 3/44/12, 3/46/3
106. ब्र.वै.पु.ब्र.खं. 3/72
107. वायु.पु.22/23, विष्णु पु. 3/18/15, वा.रा. 3/49/7-8
108. वा.रा. 4/23/13
109. महा.आश्व.12/80
110. वा.रा. 3/44/3
111. वही 2/14/3
112. वही 7/97/14
113. ब्र.वै.पु.ग.खं. 34/30, 35/26
114. महा. विराट. 66/13
115. महा.वन. 18/18
116. ब्र.वै.पु.कृ.खं. 3/72
117. वा.रा. 7/26/12
118. बृहद्विमानशास्त्र-वस्त्राधिकरण-पृ॰24-27
119. तै.आ. 1/7/5, ऋ. 1/5/1
120. बृ.वि.शा. 6-9 पृ॰ 26

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

121. वही. 10-15, 21-24
122. भावप्रकाश, (पूर्वार्द्ध) 5/88-91 पृ॰117
123. वही. 5/101, पृ॰ 119
124. महा.अनु. 127/14
125. ऋ. 3/39/2
126. आप.ध.सू. 1/12/36-41, 1/1/2/39-41, 1/1/3/9-10, 1/1/3/7-8, वसि.ध.सू. 11/64-67, गौ.ध.सू. 1/17/18, पार.गृ.सू.2/5/17-20, 2/10/12
127. आप.गृ.सू. 1/19/10 आश्व.गृ.सू. 1/19/10
128. गौ.ध.सू. 1/15,आश्व गृ.सू. 1/19/11 बौ.गृ.सू. 2/5/13
129. महा. आदि. 134/19, 190/41
महा.सभा. 21/44,14
130. महा.सभा. 49/9, महा.वन. 3/51
131. महा.अनु. 104/85-87
132. विष्णु पु. 3/1/17, 3/12/30
133. ब्र.वै.पु.प्र.खं. 18/2
134. वहीं.108/96
135. महा.अनु. 10/7/79
136. श.ब्रा. 1/1/1/10, 1/1/4/20, 1/2/3/7, 1/7/1/10, 2/2/3/13, 27/7/3/13, 5/5/4/24, 2/5/2/16
137. वही. 1/1/1/10, 1/1/2/4-7, 1/1/2/14,17, 1/1/48
138. वही 12/7/124, 12/9/1/5, 5/3/2/23
139. विष्णु पु. 6/6/13-20
140. वा.रा.7/65/24
141. महा.द्रोण 33/15
142. कामसूत्र अधि. 1 अ.4
143. महा.सभा. 52/36, 52/9
144. ब्र.वै.पु.प्र.खं. 50/24
145. भावप्रकाश (पूर्वार्द्ध) 5/92
146. गौ.ध.सू. 1/9/3/4
147. वही. 1/9/5/6, मनु.स्मृ. 4/66, विष्णु.स्मृ. 71/46
148. महाभारत कालीन समाज-सुखमय भट्टाचार्य पृ.209-211
149. महा.अनु.अ.104

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

150. चरक.सूत्र.अ.8
151. मार्क. पु. 34/86
152. मनु.स्मृ.4/34, स्कन्द पु. माहे. 21/164-166
153. ब्र.वै.पु.कृ.खं.21/5
154. ऋ. 1/97/2
155. चरक सूत्र. 5/95, भावप्रकाश(पूर्वार्द्ध) 5/101, पृ.119
156. बृ.सं.अ. 71
157. मुहूर्तचिन्तामणि-2/12, बृ.सं. 71/8, 14
158. मुहूर्तचिन्तामणि-2/11,पृ.58-59
159. बृ.सं. 71/13
160. वही. 71/12

सन्दर्भग्रन्थसूचि

(1) अथर्ववेदसंहिता : संपा, सातवलेकर श्रीपाद दामोदर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, जि. वलसाड, चतुर्थ संस्करण, शके-1865

(2) आपस्तम्ब गृह्यसूत्र : हिन्दी व्याख्या : डॉ॰ उमेश चन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1971

(3) आपस्तम्भ धर्मसूत्र : श्रीमद्धरदत्तमिश्रविरचितया उज्ज्वलाव्याख्यया वृत्त्या संवलितम्, हिन्दी व्याख्या-पाण्डेय उमेशचन्द्र, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, तृतीय संस्करण-1983

(4) आश्वलायन गृह्यसूत्र : नरेन्द्रनाथ शर्मा : प्रथम संस्करण, 1976

(5) ऋग्वेदसंहिता : संपा, सातवलेकर श्रीपाद दामोदर, स्वाध्याय मंडल, पारडी, जि. वलसाड, चतुर्थ संस्करण

(6) ऐतरेय ब्राह्मण : संपा. आगाशे के. एस. पूना, 1896

(7) कामसूत्र : श्रीवात्स्यायनमुनिप्रणीतं, श्रीयशोधर विरचिता जयमङ्गला व्याख्यासहितं 'जया' हिन्दी व्याख्योपेतश्च, हिन्दी टीका : डॉ. रामानन्द शर्मा, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी,प्रथमावृत्ति 1997

(8) कौटिलीय अर्थशास्त्र : अनु. शास्त्री उदयवीर, महेरचंद लक्ष्मणदास, अध्यक्ष, संस्कृत पुस्तकालय, लाहौर,पुनर्मुद्रित, 1925

(9) कौषीतकिब्राह्मण : संपा. बी. लिण्डनर, 1887

(10) गौतम धर्मसूत्र : मस्करी भाष्य सहित, डॉ. वेदमित्र, मिनिस्ट्री ऑफ एज्यूकेशन, प्रथम संस्करण, 1969

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(11) चरकसंहिता (प्रथमो भागः) : श्रीमदग्निवेशनप्रणीता पाणिदत्तविरचिता, आयुर्वेददीपिका व्याख्यासंवलिता, 'विद्योतिनी' हिन्दी व्याख्या विभूषिता, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी चतुर्थ आवृत्ति, 1994

(12) तैत्तिरीय आरण्यकम् : भट्टभास्करभाष्योपेतम्, संपा, श्री शास्त्री ए. महादेव तथा रंगाचार्य के., मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पुनर्मुद्रण, 1985

(13) तैत्तिरीय ब्राह्मण : संपा, मित्र राजेन्द्रलाल, कलकत्ता, 1955-70

(14) तैत्तिरीय संहिता : संपा. सातवलेकर श्रीपाद दामोदर जि. वलसाड, चतुर्थ संस्करण, 1983

(15) पञ्चविंशब्राह्मण : संपा. वेदान्त वागीश, कलकत्ता, 1969-74

(16) पाणिनीय अष्टाध्यायी : संपा. जिज्ञासु ब्रह्मदत्त, श्रीरामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस, बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा) एकादश संस्करण, 1982

(17) पारस्कर गृह्यसूत्र : हरिहरभाष्यसहित, लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुंबई, 1938

(18) बृहत्संहिता : वराहमिहिर कृत हिन्दी अनुवादसहित, दुर्गाप्रसाद, लखनऊ, 1884

(19) बृहदारण्यकोपनिषद् : निर्णय सागर संस्करण, मुंबई, 1930

(20) बृहद्विमानशास्त्र : महर्षि भरद्वाज प्रणीत, यति बोधानन्दकृतश्लोकबद्धवृत्तिसंहिता, संपा. भाषानुवाद-स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक, प्रका. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1959

(21) बौधायन गृह्यसूत्र : संपा. शास्त्री आर.शाम, मैसूर, 1920

(22) ब्रह्मपुराण : अनु. संपा. झा तारणीश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1976

(23) ब्रह्मवैवर्तपुराण : आनन्दाश्रम प्रेस, पूना, 1935

(24) भागवतमहापुराण : गीताप्रेस, गोरखपुर, पंचम संस्करण, सं. 2003

(25) भावप्रकाश (पूर्वार्द्ध) : श्रीमद्भिषग्भूषणभावमिश्रप्रणीतः, 'विद्योतिनी' नामिकयाभाषाटीकयासंवलितः, व्याख्याकारः श्रीब्रह्मशंकरशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, पंचम आवृत्ति, 1969

(26) मत्स्यपुराण : गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, मनसुखराय मोर, कलकत्ता, 1962

(27) मनुस्मृति : श्रीकुल्लुकभट्टविरचितया मन्वर्थमुक्तावल्या व्याख्या समुपेता, संपा. आचार्य शास्त्री जगदीशलाल, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1983

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(28) महाभारत : गीताप्रेस, गोरखपुर, द्वितीय संस्करण, सं. 2020
(29) महाभारत कालीन समाज : मू०ले० सुखमय भट्टाचार्य, अनु० पुष्पा जैन, लोकभारती प्रकाशन,, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1966
(30) महाभाष्य : एफ० कीलहार्न द्वारा सम्पादित, मुम्बई
(31) मार्कण्डेय महापुराण : संपा० शर्मा राजेन्द्रनाथ, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली
(32) मुहूर्तचिन्तामणि : श्रीमद्रादैवज्ञविरचितः, पीयूषधाराख्यव्याख्यासनाथीकृत, व्याख्यागोविन्दज्योतिर्विद्विरचितास्ति, संपा. पांडुरंग जावजी, चतुर्थ संस्करण, 1934
(33) यजुर्वेदसंहिता : संपा. सातवलेकर श्रीपाद दामोदर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, जि. वलसाड, चतुर्थ संस्करण
(34) वसिष्ठ धर्मसूत्र : संपा ए.ए.फ्यूरर, बम्बई, 1916
(35) वायुपुराण : अनु. त्रिपाठी रामप्रताप शास्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीय संस्करण, 1987
(36) वाल्मीकि रामायण : गीताप्रेस, गोरखपुर द्वितीय संस्करण, सं. 2025
(37) विष्णुपुराण : श्रीधरस्वामिकृतात्मप्रकाशाख्यव्याख्ययाभूषितम्, संपा. उत्प्रेति थानेशचन्द्र, परिमल पब्लिकेशन्स दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1986-87
(38) विष्णुस्मृति : केशव वैजयन्ती सहित, संपा. पं.वी. कृष्णमाचार्य, अड्यार लायब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर मद्रास प्रथम संस्करण, 1964
(39) शतपथ ब्राह्मण : शास्त्री चिन्नस्वामि, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, द्वितीयवृत्ति, 1984
(40) स्कन्दपुराण : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, मुंबई सन्-1959
(41) हरिवंशपुराण : शर्मा राजेन्द्रनाथ, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1985
(42) हर्षचरित एक सांस्कृतिक : वासुदेवशरण अग्रवाल, वाराणसी, 1958 अध्ययन

English

(43) A Sanskrit- English Dictionary : Sir Monier Williams, Motilal Banarasidass, Delhi, First Edition reprinted, 1986
(44) Indo Aryan Polity : A.C. Basu
(45) Vedic Index of Names And Subjects-vol-I : A.A.Mecdonell, A.B.Keith, Motilal Banarasidass, Delhi, First Edition reprinted, 1982

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौन्दर्य की अवधारणा

डॉ० विजय इन्दु
गुडगावां

समस्त सृष्टि का स्रष्टा एक है। वह परमशीलवान्, परम शक्तिवान् तथा परम सौन्दर्यवान् है। उसके इन अलौकिक, अतुल्य एवं स्तुत्य गुणों का सन्निवेश उसके द्वारा सृजित सृष्टि में प्रसंगानुकूल हुआ करता है। सृष्टि में सौन्दर्य की सत्ता सर्वत्र विद्यमान है, यह केवल मानवीय सौन्दर्य तक ही सीमित नहीं है। वस्तुतः मानव मन जिस रूप, जिस वस्तु तथा जिस भाव से आनन्दानुभव करे वही सौन्दर्य है। संसार सौन्दर्य का अनुपम आगार है। इस सुन्दर संसार में मनुष्य क्षण-क्षण सौन्दर्य की मनोहारी छवि को निहारता और अनुभव करता है।

सौन्दर्य का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है- **''सुन्दरस्य भावः सौन्दर्यम्''** अर्थात् सुन्दरता का भाव ही सौन्दर्य है। सुन्दं राति इति सुन्दरम् तस्यभावः सौन्दर्यम् ''कुछ विद्वानों ने व्याख्या की है। परन्तु उचित अर्थ है- सु द्रियते अर्थात् भली प्रकार आदृत ही सुन्दर है। वस्तुतः "सुन्दर+ ष्यञ् सुन्दरता'' या सुन्दर होने का भाव"। सुन्दर की व्याख्या करते हुए कहा है कि ''सुष्ठु उनत्ति आर्द्रीकरोतिचित्तामिति'' अर्थात् जो चित्त का आर्द्र बना देता है, वही सुन्दर है। अमरकोष[1] सुन्दर शब्द का अर्थ रूचिर, चारु, सुषयम्, साधु, शोभनम्, कान्तम्, मनोरमम्, रुच्यम्, मनोज्ञम्, मंजु, मंजुलम् इति। इसी प्रकार शब्द रत्नावली[2] में सुन्दर के पर्याय के रूप में बन्धुरम्, पेशलम्, वामम्, रामम्, अभिरामम्, नंदितम्, सुमनम् आदि शब्द प्रदत हैं।

सुन्दर शब्द के इतनी संख्या में पर्याय और व्याख्या करने के अलग-अलग ढ़ंगों से यह बात स्वतः व्यक्त हो जाती है कि प्राचीनकाल से ही भारतीय जीवन में सौन्दर्य के प्रति कितनी संवेदनशीलता थी।

अंग्रेजी में सौन्दर्य के लिए ''ब्यूटी शब्द का प्रयोग किया जाता है। अंग्रेजी भाषा के शब्दकोष[3] के अनुसार इसका अर्थ'' इन्द्रियों को तीव्र आनन्द देने वाला गुण अथवा गुणों का समूह ही है। ब्यूटी की उत्पत्ति करते हुए कहा है ब्यूटी शब्द के दो भाग हैं- ब्यू अथवा बो का अर्थ है- 'शृंगार अथवा रसिकता' प्रिय व्यक्ति और 'टी' भाव वाचक अथवा शृंगारी पुरुष का गुण।

सौन्दर्यशास्त्र हिन्दी में 'ऐस्थेटिक्स' का पर्याय बनकर प्रचलित हुआ। परम्परा में पाश्चात्य चिन्तनधारा मे 'ऐस्थेटिक्स' का प्रयोग और व्यवहार दर्शन शास्त्र की एक शाखा के रूप में होता रहा है। किन्तु जर्मन दार्शनिक एलेक्जेण्डर बाउमगार्टेन (1714-62) ने सर्वप्रथम इसका प्रयोग आधुनिक अर्थ में किया था। बाउमगार्टेन का 'ऐस्थेटिक्स' यूनानी भाषा के ऐस्थेसिस से विकसित हुआ, जिसका अर्थ है- इन्द्रिय संवेदना।[4] इस व्युत्पत्ति से ऐस्थेटिक्स का वह अर्थ व्युत्पन्न नहीं होता जो आज मान्य है। समस्त ललित कलाओं के दर्शन के रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एस्थेटिक्स' को प्रतिष्ठित करने का श्रेय हेगले (1770-1831) को दिया जाता है। टामस युनरो 'एस्थेटिक्स' को उन्नीसवीं शताब्दी का हेगेलीय अविष्कार मानते हैं।[5]

'ऐस्थेटिक्स' के हिन्दी पर्याय के रूप में सौन्दर्यशास्त्र के अतिरिक्त नंदनशास्त्र, कलाविज्ञान, कलाशास्त्र, सौन्दर्य बोधशास्त्र, सौन्दर्यदर्शन, सौन्दर्यविज्ञान आदि शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग प्राप्त होता है।[6]

अब इस शब्द के अर्थ का सुनिर्णीत व्यपदेश-निर्धारण हो गया है। इसका अर्थ है- ललितकलाओं के तत्वों का सैद्धान्तिक निरूपण और उसके आधार पर कलाकृतियों का मूल्यांकन।

इस प्रकार यह आशय निकला कि 'एस्थेटिक्स' का शाब्दिक अर्थ है ऐन्द्रिय प्रत्यक्षों का ज्ञान के माध्यम की दृष्टि से किया गया अध्ययन। किन्तु बाद में 'एस्थेटिक्स' उस शास्त्र को कहा जाने लगा, जो ऐन्द्रिय बोध से प्राप्त सौन्दर्य-भावन के मनोमय आनन्द का विश्लेषण करता है।[7] विद्वानों को विश्लेषित करते हुए उसके दो स्वरूपों की सर्जना की है- प्रथम 'विषय' अथवा 'वस्तुनिष्ठ' सौन्दर्य तथा सौन्दर्य का दूसरा रूप 'विषयि' अथवा ''आत्मनिष्ठ'' सौन्दर्य। सौन्दर्य विचारक, प्रथम कोटि के सौन्दर्य की सत्ता वस्तु में स्वीकार करते हैं, द्वितीय मत के पोषक विद्वान् सौन्दर्य का आधार मनुष्य के मन में करते हैं। वस्तुत: सौन्दर्य को एक साथ वस्तुनिष्ठ एवं आत्मनिष्ठ दोनों मानना ही संगत है। सौन्दर्य की वस्तुनिष्ठता का आस्वाद सर्वजन सुलंभ होता है। किन्तु आत्मनिष्ठ के लिए संवेदनशीलता की अपेक्षा है। विषयनिष्ठ सौन्दर्य चाक्षुषप्रत्यक्ष सापेक्ष होता है, किन्तु विषयिनिष्ठ सौन्दर्य में अन्तर्मन का आकर्षण प्रधान होता है।[8]

इस प्रकार सौन्दर्य विवेचन के प्रधानत: दो मुख्य आधार माने जाते हैं- विभाव और आश्रय या श्रेय और ज्ञाता।[9] अत: कला या काव्य का सम्बन्ध वस्तु जगत् के साथ ही सृष्टा की आत्मा से भी होता है। इसी तथ्य की विवेचना के संदर्भ में विवेचकों में मतभेद हो जाता है। कोई पक्ष, विभाव या वस्तु को आधार मान लेता है, इसलिए सौन्दर्य का आधान भी वस्तु से करता है, वह मानता है, जिस वस्तु के माध्यम से सौन्दर्य की व्युत्पत्ति हुई है, वही वस्तु सौन्दर्य का मूल कारण हुई, अत: सौन्दर्य वस्तुनिष्ठ या वस्तुगत हुआ, लेकिन कोई पक्ष उसके विपरीत प्रमाता या सृष्टा को सौन्दर्य का मूल कारण मानकर उसके अन्तर से ही सौन्दर्य का संबंध स्थापित कर देता है। ऐसी स्थिति में सौन्दर्य आश्रयनिष्ठ हुआ।[10] कुछ पक्ष सौन्दर्य के सन्दर्भ में एकांगी है। लेकिन अधिकांशत: मध्यमार्गी हैं। पाश्चात्य देशों के समान ही पूर्वी देशों में भी सौन्दर्य शास्त्रीय चिन्तन परम्परा मिलती है। पाश्चात्य कला चिन्तन का प्रमुख केन्द्र 'सौन्दर्य' है। जापान में 'यूगेन' (कलाकृति के माध्य से व्यंजित पदार्थगत आंतरिक गहन सौन्दर्य) को कला चिन्तन का आधारभूत तत्व माना गया है। चीन में ध्वनि बोधक सिद्धांत के द्वारा कला चिन्तन की अवधारणा की गई है।[11]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में कला चिन्तन तथा सौन्दर्यशास्त्र का विशिष्ट अन्वेषण 'रस-सिद्धान्त' द्वारा किया गया है। भारतीय कला दर्शन के अनुसार चेतन, अचेतन तथा अतिचेतन मन में सृजन का प्रारम्भ होता है, इसलिए कला की रूप-सृष्टि में व्यष्टि ही नहीं समष्टि भी अपनी छवि दर्शाती है। यही कला की सार्वभौमिकता है, यह कला सर्वमय, सार्वकालिक एवं अमर हो जाती है। कला में जड़ कुछ भी नहीं होता, इसमें चैतन्य की अभिव्यक्ति होती है। भारतीय मनीषियों के अनुसार आत्मा से बढ़कर और आत्मा के अतिरिक्त विश्व में कुछ भी प्रिय भी नहीं है। जो प्रिय है, वह सुन्दर है, आनन्द है, रस है। भारतीय कला-दर्शन तथा सौन्दर्य दृष्टि का मूल तत्व ही सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् है।[12] वेदों में रस और आनन्द है, रूप तथा रंग है, संगीत तथा ऋक् है, सूक्ति एवं गाथा है, अन्त में सत्-चित्-आनन्द है। वेदों की कालदृष्टि में रूप कला का सार है। कला अपने कौशल से अचेतन में चेतनता का चमत्कार जगाती है। तथा चैतन्य का यह चमत्कार ही ''अर्थ'' है।[13] उपनिषदों में सौन्दर्य को विशुद्ध आध्यात्मिक पक्ष से देखा, जहाँ भौतिक पक्ष उपेक्षित रहा। उपनिषद् दर्शन में उस परम सता को सुन्दर, मनभावक, आनन्दस्वरूप कहा गया है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि सौन्दर्य का लक्षण आनन्द की प्राप्ति ही है।[14] उत्तरकाल में 'श्रीमद्भागवत' में सौन्दर्य के उसी अतिरेक को अनुभव कर उसका स्वरूप वर्णित किया-

''तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवं।
त्वेवशोकार्णवशोषणं नृणां, यत्तुतमश्लोकयशोनु गीयते॥

''परमात्मा को सर्वस्व मान कर चलने वाला यह देश उसी देश में सह शक्तिमत्ता, सौन्दर्य, आकर्षण एवं आनन्द आदि को ढूँढता है। स्पष्ट है कि भारतीय बुद्धि बाहरी रूप को भेदकर आन्तरिक सौन्दर्य की खोज में रत है।''[15]

भारतीय आचार्यों ने कहा है कि ''अखण्ड बुद्धि समास्वाद्यं काव्यम्।'' यह अखण्डता रूप में प्रतिरूपित होती है। रूप का सृजन ही कलात्मक सृजन है, अनुभूति कला की अनुभूति है।[16] कलाकार रूप का स्थूल माध्यमों से लय के चमत्कार द्वारा सृजन करता है, जिसका श्रेष्ठ उदाहरण नटराज, कोणार्क की मूर्तियों तथा अजन्ता एवं एलोरा की कला में मिलते हैं। भारतीय सौन्दर्य- दृष्टि व्यापक एवं उदार होने के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अन्तर्प्रविष्ट है, वैदिक यज्ञ में साम-गान और वेदिकाओं के निर्माण से लेकर प्रत्येक लोक-अनुष्ठान तक सुन्दर तथा लोक शुभत्व की भावना ओत-प्रोत है। भारतीय विचारकों का एक वर्ग सौन्दर्यशास्त्र को काव्यशास्त्र, अलंकारशास्त्र, साहित्यशास्त्र का पर्याय मानता है।[17]

भारतीय कवियों की दृष्टि में सौन्दर्यः-

समय के साथ-साथ सौन्दर्य वर्णन की उस शृंखला के दो रूप विकसित होने लगे-एक तो साहित्य में सौन्दर्य का चित्रण हो जाना, दूसरे सौन्दर्य के वर्णन के लिए ही साहित्य सृजन करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाल्मीकिः-

कवि परम्परा के प्राचनीतम एवं आदि स्तम्भ वाल्मीकि में सौंदर्य चेतना परिष्कृत एवं स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुई। उनके काव्य में सौन्दर्य को आन्तरिक एवं बाह्य स्वरूप में परस्पर सामन्जस्य नें सौन्दर्य को वास्तविक पूर्णता प्रदान की। उनकी सौन्दर्यदर्शिनी प्रतिभा पर डा. रामलखन शुक्ल ने लिखा-वाल्मीकि के काव्य में भावों का कल्पित सौन्दर्य नहीं है। वरन् सहज स्वाभाविक सौन्दर्य है जो नागरी के समान अपने हाव-भाव से पाठक को रिझाता नहीं प्रत्युत वन देवी के समान अपनी सहजात सुरभि के मादक प्रभाव से पाठक के मन, मस्तिष्क को अभिभूत कर देता है और पाठक अवश सा उस अपार सौन्दर्य के अवगाहन में आत्मसत्ता खो बैठता है।''[18] वाल्मीकि ने अपनी इसी सौन्दर्य-दृष्टि का परिचय राम के वर्णन में प्रयुक्त विभिन्न उपमानों के प्रयोग से दिया। उन्होंने राम को कभी स्निग्धवर्ण, कभी द्युतिमान्, कभी सुलक्षण कहा हैं।[19]

भर्तृहरिः- सौन्दर्य के अद्भुत पारखी 'भर्तृहरि' ने नारी को सौन्दर्य का सर्वश्रेष्ठ उपमान मानते हुए प्रमुख रूप से जिन तथ्यों को आधार बनाया, कोमलत्व, स्निग्धत्व, मृदुत्व इत्यादि यही गुण पाश्चात्य सौन्दर्य की कसौटियों के भी आधार है।[20]

कालिदासः- कालिदास ने सौन्दर्य की पराश्रय-निरपेक्षता, नित-नूतनता, पूर्णता, आकर्षणता, आनन्दात्मकता तथा आध्यात्मिकता का वर्णन किया है।

बाण- बाण ने सौन्दर्य के मार्मिक पक्ष को लिया है। बाण की रंग योजना अद्वितीय है। समान रुचि, समान अधिकार से उन्होंने प्रत्येक चित्र में रंग भरा और सौन्दर्य के गूढ़तम रहस्यों को पर्त दर पर्त उद्घाटित करते चले गए। उन्होंने यह भी रहस्य उद्घाटित किया कि सौन्दर्य निरूपण अथवा कवित्व की सफलता के लिए किसी माध्यम अथवा विद्या का महत्व उतना नहीं है, जितना कि वर्णित तथ्य की हृदयस्पर्शी संवेदनशीलता सौन्दर्य गहरी परख और अन्ततः रसानुभूति या आनन्दानुभूति का है।[21] बाण की दृष्टि में सौन्दर्यानुभूति पत्नी के सौन्दर्य एवं पति के सहृदयत्व पर निर्भर है। इस प्रकार यह विषय एवं विषयी दोनों पर आश्रित होता है।[22]

भारविः- भारवि के अनुसार सौन्दर्य अपने आप में परिपूर्ण होता है, उसे किसी बाह्य उपकरण की अपेक्षा नहीं- **''न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्।**[23] गुण-सौन्दर्य वस्तुओं में नहीं प्रेमियों के हृदय में विराजमान होता है।- ''वसन्ति हि प्रेम्णि न वस्तुषु'' डा. सत्यपाल नारंग-भारवि यह मानते हैं कि सौन्दर्य एक स्थान पर नहीं होता, फैला हुआ होता है और उसके तत्वों का संकलन करके उसे एक स्थान पर देखा जा सकता है।[24]

माघः- माघ की सौन्दर्य दृष्टि नित्य नवीनता पर चली जाती है-

क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेवरूपं रमणीयतायाः।25

अन्तर्निहित सौन्दर्य छाया-प्रकाश के खेल-खेलता है, जो कि सौन्दर्य के प्राणतत्व की निरन्तर गतिशीलता का संकेत देता रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री हर्ष:- मनसंलग्नता की पुष्टि श्री हर्ष ने 'नैषधचरित' में की। परम सुन्दरी का सौन्दर्य भी बालकों को आकृष्ट नहीं करता।[26] अत: सौन्दर्य के विषयिनिष्ठ होने के साथ-साथ विषयनिष्ठ होना परम आवश्यक है। सौन्दर्यग्राही की मन:स्थिति ही वस्तु में सौन्दर्य की सृष्टि करती है।

भवभूति- उनकी दृष्टि में पूर्ण सौन्दर्य विशिष्ट कृति ही नहीं होती वरन् उसका कर्त्ता भी विशिष्ट होता है। डा. रामलखन शुक्ल-भवभूति की दृष्टि में सौन्दर्य इतना पूर्ण एवं गहनीय होता है कि किसी भी वस्तु के साथ तुलनीय सिद्ध नहीं होता।[27]

बुद्धघोष:- बुद्धघोष के अनुसार मानव मस्तिष्क की एक विलक्षण प्रतिभा अथवा चेतना होती है, जो कि सौन्दर्य की सृजना करती है, सौन्दर्य निरूपण का यह क्षण सहज ज्ञानात्मक और क्रियाशील होता है, वास्तव में ही मानव हृदय अन्तर्दृष्टि से ग्रहण किये गए सहज ज्ञान के आधार पर किये गए सौन्दर्यात्मक निर्माण को ही सौन्दर्य कहते हैं।[28]

मधुसूदन सरस्वती:- उन्होंने परमसत्ता को ''सौन्दर्यसार सर्वस्व'' कहा है। उन्होंने माना कि ईश्वर के सौन्दर्य की पूर्णता को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

तुलसीदास:- गौस्वामी जी की सौन्दर्यविषयक कल्पना अनूठी है। वास्तविक सौन्दर्य वही है जो पूर्ण, अनुपमेय एवं अनिर्वचनीय है। सीता का सौन्दर्य इसी प्रकार है- सर्वथा निष्कलुष एवं अनिर्वचनीय- **सब उपमा कवि रहे जुठारी,**
केहि पदतरिय विदेह कुमारी।[29]

बिहारी:- वे सौन्दर्य को सीमा रहित करना चाहते थे, शब्द भी सौन्दर्य को बांध नहीं सकता, वह रहस्मय भी है और अस्थिर भी। उन्होंने सौन्दर्य को व्यक्तिनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ दोनों माना है। यद्यपि उनका झुकाव व्यक्तिनिष्ठ की ओर रहा।[30]

मतिराम:- उनके अनुसार स्वाभाविक एवं वास्तविक सौन्दर्य आन्तरिक होने के साथ बाहर भी छलकता है। अपने लावण्य और आकर्षण में निरंतर अनुपम नवीनता को उत्पन्न करता है। ***ज्यों-ज्यों निहारिये-खरी निखरै सी निकाई।***[31]

भारतेन्दु:- भारतेन्दु की सोच प्रगतिशील सौंदर्य-बोधात्मक सोच है। जो अपने युग के व्यापक यथार्थ की कटुता को अपनाकर चलता है। उनकी सोच में भाववादी सौंदर्य की आनन्दमयता का संचार नहीं है। उन्होंने साहित्य को जनजागरण और सामंतवाद तथा साम्राज्यवादी पूँजीवादी सत्ता के विरुद्ध संघर्ष का माध्यम बनाया। इसी अर्थ में उस काल में उनकी रचनाएँ सौन्दर्य-बोधात्मक शिक्षा का सर्वोत्तम माध्यम रही।[32]

रविन्द्रनाथ टैगोर:- सौन्दर्य, आनन्द और गहन अनुभूति की सरसता से इनकी रचनाएं ओत-प्रोत हैं। सौन्दर्य की रहस्यात्मकता के प्रति कुतुहल और अनुभूति के रस की तरलता है। डा० दास गुप्त:- रविन्द्र ठाकुर का विचार है कि जो उपयोगिता की किसी भावना के बिना हमें आनन्द प्रदान करती हैं उसे सौन्दर्य की भावना कहा जाता है।"[33]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी युगः- देश-प्रेम उस काल का प्रमुख सौन्दर्य मूल्य था। मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, गोपालशरण सिंह सभी का काव्य देश प्रेम की भावना से ओत-प्रोत था। स्वदेशी और स्वावलम्बन जैसे महत्वपूर्ण सौन्दर्य मूल्यों का विकास इस काल में उग्र राष्ट्रवाद के परिणाम स्वरूप हुआ।[34]

जयशंकर प्रसादः- प्रसाद को आवरणविहीन सौन्दर्य की अपेक्षा अवगुण्ठित सौंदर्य अधिक प्रिय था, शालीनता ने उघृंखलता को परास्त किया। भाव दर्शनीय है-

तुम कनक किरण के अन्तराल में
लुक छुप कर चलते हो क्यों
है लाज भरे सौन्दर्य बता दो
मौन बने रहते हो क्यूँ?[35]

सुमित्रानन्दनपन्तः- पन्त की विशेष रुचि सुकुमार कलात्मक सौन्दर्य में है। परमसत्ता की व्यापक उपस्थिति ही कला है, सौन्दर्य है। वहीं हृदय में प्रेम, सौन्दर्य, विशाल शिवत्व की परिणिति है-**सत्य ही प्रेमोद्गार,**

दिव्य सौन्दर्य, स्नेह साकार
भाव्रनामय संसार।[36]

यह सौन्दर्य अव्याख्येय अवश्य है, किन्तु मोती का अन्तर आभा के समान ही एक तरल लावण्य है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्लः- "कुछ रूप-रंग की वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती है, कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते है। हमारी अन्तःसत्ता की यही तदाकार-परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है।[37]

डा॰ कुमार विमलः- सौन्दर्य काव्य एवं अन्य कलाओं का अपरिहार्य तत्व है। 'उदात' सौन्दर्य का चरम रुप है एवं सौन्दर्यानुभूति का आनन्द से॰ अनिवार्य सम्बन्ध है।[38]

डा॰ सुरेन्द्रनाथ दास गुप्तः- उपचेतन का किसी भी प्रकार का विशिष्ट जातीय आत्म परिचय या आत्म लाभ ही सौन्दर्य है। सौन्दर्य केवल प्रयोजन विहीन ही नहीं, सत्-असत् मर्यादाविहीन भी होता है या हो सकता है।[39]

डा॰ ममता चतुर्वेदीः- सौन्दर्य वस्तु में भी है, दृष्टि में भी, दोनों के परस्पर सामंजस्य से ही हमें सौन्दर्य की सुखद अनुभूति होती है।[40]

सौंदर्य-विषयक पाश्चात्य विचारधाराः-

यूरोप में अलग से सौंदर्य पर विचार की सुदीर्घ परम्परा रही है। इसलिए अन्य विषयों के समान 'सौंदर्यशास्त्र भी एक विषय रहा है। सौन्दर्य दो प्रकार का होता है प्रथम प्रकृति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह सौन्दर्य जिसके रचने में मानव की कोई भूमिका नहीं होती, दूसरा मानव रचित सौंदर्य। पाश्चात्य विद्वानों की धारणा है कि सौन्दर्य के इन दोनों प्रकारों के मध्य अन्तर प्रकार मात्र का न होकर प्रजाति मूलक है।

सुकरातः- सुन्दर और शिव एक है, अतः सुन्दर जीवन सापेक्ष है।

प्लेटोः- सुन्दर, शिव और सत्य एक है। सुन्दर परम है और पूर्ण है तथा सुन्दर के लिए नैतिक होना आवश्यक है।

अरस्तुः- सौन्दर्य आकांक्षा, वासना और उपयोगिता से परे की वस्तु है तथा वस्तु में 'आर्डर' सिमेट्री एवं 'डेफिनिटनेस' की विद्यमानता रहती है। इनका सिद्धान्त सार यह है कि सुन्दर और शिव एक नहीं है।[41]

क्रोचे-क्रोचे ने सौन्दर्य को आत्मा का धर्म बताया है। आत्मा के विकास की अवस्थाएँ कामना इच्छा तथा क्रिया को वर्णित करती है। तीनों की एकलयता में आत्माभिव्यक्ति का स्वरूप स्पष्ट होता है। इस तरह प्रकारान्तर में अभिव्यक्ति सौन्दर्य का रूप है। उन्होंने सौंदर्य और कला को संकीर्णता के दायरे से बाहर, भौतिकता से ऊपर उठाकर आध्यात्मिकता की श्रेणी प्रदान की है।[42]

टाल्सटायः- टाल्सटाय कला को सौंदर्य अभिव्यक्ति का माध्यम मानते है अतः कला का लक्ष्य ऊँचा होना चाहिए। धर्म बुद्धि के निवेश को कला की वास्तविक कसौटी मानती है। अतः नैतिक विवेक जागृत करने वाली कलाकृति ही सुन्दर कहलाने योग्य है।[43]

रस्किनः- रस्किन ने सौंदर्य को इन्द्रिय का साधन और अन्वीक्षामूलक चिन्तन के साथ मन को आह्लादित करने वाली शक्ति माना है; जिसका साधन सौन्दर्यधारक वस्तु होती है। डा॰ आनन्द प्रकाश दीक्षित के शब्दों में -"रस्किन कला के उद्देश्यों में विशुद्धिकरण, नैतिकता तथा धर्मबुद्धि निवेश को मुख्य मानते है।"[44] इस विश्वास के फलस्वरूप हम भगवान् के कर्त्तव्य का बोध होता है। उसके प्रति हमारा मन भक्ति और कृतज्ञता से भर जाता है। उसी पूर्णता का नाम है सौन्दर्य।"[45]

काण्टः- इनका मन नैतिकता एवं आध्यात्मिकता से सौन्दर्य की पूर्णता को स्वीकार करता है। डा॰ अर्चना उपाध्याय का मत है- 'काण्ट अन्तर्जगत् के साथ बहिर्जगत् के सामञ्जस्य को महत्व देते हैं और मानते हैं कि किसी वस्तु की सुन्दरता के बोध के समय हमें ऐसा लगता है कि हम जिसे अब तक अपने अन्तर्लोक में अनजाने भाव से खोजते रहे, वही प्रकट हो गया है।[46]

बनाई बोसांकेः- ये सौन्दर्य को ऐन्द्रिय या काल्पिक रुप में प्रकाशित वस्तुधर्म मानते हैं, परन्तु आनन्द को उसका अवच्छेदक धर्म नहीं मानते। आनन्द न तो अनिवार्य है और न साधारणजनों के आनन्द की तुलना कलाकार के आनन्द से की जा सकती है।[47]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोसांके का कथन है- शब्दार्थ जिस भाषा की सृष्टि होती है प्रयोग एवं संस्कार दोनों पर निर्भर करता है, दोनों के समुचित प्रयोग से ही काव्यसुलभ सौंदर्य की उपस्थिति होती है। निश्चित रूप से उनकी सामञ्जस्यवादी दृष्टि फलीभूत होती है।

हेगले:- सौन्दर्य संबंधी विचारों को हेगले ने अलग ढंग से प्रस्तुत किया। वे प्रकृति को जड़ न मानकर 'चित' का 'ससीम' प्रकाश मानते हैं। वे प्राणवान् वस्तु में एक विशिष्ट सत्ता की उपस्थिति के कारण एक विशिष्ट सौंदर्य को स्वीकार करते हैं। प्रकृति में न तो स्वत: आत्मप्रसार की शक्ति है और न वह स्वतन्त्र हैं अतएव प्राकृतिक सौन्दर्य कलागत सौन्दर्य की तुलना में हीन है। वास्तविक सौन्दर्य व्यापक और स्वतंत्रता में होता है, इस दृष्टि से कला सौन्दर्य का प्रतिरूप हुई।[48]

एडिसन:- सौन्दर्य परिवेश का प्रवाह है।

एल्सन:- सौन्दर्य विचारों का प्रवाह है

चर्नाशेव्सकी:- सौन्दर्य ही जीवन है।

कार्लमार्क्स:- मार्क्स का विचार है कि सामाजिक पृष्ठभूमि के अभाव में व्यक्तिगत ज्ञान अथवा निरपेक्ष अनुभूति का कोई अभिप्राय नहीं होता। किसी कलाकृति में निहित सौन्दर्य से मनुष्य को जो आनन्द की अनूभूति होती है, वह उस सम्यक् ज्ञान से ही होती है। सौन्दर्य बोध को मनुष्य का आर्थिक जीवन प्रभावित नहीं करता अपितु वह उसी का प्रतिबिम्ब भी होता है। निश्चय ही पश्चिम में सौन्दर्य पर विचार की सुदीर्घ परम्परा रही है, लेकिन इनमें वैचारिक एकता का सर्वथा अभाव है। जैसा कि गेटे ने कहा- "सौन्दर्य स्वरूप निश्चित करना और समझना संभव नहीं है, वह एक तरल, भंगुर और अमूर्त आभास सा है, जिसे परिभाषाओं की सीमाओं में आबद्ध नहीं किया जा सकता।" सौन्दर्य शब्द कला, चिन्तन और दार्शनिक चिन्तन का अत्यधिक परिचित शब्द है। सत्य एवं शिव के साथ यह दार्शनिक प्रत्ययत्रयी का निर्माण करता है।[49]

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि सौन्दर्य एक सत्य है अत: उसकी प्रतिक्रियास्वरूप होने वाली रसानुभूति भी सत्य स्वरूप है। सौन्दर्य काव्य एवं अन्य कलाओं का अपरिहार्य तत्व है। सौन्दर्य बोध का संबंध अंगत: ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष से है साथ ही कला-चिन्तन की दृष्टि से भारतीय दृष्टिकोण ही सर्वोत्तम प्रतीत होता है क्योंकि इसमें आध्यात्मिक वृत्ति, आन्तरिकता और प्रकृति-प्रेम को प्रचुर महत्व दिया गया है, उदात्त इसका चरम रुप है। सौन्दर्य विवेचक वस्तु से व्यक्ति, व्यक्ति से अध्यात्म की ओर क्रमश: अग्रसर होते चले जाते हैं। एक ओर वस्तुनिष्ठ मानकर उसकी आकर्षण क्षमता, उसके आकार प्रकारगत सौन्दर्य का पता लगाने में दत्तचित हो जाता है और दूसरी ओर स्रष्टा से संबंध मानकर आध्यात्मिक व्याख्या के प्रवाह में ब्रह्म के स्वरूप का आधार ग्रहण करते हैं। आन्तरिक सौन्दर्य का निरूपण करते हुए कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन-वाणी और कर्म में सौन्दर्य को देखते हैं और कभी सामाजिक धरातल का विचार करते हुए सत्य और शिव से उसका गठबन्धन करते हैं। इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष होने वाला गोचर सौन्दर्य भी अपने परब्रह्म के अखण्ड सौन्दर्य का ही सहोदर है। वह वस्तुनिष्ठ अवश्य है, पर उसके रस का आस्वाद पूर्णतया मानसिक है। पाश्चात्य विचारधारा के प्रमुख दार्शनिक प्लेटों, प्लेटिनस इत्यादि ने अपने विचारों को उत्पादित करते हुए कहा कि- विश्व का अखिल गोचर सौन्दर्य किसी अदृश्य अगोचर एवं आत्यन्तिक सौंदर्य सत्ता को जो प्रायः ईश्वर ही कहा जाएगा, का उद्भास है।

भारतीय परम्परा में हमारे ऋषियों ने 'रसो वै सः' प्रकृति दोनों समान रूप से एक सौन्दर्य तत्व का अनुभव करते हैं तथा उसके सौन्दर्य के रस में आकण्ठ निमग्न हो जाते हैं। विचारको ने सौन्दर्य का चाहे जो रूप भी वर्णित किया हो, चाहे वह वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य हो चाहे आत्मनिष्ठ उनकी काव्य साधना सौन्दर्य के इस अलौकिक अथवा लोकोत्तर सृष्टिव्यापी तथा अविभाज्य स्वरूप को केन्द्र मानकर उसी के चतुर्दिक भ्रमण करती रहती है।

संदर्भ-

1. अमरकोष
2. शब्द रत्नावली
3. दि शार्अर आक्सफोर्ड डिक्शनरी
4. डा॰ नगेन्द्र-भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका-पृ॰1
5. ओरिण्टल ऐस्थेटिक्स- पृ॰ 17
6. सौन्दर्य शास्त्र और आधुनिक हिन्दी कविता पृ॰ 1
7. इन्साइक्लोपीडिया ब्रीटानिका इलेवेन्थ एडीसन 1910 पृष्ठ 216
8. डा॰ अर्चना उपाध्याय- कालिदास की सौन्दर्य दृष्टि पृ॰ 11
9. डा॰ रमाशंकर द्विवेदी- साहित्य एवं सौन्दर्यबोध पृ॰ 14
10. वही - पृ॰ 16
11. डा॰ ममता चतुर्वेदी- सौन्दर्यशास्त्र पृ॰ 5
12. डा॰ रमाशंकर द्विवेदी - साहित्य एवं सौन्दर्यबोध
13. डा॰ ममता चतुर्वेदी - सौन्दर्यशास्त्र पृ॰ 6
14. डा॰ अर्चना उपाध्याय- कालिदास की सौन्दर्य दृष्टि पृ॰ 17
15. डा॰ आनन्दप्रकाश दीक्षित - भूमिका-सौन्दर्य तत्व- पृ॰ 39
16. डा॰ ममता चतुर्वेदी- सौन्दर्यशास्त्र - पृ॰ 5
17. सौन्दर्यशास्त्र - एक परिचय - पृ॰ 6
18. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र का तात्विक विवेचन-पृ॰ 55

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

19. डा॰ दीक्षित- सौन्दर्य तत्व-पृ॰ 39
20. डा॰ अर्चना उपाध्याय-कालिदास की सौन्दर्य दृष्टि-पृ॰ 18
21. प्रोफेसर अमरनाथ पाण्डेय- बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलम्- 205
22. डा॰ राज त्रिखा- एस्थेटिक्स एण्ड संस्कृत लिटरेचर- पृ॰ 109
23. भारवि- किरातार्जुनीयम्- 4/23
24. डा॰ सत्यपाल नारंग- भारवि का सौन्दर्य बोध
25. शिशुपालवधम्- 4/17
26. श्री हर्ष- नैषधचरितम्
27. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र का तात्विक विवेचन- पृ॰ 63
28. डा॰ अर्चना उपाध्याय- कालिदास की सौन्दर्य दृष्टि- पृ॰ 23
29. तुलसीदास- रामचरितमानस- बालकाण्ड-230/118
30. कालिदास की सौन्दर्य दृष्टि -पृ॰ 24
31. मतिराम- ललितललाम
32. डा॰ छोटेलाल दीक्षित-आधुनिक काव्यों में सौन्दर्यबोध के विविध आयाम- पृ॰ 36
33. डा॰ दास गुप्त- फण्डामेन्टलस ऑफ इण्डियन आर्ट- पृ॰ 37
34. डा॰ छोटेलाल दीक्षित- आधुनिक काव्यों में सौन्दर्यबोध के विविध आयाम पृ॰ 47
35. प्रसाद- चन्द्रगुप्त
36. सुमित्रानन्दन पंत- आधुनिक कवि- 41-42
37. डा॰ कुमार विमल- सौन्दर्यशास्त्र के तत्व - 112
38. सौन्दर्यशास्त्र के तत्व- 124-125
39. सौन्दर्यतत्व- 97
40. डा॰ ममता चतुर्वेदी - सौन्दर्यशास्त्र-पृ॰ 9
41. डा॰ कुमार विमल- सौन्दर्यशास्त्र के तत्व-91
42. डा॰ अर्चना उपाध्याय-कालिदास की सौन्दर्य दृष्टि- पृ॰ 31
43. What is art & page No. 189
44. लेक्चर्स ऑन आर्ट- पृ॰ 43-44
45. मॉडर्न पेण्टर्स भाग- 2-पृ॰ 16
46. सौन्दर्य का तात्पर्य- पृ॰ 34
47. डा॰ अर्चना उपाध्याय- कालिदास की सौन्दर्य दृष्टि-पृ॰ 35
48. वही- पृ॰ 35
49. डा॰ अर्चना उपाध्याय- कालिदास की सौन्दर्य दृष्टि-पृ॰ 38

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों की यथार्थ संख्या

डॉ०- दीनदयाल वेदालङ्कार
असि० प्रोफेसर
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार, उत्तराखण्ड

भारतीय मनीषा में वेदों का समधिक महत्व है। वेदों की संख्या कितनी है इस विषय में कुछ विद्वानों में मतभेद है। ऋषि दयानन्द वेदों की संख्या चार स्वीकार करते हैं। कालयजी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में महर्षि जी लिखते हैं कि-

प्रश्न- वेद किन ग्रन्थों का नाम है?

उत्तर- ऋक्, यजुः, साम और अथर्व मन्त्र संहिताओं का, अन्य का नहीं।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥ मनु. (1/23)

उपर्युक्त श्लोक की व्याख्या करते हुए स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि "जिस परमात्मा ने आदि सृष्टि से मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि द्वारा चारों ऋषियों द्वारा चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराये और उस ब्रह्मा ने अग्नि, वायु आदित्य और (तु अर्थात्) अङ्गिरा से ऋक्, यजुः, साम और अथर्व का ग्रहण किया।

प्रश्न- मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् (कात्यायन० परि०/बोधा०गृ० 2.6.3) इत्यादि कात्यायनादिकृत प्रतिज्ञासूत्रादि का अर्थ क्या करोगे?

उत्तर- देखो! संहिता पुस्तक के आरम्भ, अध्याय की समाप्ति में वेद शब्द सनातन से लिखा आता ब्राह्मण पुस्तकों के आरम्भ वा अध्याय की समाप्ति में कहीं नहीं लिखा है और निरुक्त में- "इत्यपि निगमो भवति"(5/3) "इति ब्राह्मणम्" (तुलना. निरु. 5/4) "छन्दोब्राह्मणनि च तद्विषयाणि" (अष्टा० 4/2/65) इससे भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि वेद मन्त्रभाग और ब्राह्मण व्याख्याभाग है। इसी प्रकार स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश के द्वितीय मन्तव्य में स्वामी जी ने स्पष्ट किया है कि वेद चार हैं। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के वेदसंज्ञाविचार में स्वामी जी लिखते हैं कि-

सायण ने "मन्त्रब्राह्मणात्मकः शब्दराशिर्वेदः (सायण ऋग्भाष्य भूमि०) "मन्त्रब्राह्मणामको वेदः (सायण भाष्य तै० सं. भाग 1) इत्यादि स्थानों पर मन्त्रभाग और ब्राह्मणभाग दोनों की संयुक्त संज्ञा वेद मानी है। शाबर भाष्य में भी "मन्त्राश्च ब्राह्मणं च वेदः" (मीमांसा सूत्र 2/1/1/33) में मन्त्रभाग और ब्राह्मण भाग को वेद स्वीकार किया है। परन्तु यदि मन्त्रभाग और ब्राह्मण दोनों की वेद संज्ञा स्वीकार करें तो फिर "छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि" (अष्टा० 4/2/62) यह पाणिनीय सूत्र व्यर्थ हो जायेगा क्योंकि छन्दः या ब्राह्मण किसी एक शब्द के

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहने से ही दोनों का ग्रहण हो जाता है। इससे सूत्रमें लाघव भी हो जाता है और वैयाकरण तो एकमात्रालाघव पर भी पुत्रोत्सव मनाते हैं फिर एक पद के लाघव से तो कहना ही क्या। इससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि केवल मन्त्रभाग ही वेद है। ब्राह्मण वेदों के व्याख्यान भूत ग्रन्थ हैं। यही मन्तव्य स्वामी दयानन्द ने भी स्वीकार किया है। 'इस मत के अनुकूल विचार वाले प्रमुख पाश्चात्य वैदिक विद्वान् मैक्समूलर लिखते हैं' It would be indeed nearer the truth to take 'Veda as collective name for the sacred literature of the Vedic age, which forms, so to speak the back ground of he whole Indian World. (History of Ancient Sanskrit Literature पृष्ठ सं. 17) एच.एच. विल्सन, भी इस मत की पुष्टी में अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते है। 'We may venture to affirm in opposition to the consentient assertions of Brehmanical scholars and critisc hat neither of thes works has the slightest claim to be regard as the counterpart and contermporary of the Veda, भूमिका पृष्ठ 13-14) आर.टी.एच. ग्रिफिक भी इसी मत के पोषक है, वे लिखते है- 'Veda meaning literaly knowledge' is the name given to certain ancient works which formed the foundation of the early eyer religious belief of the Hindus. These are the Rigeveda, the Samaveda, the Yajurveda and the Athar veda. (Hymns of the Rigveda, भूमिका पृष्ठ 5) जो सर्वथा ग्राह्य हैं।

वेदों के त्रित्व के भ्रान्तिस्थल-

वैदिकवाङ्मय तथा संस्कृत वाङ्मय में अनेक स्थलों पर ऐसे प्रसंग आते हैं कि जिनके पढ़ने से यह भ्रान्ति या सन्देह उत्पन्न होता है कि क्या वेद तीन हैं? अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ केवल ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद का नाम लेकर यह कह दिया जाता है कि ये तीन वेद हैं। यथा-

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थम् ऋग्यजुः सामलक्षणम्।। (मनु0 1.23)

इस मनु के श्लोक में तीनों वेदों का ही ग्रहण है। अनेक प्रसङ्गों पर वेदों के त्रित्व को प्रकट करने के लिए त्रय अथवा त्रयी विद्या इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यथा-

त्रयो वेदा अजायन्त'' (ऐतरेय 25/7)। ''त्रयो वेदा अजायन्त अग्ने ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः'' (शत० 11/5/8)। ''स (प्रजापतिः) भ्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथमसृजत त्रयीमेव विद्यामात्मानमभिसंस्करवै।'' (शत. 10/4/2/22)। ''देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशन्'' (छान्दो. 3/4/2)। ''अग्नेर्ऋचो वायोर्यजूंषि सामान्यादित्यात्। स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत'' (तैति.ब्रा. 1/2/26) ''तेभ्यः श्रान्तेभ्यस्तप्तेभ्यः सन्तप्तेभ्यस्त्रीन् वेदान् निरमिमत्'' (गोपथ 1/6)। ''ऋग्यजुः सामसंज्ञेयं त्रयी वणर्ज्ञवृत्तिर्द्विज'' (विष्णु. पु. 3/16/1)। ''सामर्ग्यजुर्वेदाश्स्त्रस्त्रयी'' (अर्थशास्त्र विद्योद्देशाधिकरण 5अ. 3)।

इन उपर्युक्त सभी स्थलों पर वेदों की तीन संख्या अथवा त्रयी कहकर वर्णित किया है। वेद के सम्बन्ध में इस प्रकार के कथन अन्य भी बहुत से ग्रन्थों से उद्धृत किये जा सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, परन्तु यहाँ इतने विस्तार से जाने की आवश्यकता नहीं है। सम्प्रति इतना अवबोध कर लेना पर्याप्त है कि संस्कृत वाङ्मय में वेदों को त्रयी नाम से भी कहा जाता है और त्रयी से तात्पर्य प्रायः ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद लिया गया है। ऐसे स्थलों के अध्ययनोपरान्त उन व्यक्तियों को जिनका वैदिक साहित्यानुशीलन व्यापक, गम्भीर व पर्याप्त नहीं है, यह भ्रान्ति हो जाती है कि वेद उपर्युक्त तीन ही है, चार नहीं। चतुर्थ अथर्ववेद पश्चात् की रचना है इसीलिए त्रयी में इसकी गणना नहीं है।

वेदो की संख्या चार-

यह सन्देह सर्वथा निर्मूल है कि वेद तीन है। वेद चार ही हैं। वेदों की सङ्ख्या चार है यह बताने वाले वैदिक वाङ्मय में अनेक प्रमाण हैं। वेदों के पश्चात् वैदिक साहित्य में ब्राह्मण ग्रन्थों का सर्वोच्च स्थान है। शतपथ में कहा है कि ''एवं वा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यत् ऋग्वेदो यजुर्वेः सामवेदोथर्वाङ्गिरसः'' (शत.14/5/4/10)। इस कथन में जैसे तीनों वेदों को ईश्वर की रचना माना है, उसी प्रकार अथर्ववेद को भी माना है। वेदों की संख्या चार है यह इस शतपथ वाक्य से ही स्पष्ट है। छान्दोग्योपनिषद् में सनत्कुमार एक प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि ''स होवाचर्ग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणम्'' (7/1/2) इस स्थल पर भी वेदों की संख्या चार बतायी है। और अथर्ववेद का नाम स्पष्ट उल्लेखित है। इसी उपनिषद् में कहा है कि ''विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थम्'' (7/7/1) इस स्थल पर भी यह स्पष्ट वर्णित किया है कि विज्ञान के द्वारा ऋग्वेद, सामवेद और अथर्थवेद का ज्ञान होता है। बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा है कि ''ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः'' (बृ.उ. 4/12)। तैत्तिरीय में ''तस्य यजुरेव शिरः, ऋग्दक्षिणपक्षः, सामोत्तरपक्षः..... अथर्वाङ्गिरसः'' पुच्छं प्रतिष्ठा। (ब्रह्मानन्द वल्ली 2/3)। ''त्वमेव प्रत्यक्षमृगसि। त्वमेव प्रत्यक्षं यजुरसि। त्वमेव प्रत्यक्षं समासि। त्वमेव प्रत्यक्षमथर्वासि'' (सूर्योपनिषद् 1/1)। ''तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः'' (मुण्ड 1.1.5)। ''चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदों यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः'' (गोपथ ब्रा. 2/16)। ''चत्वारोऽस्यै (स्वाहायै) वेदाः शरीरम्'' (षड्विंश ब्रा. 4/7)।

''ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वाणि च'' (विष्णु पु. 1/22/82)। ''ऋग्वेदस्तु यजुर्वेदः सामवदेस्त्वथर्व च'' (विष्णु. पु. 5/1/36)। इत्यादि सभी स्थलों पर वेदों की संख्या चार बतायी गयी है। महाभारत में अत्यन्त स्पष्ट लिखा है कि-

''त्रयीविद्यामवेक्षेत वेदे सूक्तमथाङ्गतः।
ऋक्सामवर्णाक्षरता यजुषोऽथर्वणस्तथा॥ (शान्तिपर्व 235/1)

अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद ये चार वेद हैं और इन चारों वेदों का नाम त्रयी है। इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि वेदों की संख्या

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार है। समस्त वैदिकवाङ्मय इस बात को बलपूर्वक कहता है और भारतीय मनीषा भी इस सिद्धान्त को मान्यता प्रदान करती है। यहाँ तक कि वेद संस्कृतवाङ्मय में चार संख्या के वाचक के रूप में रूढ़ सा हो गया है। सुप्रसिद्ध नाट्यशास्त्र के प्रेणता भरतमुनि भी लिखते हैं कि-

जग्राह पाठ्यमृतग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च्र।

यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।। (नाट्य.शा. 1/17)

प्रस्तुत श्लोक में भी भरतमुनि ने चार वेद ही स्वीकार किये हैं। अत: सन्देहरहित है कि वेदों की संख्या चार है।

वेदों को त्रयी कथन का रहस्य :-

अब समस्या यह उत्पन्न होती है कि जब वेद चार हैं तो उन्हें त्रयी अर्थात् तीन क्यों कहा जाता है? इस प्रश्न का समाधान यह है कि वेदों की रचना तीन प्रकार की है। वेद के कुछ मन्त्र ऋक् प्रकार के कुछ मन्त्र साम प्रकार के कुछ मन्त्र यजु: प्रकार के है। मीमांसा दर्शन में महर्षि जैमिनि ने इन मन्त्रों का उल्लेख करके इनका भेद स्पष्ट किया है। ऋचाओं के सम्बन्ध में महर्षि जैमिनी कहते हैं कि ''ऋग् यथार्थवशेन पाद व्यवस्था'' (2/1/35) अर्थात् पादबद्ध या छन्दोबद्ध वेदमन्त्रों को ऋक् या ऋचा कहते हैं। साम के सम्बन्ध में महर्षि जैमिनी का सूत्र है ''गीतिषु समाख्या'' (2/1/36) अर्थात् वेद के जो मन्त्र संगीत में ढालकर गीति के रूप में गाये जाते हैं, (2/1/37) अर्थात् वेद के जिन मन्त्रों में पाद व्याख्या नहीं है, जो छन्दोबद्ध नहीं है और जो संगीत में ढ़ालकर गीतिरूप में गाये नहीं जा सकते, उन गद्यात्मक मन्त्रों को यजु: कहते हैं।

ऋग्वेद में प्राय: सभी मन्त्र छन्दोबद्ध पद्यात्मक है। इसीलिए उसे विशेष रूप से ऋग्वेद-ऋचाओं का वेद कहा जाता है। सामवेद के सारे मन्त्र ऐसे हैं जिन्हें संगीतमय गीतिरूप से गाया जा सकता है, इसीलिए उसका नाम सामवेद है। यजुर्वेद में यजु: वाक्य, गद्यवाक्य अन्य वेदों की अपेक्षा अधिक है, इसीलिए उसका नाम विशेष रूप से यजुर्वेद-यजु: वाक्यों का वेद हो गया। अथर्ववेद में उक्त तीनों प्रकार के मन्त्र हैं। इस प्रकार रचना की दृष्टि से चारों वेदों को वेदत्रयी या वेद भी कहा जाता है। मूलरूप में वेद चार ही हैं।

ऋक्सर्वानुक्रमणी के वृत्तिकार षड्गुरुशिष्य ने भी अपनी वृत्ति की भूमिका में चारों वेदों के यही तीन प्रकार बताये हैं और लक्षण भी जैमिनी के अनुसार ही किये हैं। षड्गुरुशिष्य कहते हैं कि- **''ऋक् पादबद्धो गीतिस्तु सामगद्यं यजुर्मन्त्र:। चतुर्ष्वपि हि वेदेषु त्रिधैव विनियुज्यते''**। अर्थात् चारों वेदों के मन्त्र तीन ही प्रकार के हैं। वे कहते हैं कि **''विनियोक्तव्यरूपश्च त्रिविध: सम्प्रदर्श्यते। ऋग्युजु: सामरूपेण मन्त्रो वेद\)चतुष्टये''**। अर्थात् यज्ञों में चारों वेदों के मन्त्र ऋक्, यजु:, साम इन नामों से विनियुक्त किये जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाल्मीकि रामायण-राजनय निरूपण

डॉ० श्रीमती सुशीला सिंह
शास्त्र चूड़ामणि
वैदिक धर्मदर्शन विज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ०प्र०)

आदिकवि वाल्मीकिकृत रामायण में राजा की आवश्यकता, कर्त्तव्य, प्रजापालकत्व, प्रकृतियाँ, दूत, षाड्गुण्य आदि का साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्राप्त होता है। व्यास की ही भाँति वाल्मीकि जी ने भी प्रजारक्षण हेतु राजा की आवश्यकता मानी है। राजा के बिना कोई भी मनुष्य स्त्री, पुत्र, धन, सम्पत्ति की रक्षा नहीं कर सकता है। अराजक राज्य विभिन्न प्रकार की विपत्तियों का साम्राज्य हो जाता है। अराजक राज्य में न तो पर्जन्य दिव्य जल की वृष्टि करते हैं और न ही कोई किसी धन या सम्पत्ति को अपना कहने में समर्थ होता है। अराजक राज्य में न तो सभ्य उपवन ही दृष्टिगोचर होते हैं और न ही पुण्य गृह। यज्ञशील ब्राह्मणों का भी ऐसे राज्य में निवास करना असंभव हो जाता है। अव्यवस्था से युक्त ऐसे राज्य में नट, नर्तक आदि भी समाज को आनन्दित करने वाले उत्सवों को करने में असमर्थ हो जाते हैं।

नाराजके जनपदे विद्युन्मालीमहास्वनः।
अभिवर्षन्ति पर्जन्यो महींदिव्येनवारिणौ।।
नाराजके जनपदे बीजमुष्टिः प्रकीर्यते।
नाराजके पितुः पुत्रोभार्या वा वर्तते वशे।। **वा०रा०अ०का० 67/9, 10**

अराजक राज्य में किसी प्रकार प्रजा का कल्याण संभव नहीं है।

नाराजके जनपदेयोगक्षेमः प्रवर्तते। वही 67/24

शास्त्रों के ज्ञान से युक्त मनुष्य भी ऐसे राज्य में निवास नहीं करते हैं।

नाराजके जनपदे नराः शास्त्रविशारदाः। वही 67/26

जिस प्रकार जल से रहित नदियाँ तथा तृण वन सुशोभित नहीं होते हैं, उसी प्रकार राजा के बिना प्रजा या राज्य सुशोभित नहीं होते हैं। जिस प्रकार गोपालकों के बिना रक्षा के अभाव में गायें नष्ट हो जाती हैं उसी प्रकार राजा के बिना प्रजा नष्ट हो जाती है। राजा के बिना मात्स्यन्याय प्रचलित हो जाता है। जिस प्रकार जलाशय में बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को खा जाती हैं उसी प्रकार प्रजा आपस में संघर्ष करके नष्ट हो जाती है।

मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्तिपरस्परम्। वा०रा०अ०का० 67/31

अमर्यादित तथा नास्तिक जन भी राजदण्ड के भय से मर्यादा में रहते हैं। अतः राजा सत्यस्वरूप हैं, धर्मस्वरूप है, मातापिता के समान प्रजा की रक्षा एवं पालन करने वाला है। राजा उचित एवं अनुचित का भेद करने वाला है। यदि वह संसार में न रहे तो चारों ओर अंधकार व्याप्त हो जाए तथा धर्म-अधर्म का ज्ञान किसी को न रहे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा सत्यं च धर्म श्चराजाकुलवतां कुलम्।
राजा मातापिता श्चैव राजा हितकारोनृणाम्। वारा0अ0का0 67/34

वाल्मीकि के अनुसार राजा प्रजा की समष्टि तथा परमेश्वर का प्रत्यक्ष रूप है। मनुष्य रूप में देव होने के कारण इसकी न तो कोई हिंसा करे, न इस पर कोई क्रोध करे, न इस पर आक्षेप करे। इससे कोई अप्रिय वचन भी न बोले।

राजा के गुण

आदर्श राजा गुणवान, पराक्रमी, धर्मज्ञ, उपकार मानने वाला, सत्यवक्ता, दृढ़प्रतिज्ञ, सदाचारी, समस्त प्राणियों का हितसाधक, विद्वान्, सामर्थ्यशाली, प्रियदर्शन, जितेन्द्रिय, क्रोध को जीतने वाला, कान्तिमान, अनिन्दक, संग्राम में अजेय योद्धा होता है।

धर्मज्ञश्चकृतज्ञश्च सत्यवाक्योदृढ़व्रतः।
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषुकोहितः।। वा०रा०कि०का० 18/2

वाल्मीकि ने राजा के गुणों का वर्णन श्रीराम के माध्यम से किया है। इक्ष्वाकुवंश में प्रसिद्ध राजा राम हुए, जो इन्द्रियवशी, महान् वीर, कान्तिमान्, धैर्यवान्, बुद्धिमान्, नीतिमान्, लक्ष्मीवान् तथा शत्रुओं का दमन करने वाले थे। महान् भुजाओं, हनुवाले तथा सुन्दर ग्रीवा वाले प्रजाप्रिय थे। धर्मज्ञ, सत्यवादी, यशस्वी, ज्ञानसम्पन्न, पवित्र तथा प्रजाओं के हित में निरत रहने वाले, शत्रुओं का विनाश करने वाले, समस्त संसार के रक्षक तथा धर्म की रक्षा करने वाले थे। स्वजनों की रक्षा करने वाले तथा वेद वेदाङ्गों के तत्त्वों के ज्ञाता तथा धनुर्विद्या में निष्णात थे। स्मृतिमान्, प्रतिभावान्, सर्वलोकप्रिय, अत्यन्त सज्जन तथा बुद्धिमान् थे-

धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानांचहितेरतः।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्।।
सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभानवान्
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः। वा०रा०वा०का० 1/1, 15

श्रीरामचन्द्र जी के गुणों का वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि वह इन्द्र के समान पराक्रमी, सत्यवान एवं दिव्य गुणों से युक्त थे। चन्द्रमा के समान विश्व को आह्लादित करने वाले एवं पृथ्वी के समान क्षमा गुण से युक्त थे। बुद्धि में बृहस्पति एवं पराक्रम में इन्द्र के समान अत्यन्त मृदु, स्थिर चित्त वाले, किसी से ईर्ष्या न करने वाले, सत्यवादी, वृद्धों तथा ब्राह्मणों की सेवा करने वाले संपूर्ण विद्याओं एवं व्रतों में निष्णात थे।

दिव्यैर्गुणैः शक्रसमो रामः सत्यपराक्रमः।
इक्ष्वाकूणां कुलेजातः साक्षाद्धर्म इवापरः।।
रामः सत्पुरुषो लोकेसत्यः सत्यपरायणः।
प्रजासुखत्वेचन्द्रस्य वसुधायाः क्षमागुणैः।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियवादी च भूतानां सत्यवादी च राघवः।
बहुश्रुतानां वृद्धानां ब्राह्मणानामुपासिता।। **वा०रा०अ०का० 2/28, 29, 33**

राजा का सर्वप्रधान गुण प्रजा का रंजन है 'राजा प्रकृति रञ्जनात्' यह गुण राम में विशेष रूप से था। प्रजारंजन के अतिरिक्त क्षत्रिय राजाओं का धर्म दुष्टों का निग्रह तथा शत्रुओं का विनाश भी है। क्षत्रिय राजा इसीलिए शस्त्र ग्रहण करते हैं कि कहीं प्रजा में आर्तनाद न सुनाई दे।

क्षत्रियैधार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति। **आर०का० 10/3**

राम तपोनिष्ठ मुनियों की रक्षा के लिए अपने प्राणों का सीता तथा लक्ष्मण का भी परित्याग करने के लिए उद्यत हैं। वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करना राजा का पुनीत कर्त्तव्य है। राजा का निर्माण प्राचीन काल में इसीलिए हुआ जिससे चारों वर्णों के लोग अपनी मर्यादा में रहे। अनुचित आचरण करने वाले तथा स्वेच्छया व्यवहार करने वाले राजा को प्रजा उसी प्रकार त्याग देती है जिस प्रकार हस्ति नदी के पङ्क को त्याग देता है।

त्रिवर्ग-

राजा को धर्म, अर्थ एवं काम का समन्वित रूप से सेवन करना चाहिए। अर्थ का मूल धर्म तथा अर्थ का फल काम है। ये तीनों एक दूसरे से पूर्णतया सम्बन्धित हैं। राजा दशरथ के आचरण से स्पष्ट है कि पत्नी के प्रति अत्यधिक आसक्ति बुद्धि भ्रष्ट कर देती है। लक्ष्मण के अनुसार दशरथ काम के वशीभूत वृद्धावस्था के कारण विपरीत बुद्धि वाले तथा कैकेयी के मोह जाल में फँसकर असहाय हो गए हैं। राजा दशरथ की इस प्रकार की बुद्धि तथा राम का वनवास देखकर यह प्रतीत होता है कि धर्म और अर्थ के पहले काम का ही स्थान है।

इयं व्यसनमालोक्य राज्ञश्चनिविभ्रमम्।
कामएवार्थधर्माभ्याम् गरीयानिति मे मतिः।। **वा०रा०अ० का० 53/9**

जो नृप धर्म और अर्थ को त्यागकर केवल काम का ही सेवन करता है वह बुद्धिनाश के माध्यम से धर्म और अर्थ का भी विनाश करता है। राजा दशरथ ने काम को प्रमुखता दी तथा धर्म और अर्थ का परित्याग कर दिया। इसी से वे कष्टापन्न स्थिति को प्राप्त हुए।

राजा के दोष

राजा का सर्वप्रमुख दोष आत्मश्लाघा है। आत्मश्लाघा की पराकाष्टा रावण की उक्तियों में दृष्टिगोचर होती है। राम को रावण अपनी अँगुली के समान भी नहीं मानता है। वह विश्व में किसी को अपने समान पराक्रमी नहीं समझता है। उसका कथन है कि देवताओं, यक्षों, गंधर्वों में किसी को ऐसा नहीं देखता हूँ जो मेरे समान बलवान हो।

न देवेषु न यक्षेषु न गन्धर्वेषु नर्षिषु
अहंपश्यामिलोकेषु यो मे वीर्यसमोभवेत्। **वा०रा०अर०का० 55/20**

राम अपने शत्रु रावण के तेज की प्रशंसा करते हैं। राजा का अधर्मी होना उसका एक महान् दोष है। यदि रावण अधर्मी न होता तो वह देवलोक का रक्षक होने का भी अधिकारी होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजाओं के प्रमुख 14 दोष वाल्मीकि जी ने रामायण में माने हैं जिनसे उसे सदैव दूर रहना चाहिए। ये दोष हैं-नास्तिकता, असत्यभाषण, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, ज्ञानी पुरुषों का संग न करना, विपरीत बुद्धि वाले पुरुषों से परामर्श लेना, निश्चित किये हुए कार्यों को शीघ्र प्रारंभ न करना, मंत्रणा को प्रगट कर देना, माङ्गलिक कृत्यों का अनुष्ठान न करना तथा समस्त शत्रुओं पर एक साथ आक्रमण करना।

नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घसूत्रताम्
अदर्शनं ज्ञानवतामालस्यं पञ्चवृत्तिताम्। **वा०रा०अ०का० 100/65**

राजा का एक अन्य महान् दोष है स्वेच्छाचारी होना।, नीति, विनय, दण्ड और अनुग्रह स्वेच्छया अविवेकपूर्ण रीति से प्रयोग करना राजा के लिए उचित नहीं है-

नयश्च विनयश्चोभौ निग्रहानुग्रहावपि।
राजवृत्तिरसंकीर्णा न नृपाः कामवृत्तयः।। **वा०रा०कि०का० 17/32**

मंत्रिपरिषद्

राज्य की सुचारु व्यवस्था में मन्त्रिपरिषद का विशेष स्थान है। रावण के राज्य में मन्त्रिपरिषद् थी। वह इस तथ्य से अवगत था कि उचित परामर्श से ही राज्य सुदृढ़ हो सकता है-

मन्त्रमूलंहि विजयंप्रवदन्ति मनीषिणः। **वा०रा०यु०का० 6/5**

अतः मन्त्रियों को विशेष गुणों से युक्त होना चाहिए। राम भरत को चित्रकूट में उपदेश देते हैं कि मन्त्री शूरवीर, शास्त्रज्ञ, जितेन्द्रिय, कुलीन, ब्राह्य चेष्टाओं से मन की इच्छाओं को जानने वाले तथा सुयोग्य होने चाहिए। मेधावी शूरवीर चतुर एवं नीतिज्ञ, अमात्य राज्य को सुख समृद्धि प्रदान करते हैं। राजा का कर्त्तव्य है कि पूर्ण परीक्षा लेकर पूर्वजों के समय से विश्ववसनीय अन्तः तथा बाह्य चेष्टाओं तथा क्रियाकलापों से पवित्र अमात्यों को नियुक्त करे।

कच्चिदात्मसमाः शूराः श्रुतवन्तो जितेन्द्रियाः।
कुलीनाश्चेङ्गितज्ञाश्च कृतास्ते तातमन्त्रिणः।। **वही, अर०का० 100/15**

राजा दशरथ की मन्त्रिपरिषद् इन समस्त गुणों से युक्त थी। समस्त अमात्यगण सत्यवादी थे। कोई भी इन मंत्रियों में ऐसा नहीं था जो काम, क्रोध या स्वार्थवश असत्यभाषण करता हो।

क्रोधात्कामार्थहेतोर्वा न ब्रुयुरनृतं वचः। **वही, बा०का० 7/8**

सभा-

सभा के कर्त्तव्यों का विवेचन करते हुए राम कहते हैं कि वह सभा सभा नहीं है जहाँ वृद्ध पुरुष न हों, वे वृद्ध पुरुष नहीं हैं जो धर्मसंगत न हों, वह धर्म धर्म नहीं है जो सत्य न हो और वह सत्य सत्य नहीं है जो निश्छल और स्वतः प्रेरित न हो।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा न ते येन वदन्ति धर्मम्।
नाऽसौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति नतत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम्।।[1]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र-

मन्त्र के तीन प्रकारों का उल्लेख रामायण में प्राप्त होता है- उत्तम, मध्यम और अधम। नीतिज्ञ मंत्रीगण किसी विषय पर एकमत हों वह मंत्र उत्तम माना गया है। अनेक मतों पर विचार विनिमय के अनन्तर जो एक मत निर्धारित किया जाय वह मध्यम और जहाँ एक मत्यन हो वह अधम मंत्र कहा जाता है।

ऐकमत्यमुपागम्य शास्त्रदृष्टेनचक्षुषा।
नचैकमत्ये श्रेयोस्तिमन्त्रः सोऽधम उच्यते।। **बा०रा०यु० का 6/12-14**

सेवक-

राज्य व्यवस्था में राजा की प्रकृतियों या सेवकों का प्रमुख स्थान है। सेवक का प्रमुख कर्त्तव्य है मन, वचन एवं कर्म से स्वामी का हित सम्पादन करना। स्वामी के कठिन कार्य को जो अत्यन्त अनुराग से सम्पन्न करता है वह उत्तम सेवक की श्रेणी में आता है। स्वामी के प्रिय एवं उत्कृष्ट कार्य तत्परता से करने पर भी सम्पन्न न कर सके वह मध्यम कोटि का सेवक माना जाता है। जो स्वामी के कार्य को न करने के लिए कृतसंकल्प होता है वह अधम सेवक माना गया है-

यो हि भृत्योनियुक्तः सन्भार्त्राकर्मणि दुष्करे।
कुर्यात्तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमः।।
यो नियुक्तः परंकार्यं न कुयार्न्नृपतेः प्रियम्।
भृत्योयुक्तः समर्थश्च तमाहुर्मध्यमं नरम्।। **वा०रा०यु०का० 7, 8**

दूत-

राजा का कर्त्तव्य है कि व्यवहारकुशल, राजभक्त एवं चतुर दूतों को यथास्थान नियुक्त करे। उत्तम दूत के कार्य का निर्देश करते हुए हनुमान जी का कथन है कि जो अपने मुख्य कार्य को सम्पादित करता हुआ साथ ही अन्य कार्यों को भी सिद्ध कर लेता है वह उत्तम दूत है। सुग्रीव उच्चकोटि के दूत थे। दूत अपने स्वामी का सन्देशवाहक है तथा पराधीन है, अतः वह अवध्य है। हनुमान के वध के लिए तत्पर रावण को विभीषण ने परामर्श दिया कि दूत सदैव अवध्य होते हैं। दूत का वध राजशास्त्र के विरुद्ध है-

दूता न वध्याः समयेषु राजन्सर्वेषु सर्वत्र वदन्ति, सन्तः। वही सु०का० 52/13

अनुचित एवं अशिष्ट आचरण करने पर भी दूत अवध्य ही माना जाता है, परन्तु उसे अङ्ग भङ्ग कर सिर मुँड़वाकर केशाघात आदि के द्वारा विरूप बनाकर दण्डित करने का विधान है।

वैरूप्यभङ्गेषु केशाभिघातो मौण्ड्यं तथा लक्षणसंनिपातः। वही सु०का० 52/15

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्तचर-

राजा का कर्त्तव्य है कि ऐसे कुशल गुप्तचरों की नियुक्ति करें जो शत्रुओं के दोषों तथा छिद्रों को जानने में समर्थ हों तथा शत्रु पक्ष में विप्लव कराने में समर्थ हों। राम ने चित्रकूट में भरत से पूछा था कि क्या तुम चरों के द्वारा अपने मन्त्रियों एवं अधिकारियों की गतिविधि से सुपरिचित रहते हो।

कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षेदशपञ्च च।
त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सितीर्थानि चारकैः।। **वही, अ०का० 100/36**

षाड्गुण्य-

राज्य की वैदेशिक नीति का संचालन षाड्गुण्य के सिद्धान्त के आधार पर सुचारु रूप से किया जा सकता है। वाल्मीकि रामायण में सन्धि विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय के अवसरों की समुचित विवेचना की गई है। युद्ध के पूर्व सूचना देना आवश्यक है। बाली ने राम से कहा कि अकारण ही किसी पर आक्रमण कर देना अशोभनीय है तथा तटस्थ के प्रति युद्ध करना भी अनैतिक है।

पराङ्मुख वधं कृत्वा कोऽत्र प्राप्तस्त्वयागुणः। वही, कि०का० 17/15

शयन करते हुए शस्त्रास्त्रों से हीन, मद से विह्वल, स्त्रियों से परिवृत्त शत्रु पर आक्रमण करना अनुचित कहा गया है। सैनिक अनुशासन के अनुसार युद्ध से विमुख व्यक्ति का वध ही उचित है।

दण्ड-

यदि राजा प्रमादवश अपराधियों को दण्ड नहीं देता तो वह पाप का भागी होता है। दण्ड ही प्रजा का नियामक है। पापकर्म करने के बाद जो प्राणी राजा द्वारा प्रदत्त दण्ड को भोग लेता है उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। राजा भरत स्वेच्छाचारी प्राणियों को दण्ड देने में तत्पर थे।

न हि धर्मविरुद्धस्य लोकवृत्तमुपेयुषः।
दण्डादन्यात्र पश्यामिनिग्रहं हरियूथपः।।
न हि मर्षये पापं क्षत्रियोऽहंकुलोद्भवः।
प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डो वधः स्मृतः।। वा०रा०कि०का० सर्ग 18/21, 22

दण्ड धारण करने वाला राजा धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करके समस्त पृथ्वी की प्रभुता प्राप्त कर लेता है एवं अन्त में स्वर्ग को प्राप्त करता है।

राजा तु धर्मेणहि पालयित्वा महापतिर्दण्डधरः प्रजानाम्।
अवाप्य कृत्स्नां वसुधां यथावदितश्च्युतः स्वर्गमुपैति विद्वान्।। वा०रा०अ०का० सर्ग 100/76

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास के धार्मिक वर्णन में लोक कल्याण

डॉ० (श्रीमती) सुरचना त्रिवेदी
असि० प्रोफे०-संस्कृत,
भगवानदीन आर्यकन्या
स्ना० महाविद्यालय, लखीमपुर खीरी

धृ धातु में मन् प्रत्यय के योग से 'ध्रियते लोकोऽनेन, धरति लोकं वा' इस अर्थ के द्योतन के लिए धर्म शब्द व्युत्पन्न होता है। संस्कृत में 'धर्म' शब्द का प्रयोग निम्नलिखित अर्थो को प्रकट करने के लिए हुआ है:

1. कर्तव्य, जाति, संप्रदाय आदि के प्रचलित आचार का पालन।
2. कानून, प्रचलन, दस्तूर, प्रथा, अध्यादेश, अनुविधि।
3. धार्मिक या नैतिक गुण, भलाई, नेकी, अच्छे काम, (मानव अस्तित्व के चार पुरुषार्थों में अन्यतम)
4. कर्तव्य, शास्त्रविहित आचरण क्रम।
5. अधिकार, न्याय, औचित्य या न्यायालय, निष्पक्षता।
6. पवित्रता, औचित्य शालीनता।
7. नैतिकता, नीतिशास्त्र।
8. प्रकृति, स्वभाव, चरित्र।
9. मूलगुण, विशेषता, लाक्षणिक गुण (विशिष्ट) विशेषता।
10. रीति, समरूपता, समानता।
11. यज्ञ।
12. सत्संग, भद्रपुरुषों की संगति।
13. भक्ति, धार्मिक भावमग्नता।
14. रीति, प्रणाली।
15. उपनिषद्।
16. ज्येष्ठ पांडुपुत्र युधिष्ठिर।
17. मृत्यु का देवता यम।

धर्म की प्रशंसा में बहुत कुछ कहा गया है। धर्म संपूर्ण जगत् की प्रतिष्ठा है, लोक में धर्मिष्ठ व्यक्ति के पास जनता जाती है, धर्म से पाप का क्षय होता है, धर्म में सब कुछ प्रतिष्ठित है इसलिए धर्म सर्वोच्च है।

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा
लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मेण पापमनुदपति

संसार में धर्म सर्वश्रेष्ठ है: धर्म में सत्य की प्रतिष्ठा है।

धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम्

धर्म से अर्थ की सिद्धि होती है, धर्म से सुख होता है, धर्म से सब कुछ प्राप्त होता है, वस्तुत: जगत् का यदि कुछ ठोस सार है तो वह धर्म ही है।

धर्मादर्थ: प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्व धर्मसारमिदं जगत्॥

धर्म से अर्थ और काम का सिद्धि है अत: उसका सेवन करना चाहिए।

उर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति माम्।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥

जो हमें बुरा लगता है वह दूसरों को भी बुरा लगेगा। हमारा भला हो, सभी का भला हो। यदि केवल हम सुखी रहें और आस-पड़ोस के लोग पीड़ित रहें तो यह समाज के लिए शुभ लक्षण नहीं है। इसीलिए 'सर्वभूतानुकंपा' या 'सर्वमंगल' की कामना की गई।

सर्वेषां मंगलं भूयात् सर्वे सन्तु निरामया:।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:खभाग् भवेत्॥
सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्व: कामानवाप्नोतु सर्व: सर्वत्र नन्दतु॥
शिवमस्तु सर्वजगतां परिहितनिरता भवन्तु भूतगणा:।
दोषा: प्रयान्तु शान्तिं सर्वत्र सुखीभवतु लोक:॥

सारे जगत् के कल्याण में व्यक्ति का कल्याण भी निहित है। अत: धर्म सम्पूर्ण जगत् के कल्याण की प्रेरणा देता है। केवल प्रेरणा से काम नहीं चलता। धर्म का तो आचरण करना होगा, उसे व्यवहार रूप में लाना होगा, तभी कल्याण होगा। तैतित्तरीय उपनिषद् में इसलिए स्नातक को गुरु उपदेश देता है-तू धर्म का आचरण कर'। 'तुझे धर्म के आचरण में प्रमाद नही करना होगा'।

धर्मं चर।
धर्मान्न प्रमदितव्यम्॥

ऐसे धर्म का जो पालन करता है धर्म उसका पालन करता है।

''मानो धर्मो तोदृवधीत्'

पालन करने वालों को वही धर्म पुन: नष्ट करना है। अत: सर्वमानवों को स्वधर्म पालन रूपकार्य स्व जीवित रक्षा का और स्व धर्म नाशनरूप कार्य स्व जीवितनाश का कारण बनता है। कौरवों और पाण्डवों के जीवनवृत्त कालत्रय में उक्त परमार्थ के प्रत्यक्ष प्रमाण हो सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह सर्वमानवों को सर्वदा सर्वविधरक्षण देने वाले सार्वजनिक धर्मो के बहुत से भव्यसंप्रदाय हमें 'कविकुलगुरु' कालिदास के काव्यों में खूब मिलते हैं।

सर्वधर्मतत्वज्ञ कालिदास ने अपने ''कुमारसंभव'' काव्य में पार्वती के जन्म के पहले पर्वत राजकुमार ''मैनाक'' का वर्णन करके पार्वती को अपने विवाह के समय में ''अभ्रातृमतीत्व'' दोष से छुड़ाया। (दे०कु०सं० 1-70)

कन्याओं के इस दोष के बारे में एक स्मृतिप्रमाण ऐसा है। पिता न ज्ञायते यस्या: भ्राता यदि न विद्यते।
नोपथच्छेत्तु, तां कन्यां धर्मलोप भयात् सुधो:।।''

अर्थात्-जिस कन्या के पिता की कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती और जिसका कोई भाई नहीं होता ऐसी कन्या से विवाह विज्ञवर को न करना चाहिए इस समृत्यर्थ का मूल-''अभ्रातृहंनीं वरुणाऽपतिहनीं बृहस्पते।.....'' रूप वेदमंत्र है।

इस तरह कालिदास के श्रुति-स्मृति सम्मत भारतीय धर्मो के वर्णन, मानवों के जीवित कल्याण संपादन के लिये परम साधन बनते हैं।

गिरिजा तपोर्वान के संदर्भ में कवि का श्लोक यह है।

शिलाशयां तामनिकेतवासिनीं निरंतरास्वन्तवातवृष्टिषु।
व्यलोकयन्नुन्मिनिमिषितै स्ततिन्मयै 'र्महातपस्साक्ष्य इवस्थिता: क्षपा:।।
कुमारसम्भव2/25

श्लोकार्थ यह है कि ''बरसात की रातों में जब जोर की हवा के साथ वर्षा होती थी ऐसे वातावरण में गिरिजा ने बाहर के शिलातलों पर सोते हुए कठिन तपस्या की। उस तपस्या को अपनी बिजली की आंखो से तप की रात्रियों ने साक्षी होकर प्रत्यक्षरूप से देखा।'' और एक वर्णन-हेमंत समय में जल के बीच खड़ी गिरिजा ने तप किया'' (5-26) इन वर्णनो से महाकवि ने यहां तीन धर्मो के संप्रदाय दिखाए। पहला धर्म हैं बरसात में बाहर सोती हुई गिरिजा का तपस्या करना। दूसरा धर्म है-गवाहों की तरह रात्रियों का विविध घटनाओं का निरीक्षण करना और तीसरा धर्म है हेमंत में जलमध्य खड़ी होकर गिरिजा का तप करना। महाकवि के इन तीन धार्मिक वर्णनों के स्मृति प्रमाण ऐसे हैं।

(1) ''वर्षासु स्यडिलोशय: (2) अप्सुवासस्तु हेमंते क्रमशेवर्धयेत्तप: इन दोनों का भाव यह है कि

(1) तप करने वालों को बरसात में आच्छादनरहित भूमि पर सोना चाहिए।

(2) हेमंत काल में जलमध्य खड़े होकर तप करने वालों की तपस्या क्रमश: बढ़ती है। कविवर्णित तीसरे धर्म का प्रमाण ऐसा है-

''आदित्यचन्द्रा वनिकोऽनकश्चद्वयौर्भूमिशयो-हृदयं यमश्च।
अहश्च रात्रिश्च उभे च संध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृतं।।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां प्रदर्शित चौदह साक्षीगण का क्रम ऐसा होता है।

सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, आकाश, भूमि, जल, प्राणियों का हृदय यमधर्मराज, दिवाभाग और रात्रिभाग उभयसंध्यासमय और 14 धर्म।

ऊपर दर्शित चौदह साक्षीगण हर एक मानव का क्रिया आचरण और मानसिकभाव-वह चाहे पुण्य का हो चाहे पाप का, प्रतिक्षण उन (भावों) का पर्यवेक्षण करते रहते हैं, साथ ही उनका रिकार्ड भी कर डालते हैं। ऐसे चतुर्दश साक्षियों के मध्य सदा जीवन व्यतीत करते हुए भी कुछ लोग अपने हृदय में,- जिसमें सर्वसाक्षी परमेश्वर रहता है। अनर्थकारी बहुत सी दुश्चिन्ताओं की योजना करके वे मूढ़लोग करके अपने को कृत-कृत्य मानते हैं। लोगों की ऐसी अज्ञता को दूर करने के लिये कालिदास के ये धार्मिकवर्णन परम साधन और विश्वश्नेय-संपादक भी बनते हैं। विश्वसनेय काव्यम् अर्थात् जो काव्य प्रपंचाभ्युदय संपादन की कोशिश करता है वही सत्काव्य कहलाता है। प्रस्तुत में गिरिजा कुमारी को इसी तपश्चरण के कारण 'मृत्युञ्जय' महेश्वर से परिणय रूप में महाअभ्युदय मिला। महाकवि ने अपने इस वर्णन से ऐसा समझाया कि 'इस ऐहिक लोक में मानवों के लिए जो कार्य दुष्कर, दुस्तर होते हैं वे तपश्चरण के प्रभाव से सुकर, सुलभ, प्राप्य तथा सुतर हो जाते हैं। इसलिए हे मनुष्यों अपने दुर्घट कार्यो को अपने पश्चरण से सुघट कीजिए। महाकवि कालिदास के ऐसे कई महोपदेश हमें प्राप्त होते हैं।

माया ब्रह्मचारी के ईश्वर निन्दा करते समय महाकवि गिरिजा से ऐसा कहलाते हैं।

"न केवलं यो महतोऽपभाषते
शृणोति तस्मादपि यः पापभाक् (कु०सं०4-83)

यह गिरिजा की वाणी है। "महापुरुषों की निंदा करने वालों को न केवल पाप मिलता है, वरन जो इस निंदा को सुनता है वह भी पापी बनता है। इसलिए प्रियसखि। इस माय ब्रह्मचारी को यहां से हटा दो। 'कवि' के इन वाक्यों में भारतीय सनातन सभ्यता की झांकी खूब मिलती है। आजकल सभी जगहों से गुरुनिंदा सुनने में आती है। इसके लिये ही कवि ने गिरिजा से बुद्धिपूर्वक ऐसा कहलाया। यहां के कवि वाक्यों को स्मृति प्रमाण सुनिये-

"गुरोः प्राप्तः परीवादः न श्रोतव्यः कदाचन।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गंतव्यं वाततोऽन्यतः॥"

अर्थात्-श्रेयस्कामी को गुरुनिंदा सुननी तक न चाहिए। अगर अनिवार्य रूप से (उसे) सुननी पड़ती है तो या तो, उसे अपने कानों को हाथों से आच्छादित करना चाहिए या उसे बाहर जाना चाहिये। ऐसे धार्मिक संप्रदायों के परिचय से पाठकों से भव्य परिवर्तन हो सकता है।

इसी तरह महाकवि ने महेश्वर से अपने श्वसुर को अपने विवाहानंतर वंदन कराया। यहां का स्मृति प्रमाण यह है कि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''ऋत्विक् पितृव्य श्वसुर मातुलानां यवीपसां
प्रवथाः प्रथमं कुर्यात प्रत्युतगयाऽभिवादनाम्।।''

इसका अर्थ यह है कि-''यज्ञसंबंधी ऋत्विक् लोग, पिता के भाई, श्वसुर, जननी के भाई, उम्र में छोटे होने पर भी ये बड़े के लिये वंदन करने योग्य हैं।''

''महेश्वर भूतल शय्या वाले शयन मंदिर मे पहुंचे (कु०सं० 7-14) वक्ष्यमाण धर्मसूत्र, उक्त वर्णन का प्रमाण है।

''अत ऊर्ध्व अक्षारलवषाशिनौ अधशयिनौ ब्रह्मचारिणों शयातां''

अर्थात्-नूतनवधूवरों को अपने विवाह दिवस से लेकर त्रिरात्रियों तक क्षार लवण वर्जन, अध श्शायन, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिए। यजुर्वेद में यह वर्णन इस प्रकार प्रतिबिम्बित है

सोमः प्रथमोविविदे गंधर्वो विविद उत्तरः
तृतीयअभीष्टों पतिः तृतीयस्ते मनुष्यजाः।।

अर्थात विवाह दिवस की प्रथम रात्रि में नववधू पर सोमदेव का अधिकार होता है, द्वितीय में गंधर्व देव का और तृतीय दिवस में अग्नि देव का। चतुर्थ दिवस से लेकर मानव पति का नववधू पर अधिकार आरम्भ होता है। इसी कारण विवाह दिवस से त्रिदिवसों तक भारतीय वधूवरों को ब्रह्मचर्य व्रत पालन रूप सदाचार का पालन करने की शिक्षा दी जाती है।?

आचार:परमोधर्मो नृणां कल्याणकारकः।

अर्थात् मानव अपने सदाचार रूप धर्माचरण से ही अपना सत्य जीवित कल्याण प्राप्त सकता है। महाकवि कालिदास ने एक अन्य संदर्भ से यह तथ्य प्रस्तुत किया कि संध्या समय में महेश्वर के संध्यानुष्ठान के कारण देर से आने से शर्वाणी अप्रसन्न हुई-

''निर्मितेषु पितृषु स्वयं भुवा या तनुस्सुतनु पूर्वमुझिता।
सेयमस्तमुदयं च सेव्यते तेन मानिनि ममाऽत्र गौरवम्।। (कु०सं० 8-52)

अर्थात् अग्निष्वान्तादि पितृदेवताओं को सजृन कर तुरन्त ब्रह्मा ने अपना शरीर छोड़ा। ब्रह्म का वही शरीर संध्या रूपेण परिणत होकर द्विज गज से उभय संध्यासमयों में सदा सेवित किया जाता है। इसी कारण इस संध्या के प्रति ऐसा मेरा अटूट गौरव है।'' महाकवि के इस विशेष कथन का प्रमाण भविष्य पुराण में ऐसा पाया जाता है।

''पितामहः पितृन सृष्टवामूर्ति तामुनससर्जाह।
साप्रात स्माथ महागन्य संध्या रूपेण सेऽते।
रातां संध्या यतातमानों येतु दीर्घमुषासते
दीर्घयुषो भविष्यन्ति नीरजः पाण्डुनन्दन।।''

इन पौराणिक श्लोक में पूर्वार्द्ध का भाव, कालिदावसीय श्लोक में आ गया है। बाकी पौराणिक अर्थात् श्लोक का भाव यह है कि ''ब्रह्मस्वरूपिणी ऐसी संध्या की उपासना जो एकाग्रता से करते हैं, वे दीर्घायुष्मंत होते हैं।''

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महेश्वर जैसे पुरुषोंत्तमों से आदरपूर्वक आचरित यह संध्या-वंदन क्रिया हर एक द्विज को आवश्यांचरणीय होती है।

''महाजनो येन गतः स पन्थाः''

अर्थात्- ''पुरुषोत्तम'' लोग जिस मार्ग में चलते हैं सामान्य जनों के लिये वही अभ्युदकर मार्ग होता है। इसलिए रामादि दिव्य पुरुष केवल लोकसंग्रह रूप आदर्श के लिये ही नित्यनैमिक क्रियानुष्ठान तत्पर होते हैं। ऐसे लोकदर्शन विशिष्ट धर्म विषय प्रकाशन के लिये कालिदस के काव्यों का पात्र बेजोड़ हैं।

इसी प्रकार रघुवंश महाकाव्य में भी महाकवि कालिदास ने अपने धार्मिक वर्णनों में लोक कल्याण का भाव दर्शाया है।

दिलीप चक्रवर्ती के संतान अभाव का मूल कारण कवि ने महर्षि वशिष्ठ के मुख से ऐसा कहलाया जिसका यह भाव है-''महाराज! आपके स्वर्ग से आते समय मार्ग-मध्य में 'कामधेनु' खड़ी थी। प्रदक्षिणा रूप क्रिया से वह धेनु सबके लिए आराधनीय होती है, किन्तु महाराज का भाव उस समय (में) और एक विषय में लग गया था। क्यांकि ऋतु स्नातानिजपत्नी से मिलने के लिये वह निर्दिष्ट दिन था अगर तदा न मिले तो धर्मलोप आ पड़ेगा। उस धर्म लोप के भय से महाराज! आप धेनु की पूजा किये बिना तुरंत घर चले गये। धेनु पूजा त्याग रूप निज धर्मत्याग के कारण, फल रूप में कुपित धेनु का शांप आपको मिला।''

महाकवि ने इस धार्मिक तत्व का परिचय देते हुए सूक्ति में ऐसा कहा गया-

'प्रतिबहनाति हिश्रेयः पूज्य पूजाव्यतिक्रमः।। रघु. 1/79

अर्थात्- जो पूजनीयों की पूजा से विमूख होता है उसका जीवित श्रेय का प्रतिबंध प्राप्त होता है। अतः सभी को स्वकर्तव्य धर्म से किंचित भी विमुख न होना चाहिए। महाकवि ने ऐसे अर्थान्तर न्यास अलंकार के वाक्यों के माध्यम से लोक श्रेय सम्पादन किया। ऐसे उद्देश्यों से ही काव्य को ''कान्तासम्मितत्व'' रूप लक्षण सार्थक होता हैं। धर्मान्न प्रमदितव्यं। सन्यासान्न प्रमदितव्यं। देवपितुकार्याणां न प्रमदितव्यं.....

आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव।

वेद ऐसे महाप्रबोध से लोककल्याण का संदेश देते हैं। शकुन्तला को आतिथ्य धर्म से विमुख होने पर दुर्वासा मुनि के शाप की कल्पना से कवि ने महासंदेश दिया कि ''वेदवाणी के अनुसार सभी को स्वीय धर्मानुष्ठान से कदापि नहीं च्युत होना चाहिए''। जातकर्म संस्कार के निर्वहन से रघुकुमार संस्कृत महामणिवत् प्रकाशित हुआ। इस संस्कार से बालकों के भावी जीवन में कितने भव्य प्रयोजन प्राप्त होते हैं उन्हे बृहस्पति संहिता में इस प्रकार प्रकट किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''जातस्यर्शिष्टनाशयनीरोगन्वाय सर्वदा। दीर्घायुष्याय चान्यत्र सर्वसंपन्नसमुद्धसे। जन्मन्यशुभयोगनां विनाशाय विशेषत:।''

जातकर्म संस्कार से बालकों के जन्मकालिक अनिष्ट (गृहादिदोष) नष्ट होते हैं और अनेक विधि रोगों की शान्ति होती है। दीर्घाष्युदाय और सर्वसंपन्नसमृद्धि के लिये भी यह संस्कार बालकों को आवश्याचरणीय होता है। प्रत्येक रूप से शिशु जन्मकाल में जो अशुभ योग होते हैं इस संस्कार से वे नष्ट होते है। ऐसे अशुभयोगा के निवारण से बालकों की अन्तर्गत शक्तियां अचिश्काल में विकसित होती है इस विशिष्ट विषय का चित्रण ''संस्कार तत्वज्ञ'' कालिदास ने स्व रघुवंश काव्य में ऐसा किया।

सजातकर्मण्यखिले तपस्विनातपोवनादेत्य पुरोधया कृते। दिलीप सूनु: मणिराकरोद् भव:प्रयुक्त संस्कार इवाधिकम् बभौ। रघु. 3/18

परमार्थ में इन संस्कारों का आचरण ही सच्ची सनातन भारतीय सभ्यता कहलाती है। चर्मयोज्ञपवीत को धारण करके रघुकुमार ने पिता से धनुर्वेदाध्ययन किया।'' इस संप्रदाय के वर्णन से कवि ने ''अजिनोत्तरीयेाहि दीर्घायुर्भवति'' सूक्तयर्थ का परिचय दिया।

सिहांवलोकन:- उपर्युक्त निदर्शनों से कविकुल गुरु कालिदास के ये लोककल्याणकारी उपदेश प्राप्त होते हैं:-

- जो अपना जीवनाभ्युदय चाहते हैं उन सबको श्रद्धा गौरव से स्वधर्मो का या स्वसंप्रदायों का पालन अवश्य करना चाहिए।
- जो स्व धर्माचरण से अलग होता है उसे अनर्थ प्राप्ति अनिवार्य है।
- ब्रह्मचर्य व्रतपालनादि सव-संप्रदायों के आचरण से ऐहिकाभ्युदय के साथ आमुष्मिकाअभ्युदय भी प्राप्त होता रहता है।
- जो स्वधर्म की रक्षा नहीं करता है वह स्वजीवन की रक्षा भी नहीं कर सकता।
- भारतीय धार्मिक संप्रदायों के पालन में ही भारत देश की सभ्यता और उसकी पूर्व प्रतिष्ठा निर्भर रहती है।
- कर्मप्रधान भूमि इस भारत में पैदा होने वालो को स्वसत्कर्माचरण से ही चित्तशुद्धि ज्ञान, मोक्षलाभ मिलते हैं मानवों के जीवित सार्थक्य प्राप्ति के लिए इससे अधिक और अभ्युदय क्या हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराणो में तंत्री-वाद्य का महत्व

डॉ० निशा पाठक
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (संगीत)
कानपुर विद्या मन्दिर महिला
(पी0जी0)महाविद्यालय
कानपुर-208002

भारतीय संगीत के इतिहास की दृष्टि से पुराणों का विशेष महत्व है। जिसके द्वारा हमें यह विदित होता है कि भारतीय संगीत का प्राचीन स्वरूप क्या था तथा इसका सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक उद्देश्य क्या रहा है? पुराण शब्द पुरावृत्त का द्योतंक है[1] तथा प्राचीन इतिहास का संकेत करता है। प्राचीन काल से जिन आख्यानों का प्रचलन मौखिक रूप से प्रवर्तित रहा उन्हीं का संकलन पुराण वाङ्मय में किया जाता रहा इसमें संदेह नहीं। लौकिक उपाख्यानों का संग्रह अष्टादश महापुराणों तथा अष्टादश उपपुराणों के रूप में किया गया है।[2] पुराणों के रचनाकाल को लेकर विद्वानों में मतभेद है। यह अवधारणा व्यक्त की गई कि यदि सभी नही तो कुछ पुराण छठी शती से पूर्व प्रणीत हो चुके थे। वास्तविक रूप में ऐसा माना जाता है कि पांचवी से दसवीं शती तक की अवधि पुराणों, उपपुराणों के सृजन, प्रसार तथा महत्व की रही।[3] प्राचीन वाङ्मय में कथक अथवा कथावाचक नामक विशिष्ट वर्ग का उल्लेख मिलता है जिनका कार्य इन्हीं पुराण कथाओ का प्रवचन करना था।[4]

यद्यपि पुराणों तथा उपपुराणों में कथा भाग अधिक हैं, तथापि अनेक विद्या, कला, ज्ञान, विज्ञान तथा शास्त्रों का भी इनमे सूक्ष्म किन्तु सुस्पष्ट एव बोधगम्य विवेचन हुआ है। पुराण यद्यपि संगीत ग्रंथ नहीं है तथापि प्रसंगतः उनमें सांगीतिक तत्वों का जो उल्लेख हुआ है उसने इसे संगीत की उर्मियों से अभिसिंचित किया हैं पुराणों में संगीत की तीनों विधाओं (गीत, नृत्य एवं वादित्र) का संस्पर्श ही नहीं अपितु संगीत का पूर्ण शास्त्र ही सन्निविष्ट है। पद्म पुराण में वाद्यों की चारों परम्परागत श्रेणियाँ तत् वाद्य, अवनद्ध वाद्य, सुषिर वाद्य और घन वाद्य दिखाई पड़ती हैं। इन सभी वाद्यों के लक्षण भी पद्म पुराण में दिये गये हैं।[5] तार अथवा तांत से बजने वाले वाद्यो को वाद्य कहा जाता है। पद्म पुराण में ऐसे वाद्यों के लिए 'तंत्रीवाद्य' शब्द का भी प्रयोग हुआ है।[6]

तंत्रीवाद्य शब्द 'तंत्री+वाद्य से मिलकर बनता है। 'वादयितु योग्यं वाद्यम्' अर्थात् वह यन्त्र विशेष जो बजाने योग्य हो। 'वद' धातु का अर्थ बोलना या स्वर को अभिव्यक्त करता है अर्थात् जो बोलता है वही वाद्य है। वाद्य शब्द का पर्याय वादित्र और आतोद्य भी है।

नाट्यशास्त्र में 'तत्' तन्त्रीकृत कहा गया हैं 'राधागोविन्द संगीत सार' मे लिखा हैः ताँत व लोहे के तार जा बाजे जात है, उन तारन में सात सुर बाइस श्रुति, इस बिस मूर्च्छना, तान, अलंकार, जाति यह गीत प्रगट होता है, ता बाजे को तत् कहिए।[7]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराण साहित्य के अनुसार वीणा का अन्तर्भाव मंगल वाद्यों में है। मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है कि जिस गृह में वीणा वादन होता है, उसमें यक्षादि क्षुद्र जातियों का प्रवेश संभव नहीं।[8] इस उल्लेख से विदित होता है कि पुराणकार की दृष्टि में वीणा से उत्पन्न ध्वनि वातावरण को मंगलकारक बनाती एवं अमंलकारी वस्तु या जीवों के प्रवेश पर रोक लगाती है। ऋषि मार्कण्डेय पुराण' में उल्लेख मिलता है कि भगवती लक्ष्मी की अष्टनिधियों में मुकुन्द नामक रजोगुणमय निधि के अन्तर्गत वीणा, वेणु, मृदंग आदि को सम्मिलित किया गया है इसी निधि के कारण गायक वादक, नर्तक, बन्दि, सूत तथा लास्य पाठक को द्रव्य लाभ होता है[8] यही वीणा गन्धर्व तथा किन्नरों के लिए अत्यन्त प्रिय वाद्य रहा। किन्नरों के गीतो के साथ वीणा तथ वेणु की संगत किये जाने का उल्लेख है।[10] इनका वादन लौकिक तथा परमार्थिक दोनों कार्यो के लिए होता रहा है। मार्कण्डेय पुराण में यह कथा भी विख्यात रही कि 'कम्बल' और 'अश्वतर' नामक दो भ्राताओ ने भगवान् महेश्वर को प्रसन्न करने के लिए कैलास शिखर पर 'तंत्रीलय समन्वित' गीतों का गान किया था और भगवती सरस्वती द्वारा प्रदत्त स्वर के माध्यम से उन्हें चार प्रकार के वाद्यों का ज्ञान प्राप्त हो गया था।[11] पाताल में नागराजों के भवन में होने वाले संगीतायोजन में गीत की संगति में वीणा,वेणु, मृदंग तथा पणव वाद्यों का वादन किये जाने का उल्लेख भी 'मार्कण्डेय पुराण में मिलता है।[12]

वायु पुराण में शिव की संगीतप्रियता का बहुश: उल्लेख हुआ है। उनकी निवास भूमि कैलास वीणादि वाद्यों के निर्घोष से तथा घण्टानिनाद से सदा व्याप्त रहती है।[5] तुम्बवीणा, मुखवदित्र तथा घण्टा उनके प्रिय वाद्य है।[6] संगीत का प्रयोग आराधना तथा लौकिक कार्यो में किया जाता था। सूत मागध चारणों का समावेश लौकिक कलाकारो में तथा विश्वावसु, नारद तथा तुम्बरु को देवगंधर्व के रूप में समादर प्राप्त हो चुका था।[15]

मत्स्य पुराण में सारस्वत व्रत विधान के संदर्भ में गायत्री एवं सरस्वती को एक बताते हुए गायत्री को वीणा कमण्डल रुद्राक्षमाला एवं पुस्तक धारिणी तथा श्वेत पुष्प अक्षतादि से पूज्य कहा गया है।[16] मत्स्य पुराण के वैष्णव खंड में ही यमुना, श्रीकृष्ण वियोगीनि गोपियों से कृष्ण सरोवर के निकट वीणा, वेणु मृदंगादि वाद्यो के श्रीकृष्ण नाम संकीर्तन तथा लीलायुक्त पद गान करने का सरस संगीतात्मक सैद्धान्तिक विवेचन करती है और इसी के द्वारा श्रीकृष्ण सखा उद्धव जी का दर्शन विधान का विवेचन करती है।[17]

महाभारत के परिशिष्ट ग्रंथ के रूप में हरिवंश पुराण का विशिष्ट स्थान है। हरिवंश के नारद संगीत की वैदिक तथा गांधर्व दोनों प्रणालियों में निपुण बतलाये गये हैं। नारद को तीनों लोकों में भ्रमण करते समय अपनी महती वीणा को गले में लटकाकर सदैव हरिगुण कीर्तन करते बताया गया है।[18] साथ ही यह भी कहा गया है कि वल्लकी वीणा पर सप्त स्वरों की मूर्च्छना स्थापित कर वे षट् ग्राम रागों का गायन वादन करते थे।[19] हरिवंश पुराण में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकोत्सवों के अन्तर्गत सामूहिक संगीत आयोजन में छालिक्य गान किया जाता था जिसके आविष्कर्ता भगवान् श्रीकृष्ण थे। छालिक्य नामक समूह गीत में विविध वाद्यो का सहयोग था। नारद के हाथ में वीणा थी जिस पर षट्ग्राम राग बजाये जा सकते थे। स्वयं श्रीकृष्ण वंश वाद्य के साथ हल्लीसक नृत्य करते बताये गये है।[20] वाद्यों के लिए 'तूर्य' सामान्य संज्ञा थी।[21] तूर्यो का प्रायोग नाट्य, क्रीड़ा, युद्ध तथा लोकोत्सवों के अवसर पर किया जाता था। तत् वाद्यो के अन्तर्गत वीणा, वल्लकी, महती तथा तुम्ब वीणा का प्रचलन था।

'स्कन्द पुराण' में भगवान् शिव की प्रदोषकालिक पूजा के समय भगवती सरस्वती को वीणा-वादिका के रूप में चित्रित किया गया है।[22] स्कन्द पुराण (काशीखण्ड पूवार्दि) में कहा गया है कि नाद साक्षात् भगवान् शिव का स्वरूप है। नारद व तुम्बरु गंधर्व उसके ज्ञाता है। इसी पुराण (केदारखंड, माहेश्वरखंड) में शिव पार्वती विवाह के अवसर पर हिमवान के द्वारा पूछने पर शिव का गोत्र नाद बताते हुए देवर्षि नारद वीणा वादन करते हुए बताये गये है।[23] देवी भागवत में देवर्षि नारद और पर्वत ऋषि की कथा है जिसमें नारद के द्वारा वीणायुक्त सामगान करने का उल्लेख है जिसे सुनकर राजकुमारी दमयंती उन पर आसक्त हो विवाह करने के लिए उद्यत हो जाती है।[24] देवी भागवत् में ही भगवान् नारायण नारद से भगवती सरस्वती को वीणा पुस्तक धारिणी स्वीर संगीत तालरूप तथा वाणी, बुद्धि, विद्या, ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी कहते हैं।[25] देवी भागवत में ही कार्तिक पूर्णिमा के राधा महोत्सव में देवी सरस्वती के वीणा वादन के साथ स्वर ताल युक्त गान एवं स्वयं शिव के द्वारा रसोल्लास से युक्त पद्यों के गान का वर्णन किया गया है; जिसे सुनकर सभी देवता जलरूप (रसरूप) हो गये और स्वयं श्रीकृष्ण राधा रसमग्न हो जाते हैं। ऐसा बताया गया है।[26]

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में नादानुसन्धान लय सिद्धि के लिए परम साधक माना गया है। वीणा तथा वंशी के नाद को लय का परम आवश्यक उत्पादक माना गया है। लय का अर्थ है ध्येय वस्तु से सम्पूर्ण एकाकारता जो नाद के माध्यम से सहज व साध्य मानी जाती है। पुराणकालीन संगीत द्वारा आराध्य की उपासना के इस अंश के सम्बन्ध में विष्णुधर्मोत्तर पुराण में विवरण मिलता है।[27] ऐसा प्रतीत होता है कि पुराणकाल से पूर्व संगीत का प्रयोग तंत्रागमों में नहीं हुआ था अर्थात् पुराणकाल में तंत्रागमों में संगीत का प्रयोग सांगीतिक नवीन मानदण्ड ही दृष्टिगत होता है।[28]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि पौराणिक काल में भी तंत्रीवाद्य (वीणा) तथा तंत्रीवादकों का समाज में गौरवपूर्ण स्थान था। वैदिक काल में तंत्री वाद्यों में सर्वाधिक वीणाओं का प्रचलन था। सामवेद में गायन के साथ बजाई जाने वाली दस प्रकार की वीणाओं अघाटि, पिच्छौला, कर्कांटिका, अलाबु, वक्रा, कपिशीर्षणी, शीलवीणा, महावीणा, काण्ड वीणा तथा वाण वीणा का उल्लेख मिलता है। सूत्र वाङ्मय के अनुसार यजमान की पत्नियाँ उमगान के साथ-साथ विविध प्रकार की वीणाओं का उपवादन भी करती थीं और ऐसे अवसरों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिंच्छौला, अघाटि तथा ककोटिका वीणाओं का प्रयोग होता था। पुराणों में यद्यपि हरिवंश पुराण में वल्लकी वीणा, महती वीणा एवं तुम्ब वीणा का उल्लेख मिलता है परन्तु अन्य पुराणों स्कन्द पुराण, मत्स्य पुराण मार्कण्डेय पुराण, पद्म पुराण आदि में वीणा वादन के प्रसंग तो अनेक हैं परन्तु कहीं भी उनके नामों का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वैदिक काल की अनेक प्रकार की वीणा इस काल में भी प्रचलित रही होगी।

पुराणों में वीणा वाद्य का सम्बन्ध देवी देवताओं से स्थापित कर वीणा वाद्य की पवित्रता को प्रतिष्ठापित किया गया। मानवीय भावनाओं को जाग्रत करने में सफल होने के कारण तब पुरुषों के अतिरिक्ति स्त्रियाँ भी वीणा वादन करती थी। इन तंत्री वाद्यों का वादन विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक अवसरों पर किया जाता था।

सन्दर्भः-

1. भारतीय संगीत का इतिहास-डा0 शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, पृ0 199
2. द्र0 स्टडीज इन पुराणिक रेकार्डस, पृ02, डा0 हाजरा का मत है कि यद्यपि कुछ पुराणग्रंथ आपस्तंब सूत्र के पूर्वकालीन अर्थात् ई0पू0 800-400 से पूर्ववर्ती है तथापि उपलब्ध अठारह पुराणों की कल्पना ई0 तीसरी से पूर्व कथमपि नहीं कही जा सकती।
3. पद्मपुराण में प्रमुख सांगीतिक वाद्यों का स्वरूप-संगीत अप्रैल-2005,पृ0-3।
4. भारतीय संगीत का इतिहास-डा0 शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, पृ0-199
5. पद्म पुराण में चारों प्रकार के वाद्यों की श्रेणियाँ ही नही बल्कि उनके लक्षण भी बताये गये हैं- ''ततं तन्त्रीसमुत्थानमयनद्धं मृदंगजम्। शुषिर वंश सम्भूतं घनं तालसमुत्थितम्।'' अर्थात् तन्त्री (वीणा) से उत्पन्न होने वाला तत्, मृदंग से उत्पन्न होने वाला अवनद्ध, बांसुरी से उत्पन्न होने वाला शुषिर और ताल से उत्पन्न होने वाला घन-ये चार प्रकार के वाद्य हैं जो नाना भेदों से युक्त हैं। अध्याय 17, श्लोक 274 व अध्याय 24 श्लोक 20
6. पद्म पुराण-अध्याय 24 श्लोक 20
7. पुराणों में तंत्री वाद्य का महत्व-संगीत, फरवरी 2008,पृ0 49
8. मार्कण्डेय पुराण-अध्याय 50 श्लोक 82
9. मार्कण्डेय पुराण-अध्याय 68, श्लोक 25-26
10. ''वीणावेणुस्वनं गीतं किन्नराणां मनोहरम्'' (मार्कण्डेय पुराण-अध्याय 61श्लोक 57)
11. पुराणों में तंत्रीवाद्य का महत्व-संगीत-फरवरी 2008, पृ0-49
12. मार्कण्डेय पुराण-अध्याय 23 श्लोक 98-99
13. वायुपुराण-अध्याय 54 श्लोक 35-37 भारतीय संगीत का इतिहास-डा0 शरच्चन्द श्रीधर परांजपे, पृ0-215

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

14. वायु पुराण-अध्याय 30, श्लोक 198, 203 व 210
15. भारतीय संगीत का इतिहास-डा0 शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे पृ0-213
16. भारतीय संगीत शास्त्र-तुलसीराम देवांगन, पृ0-51
17. भारतीय संगीत शास्त्र-तुलसीराम देवांगन, पृ0 52
18. विष्णुपर्व-अध्याय 54 श्लोक 8, विष्णु पर्व-अध्याय 1 श्लोक 13
19. ''वल्लकी'' वाद्यमानो हि सप्त स्वर विमूर्च्छिताम्'' विष्णु पर्व अध्याय 28 श्लोक 111
20. आज्ञापयामास ततः स तस्यां निशि प्रहृष्टो भगवानुपेन्द्रः छालिक्यं गेयं बहुसन्निधानं यदेव गान्धर्तमुदाहन्ति (89,87) विष्णु पर्व जग्राह वीणामथ नारदस्तु षड्ग्रामरागादिसमाधि युक्ताम् हल्लीसकं तु स्वमेव कृष्णः सवंशघोषं नरदेव पार्थः (89,68) विष्णु पर्व
21. भारतीय संगीत का इतिहास-डा0 शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे पृ0-211
22. पुराणों में तंत्री वाद्य का महत्व-संगीत, फरवरी 2008,पृ0-49।
23. भारतीय संगीत शास्त्र-तुलसीदास देवांगन, पृ0-48
24. स्कंद पुराण-अध्याय 6 श्लोक 24-27 तक
25. स्कंद पुराण-अध्याय 9 श्लोक 1
26. स्कंद पुराण-अध्याय 7 श्लोक 12
27. नृत्तेनाराधयिष्यन्ति भक्तिमन्तस्तु मातृभि त्रैलोक्यस्यानुकरणं नृत्ते देवि प्रतिष्ठितम्। विष्णु धर्मोत्तर-अध्याय 34 श्लोक 17
28. पौराणिक काल में संगीत के नए मानदंड,संगीत दिसम्बर 99,पृ0 48।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक कथा–साहित्य में बनमालीविश्वालकृत 'जिजीविषा'

डॉ० निरुपमा त्रिपाठी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (संस्कृत)
कानपुर विद्यामन्दिर महिला (पी0जी0) महाविद्यालय
स्वरूपनगर, कानपुर।

अनेकविध साहित्य–सर्जना के माध्यम से समृद्ध संस्कृत वाङ्मय अतिप्राचीन काल से समाज की बहुविध समस्याओं को व्याख्यायित कर उसके निराकरण में सहायक रहा है। गीत, काव्य, महाकाव्य, नाटक, उपन्यास आदि की भाँति संस्कृत साहित्य 'कथा' की दृष्टि से भी निरन्तर समृद्धि को प्राप्त हो रहा है। ब्राह्मण–ग्रन्थ, उपनिषद् आदि से उद्भव प्राप्त कथा–साहित्य की एक समृद्ध परम्परा वर्तमान काल में उपलब्ध है। प्रत्येक युग में विभिन्न प्रेरणा स्रोतों से संस्कृत में कथाएँ लिखी जाती रही हैं। आधुनिक काल में संस्कृत–कथा अथवा लघु–कथा की सुदीर्घ परम्परा का श्रेय संस्कृत की पत्र–पत्रिकाओं को दिया जा सकता है। संस्कृत–चन्द्रिका, संस्कृत–रत्नाकर और भारती जैसी पत्रिकाओं में विभिन्न कथानकों से संकलित षताधिक कथाएँ प्रकाशित हुई जिनका संकलन पुस्तक के रूप में हुआ।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्त तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से आधुनिक संस्कृत कथा–साहित्य का प्रादुर्भाव माना जाता है। आधुनिक कथाकारों में पण्डिताक्षमाराव, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, शिवकुमार शास्त्री, पण्डित गणेश राम शर्मा, गोस्वामी हरिकृष्ण, गिरिराज शर्मा, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, केशव चन्द्र दास, डॉ० राधावल्लभ त्रिपाठी, इच्छाराम द्विवेदी, पं० जगन्नाथ पाठक आदि प्रमुख हैं। डॉ० बनमाली विश्वाल की प्रसिद्धि भी आधुनिक कथाकार के रूप में है। 'नीरव स्वनः', 'बुभुक्षा', एवं 'जिजीविषा' शीर्षक से डॉ० विश्वाल ने संस्कृत कथा–साहित्य–भण्डार को तीन ऐसे कथा–संग्रह प्रदान किए हैं जो पाठकों के मनोरंजन के साथ–साथ आधुनिक समाज की समस्याओं के चित्रण तथा सहज ढंग से उनका समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक कथाकारों की कथाओं से संकलित 'कथा–सरित्' नामक पत्रिका का सम्पादन करते हुए डॉ० विश्वाल इसके माध्यम से भी नवीन चेतनाओं को निरन्तर जागरित कर रहे हैं।

वर्ष 2006 में प्रकाशित 'जिजीविषा' 25 लघु कथाओं का संग्रह है। इस संग्रह की शीर्षक कथा जिजिविषा सेवती नामक एक ऐसी स्त्री की व्यथा है जो युवावस्था में ही पति से वियुक्त होकर भी अद्भुत धैर्य का परिचय देती है। वह पुत्र का पालन कर उसे समर्थ बनाती है। उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्र की माता के प्रति भावना इस रूप में दृष्टिगत होती है–'मम बाल्यावस्थायामेव मे पिता दिवंगतः। किन्तु तथापि माता धैर्यं न त्यक्तवती।सा रात्रिं दिवं श्रमं कृत्वा मां पालितवती। तस्याः ऋणम् अहम् आजीवनं सेवमानोऽपि परिशोद्धुं न शक्नोमि।''71 वर्षीया सेवती का जीवन पुत्र एवं पुत्रवधू द्वारा अर्जित धन से सन्तोषपूर्वक यथाकथचिंत चल ही जाता है। अचानक एक दिन निर्माणाधीन भवन हेतु श्रमिक के रूप में कार्य करते हुए ही भवन का आधार–स्तम्भ गिरने से उसके पुत्र एवं पुत्रवधू की भी मृत्यु हो जाती है। सेवती के समीप रह जाते हैं उसके अबोध पौत्र एवं पौत्री। इस विपत्ति के समय भी वह वृद्धा इस कथा में अपने दुःख एवं त्याग के साथ ही अपूर्व जिजीविषा का परिचय देते हुए दर्शायी गई है– ''यदि एकाकिनी अभविष्यत् तर्हि कदाचित् सा स्वप्राणानपि त्यक्तवती स्यात्। – – – एतस्यामपि वार्धक्यावस्थायां सा आजीविकाम् उपार्जयितुं कटिबद्धा अभवत्।''

वर्तमान समाज में क्षण भर के लिए प्राप्त दुःख से आत्महत्या करने वाली घटनाएँ नित्य प्रति घटित हो रही है। इनमें अनेक धनाभाव की समस्या से जनित होती हैं। समाज में ऐसी विपरीत परिस्थितियों से जूझते हुए व्यक्तियों में सेवती की जिजीविषा का प्रचार होना चाहिए।

'धूमायितं कैशोरम्' कथा के माध्यम से कथाकार ने परिस्थितिवश बाल्यकाल में श्रम कर जीविकोपार्जन को विवश बालमन की भावनाओं को चित्रित किया है। इस कथा के नायक मोनू (दस – ग्यारह वर्षीय) के कन्धों पर अपने साथ ही साथ अपनी मातामही के जीवन–यापन का भी भार है –''एवं मोनो : स्कन्धोपरि स्वसय मातामह्याश्च पालनपोषणादिभारः समापतितः।'' इस प्रकार का बाल –समूह समाज में निरन्तर उपेक्षा एवं तिरस्कार का पात्र क्यों बन रहा है ? यह समाज के लिए एक प्रश्न है। ऐसे बाल–समूह को यथावसर यथोचित सहायता प्रदान करने के स्थान पर उनकी परिस्थितियों का अपने स्वार्थानुकूल लाभ उठाना अतिसामान्य बात होती जा रही हैं। परिस्थितिवश बाल्यावस्था में क्षुधा–निवृत्ति हेतु श्रम के लिए विवश बाल–जीवन अपेक्षित सहायता का पात्र है न कि ऐसे कठोर शब्दों का–

''यदि पुनः कदापि त्वाम् अस्मिन् मार्गे द्रक्ष्यामि तर्हि तव शरीरं भागद्वयेन विभज्य श्येनं शृगालं च भोजयिष्यामि।''

समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग ऐसा भी है जो इन बालकों को भिक्षा देकर ही उनके प्रति अपने कर्तव्य की इतिश्री समझता है। किन्तु इसका समाधान भिक्षा नही है इसे बडे व्यङ्ग्यात्मक शब्दों में कथाकार ने मोनू के मुख से कहलवाया है–

'' एतत् रुप्यकद्वयं भवान् स्वपार्श्वे एव स्थापयतु। एतेन अपरं विशालं भवनं निर्माय सुखेन तिष्ठतु। अस्माकं कार्यं तु यथाकथमपि चलिष्यति। भवा.शाः तु मनुष्याः। वयं तु कीटस.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाः। अस्माकं जीवनेन, मरणेन च किम्। भवा.शाः न किमपि दरिद्रं स्वावलम्बिनं भवितुं प्रेरयन्ति। अपि तु एवमेव रुप्यकं रुप्यकद्वयं वा प्रदाय भिक्षुकान् निर्मान्ति। एतदपि रुप्यकद्वयं गृहीत्वा अस्मिन् भवने तलद्वयं योजयतु।"

वंश–रक्षा के ब्याज से भ्रूण–परीक्षण करवाना तथा कन्या –भ्रूण की हत्या करने में लिप्त समाज की वर्तमान स्थिति सर्वविदित है। इसका दुष्परिणाम है –समाज में घटता हुआ स्त्री– अनुपात। ऐसे वर्ग जो इस प्रकार के कुकृत्य में लगे हैं अथवा उसे बढावा दे रहे हैं , को बडे सहज ढंग से शिक्षा देती है कथा वंश–रक्षा। भ्रूण–परीक्षण एवं कन्या–भ्रूण–हत्या के विरोध में स्त्री समाज को ही आगे आना होगा। भले ही इसके लिए उसे अपने अर्न्तमन से, परिवार से, समाज से टकराना पडे। जैसे प्रभा के माध्यम से लेखक ने स्पष्ट किया है–

"स्वयं नारी सती अहं नारीजात्याः कृते इमम् अत्याचारं न सहिष्ये। यतः मम आत्मा एव मां धिक्करोति । एतावत्कालं यावत् मया यद् भ्रूहत्यारूपं पापमाचरितं तस्य कृतेऽपि प्रायश्चित्तमपेक्षते । श्वश्र्वाः पत्युश्च विरोधं कृत्वा इमं सन्तानम् अवश्यं प्रसविष्ये । वंशरक्षारूपस्य अन्धविश्वासस्य कृते अहं सृष्टेः व्यवस्थां स्वहस्ते न नेष्यामि । गर्भस्थः शिशुः कन्या भवतु , पुत्रो वा । अहं तम् अवश्यं रक्षामि।"इति।

वैश्वीकरण के वर्तमान युग की अन्धी आधुनिकता के आर्कषण ने समाज के प्रत्येक वर्ग को आकृष्ट कर रखा हैं। बुद्धिजीवी समुदाय भी उससे अछूता नहीं हैं अपने मूल्यों को विस्मृत कर देने वाले व्यक्ति को उन्नति की कामना किस सीमा तक पथ–भ्रष्ट कर देगी, यह सोच पाना असम्भव है। मानवात् दानवं प्रति कथा का नायक बुद्धिजीवी रमापति ऐसे ही वर्ग का प्रतिनिधि है जो पत्नी को देवी समझने वाली अपनी संस्कृति को विस्मृत कर अपनी पत्नी को उन्नति–प्राप्ति हेतु साधन–वस्तु समझता हुआ सहर्ष विदेशी व्यक्ति द्वारा उसका सर्वस्व नष्ट करवा देता है। यह कथा ऐसे तथाकथित बुद्धिजीवियों को सावधान करती हैं।

इस कथा–संग्रह में जहाँ यथार्थ की कड़वाहट है वहीं जीवन के अनेक पक्षों का आदर्श स्वरूप भी प्रस्तुत किया गया है। विवाह–सम्बन्ध कोई व्यापार नहीं अपितु विचारों के मेल की परिणति है। स्त्री पुरुष में एक–दूसरे की इच्छाओं के सम्मान की भावना ही सुखी दाम्पत्य–जीवन की आधारशिला है, न कि दुराग्रहपूर्ण रीति से किसी एक की इच्छापूर्ति। छोटे–छोटे संवादों से इस गम्भीर भाव को लेखक ने सफलतापूर्वक व्यक्त किया है। विवाह के उद्देश्य से कन्या का साक्षात्कार करने आए हुए युवक के संवाद उल्लेखनीय हैं –

ततः सः तस्याः विशये सर्वं साग्रहं प्रश्टुम् आरब्धवान्। "भवती मत्स्यं खादति?" इति तु तस्य प्रथमः प्रश्नः आसीत्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आम् अहं खादन्ती अस्मि। परन्तु यदि भवान् न इच्छति तर्हि त्युक्तुमपि षक्यते।

शिक्षा के महत्व को जीवन के प्रत्येक वर्ग हेतु दर्शाने के लिए लेखक ने नीलाचलः का कथानक कल्पित किया है। इस प्रयास में लेखक सफल हुआ है।

विवेच्य कथा–संग्रह में स्वाभिमानम्, पापगर्भः जैसी कुछ ऐसी भी कथाएँ हैं जिनके शिथिल नैतिक मूल्यों के कारण लेखक का उद्देश्य स्पष्ट नहीं हो सका है। यद्यपि इस प्रकार की कथाएँ भी घटनाओं के उतार–चढ़ाव के साथ पाठक की रूचि को अन्त तक बनाए रखती हैं।

वस्तुतः इस संग्रह की कथाओं की यह सामान्य विशेषतः है कि इनमें आद्योपान्त पाठकों की रूचि बनी रहती है। इसमें इसके लघु एवं सरस संवादों का योगदान तो है ही उन शब्दों का भी है जिसे लेखक ने बोल–चाल की भाषा से ग्रहण कर कथाओं के प्रवाह एवं बोधगम्यता में वृद्धि की है। जैसे – स्कूटरयानम्, बसयानम्, ड्रमवादकाः , 'गालिं दत्वा' , 'तथा नास्ति चाचा' इत्यादि।

इसी प्रकार विवेच्य कथा–संग्रह की प्रत्येक कथा मध्य–निम्न वर्गीय समाज के किसी न किसी वर्ग–विशेष की समस्या को इंगित करते हुए उसके निराकरण की दिशा में एक सार्थक प्रयास करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास के काव्यों में प्राचीन एवं अर्वाचीन संस्कृतियों की उद्‌भावना (मेघदूत और अभिज्ञान शाकुन्तल के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ० वत्सला उपाध्याय
व्याख्याता (संस्कृत)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
झालावाड़-326001

कालिदास का काव्य देववाणी का षोडश शृंङ्गार हैं। उनकी कविता हृदय से स्वत: प्रस्फुटित होती हैं। उन्होंने चराचर जगत् को अभिभूत करने वाली कोमल भावना की उद्‌भावना की है। वागर्थ और भावों की नवीन सरस शय्या उनकी कविता में विद्यमान है। महाकवि की प्रसिद्धि के त्रय कारण 1. उपमा कालिदास 2. अभिज्ञान शाकुन्तल, 3. मेघदूत। 'मेघदूत' से ही संदेश काव्य, 'दूतकाव्य' की नई सरणि का प्रादुर्भाव हुआ है। 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नाट्य जगत् का आभूषण है, तो 'मेघदूत' गीतिकाव्य का आभूषण है। दोनों ग्रन्थ विधाद्वय के मूध र्भिषिक्त काव्य है। ऐसे काव्यों की रचना न हुई है, न होगी न होने की संभावना है। इसमें कोई भी विप्रतिषेध नहीं है (एत्सदृशं काव्यं न भूतं, न भविता न भवितुमर्हति इति निश्प्रचम्)

मेघदूत शापहेतुक विप्रलम्भ करुण संदेश का गीतिकाव्य है। महाकवि ने मेघदूत में भावो की जो अभिव्यंजना की है, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानों महाकवि उन भावों, दृश्यों, घटनाओं के प्रत्यक्षदर्शी रहे हों। उल्लेखनीय है कि मेघदूत में भूतकाल की घटना का वर्णन न होकर कालिदास के जीवन काल का वर्णन है-ऐसा उल्लेख शोध पत्रिका कालिदास भाग XI2006 में डॉ. ओम् प्रकाश लाल श्रीवास्तव ने अपने लेख 'कालिदास की तिथि: ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी' में लिखा है।[1] महाकवि द्वारा अनुस्यूत भावो की परिकल्पना में पाठक गोता लगाने लगता है उसमें डूब जाता है, और सम-सामयिक सांस्कृतिक परिदृश्य में उन भावों की नवीन परिकल्पना करने लगता हैं। कवि ने मेघदूत में इस भूमण्डल पर स्थित प्रदेशों, नदियों, पर्वतों, पशु-पक्षियों, वृक्षों, पुष्पों, सुन्दरियों, बावड़ियों, तालाबों नृत्य-संगीत, मद्यपान, वाद्ययन्त्रों, चित्रकला, स्थापत्य कला आदि का जो चित्र उकेरा है, काव्य को पढ़ते समय• ये सारे दृश्य चित्रपट में दर्शाये गये दृश्यों की तरह चक्षुओ में अंकित हो जाते हैं। ये सारे दृश्य महाकवि के जैविक, भौगोलिक, प्राकृतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सौन्दर्यबोध, प्रणय, सभ्यता और संस्कृति की निष्णातता के परिचायक हैं। संस्कृति द्वय पर प्रकाश डालने से पूर्व हम महाकवि की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालेंगे। महाकवि विक्रमादित्य जैसे प्रतापशाली राजा के राज्याश्रय में रहने वाले थे। जिस प्रकार साहित्य और समाज का घनिष्ट संबंध है उसी प्रकार इतिहास और साहित्य भी एक दूसरे के मुखापेक्षी है, अन्योन्याश्रित है। साहित्य, इतिहास आपस में तथैव सम्पृक्त है,यथैव शब्द और अर्थ, पार्वती और परमेश्वर आपस में संपृक्त है।[1] शब्दकोष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार इति+ह+आस् (अस् धातु, लिट् लकार, अन्य पुरुष, एकवचन) परम्परा से प्राप्त उपाख्यान[2] अर्थात् इतिहास के अन्तर्गत उस देश, काल, परिस्थिति में घटित होने वाली घटनाओं का कालानुक्रमिक शब्दशः यथार्थ चित्रण होता है। साहित्य का सृजन भी कवि, देश, काल परिस्थिति के अनुसार अपनी नित्य नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से करता है, जिससे पाठक को आनन्द की प्राप्ति होती है। इतिहास आनन्दानुभूति से पृथक् है। इस प्रकार कवि, इतिहास, साहित्य और समाज का अन्तःसम्बन्ध है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्राक्तन काल में राजागण विलासिता में रत होने के कारण आक्रमणकारियों से पराभूत होते है, अथवा आपसी फूट के कारण एक नृप दूसरे नृप से पराभव को प्राप्त करते थे। महाकवि ने राजाओं की विलासिता को अपने चर्म चक्षुओं से प्रत्यक्षतः देखा था। राजसी वातावरण में रहने के कारण महाकवि कोमल तथा ललित वस्तुओं के प्रति अधिक आकृष्ट मालूम पड़ते हैं। मेघदूत में कवि ने इस आमोद-प्रमोदमय वातावरण की नानारूपों में अभिव्यंजना की हैं। मेघदूत की वाचना करते समय, भावों में आकंठ निमग्न होने पर नव-भावों की उद्भावना होने लगती है। ऐसा प्रतीत होता है मानों कवि ने उभय संस्कृतियों (प्राचीन एवं अर्वाचीन) की उद्द्भावना की हों।

जी०डे०वेडस ने फ्यूच आव दी वेस्ट (लन्दन-1953) में कहा है कि सभ्यताएँ ना तो जन्म लेती हैं और न मरती हैं, प्रत्युत् वे परिवर्तित होती है या समाहित हो जाती है।[3] यह कथन महाकवि के साहित्य के साथ ही साथ इक्कीसवीं शताब्दी में भी चरितार्थ हो रहा है। आज वैश्वीकरण (भूमण्डलीकरण) उपभोक्तावाद, बाजारवाद, वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति तथा संचार क्रान्ति के दौर में भारतीय संस्कृति में पाश्चात्य संस्कृति समाहित हो रही है। आज का मानव भौतिकता की दौड़ में वावलीबूच बना जा रहा है अद्य संस्कृति और सभ्यता से जुड़े खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, उत्सव, परम्परा, नृत्य, संगीत, भाषा, दृश्य-श्रव्य साधन मानवीय उपभोग एवं प्रयोग की हर वस्तु में पश्चिमी सभ्यता का अपमिश्रण हो रहा है। सभ्यताओं,संस्कृतियों एवं कलाओं के मूल पारम्परिक स्वरूप में आमूलचूल परिवर्तन हो रहा हैं स्व-अस्तित्व स्थापित करने हेतु लोग प्राक्तन मुल्यों को भूलते जा रहें है। आज कला, साहित्य प्रेमियों की स्थिति नारसिस[1] जैसी
हो गई है। वे आत्ममुग्धता के वशीभूत हो गये हैं। कालिदास का साहित्य चिरंतन एवं शाश्वत है, महाकवि के साहित्य में प्राचीन (पूर्व)अर्वाचीन (पश्चिम) के लिए कोई विनिगमक नहीं है। प्रत्युत् वह चिर नवीन है।

डॉ. भगवत शरण उपाध्याय ने,'कालिदास का भारत[2] में लिखा है कि कालिदास का युग एकरूप अभिरुचियों के प्रति रुचि प्रदर्शित करने लगा था जिसका उन्होंने विरोध किया और उनमे बहुत अंश तक परिवर्तन ला परिवर्धन को स्थान दिया। प्रत्येक नई वस्तु उपेक्षा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घृणा का पात्र थीं और जो कुछ प्राचीन था उसका स्वागत उत्साह और प्रतिष्ठा के साथ किया जाता था, किन्तु वे आगे बढ़े और अपने नए विचारों तथा नव नाटकों के लिए अपनी प्रेरणाओं से एक प्रशंसक वर्ग का निर्माण किया। उन्होनें घोषणा की कि प्राचीन वस्तु केवल अपनी प्राचीनता के कारण अच्छी नहीं है और न नये को इसलिए घृणित और उपहास्य समझना चाहिए क्योंकि वह नवीन है।कालिदास भारतीय संस्कृति के पोषक है यह बात सार्वजनीन है लेकिन वे नवीनता के भी पक्षधर है, जैसा कि उन्होंने अपने नाटक 'मालविकाग्निमित्र' में स्वयं लिखा है- 'कोई भी काव्य प्राचीन होने से रमणीय नहीं हो सकता और नवीन होने से (वह) निन्दनीय भी नहीं हो सकता। विद्वान् तो परीक्षा करके उत्तम काव्य को ग्रहण करते हैं, दूसरों की बुद्धि पर विश्वास करने वाले लोग तो मूर्ख होते हैं।3 उन्होंने अपने नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तल' तथा गीतिकाव्य 'मेघदूत' में शाप संयोजनाक की नवीन कल्पना की है। महाकवि अपने समय की नवीन प्रवृत्तियों की तरफ आकृष्ट हुए थे और उन्होंने नवप्रयोग किया। उन्हें कीर्ति भी मिली। नवीनता को ग्रहण करने की दृष्टि लेकर हमने मेघदूत के कुछ श्लोकों में नवीन अभिप्रायों की परिकल्पना की है जो सम-सामयिक सांस्कृतिक परिदृश्य से साम्य रखते हैं। मेघदूत संस्कृत काव्य में एक रोमांचक युग के आरम्भ की घोषणा करने वाला काव्य है, मेघदूत तो रस भरे मोदक के समान है जिधर से तोड़ो उधर से ही मीठा लगेगा, जितनी बार पढ़िए उतनी ही बार उसमे नया-नया चमत्कार मिला चला जाएगा- 'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः'[1] सुन्दरता का लक्षण ही यह है कि उसमें क्षण-क्षण पर नया ही नया चमत्कार दिखाई पड़ने लगे। कुछ श्लोकों में मुझे ऐसा ही नया चमत्कार उद्भासित होता हैं। कुछ श्लोको में हमने भी नई उद्भावना की हैं। इन श्लोकों में प्राचीन एवं नवीन संस्कृति के संगम की अभिव्यंजना होती है प्रस्तुत श्लोक से जो भाव साम्य निकलता है वह वर्तमान में प्रासंगिक है-

'यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः।
आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्पकरेष्वाहतेषु॥ उ०/5 ॥

(जिस अलकापुरी में सुन्दरियों को साथ में लिये हुए यक्ष धवल मणियों से बने हुए तथातारागणों के प्रतिबिम्ब रूप पुष्पों से परिष्कृत, प्रासादों की अट्टालिकाओं पर जाकर तुम्हारी गम्भीर ध्वनि की तरह गम्भीर ध्वनि वाले मृदंगो पर धीरे-धीरे थपकी लगाए जाने पर कल्पवृक्ष से उत्पन्न, रतिक्रीड़ा रूप फलवाले, रतिफल नामक मद्य का बारम्बार सेवन करते हैं।)

यह श्लोक पुरातन एवं पाश्चात्य संस्कृति का सुन्दर निदर्शन है। प्रस्तुत श्लोक से जोभाव साम्य प्रकट होता है वह वर्तमान सन्दर्भ में प्रासंगिक है। इससे नवीन संस्कृति के सन्दर्भ में निम्न भाव प्रकट होता है-महाकवि कालिदास ने मानों वर्तमानकालिक बीयर-बार, पब,

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डांस-बार (डिस्को) लाइववैण्ड (ऑरकेस्ट्रा) को प्रत्यक्षत: देखा हों। महानगरों में स्थित आधुनिक बीयर-बार,पब, ऑरकेस्ट्रा की सजावट भी कांच से निर्मित, आधुनिक सजावट के बेहतर संसाधनों से युक्त, विद्युत तरंगो की सतरंगी आभा से युक्त होती हैं।

इनकी आंतरिक साज-सज्जा चकाचौंध उत्पन्न करने वाली होती हैं। ये डांस-बार पारदर्शी शीशे से निर्मित होते हैं, अत: इनमें विलासिता का आनन्द लेने के लिए पधारे लोगों का प्रतिबिम्ब, प्रतिबिम्बित होता हैं। निशा काल में इन बीयर-बारों में मन्द-मन्द गति से संगीत की ध्वनि प्रारंभ होते ही संभ्रान्त प्रेमी-युगल, रसिक उच्च पदाधिकारीगुण, उनके पुत्र, बड़े-बड़े राजनेता, उनके बिगड़ैल पुत्र, बार-डांसर (नर्तकियों) के साथ मदिरा का पान करते हैं। मेरी कल्पना है कि सम्भ्रान्त लोग मानों यक्ष हैं और बार नर्तकियाँ उत्तम स्त्रियों के सदृश हैं जिनका संग आधुनिक संभ्रान्त जन रूपि यक्षों को मिल रहा है।

इसी प्रकार अन्य श्लोक में:-

'मन्दाकिन्या सलिलशिशिरै: सेव्यमाना मरुद्भि:-
र्मन्दाराणामनुतटरूहां छायया वारितोष्णा:।।
अन्वेष्टव्यै: कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढै:
संक्रीड़न्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्या:।। उ0/6

(जिस अलकापुरी में आकाशगंगा के जल से शीतल, पवन से सेवित, तट पर उगे हुए मन्दार वृक्षों की छाया से निवारित तापवाली, देवगणों के द्वारा चाही गई (यक्ष) कुमारियाँ सुनहरी बालुओं में मुट्टी रखकर छिपाई गई अतएव ढूँढने के योग्य मणियों से क्रीड़ा किया करती हैं।)

प्रस्तुत श्लोक से नव संस्कृति के सन्दर्भ में जो आशय निकलता है, वह इस प्रकार है:- जैसे यक्ष कन्यायें अतीव सुन्दर होने के कारण देवताओं के द्वारा चाही जाती है वैसे ही ये बार-डान्सर (बार-टेण्डर), आधुनिक आम्रपालियाँ धनाढ्य, भ्रष्ट रसिकों, भ्रष्ट राजनेताओं, भ्रष्ट उच्चाधिकारियों द्वारा चाही जाती हैं। ये बीयर-बार (मदिरालय) भी कृत्रिम जल से शीतल, कृत्रिम वायु (एयर कन्डीशनर, ए०सी०) से युक्त, कृत्रिम झरनों, कृत्रिम आतपरोधी उपवनों से युक्त होते हैं। इन मयखानों में आधुनिक आम्रपालियाँ नाना-प्रकार के काले-धन्धे का गुप्त व्यापर भी किया करती हैं, जिनके पीछे बड़े-बड़े माफिया सरगनों का हाथ रहता है। मीडिया द्वारा ऐसी अनेक घटनाओं का पर्दाफाश भी किया जाता है। इन बार-बालाओं का देहिक शोषण भी किया जाता है।

इन बार-बालाओं (बार टेन्डर्स) के साथ होने वाले अमानवीय कृत्यों को रोकने हेतु भारत सरकार ने कुछ वर्ष पहले इन पब, बीयर-बार में छापा डालकर इनमें कार्यरत बार-टेण्डर के काम पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। संभवत:महानगर बम्बई में यह प्रतिबन्ध आज भी जारी है लेकिन कर्नाटक सरकार ने सुरक्षा निश्चित करनेपर महिलाओं को बार-टेण्डर (बार-डांसर) के तौर पर काम करने की इजाजत दे दी हैं।[1]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे देश में प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन काल तक समाज के हर वर्ग, हर जाति हर समुदाय में मन्दिरापान करने की प्रथा रहीं हैं। तीज-त्यौहारों, शादी, उत्सवों के अवसर पर मदिरापान कर नृत्य करना संभ्रान्त लोगों एवं आमजन में अद्यापि प्रचलित है। राजतन्त्र युग में नृपति गण अपने मनोरंजन के लिए नृत्य संगीत का आनन्द लेते हुए मदिरापान करते थे जिसका चित्रण महाकवि ने किया है, तथापि हमारे देश में मदिरापान करना हेय दृष्टि से देखा जाता रहा है और आज भी यही स्थिति है। आधुनिक युग के बीयर बार (डिस्को) पाश्चात्य संस्कृति की देन हैं अधुना इन बीयर-बारों में जाकर नामचीन कम्पनियों के मद्य का पान करना संभ्रान्त घरों में फैशन हो गया हैं। आज के परिवेश में यही आधुनिकता, नवीनता की परिभाषा हो गई हैं। इसका प्रभाव मध्यमवर्गीय परिवारों पर भी हो रहा है। मीडिया, टी०वी० चैनल, चित्रपट इनको प्रसारित करने में अहं भूमिका निभा रहे हैं। ये साधन युवा पीढ़ी को उन्मुक्तता,स्वच्छन्दता से जीवन जीने की ओर दिग्भ्रमित कर रहे हैं। आज संभ्रान्त घरों के युवक-युवती भी इन मयखानों (बीयर-बारों) में जाने के अभ्यासी हो गये है। इसका तरोताजा उदाहरण पटियाला के बीयर-बार में घटित घटना है, जहाँ मदिरा के नशे में धुत पुलिस अधिकारी की बेटी सड़को पर गिरी पड़ी थी।।

एक अन्य श्लोक से भी ऐसा ही अभिप्राय निकलता है:-

'अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यह रक्तकण्ठै-
रूद्गायद्भिर्धनपतियशः किन्नरैर्यत्र सार्धम्।
वैभ्राजारव्यं विवुधवनितावारमुख्यासहाया।
बद्धालापा बहिरूपवंन कामिनो निर्विशन्ति।। उ0/10

(अलका में भवनों के भीतर अक्षय खजाने को रखने वाले एवं देवाङ्गना रूपी वेश्याओं को साथ लिए तथा वार्त्तालाप में मग्न कामुक यक्ष प्रतिदिन कुबेर के यश का ऊँचे स्वर में गान करने वाले एवं मधुर कंठ ध्वनि वाले किन्नरों के साथ ही वैभ्राज नाम बाह्योद्यान का उपभोग करते हैं। अलका के प्रसादों में अक्षय खजाना (अपरिमित धनराशि) है। वहाँ के धनाढ्य यक्ष विलासिता में कितना ही धन खर्च कर दें वह धन समाप्त होने वाला नहीं है।)

प्रस्तुत श्लोक भी पश्चिमी संस्कृति के सन्दर्भ में सर्वातिश्येन प्रासंगिक है। आधुनिक राजनेताओं के बिगड़ैल पुत्र या बड़े पूँजीपति, भ्रष्ट उच्च पदाधिकारी विलासिता में कितना ध न खर्च दें उनका धन समाप्त होने वाला नहीं है जैसे ऐश्वर्यशाली यक्ष विभ्राज द्वारा निर्मित अलका के बाह्योद्यान में देवों द्वारा चाही गयी वेश्याओं में सम्मानित वेश्याओं के साथ आनन्द का उपभोग करते हैं वही पर कुबेर के यशगान में मधुर कण्ठ ध्वनि वाले किन्नर भी गान करते रहते है। वैसे ही आधुनिक आकर्षक मनभावन मदिरालय में मधुबालाओं (डांस-टेन्डर्स) के साथ राजनेता, राजनेताओं के बिगडैल पुत्र, सम्भ्रान्त एवं उच्चपदाधिकारीगण गीत-संगीत के

CC-0. Gurukul Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
साथ विलासितामय जीवन का आनन्द लेते हैं। इनके अधीनस्थ कर्मचारीगण (चमचें,दलाल) किन्नरों की भाँति इनके यशगान में लगे रहते हैं। ऐसे जीवन का आनन्द लूटने का ताजा निदर्शन बम्बई एअर पोर्ट के अधिकारिगण हैं, जो पूना के बीयर-बार में सम्भ्रान्त महिलाओं के साथ सी.बी.आई. द्वारा गिरफ्तार किए गए इसका पर्दाफाश मीडिया 'आजतक' चैनल द्वारा किया गया।

इसी प्रकार के अभिप्राय से युक्त अन्य श्लोक इस प्रकार है:-

'वापी चास्मिन् मरकतशिलाबद्ध सोपानमार्गा,
हेमश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टं
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसा।। उ0/13

(मेरे भवन में मरकत माणिं से बनी सीढ़ियों वाली और चिकने नीलम मणि से निर्मित नालदण्ड वाले सुवर्ण निर्मित विकसित कमलों से आच्छादित एक बावड़ी (वापी) है, जिसके जल में निवास करने वाले राजहंस मेघ को उपस्थित हुआ देखकर भी चिन्ता रहित हो, समीप में ही वद्यमान मानसरोवर को उत्सुकतापूर्वक स्मरण नही करेंगे।)(वापी का जल इतना परिशुद्ध है कि वर्षा से भी वह मलिन नहीं होगा, अतः हंस निश्चिन्त हैं।)

प्रस्तुत श्लोक से आज के सन्दर्भ में निम्न भाव साम्य प्रस्फुटित होता है:- आधुनिक युग मे बड़े-बड़े राजनेताओ, पूँजीपतियों के फार्म हाउस में नीलमणि की आभा से युक्त स्वीमिंग पुल बने होते हैं इसलिए ये राजनेता, पूँजीपति लोग अन्य बावड़ी या सरोवर में स्नान करने नहीं जाते हैं राजनेता, पूँजीपति मानो राजहंस हों।

एक अन्य उदाहरण जो ऐसे ही अभिप्राय से युक्त है:-

'गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
रूद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः
सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वी
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लावास्ताः ।। पू0/37

(वहाँ उज्जयिनी में रात्रि के समय अत्यन्त गाढ़े अन्धकार के कारण न दिखलाई पड़ने वाले राजमार्ग पर प्रियतम के घर जाती हुई स्त्रियों के लिए (तुम कसौटी पर खीचीं गई) सुवर्ण रेखा की तरह चमकने वाली बिजली से भूतल को प्रकाशित कर देना। वे प्रकृत्या भीरु होती है।(अतः उस समय तुम) वर्षा और गर्जन से मुखरित न होना (शांत वातावरण में अशांति मत उत्पन्न करना।) प्रस्तुत श्लोक में भी आज की अप संस्कृति के अनुरूप भाव निष्ठ्रयूत है। आज महानगरों में स्थित रेड लाइट एरिया में देह व्यापार करने वाली युवतियाँ (काल-गर्ल्स), सम्भ्रान्त काल-गर्ल भी अपने मुख को ढककर, फोटो क्रोमिक शीशे से युक्त चार पहिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाहनों से निशा के सन्नाटे में अपने प्रिय के पास जाती हैं। ये आधुनिक अभिसारिकाएँ भी स्वभाव से भीरु होती हैं। अधुना महानगरों में सम्भ्रान्त घरों की युवतियाँ भी इस अप संस्कृति का अन्धाधुन्ध अनुकरण कर रहीं हैं

हमारे देश में प्राचीन काल में भी ऐसी प्रथा थीं। इन कर्मो में लिप्त युवतियों को वेश्या, रन्डी, खानंङ्गी,तवायफ, गणिका आदि नामों से सम्बोधित किया जाता था। ये राजाओं-महाराजाओं की विलासिता का साधन थीं यथा-बाजबहादुर-रूपमती, बाजीराव मस्तानी। ये राजाओं, महाराजाओं की विलासिता का साधन थीं। इतिहास की सर्वाधिक चर्चित गणिका 'आम्रपाली' के चरित्र को लेकर आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'वैशाली की नगरवधू' नामक उपन्यास लिखा। 'वसन्तसेना' के शूद्रक ने अपने 'मृच्छकटिक' प्रकरण की नायिका बनाया। इसके साथ ही प्राचीन काल में 'देवदासी' बनाने की प्रथा भी प्रचलित थीं। इनको मन्दिरों में पूजा-अर्चना के लिए बनाया जाता था। कालान्तर में इनका भी देहिक शोषण किया जाने लगा था। कालिदास मन्दिर में पूजार्थ रखी गयी देवदासी से परिचय रखते ये ऐसा भी उल्लेख मिलता है। मेघदूत में महाकवि ने उज्जैन के महाकाल मन्दिर की देवदासियों का उल्लेख किया है।

उपर्युक्त विश्लेषण करने पर हम यह देखते हैं कि 'मेघदूत' में प्राचीन एवं अर्वाचीन दोनों ही संस्कृतियो की उद्भावना निस्यूत है। मेघदूत को भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों आलोचको की प्रशंसा प्राप्त है। मेघदूत की कीर्ति विश्वविख्यात है, यही कारण है कि मेघदूत का अनुवाद उतनी बार हो चुका है कि जितनी बार होरैस के गीतो का। महाकवि का साहित्य कालजयी साहित्य है उन्होंने उसमे ऐसी-ऐसी मणियाँ अनुस्यूत की है जो सार्वभौमिक, सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक है। कीथ ने प्रशंसा करते हुए लिखा है:-

"Indian Criticism has ranked it highest among Kalidas for brevity of expression, richness of content and power to elicit sentiment and the praise is not understood"

M Fanch:- के अनुसार There is nothing as perfect in the elegiac literature of Europea as the Meghaduta of kalidas.

'अभिज्ञान शाकुन्तल' नाट्य जगत् का वह अमूल्य हीरा है जिसकी चमक कभी फीकी नहीं हो सकती। आद्योपान्त अनेकशः वाचना करने पर नित्य नूतन भावानुभूमियों का प्रस्फुटन हुआ करता है। महाकवि अपने युग की नव-प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख हुए, गीर्वाण वाणी द्वारा उन प्रवृत्तियों को अपने ग्रंथों में साकार किया और उन्हें अक्षय कीर्ति मिली। 'शाकुन्तल' में कवि ने जीवन के प्रत्येक पक्ष की सुन्दर संयोजना की है। सामाजिक, धार्मिक, गृहस्थ, राजधर्म, तपोवन-संस्कृति, जीव-जगत्,पादप-जगत्, सौन्दर्य, प्रणय, पर्यावरण-संस्कृति आदि का शाकुन्तल मनोरम निदर्शन हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा प्रतीत होता है मानों महाकवि ने वर्तमान मूल्यों एवं संस्कृतियों के परिप्रेक्ष्य में उसे सृजित किया हों। इसमे भी पूर्व और पश्चिम (उभय संस्कृतियों का समन्वय दृग्गोचरीभूत होता है। यह समन्वय भी कवि ने अपनी प्रगल्भपूर्ण मेघा से बड़ी अनवद्यता के साथ समाहित किया है। कतिपय निदर्श प्रस्तुत है:-

'गान्धर्वेण विवाहेन वह्वयो राजर्षि कन्यका:।

श्रूयन्ते परिणीतास्ता: पितृमिश्चानुमोदिता।। 3/2

(महाकवि के शब्दों में दुष्यन्त की उक्ति है-बहुत सी राजर्षियों की कन्यायें गान्धर्व विवाह की विधि से विवाहित हुई (और बाद में) वे पिता आदि के द्वारा समर्थित भी की गयी ऐसा सुना जाता है।

दुष्यन्त की उक्ति के माध्यम से महाकवि ने गान्धर्व विवाह का समर्थन किया है। दुष्यन्त- शकुन्तला कण्व मुनि की अनुपस्थिति में ही विवाह करते हैं। दुष्यन्त प्रत्यभिज्ञान स्वरूप मुद्रिका शकुन्तला को देता हैं। ग्रन्थि-बन्धन के पश्चात् दुष्यन्त हस्तिनापुर चला जाता है। जब कण्व मुनि को गान्धर्व विवाह का पता चलता है तो वे कुपित नहीं होते है। बल्कि पुत्र उत्पन्न होने पर सम्मान के साथ उसे नृप दुष्यन्त के पास भेजते हैं। गान्धर्व विवाह के सन्दर्भ में मनु का कथन है:-

'इच्छाऽन्योन्यसंयोग: कन्यायश्च वरस्य च।

गान्धर्व: स तु विज्ञेयो मैथुन्य: कामसम्भव:।।[1]

(गान्धर्व विधि के विवाह में जब कन्या व वर संयोग से एक दूसरे से मिलते हैं तो आपसी सहमति और स्वेच्छा से विवाह करते हैं, जो मैथुन व काम प्रेरित होता है।)

प्राचीन काल में गान्धर्व विवाह राजाओं के द्वारा (वह भी क्षत्रिय) राजाओ के द्वारा ही किए जाते थे। लेकिन समाज में गान्धर्व विवाह को मान्यता प्राप्त न थी। क्षत्रिय राजा होने के कारण दुष्यन्त द्वारा गान्धर्व विवाह करना औचित्य सम्मत है। लेकिन समाज में गान्धर्व विवाह करने वाले को हेय दृष्टि से देखा जाता था। पश्चिमी देशों में अधिकांशतया गान्धर्व विवाह ही होते है, जैसा कि मनु ने लिखा है कि ये विवाह, मैथुन व कामप्रेरित होते हैं अत: दाम्पत्य सम्बन्ध प्रगाढ़ होने के पूर्व ही वहाँ सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव से भारत में भी इस विवाह का प्रचलन बढ़ गया हैं यह कहा जा सकता है कि महाकवि ने दुष्यन्त की उक्ति के माध्यम से समसामयिक सांस्कृतिक परिस्थिति में नासूर की तरह बढ़ती हुई दहेज की समस्या से माता-पिता को निजात दिलाने हेतु एक नवीन मार्ग प्रशस्त किया हों। आज युवतियों द्वारा गान्धर्व विवाह करने पर माता पिता सहर्ष आशीर्वाद प्रदान कर देते हैं क्योकि उनके दहेज की समस्या का समाधान हो जाता है। कुछ परिवार प्रतिकार (विरोध) भी करते हैं। एक समय ऐसा भी था जब भारतीय समाज में गान्धर्व विवाह करने की सहर्ष स्वीकृति नहीं दी जाती थी। विवाह करनेवाले युवक और युवती को माता-पिता द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रताड़ित किया जाता था, यातना दी जाती थीं अत: प्रेमी-युगल माता-पिता से भयाक्रान्त होकर चोरी-छिपे विवाह करते थे लेकिन आज स्थिति में बदलाव आ गया है। गान्धर्व विवाह के विषय में महाकवि की दृष्टि उदारवादी है। महाकवि ने गान्धर्व विवाह का उदात्त स्वरूप उपस्थित किया है एतदर्श उन्होंने दुर्वासा के शाप की संयोजना की है। शाप के फलस्वरूप उसे स्वकृत प्रणय विस्मृत हो गया। महाकवि के पात्रों से यदि कोई अपराध,अनाचार हुआ है तो महाकवि ने उन्हें तपस्या और पश्चाताप की अग्नि में जलाकर परिशुद्ध कर दिया है। जैसे स्वर्ण अग्नि में जलाने के उपरान्त ही परिशुद्ध होता है वैसे ही प्रणय भी विरह की अग्नि में तपने के बाद ही परिपक्व होता है। कठिन तपस्या के पूर्व सच्चा प्रेम प्रादुर्भूत नहीं हो सकता, वह तो केवल कामवासना है। दुष्यन्त शकुन्तला का प्रथम प्रणय भी काम के वशीभूत था जो धर्म विरूद्ध था। शाकुन्तल तो 'धर्माविरुद्धकामोऽस्मि' का जीवन्त उदाहरण है। विरहाग्नि में तपने के पश्चात् ही धर्म, काम का समन्वय होकर भोग की परिणति होती है। मुद्रिका प्राप्ति के पश्चात् जब उसे सारी घटनायें स्मृत हो जाती हैं तब वह पश्चाताप का अनुभव करता है और शकुन्तला से क्षमा माँगता है। राजा-शकुन्तलाया:पादयो: प्रणिपत्य-

'सुतनु हृदयात् प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपि मनस: संमोहो मे तदा बलवानभूत्।
प्रबलतमसामेवंप्राया: शुभेषु हि वृत्तय:
स्त्रजमपि शिरस्यन्ध: क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया ॥ शा0 7/24

(हे सुन्दर शरीर वाली, तुम्हारे हृदय से प्रत्याख्यान से उत्पन्न पीड़ा दूर हो जाय, (क्योंकि) उस समय मेरे मन में कोई अनिर्वचनीय प्रबल अज्ञान उत्पन्न हो गया था। क्योंकि शुभ कार्यो अथवा पदार्थों के प्रति प्रबल तमोगुणी लोगों की प्रवृत्तियाँ इसी प्रकार की हो जाती हैं क्योंकि (अन्ध ा) व्यक्ति सिर पर डाली गयी पुष्प माला को सर्प की आशंका से दूर फेंक देता हैं।

इसी प्रकार अन्य निदर्शन:-

'अत: परीक्ष्य कर्त्तव्यं विशेषात् संगत रहः।
अज्ञातहृदयेष्वेव वैरीभवति सौहृदम्॥ शा0 5/24

(इसलिए मित्रता या प्रणय व्यक्ति विशेष के शील कुलाचारादि की पूर्णत: परीक्षा करके करना चाहिए, एकान्त का विवाह आदि सम्बन्ध विशेष रूप से परीक्षा के बाद करना चाहिए। अज्ञात हृदय वाले व्यक्तियों में (किया गया) प्रेम इसी प्रकार शत्रुता का कारण बन जाता है।)

महाकवि के शब्दों में शार्ङ्गरव की उक्ति है। इस उक्ति के माध्यम से महाकवि ने अपने युग के समाकालीन सांस्कृतिक संन्दर्भ तथा आज के युग के सम-सामयिक सन्दर्भ में प्रेम विवाह के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण चिर शाश्वतिक सत्य का उद्घाटन किया है वास्तव में शीघ्रता में तथा बिना सोचे समझे किये गए प्रणय-व्यापार का हश्र ऐसा ही होता है जैसा कि दुष्यन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और शकुन्तला के प्रेम का हुआ। आधुनिक युग में गान्धर्व विवाह का जो उपक्रम हो रहा है उसमें प्रेम का नाटक होता है। वह स्वार्थ और काम के वशीभूत होता है, धर्म का उसमें कोई स्थान नहीं होता है। आज प्रणय करना और प्रणय निवेदन करना फैशन हो गया है। हमारे समाज को सबसे ज्यादा प्रभावित चित्रपट एवं टेलीविजन धारावाहिकों ने किया है। प्रेम के इस दौर में कभी-कभी एक पक्ष द्वारा तो वास्तव में प्रेम किया जाता है जबकि दूसरे पक्ष द्वारा प्रेम का नाटक होता है ऐसी स्थिति में जब कभी गान्धर्व विवाह हो जाता है और इस प्रेम सम्बन्ध का रहस्य कुछ दिनों बाद ही विभिन्न माँगो के रूप में उभरता है तो परिणाम सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। जिस पक्ष ने वास्तव में प्रेम किया वह तो पश्चाताप की अग्नि में जलता है और दूसरा पक्ष भले ही कानूनी प्रक्रिया के तहत दण्ड का भागीदार हों उसे प्रेम से कोई सरोकार नहीं रह जाता। आज की युवा पीढ़ी इससे अधिकतया प्रभावित हो रही हैं। यही कारण है कि आज 'तलाक' की संख्या में भी दिनों दिन वृद्धि हो रही हैं। इसलिए महाकवि का कथन उभय संस्कृतियों के सन्दर्भ में चिर प्रासंगिक एवं चिर नवीन अटल सत्य है। महाकवि भारवि[1] कबीर[2] का भी कथन है- सम्यक् विचार न करना परम आपत्ति का उत्पादक होता है। अतः विवाह जो कि जीवनभर का सम्बन्ध बन जाता है बहुत सोच समझकर विवेक पूर्वक किया जाना चाहिए।

ऐसे ही उदात्त प्रेम का निरूपण महाकवि ने 'मेघदूत' में किया है। मेघदूत में भी काम तथा कर्त्तव्य के मध्य आन्दोलायमान द्वन्द्व को सुन्दरता से कवि ने निरूपित किया है। चिर वियोग ने प्रणय के भीतर विद्यमान कर्त्तव्य विरोध रूपी कुत्सित कर्म को जलाकर उसे विशुद्ध प्रेम का स्वरूप प्रदान किया है। वह प्रेम गंगा की तरह पवित्र हो गया है। मेघदूत का यही सन्देश है कि वियोग ही सच्चे प्रेम का पोषक और परिणति विधायक होता है- 'न बिना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टि मश्नुते' महाकवि का कथन है:-

'स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशिभवन्ति ॥ उ0/55

(लोग स्नेह को विरह काल में नष्ट होने वाला मानते हैं (सत्य नहीं)किन्तु वह स्नेह तो वियोग के कारण भोग के अभाव में (भोगे नहीं जाने के कारण) वियोग समय में संचित प्रेम और अधिक घनीभूत हो जाता है।

महाकवि ने दोनों ग्रंथो में युग-युगान्तर तक चिर शाश्वत बने रहने वाले प्रणय को अपने कर कमलरूपी गीर्वाण वाणी से सुधासिक्त किया है। महाकवि का 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नाटक आज के समसामयिक, सांस्कृतिक परिदृश्य में चिर नवीन प्रतीत होता है। अद्य आवश्यकता इस बात की है कि कालिदास के साहित्य की प्रवृत्तियों, अभिरुचियों, कलाओं, संस्कार शुद्धि, व्यक्तित्व शुद्धि, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, नैतिक, चारित्रिक आदि विषयों पर गम्भीरतापूर्वक एवं विवेक निरीक्षण, आत्मविश्लेषण, आत्ममंथन करे। महाकवि ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवीय चित्तवृत्तियों का जो चित्र उकेरा है वह आज के युग में भी पूर्णतः चिर स्थायी है। चित्तवृत्तियों का सीधा सम्बन्ध संस्कृति से होता है। उन्होंने भारतीय संस्कृति, परम्परा,तप,त्याग,अन्तःकरण शुद्धि, विशुद्ध प्रेम का जो दृश्य अपने ग्रंथो में दर्शाया है वह उभय संस्कृतियों के सन्दर्भ में प्रासंगिक है।

जर्मन महाकवि गेटे की विख्यात प्रशंसा सर्वथा औचित्यपूर्ण है,जिसका संस्कृत रूपान्तरण इस प्रकार है:-

'वासन्तं कुसुमं फलंच युगपद् ग्रीष्मस्य सर्व च यद्
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम्।
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो-
रैश्वर्यं यदि वांछसि प्रियसखे शाकुन्तलं सेव्यताम्॥'

महाकवि स्वयं भी प्राचीनता के साथ नवीनता के पोषक रहे हैं अतः अन्त में अपने मन्तव्य की पुष्टि के लिए जैसा कि महाकवि ने 'मालविकाग्निमित्रम' में स्वयं लिखा है।

'पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्तरद्धजन्ते मूढः परप्रत्ययनेह बुद्धिः॥

इस श्लोकार्थ के अनुसार कुछ प्रयास किया है। विज्ञ मूर्धन्य विद्वद्जनों से अनुरोध है कि वे हमारे द्वारा उद्भावित भावों पर विचार करने का तर्क सम्मत प्रयास करेंगे।

महाकवि के शब्दों मे:-

'आपरितोषाद् विदुषां साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः॥'

सन्दर्भः-

1. शोध पत्रिका-कालिदास Vo. XI 2006 पृष्ठ 54
2. रघुवंश - 1/1 वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
   जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥
3. शब्दकोश-धर्मार्थ काममोक्षाणाममुपदेशसमन्वितम्।
   पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥
4. धर्मशास्त्र का इतिहास- पी0वी0 काणे पंचम भाग पृष्ठ 389
5. ग्रीक मिथक की कथा का पात्र जो आत्मविस्मृति में अपनी प्रेमिका तक को भूल जाता है।
6. कालिदास का भारत- पृ0- 117
7. मालविकाग्निमित्र 1/2 'पुराणमित्येव न साधु सर्व न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
   सन्तः परीक्ष्यान्तरद्धजन्ते मूढ़ परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥'

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

8. शिशुपालवध - 4/17
9. राजस्थान पत्रिका 24 सितम्बर 20089.
10. मीडिया 'आज तक' चैनल, माह अगस्त 2008
11. मीडिया- 'आज तक' चैनल, माह सितम्बर 2008
12. पादन्यासैः क्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतै-
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः कलान्तहस्ताः।
वेश्यास्त्वत्ते नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू-
नामोक्ष्यन्तो त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् । पू0/39
13. मनुस्मृति- 3/32
14. किरातार्जुनीय 2/30- सहसा विदधीत न क्रियाभविवेकः परमापदां पदम्
15. कबीर- बिना विचारे जो करे सोपाछे पछताय।
काम बिगाड़े आपनो जग में होत हसाय।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद और गणित विद्या

डॉ० चन्द्रकान्त गर्जे
भोसले इलायट, भोसलेनगर
पुणें 411007 (महा)

'वेद' शब्द का व्युत्पत्तिक अर्थ है- सम्पूर्ण ज्ञान का स्रोत और अनन्त भंडार। इसमें कोई सन्देह नही कि वैदिक ज्ञान सर्वांगीण, सम्पूर्ण तथा परिपूर्ण है। वेदों में मानव समाज के लिए आवश्यक आध्यात्मिक, इहलौकिक और व्यावहारिक ज्ञान विद्यमान है। चार वेद तथा उनकी शाखाओं की संख्या 1131 है। हर शाखाओं की संहिताएँ है। इनके अतिरिक्त ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद आदि की संख्या 2524 है। इतना अपरम्पार ज्ञान भण्डार वेदों में है। विश्व के अधिकांश बुद्धिजीवी और वैज्ञानिक इस निष्कर्ष तक पहुँचे हैं कि वेद विद्या, ज्ञान, विज्ञान के अनन्त भांडार है। प्रो० मैक्समूलर का मंतव्य है "Rigveda is the oldest book in the library of world" अरबी लेखक, चिन्तक अस्माई के कुसशारा का कहना है- "हे-हिन्दुस्तान की भूमि तू धन्य है। ईश्वर ने तुझमें वेद ज्ञान प्रकाशित किया है। महर्षि दयानन्द ने कहा है। वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है।

'विज्ञान' की मूलभूत अवधारणा में तत्वमीमांसक की पृष्टभूमि अत्यन्त महत्व की मानी जाती है। 'तत्वमीमांसा' के अन्तर्गत गणित विद्या भी आ जाती है। प्राचीन ऋषिमुनि केवल आध्यात्मिक विश्व में विचरण नहीं करते थें, अपितु वे वनों, कन्दराओं में रहकर प्रकृति के अवलोकन और अध्ययन में लगे रहते थे। फलस्वरूप वेद की गहराई तक पहुँचने में सफल होते थे। प्रकृति के रहस्यों के साथ ब्रह्माण्ड के रहस्यों को भी उन्होंने जाना था। ब्रह्माण्ड की रचना में गणित विद्या की भूमिका अहम् ही होती है। चार वेदों के चार उपवेद हैं। उपवेदों में एक उपवेद है- 'स्थापत्य वेद' इसके अन्तर्गत वास्तुशिल्प की सारी विद्याएँ आती हैं। गणित विद्या भी इसी विद्या का एक अंग है। 'गणित विद्या' प्राचीन ऋषिमुनियों की देन है। ऋषि मुनियों ने अपने चिन्तन, अध्ययन से व्यावहारिक सिद्धान्त- ज्ञान को प्रस्तुत किया है।

अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित आदि विद्याओं का स्रोत वेद ही है। अंकगणित का मूल ऋग्वेद में है, उसका विकसित रूप यजुर्वेद में मिलता है। अंक विद्या के प्रथम ऋषि है 'मेघातिथि', जिन्होंने 1 से 10 अंक तक की गणना स्पष्ट की है। मेघातिथि के नाम से 313 ऋचाएँ ऋग्वेद में हैं। दस, दस गुणे (दशम्), विशन्ति, शतशः, सहस्र, सहस्रता, अयुत, नियुत, प्रयुक्त, आर्बुद अंको की गणना ऋग्वेद में है। घटाना, और जोड़ना, संयुक्त घटाना और जोड़ना, साधारण भिन्नों का जोड़ना, भिन्नों की तुलना, साधारण तथा संयुक्त अभ्यास, सारे दाशमलविक कार्य में दशमूलत्व की प्रक्रिया, भिन्न अनुपाद, प्रतिशत, औसत,ब्याज,वार्षिकी, उर्ध्वगोलक का गुरुत्वकेन्द्र, समीकरण का रूपाकरण, गतिविज्ञान, स्थैतिकी, स्थित विज्ञान, प्रयुक्त यांत्रिकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि का व्यावहारिक ज्ञान न केवल गणितज्ञों के लिए अपितु सामान्य मनुष्यों के व्यावहारिक जीवन में उपादेय है। इन व्यावहारिक ज्ञान का स्त्रोत है 'वेद'।

ज्यामिती विज्ञान का उद्भव वैदिक यज्ञवेदी के निर्माण के सिलसिले में हुआ है। प्राचीन में, सभी गृहों में तीन तरह के यज्ञकुंड' यज्ञकर्म के लिए हुआ करते थे। उनके नाम हैं- दक्षिण, गार्हपत्य, आहवनीय यज्ञकुंड। यज्ञकुंड त्रिकोण, समचतुष्कोण, चतुष्कोण आकार के हुआ करते थे। इस प्रकार के यज्ञकुंडो का निर्माण यज्ञकुंड में प्रज्वलित अग्नि को आकाश में, उर्ध्वगामी बनाने में सहायक सिद्ध हुआ करता था। ऋग्वेद संहिता, तैत्तरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण में इस विद्या का विश्लेषण किया गया है। इस वेद विद्या के ऋषि थे- बोधायन वे ज्योतिषी विज्ञान के प्रथम ज्ञाता माने जाते हैं।

गणित विशेषज्ञों की मान्यता है कि बीजगणित का मूल अंकगणित में है जो आगे चलकर अंकगणित से भिन्न हुआ। ब्रिटीश विश्वकोश में प्राचीन काल से सत्रहवीं सदी तक की बीजगणित की जानकारी दी गयी है। त्रिभुज आयत, समरूप, चतुर्भुज का ज्ञान भी प्राचीन-वेदगणित की ही देन है। वेदगणितीय सूत्र को प्रतिपादित करने वाले ऋषि थे- ऋषिबोधायन, ऋषि आपस्तम्भ, ऋषि कात्यायन, ऋषि मानव, ऋषि मैत्रायन, ऋषि वर्षा, ऋषि वधुव्य आदि। आगे चल कर आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कर (प्रथम) ब्रह्मगुप्त, श्रीधराचार्य, सदानन्द, खगोलशास्त्रीय ब्रहमशुल्क, पाराशर, शाकल्य आदि। आधुनिक युग में श्री निवास रामानुज, गोवर्धन पीठ के जगन्नाथ पुरी के शंकराचार्य स्वामी भारतीय कृष्ण तीर्थ, पं० मधुसुदन ओझा जयपुर, उनके शिष्य मोती लाल शास्त्री। कोलकात्ता के प्रदीप मुजुमदार और मानबेन्दू बनर्जी आदि। यहाँ कुछ एक गणितज्ञों का परिचय दिया जा रहा है।')

आर्यभट्ट:- आर्यभट्ट का जन्म इस 476 में हुआ। ये गणित एवं खगोलशास्त्र वेत्ता थे। उन्होंने ऋग्वेद में उल्लेखित शून्य' का अध्ययन किया था। शून्य की महत्ता अनन्त से कम नही हैं। उसीतरह 1 से 9 संख्या का भी महत्व है। शून्य के पीछे संख्या जोड़ देने से शून्य की असाधारण महत्ता बढ़ जाती है। शून्य का मूल्य' तथा संख्याओ के विश्लेषण का स्त्रोत वेद ही है। आर्यभट्ट का लिखा हआ ग्रन्थ है 'आर्यभट्टीय', जिसके चारपाद है।'' गितिकापाद:- इसमें अक्षरों के आधार पर संक्षिप्त संख्या लिखने की पद्धति दर्शायी गयी है।

(2) गणित पाद- इसमें अंकगणित, रेखागणित, बीजगणित के सूत्र दिए गए है।

(3) काल क्रियापाद- इसमें कालगणना, युग, ग्रहो का अन्तर, ग्रहण आदि के खगोलशास्त्रीय सिद्धान्त है।)

(4) गोपाल पाद- इसमें क्रान्तिवृत, संपान बिन्दू, सूर्य से अन्य ग्रहों का अन्तर आदि दर्शाए गये हैं। इन पादों के आधार पर पंचाग का निर्माण करना सरल होता हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. **वराहमिहिरः**- 505 में जन्में वराहमिहिर ने 'पंचसिद्धान्तिक, ब्रह्म संहिता-ग्रन्थों की रचना की हैं। इन ग्रन्थों से भारतीय तिथियों का (Indian calander)का सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है।

3. **भास्करः**- (प्रथम) इ.स. 600 के ये गणितज्ञ हैं, जिन्होनें महाभास्कर, लघु भास्कर ग्रन्थों की रचना की। आर्यभट्ट के गणितीय सिद्धान्त को अधिक गहराई से प्रतिपादन किया गया है।

4. **ब्रह्मगुप्तः**- (इ.स.598)राजस्थान के भिन्नमल गांव के थे। उन्होंने अपने आयु के 13वे वर्ष में ही ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त की रचना की,जिसमें 12 अध्याय वेद गणित से सम्बन्धित,' (अध्याय कुट्टक से सम्बन्धित हैं।

5. **भास्कराचार्यः**- (द्वितीय)(1144-1423):- इन्होंने 'सिद्धान्त शिरोमणि' ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ के चार खंड हैं- 1)लीलावती 2) बीजगणित 3) गृहगणित 4)गोल। इन ग्रन्थों में अंकगणित, महत्वमापन, बीजगणित, क्षेत्रफल, घनफल आदि गणितीय सिद्धान्तों को स्पष्ट किया गया है सिद्धान्त शिरोमणि 'ग्रन्थ' का अनुवाद का कार्य फारसी में अन्तर उल्ला- इसीदीने इ.स.14(3 में किया है। इसी ग्रन्थ का आधार लेकर महाराजा सबाईसिंग (द्वितीय) (1626-1743) में जयपुर मथुरा, वाराणसी, दिल्ली, उज्जैन में वेधशाला observatary का निर्माण किया है। भास्कराचार्य ने इस ग्रन्थ में आकाश कक्षा का योजन रखा है। वे अपने ग्रन्थ में कहते हैं: कोटिघ्नैर्नखनन्द

षटक- नख-र्भू-भूभृद-भुजदेन्दुभिः।

ज्योति शास्त्रविदोवन्दति नभसः कक्षमिमां योजनैः॥

अर्थात्-आकाश में' 18 (पद्म, 71 नील, 20 खरब, 67 अरब, 20 करोड़ योजन-आकाश की कक्षा है। इसी तरह व्यास परिधि और क्षेत्रफल को भी दर्शाया है-

व्यासभनन्दाग्निहत्ते विभक्ते खबाण सूर्यः परिधिः व सूक्ष्मः।

दाविशंतिध्ने विहृतेऽथ शैलैः स्थूला अपिवा स्याद्॥

अर्थात् व्यास को 3/2 से गुणाकर 1250-या भाग देने से जो प्राप्त होता है वह है सूक्ष्म परिधि।

आचार्य पद्मनाभम्, श्रीधराचार्य आदि गणितज्ञों का योगदान भी महत्व का है। इन्होंने बीजगणित, कुट्टकवर्ग, समीकरण, एकवरण-वेदगणित को प्रस्तुत किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत वर्गान्तर, योगान्तर घातू समसूत्र आदि ने वर्तमान बीजगणित को प्रभावित किया है।

आधुनिक युग के प्रारम्भ में श्री निवास रामानुज भारतीय गणितज्ञ हुआ। उन्होंने संख्या सिद्धान्त पर चार हजार से अधिक वेदगणित के सूत्रों का अन्वेषण कर गणित जगत् में भारत का मस्तिष्क ऊंचा किया। 'वेद' गणित' के क्षेत्र में' अधिक गहराई तक पहुँचने वाले थे-गोवर्धन मठ-पुरी के जगद्गुरु शंकराचार्य भारती कृष्ण तीर्थ (1224-1860।) इनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वनाम था वैंकट रमन सरस्वती। उन्होंने 4 जुलाई 1919 मे संन्यास लिया था और वे इ.सा. 1925 में गोवर्धन मठ, पुरी के शंकराचार्य के गद्दी पर आसीन हुए थे। वे शंकराचार्य मधुसुदन के पश्चात्, उनके स्थान पर आसिन हुए थे। स्वामी जी का ग्रन्थ है 'वैदिक गणित' जिसका हिन्दी-संस्करण 1891 में प्रकाशित हुआ हैं। इस ग्रन्थ में वैदिकगणित' के 16 सूत्रों को उद्घाटित किया गया है। शकराचार्य जी ने अनेक स्थानोपरं 'वेदगणित पर व्याख्यान भी दिये है।-जैसे-काशी विश्व विद्यालय-1950, नागपुर विश्व विद्यालय- 1959, आदि। शंकराचार्य द्वारा उदघाटित गणित के सूत्र शिक्षितसमाज के सम्मुख नया सिद्धान्त प्रस्तुत करने वाले है, गणित के क्षेत्र में क्रान्ति का सूत्रपात करने वाले है। वैदिक गणित में यह क्षमता है कि कठिन से कठिन' गणित का उत्तर एक पंक्ति में दिया जा सकता है।

पं० मधुसुदन ओझा (जयपुर) ने वेदगणित पर कई ग्रन्थो की रचना की है। उन्होने वेदगणित पर हार्वर्ड ऑक्सफर्ड तथा कॅंब्रिज विश्वविद्यालय में भाषण भी दिये है। इन्ही के 20 शिष्यों में से एक शिष्य मोतीलाल शास्त्री ने 50000 (पचास हजार पृष्टों का लेखन कार्य वेद गणित से सम्बन्धित किया है।

पश्चिम बंगाल कोलकत्ता निवासी और कोलकत्ता विश्वविद्यालय के निवृत प्रो. प्रदीप कुमार मुजुमदार तथा जाधवपुर विश्वविद्यालय के निवृत प्रो. मानबेन्दू बनर्जी ने मानव संसाधन केन्द्र शासन के तत्वधान में राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान के अन्तर्गत विगत 10 वर्षो का प्रयास से 'वेद गणित पर संशोधन कार्य सम्पन्न किया है। उन्होंने व्यक्त किया है-आधुकि गणित का आधार-वेद ही हैं- और 5000 (पांच हजार)सूत्रों का एक विश्व कोश तैयार किया है। ऐसे अन्य चार गणितीय कोश प्रकाशित करने की उनकी योजना है। समाचार- times of india समाचार पत्र दि. 2 सितम्बर 2012।

वेद गणित की ओर भारत तथा विदेश के संस्कृत विद्वान् आकर्षित हैं ही। वेदगणित पर संशोधन कार्य में भी लगे है। कई शिक्षा संस्थाएँ वेद गणित पर संगोष्टियाँ आयोजित कर वेद के विविध आयामों को विश्व के सम्मुख रखने के प्रयास में लगे है कुछ संगोष्ठिया-'' नागपुर विश्वविद्यालय-संगोष्ठी-1985, भारतीय विद्याभवन-शाख लंदन-संगोष्ठी-1986, रूड़की विश्वविद्यालय-'' 11 दिवसीय संगोष्ठी-1987, बनारस विश्वविद्यालय-त्रिदिवसीय-संगोष्ठी, जे.बी. पंत विश्वविद्यालय-संगोष्ठी-1988, इम्पायर कॉलेज-लंदन 1989, इसी तरह हावर्ड, बोस्टन, चिकागो, लॉस एंजिलस, बरकले, टोरैन्टो फिनलैंड, बर्लिन वियन्ना, ऑस्ट्रिया, डेनमार्क, होलेंड आदि विश्वविद्यालयों मे वेद गणित संगोष्ठियां आयोजित हुई हैं। वेदगणित के हर पहलू पर प्रकाश डाला गया है, डाला जा रहा है। शिक्षा संस्थाओं के इस प्रयास में' वेद गणित के अपार भण्डार को विश्व के सम्मुख करने का प्रयास दिख पड़ता है। देश, विदेश की शिक्षा संस्थाओं के पाठ्यक्रम में 'वेद गणित रखा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाश्चात्य के गणित के विद्वानों मे प्रो.जी.पी. हाल्स्टैंड, प्रो. भिन्सवर्ग प्रो.डी. मोर्गेन, प्रो. हटन आदियों ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर वेद गणितीय ज्ञान को विश्व के सम्मुख रखा है। प्रो. हाल्टैंड ने अपने ग्रन्थ-' गणित की नीव तथा प्रक्रिया में कहा है-' शून्य' संकेत के आविष्कार की महिमा बखानी नहीं जा सकती। शून्य को एक नाम तथा सत्ता देना- एक शक्ति देना है। यह भारत के प्राचीन ऋषि मुनियों की उपज है। गणितज्ञ बी.बी. दत्तने अपनी पुस्तक:- 'संख्याओं को व्यक्त करने की आधुनिक पद्धति में कहा है- प्राचीन भारत में बहुत पूर्व से ही दशममलविक पद्धति अपनायी गयी थी। गणितीय अंको को केवल दस बिम्बों की सहायता से सरलता, सुन्दरता पूर्वक व्यक्त करने में सफलता मिली है। इसी पद्धति को आधुनिक विश्व ने अपनाया है।

लगभग 770 में उज्जैन के विद्वान् कान्तो को बगदाद के दरबार में अब्बासईफ अलमन्सूर ने निमंत्रित किया था। कान्तो के माध्यम से भारतीय अकंन पद्धति अरब पहुँची। इस सम्बन्ध मे बी.बी. दत्त ने कहा है-' अरब से मिश्र तथा उत्तरी अरब होते हुए अंकविद्या पश्चिम में पहुँची और (11वीं शती में पूरे युरोप में पहुँची। युरोपियों ने इसे अरबियन अंक विद्या कहा। इसलिए कि यह विद्या उन्हें अरबों से प्राप्त हुई थी।

एक समय था कि वेद को गडरियो, अनपढ़ो के गीत समझा जाता था। मॅक्समूलर-संस्कृत विद्वान् ने 'वेद' को यही संज्ञा-प्रदान की थी। किन्तु महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों के आधार पर उन्होंने अपने मन में परिवर्तन कर दिया और वेद की महता बखानने लगे। पाश्यात्यके कुछ विद्वान्- जैसे कोलब्रुक, बिल्सन, ग्रिफिथ आदियों ने वेद को समझा नहीं: इसीलिए तो उन्होने वेदो में त्रुटिया ढूढँने का प्रयास किया, वेदों को समझ के बाहर कहा, वेद मात्र बकवास तथा निरी मूर्खता कहा। पर इनकी वेद अज्ञानता का पर्दाफाश किया देश तथा विदेश के वदेविद्वानों ने।

वर्तमान विश्व ने 22 वीं सदी की दहलीज पर कदम रखा है वह दस्तक दे रहा हे, कह रहा है वेदों की ओर लोटो-और अपार विद्या पावो, वैदिक गणित को समझो। प्राचीन भारतीय विद्या, ज्ञान, विज्ञान के सम्मुख वर्तमान की विद्या, ज्ञान, विज्ञान तुलनात्मक दृष्टि से कुछ नहीं- जो कुछ है-उसका आधार- मात्र है-वैदिक ज्ञान'

वैदिक गणित बढाओ, ज्ञान विज्ञान बढ़ाओ।
वेद नही पूजा पाठ विधान, वेद है सर्वज्ञान की खान॥
वैदिकज्ञान अपनाओ, कॅलक्युलेटर, कॅम्पुटर से मुक्ति पाओ।
वैदिक गणित की विधियाँ आसान, इनमें मस्तिष्क होता नहीं परेशान॥
(वैदिक गणित की उपादेयता-दिलाराम)

सन्दर्भ:-

1. वेदगणित के जगद्गुरू-भारतीय कृष्ण तीर्थ
2. Vedic mathmetics-Edited by H.C. khre
3. Vedic mathmatics for allages-by-vandana-singhal

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवभूति के स्त्री पात्र : एक अध्ययन

डॉ0 राजिन्द्रा शर्मा
प्रोफेसर संस्कृत–विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
शिमला

महाकवि भवभूति ने अपने नाटकों में नारी को उच्च स्थान प्रदान किया है। भवभूति ने नारी के तीन रूपों कन्या, माता और पत्नी का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। भवभूति की कन्या सुशील है तथा सभी दुःखों को सहती है। पत्नी रूप में नारी घर की लक्ष्मी है। स्त्री के अभाव में सारा संसार नीरस दिखलाई पड़ता है।

भवभूति की नारियाँ शिक्षित, सुसंस्कृत, कलाभिज्ञा तथा सभी शास्त्रों में निपुण हैं। उत्तररामचरित में भवभूति ने सीता के चरित्र को ऊँचा दिखाया है। सीता पवित्र, दृढ़ निश्चय वाली तथा सहनशील दिखलाई गई है। सीता आर्दश पतिव्रता पत्नी है। भवभूति ने नारी को पूजनीय माना है। उत्तररामचरित के चतुर्थ अंक में सीता को पूजनीय माना गया है। नारियों को प्रकृति प्रेमी भी बताया गया है। सीता प्रकृति से प्रेम करतीथी। भवभूति ने कुछ पात्र तो प्रकृति के वातावरण से ग्रहण किए हैं जैसे वन देवता, वासन्ती, तमसा, मुरला, गंगा, पृथ्वी। यह सभी पात्र प्रकृति के प्रेमी हैं। वन देवता वासन्ती राम के वन में पहुँचने पर उनका स्वागत करते हुए कहती है कि राम वन में आ रहे हैं, मकरन्द बरसाने वाले वृक्ष, फल और फूलों से इनका स्वागत करें। पक्षियों का समुदाय सुरीले कण्ठ से कूजन करे। भवभूति के पात्रों में वात्सल्य भाव दिखाई पड़ता है। उत्तररामचरित के तीसरे अंक में हाथी के बच्चे को देखकर सीता कहती है कि भगवती तमसा, यह हाथी का बच्चा इतना बड़ा हो गया है, न जाने लव और कुश कितने बड़े हो गए होंगे। मैं मन्दाभागिनी पति के विरह के साथ–साथ पुत्रों के विरह से भी युक्त हूँ।

भवभूति के नाटकों में कुछ नारी पात्र वाल्मीकि रामायण पर आधारित हैं। उत्तररामचरित के पात्र कौशल्या, सीता, अरून्धती आदि वाल्मीकि रामायण पर आधारित हैं। पृथ्वी, गंगा, तमसा, मुरला, वासन्ती आदि पात्र कवि प्रतिभा से उत्पन्न हैं। करूणा, उदारता, क्षमा, सहनशीलता आदिगुण इनमें पाए जाते हैं।

भवभूति के नारी पात्रों को अलौकिक और लौकिक दो भागों में विभिक्त किया जा सकता है :

1. **अलौकिक वर्ग**
   (क) दिव्य वर्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) अर्द्धदिव्य वर्ग

(ग) दैत्य–वर्ग

2. **लौकिक वर्ग**

(क) अभिजात्य वर्ग

(ख) प्रेमिका वर्ग

(ग) तपस्विनी एवं ऋषि पत्नी

(घ) शिष्या वर्ग

(ङ) सखियाँ

(च) प्रतिहारी

1. **अलौकिक वर्ग**

(क) **दिव्य वर्ग**

भवभूति के नाटक उत्तररामचरित में गंगा, पृथ्वी, तमसा, मुरला देवी पात्र है। वासन्ती वनदेवता सीता के पंचवटी की प्रिय सखी है।

तमसा और मुरला

उत्तररामचरित के तीसरे अंक में समसा और मुरला दो नदियों का देवियों के रूप में वर्णन मिलता है। अगत्स्य ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा के द्वारा नदियों में श्रेष्ठ गोदावरी को अपना सन्देश भेजती है कि तूम तो जानती हो कि सीता परित्याग से राम का करूण रस पुटपाक सदृश है। अन्दर छिपी वेदना तथा लम्बे शोक से रामभद्र अब बहुत कमजोर हो गए हैं। उनको देखकर मेरा हृदय काँप उठा है। रामभद्र लौटते हुए पंचवटी में सीता के साथ विहारों के साक्षी प्रदेशों को देखकर मूच्छित हो सकते हैं अतः भगवती गोदावरी आपको सावधान रहना चाहिए।

तमसा मानव मन की विशेषज्ञ है। सीता जब राम को देखकर कहती है कि अकारण परित्याग करने वाले इनको इस अवस्था में देखकर मेरा हृदय काँप रहा है। तब तमसा उत्तर देती है – बेटी जानती हूँ इस समय तुम्हारा हृदय उदासीन, अकारण परित्याग से कुलषित, दीर्घ वियोग में अचानक मिलन से स्तब्ध तथा प्रेम के कारण द्रवित सा हो रहा है।

पृथ्वी और गंगा

उत्तररामचरित के सातवें अंक में पृथ्वी और गंगा देवियों का वर्णन किया गया है। पृथ्वी सीता की माता है। अपने पति परित्याग के बाद सीता स्वयं को गंगा में डाल देती है। गंगा जी सीता की रक्षा करती है। पृथ्वी भी सीता के कारण दुःखी है। पृथ्वी कहती है – देवी सीता को जन्म देकर मैं कैसे धैर्य धारण करूँ? राक्षसों के बीच सीता के निवास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मैंने निरन्तर सहन किया परन्तु दूसरा परित्याग असहनीय है। पृथ्वी क्षमाशील है जो राम के अपराध को क्षमा कर देती है। राम भी कहते हैं कि गुरूजन दयालु होते हैं। सीता परित्याग जैसे अपराध करने पर भी माता पृथ्वी मुझे क्षमा कर रही है। सीता माता पृथ्वी और भागीरथी दोनों देवियाँ मानव भावों से युक्त हैं। गंगा भी सीता से पुत्री जैसा प्यार करती है। सीता जब गंगा को प्रार्थना करती है कि मुझे अपने में विलीन करो तब गंगा प्रेम से कहती है पुत्री, हजारों वर्ष जीओ।

वासन्ती

वासन्ती दण्डकारण्य की वन देवता है। वह राम और सीता की प्रिय सखी है। वासन्ती राम से प्रश्न करते हुए कहती है कि आपको यश बहुत प्रिय है परन्तु इससे अधिक अपयश और क्या हो सकता हैं? नाथ बतलाओ। इसके आगे क्या सोचते हैं? वासन्ती सीता को लेकर चिन्तित है। राम के अश्वमेध यज्ञ की सहधर्मिणी का उल्लेख करने पर कहती है – क्या विवाह कर लिया? राम के सुवर्णमयी सीता की प्रतिमा कहने पर वह आश्वस्त होती है।

(ख) अर्द्धदिव्य वर्ग

विद्याधरी

उत्तररामचरित के छठे अंक में विद्याधरी का वर्णन मिलता है। लव और चन्द्रकेतु के युद्ध के आरम्भ में विद्याधरी कहती है कि सामने चंचल बिजली की चमक से पीले रंग वाला वह गगन सहसा ही अनोखा हो गया है।

(ग) दैत्य–वर्ग

मन्दोदरी

महावीर चरित में राक्षस स्त्री पात्रों का वर्णन मिलता है। मन्दोदरी लंका के राजा रावण की पत्नी है। मन्दोदरी जब रावण को कहती है कि सुग्रीव के छोटे भाई के साथ राम हैं तो रावण कहता है कि वह चला गया होगा। मन्दोदरी रावण को समझाती है कि समुदाय से डरना चाहिए। इस प्रकार मन्दोदरी रावण को हितकारी कार्य करने का परामर्श देती है परन्तु अपनी मदान्धता के कारण रावण उसकी अवहेलना करताहै।

शूर्पणखा

शूर्पणखा रावण की बहन है तथा रावण के मन्त्री माल्यवान की नातिनहै। शूर्पणखा कुशल राजनीतिज्ञ है। जब माल्यवान कहता है कि राम को छल से राक्षसों द्वारा मरवा देंगे तब रावण का सीता के लिए जो आग्रह है वह सुसाध्य हो जाएगा तब शूर्पणखा अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हुए कहती है कि मुझे तो ये दोनों बातें अच्छी नहीं लगती।

त्रिजटा

त्रिजटा रावण की दासी है। महावीरचरित के छठे अंक में माल्यवान से बात करती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वह कहती है कि दुष्ट वानर लंका को जलाकर तथा राक्षसों को मारकर चला गया है। माल्यवान के कहने पर कि विभीषण ही एक वंशधर बच जाएगा मैं ऐसा सोचता हूँ तब त्रिजटा कहती है आपका कथन दूसरे अमंगल का इशारा कर रहा है। इस प्रकार त्रिजटा प्रत्युत्पन्नमति वाली है।

2. **लौकिक वर्ग**

(क) अभिजात्य वर्ग

महावीरचरित और उत्तररामचरित दोनों नाटकों में अभिजात्य वर्ग के स्त्री पात्र मिलते हैं।

सीता

महावीरचरित में सीता में नारी सुलभ कोमलता दिखलाई पड़ती है। वह पतिव्रता, सलज्जा और विनम्रा है। सीता पति के सुख–दुःख की अनुगामिनी है। जब सीता को राम के साथ वन जाने की अनुमति मिलती है तो वह कह उठती है दिष्टयानुमोदितास्म्यार्थ पुत्रेण। उपकारी जटायु के प्रति सीता के मन में प्रेम है। जटायु के मृत्युस्थल के समीप सीता कहती है – कैसे गृधराज सदृश महात्मा को भी हमारे कारण ऐसी अवस्था भोगनी पड़ी।

उत्तररामचरित की सीता के मनोभाव मानवीय हैं। सीता आदर्श पत्नी के रूप में चित्रित है। लक्ष्मण जब सीता की अग्निशुद्धि की बात कहते हैं तब राम उत्तर देते हुए कहते हैं कि जन्मसे ही पवित्र सीता को शुद्धि के लिए दूसरे पदार्थों की क्या आवश्यकता? क्योंकि तीर्थों का जल तथा अग्नि स्वतः शुद्ध होने के कारण किसी दूसरे पदार्थ से शुद्धि की अपेक्षा नहीं रखते। सीता के चरित्र की महानता के बारे में जनक कहते हैं कि जिसके प्रभाव को तुम (पृथ्वी) अग्नि, महर्षिगण, अरून्धती, गंगा, रघुकुल गुरू वसिष्ठ तथा भगवान भास्कर जानते हैं। जैसे सरस्वती विद्या को उत्पन्न करती है वैसे ही तुमने सीता को उत्पन्न किया। सातवें अंक में गंगा और पृथ्वी की धारणा है कि सीता के कारण हम दोनां की पवित्रता बढ़ी है। सीता का सतीत्व उल्लेखनीय है जिस राम ने सीता का बिना कारण परित्याग किया उनके प्रति सीता के प्रेम को अनेकत्र देखा जा सकता है। राम को दुःखी देखकर वह अपना दुः,ख भूल जाती है। राम के मूर्च्छित होने पर कहती है – हाय, मुझ मन्दभागिनी के कारण आर्य पुत्र मूर्च्छित हो गए। हाय, श्वास रूकने से शक्तिहीन होकर पृथ्वी पर गिर गए। भगवती तमसा तुम आर्यपुत्र की रक्षा कर उनको जिला दो।

कौसल्या

उत्तररामचरित के चौथे अंक में राम की माता कौसल्या का वर्णन मिलता है। सीता परित्याग से कौसल्या अत्यन्त दुःखी है। वह कहती है पुत्री जानकी से निन्दित प्राण मुझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्दभागिनी को नहीं छोड़ते। अरून्धती द्वारा यह कहने पर कि महारानी धैर्य धारण करो, आँसुओं को रोको तब कौसल्या कहती है कि सीता रूपी मनोरथ के चले जाने पर यह मेरे लिए सम्भव नहीं है।

(ख) प्रेमिका वर्ग

मालतीमाध्व में मालती और मदयन्तिका दो प्रेमिकाओं का वर्णन किया गया है।

मालती

मालतीमाधव में नाटक की नायिका मालती है। मालती सौन्दर्य सम्पन्न, गम्भीर, लज्जायुक्त तथा संकोच स्वभव से युक्त है। माधव मालती का सुन्दरता का वर्णन करते हुए कहता है कि निश्चित रूप से चन्द्रकला, मृणाल और चन्द्रिका आदि मालती के कारण हैं और कामदेव इसके रचयिता हैं।

मदयन्तिका

मदयन्तिका नाटक में सह नायिका के रूप में वर्णित है। वह विदग्धता से पूर्ण, तारूण्य और लावण्य की खान है। वह मकरन्द से प्रेम करती है। मदयन्तिका मालती से प्रेम करती है। मालती के प्राण संकट में पड़ने पर वह मरने को तैयार हो जाती है। मदयन्तिका एक आदर्श सखी है। वह मकरन्द के बारे में कहती है कि उन्होंने ही मृत्यु के मुख से इस शरीर को बचाया था अतः उनके अधीन इस शरीर पर प्रभुत्व वाली मैं कौन हूँ।

(ग) तपस्विनी एवं ऋषि पत्नी

महावीरचरित में ऋषि वसिष्ठ की पत्नी अरून्धती का वर्णन सातवें अंक में मिलता है। राम लक्ष्मण को अरून्धती इष्टसिद्धिं का आर्शीवाद देती है तथा सीता को भी गले लगाकर आर्शीवाद देते हुए कहती है कि लोपामुद्रा, अनसूया और मैं तीन पतिव्रताएँ प्रसिद्ध थी अब तुम्हें लेकर पतिव्रताएँ मानी जाएँगी।

2. कामन्दकी

कामन्दकी औजस्विनी प्रौढ़सन्यासिनी है। वह सन्यासिनी होने के कारण संसार को त्याग चुकी हैं। कामन्दकी मालती के हृदय में माधव के प्रति प्रेम उत्पन्न करती है। मालतीमाधव का परिणय का दृश्य उसी की कूटनीति के कारण होता है। अन्त में दोनों का गान्धर्व विवाह को जाता है।

(घ) शिष्या वर्ग

कपाल कुण्डला

मालती माधव में कपाल कुण्डला तान्त्रिक अधोरघण्ट की शिष्या है। अधोरघण्ट और कपालकुण्डला मालती की नर बलि देना चाहते हैं तो माधव मालती की रक्षा करता है तथा अधोरघण्ट की हत्या कर देता है। कपाल–कुण्डला क्रोधित होकर कहती है कि तुमने मेरे गुरू की हत्या की तुम मेरे क्रोध का फल अवश्य भोगोगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौदामिनी

कामन्दकी की शिष्या सौदामिनी को मालती माधव में यौगिक सिद्धि से युक्त दिखाया गया है।

बुद्धरक्षिता

मालतीमाधव में बुद्धरक्षिता कामन्दकी की शिष्या है। वह मदयन्तिका के हृदय में मकरन्द के प्रति प्रेम उत्पन्न करती है।

अवलोकिता

मालतीमाधव के प्रथम अंक में कामन्दकी की शिष्या अवलोकिता का वर्णन आता है। अवलोकिता माधव और मालती में प्रेम उत्पन्न करने के लिए माधव को भूरिवसु के समीप मार्ग से ले जाती है।

आत्रेयी

बह्मचारिणी आत्रेयी उत्तररामचरित के दूसरे अंक में वर्णित है।

(ङ) सखी

लवंगिका

मालतीमाधव में लवंगिका का संक्षिप्त वर्णन मिलता है। लवंगिका मालती की प्रिय सखी है। जिसे वह सारी बातें बताती है। लवंगिका काम शास्त्र में निपुण है। मालती के हृदय में माधव के प्रति प्रेम को बढ़ाने में उसका महत्वपूर्ण योगदान है।

(च) प्रतिहारी

मालतीमाधव और उत्तररामचरित दोनों नाटकों में प्रतिहारी पात्र आता है। मालतीमाधव के दूसरे अंक में प्रतिहारी मालती और लवंगिका को भगवती कामन्दकी के बारे में बताती है।

इस प्रकार भवभूति ने नारी पात्रों के मनोभावों का स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत किया है। नारियों को शिक्षित, कला निपुण, सुसंस्कृत दर्शाया है। भवभूति की नारियाँ प्रकृति प्रेमी दिखाई गई हैं। तमसा, मुरला, गोदावरी, गंगा, वासन्ती प्रकृति के वातावरण से लिए हुए पात्र हैं। सीता का वन के वृक्षों और मृगों से अत्यधिक प्रेम था। नारी पात्रों की कल्पना भवभूति की नाट्य प्रतिभा की मौलिक सृष्टि है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ सूची–

1. उत्तरामचरित, 1.38
2. शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत्। आसारःसंसार। काष्ठ प्रायं शरीरम्। वही, पृ0 106
3. वन्द्यासि जगताम्। वही, 4.11
4. उत्तररामचरित, 3.24
5. वही, पृ0 219
6. वही, पृ0 185
7. वही, 3.13
8. वही, 7.4
9. वही, पृ0 470
10. वही, पृ0 470
11. वही, 3.27
12. वही, पृ0 267
13. वही, पृ0 404
14. महावीरचरित, पृ0 257
15. वही, पृ0 257
16. उत्तररामचरित, पृ0 146
17. वही, पृ0 251
18. वही, पृ0 251
19. वही, पृ0 186
20. वही, पृ0 312
21. वही, 1.13
22. वही, 4.5
23. वही, 7.8
24. ही, पृ0 202
25. वही, पृ0 317
26. ही, पृ0 318
27. मालतीमाधव, 1.22
28. उत्तररामचरित, पृ0 335
29. वही, पृ0 327
30. वही, पृ0 338
31. वही, पृ0 253

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"संस्कृत व्याकरण में माधुर्य"

डा0 आशा रानी पाण्डेय
रीडर (संस्कृत विभाग)
डी0जी0कालेज कानपुर

"अस्ति देवो महेशः सुरैः सेवितः
येन माधुर्य वृत्तिर्मुदा भावितः।
कारणं तत्र सूत्राणि वृत्तिर्न वा,
यत्र पातञ्जजलं भाति भाष्यं प्रियम्।।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपने भावों और विचारों को समाज के अन्य सदस्यों के सामने अभिव्यक्त करने के लिए जितना विकल होता है, दूसरों के भावों और विचारों को जानने के लिए उतना ही उत्सुक भी। मानव समाज में परस्पर विचार–विनिमय का साधन भाषा है। भाष् शब्द भाषा धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है, "व्यक्त वाणी" अर्थात् जिसमें वर्णों का स्पष्ट उच्चारण हो वह भाषा है।

व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः"[1]

मानव के पास यदि भाषा न होती तो मानव और पशु में विशेष अन्तर न होता। भाषा के अभाव में समाज का संगठन सम्भव न होता और मानव जाति इतनी उन्नत न हो सकती जितनी वह आज हैं। काव्यादर्शकार दण्डी कहते हैं–

वाचामेव प्रसादेन लोक यात्रा प्रवर्तते।
इदमंधतमः कृत्स्नं जायते भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।[2]

अर्थात बिना वाणी के लोक व्यवहार नही चल सकता। यदि शब्द नामक ज्योति इस समस्त संसार को प्रकाशमान न करती तो समस्त लोक (अज्ञान) अंधकार से व्याप्त हो जाता।

निःसन्देह भाषा ही मानव को पशु से ऊँचा स्थान दिलाने में समर्थ हुई है।

भाषा की परिवर्तनशीलता पर नियन्त्रण रखने के लिए, उसे संस्कारच्युत होने से बचाने के लिए व्याकरण का जन्म हुआ। पंतजलि के अनुसार पाणिनि ने शब्द, अर्थ और इनके सम्बन्ध को स्वतः सिद्ध मानकर ही व्याकरण की रचना की है –

कथं पुनरिदं भगवतः पाणिनेराचार्यस्य लक्षणं प्रवृत्तम्?
सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे।[3]

सन्देह निवारण के लिए भाषा–विषयक अज्ञान की निवृत्ति के लिए भी व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असन्देहार्थं चाध्येयं व्याकरणं।[4]

भारतवर्ष में व्याकरण का अध्ययन लगभग उतना ही प्राचीन है, जितना वेदों का अध्ययन। उस सुदूर अतीत में ही, यहाँ व्याकरण का जितना वैज्ञानिक अध्ययन हुआ है, उतना अन्य किसी भी देश अथवा भाषा में नहीं हुआ। इस उक्ति में न किंचिन्मात्र अतिशयोक्ति है न गर्वोक्ति ही। वेद हमारे प्राचीनतम साहित्य – ग्रन्थ है, और उनके एक–एक अक्षर को हमने धार्मिक महत्व दिया है। महर्षियों ने व्याकरण शास्त्र को वेदत्रयी के मंत्रों से भी अधिक पवित्र माना है, क्योंकि वेदमंत्रों की पवित्रता की रक्षा व्याकरण ज्ञान के बिना सम्भव नही –

आपः पवित्रं प्रथमं पृथिव्यामपां पवित्रं परमं च मंत्रः।
तेषां च सामर्ग्यजुषां पवित्रं महर्षयो व्याकरणं निराहुः।।[5]

संस्कृत व्याकरण पूर्ण, परिष्कृत एवं आश्यर्च जनक है। सम्पूर्ण विश्व में इसके समान अन्य व्याकरण नहीं है। संस्कृत वाङ्मय के किसी भी क्षेत्र में प्रवेश के लिए व्याकरण रूपी चक्षुः सर्वथा अपेक्षित है। अतएव कहा गया है–

"बिना व्याकरणेनान्धः।"

किसी भी शास्त्र में प्रवेश के लिए व्याकरण अनिवार्य है। ध्वनि सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य महान् अलंकार शास्त्री सह्रदयानन्दवर्धन आचार्य आनन्दवर्धन इस प्रकार लिखते है–

"विश्व में केवल भारतीय व्याकरण ही शब्द को 'ब्रह्म' के रूप में अवधारणा प्रस्तुत करता है।" शब्द ब्रह्य में निष्णात आचार्य परम ब्रह्य को सहज में प्राप्त कर सकता है। यही कारण है कि महर्षि पतञ्जलि स्पष्ट रूप में प्रतिपादित करते है–

"एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुष्ठुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति।।"[6]

एक और स्थल पर लोक व्यवहार में शुद्ध भाषा के प्रयोग की आवश्यकता को प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं–

"यस्तु प्रयुक्ते कुशलो विशेषे शब्दान्यथावद्व्यवहारकाले
सोऽनंतमाप्नोति जयं परत्र वाग्योगविद दुष्यति चापशब्दैः"।।[7]

अर्थात् जो वाणी का प्रयोग जानने वाला शब्दों का यथावद्ज्ञान प्राप्तकर व्यवहार के समय (लिखने या बोलने में) शब्दों का कुशलतापूर्वक प्रयोग करता है। उसको इस लोक ओर परलोक में सफलता मिलती है, इसके विपरीत अपभ्रष्ट शब्दों का प्रयोग करने वाला दोष का भागी होता है।

भारतीय विद्याओं के उद्भावक भगवान् शिव ने महर्षि पाणिनि की तपस्या से सन्तुष्ट होकर उनके समक्ष प्रकट होकर उन्हें 14 माहेश्वर सूत्रों का उपदेश दिया। उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस उपदेश पद्धति के मूल में माधुर्य था। क्योंकि भावभंगिमा से अनुस्यूत हृदय भगवान् ने माधुर्य के अन्तः साधन नृत्य के पश्चात् सूत्रों का उच्चारण किया–

"नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंचवारम्"।[8]

इस प्रकार माहेश्वर सूत्रों के प्राकट्य के मूल में माधुर्य ही संलक्षित हो रहा है। ये माहेश्वर सूत्र अक्षर विद्या हंै। इनका सम्यक् विश्लेषण पृथक् शोध का विषय है। इन चौदह सूत्रों में विविध विद्याएँ कलाएँ एवं अर्थाभिव्यक्तियाँ समाहित हैं। सप्तम् सूत्र ञमड. णनम् व्यावहारिक माधुर्य का अभिव्यञ्जक है। लोक में सामान्यतया व्यक्त माधुर्य की ओर अधिक ध्यान जाता है। अव्यक्त माधुर्य को हृदयंगम् करना या कराना सहृदय मनीषियों का कार्य है। उदाहरण के लिए गुङ, शर्करा या मधु के माधुर्य को (मिठास को) प्रायः सभी लोग जानते है। परन्तु इनके अतिरिक्त विभिन्न पदार्थों में विराजमान अव्यक्त माधुर्य चतुर लोग ही जान पाते है, जैसे कि चतुःदश माहेश्वर सूत्रों में प्रायः सर्वत्र माधुर्य है परन्तु व्यक्त माधुर्य हमें सप्तम सूत्र में दृष्टिगोचर हो रहा है।

मधुर के भाव को माधुर्य कहते हैं। मधुरस्य भावः माधुर्यम्। मधुर+ष्यञ् प्रत्यय लगाकर मधुर शब्द की निष्पत्ति होती है। जिसका अर्थ है मिठास, सुहानापन। उत्कृष्टसौन्दर्य भी माधुर्य का व्यञ्जक होता है। "रूपं किमप्यनिर्वाच्यं तनो माधुर्यमुच्यते" अलंकार शास्त्रियों ने मुख्यरूप से माधुर्य का समावेश गुण के मध्य किया है। अलंकार शास्त्रियों के द्वारा मान्य माधुर्य, ओज और प्रसाद इन तीन गुणों में माधुर्य का प्रमुख एवम् महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने काव्य में चित्त को द्रवित करने वाले और आह्लादक तत्व को माधुर्य के रूप में निरूपित किया है –

"चित्त द्रवी भावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते।
आह्लादकत्वं माधुर्यं श्रृङ.गारे द्रुतिकारणम्।।"[9]

परन्तु यदि इसकी व्यापक रूप मे मीमांसा की जाये तो काव्य में माधुर्य केवल गुणों तक में ही सीमित नहीं रहता अपितु वह शब्द, अर्थ, रीति, अलंकार आदि में भी अभिव्याप्त है। लौकिक क्षेत्र में उसका प्रसार प्रायः सर्वत्र परिलक्षित हो रहा है। वाणी तो मधुर हो ही सकती है, रूप मधुर भी होता है। जैसा कि कविकुलगुरु कालिदास इंगित करते हैं।

"किमिव हि मधुराणां मण्डनं ना.तीनाम्"।[10]

काव्य में तो माधुर्य होता ही है परन्तु व्यवहार का माधुर्य सीधे हृदय को छू लेता है। लोक में सुख–दुःख और दिन रात की तरह माधुर्य और पारूष्य को देखा जा सकता है। मधुर प्रायः सभी को प्रिय होता है, परन्तु परूष या कटु प्रिय नही हो सकता। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामान्य मानवजीवन और दर्शन सभी में सतत् माधुर्य प्रोद्भाषित हो रहा है। यह माधुर्य ही शनैः शनैः सुख के रूप में पर्यवसित हो जाता है। उदाहरण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए जब कोई हमसे मधुर व्यवहार करता है, तो हमें सुख की अनुभूति होती है, और जब कटु व्यवहार करता है तो दुःख की अनुभूति होती है। अतएव किसी विद्वान् का यह कथन सर्वथा संगत है–

"माधुर्यं हि मनुष्याणां कारणं सुखदुःखयोः।"[11]

अर्थात् माधुर्य ही मनुष्य के सुख दुःख का हेतु है। माधुर्य के होने पर सुख और अभाव में दुःख प्रायः होता है।

इस प्रकार माधुर्य के विषय में गम्भीरता पूर्वक अनुशीलन किया जाय तो इसका क्षेत्र अतिशय व्यापक दृष्टिगोचर होगा।

व्याकरण के विषय में सामान्यतः एक भ्रान्ति है कि यह विषय क्लिष्ट रूक्ष और अमधुर हैं। व्याकरण ही क्या संस्कृत के विषय में भी प्रायः लोगों की यही अवधारणा है कि –

"संस्कृतं कठिनाभाषा संस्कृतं बहु दुर्गमा।
अपि द्वादशभिर्वर्षः वक्तुं नायाति संस्कृतम्।।"[12]

परन्तु यदि इसके अन्दर प्रविष्ट होकर गम्भीर समीक्षा की जाये तो इस विषय में भी अन्य मधुर विषयों की ही तरह माधुर्य का अवलोकन किया जा सकता है।
अक्षर विज्ञान माधुर्य का सर्वाधिक साधकतम तत्व है। भाषा में जो भी निर्मिति होती है उसके मूलकारण अक्षर हैं। हम मधुर और प्रिय अक्षरों के संयोजन के द्वारा किसी का हृदय जीत सकते हैं, और इसके विपरीत क्लिष्ट अप्रिय शब्दों के द्वारा किसी के भी कोप भाजन हो सकते हैं।

संस्कृत व्याकरण की यह विशेषता है कि इसके द्वारा सिद्ध अक्षर एवं शब्द माधुर्य व्यञ्जक बन जाते हैं। उदाहरण के लिए हम – कं कं कं कं पं पं पं के द्वारा भाषागत माधुर्य की सृष्टि कर सकते है और –

"अधरं मधुरं वदनं मधुरं हसितं मधुरं गमनं मधुरं।"[13]

आदि पदों के प्रयोग के द्वारा व्यवहार में माधुर्य की मधुरता प्रकटित हो रही हैं ।

महर्षि पाणिनि के 'तुल्यास्यप्रयत्नं सर्वत्रम्[14] सूत्र' का अनुशीलन करें। इस सूत्र का सम्पूर्ण प्रतिपादन माधुर्य का द्योतक है। सूत्र का प्रतिपाद्य है कि जिन वर्णों का आस्य (मुख) प्रयत्न अर्थात् स्थान एवं अभ्यन्तर प्रयत्न समान है वे वर्ण सवर्ण कहलायेंगे। सवर्ण प्रयत्न प्रतिपाद्य विषय एवं स्वरूप की दृष्टि से माधुर्य व्यञ्जक होंगे।

संस्कृत व्याकरण में कहीं–कहीं पर द्वित्व, आगम, आदेश आदि माधुर्य के संयोजक हो जाते हैं। उदाहरणार्थ –तवल्लकारः में द्वित्व योजना माधुर्य व्यञजक है। नैः+अकः के रूप में स्थित विग्रह में अयादि सन्धि के द्वारा जब हम "एचोऽयवायाव"[15] सूत्र से ए को आय आदेश करते है, तो सन्धि होकर हमें मधुर पद नायक प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उप+इन्द्रः में आद्गुणः[16] के द्वारा गुणकार्य करके उपेन्द्र की प्राप्ति होती है तब माधुर्य वृत्ति के द्वारा हृदय आनन्दित हो उठता है।

'भो आयुष्मान् एधिदेवदत्त – 3' यहाँ पर प्रत्यभिवादेऽशूद्रे[17] इस सूत्र के द्वारा जो देवदत्त के टि को प्लुत किया जा रहा है वह विलक्षण माधुर्य का द्योतक है।

'सैष दाशरथिरामः' इस उदाहरण में ''सोऽचिलोपे चेत्पादपूरणम्''[18] इस सूत्र के द्वारा जो सु का लोप कर दिया जाता है वह सैष माधुर्य की अभिव्यक्ति का कारण बनता है।

अपि शब्द की जब 'कर्मप्रवचनीय' संज्ञा हो जाती है। तब वह उपसर्ग नहीं रहता और कर्मप्रवचनीय संज्ञा की शक्ति से जब हम 'अपिस्तूयात् वृषलम्' का प्रयोग करते हैं तो वहाँ अपि के द्वारा गर्हा (निन्दा) भाषा के अव्यक्त माधुर्य को प्रकाशित करता है।

बुद्धिमान् धीमान् आदि पदो में जो माधुर्य व्यजंना 'मतुप्' प्रत्यय के द्वारा विहित है उसके लिए व्याकरण छोड़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है।

''प्रशस्ताः केशाः सन्ति अस्य इति केशवः'' यहाँ केश शब्द से केशाद्वोऽन्यतरस्याम्[19] व प्रत्यय सम्पूर्ण भाव को व्यक्त कर रहा है। जो कि विशिष्ट माधुर्य वृत्ति का प्रमुख कारक है।

लक्ष्मीः अस्यास्ति अर्थात् लक्ष्मी इसके है। इस विग्रह में लक्ष्मी शब्द से लक्ष्म्योच्च सूत्र से न प्रत्यय और इ को अ आदेश तथा णत्व होकर निष्पन्न लक्ष्मणः शब्द जिस माधुर्य की संसृष्टि कर रहा है। वह सहृदय जनगम्य है।

इसी प्रकार कल्याणानि अङ्गानि अस्या सन्ति अर्थात् सुन्दर अंगो वाली इस विग्रह में अंग शब्द से स्त्रीलिंग में निष्पन्न अंगना शब्द शाब्दिक माधुर्य को प्रकट कर रहा है। कृत, तद्धित और समास की वृत्तियाँ जिस अभूतपूर्व माधुर्य की संसृष्टि में सक्षम है। वह वस्तुतः अत्यन्त आश्चर्य जनक है।

दशरथ के पुत्र को 'दाशरथि' वासुदेव के पुत्र को वासुदेवः व्याकरण के वेत्ता को वैयाकरणः आदि तद्धित वृत्ति से निष्पन्न शब्द विशिष्ट सौष्ठव के द्वारा भाषागत माधुर्य को प्रकट कर रहे हैं। तद्धितवृत्ति के विपुल विस्तार में संस्कृत वाङ्गमय में जो सौदर्न्य सागर उड़ेल दिया है, वह भला किस विद्वान् भावुक को प्रभावित न करेगा। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शाब्दिक आदि लोकप्रिय शब्दों की संसृष्टि का श्रेय तद्धित वृत्ति को ही है। नन्दन के भाव को हृदयगंम करने के लिए कृतवृत्ति का आश्रय परमावश्यक है। यदि नन्दनः के स्थान पर कोई पिता को आनन्दित करने वाला इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करता है तो क्या माधुर्य कोसों दूर नहीं हो जायेगा?

'इन्द्र' की स्त्री 'इन्द्राणी' 'वरुण' की वरुणानी 'भव' की भवानी कहने के लिए 'आनुक' और ङीष् का प्रयोग कर हम शब्द माधुर्य में प्रवृत्त होते हैं।

क्या ही विशिष्ट वृत्ति होती है एकशेष की जब 'पितरौ' के द्वारा माता एवं पिता दोनों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुला लेते हैं। संस्कृत व्याकरण के नाम धातु प्रकरण ने किसके अन्तःकरण को प्रभावित नहीं किया जब हम कृष्ण की तरह आचरण करता है– 'कृष्णं इवाचरति' इस कथन के लिए 'कृष्णाति' का प्रयोग करते हैं। तथा कृष्णति, कृष्णतः कृष्णान्ति रूपों को प्रस्तुत कर किसी विलक्षण आनन्द की अनुभूति करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत व्याकरण का माधुर्य दर्शन विशिष्ट एवं विलक्षण है। इसका क्षेत्र अत्यंन्त ही व्यापक है जो मानव अन्तस् का संस्पर्श कर उसे आनन्दित तो करता ही है उसे सत्य तत्व तक भी पहुँचा देता है जो कि अन्ततः उसके कल्याण का हेतु बनता है। क्योंकि संस्कृत व्याकरण साक्षात् शिव से प्रकट हुआ है और माधुर्य वृत्ति का संसार में प्रकटीकरण भी भगवान् शिव के द्वारा ही हुआ है।

राम चरित मानस को सरल एवं सहज रूप में जन–जन तक पहुँचा देने में समर्थ 'तुलसीदास जी' ने व्याकरण एवं माधुर्य के सहज सम्बन्ध को इस प्रकार व्यक्त किया है–

"जाने बिनु न होई परतीति बिनु परतीति होई नहि प्रीति"।[20]

अर्थात् जब तक हम किसी वस्तु को जानते नहीं है तब तक हमें उसकी प्रतीति या पहिचान नही होती और परतीति या पहिचान के बिना किसी से भी प्रीति या प्रेम नहीं होता। इसीलिए कहा जाता है कि जान पहचान तब प्रेम। ठीक इसी प्रकार पहले हम व्याकरण को अच्छी तरह से जाने तभी उसके आश्रय से किसी अर्थ को सम्यक् रूप से समझ सकेगें और किसी भी शब्द के सही अर्थ का बोध हो जाने पर हमें उसकी प्रतीति कराने वाले व्याकरण के प्रति भी प्रीति स्वतः समुद्भूत हो जायेगी। क्योंकि व्याकरण ज्ञान के बिना वेद वेदान्त, स्मृतिपुराण इतिहास, काव्य आदि किसी भी शास्त्रान्तर में प्रवेश नहीं हो सकता। भाष्कराचार्य ने भी कहा है –

"यो वेद वेदवदनं सदनं हि सम्यक्
ब्राह्मयाः स वेदमपि वेद किमयशास्त्रम्,
यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य विद्वान्
शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी।"[21]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1	महाभाष्यप्रदीप	:	1–3–48
2	काव्यादर्श	:	3–4
3	महाभाष्य प्रदीप	:	
4	महाभाष्य प्रदीप	:	
5	काव्यमीमांसा	:	अध्याय – 6
6	महाभाष्यप्रदीपटीक	:	
7	महाभाष्यप्रदीपटीक	:	
8	प्रौढ़ मनोरमा	:	नन्दिकेश्वर
9	काव्यप्रकाश	:	अष्टम उल्लास, सूत्र संख्या–90
10	अभिज्ञान शाकुन्तलम्	:	1/20
11	साहित्य सुधासागर	:	5/15
12	वैयाकरण भूषणसार (कौण्डभट्ट)	:	7/77
13	मधुराष्टक	:	शंकराचार्य
14	लघुसिद्धान्त कौमुदी	:	1/1/9
15	लघुसिद्धान्त कौमुदी	:	6/1/78
16	लघुसिद्धान्त कौमुदी	:	6/1/87–1/1/2
17	लघुसिद्धान्त कौमुदी	:	8/2/83
18	लघुसिद्धान्त कौमुदी	:	6/1/134
19	लघुसिद्धान्त कौमुदी	:	5/2/109
20	रामचरित मानस	:	उत्तराकाण्ड
21	लघु सिद्धान्त कौमुदी	:	श्री महेश सिंह कुशवाहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिकहिन्दुविधिप्रावधानानां स्रोतांसि

प्रो० डॉ० वेदप्रकाश उपाध्यायः
एम्.ए. (द्वय), डी.फिल्.,डी.लिट्
आचार्यत्रय, डिप्. इन जर्मन एवं पर्सियन
यू.जी.सी. एमेरिटस
प्रोफेसर– संस्कृतविभागः पञ्जाबविश्वविद्यालयः,
चण्डीगढम्–160014

आधुनिकहिन्दुविधेः प्रावधानानि आश्रृत्य न्यायालयैः न्यायिकविनिश्चयः प्रदीयते। विधिकदृष्ट्या हिन्दुपरिभाषान्तर्गता जनाः हिन्दुविधिप्रावधानैरनुशासिता भवन्ति। भारतेतरदेशवासिनस्तत्तद्देशनागरिका अपि हिन्दुविधिक्षेत्राधिकारान्तर्वर्तित्वाद् हिन्दुविधिप्रावधानैः सञ्चालिता भवन्ति। हिन्दुविधेः मौलिकस्रोतांसि निम्नाङ्कितानि :

1. श्रुतिशब्दः वेदवाचको वर्तते श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिरितिस्मरणात्।[1] वेदशब्दः विद्धातोर्घञ्प्रत्ययसंयोगेन निष्पद्यते। हिन्दुविधौ ऋग्वेद– यजुर्वेदसामवेदाथर्ववेदाः स्वब्राह्मणादिग्रन्थैः सहैव गृह्यन्ते। वेदानां स्वतःप्रमाणत्वं सर्वसम्मतम्। प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्योपायस्य ज्ञानं न प्राप्तुं शक्यते तदवाप्तिर्वेदेन भवितुमर्हति। अतः एतदेव वेदस्य वेदत्वम्। शतपथब्राह्मणे उक्तम्–यावन्तं ह वै इमां पृथिवीं वित्तेन पूर्णां ददत् लोकं जयति त्रिभिस्तावन्तं जयति, भूयांसं च अक्षय्यं च य एवं विद्वान् अहरहः स्वाध्यायमधीते, तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्यः।[2] ऋग्वेदस्य शाकलबाष्कलशाखयोः संहिते उपलभ्येते ब्राह्मणग्रन्थाश्च ऐतरेयकौषीतकिशाङ्खायनशाखासम्बन्धिनः सन्ति। कौषीतकिशाङ्खायनब्राह्मणयोरैक्यं मन्यते केषांचिन्मते, किन्तु एतत्तु न समीचीनं भवितुमर्हति शाखाप्रवर्तकयोः कौषीतकिशाङ्खायनयोः पृथक्त्वाद् आश्वलायनगृह्यसूत्रे ऋषितर्पणप्रसङ्गे उभयोरपि पृथक्त्वेन दर्शनाच्च।

2. हिन्दुविधेः मौलिकस्रोतस्त्वेन वेदा मताः ततः स्मृतीनां प्रामाण्यं वेदमूलकत्वादेवास्ति। न्यायिकविनिश्चयेषु स्मृतीनामवलम्बनं न्यायाधीशैर्गृहीतम्। मनु–याज्ञवल्क्य– नारद–पराशर–बृहस्पत्यादीनां स्मृतयः विशेषतया प्राधिकारिकरूपेण न्यायालयैः स्वीकृताः। वसिष्ठस्मृतिः विष्णुस्मृतिः गोतमस्मृतिश्च धर्मसूत्रत्वेनापि स्वीक्रियन्ते। यत्र विवादपदेषु यस्मिन् विषये स्मृत्योर्विरोधो दृश्यते, तत्र धर्मशास्त्रीयोऽयं सिद्धान्तो न्यायालयेषु मतः 'स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान् व्यवहारतः।3 स्मृतिषु हिन्दुव्यवहारविधेः वादि–प्रतिवादि–वादपदादिविषयाः प्रतिपाद्यत्वेन वर्तन्ते। याज्ञवल्क्यस्मृतौ समेषामपि पुरातनानां व्यवहारविषयाणां वैशद्येन निरूपणं प्राप्यते। वेदाविरुद्धाः स्मृतयः प्रमाणत्वेन गृह्यन्ते। स्मृतीनां प्रावधानं यत्र वेदविरुद्धं तत्राग्राह्यम्, यत्र च वेदाविरुद्धं तत्र ग्राह्यम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3. स्मृतिषूपलब्धानां विधीनां वैशद्येन व्याख्यानं धर्मशास्त्रीयनिबन्धग्रन्थेषु प्राप्यते। मनुस्मृतौ कुल्लूकभट्टमेधातिथ्यादीनां भाष्य–व्याख्यादिग्रन्थाः, याज्ञवल्क्यस्मृतौ विज्ञानेश्वरकृता मिताक्षराव्याख्या, वीरमित्रोदयः, दायभागः, व्यवहारमयूखः, स्मृतिचन्द्रिका दत्तकमीमांसा, दत्तकचन्द्रिका, विवादचिन्तामणिः, विवादरत्नाकरः, व्यवहारबालम्भट्टी इत्यादयो ग्रन्थाः व्यवहारविधिदृष्ट्या महत्त्वपूर्णं स्थानं प्राप्तवन्तः। कलक्टरआवमदुरा विरुद्ध मुत्तू रामलिङ्गम् इति वादे न्यायिकविनिश्चयोऽयं प्रदत्तो यत् नन्दपण्डितप्रणीता दत्तकमीमांसा बङ्गदेशं विहाय सर्वस्मिन् भारतवर्षे दत्तकग्रहणविषये प्राधिकारिकग्रन्थत्वेन स्वीकर्त्तव्या प्रमाणत्वेन च मन्तव्या[4] बङ्गदेशे च रघुमणिविद्याभूषणकृता दत्तकचन्द्रिका प्रमाणत्वेन ग्राह्या। याज्ञवल्क्यस्मृतेर्मिताक्षराव्याख्या निखिलेऽस्मिन् भारतवर्षे न्यायिकविनिश्चयेषु प्रमाणत्वेन स्वीकृता बङ्गदेशातिरिक्तम्, किन्तु जीमूतवाहनकृतो दायभागः बङ्गदेशीयन्यायिकविनिश्चयेषु प्रामाण्येन स्वीकृतो न्यायालयैः। यदा बङ्गदेशीयवादपदेषु दायभागो मौन एव वर्तते अर्थाद् वादपदविशेषस्य निर्णयाय न कोऽपि उपबन्धः प्राप्यते, तदा तत्र मिताक्षरागतास्तद्विषयका उपबन्धाः स्वीक्रियन्ते न्यायिकविनिश्चयाय।[5]

मिथिलायां वीरमित्रोदयस्य प्रामाण्यं वैशिष्ट्येन। व्यवहारविधिविषये विशेषतया वैयक्तिकहिन्दुविधिविषये नीलकण्ठभट्टप्रणीतस्य भगवन्तभास्करस्य द्वादशमयूखानां मध्ये व्यवहारमयूखः न्यायालयैः महाराष्ट्रप्रदेशे प्रमाणत्वेन गृह्यते।[6] तत्र व्यवहारमयूखस्य प्रामाण्यं वैशिष्ट्येन मिताक्षरायाश्च सामान्येनेत्यत्र न कश्चिद् विवादः।

दक्षिणभारतीयवादपदानां विनिश्चयाय देवन्नभट्टकृतायाः स्मृतिचन्द्रिकायाः प्रामाण्यं न्यायालयैः स्वीकृतम्। स्मृतिचन्द्रिकागतो व्यवहारविषयकः खण्डः वैयक्तिकहिन्दुविधेरूपबन्धान् प्रस्तौति। प्रिवीकौंसिलस्य एकस्मिन् न्यायिकविनिश्चये स्मृतिचन्द्रिकाकारः अपरार्कस्य समकालीनः मतः।[7]

वाचस्पतिमिश्रकृता विवादचिन्तामणिः मिथिलाशाखायां प्रमाणभूता।[8] तदनन्तरं चण्डेश्वरकृतो विवादरत्नाकरः स्मृतिप्रतिपादिताष्टादशविवादपदविनिर्णयाय प्रमाणत्वेन स्वीकर्त्तुं शक्यः। ऋणादान–सीमाविवाद–स्त्रीसङ्ग्रहणादयो विषयाः वाचस्पतिचण्डेश्वरप्रणीतयोः ग्रन्थयोः विवादचिन्तामणिविवादरत्नाकरयोः सम्यक् निरूपिताः न्यायालयैश्च तत्तद्वादपदविनिर्णयकाले ग्रहीतुं शक्याः। अत्र व्यावहारिक– दाण्डिकविधिशास्त्रसम्बद्धा विषया विवेचिताः।[9]

हिन्दुविधिविषयकाः उपबन्धाः संस्कृतभाषायां श्रुतिस्मृतिधर्मशास्त्रीयनिबन्धग्रन्थेषु उपलभ्यन्ते, येषां ज्ञानं विना तत्तद्वादविषयकाः न्यायिकविनिश्चयाः सुष्ठुरूपेण न प्रदातुं शक्यन्ते।

आङ्ग्लशासनकाले आङ्ग्लभाषाविदः न्यायाधीशाः संस्कृतभाषाज्ञानाभावात् संस्कृतस्य धर्मशास्त्रीयग्रन्थानवगन्तुमक्षमा आसन्। तेषां साहाय्यार्थं स्थापितायाः पण्डितपरिषदः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृतविद्वांसः आङ्ग्लभाषाज्ञानाभावात् हिन्दुविधिविषये धर्मशास्त्रसम्मतान् स्वकीयविचारान् सम्प्रेषयितुम् अक्षमा आसन्। स्मृतिगतविरोधपरिहाराय वारेन्हेस्टिंग्जमहोदयेन प्रेरितया पण्डितपरिषदा सर्वसम्मतो विवादार्णवसेतुनामा ग्रन्थः प्रणीतः किन्तु संस्कृतभाषोपनिबद्धत्वादयं ग्रन्थः आङ्ग्लभाषाविद्भ्यो न्यायाधिपतिभ्यो न्यायिकविनिश्चयार्थम् अनुपयोगी एव भूतः तेषां संस्कृतानभिज्ञतावशात्। वैयक्तिकव्यावहारिकविधिस्रोतस्त्वेन विवादार्णवसेतोः आङ्ग्लभाषानुवादोऽभीष्टः आसीत् एतदर्थं च संस्कृताङ्ग्लभाषाविदोऽपेक्षितत्वान्नैकभाषाविदा कार्यमेतत्सुकरमभवत्। ये संस्कृतज्ञानिनस्तदानीं ते आङ्ग्लभाषाज्ञानहीनाः सन्तः विवादार्णवसेतोरनुवादाय अनुपयोगिनोऽभवन्, ये च केवलमाङ्ग्लभाषाविदः, ते संस्कृतभाषाज्ञानाभावग्रस्तत्वात् सर्वथा असमर्था एतत्कर्मणे। एतत्कर्मसम्पादनार्थं एन.बी. हालहदनाम्ना पाश्चात्त्यविदुषा सङ्कल्पोऽवधारितः, किन्तु सोऽपि आङ्ग्लभाषाज्ञाने सत्यपि संस्कृतज्ञानरहितः आसीत्। तेन संस्कृतफारसीभाषयोः साम्यावगमात् फारसीभाषाविशारदः सहायकोऽन्विष्टः, किन्तु सोऽपि संस्कृतज्ञानाभावेऽपि तत्साम्यात् फारसीशब्दमाध्यमेन विवादार्णवसेतोरनुवादकार्ये हालहदाय स्वकीयां सहायतां प्रायच्छत्।[10] इत्थं विवादार्णवसेतोरनुवादकार्यरूपेण हालहदजेण्टूकोडनामा ग्रन्थो न्यायाधिपतिकुलविचारणाध्वनि दृष्टः। ग्रन्थमेतमाधृत्य प्रिवीकाउंसिलप्रभृतिभिर्न्यायालयैरनेके न्यायिकविनिश्चयाः प्रदत्ताः, ये निर्णीतानुसरण– सिद्धान्तेन परवर्तिभ्यो न्यायालयेभ्यो बन्धनकारितास्वरूपं प्राप्तवन्तः।

मौलिकधर्मशास्त्रीयग्रन्थानां त्रुटिपूर्णानुवादमाधृत्य प्रदत्तस्य न्यायिकविनिश्चयस्य प्रामाण्यं नैव स्वीकर्त्तुं शक्यते। एतादृशान् न्यायिकविनिर्णयानाधृत्याधिनियमिता अधिनियमाः विधिसंहिता वा प्रामाण्यविषये पुनरीक्षणमर्हन्ति।

4. विधिक्षेत्रे प्रथा तदैव सशक्ता भवति, यदा सा प्राचीना निश्चिता तर्कयुक्ता विधिप्रावधानाविरुद्धा भवेत्।[11] हिन्दुविधिप्रावधानानां स्रोतःरूपेण प्रथाया अपि महत्त्वपूर्णं स्थानं वर्तते। प्रथायाः विधिरूपत्वं तदैव सम्पाद्यते यदा प्रथायामधोलिखितानि त्रीणि तत्त्वानि भवन्तिः –

(क) प्रथायाः प्राचीनता तां विधिश्रेण्यामवस्थापयितुं सक्षमा। परम्परागताभिनवा रीतिर्नैव प्रथात्वेनावगन्तुं शक्यते। प्राचीनता पुरातनत्वं वा प्रथाया परमापेक्षितमत्यावश्यकं च तत्त्वं भवति।

(ख) निरन्तरता अपि प्रथाया विधित्वेऽत्यावश्यकं महत्त्वपूर्णं च तत्त्वमस्ति। प्रथायाः प्राचीनत्वेऽपि यदि तस्याः कालमध्ये व्यवधानं व्यवच्छेदो वा भवेत्, तदा निरन्तरता व्यवच्छिन्ना भवितुमर्हति, अतः अस्यां परिस्थितौ प्रथायाः विधिरूपत्वं विनश्यति। प्रथायां निरन्तरायां सत्यामेव तस्याः विधिस्वरूपत्वं सम्पाद्यते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग) अन्तिमं सर्वाधिकमहत्त्वपूर्णं च तत्त्वमस्ति नैतिकता। प्रथायां नैतिकतावच्छिन्नायां सत्यामेव तस्याः सम्पूर्णं विधिस्वरूपत्वं सम्पाद्यते।

प्रथायै विधिस्वरूपं वैधस्थितिस्तदैव प्रदीयते, यदा तस्यामुपर्युक्तानि त्रीणि तत्त्वानि समग्ररूपेण वर्तन्ते। प्रथा परम्परागता पुरातनी निरन्तराऽव्यवच्छिन्ना नैतिकाचाराविरुद्धा च भवितव्या।[12] यदि कस्मिंश्चित् समाजे परम्परागता पुरातनी प्रथा नीतिशास्त्रविरुद्धा आचारविरुद्धा च भवेत्, तर्हि तस्यै नीत्याचारवर्जितायै प्रथायै वैधस्थितिः विधिस्वरूपं च नैव प्रदीयते। एतादृशी प्रथा न्यायालयैरवैधप्रथेति स्वीक्रियते। वैधप्रथाया अपरिहार्यतत्त्वत्वेन पुरातनत्वम् अविच्छिन्नत्वं निरन्तरत्वं वा, नीत्याचारसमर्थितत्वं चेति तत्त्वानि मन्यन्ते हिन्दुविधिशास्त्रे। प्रथा स्पष्टासन्दिग्धसाक्ष्यैः स्थापिता भवितव्या।[13] हिन्दुविधेराधारभूतग्रन्थेषु विधिसिद्धान्तविषये मतवैभिन्न्यं वर्तते अत एव हिन्दुविधेः संशयास्पदस्वरूपविनिर्णयाय परम्परा अथवा सदाचारः महाभारते प्रमाणत्वेन स्वीकृतः।[14] डॉ0 यू.सी. सरकारेणापि हिन्दुविधेराधारत्वेनात्रत्यजनानां परम्पराः प्रथाश्च संस्थापिताः।[15] येषु वादेषु श्रुतेः स्मृतेर्वा मूलपाठेन न किञ्चिन्निर्देशनं क्रियते, तत्र हिन्दुविधेः कस्यचिद् वादपदस्य अवधारणार्थं विधिविशेषज्ञानां परस्परं सहमतिराश्रयणीया।[16] हिन्दुविधेर्यस्मिन् विषये विधिज्ञस्य जनस्यात्मतुष्टिर्भवेत्, विधिक्षेत्रे तस्य प्रामाण्यं स्वीक्रियते। मेधातिथिनापि एतन्मतं मनुस्मृतेष्टीकायामुपस्थापितम्।[17] प्रथायाः विधिकमान्यतायै न्यायालयीया मान्यता न सर्वथाऽपेक्ष्यते, किन्तु प्रथायाः अस्तित्वसिद्धौ न्यायिकमान्यता महत्त्वपूर्णसाक्ष्यत्वेन विद्यते। ई.जे.त्रेवेल्यन्महोदयेनापि प्रथायाः अस्तित्वसिद्ध्यर्थं न्यायिकमान्यता साक्ष्यत्वेन स्वीकृता।[18] यत्र श्रुतौ स्मृतिषु च कोऽपि उपबन्धो नैव प्राप्यते, तत्र शिष्टानाम् आचारः प्रमाणत्वेन गृह्यते। वशिष्ठधर्मसूत्रेऽपि एतद्विषयकं विधानं प्राप्यते।[19] यत्र स्मृतिप्रथयोः कश्चिद्विरोधो दृश्यते, तत्र प्रथायां स्पष्टतया प्रमाणितायां सत्यां स्मृतेः मूलपाठः प्रथयाऽभिभूयते।[20] एतद्विषये मुत्तूरामलिङ्गवादे घोषितो न्यायिकविनिर्णयः उपर्युक्तं सिद्धान्तं सुस्थापयति।[21] स्मृत्योः परस्परं विरोधे सत्यपि शिष्टानामाचारे अथवा प्रथायामाधृतो न्यायो वरीयान् भवति। याज्ञवल्क्यस्मृतौ युक्तमेवोक्तम् 'स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान् व्यवहारतः'।[22] न्यायालयैरपि याज्ञवल्क्यस्मृतेरुपर्युक्तः सिद्धान्तः समर्थितः।[23] उपरिनिर्दिष्टस्य न्यायिकविनिर्णयस्य स्रोतस्त्वेन व्याख्याकारेणासहायेनोद्धृतं वचनमेतद् ग्रहीतुं शक्यते– 'देशे देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः, स शास्त्रार्थबलान्नैव लङ्घनीयः कदाचन।[24]

हिन्दुविधेः मौलिकस्रोतोरूपेण प्राचीनस्रोतांसि मन्यन्ते। ततः आधुनिकस्रोतोरूपेण न्याय–सद्विवेक–साम्या–विधान–न्यायिकनिर्णयाः गृह्यन्ते। यद्यपि डॉ0 गङ्गानाथझा–महोदयेन न्यायिकविनिर्णया हिन्दुविधौ प्रमाणत्वेन स्थापिताः, किन्तु तेन साम्यासद्विवेकन्यायविधानादयोऽपवर्जिताः। चुन्नीलालविरुद्धं सूरजरामवादे प्रदत्ते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायिकविनिश्चये साम्यायाः मान्यता परिलक्ष्यते यत्र याज्ञवल्क्यस्मृतिमाधृत्य प्रोक्तं यद् द्वयोः स्मृत्योः अथवा स्मृतिषु परस्परं विरोधे विद्यमाने सा एव स्मृतिः प्रमाणत्वेन स्वीकरिष्यते या साम्यया समर्थिता वर्तते।[25]

आङ्ग्लदेशे प्रचलिता साम्या सामान्यविधिश्च आधुनिकहिन्दुविधेः स्रोतस्त्वेन मन्येते। भारतवर्षे चैतत्प्रवर्तनं सम्राजो न्यायालयानां न्यायाधिपतिभिः कृतम्। जे.डी.एम. डेरेटमहोदयेन स्वकीया सहमतिरेतत्तथ्ये प्रदत्ता।[26] यत्र धर्मशास्त्रेण कस्याश्चिद् समस्याया उपचारः न प्रदत्तस्तत्र साम्यया लोकापेक्षायां धर्मशास्त्रस्य पूरकविधित्वेन कार्यं निष्पादितम्। धर्मशास्त्रीयविधौ त्रुटिमवेक्ष्य न्यायालयैः न्याय–सद्विवेक– साम्यारूपेणाङ्ग्लदेशस्य सामान्यविधिः हिन्दुविधिक्षेत्रे प्रवर्तितः।[27] येषु वादेषु आङ्ग्लसामान्यविधिं क्रान्त्वा रोमनविध्युपयुक्तता प्रतीयते, तत्र प्राकृतिकन्यायेन सह रोमनविधेराश्रयो ग्राह्यः। मद्रासोच्चन्यायालयस्यैकस्मिन् वादे तथ्यमेतत्परिपोषितम्।[28]

आधुनिकहिन्दुविधेर्द्वितीयं स्रोतः विधानं वर्तते। वर्त्तमानकाले प्रवर्तितहिन्दुविधेर्बहुविधविषयाणां स्रोतांसि अधिनियमेषु प्राप्यन्ते। हिन्दुविधेराधारभूतसंस्कृत ग्रन्थेषु प्रतिपादितानां प्रावधानानां परिवर्तनं परिवर्धनं चाधिनियमितहिन्दुविधि–विहितोपबन्धैर्व्यापकरूपेण कृतं कानिचित्प्रावधानानि च प्रभावरहितानि कृतानि। धर्मशास्त्राधृतप्राचीनहिन्दुविधौ निर्योग्यतामाधृत्य जना उत्तराधिकाराद् वञ्चिता आसन्, किन्तु आधुनिकहिन्दुविध्यन्तर्गतमुत्तराधिकारे प्रतिबन्धकतां गतास्ता निर्योग्यता निराकृताः अतः निर्योग्यताग्रस्तैरपि जनैरुत्तराधिकारोऽवाप्तुं शक्यते। एतद्विधिस्रोतोरूपेण हिन्दूत्तराधिकारनिर्योग्यतानिवारणाधिनियमो विद्यते। हिन्दुविधौ इच्छापत्रसम्बद्धप्रावधानस्य मूलं हिन्दु–इच्छापत्र–अधिनियमे वर्तते, किन्त्वेतस्य प्रावधानस्य मूलं मुस्लिमविधौ दृश्यते। पाण्डुरङ्गवामनकाणेमहोदयेनापि इच्छापत्रसम्बद्धप्रावधानस्य मूलं मुस्लिमविधौ मतम्।[29]

हिन्दुविधेः स्रोतोरूपेण विधानशीर्षके ग्राह्या विशिष्टा अधिनियमाः सन्ति। जातिनिर्योग्यतानिवारणाधिनियमः, हिन्दुविधवापुनर्विवाहाधिनियमः, भारतीयसंविदाधिनियमः सम्पत्त्यन्तरणाधिनियमः, वयस्कताधिनियमः बालविवाहनिरोधाधिनियमः हिन्दुविद्यालाभाधिनियमः हिन्दूत्तराधिकाराधिनियमः हिन्दूत्तराधिकारविधिसंशोधनाधिनियमः हिन्दुस्त्रीसम्पत्त्यधिकाराधि–नियमादयोऽनेकेऽधिनियमाः आधुनिकहिन्दुविधेः स्रोतस्त्वेन प्रतिष्ठिताः सन्ति। एन.आर. राघवाचार्यारेण भारतीयोत्तराधिकाराधिनियमः भारतीयदण्डसंहिता भारतीयसाक्ष्याधिनियमः इत्यादयोऽधिनियमाः विधानशीर्षके आधुनिकहिन्दुविधेः वर्त्तमानस्वरूपस्य स्रोतोरूपेण स्वीकृताः।[30] आधुनिकहिन्दुविधेः स्रोतस्त्वेन विधानस्य स्वीकरणे कारणमेतद् वर्तते यद् विधानेन धर्मशास्त्रसम्मतं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीनहिन्दुविधिस्वरूपं आङ्ग्लाधिवक्तृनिर्देशने परिवर्तितम्। जे.डी.एम.डेरेटमहोदयेन उपरिनिर्दिष्टविषये सप्रमाणं रहस्योद्घाटनं कृतम्।[31]

हिन्दुविधेराधुनिकस्रोतस्त्वेन न्यायिकविनिर्णयानां महत्त्वपूर्णं स्थानं वर्तते। न्यायालयेन प्रवर्तिते कस्मिंश्चिद् विधौ प्रतिष्ठापिता न्यायिकविनिर्णयाः वादपदेषु पक्षं विपक्षं वा साधयितुं वादिना प्रतिवादिना वा उदिध्रयन्ते। न्यायिकविनिर्णयानुसरणे प्रदत्तनिर्णयस्य सिद्धान्तः निर्णीतानुसरणसिद्धान्तः (Doctrine of stare decisis) इति कथ्यते। अयं सिद्धान्तः आङ्ग्लदेशे भारतवर्षे च पूर्णतया प्रवर्तितः, किन्तु फ्रांसदेशे सिद्धान्तोऽयं प्रवर्त्तने नास्ति। न्यायिकविनिश्चयेन विधिस्वरूपं प्राप्यते परवर्तिनां वादानां निर्णये च मार्गप्रदर्शकोदाहरणत्वेन व्यवह्रियते। कस्यचिदपि न्यायिकविनिश्चयस्य प्राधिकारित्वं तदा सम्भाव्यते, यदोच्चतरन्यायालयेन विनिर्णयस्योद्घोषणा भवेत्। अधीनस्थन्यायालयानां विनिर्णयः उच्चतरन्यायालयेभ्य प्राधिकारितां न दधाति।[32]

राजाज्ञाशीर्षके डॉ0 यू.सी.सरकारेण न्यायिकविनिश्चयो हिन्दुविधेः स्रोतस्त्वेन स्वीकृतः।[33] आङ्ग्लभाषायां राजाज्ञाशब्दः 'किंग्स एडिक्ट' (Kings Edict) इतिपदेन अभिधीयते।

विधिविषयकविवादास्पदविषयेषु न्यायाधीशाः धर्मशास्त्रविदां विपश्चितां परामर्शग्रहणाय बाध्या आसन्, येषां सम्बन्धस्तन्न्यायालयेभ्योऽभवत्। यदि काचित्त्रुटिर्न्यायिकविनिश्चयेषु घटिता, तर्हि सा त्रुटिः विधिकविषयेषु परामर्शदातृणां विदुषां मता। धर्मशास्त्रज्ञैर्विद्वद्भिर्विधि–विषयकपरामर्शप्रदानकाले शास्त्रवाक्यानि उद्धृतानि। जे.डी. मेनमहोदयेनापि उपर्युक्तं तथ्यं सप्रमाणं परिपोषितम्।[34] न्यायालयसम्बद्धा धर्मशास्त्रविदो विद्वांसः विधिविषयकपरामर्शप्रदान–कार्यादुन्मुक्ता 1864 खीष्टाब्दीयाधिनियमेनाधिनियम– संख्यैकादशेन।

प्रिवीकौंसिलप्रदत्तन्यायिकविनिश्चयानां सामान्यप्रकृतिः हिन्दुधर्मशास्त्रानुवर्तिनी आसीत्। लल्लनरामतिवारीसम्पादितः 'लीडिंग केसेस आन हिन्दु ला' नामा ग्रन्थः प्रिवीकौंसिलप्रदत्तानां षडशीतिन्यायिकविनिश्चयानां सङ्ग्रहो वर्तते, यस्मिन् उद्धृतानां न्यायिकविनिश्चयानां समर्थने धर्मशास्त्रवाक्यानि समाविष्टानि। प्रिवीकौंसिल– प्रदत्तन्यायिकविनिश्चयाः धर्मशास्त्रोद्धरणा–न्याश्रित्योद्घोषिताः। प्रिवीकौंसिलोद्घोषिता न्यायिकविनिश्चया भारतीयन्यायालयेषु बाध्यकारिणोऽभवन्, अस्मात्कारणाद् भारतीयन्यायालयैः न्यायिकविनिर्णयकाले प्रिवीकौंसिलप्रदत्ता न्यायिकविनिश्चया अनुसरणीया आसन्।[35]

उच्चन्यायालयानां न्यायिकविनिश्चयाः अधीनस्थन्यायालयेभ्यो बाध्यकारिणोऽभवन्। प्रिवीकौंसिलप्रदत्तन्यायिकविनिश्चयानां मार्गदर्शने निर्णयप्रदानाय उच्चन्यायालयाः बाध्या आसन्। भारतवर्षे उच्चतमन्यायालयस्य स्थापनानन्तरमुच्चन्यायालयेभ्यः प्रिवीकौंसिल–प्रदत्तन्यायिकविनिर्णयानां बन्धनकारिता समाप्ता। अधुना उच्चन्यायालया उच्चतमन्यायालयस्य मार्गदर्शने न्यायिकविनिर्णयप्रदानाय बाध्याः सन्ति। प्रिवीकौंसिलस्थानमधुनोच्चतमन्यायालयेन गृहीतम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधिशास्त्रे न्यायिकविनिश्चयो द्विविधो वर्ततेः –

(क) अनुनयीनिर्णयः (Pursuasive precedent)

(ख) प्राधिकारिकोनिर्णयः (Authoritative precedent)

एकस्योच्चन्यायालयस्य न्यायिकविनिश्चयोऽन्यस्मै उच्चन्यायालयाय न प्रमाणम्, किन्तु आत्मने तस्य प्रमाण्यं विद्यते। एकस्योच्चन्यायालयस्य न्यायिकविनिर्णयोऽन्यस्मै उच्चन्यायालयाय अनुनयीनिर्णयो मन्यते। उच्चन्यायालयस्य न्यायिकविनिश्चयोऽधीनस्थन्यायालयेभ्यः प्राधिकारिकनिर्णयः कथ्यते।

उच्चतमन्यायालयः भारतस्य सर्वोच्चन्यायालयो वर्तते, अतः तत्प्रदत्तन्यायिकविनिश्चयाः भारतस्य सर्वेषु न्यायालयेषु बन्धनकारिणः सन्ति। सर्वोच्चन्यायालयप्रदत्तन्यायिकविनिश्चयाः प्राधिकारिकनिर्णयाः सन्ति। उच्चतमन्यायालयेन स्वप्रदत्तन्यायिकविनिर्णयाणां पुनर्विचारः कर्त्तुं शक्यते। विधिशास्त्रक्षेत्रे न्यायिकविनिश्चयानां महत्त्वपूर्णं स्थानं वर्तते।

पादटिप्पणियां–

1. श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः। मनुस्मृति 2.10.
2. शतपथब्राह्मण 11.5.6.1.
3. याज्ञवल्क्यस्मृति 2.21.
4. Collector of Madura V. Moottoo Ramalingam 12 M.I.A., P.437.
5. Trevelyan, E.J. : Hindu Law As Administered in British India, P. 13.
6. लल्लूभाई बनाम मन्कुवरबाई, आई.एल.आर. 2 बम्बई 388, पृ. 418.
7. Buddha Singh V. Laltu Singh, L.R. 42. I.A. 208.
8. I.L.R. 20 All. 267.
9. हिन्दूविधि एवं स्रोत, पृ. 18.
10. Trevelyan, E.J. : Hindu Law As Administered in British India, P. 33.
11. Hurpurshad V. Sheo Dayal (1876) 31.A. 259, 285.
12. Vannia Kone V. Vannichi Amma (1928) 51 Mad I
13. Mulla, D.F. : Hindu Law, P. 14.
14. तर्कोऽप्रतिष्ठःश्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।
    धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः।।
    महाभारत, वनपर्व 313,317.
15. Sarkar, U.C. : Epochs in Hindu Legal History, P. 41.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

16. सर्वज्ञनारायण (मनु. 2.6)
17. मेधातिथि (मनुस्मृति 2.6)
18. Trevelyan , E.J. : Hindu Law As Administered in British India, P. 27.
19. तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम्– वशिष्ठधर्मसूत्र 1.5.
20. Mulla, D.F. : Hindu Law, P. 14.
21. Collector of Madura V. Moottoo Ramalingam 12 M.I.A., P.436.
22. याज्ञवल्क्यस्मृति 2.21.
23. Bhau V. Sundrabai P.J. 1874, P. 250.
24. असहायधृतस्मृतिवचनम् (quoted in Principles of Hindu Law by J.C. Ghose, Vol I, P. 40)
25. चुन्नीलाल बनाम सूरजराम 33 Bom. 433.
द्रष्टव्य– याज्ञवल्क्यस्मृति 2.21.
26. Not only the manner of administration but even some of the rules themselves of the Anglo Hindu Law owe their origin to the Common Law and Equity which were brought to India by the Judges of the East India Company and the Crown Courts Derrett, J.D.M. : Hindu Law Past and Present, P.17.
27- The Common law was applied under the title of Justice, Equity and good conscience, which the courts were authorised to apply in defect of a rule of the Sastra. Derrett, J.D.M. : Hindu Law : Past and Present, P. 18.
28. Mayna Bai V. Uttaram, (1864) 2 Madras H.C.R. 196.
29. Wills were known among Mahomedans and contact with them would naturally suggest the idea of a will - Kane, P.V. Histry of Dharmashastra Vol. III, P.8.
30. Raghavachariar, N.R. : Hindu Law : Principles and Precedents, P. 12.
31. Derrett. J.D.M. : Hindu Law : Past and Present, P.21.
32. हिन्दुविधि एवं स्रोत, पृ. 26.
33. Sarkar, U.C. : Epochs in Hindu Legal History, P. 50.
34. Mayne, J.D. : A Treatise on Hindu Law and Usage, P. 43.
35. The Courts in India necessarily follow without question the decisions of the Judicial committee of the Privy Council. Trevelyan, E.J. : Hindu Law as Administered in British India, P.18.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वैदिक–वाङ्मये योगतत्त्वस्य आधुनिकसन्दर्भे उपादेयता"

डॉ0 प्रदीपकुमारदीक्षितः
एसो0प्रो0 अध्यक्षश्च संस्कृत विभागः
अकबरपुरमहाविद्यालयः अकबरपुरम्,
कार्णपुरंदेहात

'वेदे सर्वं ज्ञानं प्रतिष्ठितम्' (1) इति स्मृति वचनानुसारेण तथा च *'सर्वज्ञानमयो हि सः'* सम्पूर्ण ज्ञानस्य मूलाधारः वेदः। भारतीयाः मनीि णिः वेदम् अपौरुषेयं स्वीकुर्वन्ति। वेदाः विश्वस्य सर्वोत्तमा अनुपमा अक्षया निधिः। सौरमण्डलात् उत्पन्ना ज्ञानज्योतेः प्रथमा प्रभा। परमव्योम्नि वर्तमानाध्यक्षस्य अद्वितीयमनोहारिणी च कल्पना अस्ति। ***'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'*** (2)। मानव समाजस्य धार्मिकाः सांस्कृतिकाः, दार्शनिकाः एवञ्च वैज्ञानिक परिवेशस्य अभिव्यक्तयः दृश्यते वेदे। वैदिककालात् आरभ्य आधुनिक काल पर्यन्तं यत्र कुत्रापि योगस्य चर्चा प्राप्यते तत्र मूलाधारं वैदिक वाङ्मयत्वम्। योगविद्या भारतीय धर्मशास्त्रे अन्यशास्त्रे वा मुख्य मूलस्वरूपा। योगस्य वर्णनं वेदे, उपनि ादि, पुराणे, स्मृतिशास्त्रे, भारतीय दर्शनशास्त्रे, योगसूत्रे प्रचुरतया प्राप्यते। सम्पूर्ण योगसाधना अस्माकं वेदम् अवलम्ब्य एव आधारिता। ऋग्वेदे योगाभ्यासस्य मंत्राः प्राप्यते। यजुर्वेदेऽपि योगिकप्रक्रियामाध्यमेन परमज्ञानप्राप्ते संकेतः दृश्यते। सामवेदेऽपि योगपरम्परया परमपितुः परमात्मनाः दर्शनार्थं ज्ञानार्थं च प्राप्यते। अथर्ववेदे योगशास्त्रं योगं वा मोक्षस्य पन्था कथ्यते। वैदिक संहितासु योगविद्यामेव अपर नाम्ना ब्रह्मविद्या कथ्यते। या ईश्वरप्राप्तेः साधनं वर्तते।

ऋग्वेदकालेऽपि तपस्या, साधना मुख्यरूपेण प्रतिपादयते। तपः अवलम्ब्य सततं चिन्तयते। तपः, स्वाध्याय, संयमः साधनाम् अवलम्ब्य योगस्य विविधाः प्रवृतयः प्राप्यते। अत्र सततं चिन्तनार्थं निग्रहम् आवश्यकम्। अतएव वक्तुं शक्यते सर्वप्रथम योगशब्दः इन्द्रिय निग्रहाय रूपे प्रतिपादितः। एतद् अनन्तरं पत जलि–योग शास्त्रे उक्तम् – *'योगश्चित्तवृत्तिः निरोधः'*।।(3)

योगस्य अ टांगानि स्वीक्रियते– ***"यमनियमाऽऽसनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान समाधयोऽष्टावङ्.गानि"*** (4) उक्तानि अष्टांग नामानि वेदे पर्याप्त विवेचनम् उपलभ्यते ऋग्वेदे योगस्य आवश्यकतां स्वीकृत्य कथ्यते (ऋग्वेद –1–18–17), ब्रह्मचर्य पालनार्थम्– ऋग्वेद –10, 190, 4, 5), यजुर्वेदेऽपि सत्यपालनार्थम् (यजुर्वेद– 19, 30), (1, 5), समाधिकृते– (यजुर्वेद–11, 2) समावेदेऽपि ऋतम्भरा–प्रज्ञा प्राप्त्यर्थं, सिद्धिप्राप्त्यर्थं, विवेकार्थंच चर्चा प्राप्यते– (समावेद–301, 201, 31), अथर्ववेदेऽपि सत्य पालनार्थं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अर्थ0 12, 1, 1), संयमेन मृत्यूपरिविजयार्थं – (अथर्व–11, 5, 1), (11, 5, 17), एवमेव योगाविद्यायाः विकासक्रमः ब्राह्मणग्रन्थे, आरण्यकशास्त्रे, उपनिषत्सु, स्मृतिग्रन्थेषु, आधुनिक काव्य ग्रन्थेषुच सम्यक् प्रकारेण जायते। विशेषरूपेण महर्षिणा पत जलिना योगसूत्रग्रन्थे योगस्य विशिष्टा, विशाला विविधा चर्चा कृता।

योगात् मोक्षप्राप्तिः प्राचीनपरम्परासीत्। अद्यापि मनु यः मोक्षप्राप्तेः प्राथमिकता भवेत्, किन्तु अस्मिन् समये प्रायः जनाः मोक्षम् उपेक्ष्य शरीर सम्वर्धनं, सौन्दर्यार्थं, अरोग्यार्थम् ऐन्द्रियसुखार्थं, मानसिकदृढतार्थं बौद्धिकप्रखरतायै प्राणिकऊर्जायैच इत्यादि लाभाय योगभ्यासं कुर्वन्तः दृश्यन्ते।

तत्र पुरूषार्थ चतुष्टयम् आवश्यकम्। पुरुषार्थंचतुष्टयं नाम धर्म, काम, मोक्ष, इति, अत्र मोक्ष पुरुषार्थं परमपुरूषार्थंस्वरूपेण स्वीकृतः मोक्ष सिद्धयर्थं मोक्षस्वरूपा योगविद्या एवं सहायका। निःसन्देह रूपेण वक्तुं शक्यते यत् वैदिक वाङ्मये वेद–वेदांग, उपनिषद् पुराण, स्मृतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, इत्यादयःयोगस्य मुक्तकण्ठेन सविवरणं प्रशंसां कुर्वन्ति।

अन्यत्रापि विदुषां मध्ये मतभिन्नाः प्राप्यन्ते, किन्तु योग विषये कस्यापि विदुषः मतभेदो नास्ति। योगविद्या विवादरहिता, सर्वजनहिताय, बहुजनसुखाय मोक्षप्रदात्री विद्या अस्ति। श्रेयो प्राप्तिः तपसा, ज्ञानेन, कर्मणा च भवति परन्तु एतच्छ्रेष्ठयोगः। महायोगेश्वरेण भगवता श्रीकृष्णेन श्रीमद्भगवद्गीतायाम् उच्यते–

''तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन''।।[5]

अर्थात् तपस्विभ्यः ज्ञानिभ्यः कर्मिभ्यश्च योगी श्रेष्ठः भवति। ऋग्वेदे चर्चा आयाति समाधि प्राप्त्यर्थं योगस्वरूपः एव –

''यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन।
स धीनां योगमिन्वति''।।[6]

लोके, वेदेऽपि **अनेक स्वरूपेण योगः प्रचलन्ति यथा**– हठयोगः, कर्मयोग,: भक्तियोगः, ब्रह्मयोगः, क्षत्रयोगः, इन्द्रयोगः, सोमयोगः, अप्सुयोगश्च इत्यादयः।। यथा–

'जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि। जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वे।
जिष्णवे योगाय इन्द्रयोगैर्वो युनज्मि। जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि।
'जिष्णवे योगाय अप्सुयोगैर्वोयुनज्मि'।।[7]

तदैव श्रीमद्भगवद्गीतायाम् उक्तम् –

'युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नवबोधस्य योगो भवति दुःखहा'।।[8]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः वक्तुं शक्यते योगस्य लक्ष्यद्वयम्। तत्र प्रथमम् आध्यात्मिकं लक्ष्यम् अपरं लौकिकम्। आध्यात्मिकलक्ष्ये क्रमशः उन्नतिर्भवति। यथा–

शारीरिकं, प्राणिकम्, ऐन्द्रियकं, मानसिकं, बौद्धिक०च। लौकिक लक्ष्ये सामाजिकं, राजनीतिक उन्नतिः भवति। अतः योगेन पूर्वोक्त सर्व प्रकारकं लक्ष्यं प्राप्यते।

भारतीय भाड्दर्शने योगदर्शनस्य महत्त्वपूर्ण स्थानम् अस्ति। यस्य प्रवर्तकः महर्षि पतञ्जलिः वर्तते। योगस्यमूलस्वरूपं वैदिक वाङमय सूत्ररूपेण उपनिबद्धः। योगस्य बीज वर्णनं कृ णयजुर्वेदस्य काठक शाखायां वर्णितं वर्तते।

यथा–

"पूर्णो वे प्रजापतिः समृद्धिभिः। ऊनो व्यृद्धिभिः। पूर्ण पुरूष कामैः। ऊन समृद्धितः" (9) अर्थात् प्रजापतिः समृद्धितः पूर्णः, परन्तु सः व्यृद्धितः न्यूनः एतद् विपरीतं पुरुषः कामनातः परिपूर्णः वर्तते, परन्तु समृद्धितः न्यूनः। पुरुषस्य इयं समृद्धिहीनता एवं ईश्वरस्य समृद्धि पूर्णतः योगस्य बीजस्वरूपः। योगविद्या भरतदेशस्य अमूल्यनिधिः वर्तते। या पुराकालात् अविच्छिन्न रूपेण गुरु शिष्य परम्परायां प्राप्नोति। युग–युगान्तात् सुलभः योगः वस्तुतः भारतीय ऋषीणां मुनीनां च एवं योगीनां अध्यवसायः साधनाप्राप्त अन्तर्जगतः महत्त्वपूर्णम् अन्तर्विज्ञानं वर्तते। तत्त्वदर्शिणः महर्षीणां च परमात्मनः प्राप्तेः सर्वोत्तमः उपायः ध्यानयोगौ स्तः –

"ध्याननिर्मथनाभ्यसाद् देवं पश्येन्निगूढवत्"। (10)

एवं च कठोपनिषदि यमाचार्यः चित्तवृतेः निरोधः योगः कथ्यते –

"तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिधारणाम्।

अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ"।। (11)

अर्थात् इन्द्रियाणां स्थिरधारणा योगः कथ्यते। एषां इन्द्रियाणि स्थिराणि भवन्ति, साः अप्रमत्तः भवति। प्रमाद रहितः सावधानः इत्यर्थः। योगस्य अभिप्रायः प्रभवाप्ययौ अर्थात् शुभ संस्काराणाम् उत्पत्तिः प्रभवः एवं अशुभ संस्काराणां नाशः अप्ययः भवति योगेन सह मनु याणां सम्बन्धः अनन्तकालादेव वर्तते। योगं विना मोक्षः नास्ति। अर्थात् अपरिमितानन्दस्य कल्पना करणं ख पुष्पवत्।

लघुकायजीवात् विशालकाय हस्ति पर्यन्तं सर्वे प्राणिनः आनंदस्य इच्छुकाः भवन्ति। लौकिक–पारलौकिक आनन्दस्य प्राप्तेः योगादेव संभवः। विश्वस्य प्रत्येकः जीवः परमात्मनः अंशः। येषु मनुष्यः ज्ञानवान् विवेकी वर्तते, किन्तु अज्ञानी मानवः देहाभिमाने बद्धः। तथा च मायाजाले निमग्नः अहं, मम, तव करोति। एवमेव सम्पूर्ण जीवनं व्यतीतं भवति, किन्तु ये विवेकशीलाः पुरुषाः सन्ति, ते योगविद्याम् आश्रित्य कैवल्यं प्राप्नुवन्ति। कैवल्य प्राप्तेः एव परमात्मनः प्राप्तिर्भवति। कैवल्य प्राप्त्यर्थ भारतवर्षे प्राचीनकालादेव ऋषयः,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुनयः, साधिकाः, साधवः, ब्रह्मचारिणः, ग्रहस्थाः, वानप्रस्थाः, संन्यासिनः सर्वे जनाः योगाभ्यासं अकुर्वन् कुर्वन्ति च। एतावत् पर्यन्त सुख–सुविधापूर्ण जीवन राजा–महाराजा, युवराजः अपि प्रातःकाले उत्थाय योगाभ्यासं कुर्वन्ति। वैदिक परम्परानुसारेण योगस्य लक्ष्यं सा अवस्था अस्ति, यां प्राप्य प्राणिनः समस्त दुःख रहिताः भवन्ति। अर्थात् सम्पूर्ण दुखेभ्यः, कामना दग्धबीजवत् भवन्ति। इमाम् अवस्थाम् एव मोक्षः, कैवल्यः, निर्वाणः मुक्तिः इत्यादयः नाम्ना प्रसिद्धिः। अस्याः अवस्थायाः उपलब्धिं भारतीय चिन्तनानुसारेण मानवजीवनस्य प्राप्तेः परमलक्ष्यं कथ्यते। अयमेव पुरुषार्थचतुष्टस्य परमपुरुषार्थमोक्षः। अस्माद्धेतोः इयं श्रुतिः– ***'ऋतेज्ञानान्न मुक्तिः'।*** एवं ज्ञानं प्राप्य एव जीवात्मा जन्म–मरण बन्धनात् मुक्तः भवति। इयं कैवल्यावस्था शरीरतः– प्राण–इन्द्रिय–मन बुद्धितः श्रेष्ठा अवस्था वर्तते। अस्याः अवस्थायाः सिद्धौ शरीरप्राणाधिकं सर्वे आत्मानुरूपं कार्यं कुर्वन्ति। अस्यार्थः सारगर्भित रूपेण कठोपनिषदि सम्यक् उल्लिखितः –

"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च"।।[12]

अर्थात् शरीरं रथमस्ति, यस्मिन् रथे पंचज्ञानेन्द्रियरूपी अश्वाः सन्नद्धाः। एषां प्रगहं मनः एवं सारथिः बुद्धिः एवं शरीररूपी रथस्य स्वामी आत्मा अस्मिन् रथे नियुक्तः अर्थात् सर्वं योगानुरूपं तत् समीचीनम् अन्यथा अहितकरम्।

मदीया मान्यतास्ति जनाः कमपि उद्देश्यं नीत्वा योगस्य शरणं आगच्छेत्। ततः परोक्षापरोक्षरूपेण विश्वस्य लाभ योजना वर्तते। योगविद्यायां कस्यापि कृते विवादाय स्थानं नास्ति अनया योगकलया साधनया च नैकाः जनाः अजराः अमराः भूत्वा सशरीर सिद्धिपदवीं प्राप्नुवन्तः। अतः अस्मिन् विषये सन्देहो नास्ति भारतीयाः तत्व ज्ञानस्य प्राप्त्यर्थं योगः शरणं गच्छेयुः। ज्ञान संकलनीतन्त्रे विशिष्ट स्थलं दृष्टव्यं वर्तते –

"मथित्वासा चतुरोवेदान् सर्व शास्त्राणि चैव हि।
सारस्तु योगिभिः पीतस्तक्रं पिबन्ति पण्डिताः"।।[13]

वर्तमान काले योगस्य चर्चा–परिचर्चा महर्षेः पतंजलेः प्राक्पूर्ववर्ती ऋषयः, आचार्याश्चः यथा–महेश्वरः, सनत्कुमारः, विवस्वान्, नारदः, जैगीषव्यः, मार्कण्डेयः, वशिष्ठः, दत्तात्रेयः, जनकः, याज्ञवल्क्यः, वेदव्यासः, लीलावतारश्रीकृष्णः, योगशास्त्रकृते बहुविधं महत्त्वं प्रतिपादयति। तत्तद्रचनासु विशिष्टरूपेण व्याख्या योगस्य क्रियते। यथा जनककृते विदेह पदवी एवंच श्रीकृष्णाय योगेश्वर पदवी योगबलेनैव अधिगता।

अभिनव वर्तमानकालिकः युगऋषिः पतंजलिस्वरूपः हरिद्वारस्थः स्वामी रामदेवः अधिकः श्रेयः प्राप्यते। इदानीं सम्पूर्णे विश्वे निर्विवाद रूपेण योगगुरुः, योगऋषिः महर्षिः इत्यादिना उपाधिना अलंक्रियते। वस्तुतः स्वामी रामदेवेन ग्रामे–ग्रामे, नगरे–नगरे, देशे–विदेशे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आबाल वृद्धजने योगस्य प्रभावः क्रियते। यया योग योगक्रियया सम्पूर्ण–विश्वस्य आरोग्यार्थं, पुष्टार्थं, राष्ट्रभक्त्यर्थम्, आत्मशक्त्यर्थं प्रयत्नं क्रियते। योगशास्त्रेणैव अद्यतनीना पर्यावरण प्रदूषण निवारणार्थं सम्पूर्ण रूपेण सफली भवि यति। अनेक रोगानां ज्ञाताज्ञातानां भविष्येऽपि उत्पन्नानां चिकित्सार्थं, निरोगार्थं, स्वस्थशरीरार्थं योगशास्त्रस्य महती आवश्यकता। योगस्यापि सर्वेभ्यः जनेभ्यः शुभ कामना–

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्"।।

सन्दर्भ अनुक्रमणिका

1.	महाभारत, शान्तिपर्व	–	270–43
2.	ऋग्वेद	–	1–115–1
3.	योगसूत्र	–	1–2
4.	योगसूत्र	–	2–29
5.	श्रीमद्भगवद्गीता	–	6–46
6.	ऋग्वेद	–	1,18,7
7.	अथर्ववेद	–	–
8.	श्रीमद्भगवद्गीता	–	6–17
9.	कृष्ण यजुर्वेद	–	–
10.	श्वेताश्वतरोपनिषद्	–	–
11.	कठोपनिषद्	–	2–3–11
12.	कठोपनिषद्	–	1–3–3
13.	ज्ञानसंकलनी तन्त्र	–	–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदाङ्ग–विश्लेषण

डॉ0 मीनाक्षी उपाध्याय (तिवारी)
एम.ए., पी–एच.डी., एडवांस जर्मन डिप्लोमा,
प्राप्तस्वर्णपदक
ए. 302, सुज्जन बिहार, सैक्टर–43
गुड़गांव, हरियाणा

वेदमन्त्रों के यथार्थ ज्ञान के लिए छः वेदाङ्गों की आवश्यकता होती है। मुण्डकोपनिषद् में वेदाङ्ग के नाम और क्रम प्राप्त होते हैं।[1] वेदांग शब्द का अर्थ है, वेदों के अंग। वेदमन्त्रों के ठीक उच्चारण के लिए शिक्षा की, यज्ञ के कार्यों के लिए कल्प की, वेदार्थज्ञान के लिए पदों का निर्वचन करने के लिए निरुक्त की पदों के रूप का ज्ञान करने के लिए व्याकरण की यज्ञों के अनुष्ठान के लिए समयज्ञान के लिए ज्योतिष की और मन्त्रों में प्रयुक्त छन्दोज्ञान के लिए छन्द की आवश्यकता होती है। वेदांग शब्द में अंग शब्द अवयव न होकर 'उपकारक' अर्थ का वाचक है, जिससे किसी वस्तु के स्वरूप को जानने में सहायता मिलती है।[2] वेदांग इस प्रकार हैं :– शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, छन्द और ज्योतिष। इन छः वेदांगों का उल्लेख गोपथ ब्राह्मण (1.27), रामायण के बालकाण्ड (7.15) तथा बौधायनधर्मसूत्र (2.142) में किया गया है।

शिक्षा–

शिक्षा को वेदरूपी पुरुष की घ्राणेन्द्रिय माना गया है। स्वर और वर्णादि के उच्चारण का प्रकार जिस शास्त्र में उपदिष्ट है, उसे शिक्षा कहते हैं।[3] वेदों का उच्चारण करते समय शुद्धता पर ध्यान देना चाहिए। यदि मन्त्रों का उच्चारण अशुद्ध हो जाता है, तो मन्त्रपाठ का दुष्परिणाम होता है। शिक्षा की आवश्यकता मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण तथा स्वरज्ञान के लिए होती है। शिक्षा में छः तत्त्व हैं –

(क) वर्ण–

'अ' से लेकर 'ह' तक जितने भी वर्ण हैं, उन सभी के उच्चारण अलग–अलग हैं। वर्णों के उच्चारण स्थान कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ आदि हैं। जिस वर्ण का जो उच्चारण स्थान हों, वहीं से उसका उच्चारण किया जाना चाहिए।

(ख) स्वर–

वेदमन्त्रों के उच्चारण में चार स्वरों का प्रयोग किया जाता है– उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और प्रचय। यदि स्वरों का उच्चारण त्रुटिपूर्ण होता है, तो अर्थ अनर्थ में परिणत हो जाता है। यदि कोई मन्त्र स्वर अथवा वर्ण से हीन हो अथवा गलत प्रयोग किया गया हो, तो ऐसे उच्चारण से वह मन्त्र अपने अभिप्रेत अर्थ को अभिव्यक्त नहीं करता। ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रवाणी वज्र बनकर यजमान की हिंसा कर देती है। जिस प्रकार 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' मन्त्र में 'इन्द्रशत्रु' शब्द के अन्तोदात्त उच्चारण के स्थान पर आद्युदात्त उच्चारण करने पर अभीष्ट अर्थ में परिवर्तन हो गया था।[4] उदात्त स्वर तालु आदि स्थानों के ऊर्ध्व भाग से उच्चरित होता है। इन स्थानों के निचले भाग से अनुदात्त स्वर का उच्चारण किया जाता है। उदात्त और अनुदात्त के मिश्रण से स्वरित स्वर का उच्चारण किया जाता है। इस स्थल पर उच्चता और नीचता शब्द से नादगत उच्चता या नीचता अभिप्रेत नहीं है। संगीत शास्त्र के षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद स्वरों से उदात्त, अनुदात्त और स्वरित आदि स्वरों को सम्बद्ध किया जा सकता है। उदात्त स्वर में निषाद और गान्धार स्वर अन्तर्भूत हैं। ऋषभ और धैवत स्वर अनुदात्तस्वर के रूप में हैं और शेष षड्ज मध्यम और पंचम स्वर स्वरित के स्वरूप में विद्यमान हैं।[5]

(ग) मात्रा–

स्वरों के उच्चारण में लगने वाला समय 'मात्रा' शब्द से अभिहित है। मात्रा के तीन भेद हैं : ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। जिस स्वर के उच्चारण में एक मात्रा का उच्चारण लगता है, वह ह्रस्व है। जिस स्वर के उच्चारण में दो मात्राओं का समय लगे, वह दीर्घ है तथा प्लुत के उच्चारण में तीन मात्राओं का समय लगता है।

(घ) बल–

बल का सम्बन्ध स्थान और प्रयत्न से है। वर्णों के उच्चारण के समय जिन उच्चारण स्थानों से वायु का टकराव होता है, वे उन वर्णों के उच्चारण स्थान हैं। उच्चारण के समय लगने वाले प्रयास को 'प्रयत्न' कहते हैं, जो आभ्यन्तर और बाह्य के भेद से दो प्रकार का है।

(ङ) साम–

यह शब्द 'समता' के अर्थ में प्रयोग में लाया जाता है। शीघ्रता आदि दोषों से रहित तथा माधुर्यादि गुणों से युक्त उच्चारण साम है। उच्चारण के समय न तो किसी अक्षर को पद से लुप्त करना चाहिए और न ही वर्णों का दीन उच्चारण करना चाहिए। वर्णों का उच्चारण मुँह में बुदबुदाकर या दाँतों को पीसकर नहीं करना चाहिए।[6]

(च) सन्तान–

सन्तान शब्द संहिता के अर्थ में प्रयुक्त होता है। संहिता होने पर सन्धि होती है। वैदिक संहिताओं में प्रत्येक वेद में वर्णों का उच्चारण भिन्न–भिन्न प्रकार से किया जाता है।

2. व्याकरण–

व्याकरण नामक वेदांग को वेद पुरुष का मुख कहा गया है।[7] पदों की मीमांसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाले शास्त्र को व्याकरण कहते हैं। 'व्याक्रियन्ते शब्दा अनेन इति व्याकरणम्।[8] व्याकरण रूपी कामवर्षक वृषभ के नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात ये चार सींग हैं, भूत, वर्तमान और भविष्यत् ये काल इसके तीन पैर हैं, सुप् और तिङ् ये दो सिर हैं और सात विभक्तियाँ इसके सात हाथ हैं।[9] कात्यायन ने व्याकरणशास्त्र के अध्ययन के पांच प्रयोजन बताएं हैं। रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्' इन पांच प्रयोजनों में से आगम को शास्त्र का प्रवर्त्तक माना गया है तथा रक्षा, ऊह, लघु और असन्देह को फल के रूप में स्वीकार किया गया है। शब्दकौस्तुभ में भी इसी बात की पुष्टि की गई है।[10]

(क) रक्षा–

वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है। मन्त्रों में आए हुए पदों का स्वरूप वैयाकरण ही पहचानता है। इसलिए वेदों की रक्षा करने के लिए व्याकरण ज्ञान आवश्यक है।

(ख) ऊह–

ऊह शब्दों का अर्थ है– नए पद कल्पित करना। उदाहरण के लिए शुक्लयजुर्वेद के प्रथम मन्त्र 'इषे त्वोर्जेत्वा.' में पलाशशाखा के छेदन और सन्नयन का अध्याहार करन' पड़ता है।

(ग) आगम–

आगम में यह कहा गया है कि ब्राह्मण के द्वारा विना कारण के छहो अंगों सहित वेदों का अध्ययन किया जाना चाहिए और उसका ज्ञान भी प्राप्त किया जाना चाहिए।

(घ) लघु–

शीघ्रता के लिए अर्थात् लघुता के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है।

(ङ.) असन्देह–

वेद मन्त्रों के पदों के विषय में सन्देह व्याकरण द्वारा दूर किया जाता है। शब्दों के सन्देह रहित अर्थज्ञान के लिए व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है।

3. निरुक्त–

निर्वचन शास्त्र को निरुक्त कहा जाता है। वेदों के कठिन शब्दों का अर्थ निरुक्त में बताया गया है। यह व्याकरण शास्त्र का पूरक है। निरुक्त के अनुसार सभी नाम आख्यातों से उत्पन्न होते हैं।[11]

4. कल्पवेदांग–

कल्प वेदांग को वेद पुरुष के हाथ के रूप में कहा गया है।[12] जिसमें याग के प्रयोग की कल्पना की जाती है वह कल्प है।[13] कल्प के विषय से सम्बन्धित सूत्र ग्रन्थों को वेदांग साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया जाता है। ये ग्रन्थ अति प्राचीनतम होने से वैदिक साहित्य के निकटतम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्पसूत्रों के चार भेद हैं। डॉ0 वेदप्रकाश उपाध्याय ने कल्प वेदांग के चार भेद स्वीकार किए हैं।[14]

(क) श्रौतसूत्र–

इनमें यज्ञादि का विधान है, जिन कर्मकाण्डों का वैज्ञानिक रूप ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित है, वह श्रौत सूत्रों में प्रतिपादित है। हविर्यागों और सोमयागों का बृहद् विवेचन श्रौतसूत्रों में है।

(ख) गृह्यसूत्र–

गृह्यसूत्र कल्प का दूसरा भेद है, जिसका विषय उपनयन, विवाह और श्राद्ध आदि संस्कार हैं।

(ग) धर्मसूत्र–

धर्मसूत्रों में खानपान, विवाह सम्बन्धी कार्य, मर्यादा और जाति पांति से सम्बन्धित नियमों की सूक्ष्मता का वर्णन है।

(घ) शुल्बसूत्र–

शुल्ब का अर्थ है रस्सी। शुल्बसूत्रों का प्रतिपाद्य विषय है : रस्सी द्वारा नापी गई वेदी की रचना।[15]

छन्द–

पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है– ''छन्दःपादौ तु वेदस्य' अर्थात् छन्द वेद के पैर हैं।[16] वैदिक मन्त्र छन्दों से आच्छादित हैं। छन्दः शास्त्र के ज्ञान के विना मन्त्रों के उच्चारण की गतिविधि नहीं समझी जाती। छन्द एक कवच के रूप में माना जाता है, जो असुरों द्वारा उत्पन्न बाधा से रक्षा करता है।[17]

ज्योतिष–

ज्योतिष शास्त्र को वेदपुरुष का नेत्र कहा जाता है। ज्योतिष को कालनिर्धारण करने वाला वेदांग माना जाता है।[18] ब्राह्मण द्वारा वसन्त ऋतु में अग्न्याधान किए जाने का विधान है। वेदांग ज्योतिष को समस्त वेदांगों का सिर माना जाता है।[19]

CC-0. In Public Domain. Bhavanur Gurukulam Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. मुण्डकोपनिषद्– 1.15.
2. वैदिक साहित्य और संस्कृति– बलदेव उपाध्याय, पृ. 282.
3. भारतीय ज्योतिष– शंकरबालकृष्ण, दीक्षित, पृ. 194–96.
4. मन्त्रे हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
   स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।। पाणिनीय शिक्षा, 52.
5. याज्ञवल्क्य शिक्षा, 1.7.
6. शङ्कितं भीतमुत्कृष्टमव्यक्तमनुनासिकम्।
   काकस्वरं शिरसिगतं तथा स्थानाविवर्जितम्।। पाणिनीय शिक्षा–34.
7. मुखं व्याकरणं स्मृतम्– पाणिनीय शिक्षा, 42.
8. वैदिक साहित्य : एक विवेचन– प्रो0 वेदप्रकाश उपाध्याय, पृ. 126.,
9. चत्वारिशृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
   त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यं आ विवेश।।
   ऋग्वेदसंहिता 4.58.3., यजुर्वेदसंहिता, 17.91.
10. 'तत्र आगमः प्रवर्त्तकः, रक्षोहालघ्वसन्देहा फलानीति विवेका'
    शब्दकौस्तुभ, चौखम्बा, भाग–1, पृ. 11,13.
11. तत्र नामान्याख्यातजानि इति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च। निरुक्त– 1.12.
12. हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते– पाणिनीय शिक्षा–41.
13. कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगोऽत्र। ऋग्भाष्यभूमिका– सायण, पृ. 178.
14. वैदिक साहित्य : एक विवेचन, डॉ0 वेदप्रकाश उपाध्याय, पृ. 136.
15. वैदिक साहित्य और संस्कृति– बलदेव उपाध्याय, पृ. 341.
16. पाणिनीय शिक्षा, श्लोक–4.
17. संस्कृत साहित्य का इतिहास– वाचस्पति गैरोला, पृ. 192.
18. वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालाभिपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
    तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्।।
    आर्च ज्योतिष, श्लोक, 36.
19. यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
    तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्।। वेदांग ज्योतिष, श्लोक 4.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक वाङ्मय में सोमयाग का स्वरूप

उमा आर्या
विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली-110067
E-mail: umaarya1987@gmail.com

वैदिक वाङ्मय में समग्र सामाजिक जीवन का केन्द्र बिन्दु यज्ञ ही माना जाता है। यज्ञ के विषय में कहा गया है कि ''अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः''।[1] संहिताओं, ब्राह्मणग्रंथों में सम्पूर्ण मानव जीवन यज्ञमय ही बताया गया है। यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है- 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'। सम्पूर्ण सृष्टि को यज्ञमय बताया गया है।[2] यज्ञ तत्त्व वैदिक वाङ्मय का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। यज्ञ के तीन अर्थ है- देवपूजा, संगतिकरण तथा दान। जिसमें देवताओं का पूजन सत्कार, आज्ञापालन किया जाए वह देवपूजा कहलाती है। विद्वानों का सत्संग संगतिकरण तथा दक्षिणा दान है। कात्यायन के अनुसार यज्ञ का अर्थ अग्नि आदि देवताओं के लिए सोम, व्रीहि द्रव्यों का त्याग यज्ञ है।[3] सोमयाग आर्यों का प्रसिद्ध यज्ञ है। इस याग में सोमलता का क्रय कर उसके अभिषवनपूर्वक विभिन्न देवों के निमित्त आहुति प्रदान करना सोमयाग कहलाता है।[4] वैदिक विधि से सोमलता को पाषाण के ऊपर रखकर पत्थर से रस निकालते है। धर्म के क्षेत्र में सोम का विशिष्ट स्थान माना जाता है। वैदिक काल में यज्ञ संस्था धर्म का एक विशिष्ट अंग थी। विभिन्न देवों के उद्देश्य से सोमरस की आहुति याग में दी जाती है। ऋग्वैदिक काल में यज्ञ संस्था विशाल नहीं थी परंतु काल के साथ-साथ यज्ञ प्रक्रिया भी दुरुह तथा जटिल हो गई। कर्मकाण्ड वेदों में अत्यधिक विस्तृत रूप में विद्यमान है। सोमलता को अभिषवण करके सोमयज्ञ किया जाता है। सोम अभिषवण पत्थरों के द्वारा किया जाता है। अभिषवण से पूर्व सोम को जल से धोया जाता है।[5] तदनन्दर पत्थर पर पीसकर सोमरस निकालते हैं।[6] सोम को फलक नामक पात्र में रखते हैं। सोमाभिषव दो प्रकार के किया जाता है। (1) महाभिषव तथा (2)क्षुल्लकाभिषव।

महाभिषवः- ताण्ड्य ब्राह्मण के अनुसार सोमशोधन करते समय सोम धारा को टूटने नहीं देना चाहिए, क्योंकि धारा के टूटने से या विछिन्न हो जाता है।[7] महाभिषव प्रक्रिया में सोम को अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा, उन्नेता चार भागों में बाँटकर सोम पर प्रहार करके रस निकालते है। रस निकालते समय निग्राभ्या जल के छींटे मारते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निग्राभ्य जल से सोम को सींचकर तीन बार अभिषवण किया जाता है। प्रथम अभिषव में आठ बार, द्वितीय अभिषव में ग्यारह बार और तृतीय अभिषव में बारह बार सोम को कूटा जाता है। कामना भेद से संख्या भी भिन्न हो जाती है। अगर यजमान पशु की कामना करे तो अध्वर्यु प्रत्येक अभिषव में सोम को पाँच बार कूटे, यदि ब्रह्मवर्चस् की कामना करे तो अध्वर्यु को चाहिए कि वह प्रत्येक अभिषव में सोम को आठ बार कूटे। इस अवसर पर एक महत्वपूर्ण कृत्य का उल्लेख किया गया है कि प्रत्येक प्रहारवर्ग[8] के साथ अध्वर्यु होता के चमस में से जल सोम अंशुओं पर डालकर दो ऋचाओं[9] के साथ निग्राभवाचन करे।[10]

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अध्वर्यु तीन बार सोम पर प्रहार करता है तथा सोम एकत्रित करता है, तदनन्तर चार बार निग्राभ क्रिया करता है।[11]

अभिषव के सम्बन्ध में भारद्वाज ने विधान किया है कि सोम पर वसतीवरीका का जल छिड़का जाए। इस अवसर पर होता के चमस के जल को निग्राभ की संज्ञा दी गयी है। इसके पश्चात् सोम को तीन बार कूटकर सोम रस को एक काष्ठ पात्र में एकत्रित करते है तदनन्तर ऋत्विज् उसको आधवनीय कलश में डाल देता है।

आपस्तम्बश्रौतसूत्र के अनुसार अंजलि में रस लेकर पात्र में एकत्र किया जाता हैं। जिसे उन्नेता शकट के दोनों बाँसों के बीच से ले जाकर आधवनीय कलश में रखता हैं तीसरे अभिषवण के समय निचोड़कर रस इकट्ठा करते हैं। अभिषवण चर्म पर दोनों ग्रावों को आमने-सामने रखकर अध्वर्यु उन ग्रावों में लगी हुई तलछट को पूँछकर बीच में एकत्र करता है, तब उद्गाता उन ग्रावा पर द्रोणकलश लाकर रखता है, तो पूर्वाभिमुख होता है। अब उसको दक्षिण हविर्द्धान शकट के धुरे के पास पहुँचाया जाया जाता है, उस द्रोण कलश पर दशा पवित्र इस प्रकार बिछाया जाता है कि उसकी झालरे उत्तर की ओर हो जाती हैं। अब अध्वर्यु सोमरस पर मन्त्र पाठ[12] करता है। इस समय अध्वर्यु होता के चमस से दशा पवित्र पर निर्बाध धारा छोड़ता है, जो धारा सोम रस की होती है। यदि उसका कोई शत्रु (द्वेषी) हो तो उसका नाम लेकर बीच में धारा छोड़ता है। इस अवसर पर उन्नेता उदंचन के द्वारा आधवनीय कलश से सोम लेकर होता के चमस में डालता है।[13] इस प्रकार उक्त कृत्यों के द्वारा महाभिषव कृत्य सम्पन्न हो जाता है।[14]

क्षुल्लकाभिषवः- इस पद्धति के अन्तर्गत केवल अध्वर्यु सोम को जल के साथ कूटता है।[15] सोम का अभिषवण करने वाला समस्त ऋणों से मुक्त हो जाता है, मुख्यतः देव-ऋण से। सोम अत्यधिक विशिष्ट तथा खर्चीला होने के कारण सामान्य आर्थिक स्थिति वाला व्यक्ति इसका पान नहीं कर सकता है।[16] इस प्रक्रिया में आठ बार सोम कूटा जाता है। किन्तु मन्त्र एक बार ही पढ़ा जाता है, सात बार सोम अमन्त्रक ही कूटा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुतः महाभिषव और क्षुल्लकाभिषव दोनों में समानता ही है। सोम कूटने की समस्त क्रियाएँ समान है, भेद मात्र इतना है कि क्षुल्लकाभिषव का कर्त्ता अध्वर्यु है तथा इसमें तीन बार तीन मन्त्रों के माध्यम से उपांशु ग्रह ग्रहण किया जाता है।[17] प्रथम क्रम के आठ बार सोम को कूटते है[18] फिर दूसरी बार में ग्यारह बार सोम कूटकर मन्त्र से[19] तदनन्तर तीसरी बार सोम को बारह बार कूटने पर प्रतिप्रस्थाता उपांशुग्रह ग्रहण करता है।[20] इस समय निग्राभ्यासंज्ञक जल का प्रयोग किया जाता है। जो एक विशिष्ट मन्त्रपूत जल होता है।

सोम अभिषवण के द्वारा भी तत्कालीन समाज में धर्म के प्रति श्रद्धा का संकेत मिलता है। मनुष्य स्वयं ही धार्मिक अनुष्ठानों के लिए द्रव्य, वस्तुएँ, यज्ञशाला आदि का निर्माण करते थे। सोमरस से यज्ञों का अनुष्ठान किया जाता था इन यज्ञों में सोमयाग का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सोमयज्ञ वसन्त ऋतु में किया जाता है।[21] प्रमुख रूप में यज्ञ के पाँच प्रकार होते हैं- अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास चातुर्मास्य, पशुयाग और सोमयाग। गौतम धर्मसूत्र में सातपाक यज्ञ संस्था, सातहविर्यज्ञसंस्था तथा सातसोमसंस्था इस प्रकार पाकयज्ञ, हवियज्ञ, सोमयज्ञ तीन प्रकार के यज्ञ संस्थाओं का वर्णन मिलता है। इन यज्ञ संस्थाओं में प्रत्येक संस्था के सात-सात भेद बताये गये हैं। इन सभी सोम यज्ञों को काम्य यज्ञ भी कहते हैं। इस यज्ञ में सोम मुख्य हवनीय द्रव्य होता है। इसी कारण से इस यज्ञ को सोमयज्ञ कहते हैं। कालावधि के आधार पर सोमयाग के तीन भेद बताए गए हैं- एकाहयज्ञ, अहीनयज्ञ तथा सत्रयज्ञ।

1. **एकाहयज्ञ :-** जिस सोमयाग में सोमरस से एक दिन यज्ञ सम्पन्न हो जाता है। उसे एकाह कहा गया है, यद्यपि इससे पूर्व चार दिनों में कुछ अंग यागों को सम्पन्न किया जाता है। कुल मिलाकर पाँच दिन में 'एकाह' संज्ञक यज्ञ सम्पन्न होता है, परंतु सोमरस सम्प्रदान एक दिन में ही होता हैं।

2. **अहीन याग** में 12 दिनों से पूर्व तक सोमरस से यज्ञ होता है। दिनों की संख्यानुसार अहीन के द्वयह, त्र्यूह षडह और द्वादशाह प्रभृति अवान्तर भेद होते हैं।

3. **सत्र याग** में 13 दिनों या इससे अधिक दिनों तक सोम का समर्पण किया जाता है। इस यज्ञ में दक्षिणा नहीं दी जाती है। सत्र यज्ञों के अवान्तर भेद है- रात्रिसत्र और अयनसत्र। 100 दिनों से न्यून अवधि में जब सोमयाग सम्पन्न होता है, तो वह रात्रिसत्र है। उसके अनन्तर सम्पन्न सोमयाग 'अयनसत्र' कहलाता है।

सोमयज्ञ संस्था में 16 ऋत्विजों का वर्णन प्राप्त है।[22] इसमें होता, मैत्रावरुण, अच्छावाक्, ग्रावस्तुत, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा, उन्नेता, ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंशी, आग्नींध्र, पोता, उद्गोता, प्रस्तोता, प्रतिहर्त्ता और सुब्रह्मण्य 16 ऋत्विज तथा 17वाँ यजमान होता है। सोमयज्ञ संस्था में अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम याग परिगणित होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मणों और श्रौतसूत्रों में वर्णित 'एकाह' यज्ञों में ज्योतिष्टोम प्रमुख यज्ञ माना जाता है। ज्योतिष्टोम की तीन संस्थाए हैं- अग्निष्टोम, उक्थ्य और अतिराम।[23] ज्योतिष्टोम के सात भेद अन्यत्र भी कहे गए हैं जिसमें अग्निष्टोम, उक्थ्य, अत्यग्निष्टोम, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और अप्तोर्याम निहित है।[24] जिन सामों तथा स्तोत्रों से इनका समापन होता है। प्राय: उन्हीं के आधार पर इनका नामकरण किया गया है। ये यज्ञ सोमसंस्था में ही निहित है।

अग्निष्टोम यज्ञ- अग्निष्टोम यज्ञ सम्पूर्ण सोम यज्ञों की प्रकृति है। उक्थ्यादि छ: सोम या विकृति यज्ञ माने जाते है।[25] इस यज्ञ के नामकरण के विषय पर कहा गया है कि अग्नि की स्तुति होने के कारण इसका नाम अग्निष्टोम रखा गया।[26] इस यज्ञ में सर्वप्रथम पुरोहितों का वरण करते हैं।

जिनकी संख्या सोलह होती है। इसके दीक्षणीय इष्टि तथा प्रायणीय इष्टि का कृत्य किया जाता है। इसके बाद आज्य की चार आहुतियाँ अग्नि, सोम और सविता देवों के लिए अर्पित की जाती है। प्रायणीय इष्टि के अनन्तर सोमक्रय का कृत्य किया जाता है।[27] सोमरस निकालने का कार्य भी यज्ञ के दौरान ही किया जाता है। इस यज्ञ में तैंतीस सोमपा और असोमपा देवता कहे जाते है। सोम से सोमपा तथा पशु से असोमपा देवता प्रसन्न होते हैं।[28] इस यज्ञ के अन्त में अवभृथ नामक स्नान की क्रिया होती है।[29] इसमें पति पत्नी स्नान करके वरुण को पुरोडाश समर्पित किया जाता है।

उक्थ्य यज्ञ- अग्निष्टोम यज्ञ के बाद उक्थ्य यज्ञ का वर्णन प्राप्त होता है। इस यज्ञ का विकृति यज्ञ के अन्तर्गत उल्लेख मिलता है।[30] उक्थ्य यज्ञ में अग्निष्टोम के स्तोत्रों के अतिरिक्त तीन उक्थ्य स्तोत्र तथा उक्थ्य शस्त्र पाए जाते है। सोमरस निकालते समय उक्थ्य स्तोत्र पढ़े जाते है।[31] इस यज्ञ में सोमरस की आहुतियाँ प्रदान की जाती है।

षोडशी यज्ञ- षोडशी यज्ञ में स्तोत्रों तथा शस्त्रों की संख्या सोलह होती है। इस यज्ञ में उक्थ्य में पन्द्रह स्तोत्रों तथा शस्त्र से पृथक् एक अन्य स्तोत्र का गायन होता है इसलिए इसे षोडशी कहा जाता है।[32]

अतिरात्र यज्ञ- अत्यग्निष्टोम यज्ञ, आप्तोर्याम यज्ञ तथा वाजपेय यज्ञ इन यज्ञों में भी जिन सामों-स्तोत्रों से इनका समापन होता है। प्राय: उसी के आधार पर इनका नामकरण होता है। अत्यग्निष्टोम यज्ञ में षोडशी यज्ञ से एक स्त्रोत तथा एक शस्त्र अधिक रहता है। यह यज्ञ अग्निष्टोम तथा षोडशी याग की तरह ही होता है।[33] आप्तोर्याम यज्ञ में अग्नि, इन्द्र, विष्णु के निमित्त सोम की आहुति दी जाती है। इस याग को पशु हित के लिए किया जाता है।[34] वाजपेय यज्ञ में सोमपान किया जाता है। इस यज्ञ में षोडशी यज्ञ की पद्धति को अपनाया गया है। यह यज्ञ सत्रह दिन से एक वर्ष तक किया जाता है।[35] इन यज्ञों में प्रथम दिन दीक्षा, प्रायणीयेष्टि,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवर्ग्य, उपसदिष्टि प्रातस्सवन, ग्रहहोम, धाराग्रह, प्रसर्पण, धारा ग्रहों और चमसों का अनुष्ठान, माध्यन्दिनसवन, तृतीयसवन, सौम्यचरुयाग, हरियोजनग्रह, अवभृथेष्टि इत्यादि अनेक क्रियाओं के द्वारा सोमयाग सम्पन्न किया जाता था।

इस प्रकार सोमयज्ञों में सोम रस की आहुति से यज्ञ सम्पन्न किए जाते हैं। धार्मिक क्षेत्र में कर्मकाण्डों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदर्शित की। भारतीय परम्परा सांस्कृतिक गतिविधियाँ धार्मिक अनुष्ठानों के चहुँ ओर ही परिलक्षित होती हैं। अतः स्पष्ट है कि सोम का सांस्कृतिक क्षेत्र की पृष्ठभूमि में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। सोमयज्ञ में सोमरस का ही प्राधान्य हैं सोमरस का पान कर देवता तृप्त हो जाते हैं। मनुष्य इस सोमरस को पीकर बल, बुद्धि आरोग्य के साथ-साथ आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करता है। सोमयाग मानवमात्र के लिए सर्वविध कल्याणकारी है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

प्राथमिक स्रोतः-

- ऋग्वेद संहिता, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर भाष्य, स्वाध्याय मण्डल पारडी, 1985
- ऐतरेय ब्राह्मणम्, श्रीमद्सायणाचार्य विरचित भाष्ठय समेतम् (सम्पा.) शास्त्री काशीनाथ, आनन्दाश्रम संस्कृतग्रन्थावलिः ग्रन्थांक- 32,1998
- शतपथब्राह्मणम्, सायणाचार्यविरचित वेदार्थ प्रकाशाख्ययभाष्टय समेतम् नागप्रकाशक, जवाहरनगर, दिल्ली, 1990
- वाजसनेयी संहिता महीधर भाष्ठय (सम्पा.) ए. बेवर लन्दन 1952 ई. निर्णय सागर प्रेस संस्करण, बम्बई, 1912
- शुक्ल यजुर्वेद संहिता श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल पारडी, सूरत, 1946
- आश्वलायन श्रौतसूत्र, (सम्पा.) मंगलदेव शास्त्री, सरस्वती भवन टैक्टस काशी, 1936 ई.
- कात्यायन श्रौतसूत्र, (सम्पा.) विद्याधार शर्मा अच्युत ग्रन्थमाला, काशी सं. 1987 ई.
- ऐतरेय ब्रह्मण, सायणभाष्य सहित, सं. सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता, 1952 ई.
- कौषीतकी ब्राह्मण, सं. लिण्डेनर जैना, 1887
- ताण्ड्यब्राह्मण, सायणटीका, बनारस, 1935-36 ई.

द्वितीयक स्रोतः-

- भारतीय संस्कृति, डॉ. दीपक कुमार, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
- वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरूप तथा विकास, प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय, नाग पब्लिशर्स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भगवत्तदत्त (सम्पा.) सत्यश्रवा, प्रणवप्रकाशन, दिल्ली, 1976
- वैदिकदेवता, उद्भव और विकास, गयाचरण त्रिपाठी भारतीय विद्या प्रकाज़न दिल्ली, 1982
- वैदिक साहित्य और संस्कृति, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहरलाल बंगला रोड, दिल्ली
- वैदिक देवता दर्शन, आचार्य डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, ईस्टर्न बुक लिंकर्स
- यज्ञ संस्कृति और आयुर्विज्ञान, (सम्पा.) पं. मोतीलाल जोशी, मोतीलाल एण्ड सन्स, जयपुर

कोषग्रन्थ एवं विश्वकोषः-

- भारतीय दर्शन बृहत्कोष, बच्चूलाल अवस्थी शारदा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2004
- वाचस्पत्यम् (भाग 1-6) चौखम्भा संस्कृत ग्रन्थमाला, ग्र.सं. 94, वाराणसी, 1969
- शब्दकल्पद्रुम (भाग 1-5) चौखम्भा संस्कृत ग्रन्थमाला, ग्र.सं. 94, वारणसी, 1967
- ब्राह्मणोद्धारकोष, भीमदेव, हंसराज, विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर वि.सं. 2023
- अमरकोशः, (दक्षिणात्यव्याख्योपेतः) सं. रामानाथन, द आड्यार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर मद्रास, 1978

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. शु. यजु. 23/11
2. सर्वं यज्ञमयं जगत्। कालिका पु. 31/40
3. यज्ञं व्याख्यास्यामः। द्रव्यं देवता त्यागः। का. श्रौ. सू. 1.2.1-2
4. ता. ब्रा. की भूमिका (द्वितीय भाग), पृ.सं. 8
5. सोता हि सोममद्रिभिरेमेनमप्सु धावत। ऋ. 8.1.17
6. हिन्वन्ति अद्रिभिः। ऋ. 9.32.2
7. अच्छिन्नं पावयन्ति यज्ञञ्चैवं प्राणांश्च सन्तन्वन्ति सन्ततं पावयन्ति यज्ञस्य सन्तत्यै। ता. ब्रा. 6.6.19
8. अष्टप्रहारात्मक प्रथमवर्ग, एकादशप्रहारात्मक द्वितीयवर्ग तथा द्वादशप्रहारात्मक तृतीयवर्ग।
9. प्राणपागुदगधराक् सर्वतस्त्वा दिश आ धावन्तु। अम्ब निष्पर समरीर्विदाम्। त्वमंग प्रशंसिषा। देवः शविष्ठ मर्त्यम्। न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रबीमि ते वचः। वा.स. 6.37
10. ऋ. 1.84.19, तै. सं. 1.4.1
11. त्रि सम्भरति चतुर्निग्राभमुपैति। 3.9.4.19
12. पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येणि विश्वतः।
    अतप्तवनूर्न तदामो अश्नुते श्रतास इहहन्तत्समाशत। तै.आ. 1.11.1
13. भा. श्रौ. सू. 13.12-1-13
14. अग्निष्टोम यज्ञ पद्धति विमर्श, नारायण दत्तशर्मा, पृ.सं. 312
15. सोमवल्लयाः जलेन कुट्टनमभिषवणमुच्यते, श्रौ.प.नि., पृ.सं. 270
16. न नूनं ब्रह्मण मृणं प्राशनामस्ति सुन्वताम् न सोमो अप्रतापये। वही, 8.32.16
17. उपयामगृहीतोऽसि वाचस्पतये पवस्व वृष्ठो अशुभ्यां गभस्तिपूतः। वाज. सं. 7.1 तै.सं. 1.42
18. उपयामगृहीतोऽसि देवा देवेभ्यः पवस्व येषां भागोऽसि वा.सं. 7.1, तै.सं. 1.42
19. उपयामगृहीतोऽसि मधुमतीर्नइषस्कृधि। वां.सं. 7.2
20. (1) का. श्रौ. सू. 9.4.21
    (2) श. ब्रा. 4.1.1.8.13
    (3) भा.श्रौ. 13.10.13
21. वसन्ते अग्निष्टोमः। का. श्रौ. सू. 7.1.5

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

22. आश्व. श्रौ. सू. 4.16
23. लाट्यायन श्रौत. सू.
24. वैदिक यज्ञों का स्वरूप, पृ.सं. 378
25. अग्निष्टोम प्रकृति कृत्स्नस्यापि अनुष्ठेयस्य। ऐत.ब्रा. 1.1 (सा.भा.)
26. ऐ. ब्रा. 14.5
27. (1) ऐ. ब्रा. 3.1-3
    (2) कौ. ब्रा. 7.10
28. सोमेन सोमपान प्रणाति पशुनाऽसोमपान। ऐ. ब्रा. 2.8
29. कौ. ब्रा. 18.9
30. आश्व. श्रौ. सू. 5.10.21.24
31. ऐत. ब्रा. 14.1
32. ऐत. ब्रा. 16.1-4
33. वैदिक धर्म और दर्शन, पृ. 415
34. आश्व. श्रौ. सू. 9.11.1
35. वैदिक धर्म और दर्शन, पृ. 420

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता एवं तिरुक्कुरळ्

डॉ. अर्चना दुबे
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, रवीन्द्र निवास,
8-वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान-304022
मो. 09929859064

संस्कृत साहित्य का गौरव ग्रन्थ गीता एवं तमिल साहित्य का वेद तिरुक्कुरळ् है। श्रीमद्भगवद्गीता संस्कृत-साहित्य का एक महान् धर्म ग्रन्थ है, जो हमे कर्म की शिक्षा देता है। यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा में ही नहीं, अपितु विश्व की अन्य भाषाओं में भी सर्वत्र उपलब्ध है। गीता के वचनामृत यदि एक बार किसी के कर्णों में पड़ जाए, तो वह स्वत: ही इसकी ओर आकर्षित हो जाता है। वर्तमान काल में इसका प्रचार-प्रसार समस्त विश्व में हो गया है। श्रीमद्भगवद्गीता एक अद्भुत रचना है। इसमें भारतीय चिन्तन का जैसा अप्रतिम स्वरूप निरूपित है, वैसा कहीं अन्यत्र नहीं है। **चक्रवर्ती राज गोपालाचार्य** कहते हैं, ''गीता हिन्दू दर्शन तथा नीतिशास्त्र के सबसे प्रामाणिक ग्रन्थों में है और सभी समुदाय के हिन्दुओं ने इस रूप में स्वीकार किया है।''[1] श्रीमद्भगवद्गीता महर्षि वेदव्यास कृत है, यह महाभारत के भीष्म पर्व (अध्याय 25-42) में **'श्रीमद्भगवद्गीताप्रारम्भ'** नामक उपपर्व के रूप में 18 अध्यायों का ग्रन्थ है। गीता के सभी अध्यायों में योग को महत्वपूर्ण माना गया है। कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों के समन्वय को 'योग' कहा गया है। गीता में कहा भी गया है- **''समत्वं योग उच्यते, योगःकर्मसु कौशलम्।''**[2]

गीता का महात्म्य बतलाते हुए भगवान् वैशम्पायन कहते हैं, ''सर्वशास्त्रमयी गीता'' अर्थात् गीता सार्वजनीन धर्मग्रन्थ है। सर्वभावमयता और उदारता के कारण गीता सभी धर्मों, सभी सम्प्रदायों और सभी श्रेणियों के मानवों का धर्मग्रन्थ बन गयी हैं।[3] इसी प्रसंग में राधाकृष्णन् सर्वपल्ली ने भी कहा है, ''आज हमारे सम्मुख विद्यमान मुख्य समस्या मानव जाति के मेल-मिलाप की समस्या है। इस प्रयोजन के लिए गीता विशेष रूप से उपयुक्त है, क्योंकि इसमें धार्मिक चेतना के पृथक्-पृथक् और प्रकट रूप में परस्पर विरोधी दीख पड़ने वाले रूपों का समन्वय करने का प्रयत्न किया गया है और धर्म की उन मूल धारणाओं पर जोर दिया गया है, जो न तो प्राचीन है और न आधुनिक, बल्कि शाश्वत हैं और अतीत, वर्तमान और भविष्य की मानवता के अंग-प्रत्यंग से सम्बन्धित है।[4]

एक अन्य स्थान पर राधाकृष्णन् फिर समझाते हुए कहते हैं कि, गीता हिन्दू धर्म के किसी एक सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व नहीं करती, अपितु समूचे रूप में हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व करती है, न केवल हिन्दू धर्म का बल्कि जिसे धर्म कहा जाता है, उन सबका,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी उस विश्वजनीनता के साथ प्रतिनिधित्व करती है, जिससे काल और देश की कोई सीमाएँ नहीं हैं।[5]

गीता के सम्बन्ध में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कहते है, ''गीता में हृदयं पार्थ, गीता में सारमुत्तमम्'' अर्थात् ''हे पार्थ, गीता मेरा हृदय और गीता मेरा सार सर्वस्व है।''[6] गीता में भगवान् श्रीकृष्ण जीवन को आनन्दमय बनाने के उद्देश्य से कहते हैं कि, सांसारिक सुख और दु:ख में लिप्त ना होकर सनातन आनन्द को अनुभव करें और जीवन का संगीत गाते हुए जीवन व्यतीत करें। इसलिए गीता का शाब्दिक अर्थ है 'गीयते अनेन इति गीता।' अर्थात् जो गेय हो अथवा गायी जाये, वह गीता है। कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण ने अर्जुन का अनुष्टुप् और उपजाति छन्दों में गीता को गाकर सुनाया अर्थात् उपदेश दिया। गीताध्यान में कहा है-

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

उपनिषदें मानो गाय के समान हैं, श्रीकृष्ण उनका दोहन करने वाले हैं। अर्जुन बछड़े के समान है और गीता की अमृतरूपी वाणी उत्तम दुग्ध के तुल्य है। केवल विवेकी बुद्धिमान् लोग ही उस दूध के पीने वाले हैं।''[7]

भारतीय संस्कृति में गीता को इतना महत्त्वपूर्ण और आदर युक्त स्थान प्राप्त है कि, **महात्मा गाँधी** और **विनोबा भावे** ने तो इसे **'माता'** की संज्ञा दी है। यहाँ तक कि, वेदान्त दर्शन के स्रोत ग्रन्थों में भी स्थान प्राप्त है। उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता इन तीनों को **'प्रस्थानत्रयी'** माना जाता है।

आनन्दगिरि शङ्कराचार्य ने गीता को बन्धनों से छुड़ाने वाली माना है, उनका कहना है कि गीता का उद्देश्य हमें बन्धन से छूटने का उपाय सिखाना है, केवल कर्म करने की प्रेरणा देना नहीं। वे कहते हैं कि, गीता हमें प्रभावपूर्ण और गम्भीर सत्य का दर्शन कराती है, यद्यपि यह मनुष्य के मन के लिए नये मार्ग खोल देती है।[8]

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी गीता से बहुत प्रभावित हुये। गाँधीजी कहते हैं कि ''गीता सूत्र-ग्रन्थ नहीं है। गीता एक महान् धर्म-काव्य है। उसमें जितना गहरे उतरिये, उसमें से नये और सुन्दर अर्थ लीजिए। गीता जन-समाज के लिए है, उसमें एक ही बात को अनेक प्रकार से कहा है, अत: गीता में आये हुए महाशब्दों का अर्थ युग-युग में बदलता और विस्तृत होता रहेगा। गीता का मूल-मंत्र कभी नहीं बदल सकता। वह मंत्र जिस रीति से सिद्ध किया जा सके, उस रीति से जिज्ञासु चाहे जो अर्थ कर सकता है।''[9]

गाँधीजी कहते है कि, ''जब निराशा मेरे सामने आ खड़ी होती है, और बिल्कुल एकाकी मुझे प्रकाश की कोई किरण नहीं दिखाई पड़ती, तब मैं गीता की शरण लेता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ-तहाँ कोई न कोई श्लोक मुझे ऐसा दिखाई पड़ जाता है कि, मैं कठिन विपत्तियों में भी तुरन्त मुस्कुराने लगता हूँ।[10] **(यंग इण्डिया 1925, पृ.सं. 1078-1079)**

श्रीमद्भगवद्गीता विश्व में इतनी प्रसिद्ध हुई कि, विभिन्न भाषाओं में इसके अनुवाद किए गये। गीता का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद **1785 में विल्कींस** ने किया। गीता की प्रंशसा में जर्मन भाषा में 1823 में 'सेलेजल' (**Schlegel**) नाम एक कविता लिखी गई, जिसमें बहुत अच्छी तुकबन्दी है।

बुरनॉफ प्रोड्यूस्ट नामक गीत का फ्रेंच में अनुवाद है, जो कि 1861 में लिखा गया है। सर एडविन अरनॉल्ड ने गीता का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया, जिसको **The Song Celestian** कहा गया, ये 1885 में हुआ। 16वीं शताब्दी में अबुल फजल ने परसियन भाषा में अनुवाद किया। जापान में भगवद्गीता का अनुवाद हुआ, जिसे **'Takakasu and Tsuji'** कहा जाता है।

गीता से अत्याधिक प्रभावित होकर **'एल्डौस हक्सले'** लिखते है, "The Gita is one of the Clearest and most comparehesive summarises of the perennial. philosophy ever to have been made. Hence its enduring value not only for Indians, but for all mankind. The Bhagwat Gita is perhaps the most systmatic spritual statement of the perennial philosphy."[11]

तमिल साहित्य में कुरलकाव्य को पंचमवेद की संज्ञा दी गई है। 'नालड़ियार' भी महत्वपूर्ण गीतिकाव्य है। तमिल भाषा के पंचमहाकाव्यों में 'जीवक चिन्तामणि, शिलप्पड़िक्कारक एवं बल्लेयापति ये तीन जैन महाकाव्य हैं। जीवकचिन्तामणि काव्य में कल्पना शैली की सुन्दरता एवं प्राकृतिक चित्रण अपना विशेष महत्व रखता है। तमिल साहित्य में प्राप्त श्रेष्ठ व्याकरण ग्रन्थों का निर्माण जैन लेखकों द्वारा किया गया है। जैनाचार्यों द्वारा सर्वप्रथम तमिल भाषा में नीतिविषयक साहित्य की रचना की गई। 'पलमोलि' तमिल ग्रन्थ पुरातन सूक्तियाँ है। जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। 'तिलेमालेमुरेनमु' नामक ग्रन्थ में शृङ्गार एवं युद्धपरक सिद्धान्तों का वर्णन है।

तमिल का साहित्य अति प्राचीन सर्वाङ्ग समृद्ध और अनेक क्षेत्रीय भाषाओं की तुलना में प्रचुर हैं। तिरुक्कुरळ् तमिल साहित्य का गौरव ग्रन्थ है। तिरुवल्लुवर कृत तिरुक्कुरल का तमिल वेद माना जाता है। इसमें धर्म, अर्थ, काम तीनों विषयों पर इसकी सामग्री विश्व विख्यात हैं। इस कृति का मूल तमिल देवनागरी, लिप्यन्तर और प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद मिलता है। वी. वी.एस. अय्यर के 1915 ई. के अंग्रेजी अनुवाद सहित धर्म, अर्थ और काम का डॉ. रविन्द्र कुमार सेठ और तमिल भाषी विद्वान् डॉ. एच. बाल सुब्रह्मण्यम् का एक नवीन प्रयास है। जो 600 पृष्ठों की हैं और 1999 में प्रकाशित हुई हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमिलनाडु की चिन्तन प्रक्रिया और सांस्कृतिकचेतना के परिचायक आधार भूत ग्रन्थ तिरुक्कुरळ का सम्पूर्ण अध्ययन करके 'तमिल महाकवि तिरुवल्लुवर' नामक पुस्तक 120 पृष्ठों की 1992 में प्रकाशित हुई।

'तिरुवल्लुवर एवं कबीर का तुलनात्मक अध्ययन' लेखक डॉ. रवीन्द्र कुमार सेठ-दिल्ली विश्वविद्यालय का तमिल हिन्दी तुलनात्मक विषयक प्रथम प्रकाशित महत्त्वपूर्ण शोध प्रबन्ध, शोधकार्य अथवा शिक्षण संस्थानों के लिए सीमित संख्या में प्रतियाँ उपलब्ध हैं।

तमिल साहित्य का तीन ग्रन्थशिरोमणि तिरुक्कुरळ्, तिरुवाचकम्, तिरुमंदिरम् के फलस्वरूप तमिल भाषा जगद्वन्द्य और अजर-अमर हैं। तिरुक्कुरळ् मानव के लिए जीवन है, तो तिरुवाचकम् हृदय, तिरुमंदिरम् आत्मा है।

तमिल ग्रन्थ लिखने का जन्म हुआ और उसमें वेद-वेदान्त, शास्त्र पुराण तथा संस्कृत का विशाल साहित्य भी प्रस्तुत हुआ। प्रतिवादभयंकर श्री अण्णङ्गाचार्य और उनके अनुवर्त्तियों ने प्रबन्धस्तोत्रों की रचना एवं संकलन किया।

श्रीमद्भगवद्गीता के सदृश्य अत्यन्त समादृत और रामचरितमानस के तुल्य तमिल प्रदेश में घर-घर में नित्य पढ़े जाने वाले इस नीति ग्रन्थ के अंग्रेजी तथा विभिन्न यूरोपीय भाषाओं में अनेक अनुवाद हो चुके हैं।

वेद धर्म शास्त्रादि में वर्णित एवं प्रतिपादित धर्म के विविध तत्त्वों का सम्यक् विवेचन हमें ग्रन्थशिरोमणि अमर नीति-ग्रन्थ तिरुक्कुरळ् में मिलता है। इसकी अपूर्व व अद्वितीय विशेषताओं के आधार पर ही इसे 'तमिळ मरै' या 'तमिल वेद' कहते हैं।

इसकी रचना लगभग 2000 वर्ष पूर्व हो चुकी थी। इस ग्रन्थ में धर्म, अर्थ, काम इन तीनों शीर्षकों पर आधारित तीन खण्ड हैं। धर्मकाण्ड 38, अर्थकाण्ड में 80 तथा काम काण्ड में 25 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में दस कुरळ् पदों में एक-एक तथ्य का प्रतिपादन किया गया है, इस प्रकार 1330 कुरळ् में धार्मिक, आर्थिक राजनीतिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत विषयों की व्यापकता व्याख्या की गई है कि 'तिरुक्कुरळ् ने राई को छेदकर उसमें सप्त सागरों को भर दिया है।'

इस ग्रन्थ के प्रत्येक छंद में जीवन का चिरन्तन सत्य समाहित है। जीव के समस्त कल्याणकारी तत्त्वों का विश्लेषण कर प्राणिमात्र के जीवन पथ को प्रशस्त बनाने के हेतु मार्ग-निर्देश किया है। निष्काम कर्मयोग पर विशेष बल देने वाले इस ग्रन्थ के कुरळ् वेदों की ऋचा के समान स्वीकार कर इस तमिलज्ञमरै (तमिळ् भेद) सत्य ही कहा गया है।

तिरुक्कुरळ् का परिचय- भारत देश विभिन्न भाषाओं वाला देश है। भारत में विभिन्न भाषाओं का होना, यह भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता मानी जाती रही है। ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक भाषाएँ लिपि उच्चारण और व्याकरण की दृष्टि से जितनी विविधता रखती है, उतना ही भेद उनकी सुषमा और गरिमा में है, वस्तुतः संस्कृत, हिन्दी, बंगला, तमिल, मलयालम, ओडिया, मराठी, असामिया, गुजराती, तेलुगु, कन्नड़, उर्दू, पंजाबी आदि सभी भाषाओं का अपना साहित्य रहा है, लेकिन ये साहित्य मात्र अपने भाषा-भाषी क्षेत्र तक ही सीमित रहे, क्योंकि लोगों में विभिन्न भाषा ज्ञान का अभाव रहा है। इनके प्रचार-प्रसार के लिए इनका देवनागरी लिपि में अनुवाद किये जाते हैं, ताकि इन रचनाओं के लिए अधिकाधिक लोगों तक पहुँच सकें।

तमिल का साहित्य अति प्राचीन सर्वाङ्गसमृद्ध और अनेक क्षेत्रीय भाषाओं की तुलना में प्रचुर है। तमिल रचनाओं में तीन ग्रन्थ शिरोमणि माने गये हैं-(1) तिरुक्कुरळ् (2)तिरुवाचकम् (3) तिरुमन्दिरम्। इन तीनों ग्रन्थों ने तमिल भाषा को जगद् वन्द्य और अजर अमर बना दिया। तिरुक्कुरळ् मानव के लिए जीवन है, तो तिरुवाचकम् हृदय और तिरुमन्दिरम् आत्मा। तमिल साहित्य में ग्रन्थलिपि का जन्म हुआ और उसमें वेद-वेदाङ्ग, शास्त्र पुराण तथा संस्कृत का विशाल साहित्य भी प्रस्तुत हुआ, अर्थात् संस्कृत साहित्य का भी समावेश हुआ।

प्रतिवादभयङ्कर श्री अण्णाङाचार्य और उनके अनुवर्तियों ने प्रबन्ध स्तोत्रों की रचना और संकलन किया। कहा जाता है कि, उनकी संख्या चार-पाँच हजार है और विशिष्ट सम्प्रदायों में तो उसका पाठ वेदपाठ से भी अग्रणीय स्थान प्राप्त करता है। ऐसा समृद्धिशालिनी तमिल भाषा के ग्रन्थ रत्न ''तिरुक्कुरुळ्'' का अनुवाद हमें नागरीलिपि में प्राप्त होता है।

तिरुक्कुरळ् के रचयिता सन्त तिरुवल्लुवर है। इनका समय[12] 2000 वर्ष पूर्व का माना जाता है, कहा जाता है कि ये **माइलोपोर** नामक गाँव में रहते थे। Myloproe का अर्थ है "Town of peaccoks" अर्थात् मोरों का कस्बा। वर्तमान में 'माइलोपोर' चेन्नई शहर का भाग है। जिसकी राजधानी तमिलनाडु है। माइलोपोर समुद्र तट पर है। जहाँ मोरों के घौंसले अधिकतया पाये जाते हैं। अब इसे 'Boy of Bengal' के अर्थात् **खाड़ी** के नाम से जाना जाता है। प्राचीनकाल में साधारणतौर पर यहाँ एक तट था, जहाँ तिरुवल्लुवर का जन्म हुआ, यहाँ उन्होंने काफी वर्ष व्यतीत किये।

'तिरु' का अर्थ लक्ष्मी व श्री है। कहा जाता है कि, उनको 'तिरु' शब्द जनता ने सम्मान के तौर पर प्रदान किया, जो कि एक तमिल उपाधि है। **वल्लुवर** दक्षिण में एक सामान्य जाति का नाम माना जाता है, इसके अतिरिक्त इसका एक और अर्थ लगाया जाता है, जो है, भक्त, उपासक अथवा पुजारी। सन्त तिरुवल्लुवर के परिवार के सन्दर्भ में निश्चित प्रमाण नहीं है, किन्तु माना जाता है, कि इनके पिता ब्राह्मण थे तथा बड़ी बहन कवयित्री थी जिसका **नाम आवैय्यार** था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिरुक्कुरळ् तमिल क्षेत्र में इतना लोकप्रिय और प्रसिद्ध है कि वहाँ इस ग्रन्थ को श्रीमद्भगवद्गीता और रामचरितमानस की भाँति वहाँ इसकी घर-घर में पूजा होती है। इसका कारण यह है क्योंकि, इसमें वेद धर्मशास्त्रादि व धर्म के विविध तत्त्वों का सम्यक् विवेचन किया गया है। तमिल साहित्य के श्रेष्ठतम ग्रन्थों में तिरुक्कुरळ प्रमुख है। इस ग्रन्थ की विशेषताओं के आधार पर ही इसे तमिलमरै अथवा तमिल वेद कहा जाता है।

तिरुक्कुरळ् की विशेषताओं और महत्व से प्रभावित होकर इस ग्रन्थ में अंग्रेजी और विभिन्न योरोपीय भाषाओं में कई विद्वानों ने अनेक अनुवाद किये।

विदेशी भाषाओं में तिरुक्कुरळ् के अनुवाद क्षेत्र में मुख्यतया अंग्रेजी का प्रमुख स्थान है। **डॉ. जी.यू. पोप, डब्ल्यू, एच. ड्यू, जॉन लाजारुस** तथा श्रीमान् एलिस ये कुछ नाम है, जिन्होंने तिरुक्कुरळ् के अनुवाद तथा पद्यों में परिवर्तित करने के लिए समर्पित होकर कठोर मेहनत की।

1730 में **लैटिन भाषा में ''कन्सटेन्जू बिस्ची''** ने तिरुक्कुरुळ् का अनुवाद किया जो कि योरोपीय भाषा में तमिलनाडु साहित्य की बौद्धिकता व सम्पन्नता का प्रतीक मानी जाती है।

यहाँ तक ही नहीं, वर्तमान तमिलनाडु के मुख्यमंत्री **एम.के करुणानिधि** ने भी तिरुक्कुरळ् की कविताओं पर व्याख्या लिखी।

कॉल सी. आर. सुन्दर द्वारा रचित **बुक डिवाइन (Book Divine)** ऐसी सरचना है, जो पद्यों में अनुवादित की गई, तिरुक्कुरळ् पर इस तरह की रचना पहली रचना मानी गयी है।

उपर्युक्त वर्णनानुसार स्पष्ट हो जाता है कि, तिरुक्कुरळ् का प्रचार-प्रसार विश्व के प्रत्यक कोने तक पहुँच चुका है, किन्तु यह आश्चर्य ही है कि, तमिल के अतिरिक्त भारत के अन्य भाषा-भाषी क्षेत्र अब तक इसके पठन-पाठन से वंचित रहे।

संस्कृत साहित्य का गौरव ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता एवं तमिल साहित्य का वेद तिरुक्कुरळ् का अद्वितीय स्थान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. गीता का नीति शास्त्र, दिवाकर शास्त्री, पृ.सं. 1, प्रयोजन
2. गीता 2/48-50
3. श्रीमद्भगवद्गीता, स्वामी अपूर्वाननन्द, 13 (भूमिका)
4. भगवद्गीता, राधाकृष्णन् 8 (भूमिका)
5. भगवद्गीता, राधाकृष्णन्, पृ.सं. 14 (परिचय भाग)
6. श्रीमद्भगवद्गीता (स्वामी अपूर्वाननन्द), पृ.सं. 4 (भूमिकाभाग)
7. श्रीमद्भगवद्गीता (स्वामी अपूर्वाननन्द), पृ.सं. 4 (भूमिकाभाग)
8. भगवद्गीता, राधाकृष्ण, पृ.सं. 14 (परिचय)
9. गीता का नीतिशास्त्र, डॉ. दिवाकरशास्त्री, पृ.सं. 6
10. भगवद्गीता, राधाकृष्णन्, पृ.सं. (भूमिका भाग)
11. Bhagavandita, Radhakramal Mukeerji, XXX cintre Duction breyond the religins
12. तिरुक्कुरळ्, तिरुवल्लुवर, पृ.सं. (विषय-प्रवेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म का स्वरूप

डॉ. हरिराम मिश्र
सहायक आचार्य
विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. दिव्य मिश्रा
पोस्ट डॉक्टोरल फेलो, (यूजीसी)
विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

धर्म संस्कृत भाषा का शब्द है जो 'धृञ-धारणे' धातु से 'अर्तिस्तुसु...' इस (उणादि सूत्र-145) द्वारा 'मन्' प्रत्यय होने पर निष्पन्न होता है। जो धारणा शक्ति से सम्बन्धित होकर मुख्यत: तीन अर्थों में व्यक्त होता है जैसे धारण करना, पालन करना व आलम्बन देना। **'ध्रियते लोकः अनेन इति धर्मः'** अर्थात् जिससे लोक धारण करे वह धर्म है, और **'धरति धारयति वा लोकं इति धर्मः'** अर्थात् जो लोक को धारण किया जाय वह धर्म है, मूल अर्थ यह है कि धर्म के द्वारा ही इस लोक का धारण या संचालन होता है।[1] संस्कृत हिन्दी कोश[2] में धर्म शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है- **'ध्रियते लोकोऽनेन, धरति लोकं वा' धृ+मन्।** इसी प्रकार **'धरति लोकान्' 'ध्रियते पुण्यात्मभिः** इति वा।' अर्थात् जो, लोकों को धारण करता है अथवा जो पुण्यात्माओं द्वारा धारण किया जाता है वह धर्म भारतीय संस्कृति का प्राणतत्त्व है। भारतीय वाङ्मय में 'धर्म' शब्द का प्रयोग अत्यन्त व्यापक अर्थ में हुआ है। धर्म की सत्ता सार्वभौमिक मानी गयी है उसे देश काल की सीमा से नहीं बांधा जा सकता। धर्म का न आदि होता है और न अंत। सृष्टि की संरचना से पूर्व भी धर्म विद्यमान था और सृष्टि के विनाश के उपरान्त भी धर्म की सत्ता निश्चित रूप से रहेगी। यह एक ऐसी अवधारणा है जो उपास्य-उपासक, आराध्य-आराधक तथा व्यक्ति एवं समाज को एकता के सूत्र में बाँधती है। मनुष्य के जन्म से लेकर उसके विकासक्रम की सभी अवस्थाओं का संचालन धर्म के माध्यम से ही होता है। धर्म शब्द का व्यवहार उन नीति-नियमों के लिए किया गया है जिनकी रचना समाज-धारण करने के लिए अध्यात्म की दृष्टि से की गयी है। धर्म समस्त प्राणियों के कल्याण का कारण है। धर्म ही मनुष्यों के सभी कर्त्तव्यों का संचालन करता है। धर्म के अभाव में नैतिकता, कर्त्तव्य, सदाचार आदि अनेक लौकिक धारणाओं की कोई सत्ता नहीं रहती है। इन सबका मूल आधार धर्म ही है। भारतीय लौकिक धारणाओं के बीच अबाध गति से बहने वाली कर्त्तव्य की धारा ही धर्म है।[3]

महाभारत में कहा गया है कि धर्म वस्तुतः सनातन मानव धर्म है।[4] जिसको केन्द्र में मानकर प्रत्येक का जीवन चलता हो, जो अर्थ और काम आदि की प्राप्ति में सहायक हो, उसे धर्म कहते हैं।[5] ऋग्वेद में धर्म शब्द प्रायः धार्मिक विषयों या धार्मिक क्रिया संस्कारों के रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही प्रयुक्त हुआ है।[6] उपनिषदों में धर्म शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से आदर्श अथवा सदाचार के अर्थ में हुआ है। **''तुम सत्य बोलो और धर्म का आचरण करो।''**[7] **''वाणी ही धर्म और अधर्म के स्वरूप को बतलाती है।''**[8] **'यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्'**[9] अर्थात् जो धर्म है वही सत्य है। जब कोई सत्य बोलता है तो कहते हैं वह धर्म बोलता है, और जब कोई धर्म बोलता है, तो कहते हैं, वह सत्य बोलता है। इसलिए सत्य और धर्म दोनों एक हैं। धर्म को सत्य की वाणी माना गया है।[10] ऋग्वेद में धर्म का अर्थ 'निश्चित नियम' या आचरण-नियम के रूप में भी प्राप्त होता है।[11] अथर्ववेद में धर्म का प्रयोग **'धार्मिक क्रिया संस्कार करने से अर्जित गुण'** के अर्थ में हुआ है।[12] छान्दोग्य उपंनषद् धर्म की तीन शाखाएँ मानता है- 1. यज्ञ, अध्ययन एवं दान अर्थात् गृहस्थ धर्म 2. तपस्या अर्थात् तापस धर्म, 3.ब्रह्मचारित्व अर्थात् आचार्य के गृह में अन्त तक रहना।[13] यहां धर्म शब्द आश्रयों के विलक्षण कर्त्तव्यों की ओर संकेत करता है। कोशग्रन्थों में धर्म शब्द के अनेक अर्थ दिये गये हैं-

1. कानून, प्रचलन प्रथा
2. अधिकार, त्याग, औचित्य
3. कर्त्तव्य, जाति सम्प्रदाय आदि के प्रचलित आचार का पालन
4. धार्मिक या नैतिक गुण
5. स्वभाव, चरित्र आदि।[14]

विभिन्न दार्शनिक भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से इसके स्वरूप की व्याख्या करते रहे हैं। अतः धर्म की कोई पूर्णतः निश्चित तथा सर्वमान्य परिभाषा देना अत्यन्त कठिन है। उदाहरणार्थ कुछ दार्शनिक धर्म के सैद्धान्तिक या बौद्धिक पक्ष को प्रमुख मानकर इसके अर्थ एवं स्वरूप की व्याख्या करते हैं जबकि कुछ दार्शनिक धर्म के व्यावहारिक अथवा क्रियात्मक पक्ष को ही प्रमुख मानते हैं जिसमें आचरण तथा कर्मकाण्ड या धार्मिक अनुष्ठानों को विशेष महत्त्व दिया जाता है। धर्म के सम्बन्ध में 'जेम्स एच ल्यूबा' ने अपनी पुस्तक 'ए साइक्लाजिकल स्टडी ऑफ रिलिजन' में विभिन्न दार्शनिकों द्वारा दी गयी पचास भिन्न-भिन्न परिभाषाओं का उल्लेख किया है। इनमें से प्रत्येक परिभाषा धर्म के किसी एक विशेष अंश या पक्ष को सर्वाधिक महत्त्व देकर उसके स्वरूप की व्याख्या करती हैं। पूर्वमीमांसासूत्र में जैमिनि के अनुसार वेदों में प्रयुक्त अनुशासनों के अनुसार चलना ही धर्म का सम्बन्ध उन क्रिया संस्कारों से है, जिनसे व्यक्ति का कल्याण होता है, उसे आनन्द मिलता है और जो वेदों द्वारा प्रेरित एवं प्रशंसित है।[15] महर्षि कणादप्रणीत 'वैशेषिक दर्शन' में कहा गया है- **'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धि स धर्मः।'**[16] अर्थात् जिससे पारलौकिक लक्ष्य की सिद्धि एवं लौकिक उन्नति होती है वही धर्म है। इस प्रकार संसार में अभ्युदय की प्राप्ति कराने वाला, निःश्रेयस की सिद्धि करने वाला,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याणदायक तथा व्यक्ति को पूर्णत्व की उपलब्धि कराने वाला धर्म ही है। इस प्रकार मीमांसा दर्शन एवं वैशेषिक दर्शन दोनों में प्रारम्भिक सूत्रों में धर्म शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में हुआ है। वैशेषिक दर्शन के प्रथम सूत्र में कहा गया है कि इस ग्रन्थ में 'धर्म' की व्याख्या की जायगी। इस दर्शन में आगे चलकर द्रव्य, गुण, कर्म आदि के स्वरूप की ही व्याख्या की गई है। इससे स्पष्ट होता है कि यहां धर्म का अभिप्राय आन्तरिक जगत् एवं बाह्य जगत् के विशिष्ट स्वरूपों से ही है। इसी दर्शन के तीसरे सूत्र में बताया गया है कि ''वेद जैसे आम्नाय या धार्मिक मूल-ग्रन्थों का प्रामाण्य इसी कारण से माना जाता है क्योंकि वे उक्त अर्थों में धर्म का प्रतिपादन करते हैं।[17] धर्म की गति अत्यन्त सूक्ष्म एवं गूढ़ है, इसके विषय में श्रुतियों के मत भी भिन्न-भिन्न हैं, स्मृतियां भी एक दूसरे से भिन्न हैं। कोई एक मुनि ऐसा नहीं है जिसके वचन को प्रमाण माना जाय। इसलिए यही कहना पड़ता है कि धर्म का तत्त्व गुहा में छिपा हुआ है। अर्थात् बड़ा रहस्यात्मक है अतः जिस मार्ग पर महापुरुष गये हैं उसी का अनुसरण करना चाहिए-

'तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतियो विभिन्ना
नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः॥'[18]

छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार धर्म के तीन स्कन्ध हैं- त्रयोधर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमितिप्रथममस्तपएवेतिद्वितीयोब्रह्मचार्याचार्यकुलतृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन।[19]

यज्ञ, अध्ययन और दान पहला स्कन्ध है। तप दूसरा स्कन्ध है तथा तीसरा ब्रह्मचारित्व है। उपनिषदों में 'धर्म' शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से नैतिक आदर्श अथवा सदाचार के अर्थ में हुआ है जैसे- 'सत्यं वद' 'धर्मं चर'[20], 'धर्मं चाधर्मं च... विज्ञापयति'[21]। वृहदारण्यक उपनिषद् में 'धर्म' शब्द का प्रयोग आध्यात्मिक, नैतिक तथा भौतिक जगत् के संचालक मौलिक तत्त्व के अर्थ में हुआ है। मनुस्मृति के अनुसार 'आचारः परो धर्मः'[22] आचार ही श्रेष्ठ धर्म है। धर्मशास्त्रकारों के अनुसार धर्म किसी सम्प्रदाय या मत का द्योतक नहीं है अपितु धर्म जीव का एक ढंग व आचरण संहिता है, जो मनुष्य के करने योग्य कर्मों का निर्धारण करती है। मनुष्य इन कर्मों को अपनाता हुआ अपने लक्ष्य तक पहुँचने के योग्य होता है। इसी आधार पर धर्म को दो भागों में बाँटा गया है- श्रौत एवं स्मार्त। वैदिक संहिताओं और ब्राह्मणों से सम्बन्धित कृत्यों और संस्कारों का श्रौत धर्म में समावेश था। जैसे-तीन पवित्र अग्नियों की प्रतिष्ठा, पूर्णमासी एवं अमावस्या के यज्ञ इत्यादि। स्मार्त धर्म के अंतर्गत विशेषतः स्मृतियों में वर्णित तथा वर्णाश्रम से सम्बन्धित विषयों का समावेश होता था।[23]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेधातिथि[24] के अनुसार स्मृतिकारों ने धर्म के पाँच स्वरूप माने हैं- (1) वर्णधर्म, (2)आश्रमधर्म, (3)वर्णाश्रमधर्म, (4)नैमित्तिकधर्म, (5)गुणधर्म। गौतमधर्मसूत्र के अनुसार **'वेदो धर्ममूलम्'**[25] अर्थात् वेद धर्म का मूल है। आपस्तम्ब ने अपने धर्मसूत्र के आरम्भ में अन्य धर्मसूत्रकारों की तरह स्पष्ट कर दिया है कि वह सामयाचारिक धर्मों का व्याख्यान करेंगे -**'अथातस्सामयाचारिकान् धर्मान् व्याख्यास्यामः'**[26]

यहां पर उन्होंने धर्म का बहुवचन में प्रयोग किया है। वे यह करना चाहते हैं कि वह धर्म जो आचार में व्यवहृत हो उन सामयाचारिक धर्मों की मैं व्याख्या करूंगा। उनके अनुसार धर्म आचारपरक हैं। उसे जीवन में व्यवहृत होना चाहिए। स्पष्ट है कि धर्मशास्त्रकारों ने मनुष्य के नैतिक गुणों को अत्यधिक महत्त्व दिया है।

इस प्रकार से धर्म शब्द का अर्थ समय-समय पर परिवर्तित होता रहा है, किन्तु अंत में मानव के विशेषाधिकारों, कर्त्तव्यों, एवं वर्णाश्रम के नियमों का द्योतक हो गया।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. कर्णपर्व 69/58, महाभारत
2. वामनशिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी शब्द कोश
3. हिन्दी विश्वकोश, खण्ड-6, पृ.167
4. एष धर्मः सनातनः। महाभारत कर्णपर्व 69/58
5. ऋ. 1/187/1
6. ऋ 1/22/18, 5/26/6, 9/64/1, 1/164/43
7. सत्यं वद/धर्मं चर/ तैत्तिरीय उपनिषद्, 1/11/1
8. छान्दोग्य उप. 7/2/1
9. बृहदारण्यक उपनिषद्, 1/4/14
10. वाल्मीकि रामायण, 107/12
11. (क) आ प्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे। 4/53/3, ऋग्वेद।
    (ख) धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया। 5/63/7, ऋग्वेद।
    (ग) द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा, 6/70/1/, ऋग्वेद
    (घ) अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः। 7/89/5, ऋग्वेद।
12. ऋत सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च।
    भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले।। (अथर्व. 9/9/17)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

13. त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप
एवेति द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी
तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन।
सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति। (छान्दोग्य उप., 2/23)
14. संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ. 489
15. चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः (पूर्व मीमांसा सूत्र 1.1.2)
16. अथातो धर्म व्याख्यास्यामः। यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।।, वैशेषिक सूत्र, 1-2
17. तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्। वैशेषिक सूत्र, 1/1/3
18. महाभारत वन पर्व, 117
19. छान्दोग्य उपनिषद् 2/23
20. तैत्तिरीय उपनिषद् 1/11/1
21. छान्दोग्य उपनिषद् 7/2/1
22. मनुस्मृति, 1.108
23. दाराग्निहोत्रसम्बन्धमिज्या श्रौतस्यलक्षणम्। स्मार्तो वर्णाश्रमाचारो यमैश्च नियमैर्युतः।।
मत्स्य पुराण, 114.130.31
24. 'सर्वधर्मसूत्राणां वर्णाश्रमधर्मोपदेशित्वात्', पृ. 237
25. गौतम धर्मसूत्र, 1.1.2
26. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1.1.1.1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मशास्त्रीयानुबन्धचतुष्टयविचारः

मनोज कुमार मिश्र
धर्मशास्त्र विभागस्य अनुसन्धाता,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय,
वाराणसी, उत्तरप्रदेश

मानव जीवनस्य कृते धर्मशास्त्राध्ययनम् अत्यन्तम् उपयुज्यते यतो हि मानवस्य विशिष्टोपकारः धर्माचरणेनैव भवति धर्म ज्ञानञ्च धर्मशास्त्राध्ययनेनैव भवति कस्याऽिप ग्रन्थस्य अध्ययनाय अनुबन्ध चतुष्टय ज्ञानमावश्यकम् तथा चोक्तम्- सम्बन्धश्चाधिकारी च विषयस्य च प्रयोजनम्। अनुबन्धं विना ग्रंथे मंगले नैव शस्यते।

अतः धर्मशास्त्रस्य, अनुबन्ध चतुष्टय विषये किमपि उच्यते। धर्मशास्त्रमाधारीकृत्य ये अनुबन्धाः विद्यन्ते प्रकरणवशात् तेषामुपरिविचारः क्रियते। अनुबध्नाति इति अनुबन्धः, अनु+बन्धः- यथायथं भवादौ घञ्। बन्धने, इच्छापूर्वकदोषविशेषाभ्यासे, अनुबन्धादिकं दृष्ट्वा सर्वं कार्यं यथाक्रममिति स्मृतिः। अनुबन्ध पौनः पुन्येनाभिनिवेशे इति[1]। शास्त्रस्यादौ व्यक्तेषु अधिकारिविषयप्रयोजनसम्बन्धेषु, अनुबन्धो नाम विषयप्रयोजनाधिकारिसम्बन्धः अस्य वेदान्त प्रकरणत्वात्तदीयैरेवानुबन्धैस्तत्तदासिद्धेरिति च वेदान्तसारे।

ज्ञातार्थं ज्ञातसम्बन्धं श्रोतुं श्रोताप्रवर्त्तते।
ग्रन्थादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः स प्रयोजनः।।

विषयप्रयोजनादीनामारम्भप्रयोजकत्वात् तद्धेतुत्वम्। अस्मिन् पक्षे च अनुबन्ध्यते अनेन इति करणे घञ्। मुख्यानुयायिनि अप्रधाने। बालकादौ प्रकृतस्यानुवर्तने, सम्बन्धे, वातपित्तादिदोषाणामाप्राधान्ये। प्रकृतिप्रत्ययादेशानां विकरणागमगुणवृद्ध्यादिकार्य विशेषार्थमनुबन्धनीये परिनिष्पन्नपदकालेषु अश्रूयमाणतया नश्वरे इत्संज्ञया कृतलोपे वस्मादौ,

पदानिड्विड्विकरणाद्यनुबन्धगणोदितम्।
कर्मोच्चारणमात्रेण स्पष्टमत्रानुबन्धतः।।[2]

फलसाधने, पुनः पुनरनुष्ठानाभ्यासे।

अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्वतः।
सत्वापराधौ चालोक्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत्।।

बन्धेऽपि, मेदिनिः। आरब्धे, शब्दरत्नाकारः। अनुसरणे शान्तज्वरोऽपि शोध्यः स्यादनुबन्धभयान्नरः, सुश्रुतम्। सन्ततसम्बन्धे (अविच्छेदे) ''सानुबन्धाः कथं न स्युः सम्पदो मे निरापदः'' इति रघुः। अनुबध्यते अनुरुद्ध्यते इति अनुबन्धः, कर्मणिघञ्। ''पश्चाद्धाविनिशुभाशुभे''। ''अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम्'' इति गीता पश्चात् सम्बन्धे च। ''यदग्रे चानुबन्धे च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखं मोहन्नमात्मन:'' इति गीता। सर्वेषामेव शास्त्राणामध्ययने अनुबन्धानां ज्ञानं परमावश्यकम्। यतो हि यदि विषयस्य सम्बन्धस्य अधिकारे: तथा प्रयोजनस्य ज्ञानं न भवति तदा किं पठितव्यं किं न पठितव्यमित्यादि ज्ञानमपि सम्यक् न भवति, अत: तस्य ज्ञानं परमावश्यकम्।

तत्राधिकारी- नाम कर्मावबोधविशिष्टत्वे सति संस्काराचारयुक्तत्वे सति धर्मजिज्ञासा सम्पन्त्वमिति।

विषय:- धर्मशास्त्रस्य विषय: नित्यनैमित्तिककाम्यादिकर्मणां साङ्गोपाङ्गं विधानं विहितं वरीवर्ति। तेष्वेव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्राणां, चतुर्णां वर्णानां सदाचार प्रतिपादनं, ब्रह्मचारिगृहस्थ वानप्रस्थयतीनां, गर्भाधानं-पुंसवन-सीमन्तोन्नयन-जातकर्म-नामकरण-अन्नप्राशन-चूडाकर्म-कर्णवेध-विद्यारम्भ-उपनयन-वेदारम्भ-केशान्त-समावर्तन-विवाह-अन्त्येष्टिरूपषोडशसंस्काराणां विधानं गृह्याग्निविधानं, ब्रह्मयज्ञ देवयज्ञ-पितृयज्ञ-भूतयज्ञ-नृयज्ञानां पञ्चस्मार्तयज्ञानां संविधानं, नीतिसिद्धान्तानामन्वाख्यानम् विविधधार्मिकानुष्ठानादीनां विधिविधानं नित्य नैमित्तिक काम्यादि व्रतानां, तेषां विविधोद्यापनादीनाञ्च निरूपणं, नैकविधानां, शान्तिकर्मणां विधानं,

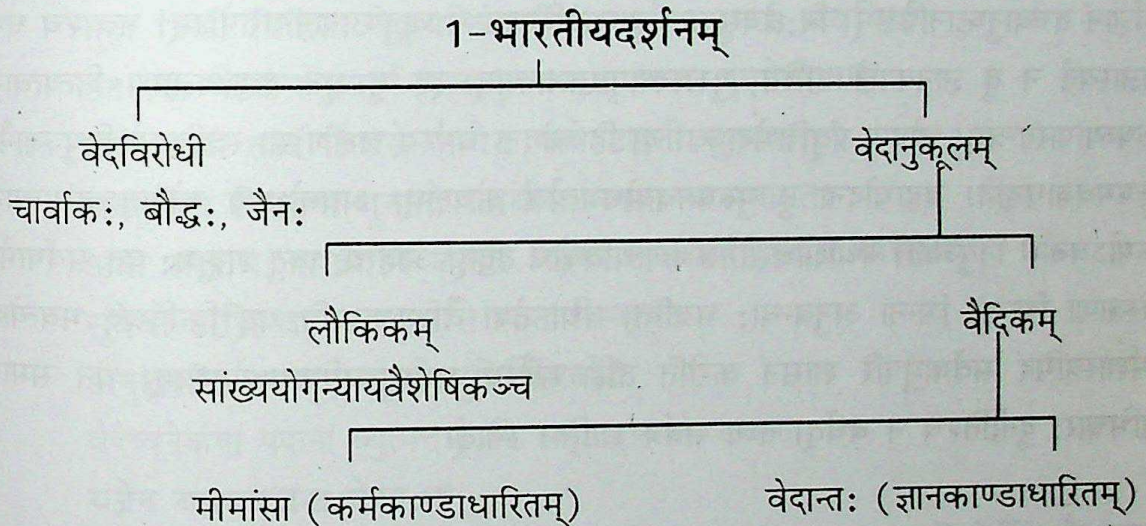

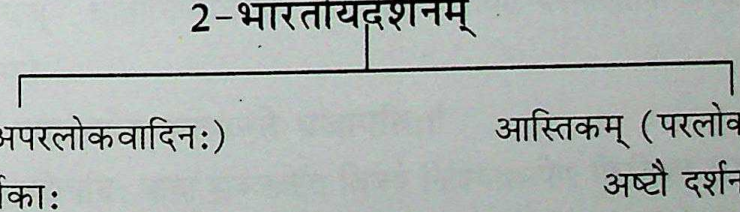

अनैतिकाचरण- धर्मविरुद्धाचरण-जनितदुरितक्षयार्थंप्रायश्चित्तादीनाञ्च, विधानं, प्रजापालनसंरक्षण-न्यायनियमस्थापन-न्यायनिर्णयप्रदान-समुचितदण्ड- निग्रहादीनाञ्च विधानं विस्तृतया प्रावर्ह्येण च संप्रतिपद्यन्ते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धः- धर्मशब्दस्य बहवोऽर्थाः सन्ति। निखिलशास्त्रोपबृंहितो वेदः कथयति धर्मोऽयमलौकिकशक्तेः बोधकः, ऋग्वेदानुसारं धर्मः नियमव्यवस्थायाः द्योतकः बोध्यबोधकभावसम्बन्धः।

प्रयोजनम्- दार्शनिक-धार्मिक-आध्यात्मिक-आचारिकजीवनवर्तनधारायाः संस्कारेण परिष्कृतिः क्रियते। यया च मानवस्य पुरुषार्थचतुष्टयसम्बन्धि जीवनवर्तनं कालुष्यरहितं माङ्गलिकं च जायते।

ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्येऽप्यनुबन्धचतुष्टयमादायमहती चर्चा कृता विद्यते। यथा-तत्र विचारितं यत् धर्मशास्त्र तथा वेदान्तशास्त्रयोः ये ये अनुबन्धाः ते समानाः भिन्नाः वा इति।

ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्ये लिखितं यत् यथा धर्मजिज्ञासा पूर्ववृत्तं वेदाध्ययनं नियमेनापेक्षते एव। एवं ब्रह्मजिज्ञासापि यत्पूर्ववृत्तं नियमेनापेक्षते तद्वक्तव्यम्। स्वाध्यायानन्तरं तु समानम्। ननु इह कर्माबोधानान्तर्यं विशेषः। न धर्मजिज्ञासायाः प्रागप्यधीत वेदान्तस्य ब्रह्मजिज्ञासोपपत्तेः, यथा च हृदयाद्यवदानानामानन्तर्यनियमः। क्रमस्य विवक्षितत्वान्नेह तथेह क्रमो विवक्षितः। शेषशेषित्वेऽधिकृताधिकारे वा प्रमाणाभावात्। धर्मब्रह्मजिज्ञासयोः फलजिज्ञास्य भेदाच्चा। अभ्युदयफलं धर्मज्ञानं तच्चानुष्ठानापेक्षम्। निःश्रेयसफलं तु ब्रह्मविज्ञानं न चानुष्ठानानन्तरापेक्षम्। भव्यश्च धर्मो जिज्ञास्यते न तु ज्ञानकाले अस्ति, पुरुषव्यापारतन्त्रत्वात्। इह तु भूतं ब्रह्मजिज्ञास्यं नित्यत्वान्न पुरुषव्यापारतन्त्रम्। चोदना प्रवृत्तिभेदाच्च। या हि चोदना धर्मस्य लक्षणं सा स्वविषये नियुञ्जानैव पुरुषमवबोधयति। ब्रह्मचोदना तु पुरुषमवबोधयत्येव केवलम्। अवबोधस्य चोदनाऽजन्यत्वान्न पुरुषोऽवबोधे नियुज्यते। यथाक्षार्थसंनिकर्षेणार्थावबोधे तद्वत्। आहत्य वक्तुं शक्नुमः यत् सर्वेषामेव शास्त्राणां भिन्नाः भिन्ना अनुबन्धाः भवन्ति। तथा तेषां वैशिष्ट्यमपि यत् किञ्चिद् भवत्येव। धर्मशास्त्रमिदं सर्वेषामुपरि शासनं करोति तर्हि सर्वैरेव धर्मशास्त्रमिदमध्येतव्यम्। येन समाजे व्यभिचारः दुर्नीतिश्च न बर्धेत्। तथा सर्वत्र शान्तिः स्यात्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याकरणस्य वेदमूलकत्वम्

डॉ. कपिलदेव हरेकृष्ण शास्त्री
निर्देशक, ज्ञान विज्ञान वेद अनुसन्धान केन्द्र, मुहवा, गुजरात

जगतिप्रवृत्तानां सर्वासामपि विद्यानां मूलं परमेश्वरोपदिष्टो वेद एवेति न तिरोहितं विदुषाम्। भगवता मनुनाऽपि वेदानां सर्वज्ञानमयत्वमङ्गीकृतम्-

यः कश्चित् कस्यश्चिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥[1]

शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धश्च पञ्चमः।
वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूति गुणकर्मतः॥[2]

अतो व्याकरणस्याऽपि मूलं वेदा एव। तथा च ऋग्वेदे समाम्नायते-

चत्वारिशृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश॥[3]

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रिणी निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्याः वदन्ति॥[4]

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वःश्रृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्ये उशती सुवासाः॥[5]

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्रधीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥[6]

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव॥[7]

वेदेष्वनेकेषां पदानां व्युत्पत्तयोऽपि समुपलभ्यन्ते। तद्यथा-

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः॥[8]

यास्काचार्यस्य निरुक्ते (3.4.2) ''यज्ञः कस्मात्? प्रख्यातं यजतिकर्मेति नैरुक्ताः'' इत्येनेन यज्ञशब्दस्य ''यज्'' धातोर्निष्पत्तिर्वर्णिता। व्याकरणशब्दो यस्माद्धातोर्निष्पद्यते तस्य मूलेऽर्थे प्रयोगो यजुर्वेदेऽवलोक्यते-

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।[9]

व्याकरणशास्त्रस्योत्पत्तिः कदा सञ्जातेति विषये निश्चितरूपेण किञ्चित् कथनन्तु दुष्करमेव, किन्तु उपलब्ध वैदिकपाठानां रचनाकालात् प्रागेवं संस्कृतव्याकरणं पूर्णतां गतमासीदिति तु प्रायेण निश्चप्रचमेव। तस्मिन् काले प्रकृतिप्रत्ययधातु उपसर्गसमासघटितपूर्वोतरपदविभागानां पूर्णरूपेण निर्धारणं दृश्यते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तद्यथा वेदेषु समाम्नायते-

वाजिनीऽवती।[10]

समऽजग्मानः।[11]

रुद्रवर्तनी इति रुद्रऽवर्तनी।[12]

वाल्मीकीयरामायणेन ज्ञायते यद् भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य कालेऽपि व्याकरणस्य सुव्यवस्थितं पठनपाठनं प्रचलितमासीत्। तद्यथा-

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।

बहु व्याहरताऽनेन न किञ्चिदपभाषितम्॥[13]

हनुमत् ईदृक् वाक्पटुत्वं युक्तमेव, यतो हि तत्पिता वायुः शब्दशास्त्रविशारद आसीत्। तदुक्तं वायुपुराणे-

तत्राभिमानी भगवान् वायुश्चातिक्रियात्मकः।

वातारणिः समाख्यातः शब्दशास्त्रविशारदः॥[14]

इत्थं न केवलं व्याकरणशास्त्रमेव प्राचीनतमम्, पाणिनीयव्याकरणग्रन्थे स्मृताः संज्ञा अपि प्राचीनाः। तासु कासाञ्चिन्निर्देशो गोपथब्राह्मणे पूर्वभागे विलोक्यते-

"ओङ्कारपृच्छामः, को धातुः, किम्प्रातिपदिकम्, किं नामाख्यातम्, किं लिङ्गम्, किं वचनम्, का विभक्तिः, कः प्रत्ययः, कः स्वरः उपसर्गो निपातः, किं वै व्याकरणम्, को विकारः, कतिमात्रः, कतिवर्णः, कत्यक्षरः, कतिपदः, कः संयोगः, किं स्थानानुदान प्रदानानुकरणम्।"[15]

"पुराकल्प एतदासीत्, संस्कारोत्तरकालं ब्राह्मणाः व्याकरणं स्माधीयते" इति महाभाष्यानुसारेण (1.1.1) ज्ञायते यदतिपुराकाले व्याकरणशास्त्रोपत्तिर्जाता। समेषां नामशब्दानां निष्पत्तिदर्शकं मूर्धाभिषिक्तं शाकटायनव्याकरणमपि यास्कात् प्रागेव निर्मितमासीत्। तदुक्तं यास्केन-

"न सर्वाणीति गार्ग्यो वैयाकरणानां चैके।

तत्र नामान्याख्यातजातानीति शाकटायनो नैरुक्त समयश्च"।[16]

संसारेऽपि संस्कृतव्याकरणशास्त्रस्य परम्परा वेदादेव प्रवर्तते, इति पूर्वमेव व्याख्यातम्। तत्र भारतीयैतिह्यग्रन्थेषु सर्वासामपि विद्यानां प्रथमः प्रवक्ता ब्रह्मेत्युक्तम्। तदनुसारं संस्कृतव्याकरणस्य सर्वप्रथमः प्रवक्ता "ब्रह्मा" बभूवेति सुनिश्चितम्। तथा चोक्तं ऋक्तन्त्रे-

संसारेऽपि संस्कृतव्याकरणशास्त्रस्य परम्परा वेदावेद प्रवर्तते, इति पूर्वमेव व्याख्यातम्। तत्र भारतीयैतिह्यग्रन्थेषु सर्वासामपि विद्यानां प्रथमः प्रवक्ता ब्रह्मेत्युक्तम्। तदनुसारं संस्कृतव्याकरणस्य सर्वप्रथमः प्रवक्ता "ब्रह्मा" बभूवेति सुनिश्चितम्। तथा चोक्तं ऋक्तन्त्रे-

यथाचार्या ऊचुर्ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय,

इन्द्रो भरद्वाजाय भरद्वाज ऋषिभ्यः, ऋषिभ्यो ब्राह्मणेभ्यः॥ इति[17]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मा सत्ययुगस्यान्तिमे चरणे बभूव। स देवगुरवे बृहस्पतये व्याकरणशास्त्रम् उपदिदेश। ततो बृहस्पति देवराजाय इन्द्राय व्याकरणशास्त्रं प्रोवाच। तदुक्तं पातञ्जलमहाभाष्ये-

''बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां
शब्दानां शब्दपारायणम्प्रोवाच न चान्तं जगाम्।''[18]

सर्वप्रथममिन्द्र एव शब्दोपदेशस्य प्रतिपदपाठरूपं काठिन्यमवगत्य पदानां प्रकृति प्रत्ययादिविभागरूपं शब्दोपदेशमकल्पयत्। तदुक्तं तैत्तिरीयसंहितायाम्-

वाग् वै पराच्य व्याकृताऽवदत्, ते देवा इन्द्रमब्रुवन्। इमां नो वाचं व्याकुर्विति, सोऽब्रवीत्-वरं वृणे, मह्यं चैवेष वायवे च सह गृह्यता इति। तस्माद् ऐन्द्र वायवः सह गृह्यते। तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोदिति, तस्मादियं व्याकृता वागुपद्यते।।[19]

तस्य व्याख्यानं कुर्वता सायणाचार्येणोक्तम्-

''तामखण्डां वाचं मध्ये विच्छिद्य प्रकृतिप्रत्ययविभागं सर्वत्राऽकरोदिति।''

ततो भरद्वाज ऋषिभ्यो व्याकरणं प्रोवाच, ऋषयश्च ब्राह्मणेभ्यो व्याकरणशास्त्रम् उपदिदिशुः। एवं संस्कृतव्याकरणस्य अध्ययनाध्यापनपरम्परा प्रचलिता।

व्याकरणशास्त्रे सम्प्रदायद्वयं प्रसिद्धम्-ऐन्द्रं शैवञ्चेति भेदात्। तत्र ऐन्द्रशाखायाः प्रवर्तक आचार्य इन्द्रः, शैवसम्प्रदायस्य ''शिवसहस्रनाम'' इत्यभिधेयस्य प्रकरणस्य ''वेदात् षडङ्गानि उद्धृत्य'' इति वचनेन स्पष्टं यद् बृहस्पतिरिव शिवोऽपि षडङ्गानां प्रवचनं चकार। अत्रेदं ज्ञातव्यम्, यद् महाभारते वर्णितः शिवः पौराणिक शिवः, तेन व्याकरणशास्त्रं विहितम्, किन्तु पाणिनेराचार्यस्य ''अ इ उण्'' इत्यादीनां चतुर्दशसूत्राणामुपदेष्टा महेश्वर आचार्यः पौराणिक शिवात् सर्वथा भिन्नोऽन्य एव महाभारतकालीन आचार्यः। वर्तमानप्रसिद्धि अनुसारेण ऐन्द्रसम्प्रदायस्य कातन्त्र व्याकरणम्, शैवसम्प्रदायस्य च पाणिनीय व्याकरणमस्ति।

निरुक्तस्य- **''विल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च''**[20] इति वचनेन बहुवचन निर्देशेन ज्ञायते यद् वेदाङ्गानाम् प्रवचनकर्तारोऽनेके आचार्या आसन्।

इन्द्रादारभ्य अद्यावधि कति व्याकरणानि निर्मितानीति विषये सम्प्रति न किमपि सम्यग् ज्ञायते। महर्षिपाणिनिना अष्टाध्याय्यामापिशलि-काश्यप-गार्ग्य-गालव चाक्रवर्म्मण-भरद्वाज-शाकटायन-शाकल्य-सेनक-स्फोटायनानाम्,

अष्टाधाय्याम् 6.1.29, 1.2.25, 8.3.20, 6.1.74., 6.1.130, 7.2.63, 3.4.111, 8.3.19, 5.4.112 एवम् 6.1.123 क्रमशः दशवैयाकरणानामुल्लेखो विहितः।

एतदतिरिक्तानां पाणिनेः प्राचीनानां पञ्चदशाऽऽचार्याणामुल्लेखो विभिन्नेषु प्राचीनग्रन्थेष्ववलोक्यते। सम्प्रति दश प्रातिशाख्यानि वैदिकव्याकरणानीति सुनिश्चितम्। अतः प्रातिशाख्येषु स्मृता आचार्या अप्यवश्यमेव व्याकरण प्रवक्तार आसन्नित्यत्र नास्ति सन्देहावसरः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं पाणिनेः पूर्वं पञ्चाशीति वैयाकरणाः समभूवन्निति पण्डित श्रीयुधिष्ठिर मीमांसकमहोदयैः ''संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास'' इत्यभिधेये (प्रथमभागस्य 63 पृष्ठे) स्वग्रन्थे चर्चितम्।

किन्तु अर्वाचीनाः ग्रन्थकाराः प्रधानतया अष्टौ एव वैयाकरणान् समुल्लिखन्ति। हैमबृहद् वृत्त्यवचूर्णिग्रन्थे तृतीयपृष्ठे ब्राह्मैशानैन्द्र-प्राजापत्य-बार्हस्पत्य-त्वाष्ट्राऽऽपिशल-पाणिनीयानामष्टवैयाकरणनामुल्लेख उपलभ्यते। तथा हि-

ब्राह्ममैशानमैन्द्रञ्च प्राजापत्यम्बृहस्पतिम्।
त्वाष्ट्रमापिशलञ्चेति पाणिनीयमथाष्टकम्।।[21]

बोपदेवेन स्वकीये ''कविकल्पद्रुम'' इत्यभिधेये ग्रन्थरत्ने इन्द्र-चन्द्र-काश-कृत्स्नाऽऽपिशलि- शाकटायन-पाणिन्यमर-जैनेन्द्राणामष्टवैयाकरणानामुल्लेखो विहितः। तथा हि-

इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशलि शाकटायनः।
पाणिन्यमर-जैनेन्द्राः जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः।।[22]

वाल्मीकीयरामायणे नवव्याकरणानामुल्लेखो विहितः। यथा सोऽयं नवव्याकरण अर्थवेत्ता ब्रह्मा भविष्यति ते प्रसादात्।[23] किन्तु तानि व्याकरणानि कानि कानीति नाऽद्यावधि सम्यग् ज्ञायते। ''श्रीतत्त्वनिधि'' इत्यभिधेये वैष्णवग्रन्थे इन्द्र-चन्द्र-काशकृत्स्न-कुमार-शाकटायन-सारस्वताऽऽपिशलि -शाकल्य-पाणिनीनां नव वैयाकरणानां वर्णनं विहितम्। तद्यथा-

ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम्।
सारस्वतञ्चापिशलं शाकल्यम्पाणिनीयकम्।।

भण्डारकरशोधसंस्थान पूना संग्रहे ''गीतासार'' नामाभिधेयस्य ग्रन्थस्य हस्तलेख उपलभ्यते, तत्रापि नव व्याकरणानामुल्लेखो विहितः।

अपरञ्च व्याकरणान्यष्टौ-

प्रथमं प्रोच्यते ब्राह्मं द्वितीयमैन्द्रमुच्यते।
याम्यं प्रोक्तं ततो रौद्रं वायव्यं वारुणं तथा।।
सावित्रञ्च तथा प्रोक्तमष्टमं वैष्णवं तथा।[24]

एतेषु नवविधेषु व्याकरणेषु महेश्वरसमवाप्तप्रसादत्वान्महर्षिपाणिनिमुनिप्रणीतं व्याकरणमेव श्रेष्ठं सारवत्तरमिति। तदुक्तम्-

पाणिनीयम्महाशास्त्रम्पदसाधुत्वलक्षणम्।
सर्वोपकारकं ग्राह्यं कृत्स्नं त्याज्यं न किञ्चन।।

पाणिनीय व्याकरणस्य लोकप्रसिद्धमवलोक्य विभिन्नैः वैयाकरणैः धातुपाठ-गणपाठ-उणादिपाठ-लिङ्गानुशासनानां विधयो यथाक्रमं वर्गीकृताः, परन्तु वैयाकरणानामेताः शाखाः धर्मसापेक्ष्यत्वादपाणिनीयत्वाच्च चिरस्थायित्वं लोकप्रसिद्धञ्चावाप्तुं नाशक्नुवन्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याकरणस्य सम्यगन्वेषणेन ज्ञायते यत् सृष्टेरारभ्य अद्यावधि संस्कृत व्याकरण परम्परा न कोऽपि व्यतिक्रमो दृश्यते। संसारस्य कस्याश्चिदपि भाषाया: व्याकरणं संस्कृतभाषा व्याकरणापेक्षया वैज्ञानिकं नास्ति, तथापि भाषाविज्ञान दृष्ट्या पाणिनीयव्याकरणं संसारस्य सर्वाण्यपि व्याकरणान्यतिशेते।

व्याकरणं नाम यो ह्यर्थविशेषमाश्रित्य स्वरप्रकृतिप्रत्ययादीन् विदधत् पदखण्डादि विशेषज्ञापक: विशेषणसमन्तात् वैदिकाँल्लौकिकांश्च शब्दान् प्रसिद्धान् करोति, तथाभूत: पाणिन्यादिमहर्षिप्रणीतो ग्रन्थराशि:। तथा च नवविधेषु व्याकरणेषु सर्वलौकिक-अलौकिकशब्दव्युत्पादकत्वात् पाणिनीय व्याकरणस्यैव वेदाङ्गत्वम् अभ्युपगम:। अथ चाऽसाधुशब्दवधिकसाधुशब्दकर्मकपृथक्कृतकरणत्वं व्याकरणस्य सामान्यलक्षणमित्यलम्।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. मनु. स्मृ. 2.7
2. मनु. स्मृ. 12.18
3. ऋग्वेद. 4.58.3
4. ऋग्वेद. 1.164.45
5. ऋग्वेद. 10.91,4
6. ऋग्वेद. 1.71.2
7. ऋग्वेद. 8.69.12
8. ऋग्वेद. 1.164.50
9. यजुर्वेद. 19.77
10. ऋग्वेद. पदपाठ. 1.3.10
11. ऋग्वेद. पदपाठ. 1.6.7
12. ऋग्वेद. पदपाठ. 1.3.3
13. वा.रा.कि. 3.29
14. वायु.पु. 2.43
15. गो.ब्रा. पूर्वभाग. 1.24
16. निरुक्तम्. 1.4.1
17. ऋक्तन्त्रे. 1.4
18. पातञ्जलमहाभाष्ये. 1.1.1.
19. तै.सं. 6.4.7
20. निरुक्तम्. 1.6.6
21. हैमबृहद् वृत्त्यवचूर्णिग्रन्थे तृतीयपृष्ठे
22. कविकल्पद्रुम
23. वा.रा.उत्तर. 36.47
24. भविष्यपुराणे ब्राह्मपर्वणि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक वाङ्मय में वाक् शक्ति : एक सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक विश्लेषण

डॉ.राजेश कुमार 'पोलस्त'
संगीत एवं नृत्य विभाग कुरूक्षेत्र,
विश्वविद्यालय कुरूक्षेत्र, हरियाणा

वाक् का अर्थ प्रायः बोलने से लिया जाता हैं समस्त प्राणियों का आपसी व्यवहार वाणी द्वारा ही संभव हैं वाणी के माध्यम से वचन और उक्ति से मिली–जुली भाषा का प्रयोग व्यवहार कहलाता हैं शाब्दिक अर्थ में वाक् शब्द की व्युत्पति ''वच् परिभाषणे''[1] धातु से मानी गई है अर्थात् ''वच्'' धातु कथन करने बोलने अथवा उच्चारण अर्थ में प्रयुक्त होती हैं वाक् शब्द ''वच्'' धातु से ''क्विप्'' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न होता है[2]।

वाक् को आदि शक्ति के रूप में माना जाता हैं वैदिक वाङ्मय में वाक् का आदि शक्ति के रूप में विस्तृत रूप में वर्णन मिलता हैं वेदानुसार सृष्टि की उत्पति ही महाशक्ति की प्रेरणा से हुई। महाशक्ति को वेदों में वाक् देवी भी कहा हैं। संगीत रत्नाकर में वर्णन मिलता है कि वाक् ब्रह्म की शक्ति है, जो ब्रह्म के इतनी पास है जैसे मणि और मणि की प्रभा इसलिए जैसे मणि की प्रभा से खिंच कर उसकी ओर जाने वाले को, मणि की प्राप्ति सहज रूप से हो जाती है उसी प्रकार वाक् अर्थात् नाद अत्यधिक निकटता के कारण, ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती हैं[3]।

वेदानुसार सृष्टि की उत्पत्ति ही महाशक्ति की प्रेरणा से हुई महाशक्ति को वेदों में वाक् देवी भी कहा हैं। वेदों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व ब्रह्म ही था। जिससे पहले भी कुछ न था तथा जिसके पर भी कुछ नहीं हैं। वाक् ब्रह्म की शक्ति हैं। अतः नारी रूप वाक् की प्रेरणा से ही ब्रह्मा द्वारा सृष्टि की उत्पति हुई 'सौन्दर्य लहरी' में वाक् की महिमा का वर्णन कुछ इस प्रकार हैः–

शिवशक्तया युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपिं।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिंचादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति[4]।

वाक् का सामान्य अर्थ वाणी लिया गया है, परन्तु विभिन्न कोषकारों ने विभिन्न अर्थ दिये हैं। शब्दकल्पद्रुमकार ने वाक्य, वाचस्पति ने वाक्य एवं वाक्–इन्द्रिय, संस्कृत हिन्दी कोषकार ने शब्द, वचन, उक्ति, प्रतिज्ञा, विश्वास भाषण[5] , कहावत और लोकोक्ति दिये हैं[6]। वाक् का अर्थ विद्या की अधिष्ठात्री देवी प्रायः सभी कोषकारों ने स्वीकारा हैं[7]।

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरकोषकार ने वाक् शब्द के पर्याय ब्राह्मी, भारती, गी, वाग्, वाणी एवं सरस्वती दिये हैं[8]। निघण्टु की व्याख्या करने वाले यास्क प्रणीत ग्रन्थ "निरुक्त, 1.4.7' में भी वाक् के इन नामों का कथन उपलब्ध होता हैं। वैदिक संस्कृत साहित्य में वाक् शब्द के पर्याय रूप में गिरा, गिर, वाग, वाच् एवं वच् इनके आगे शब्द रूप वाचा, वाचः वाचम्, गीः गिराम् इत्यादि को भी ग्रहण किया गया है, जो अनेक विशेषणों से विभूषित हैं। नाद परा वाक् का पर्याय और ब्रह्म की शक्ति है[9]।

"वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे वाच इत। स सर्वममृतं यच्च मर्त्यमिति श्रुतिः।।"

अर्थात्– वाणी से ही सारा विश्व उत्पन्न हुआ हैं ये समस्त भुवन गिरा से ही जन्म पाए हैं! इस अमर और मर्त्य संसार की जनयिता वाणी ही है. इसी से इस संसार को नाद या शब्द का परिणाम कहा गया हैं। यथा– शब्दस्य परिणामो अयमित्याम्नायविदोविदुः अर्थात आम्नाय (वेद) के ज्ञाता जानते हैं कि यह जगत् शब्द का, नाद का ही परिणाम हैं[10]"। ओंकार की ध्वनि 'प्रणव' भी इसी दिव्य संगीत को कहा गया हैं। श्रीमद्भगवतगीता के अनुसारः– "प्रणवः सर्वेषु"[11] अर्थात् सर्वत्र प्रणव का ही वास हैं महाभारत में भी कुछ भिन्न शब्दों में ओंकार के विषय मे उल्लेख मिलता हैः– "ओंकार सर्ववेदानाम्"[12] अर्थात वेदों में ओंकार का ही वास हैं। ऋक्, साम, शब्द, छन्द, वाक्, प्राण, बिन्दु, केन्द्र और परिधि एक दूसरे के पूरक हैं। समस्त सृष्टि इन्ही के संवाद का मधुर गान हैं। 'सा' और 'अम' के महत्व का वर्णन छान्दोग्य उपनिषद में इस प्रकार कहा गया हैः–"वागेव सां प्राणोऽमः। तत्सामां" [13]

"अहं राष्ट्री संगमनी वसुनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।[14]

अर्थात् मैं सम्पूर्ण जगत् की ईश्वरी हूँ, धनों को प्राप्त कराने वाली हूँ, खोज कराने वाली, ज्ञान से सम्पन्न या ब्रह्म को जानने वाली हूँ, और यजन करने योग्य व्यक्तियों को अपने अन्दर आवेशित करने वाली मुझको देवताओं ने विभिन्न स्थानों में रखा हैं अर्थात् भिन्न देवताओं की जो पूजा की जाती है, वह वस्तुतः मेरी ही पूजा हैं। वैदिक संस्कृत साहित्य में वाक् को देवी रूप देकर इसे ब्रह्म की शक्ति तथा उसकी सहचरी माना गया हैं। ऋग्वेद में कहा गया है कि "वाक् ही रूद्र वसुओं के रूप में संसार में सर्वत्र संचरण करती है तथा समस्त देवों को धारण करती हैं यह ही धनों को देने वाली हैं। यह जिसे चाहती है उसे तेजस्वी, मेधावी एवं प्रज्ञावान् बना देती हैं मनुष्य अपनी सभी क्रियाएँ यथा अन्न–भक्षण, देखना, श्वास–प्रश्वास आदि इसके द्वारा ही करता हैं यह ही ब्रह्म–द्वेषी को मारने के लिए युद्ध करती हैं। वस्तुतः यह ही जगत् की कर्ता हैं।[15] गिरः और शब्द का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे अधिक प्रयोग ऋग्वेद में मिलता हैं। शतपथ ब्राह्मण में वर्णन मिलता है कि वाक् ही के पूर्व–पूर्व चलने वाली जिह्वा के द्वारा तुम्हारा स्पर्श करता हूँ।[16] परन्तु जिह्वा और वाक् का परस्पर गहरा सम्बन्ध हैं जिह्वा एक इन्द्रिय है, जो रस और वाणी का आश्रय हैं इसके माध्यम से ही दोनों की क्रिया पूर्ण होती है, जहाँ रस एक अनुभव है, वहाँ वाणी एक प्रकटीकरण का साधन हैं। अतः रस बुद्धि–इन्द्रिय में वाणी कर्मन्द्रिय परिगणित हुए हैं, किन्तु दोनों परस्पर एक दूसरे पर आश्रित हैं। एक बिना दूसरे की क्रिया अधूरी हैं। इस तथ्य की पुष्टि अथर्ववेद के एक मन्त्र से भी हो जाती है, जहाँ यह वर्णन मिलता है कि – चचंल जिह्वा को दोनों हनुओं (जबडों) के मध्य में रख दिया गया हैं इसी रसना में वाक् (महती) को आश्रय दिया हैं[17] मेरी जिह्वा कल्याण कारक भोजन करने वाली, पूजनीया वेदशास्त्र के बोध से युक्त हों[18] इसके अतिरिक्त भाष्यकार सायण ने इसका अर्थ "स्तुति लक्षणा वाचा" किया हैं प्रश्नोपनिषद् मे रसना, रसना का विषय एवं वाक् और बोलने में आने वाला शब्द– ये सब परमात्मा के आश्रित माने हैं बृहदारण्यकोपनिषद् में वेदों का अयन वाक् को तथा सभी स्वादों का अयन जिह्वा को कहा हैं।[19]

इसी प्रकार तैतिरीयोपनिषद् में इन दोनों का पृथक्–पृथक् उल्लेख करते हुए, वाक् को दोनो हनुओं की सन्धि तथा जिह्वा को सन्धि की उत्त्पति का कारण कहा गया हैं।[20] उपनिषदों तथा यजुर्वेद में अनेक संदर्भ ऐसे भी मिलते हैं, जहाँ सभ्यजनों और प्रजाजनों से यजुर्वेद के कुछ मंत्रो में वाणी, मन, प्राण, आत्मा, चक्षु, श्रोत्र, पशु तथा गणों के तृप्ति की कामना की गई हैं [21] एवं सुरक्षित होने और बुद्वि को प्राप्त होने को ईश्वर की वंदना की गई हैं इनके लिए आहुति देने का भी वर्णन हैं केनोपनिषद् में परब्रह्म का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उस परब्रह्म को न मन, न चक्षु, न वाणी, से प्राप्त किया जा सकता हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् एवं छान्दोग्योपनिषद् की एक आख्यायिका में वाक्–इन्द्रिय को असुरों द्वारा बींधने का उल्लेख हैं। इसी प्रकार का कथन मुण्डकोपनिषद् में भी उपलब्ध होता हैं छान्दोग्योपनिषद् में भी इन्द्रियों के परस्पर संवाद के अन्तर्गत वाक्–इन्द्रिय का स्पष्ट कथन हैं और इसी प्रकार ओर भी अन्य सन्र्दभों में वाक् का वाक्–इन्द्रिय के रूप में प्रयोग का वर्णन मिलता हैं वाक् की सिद्धि के लिए सरस्वती देवी से वंदना की गई हैं,[22] इसके साथ–साथ सरस्वती देवी को विद्या (ज्ञान) की अधिष्ठात्री देवी भी कहा जाता हैं वैसे तो वाक् एवं विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती है, परन्तु वाक् एवं विद्या में अन्तर है वाक् विद्या का कथन करती है, वाक् के बिना विद्या का कोई महत्व नहीं हैं छान्दोग्योपनिषद् के एक संदर्भ से इस बात की पुष्टि हो जाती है, जहाँ पर वाक् को अपरा विद्या से बढ़कर कहा हैं।[23] ऋग्वेदादि, पुराण, इतिहास, व्याकरण, निधिशास्त्र,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणित, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, भूततन्त्र, ज्योतिष, धनुर्वेद, सर्पदेवजन–विद्या, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, तेज, देव, मनुष्य, पशु–पक्षी, तृण, वनस्पति, कीट–पतंगादि, धर्म–अधर्म, सत्य–मिथ्या, शुभ–अशुभ, प्रिय–अप्रिय सभी की अभिव्यक्ति वाणी द्वारा ही होती हैं यदि वाणी न होती तो सत्य–असत्य, धर्म–अधर्म, प्रिय–अप्रिय का ज्ञान न होता[24] क्योंकि सभी नाम वाक् से ही उत्पन्न होता हैं।[25] परन्तु इसके अतिरिक्त मुण्डकोपनिषद् में पराविद्या तथा अपरा विद्या का उल्लेख करते हुए वाक् का प्रयोग अपरा विद्या के लिए भी किया गया हैं वहाँ पर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, कल्प, शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एंव ज्योतिष को अपरा विद्या और परब्रह्म का ज्ञान करवाने वाली विद्या को परा विद्या के नाम से अभिहित किया गया हैं। अतः इस प्रकार वैदिक साहित्य में कहीं पर वाक् को अपरा विद्या से अधिक महत्व तथा कहीं पर इसे अपरा विद्या ही कह कर इनमें भेद नहीं किया हैं।[26]

छान्दोग्योपनिषद् में उल्लिखित है कि सप्तविधि सामोपासना करने वाले को वाणी अपना सार दे देती हैं। जो व्यक्ति साम सम्बन्धी स्तोभों की उपासना करता है, उस पर वाणी अपना स्वरूप स्वतः ही प्रकट कर देती हैं। सम्भवतः इसलिए वाक् को "वागेव साम। वाचहि साम गायति"[27] अर्थात् वाणी ही साम है, वाणी ही साम का गान करती है इत्यादि पदों से विभूषित किया गया हैं। यज्ञ की दृष्टि से वाक् का महत्व दर्शाते हुए, वाणी को यज्ञ की संज्ञा दी गयी हैं यज्ञ में अग्नि से पूर्व वाक् को आहुति दी जाती हैं। अन्य सन्दर्भों में इसकी उत्कृष्टता इस प्रकार दर्शायी है– जहाँ वाक् है, वहाँ यज्ञ सम्पन्न है, जहाँ मन है वहाँ यज्ञ अधूरा ही रहता हैं। वाक् शब्द वाणी की अधिष्ठात्री देवी का वाचक हैं। जिसका ऋग्वेद में सृष्टि की सृजिका, पालि और सर्वशक्तिमती देवता के रूप में स्तवन किया गया हैं। "योग–साधना में 'नाद' के दो रूप माने गये हैं– एक उपायस्वरूप और दूसरा उपेयस्वरूप। उपायस्वरूप 'नाद' की अनुभूति साधकावस्था में होती है और उपेयस्वरूप 'नाद' (ॐकार) की अनुभूति सिद्धि लाभ को अवसर पर एवं तदन्तर होती हैं" "यन्नमस्य चिदाख्यातं यत्सिद्धीनां च कारणं। येन विज्ञानमात्रेण जन्मबन्धात्प्रमुच्यते। अक्षरं परमो नादः शब्दब्रह्मेति-कथ्यते। मूलाधारगता शक्तिः स्वाधारा बिन्दुरूपिणी।। तस्यामुत्पद्यते नादः सूक्ष्मबीजादिवाङ्कुरः। तां पश्यन्तीं विदुर्विश्वं यया पश्यन्ति योगिनः।। हृदये वयज्यते घोषो गर्जत्पर्जन्यसन्निभः। तस्थिता सुरेशान मध यमेत्यभिधीयते।। प्राणेन च स्वराख्येन प्रथिता वैखरी पुनः।

शाखापल्लवरूपेणताल्वादिस्थानघट्टनात्।।

अकारादिक्षकारान्तान्यक्षराणि समीरयेत। अक्षरेभ्यः पदानि स्युः पदेभ्यो वाक्यसम्भवः।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वे वाक्यात्मका मन्त्रा वेदशास्त्राणि कृत्स्त्रशः। पुराणानि च काव्यानि भाषाश्च विविधा अपि।। सप्तस्वराश्च गाथाश्च सर्वे नादसमुदभवाः। एषा सरस्वती देवी सर्वभूतगुहाश्रया।। वायुना वहनियुक्तेनप्रेर्यमाणा शनैः शनैः द्वित्रिवर्णपदैर्वाक्यैरित्येवं वर्तते सदां य इमां वैखरीं शक्तिं योगी स्वात्मनि पश्यति। स वाक्सिद्धिमवापनोतिसरस्वत्याः प्रसादतः।।"[29]

"जिसका अनुभव पाकर योगी जिसे चित्त कहकर वर्णन कहते है, जो सर्व सिद्धियों का कारण है, जिसे जानने मात्र से ही जन्म–बन्धन से मुक्ति मिल जाती है, वह अक्षर या परम नाद 'शब्दब्रह्म' कहलाता हैं (संभवतः यही परा वाक् है या उपेयस्वरूप नाद हैं) मूलाधार में जो शक्ति स्थित है, जो अपने पर ही आधारित है और जो बिन्दुरूपीणि है, उसमें से 'नाद' की उसी प्रकार उत्पत्ति होती है, जैसे बीज में से अङ्कुर की। 'नाद' से मेघ–गर्जन सदृश ध्वनि सुनाई देती है, तब वह 'मध्यमा वाक् कहलाती हैं (हमारी समझ में यही मध्यमा वाक् उपेय–स्वरूप 'नाद' और उपायस्वरूप 'नाद' का सन्धिस्थान है) 'वैखरी' की अभिव्यक्ति स्वर नामक प्राण से होती हैं ताल्वादि स्थानों में प्राणवायु का संघटन होने से अकार से क्षकार तक के वर्ण उद्भूत होते है। इन वर्णों या अक्षरों से पद और पदों से वाक्य बनते हैं। हम यह जानते हैं कि मन्त्र, वेद, शास्त्र, पुराण, काव्य इत्यादि सब कुछ वाक्यात्मक ही हैं। सप्त स्वर, गाथा इत्यादि सभी नाद से ही संभूत हैं सब प्राणियों की गुहा में स्थित सरस्वती देवी प्राणाग्नि से प्रेरित होकर वर्ण, पद और वाक्यों को प्रकट करती है। जो योगी इस वैखरी को अपनी आत्मा में देख लेता है, वह सरस्वती के प्रसाद से वाक्सिद्धि को पा लेता है।

संहितोपनिषद् ब्राह्मण में भी वाक् के तीन प्रकारों का लाक्षणिक प्रयोग मिलता हैं। लाक्षणिक प्रयोग से अभिप्राय इन ग्रन्थों में (वाक् का सम्बन्ध) साम–गान को उग्र, मन्द्र, और उपांशु स्वर में गाने का कथन हैं। वैदिक साहित्य में कतिपय ऐसे संदर्भ भी उपलब्ध होते हैं, जहाँ वाक् के दो प्रकारों– दैवी[30] एवं मानुषी, दैवी एवं असुरी[31] का उल्लेख है, परन्तु कहीं भी इन सन्दर्भों का स्पष्टीकरण नहीं किया गया हैं वाक् के सत्य एवं असत्य– दो पक्षों में से सत्य को ही महत्व दिया गया हैं जहाँ तैतिरीयोपनिषद् में सत्यं वद[32] का ही उपदेश दिया गया हैं[33] वहाँ मुण्डकोपनिषद् में यह ही उल्लिखित है कि सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं[34] शतपथ ब्राह्मण में सत्य की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा है– सत्य कथन करना यज्ञीय अग्नि में घृत डालने के समान है तथा असत्य बोलना यज्ञीय अग्नि में जल डालना हैं। अनृतभाषी का तेज धीरे–धीरे क्षीण होने लग जाता है और अन्त में वह पापी बन जाता हैं।[35] इसी ब्राह्मण के एक अन्य संदर्भ में कहा है– देवों के पास सत्य था असुरो के पास असत्य। असुरों की शीघ्र उन्नति हुई परन्तु अन्त में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय देवों की तथा पराजय असुरों की हुई[36] देवों के पास जो वाक् थी वह उदगीथ–गायन करती थी। असुरों ने उस वाणी पर आक्रमण करके उसे बींध दिया अर्थात् पापयुक्त कर दिया। तब से वाक् अनुचित कथन भी करती हैं[37] इसी प्रकार अनेक सन्दर्भों में सत्य का महत्व प्रदर्शित किया गया है। सत्य–अनृत के समान हि वाक् के शिवा तथा अशिवा ये दो रूप भी साहित्य में दृष्टिगोचर होते है अथर्ववेद में कहा गया है कि वाक् के इन दो रूपों शिवा और अशिवा को सभी प्रसन्न मन से धारण करते हैं। वाणी के शेष तीन रूप गुहा में निहित रहते हैं। केवल एक वाक् से ही लोक व्यवहार करते हैं।[38]

इस प्रकार वैदिक साहित्य में वाक् के चार पदों तथा उसके विविध रूपों का वर्णन उपलब्ध होता हैं। दूसरी और 9वीं शती के आचार्य भर्तृहरि ने अपने "वाक्यप्रदीप" नामक ग्रन्थ में "चत्वारि वाक् परिमिता पदानि" की नई व्याख्या प्रस्तुत करते हुए वाक् के चार पद अथवा प्रकार– वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती, और परा माने हैं।[39] उन्होने वैदिक साहित्य और आध्यात्मिक स्तर पर इन चार वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा के स्थूल से सूक्ष्म दोनों रूपों का वर्णन किया हैं। परिणामस्वरूप इनका शरीर में स्थान कहाँ है ? सभी का विवेचन किया हैं। विषय से सम्बद्ध होने के कारण इनका स्पष्टीकरण करना अनिवार्य प्रतीत होता हैः–

1. परा वाक्ः–

नित्य एवं सूक्ष्म होने के कारण इसके स्वरूप का निरूपण नहीं हो सकता हैं। यह वाक् नादात्मक हैं। यह शरीर में मूलाधार चक्र पर स्थित हैं।[40] इसके नित्य होने के कारण इसमें पुरुष का प्रयत्न अपेक्षित नहीं हैं। इसलिए परा वाक् को कई जगह अपौरुषेय भी कहा गया हैं। परा वाक् में ज्ञाता, ज्ञेय, वाक् और वक्ता का भेद नहीं रहता हैं। इनमें ऐक्य हो जाता हैं इस अवस्था में इसमें अभेद की स्थिति हो जाती है तथा पुनः इस अवस्था में वापिस आना नहीं होता हैं। सम्भवतः इसलिए इसे सृष्टि से पूर्व परमात्मा के ज्ञान मे। निहित समस्त अर्थात् तीन वाणियों का उद्गम स्थल एवं कारणभूत, सभी जड़–चेतन तत्वो का नामकरण करने वाली, पापरहित, प्रेरणा–दायिनी तथा समस्त भूतों में अन्तर्निहित है, ऐसा कहा हैं इस वाक् का सम्बन्ध नाद से है, जो मोक्ष दिलाने में सहायक है और जो सृष्टि तथा संगीत का आधार हैं।

2. पश्यन्ती वाक्ः–

परा वाक् जब पश्यन्ती वाक् में परिणित हो जाती है तब इसकी संज्ञा ज्ञान हो जाती हैं। वाक् के इस प्रकार में व्यक्ति पश्यति अर्थात् देखता हैं इसमे द्रष्टा और दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भेद हो जाता है इस स्थिति में स्व तथा अन्य में भेद अर्थात् द्वैतभाव रहता है, व्यक्ति द्रष्टा–मात्र होकर सब कुछ देखता हैं। परन्तु उसमें स्वतः सम्मिलित नहीं होता हैं। इस स्थिति में ज्ञान (वर्णादि) असपष्ट होते हैं। उनका विभाग नहीं होता है वर्ण–क्रम शून्य होता हैं। इसे वाक् की सूक्ष्मावस्था के अन्तर्गत रखा गया हैं।[41] इसमें दृश्य के समाप्त होते ही व्यक्ति पुनः अपनी पूर्वावस्था मे आ जाता हैं। वाक् के इस रूप का स्थान शरीर में नाभि स्थल कहा गया हैं इस वाक् का सम्बन्ध वाक की उस स्थिति से है, जब वाक् या ओंकार की उपासना करते–करते योगी परमात्मा के दर्शन कर लेता हैं।

3. मध्यमा वाक्:–

तृतीय प्रकार की वाक् मध्यमा में शब्द एवं अर्थ का विभाग हो जाता हैं। इसमे वर्णादि का क्रमानुसार स्वररहित उच्चारण होता है अर्थात् अव्यक्त रूप में होता है, यह वाक् बुद्धि में स्थित होती हैं। यह क्रम शून्य होती हुई भी कम को ग्रहण करती हुई सी प्रतीत होती है, ये स्वर न होने के कारण श्रवण इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं होती हैं। इस वाक् को स्थूल सूक्ष्म वाक् भी कहा जाता हैं स्थूल इसलिए क्योंकि इसमें वैखरी वाक् के समान शब्दो का उच्चारण होता है अर्थात् वर्णादि स्पष्ट होते है, सूक्ष्म इसलिए क्योकि इसमे वर्णों का उच्चारण प्रयत्न पूर्वक अर्थात् तालु आदि स्थानों से ही किया जाता हैं वर्ण केवल बुद्धि अथवा हदय में ही रहते हैं। इसी कारण इसे कमशः व्यक्त–अव्यक्त भी कहा जाता हैं व्यक्त अव्यक्त की अवस्था के कारण ही इसे मध्यमा कहा जाता हैं। चिन्तन इस वाक् के अन्तर्गत ही आता है, इसे स्वागत–भाषण भी कहा जा सकता हैं।[42] वह अक्षर या परम नाद 'शब्दब्रह्म' कहलाता हैं मूलाधार में जो शक्ति स्थित है, जो अपने पर ही आधारित है और जो बिन्दुरूपिणि है, 'नाद' से मेघ–गर्जन सदृश ध्वनि सुनाई देती है, तब वह 'मध्यमा वाक् कहलाती हैं इस वाक का प्रयोग आम बोलचाल के रूप में प्रयोग होता हैं।

4. वैखरी वाक्:–

वैखरी से अभिप्राय जो वाक् विरवरी हुई हो, विस्तृत हो, फैली हुई हो अर्थात् कण्ठ, तालु, आदि स्थानों से निकल कर जो श्रवण की जाती हैं। इसमें वर्णादि का स्पष्ट रूप से उच्चारण होता हैं। मध्यमा वाक् और वैखरी में स्वर वर्णादि श्रवण किए जाते हैं। इसे ही वाक् का तुरीय अर्थात चतुरांश कहा जाता हैं। 'वैखरी' की अभिव्यक्ति स्वर नामक प्राण से होती हैं। ताल्वादि स्थानों में प्राणवायु का संघटन होने से अकार से क्षकार तक के वर्ण उद्भूत होते हैं। इन वर्णों या अक्षरों से पद और पदों से वाक्य बनते हैं।

हम यह जानते हैं कि मन्त्र, वेद, शास्त्र, पुराण, काव्य इत्यादि सब कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाक्यात्मक ही हैं। संगीत विद्या में सप्त स्वर, गाथा इत्यादि सभी नाद से ही उत्पन्न हुए हैं। सब प्राणियों की गुहा में विराजमान देवी सरस्वती प्राणाग्नि सें प्रेरित होकर वर्ण, पद और वाक्यों को प्रकट करती हैं। जो योगी इस वैखरी को अपनी आत्मा में देख लेता है, वह सरस्वती के प्रसाद से वाक्सिद्धि को पा लेता हैं''[44] इसके दो विभाग किए गए हैं– एक शिलिष्ट अर्थात व्याकरण सम्मत शिष्ट–भाषा तथा अन्य भ्रष्टसंस्कार अर्थात् वाद्य–यन्त्रों का शब्द ध्वनि इत्यादि।

इस प्रकार वैदिक साहित्य का सर्वेक्षण करने पर जहाँ वाक् शब्द की व्युत्पति, इसके लिए प्रयुक्त पर्याय तथा इसके विविध अर्थ यथा– स्तुति, आह्वान, विद्युत् एवं मेघ गर्जन, सोम को दशा पवित्र में डालते स्वर, अश्व, वृषभ अर्थात मण्डूक के स्वर उपलब्ध होता हैं वहाँ इसके अपौरूषेय एवं पौरूषेय दोनों रूपो का वर्णन भी हैं अपौरूषेय रूप में जहाँ वाक् को ''वाग्वै सरस्वती'' अर्थात वाणी ही सरस्वती है, वहाँ इसे ब्रह्मा की शक्ति व ब्रह्म का रेतस् भी माना हैं।

दूसरी और इसे ''पुरुषस्य वाग्रसो'' अर्थात् पुरुष का रस वाक् है, कह करके पौरूषेय रूप का उल्लेख कर दिया हैं। आत्मानुभूति के आधार पर वैदिक ऋषियों द्वारा वाक् का वैज्ञानिक विवेचन करते हुए इसकी उत्पति, शरीर में इसकी स्थिति, उच्चारण करते समय प्राणों की स्थिति इत्यादि का अत्यन्त सूक्ष्म विधि से विवेचन किया गया हैं ऋग्वेद एवं यजुर्वेद में तो यहाँ तक कहा गया है कि वाक् के रहने का सुरक्षित स्थान विद्वान् हैं। क्योंकि विद्वान वाक् का उचित प्रयोग करता है तथा अपनी बुद्धि से वाणी को परिष्कृत करता हैं। विद्वान् जिस वाणी को परिष्कृत करता है और मनुष्य जिसे बोलता हैं वैदिक ऋषियों ने उसे 'तुरीय' से अभिहित किया हैं 'बृहदारण्यकोपनिषद' में वाणी के लिए प्रयुक्त भाण' शब्द व्याकरण की दृष्टि से 'भाण', 'वाक्' और 'भांषा शब्द के अर्थ में कोई अन्तर नहीं हैं। भाषा शास्त्रियों ने भाषा की परिभाषा देते हुए समाज के परस्पर विचार–विनिमय के लिए मानव के उच्चारणावयवों से निःसृत भावों को भाषा रूप दिया हैं। भाषा वैज्ञानिक केवल अर्थ युक्त वाणी को ही भाषा स्वीकार करते हैं।[45]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदर्भ ग्रंथ–

1. अमरकोष पृ.62
2. वाक् (च) ह स्त्री (उच्यतेऽसौ अनयावेति वच् +क्विप् वचि प्रछीति क्विप् दीर्घासम्प्रसारणं च) वही.,पृ.62,
3. व्याख्या एवं अनुवादकर्त्री, सुभद्रा चौधरी, शार्गदेवकृत संगीतरत्नाकार, प्रथम भाग, पृ. 57
4. श्रीमच्छंक्रभगवत्पादविरचिता, सौन्दर्य लहरी पृ.1, श्लो.1
5. संस्कृत हिन्दी कोष, पृ.912,
6. डॉ. उषा किरणः वैदिक साहित्य में संवादः सैद्वान्तिक एवं प्रयोगात्मक, विश्लेषण, पृ.100
7. अमरकोष पृ.62
8. ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाण्वाणी सरस्वती ब्राह्मीत्यादि– अमरकोष पृ.62
9. व्याख्या और अनुवादकर्त्री सुभद्रा चौधरी, शार्गदेवकृत संगीतरत्नाकार पृ.57
10. ओंकारनाथ ठाकुर, प्रणव भारती पृ.40
11. श्रीमद्भगवत्गीता; 7.8
12. आचार्य वेदव्यास, महाभारत, अवमेघ पर्व, 44.6
13. ठाकुर जयदेव सिंह, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ.37
14. ऋग्वेद, 10, 125, 1–8
15. ऋग्वेद, 10.125.1–8
16. शतपथ ब्राह्मण, चौथा काण्ड, तेरहवां सूक्त, सातवां श्लोक।
17. जिह्वा में भद्रं वाङ्महोमनो मन्युः स्वराड् भामः। मोदाः प्रमोदाऽअङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः।। यजु., 20.6
18. यजु., 20.6
19. सर्वेषां वेदानां वागे कायनं, बृह. उप., 4.5.12
20. तैति. उप., 1.3, डॉ. उषा किरणः वैदिक साहित्य में संवादः सैद्वान्तिक एवं प्रयोगात्मक विश्लेषण, पृ.104
21. यजु., 6.31
22. सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजां।। अथर्व. 5.10.8
23. वाग्वाव नाम्सो भूयसा।। छा. उप., 7.2.1
24. छा. उप., 7.2.1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

25. बृह. उप., प्रथम अध्याय, प्रथम ब्राह्मण, श्लो.1
26. डॉ. उषा किरणः वैदिक साहित्य में संवादः सैद्वान्तिक एवं प्रयोगात्मक विश्लेषण पृ.106
27. आर्षेय ब्रा., 3.6.9, 3.7.3, साम ब्रा., 1.1.12
28. ओंकारनाथ ठाकुर, प्रणव भारती पृ.7
29. ओंकारनाथ ठाकुर, प्रणव भारती पृ.9,10
30. शत. ब्रा., ङ्कष्ट काण्ड, तृतीय अध्याय, प्रथम ब्राह्मण, श्लो.34, पृ.523
31. ऋग्वेद, 6.16.16
32. तैति. उप., 1.9
33. डॉ. उषा किरणः वैदिक साहित्य में संवादः सैद्वान्तिक एवं प्रयोगात्मक विश्लेषण पृ. 114
34. सत्यमेव जयते नानृतं –मुण्ड. उप., 3.1.6
35. शत. ब्रा., द्वितीय काण्ड, द्वितीय अध्याय, द्वितीय ब्राह्मण, श्लो.19, पृ.147
36. शत. ब्रा., नवम् काण्ड, पंचम अध्याय, प्रथम ब्राह्मण, श्लो.13–17, पृ.741–742
37. छा. उप., 1.2.3
38. अथर्ववेद, 7.4.43
39. वैखरी मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चैददभुतम्।
अनेकतीर्थ भेदायास्त्रययावाचः परं पदम्। –भर्तृहरिः वाक्य प्रदीप, ब्रह्मकाण्ड, कारिका पृ. 142
40. भर्तृहरिः वाक्य प्रदीप, ब्रह्मकाण्ड, पृ.211
41. भर्तृहरिः वाक्य प्रदीप, ब्रह्मकाण्ड, पृ.211
42. डॉ. उषा किरणः वैदिक साहित्य में संवादः सैद्वान्तिक एवं प्रयोगात्मक विश्लेषण पृ.117
43. ओंकार नाथ ठाकुर, प्रणव भारती, पृ.10
44. वही., पृ.10
45. डॉ. उषा किरणः वैदिक साहित्य में संवादः सैद्वान्तिक एवं प्रयोगात्मक विश्लेषण पृ.118

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत साहित्ये अहिंसा

डॉ सुनीता शर्मा
डॉ० भीमराव अम्बेडकर महाविद्यालय
देहली

समृद्धतमे सुविशाले संस्कृत वाङ्मये वैदिक साहित्यानन्तरं यथा रामायण, महाभारतादीनां महत्त्वं सर्वविदितं वर्त्तते, तथैव भारतीय दर्शन साहित्यमपि अतीव विशालं, सूक्ष्मचिन्तनयुक्तं, लोककल्याणकरं, जीवनमार्गदर्शकञ्च विद्यते। गौतम, कणाद, कपिल, पतञ्जलि प्रभृतिभिः ऋषिभिः प्रणीतानि दर्शनग्रन्थानि अधीत्य मानवः सर्वाणि दुःखानि अपाकृत्य विशुद्धं ब्रह्मानन्दम् अधिगच्छति। एषु षड्दर्शनेषु पतञ्जलि विरचितस्य योग दर्शनस्य स्थानं सर्वोत्कृष्टं वर्त्तते। अस्मिन् योग दर्शने योगस्य अष्टाङ्गानां प्रतिपादनं महर्षिणा कृतमस्ति। एतानि योगाङ्गानि सन्ति--यम्, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, समाधयोऽष्टावङ्गनि इति। एतेषु अष्टाङ्गेषु सर्वप्रथमं यमाः परिगण्यन्ते। ते च पञ्च यमाः सन्ति-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहाः। योग मार्गस्य, साधनायाः, ब्रह्मानन्दस्य वा प्रथमं सोपानमस्ति अहिंसा। भारतदेशस्य निखिलमपि साहित्यं अहिंसा गौरवेण परिपूर्णमस्ति। आ सृष्टिकालाद् वेदेषु, ब्राह्मण्यग्रन्थेषु, उपनिषत्सु, रामायणे, महाभारते, श्रीमद्भगवद्गीतायां, अष्टादश पुराणेषु च यत्र-तत्र-सर्वत्र अहिंसायाः महत्त्वं प्राचुर्येण वर्णितमस्ति। 'अहिंसा परमो धर्मः' इत्यस्ति भारतीयानां जीवन--दर्शनम्। साधूक्तं केनापि मनीषिणा-

हिंसा लोकेन विद्विष्टा, हिंसा धर्मक्षयावहा।
अहिंसा परमा शक्तिः अहिंसा परमं तपः।। (कपिलस्य)

प्राणिनां शारीरं मानसं वा परिपीडनम् हिंसा कथ्यते। त्रिविधा हि खलु हिंसा-मनसा, वाचा, कर्मणा वा। न प्राणिवध एव हिंसा, अपितु मनसा परापकृतिचिन्तनं, वाचा कटुवाक्य प्रयोगोऽपि हिंसैव परिगण्यते। सर्वविधा हिंसा परित्याग एवहिंसेति। वयं जानीमः मानवजीवनेन सहैव देवी आसुरी वृत्योः संघर्षः सर्गारम्भाद् एवं प्रवर्त्तमानोऽस्ति। जीवन-संग्रामे यदा आसुरी वृत्तयो विजयन्ते तदा क्लेश सागरे निमग्नाः सन्तः कोटिशो जनाः काम-क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष अहंकारादिभिः अरिभिः पीड्यन्ते। एभिः अरिभिः पीड्यमानाः जनाः यदा अन्यान् जनान् पीडयितुं समुद्यताः भवन्ति, सा वृत्तिरेव हिंसा पद वाच्या। यदा च साधकेणु आसुरी वृत्तयः पराजिताः भवन्ति दैवी वृत्तयश्च विजयन्ते, तदा देववृत्तीनां साम्राज्ये सात्विकतायाः, शान्तेः, श्रद्धायाः प्रेम्णः, उत्साहस्य च मन्दाकिनी प्रवहति। आसां दैवी--वृत्तीनां जननी संपेषिका, च 'अहिंसा' नाम वृत्तिरभिधीयते।

भगवती श्रुतिः निर्दिशति- **मा स्तेधन्तं सोमिनः।** ऋग् 7।32।9

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो हि मानवः हिंसावृत्तिं धारयति, न स कदापि मोक्षधनमधिगच्छति-**न स्तेधन्तं रयिर्नशत्**- साम० 868

वैदिकानां ऋषीणां सन्देशोऽयं वरीवर्ति-**मा हिंसीः पुरुषं जगत्** यजु० 16।3 वेदेषु सर्वत्र हिंसायाः प्रतिषेधो वर्त्तते- **'विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्'**-ऋग्० 4।1।4

अर्थात् हे प्रभो! सर्वाणि द्वेषयुक्तानि कर्माणि अस्मत् जीवनात् अपाकुरु।

वेदमार्गानुगामी ईश्वरोपासकः प्रतिदिनं प्रातः सायं परमेश्वरं प्रार्थयते-

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि।। ऋग्० 5।51।15

यथा रवि निशाकरौ प्रतिदिनं निर्धारिते समये जगत् कल्याणाय उदयास्तचलौ संप्राप्नुतः तथैव अस्माभिः सर्वैरपि हिंसांपरित्यज्य मिलित्वा सन्मार्गे गतिर्विधेया।

वैदिक वाङ्मये यज्ञस्य कृते अध्वर शब्दः प्रयुज्यते। ध्वृधातोः अभिप्रायः, हिंसा, यत्र हिंसायाः प्रतिषेधः स एव अध्वरः। अनेन सिद्ध्यति-यद् यज्ञादिषु कुत्रचिदपि हिंसा न कर्त्तव्या। एकस्मिन् मन्त्रे गौ माता अघ्न्या पदेन अभिनन्द्यते। या खलु हन्तुमयोग्या सा गौमाता कस्य न वन्दनीया? हिंसा विरहिताः जनाः निखिलमपि विश्वं मित्रदृष्ट्या विलोकयन्ति। यथोक्तं वेदमन्त्रे-

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।

ईदृशानां श्रेष्ठ जनानां विषये कथ्यते-

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

अहिंसामहाव्रतेन शत्रवोऽपि मित्रतामधिगच्छन्ति। अहिंसया हिंसकाः प्राणिनोऽपि हिंसां परित्यजन्ति। अहिंसा व्रत परिपालनेन बौद्धधर्म प्रवर्त्तकः भगवान् गौतमबुद्धः सम्पूर्ण विश्वे सर्वोच्चं स्थानं प्राप्तवान्। अद्यापि जापान, चीन, इण्डोनेसियादि देशानां कोटिशो जनाः प्रातरुत्थाय स्मरन्ति प्रणमन्ति च तं महानायकं गौतम बुद्धम्। जैनधर्म संस्थापकः भगवान् महावीरः विश्वस्थान् सर्वान् जनान् अहिंसामेव उपदिष्टवान्। भारतीय स्वातन्त्र्यसमर सेनापतिः राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी अहिंसा बलनैव भारत देशं परातन्त्र्यबन्धनान् मुक्तमकार्षीत्। आचार्य विनोबा भावे अहिंसयैव अमरो बभूव। महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी विवेकानन्दादयः यतिवराः अहिंसयैव विश्वकल्याणमकार्षुः। मानवधर्म प्रतिपादकः मनुः चतुर्णां वर्णाना कृते धर्मलक्षणे अहिंसा मेव प्रामुख्येन प्रतिपादितवान्-

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः।। मनु० 10-63

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवद्गीतायामपि भगवता श्रीकृष्णेन दैवीसम्पद् वर्णने प्रथमत्वेन अहिंसैव उद्घोषिता-

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्ति रपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुपत्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।। गीता 16-2

भगवता मनुना अहिंसाया उपयोगित्वं प्रतिपादयता निगद्यते यद् अहिंसयैव मानवैः सर्वमपि कार्यं साधनीयम्। मधुरया वाचा यथा कार्यसिद्धिः संभाव्यते, न तथा प्रकारान्तरेण। एव स्वार्थ-परार्थ साधनेन सममेव धर्मपरिपालनमपि सिध्यति-

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता।। मनु० 2-159

महर्षिणा पतञ्जलिना योगदर्शने निगद्यते- 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ सर्वप्राणि वैरत्यागः' (योग० 2-35) यत्र अहिंसायाः प्रतिष्ठा तत्र न केवलं मानवेषु अपितु तिर्यग्योनिष्वपि अहिंसा-वृत्तित्वम् अवलोक्यते। अतएव पुराकाले महर्षीणाम् आश्रमेषु हिंस्रेषु सिंहादिष्वपि हिंसावृत्ति-परित्यागो दृश्यते स्म।

अहिंसाया गौरवम् अवलोक्यैव मनुना प्रतिपाद्यते यत् स्वसुख साधनाय न प्राणिवधम् आचरेत्। स नेह लोके न च अन्ये लोके सुखम् अश्नुते।

यो ऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते।। मनु० 5-45

अहिंसया मानव जीवने-सत्य, दया, करुणा, परोपकारादि विविधानांगुणानामुदयो जायते। अहिंसयैव मानवस्य, परिवारस्य, समाजस्य, राष्ट्रस्य, विश्वस्य च सर्वांगिणा उन्नतिर्जायते। हिंसया शत्रुता वर्धते, मित्रता अपक्षीयते, अहिंसया तु सर्वत्र प्रेम्णः, मित्रतायाश्च साम्राज्यं स्थापितं भवति। अहिंसाव्रतपरिपालकानां धवला कीर्तिः सर्वासु दिक्षु प्रसरति। आतंकवादस्योन्मूलनार्थं, अशान्तेः विनाशाय, धर्मसंस्थापनार्थाय च अहिंसैव सर्वोत्तमं साधनम्। अतोऽस्माभिः सर्वैरपि 'अहिंसा परमो धर्मः' इति मनसि निधाय अहिंसायाः साम्राज्यं संस्थापनीयम्। नान्यः पन्था विद्यते ऽयनाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी विवेकानन्द का 'आधुनिक एवं वैज्ञानिक चिंतन'

डॉ0 ममता ध्यानी, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड
Email :- dhyanimamta5@gmail.com

'वैज्ञानिक मानसिकता' यह शब्द हमें पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने दिया है, ऐसा हमें प्रायः ही सुनने को मिलता है परन्तु इस शब्द के पीछे जो विचार है, वह वस्तुतः काफी पहले का हैं उसके लिए यदि किसी को साधुवाद देना हो, तो वह स्वामी विवेकानन्द को ही देना होगा, क्योंकि उन्होंने सर्वप्रथम सबको बताया कि विज्ञान को परे रखकर मनुष्य कोई विचार ही नहीं कर सकता और विज्ञान दर्शनशास्त्र का ही अभिन्न अंग हैं[1]

स्वामीजी के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को हम निम्नलिखित उद्धरणों द्वारा समझ सकते हैं–

"आज हमारे राष्ट्र को जरूरत है, कार्य में क्षिप्रता की, ऐसी प्रतिभा की जो वैज्ञानिक आविष्कार कर सकें इसलिए मेरी इच्छा है कि 'क' इलेक्ट्रीशीयन बनें भले ही वह उसमें सफल न हो सके, पर मुझे इसी बात पर प्रसन्नता होगी कि उसने बड़ा बनने का और अपने देश के लिए उपयोगी सिद्ध होने का प्रयत्न कियां"[2]

" मैं तो ऐसा सोचता हूँ कि आधुनिक विज्ञान से अपरिचित एक नीम– हकीम के हाथों चंगा होने की आशा रखने के बदले किसी वैज्ञानिक प्रशिक्षण –प्राप्त चिकित्सक के हाथों मर जाना अधिक अच्छा हैं"[3]

सर जगदीशचन्द्र बसु के प्रति स्वामीजी के मुखनिर्गत उद्‌गार भी यहां उल्लेखनीय हैं। सन् 1900 ई0 मे पेरिस– प्रदर्शनी के दौरान हुए वैज्ञानिकों के सम्मेलन में आमंत्रित होकर उस बसु महाशय को देखकर स्वामी जी ने लिखा था – "और मेरी जन्मभूमि– इस जर्मन, फ्रांसीसी, अँगरेज, इटली आदि बुधमण्डली मण्डित राजधानी में तुम कहाँ हो बंगभूमि? कौन तुम्हारा नाम लेता है? कौन तुम्हारे अस्तित्व की घोषणा करता है? उन अनेक गौरांग प्रतिभा मण्डली के भीतर से बंगभूमि–हमारी मातृभूमि के एक यशस्वी वीर युवा ने अपने नाम की घोषणा की– वह वीर संसार प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ0 जगदीश चन्द्र बसु हैं अकेले इस बंगाली युवा वैज्ञानिक ने आज विद्युत् वेग से पाश्चात्य मण्डली को अपनी प्रतिभा से मुग्ध कर दिया– वह विद्युत् संचार जिससे उन्होंने मातृभूमि के मृतप्राय शरीर में नवजीवन का तरंग–संचार कर दियां सम्पूर्ण वैज्ञानिक मण्डली के शीर्ष स्थानीय है आज जगदीष बसु भारतवासी, बंगवासीं धन्य है वीर!"[4]

स्वामी जी के वैज्ञानिक चिंतन की सबसे बड़ी विशेषता उनका धर्म और विज्ञान का अद्‌भुत समन्वय हैं वे कहते हैं–" विज्ञान का अभिप्राय है– कि किसी वस्तु की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्या स्वयं उसकी प्रकृति में निहित है– और सृष्टि में घटित होने वाली घटनाओं की व्याख्या किसी बाह्य सत्ता या शक्तियों पर आश्रित नहीं है। रसायनशास्त्री को अपने तथ्य निरूपण में किसी दैत्य, भूत, प्रेत आदि की आवश्यकता नहीं है। भौतिक शास्त्री या अन्य वैज्ञानिक अपने तत्त्व– प्रतिपादन में इस प्रकार की वस्तुओं पर निर्भर नहीं हैं और विज्ञान का एक यही विशेष अंग है, जिसे मैं धर्म क्षेत्र में प्रयुक्त करना चाहता हूँ इस वैशिष्ट्य से वंचित रहने से ही धर्म जीर्ण शीर्ण हो रहे हैं''[5]

रोमां रोला लिखते हैं– ''चाहे विज्ञान विवेकाननद के अर्थ में मुक्त धर्म को माने या न माने उसका धर्म विज्ञान को मानता हैं''।[6]

और वास्तव में वर्तमान समय में जहां धर्म के नाम पर अंधविश्वासों, कुप्रथाओं और परस्पर घृणा का विस्तार होता जा रहा है, वहां स्वामीजी के इस सार्वभौम विज्ञान धर्म की आवश्यकता अत्यन्त आवश्यक जान पड़ती हैं

स्वामीजी कहते हैं–'' अनुभव ही ज्ञान का एक मात्र साधन हैं संसार में, केवल धर्म ही ऐसा विज्ञान है, जिसमें निश्चयत्व का अभाव है, क्योंकि अनुभव पर आश्रित विज्ञान के रूप में उसकी शिक्षा नहीं दी जातीं ऐसा नहीं होना चाहिएं परंतु कुछ ऐसे लोगों का एक छोटा समूह भी सर्वदा विद्यमान रहता है, जो धर्म की शिक्षा अनुभव के माध्यम से देते हैं ये लोग रहस्यवादी कहलाते हैं और वे हरेक धर्म में, एक ही वाणी बोलते हैं, और एक ही सत्य की शिक्षा देते हैं यही धर्म का यथार्थ विज्ञान हैं जैसे गणित शास्त्र विश्व के किसी भी भाग में भिन्न–भिन्न नहीं होता, उसी प्रकार रहस्यवाद भी एक दूसरे से विभिन्न नहीं होतें वे सभी एक ही प्रकार के होते हैं तथा उनकी स्थिति भी एक ही होती हैं उन लोगों का अनुभव भी एक ही हैं, और यही अनुभव धर्म का रूप धारण कर लेता हैं

धर्मार्थी व्यक्ति पहले किसी धर्म संघ (संप्रदाय) में धार्मिक शिक्षा ग्रहण करता है और तब उसका अभ्यास करता हैं वह अनुभव को अपने विश्वास का आधार नहीं बनाता परंतु रहस्यवादी साधक सत्य का अन्वेषण आरम्भ करता हैं पहले उसका अनुभव करता है, और तब अपने मत को सूत्रबद्ध करता है। धर्म संघ दूसरों के अनुभव को अपनाता है, परंतु रहस्यवादी का अनुभव अपना ही होता हैं धर्म–संघ बाहर से भीतर की ओर जाता है। रहस्यवादी भीतर से बाहर आता हैं।[6]

धर्म तात्विक (आध्यात्मिक) जगत् के सत्यों से उसी प्रकार संबंधित है, जिस प्रकार रसायनशास्त्र तथा दूसरे भौतिक विज्ञान भौतिक जगत् के सत्यों से। रसायनशास्त्र पढ़ने के लिए प्रकृति की पुस्तक पढ़ने की आवश्यकता है। धर्म की शिक्षा प्राप्त करने के लिए तुम्हारी पुस्तक अपनी बुद्धि तथा हृदय हैं संत लोग प्रायः भौतिक विज्ञान से अनभिज्ञ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही रहते हैं, क्योंकि वे एक भिन्न पुस्तक अर्थात् आंतरिक पुस्तक पढ़ा करते हैं और वैज्ञानिक लोग भी प्रायः धर्म के विषय में अनभिज्ञ ही रहते है, क्योंकि वे भी एक भिन्न पुस्तक अर्थात् बाह्य पुस्तक के पढ़ने वाले हैं।[9]

सभी विज्ञानों की अपनी विशेष पद्धतियाँ होती हैं धर्म–विज्ञान की भी हैं उसकी पद्धतियों की संख्या तो और भी अधिक है, क्योंकि उसकी विषय–सामग्री भी अधिक होती हैं मानव बुद्धि बाह्य जगत् की भाँति समरूप नहीं हैं प्रकृतियों की भिन्नता के अनुसार प्रणालियाँ भी भिन्न होनी चाहिएं जैसे किसी मनुष्य में कोई एक विशेष इंद्रिय प्रधान होती है– एक देखता अधिक है दूसरा सुनता अधिक है– वैसे ही एक प्रधान मानसिक संवेदन भी होता है, और उसी के द्वार से होकर मनुष्य को अपने मन तक पहुँचना आवश्यक है। फिर भी सभी मानसों के अभ्यन्तर में एक प्रकार की एकता विद्यमान रहती है, और एक ऐसा भी विज्ञान है, जिसे सभी पर लागू किया जा सकता है। यह धर्मरूपी विज्ञान जीवात्मा के विश्लेषण पर आधारित हैं उसका कोई सम्प्रदाय नहीं हैं''[10]

स्वामी जी कहते हैं– ''मेरी समझ में आधुनिक विज्ञान जिस तथ्य का बार–बार पुष्टीकरण कर रहे है, वह यह है कि हम सब 'एक' है– मन, देह, आत्मा तीनों में।[11]

यह भ्रामक विचार है कि हम देह– रचना की दृष्टि से पृथक् है। तर्क करने के लिए मान लिया कि हम जड़वादी हैं, फिर भी हमें,मानना पड़ेगा कि सम्पूर्ण सृष्टि केवल जड़सागर हैं हम और तुम सब जिसकी छोटी–छोटी भँवरें हैं जड़–पुंज हर भंवर में आ मिलते हैं, भँवर का रूप धारण करते हैं, और पुनः जड़ के रूप में निकलते रहते हैं यह हो सकता है कि मेरी देह का जड़ पदार्थ कुछ वर्षो पूर्व तुम्हारी देह मे या सूर्य मे या किसी पौधे में या अन्य कियी में परिवर्तनशील अवस्था में रहा होगा। मेरी देह और तुम्हारी देह– इसका तात्पर्य क्या है? यह तो देह का एकत्व मात्र हैं विचार का भी यही हाल है। यह विचार–सागर है, एक असीम राशि है। जिसमें मेरा और तुम्हारा मन उसकी भँवरों के समान है। क्या अभी भी उसका प्रभाव तुम्हें विदित नहीं हो रहा है। कैसे मेरे विचार तुम्हारे मन और तुम्हारे विचार मेरे मन में प्रविष्ट हो रहे हैं? हमारा सम्पूर्ण जीवन एक है, हम सब एक हैं, विचार की दृष्टि से भीं इससे भी व्यापक स्तर पर सामान्यीकरण करने से ज्ञात होता है कि जड़ पदार्थ और विचार का सार उनमें अंतर्भूत आत्मा हैं यही वह एकत्व है, जहां से सबका उद्भव हुआ है और वह अनिवार्यतः एक होनी चाहिएं हम पूर्णतया एक हैं। हम भौतिक रूप से एक हैं, मानसिक रूप से एक है और स्पष्टतः आत्मिक दृष्टि से एक तो है ही– बशर्ते कि आत्मा में हमारी आस्था हों यही एकत्व वह तथ्य है, जिसे आधुनिक विज्ञान दिनानुदिन प्रमाणित कर रहा हैं।[12]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार स्वामी जी का वैज्ञानिक चिंतन मानवता के विकास का मार्ग प्रशस्त करता हैं वर्तमान समय में विद्यमान आधुनिक पद्धतियों को भी स्वामीजी ने अपनी दूरदर्शिता से पहले ही जान लिया था। निम्न उद्धरणों से स्वामी जी के आधुनिकता बोध की झलक मिलती हैं

पिछड़ी हुई जनता के लिए स्वामीजी अधिनायक–तंत्र के महत्त्व को पूरी तरह समझते थे। वे कहते हैं "जब शिक्षा के प्रसार के साथ हमारी देश की जनता अधिक सहानुभूतिपूर्ण और उदार बनेगी, जब वह अपने विचारों को सम्प्रदाय या पार्टी की सीमाओं से बाहर निकालना सीखेगी, तब कहीं संघबद्ध प्रजातांत्रिक आधार पर कार्य करना सम्भव होगा। इसलिए अभी इस समाज के लिए एक अधिनायक का होना आवश्यक है। सभी उसकी आज्ञा का पालन करेंगे। कालान्तर में हम साधारण मतदान के सिद्धांत पर कार्य कर सकेंगें।[13]

एक अन्य स्थान पर स्वामी जी कहते हैं..... अज्ञान ही सब प्रकार के दुःखों का कारण है। सामाजिक अथवा आध्यात्मिक अपने जीवन को चाहे जिस अवस्था में देखो, यह बिल्कुल सही उतरता हैं अज्ञान से ही हम परस्पर घृणा करते हैं अज्ञान से ही हम एक दूसरे को जानते नहीं और इसीलिए प्यार नहीं करतें। जब हम एक दूसरे को जान लेगें, प्रेम का उदय होगा,। प्रेम का उदय निश्चित है, क्योंकि क्या हम सब एक नही है?

इसलिए हम देखते हैं कि चेष्टा न करने पर भी हम सबका एकत्वभाव स्वभाव ही से आ जाता हैं यहां तक कि राजनीति और समाजनीति के क्षेत्रों में भी जो समस्याएं बीस वर्ष पहले केवल राष्ट्रीय थीं, इस समय उनकी मीमांसा केवल राष्ट्रीयता के आधार पर ही नहीं की जा सकतीं उक्त समस्याएं क्रमशः कठिन हो रही हैं और विशाल आकार धारण कर रही हैं केवल अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर उदार दृष्टि से विचार करने पर ही उनको हल किया जा सकता है। अतंर्राष्ट्रीय संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय संघ, अन्तर्राष्ट्रीय विधान, ये ही आजकल के मूलमंत्र स्वरूप हैं[14]

इस प्रकार आधुनिक समाज के निर्माण के लिए धर्म के साथ विज्ञान का सामंजस्य भी आवश्यक हैं आज विज्ञान की उपेक्षा कर हम अपनी प्रगति पर कुठाराघात कर बैठेगे। किंतु यह भी आशंका है कि कहीं विज्ञान हमें हृदयहीन, श्रद्धा रहित और धर्म विमुख न बना दे। भारत में अतीत काल से ही धर्म तथा विज्ञान के बीच कोई संघर्ष नहीं थां दोनों सत्य के संधान में निरत थे। यह संघर्ष यूरोप की देन है। हम तो परा और अपरा–दोनों विधाओं के साधक और समर्थक रहे हैं स्वामीजी दोनों के समन्वय पर जोर देते है।

वे पश्चिम के भौतिक उत्कर्ष को अपनाना चाहते है, और पूर्व के आध्यात्मिक उत्कर्ष का भी तिरस्कार नहीं करना चाहतें उनके लिए कारखाना, विद्यालय, खेल और क्रीड़ाभूमि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि सभी भगवत् साक्षात्कार के वैसे ही उत्तम तथा योग्य स्थान है, जैसे कि साधु की कुटिया या मंदिर का द्वार। उनके लिए मानव सेवा तथा ईश्वर पूजा, पौरुष एवं श्रद्धा, सच्चे नैतिक बल और आध्यात्मिकता– इनमें कोई अंतर नहीं है। एक बार उन्होंने कहा था, ''कला, विज्ञान एवं धर्म एक ही सत्य की अभिव्यक्ति के विविध माध्यम हैं, परंतु इसे समझने के लिए निश्चय ही हमें अद्वैत का सिद्धांत चाहिएं''। भारत में धर्म और विज्ञान के समन्वय में श्रीरामकृष्ण –विवेकानन्द के अवदान पर चर्चा करते हुए अमेरी डि रिनकोर्ट ने अपनी विख्यात् पुस्तक 'The Art of shiva' में कहा है–''श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के द्वारा उस (भारत) के आधुनिक जागरण के फलस्वरूप पूर्वी अध्यात्मवाद ने अपने तर्कसंगत पारम्परिक ज्ञान में जो कुछ तथ्यपूर्ण है, उसको बिना बली दिये हुए, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी द्वारा प्रस्तुत किये गए एक सर्वथा भिन्न सांस्कृतिक ढांचे के साथ अपने सत्यों का सामंजस्य करना शुरू कर दिया हैं''।[15]

संदर्भ ग्रंथ–

1. स्वामी विवेकानन्द और आधुनिक विज्ञान–डॉ0 राजा रामन्ना
   –स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान, पृष्ठ (296)
2. स्वामी विवेकानन्द के अर्थनीतिक सिद्धांत –श्री शिवचन्द्र दत्त
   –स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान, पृष्ठ (211)
3. वही, पृष्ठ (211)
4. वही, पृष्ठ (211)
5. तर्क और धर्म– विवेकानन्द साहित्य, खण्ड (दो) पृष्ठ (281)
6. विवेकानन्द की जीवनी–रोमां रोलां, पृष्ठ (203)
7. धर्म एवं विज्ञान–विवेकानन्द साहित्य खण्ड (दो) पृष्ठ (251)
8. वही, पृष्ठ (251)
9. वही, पृष्ठ (251)
10. वही, पृष्ठ (252)
11. तर्क एवं धर्म– विवेकानन्द साहित्य खण्ड (दो) पृष्ट (283)
12. वही, पृष्ठ (283)
13. स्वामी विवेकानन्द के अर्थनीतिक सिद्धांत– श्री शिवचन्द्र दत्त
    –स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान, पृष्ट (222)
14. भारतीय जीवन मे वेदान्त का प्रभाव–विवेकानन्द साहित्य खण्ड (पांच) पृष्ट (136)
15. नवभारत के निर्माण मे स्वामीजी की भूमिका–डॉ0 केदारनाथ लाभ
    –स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान, पृष्ठ 438

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्द रामायण में वर्णाश्रम व्यवस्था

डॉ० रेणु गुप्ता
जम्मू

प्राचीन काल से ही हमारे देश में हिन्दू समाज को व्यवस्थित रखने और उसे सुचारु रूप से चलाने के लिए वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था की प्रमुख भूमिका रही है। आनन्द रामायण में उल्लिखित वर्णव्यवस्था युगीन प्रभाववश शिथिल ही दृष्टिगत होती है। धर्मशास्त्रों में वर्णो के निर्धारण का आधार कर्म था। परन्तु आनन्द रामायण मे इसका आधार जन्म बन गया है; जिसमें किसी भी कार्य को करने वाला व्यक्ति ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने पर वैश्य तथा शूद्र कुल में उत्पन्न होने पर शूद्र कहलाता है।[1] जन्मात्रं द्विजत्वं मे शूद्र चाररत: सदा। आ०रा० राज्यखण्ड 14/121,122

आनन्द रामायण में प्रतिग्रह का अधिकार धर्मशास्त्रों के समान श्रोत्रिय ब्राह्मणों तक ही सीमित नहीं था बल्कि यह अधिकार उन सभी द्विजों को दे दिया गया, जो वेदाध्ययन करते थे तथा भिक्षान्न खाते हुए गुरुकुल में वास करते थे। आश्रम व्यवस्था व्यक्ति के जीवन को ऐसा रूप प्रदान करती है, जिससे वह स्वयं को जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के लिए तैयार करते हुए, पुरुषार्थ, चतुष्टय की सिद्धि में सफल होता है। आनन्द रामायण में भी चार ही आश्रमों का नाम उल्लिखित है परंन्तु व्यावहारिक प्रचलन में 'ब्रह्मचर्य' एवं 'गृहस्थ' इन दो ही आश्रमों का संकेत दृष्टिगत होता है।

सामाजिक स्थिति - आनन्द रामायण में ब्राह्मणों की सामाजिक स्थिति का मूल्यांकन करना असम्भव नहीं, लेकिन कठिन अवश्य प्रतीत होता है। क्योंकि काव्य में द्विविध वर्णन उपलब्ध होते हैं। एक ओर तो वसिष्ठ, विश्वामित्र, वाल्मीकि, अत्रि, च्यवन आदि ब्राह्मणों को देव सदृश मानकर प्रत्युत्थान, अर्ध्य-समर्पण द्वारा सम्मानित किया गया है।[2] तथा दूसरी ओर कलियुग के माध्यम से उनकी हत्या, सम्पत्ति छीनना तथा गृहनिष्कासन आदि का उल्लेख कर पतित अवस्था को संकेतित किया गया है।[3] ब्राह्मणों की पतित एवं हास प्राप्त स्थिति का अवलोकन करते हुए कवि ने सर्वत्र यही प्रयास किया है कि वर्ण-धर्म का पालन समाज द्वारा किया जाए तथा ब्राह्मणों को समाज में वैदिक काल के ही समान ही प्रतिष्ठा मिले।[4]

क्षत्रिय - आनन्द-रामायण काल में सामान्यत: क्षत्रियों की समाज में कैसी स्थिति थी, इसका मूल्यांकन प्रस्तुत ग्रन्थ से नहीं होता क्योंकि कवि ने जिन क्षत्रियों का वर्णन किया है, वे राजपद पर आसीन हैं। राज्य का मूलतन्त्र एवं सम्प्रभुता सम्पन्न होने के कारण प्रजा द्वारा इनका सम्मान किया जाना स्वाभाविक था। राज्य की आय का अधिकांश भाग अपने विलास एवं ऐश्वर्य पर व्यय करने के कारण[5] उनकी आर्थिक स्थिति समाज के अन्य वर्णों की अपेक्षा अच्छी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैश्य - आलोच्य ग्रन्थ में कवि ने चारों वर्णों का नामोल्लेख करते हुए ''वैश्य'' शब्द को उल्लिखित तो किया है परन्तु उनकी स्थिति एवं कार्यों पर स्पष्ट प्राकाश नहीं डाला है। ग्रन्थ में वस्त्रहटटात् शब्द का प्रयोग दृष्टिगत होता है[6] जिससे अनुमान लगाया जाता है कि वैश्यवर्ग व्यापार कार्य करता होगा।

शूद्र - यद्यपि आनन्द रामायण में शूद्र की स्थिति द्विज की अपेक्षा हीन दृष्टिगत होती है परन्तु पूर्ववर्ती धार्मिक साहित्य में वर्णित स्थिति की अपेक्षा इस काल के शूद्रों की स्थिति समाज में अच्छी है।

कर्मकाण्ड प्रधान युग में जहाँ शूद्र को वैदिक मंत्र सुनने का अधिकार नहीं था[7] वहाँ इस काल के भक्तिप्रधान युग में उसे धर्म के क्षेत्र में कुछ अधिकार समाज द्वारा दिये गए थे। राम की विधिवत् उपासना के अधिकारी द्विज ही थे।[8] परन्तु राममन्त्र का जप एवं कीर्तन शूद्र भी कर सकते थे। शूद्रों की आजीविका के सम्बन्ध में आनन्द रामायण धर्मशास्त्रों से प्रभावित प्रतीत होता है। शूद्रों को आजीविका के रूप में द्विजाति की सेवा का ही अधिकार था।[9] अपने से उच्च वर्णों के आजीविका के रूप में कर्मों का सम्पादन वे नहीं कर सकते थे। परिधान तथा अलंकार के रूप में भी सम्भवत: शूद्र परम्परावश अपने स्वामी (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) द्वारा त्यक्त वस्त्र, जूता, छतरी आदि को धारण करना पड़ता था।[10]

व्यवसायी वर्ग - आनन्द रामायण काल में चारों वर्णों के अतिरिक्त विभिन्न औद्योगिक वर्गों का भी जाति के रूप में विकास हो गया था[11] जिसके फलस्वरूप बुद्धिजीवी[12], श्रमजीवी[13] प्रजा का मनोरंजन करने वाले[14], तथा प्रशस्ति गायक के चार प्रकार के व्यवसायी वर्ग समाज में प्रचलित हो गए। प्रस्तुत ग्रन्थ में इन जातियों को धर्मशास्त्र के समान वर्णसंकर जाति के रूप में उल्लिखित न कर व्यवसायी वर्ग के रूप में उल्लिखित किया गया है।

बुद्धिजीवी वर्ग - बुद्धिजीवी वर्ग में वैद्य एवं ज्योतिष आदि को सम्मिलित किया गया था, जो क्रमश: औषधि-उपचार एवं ज्योतिषी का कार्य करते थे।

श्रमजीवी वर्ग - इस वर्ग में वे लोग समाविष्ट है, जो शारीरिक-परिश्रम करके जीविकोपार्जन करते हैं यथा कुम्भकार, चर्मकार, रथकार, लोहाकार आदि।

इन विभिन्न व्यवसायों के अतिरिक्त कतिपय चाण्डाल, अन्त्यज आदि निकृष्ट जातियाँ भी थी, जिन्हें समाज में घृणित एवम् अस्पृश्य समझा जाता था। आनन्द-रामायण में इन जातियों को उत्सव में भोजन द्वारा सन्तुष्ट तो किया गया है।[15] परन्तु वे उत्सव स्थल पर प्रवेश नहीं कर सकती थी। चैत्रमास का व्रत करनेवाले के लिए इनसे बात तक करना निषिद्ध था।[16]

आश्रम-व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ है। भारतीय संस्कृति में समाज के अभ्युदय के लिए वर्णव्यवस्था प्रथा व्यक्तिगत उन्नति के लिए आश्रम-व्यवस्था की नियोजना की गई है। जहाँ वर्ण व्यवस्था समाज के सदस्य के रूप में व्यक्ति को उसके अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का ज्ञान कराती है, वहाँ आश्रम व्यवस्था व्यक्ति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन को ऐसा रूप प्रदान करती है, जिससे वह स्वयं को जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के लिए तैयार करते हुए, पुरुषार्थ-चतुष्टय की सिद्धि में सफल होता है।[17]

सैद्धान्तिक रूप में आश्रम-व्यवस्था एक उत्कृष्ट धारणा थी परन्तु समय परिवर्तन के साथ-साथ जीवन की विघ्न-बाधाओं एवं रुचियों के संघर्ष के कारण समाज के प्रत्येक व्यक्ति द्वारा इसका विधिवत् पालन किया जाना असम्भव हो गया है। आनन्द रामायण में भी पूर्व परम्परावश चार आश्रमों का उल्लेख है।[18] परन्तु व्यावहारिक प्रचलन में 'ब्रह्मचर्य' एवं 'गृहस्थ' इन दो ही आश्रमों का संकेत दृष्टिगत होता है।

ब्रह्मचर्याश्रम - आनन्द रामायण में ब्रह्मचर्य आश्रम का प्रारम्भ यद्यपि मनु० एवं याज्ञ० स्मृति के समान उपनयन-संस्कार से ही होता है, परन्तु उपनयन-संस्कार की सार्थकता लगभग समाप्त हुई सी प्रतीत होती है। इस संस्कार के लिए कवि द्वारा निर्दिष्ट आयु का विधान 'धर्मशास्त्र' में वर्णित आयु से भिन्न है। मनुस्मृति में यह आयु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के लिए क्रमशः 8, 11, 12 वर्ष निर्धारित की गयी है।[19] परन्तु आनन्द रामायण में यह आयु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के लिए क्रमशः 8, 12, 16 वर्ष है।[20] उपनयन विधान सम्पन्न करते हुए बालक को गुरु या आचार्य के पास नहीं ले जाया जाता था वरन् गृह में ही गुरु की शिक्षक के रूप में नियुक्ति की जाती थी। आनन्द रामायण में इस संस्कार के उत्तरवैदिककालीन विशुद्ध संस्कार के रूप में न मना कर, धार्मिक विधि-विधान युक्त उत्सव के रूप में मानाया जाता था। उत्तरवैदिक काल में उपनयन संस्कार गुरु व शिष्य की निकटता का प्रतीक था जिसमें गुरु बालक को ब्रह्मचर्य-वेशभूषा धारण कराकर अपनी अंजलि का जल शिष्य की जल युक्त अंजलि में डाल देता था तथा शिष्य उस जल को पात्र में विसर्जित कर देता था[21] जो इस बात के प्रतीक थे कि आचार्य अपना ज्ञान शिष्य को देता है तथा शिष्य उस ज्ञान का प्रसार सम्पूर्ण पृथ्वी पर कर देता है। परन्तु आनन्द रामायण के समय में इस शैक्षिक संस्कार ने निहित आदर्श का त्याग कर नगर की सज्जा, ध्वजारोहण[22] आदि बाह्य आडम्बर को समाविष्ट कर उत्सव का रूप धारण कर लिया।

गृहस्थाश्रम - ब्रह्मचर्य की समाप्ति के बाद गृहस्थाश्रम का विधान भी काव्य में उल्लिखित है। गृहस्थ की उपयोगिता आनन्द-रामायण में धर्मशास्त्रों के समान पंचयज्ञ - सम्पादन एवं ऋणत्रय से मुक्ति तक सीमित नहीं है वरन-मोक्ष प्राप्ति के कारण बढ़ गई है। आनन्द-रामायणकार के मत में मनुष्य गृहस्थ में रहकर देह, गेह, पुत्र, धन का मोहत्याग कर सत्य, शौच, दया, शान्ति, क्षमा, इन्द्रिय-निग्रह आदि गुणाधान कर "अहं ब्रह्माऽस्मि" के अनुभव द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकता है। रामादि पात्रों द्वारा किए स्नान, देवस्तुति, तीर्थयात्रा आदि इसका स्पष्ट प्रमाण है।

वानप्रस्थाश्रम - चारों आश्रमों का वर्णन करते हुए आनन्द-रामायण में कवि ने वानप्रस्थाश्रम का संकेत तो दिया है परन्तु स्पष्ट वर्णन नहीं किया है। केवल मात्र एक स्थल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर यज्ञ में आमंत्रित वानप्रस्थी ऋषियों का वर्णन उपलब्ध होता है।[23] अत: सम्भव है कि यह वर्णन काव्य में परम्परा से आ गया हो क्योंकि काव्य में अन्य कोई भी प्रमाण दृष्टिगत नहीं होता जिससे यह सिद्ध किया जा सके कि लोग नियमपूर्वक गृहस्थ पालन के बाद प्रस्थान करते थे।

संन्यासाश्रम - आनन्द रामायण में कवि ने संन्यासाश्रम का नामोल्लेख तो किया है। परन्तु उसका विस्तृत वर्णन नहीं किया है। काव्य में यत्र तत्र वैराग्य सम्बन्धी उपदेश दिया गया है।[24] परन्तु महाभारत[25] के समान वन में जाकर एकाकी जीवन व्यतीत करने को नहीं कहा है। सम्भव है वन में रहकर एकचर जीवन करने से मोक्ष साधन कवि को मान्य न हो, इसलिए उसने घर में रहकर सदाचारयुक्त[26] तथा मोह माया से रहित एवं अनासक्त जीवन व्यतीत करने का विधान प्रजाजन के लिए वर्णित किया है।[27] परन्तु मोक्ष प्राप्ति विषयक कवि की यह युक्ति निर्मूल एवं निरर्थक सी प्रतीत होती है क्योंकि गृहस्थ में रहते हुए गृह एवं पुत्र-पौत्रादि से मोह त्याग सर्वथा असम्भव है।

अंतत: कहा जा सकता है कि आनन्द रामायण में चारों आश्रमों का शब्दत: उल्लेख होते हुए भी व्यावहारिक प्रचलन मात्र ब्रह्मचर्य एवं गृहस्थ आश्रम को ही दर्शाया गया है। इस काल की समाज में प्रवृत्त विलासभावना ने ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश कर जहाँ विशुद्ध शिक्षा के आदर्श को लुप्त-सा कर दिया है, वहाँ वानप्रस्थ एवं सन्यास की उपयोगिता को कम कर गृहस्थ में ही मोक्ष का उपदेश देकर, गृहस्थाश्रम को सर्वाधिक उपयोगी बना दिया है।

पाद-टिप्पणियाँ

1. आ०रा०, 6 सर्ग 69-71
2. क) वही 14/76
   ख) युष्माभिर्वसु यद्भुक्तं तत्सर्वं दीयताम् मम नोचेत् सर्वान् वधिष्यामि भूसूराणं यमस्त्वहम्।। वही 18/71
3. धर्मशास्त्र का इतिहास - पी०वी० काणे पृ० 137
4. आ०रा० विलासखण्ड 8/7-22
5. आ०रा० सारकाण्ड 9/187
6. मनु० 4/80, 81
7. गौतम धर्म० स० 2/3/4
8. आ०रा० मनोहरकाण्ड, 3/21 तेषामुयासना ग्राहया गुरोरास्यात द्विजातिभि:।
9. शुद्रैश्च द्विजशुश्रुषा सदा कार्यतिभक्तित:। आ०रा० राज्यकाण्ड 10/104
10. वस्त्रालकारभूषाभि, भूषनीया द्विजातिया:। आ०रा० विलासकाण्ड 6/34

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11. आ०रा० राज्यकाण्ड 14/92
12. आ०रा० यागकाण्ड 10/97-99
13. आ०रा० विलासकाण्ड 4/2
14. आ०रा० यागकाण्ड 2/58, 2/6
15. आ०रा० मनोहरकाण्ड 10/78
16. धर्मशास्त्र का इतिहास - पी०वी० काणे पृ० 423
17. आ०रा० मनोहरकाण्ड 11/234
18. गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनयनम्।
    गर्भादेकादश राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः।। मनु० 2/36
19. ब्राह्मणस्याष्टमे प्रोक्तो द्वादशे क्षत्रियस्य च।
    वैश्यस्य षोडशे वर्षे व्रतवन्ध, मुनीश्वरैः।। आ०रा० जन्मकाण्ड, 9/72,73
20. आश्व० गृ० सू० 1/20
21. आ०रा० जन्मकाण्ड 9/79-83,
22. आ०रा० याग्यकाण्ड, 2/26-38
23. आ०रा० सारकाण्ड, 5/112,113
    यत्रास्तमितशायी स्यान्निराशीरनिकेतनः। यथोपलब्धजीवी स्यान्मुनिर्दान्तो जितेन्द्रियः।।
    महा० शान्ति पर्व० 61/8
24. आ०रा० सारकाण्ड 5/114-117
25. संन्यासयोगतः सत्वं शुद्धं येषां विचारतः।
    ते परान्तेन कालेन परिमुच्यन्ति नान्यथा।।
    आ०रा० मनोहरकाण्ड, 4/212

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवयान एवं पितृयाण मार्ग

सहदेव शर्मा
शोध छात्र, वेद विभाग
गु.कां. विश्वविद्यालय, हरिद्वार

दक्षिणायान (कृष्णयान) पुण्य का फल प्राप्त करने वालों का मार्ग है और देवयान (शुक्लयान)ब्रह्मज्ञानियों का मार्ग है। संवत्सर रूप प्रजापति के दो अयनमार्ग हैं, जिनको दक्षिणायन और उत्तरायण कहते हैं। अयन छः छः महीने के दो होते हैं। एक संवत्सर में उसी प्रकार छः माह होते हैं। एक अयन में फिर महिने में भी दो पक्ष होते हैं, और दिन-रात में भी एक-एक बार अयन आते हैं। घंटो, मिनटों में भी आते हैं। मानव को शुभ मार्ग पर प्रेरित करने के लिए इस प्रजापति सूर्य के दो अयन के समय में विभाजन किया है जिससे भोगों की कामनाओं वाले मानव उत्तरायण में निष्काम होने का लाभ उठा सकें।

जो लोग भोग भोगने की कामनायें लिए कर्म करते हैं उन्हें दक्षिणायन (पितृयाण) मार्ग के द्वारा पितृलोक की प्राप्ति होती है, और जो निष्काम भाव से फल की इच्छा के बिना शुभ कर्म करते हैं वह देवयान मार्ग से जाते हैं। जो लोग पुण्य कर्मो को फल की कामना से करते हैं वह पितृलोक में जाकर अपने पुण्यों का फल भोगते हैं और पुण्य खत्म होने पर वापस आ जाते हैं।[1] और जो लोग देवयान से जाने वाले हैं वह वापस नहीं लौटते जिस प्रकार की दक्षिणायन वाले पुण्यों के समाप्त होने पर मजबूरन वापस आते हैं।[2] यह देवयान मार्ग उन महापुरुषों का है जिन्होंने दूसरों की खुशी के लिए अपना हृदय उनके काम में लगा रखा है और शरीर भी।

जो भोगासक्त मनुष्य अपनी कामना पूर्ति के लिए ही वेद, स्मृति आदि शास्त्रों में जो सांसारिक सुखों की प्राप्ति के कर्म बताये हैं, उन्हीं को सर्वश्रेष्ठ कल्याणकारी साधन मानते हैं। इसके भिन्न परमेश्वर का ध्यान उपासना निष्कामभाव से कर्तव्य पालन करना नहीं जानते, वे मनुष्य अपने पुण्यकर्मो के फलस्वरूप सुख भोगों को भोगकर पुण्य क्षय होने पर पुनः मनुष्य लोक में मानव अथवा इससे भी नीची शूकर, कूकर, कीट-पतंग आदि योनियों में अथवा रोरवादि घोर नरक में चले जाते हैं,[3] और जो भोगासक्त मनुष्यों से सर्वथा अलग हैं, जो मनुष्य शरीर का महत्त्व समझ गये हैं, उनके हृदय में परमात्मा का दर्शन होता रहता है, वह चाहें जहाँ रहें उनका स्वभाव शान्त हो गया है, वह चाहें विद्वान् हों या गृहस्थ अथवा भिक्षा से जीवन निर्वाह करने वाले, वह जो निरन्तर तप और श्रद्धा से भरपूर रहते हैं, और अपने वर्ण, आश्रम तथा परिस्थिति के अनुसार जो कर्तव्य होता है उसको शास्त्रानुसार बिना किसी फल की कामना के करते हैं, वे उस मृत्यु के बाद प्रकाशमय मार्ग से उस परमपुरुष के धाम में चले जाते हैं जहाँ से फिर वापस नहीं आते यह ज्ञानियों का मार्ग है।[4]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह परमात्मा का परम धाम सत्य की उपासना करने वालों को मिलता है, जो संसार के अनित्य, असत्य पदार्थों की चाहत रखते हैं वह उस देवयान के पथिक नहीं होते। सत्य की उपासना करने वाले ही अधिकारी होते हैं। जो सत्य का आचरण करने वाले ज्ञानियों का मार्ग है वही देवयान कहलाता है।[5]

मनुष्य का जीवात्मा शुक्ल कृष्ण के भेद के अनुसार ही मृत्यु के बाद गमन करता है। दक्षिणायन के महीनों से पितृलोक को, पितृलोक से आकाश को और आकाश से चन्द्रमा को प्राप्त होते हैं, यह चन्द्रमा सुखों का स्थान है, यह देवताओं का भोग है।[6] वहाँ पितृलोक आदि सुख के स्थानों पर सुख भोगने के बाद पुण्य समाप्त होने पर सुख के मुख्य स्थान से वापस आना पड़ता है।[7] यह जीवात्मा पितृलोक अथवा स्वर्ग (देवयान) लोक से भी आता है, पर देवयान से गया हुआ जीवात्मा पितृयाण से गये लोगों के समान जल्दी-जल्दी जन्मता मरता नहीं है। पितृयान से गया जीवात्मा तो एक ही सृष्टि में कितनी बार ही जन्मता-मरता फिरता है पर देवयान से गया जीवात्मा अगली सृष्टि में ही आता है।[8]

तीन लोक प्रसिद्ध हैं, मनुष्य लोक, पितृलोक और देवलोक। मनुष्य लोक को पुत्र के द्वारा ही जीता जा सकता है, किसी अन्य कर्म से नहीं तथा पितृलोक कर्म से और देवलोक विद्या (उपासना) से जीता जा सकता है। इन सभी लोकों में देवलोक ही श्रेष्ठ है, इसलिए उसके लिये विद्या की प्रशंसा करते हैं।9 अर्थात् इस उपदेश में शरीर के रहते भोग, कर्म एवं ज्ञान के विषय में बताया गया है। मरने के बाद जिन दो मार्गो से जीवात्मा सुगमता पूर्वक जाता है उनको देवयान और पितृयान मार्ग कहते हैं।[10] यहाँ दो मार्ग बताये हैं वास्तव में मार्ग वही होता है जिस पर आसानी से चलकर अपनी मंजिल प्राप्त की जा सके, गिरते-पड़ते यदि पहुँच भी गये तो उसे मार्ग नहीं कहते। मार्ग तो सुगम होते हैं, झाड़ी-झंकाड़ वाले नहीं। वेद में ऋषि भी मृत्यु लोकों से ऊर्ध्वगति को जाने वालों के लिए इन्हीं दो मार्गो के विषय में बताते है।[11]

गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि 'जिस मार्ग में ज्योतिर्मय अग्नि-अभिमानी देवता है, दिनका अभिमानी देवता है, शुक्ल पक्ष का अभिमानी देवता है और उत्तरायण के छः महीनों का अभिमानी देवता है, उस मार्ग में मरकर गये हुए ब्रह्मवेत्ता योगीजन इन देवताओं द्वारा क्रम से ले जाये जाकर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं और जिस मार्ग में धूमाभिमानी देवता है, रात्रि अभिमानी देवता है तथा कृष्णपक्ष का अभिमानी देवता है और दक्षिणायन के छः महीनों का अभिमानी देवता है उस मार्ग में मरकर गया हुआ सकाम कर्म करने वाला योगी इन, कृष्णपक्ष देवताओं द्वारा क्रम से ले गया हुआ चन्द्रमा की ज्योति को प्राप्तकर स्वर्ग में अपने शुभकर्मों का फल भोगकर वापस आता है।

ये दो प्रकार के शुक्ल और कृष्ण अर्थात् देवयान और पितृयान मार्ग सनातन माने गये हैं। इनमें एक के द्वारा गया वापस आ जाता है और दूसरे से गया हुआ वापस नहीं लौटता।[12]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता में जो यह कहा गया है कि वह देवयान वाला पितृयाण वालों की तरह जन्म-मरण से रहित हो जाता है तो इसका अभिप्राय यह है कि वह तभी आता है जब नई सृष्टि की रचना होती है उससे पहले अनेकों बार नहीं आता।

जो मनुष्य दीर्घकाल तक अपमानित अथवा पापमय कर्म करता हुआ जीवन जीता है उससे अच्छा वह है जो एक मुहूर्त भी यदि कर्म करता हुआ जी ले। उस जीवन से क्या लाभ जो क्षण-क्षण में अपमानित अथवा धरती का बोझ बना हो।[13] मनुष्य को उसी मार्ग का अनुसरण करना चाहिए जिस पर सज्जन मनुष्य चलते हैं।[14]

इस प्रकार देखने में आता है कि पितृयान अर्थात् दक्षिणायन मार्ग उतना श्रेष्ठ नहीं है, जितना श्रेष्ठ देवयान है जिसे शुक्ल अर्थात् उत्तरायण भी कहते हैं। इन देवयान एवं पितृयाण को उत्तरायण एवं दक्षिणायन कहने का यही अभिप्राय है कि दक्षिण नीचा और उत्तर का मार्ग ऊपर चढ़ना है, इसीलिए इनकी श्रेष्ठता बताई गई है।

सन्दर्भ-

1. प्रश्नोपनिषद् 1/9
2. प्रश्नोपनिषद् 1/10
3. मुण्डकोपनिषद् 1/10
4. मुण्डकोपनिषद् 1/11
5. मुण्डकोपनिषद् 3/1/6
6. छान्दोग्योपनिषद् 5/10/4
7. छान्दोग्योपनिषद् 5/10/5
8. कठोपनिषद् 6/4
9. वृहदारण्यकोपनिषद् 1/5/16
10. वृहदारण्यकोपनिषद् 6/2/2
11. ऋग्वेद् 10/88/15
12. गीता अ0 8/23,24,25
13. रचनानुवाद कौमुदी, डॉ0 कपिलदेव, पृ. 242
14. अथर्ववेद 19/59/3

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानंद सरस्वती की वैचारिक प्रखरता एवं सुशासन व्यवस्था

डॉ0 शिव कुमार चौहान
असिस्टेट प्राफेसर,
शारीरिक शिक्षा एवं खेल विभाग,
गु० कां० वि० वि०, हरिद्वार
(उत्तराखण्ड)

ऋषियों, तपस्वियों एवं संन्यासियों द्वारा अभिसिंचित यह भारत वर्ष प्राचीनतम् समय में आर्यावर्त्त के नाम से उदबोधित होता रहा है। इन संन्यासियों के त्याग, तपस्या एवं बलिदान के फलस्वरूप ही इस आर्यावर्त्त की संस्कृति एवं सभ्यता को संरक्षित एवं संम्वर्धित किया जाता रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप आज हम अपने आप को सभ्य समाज के नागरिक कहलाने में गर्व का अनुभव करते है। आर्य जगत के इन मनीषियो द्वारा समाज के लिये जो मौलिक एवं नैतिक आधार तैयार किया गया उसकी नीव में इन आर्य विद्वानों की वैचारिक प्रखरता निहित है।

महर्षि दयानंद ने आर्यो के उत्थान के लिये 29 मार्च 1875 ई0 को सर्वप्रथम आर्य समाज की स्थापना की। महर्षि दयानंद द्वारा जिन उददेश्यों की पूर्ति के लिये आर्य समाज की स्थापना की गई वो उददेश्य आज के आधुनिक परिवेश में कितनी सार्थकता प्राप्त किये है इसका विश्लेषण किया जाये तो परिणाम ज्यादा प्रभावी नही होगे। इन सबका मूल कारण पथ से भ्रमित होना मुख्य रूप में होगा। महर्षि सही अर्थो में सेवाभाव से मानवता की सहायता करना चाहते थे। वे मानव को मानव के प्रति स्वार्थ, हिंसा, घृणा, राग, द्वेष तथा भय मुक्त आदि अनेक अवगुणों को त्याग करके अहिंसा, परमार्थ, प्रेम, भाई-चारा आदि सदगुणों से अलंकृत करना चाहते थे। मानव समाज में सौहार्द बनाने के लिये उन्होने आर्य समाजों को गठित करके उपदेश दिये। महर्षि के जीवन दर्शन से हमे आज भी त्याग तथा तपस्या की प्रेरणा प्राप्त होती है। आर्य समाज की श्रेष्ठ कृति 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना करके महर्षि ने आर्यो को अमूल्य धरोहर प्रदान की है। जिसमें बताये गये मार्ग का अनुपालन करके मनुष्य जीवन की नीरसता को त्याग करके कमल के समान प्रफुल्लित होकर जीवन यापित कर सकता है। इस ग्रंथ में चौदह समुल्लासों के माध्यम से व्यवहार परक सिद्वांतों द्वारा समाजोत्थान की विभिन्न विद्याओं पर सविस्तार चर्चा की गई है।

महर्षि दयानंद सरस्वती राष्ट्र को एकता के सूत्र में पिरोना चाहते थे। स्वंय गुजराती परिवेश में लालन पालन होने पर भी उन्होने अपने सभी ग्रंथ देव-वाणी संस्कृत निष्ठ आर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भाषा हिन्दी में ही लिखे। भारत सरकार स्वतंत्रता उपरांत वोट बैंक की नीति के कारण हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा घोषित करने के पश्चात भी पूर्णतया: लागू नही कर सकी। जिसके कारण दक्षिण तथा पूर्वोत्तर राज्यों में हिन्दी की स्थिति दयनीय है। इसी कारणवंश हम भारतीय होते हुये भी अपनी राष्ट्रीय भाषा के माध्यम से अपने विचारों का प्रभावी ढंग से आदान-प्रदान करने में समर्थ नही है। महर्षि की दूरदर्शी सोच एवं वैचारिक प्रखरता का एक ओर उदाहरण इस बात से भी प्राप्त होता है कि उन्होने राजनीति के स्थान पर राजधर्म शब्द का प्रयोग करने पर बल दिया जो वेद शास्त्र सम्मत है। जिससे अभिप्राय था कि देश में रहने वाले सभी लोगों के लिये एक जैसे नियम व कानून हो तथा उनमें किसी भी प्रकार का भेद-भाव न हो। जिसके परिणाम स्वरूप सभी लोग नियम तथा कानून पर चलना अपना धर्म समझेंगे तथा समान आचार संहिता लागू हो सकेगी, परन्तु आज़ कानून व्यवस्था तथा पदों के साथ आरक्षण रूपी भेद-भाव, उपयुक्त तथा अनुपयुक्त को बिना सोच विचारे ऐसी स्थिति उत्पन्न होने के कारण समान आचार संहिता का उल्लंघन किये जाना मानो प्रमुख हो गया है। जिससे आज जैसी विकट स्थिति उत्पन्न हो गयी है जिसमें सभी के साथ न्याय किया जाना सम्भव नही है।

महर्षि की वैचारिक प्रखरता का एक अन्य उदाहरण इस बात से भी मिलता है कि उन्होने जहॉ भी समाज सुधार की बात की उसमें विद्वानों से संगठित होने के लिये कहा है परन्तु देखा जाता है कि एक जैसी शिक्षा न मिलने के कारण बुद्विजीवी भी 'अपनी ढपली अपना राग' वाली कहावत को चरितार्थ करते रहे है। समाज की जिन समस्याओं का निस्तारण कुछ क्षणों में सम्भव हो सकता है वह हठवादिता व स्वार्थ के चक्रव्यूह में फंसकर रह जाती है। सत्यार्थ प्रकाश के छठे सम्मुलास में चयन प्रणाली के माध्यम से विद्यार्थी, धर्मार्य तथा राजार्य सभा का होना बताया गया है। जिसमें योग्य व्यक्ति अर्थात वैद्विक विद्वान, पक्षपात शून्य, बली, पराक्रमी, ओजस्वी एवं प्रजा का पुत्रवत् पालन करने वालो को ही उच्च नेतृत्व दिया जाना बताया गया है परन्तु आज की व्यवस्था में संसद तथा विधान सभाओं में प्रभावी चुनाव प्रणाली के आभाव में मूर्खो तथा विवेक शून्य लोगो को उच्च नेतृत्व मिलने के कारण समाज तथा देश एक ऐसे दोहराये पर खडा है जहॉ भ्रष्टाचार, महंगाई तथा मूलभूत आवश्यकताओं की उपलब्धता में भी कमी होने के कारण प्रजा को सडको पर उतर कर प्रदर्शन करने के लिये विवश होना पड़ रहा है। मूलत: जनतापूर्ण रूप से त्रस्त तथा पीड़ित है।

महर्षि देश में स्वराज, सुशासन तथा स्वदेशी के पक्षधर थे। उन्होने सभी विद्यार्थियों के लिये समान शिक्षा व्यवस्था का वर्णन सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास में किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इस वैदिक पाठयक्रम की सरचना में ऐसे साहित्यों को सम्मिलित किया जाना बताया गया है जिसमें कही भी गुलामी का इतिहास पढने की आज्ञा नही है, अपितु उसके स्थान पर रामायण व महाभारत जैसे प्रेरणाप्रद साहित्य पढने तथा उनका अनुसरण करने पर बल दिया गया है। वर्तमान परिपेक्ष में इन ग्रंथों को पढने से आज की मूलभूत आवश्यकता तथा चरित्र निर्माण करके सहासी, निष्ठावान तथा ओजस्वी पीढियों का निर्माण किया जा सकता है। जिसकी राष्ट्र को आज अत्यंत आवश्यकता है।

महर्षि दयानंद के कथनानुसार आर्योवर्तीय हदय सम्राट महाभारत कालीन श्री कृष्ण के समय में भारत में प्रत्येक व्यक्ति के लिये छः गाये थी, परन्तु आज की व्यवस्था में छः व्यक्तियों के लिये एक गाय भी उपलब्ध नही है। यह सब असंगत कार्य प्रणाली एवं निष्ठावान तथा समर्पित लोगों को महत्व न देने के कारण उत्पन्न स्थिति है।

महर्षि दयानंद ने ऋग्वेद के उपवेद आयुर्वेद के बारे में कहाँ है कि सुश्रुत व चरकादि आयुर्वेद के ग्रन्थ ऋषि-मुनि प्रणीत है। इन वैद्यक शास्त्रों को अर्थ, क्रिया, शस्त्र, छेदक, भेदन, लेपन, चिकित्सा, निदान, औषध, पथ्य, शरीर देश काल और वस्तु के गुण ज्ञानपूर्वक जानकर सभी प्रकार के रोग ठीक करने की क्षमता इसमें निहित है, परन्तु इस ओर अनुसंधान करने की आवश्यकता है जिसके फलस्वरूप आयुर्वेद के माध्यम से मानवता का भला सम्भव है। देश में आज ऐलोपेथी के बढते प्रचलन तथा नवीन व्याधियों के बढते प्रभाव के कारण मानवता त्रस्त है तथा उपचार की प्रभावी एवं कारगर पद्वित न होने के कारण ऋषि-मनीषियों द्वारा आर्युवेद के माध्यम से ही जटिल रोगों का उपचार किये जाने की सम्भावनाये प्रबल है

आज आर्य पद्वति तथा वैदिक पाठयक्रम को अपनाते हुये तथा सत्यार्थ प्रकाश को जीवन में उतारनें से समाज में व्याप्त कुरीतियों तथा भ्रष्टाचार आदि अनेको व्याधियों से निजात पाया जा सकता है। वही समाज को समायोजित ढंग से जीवन यापन करने तथा सीमित संसाधनों के उपयोग द्वारा प्रकृति का क्षरण तथा दोहन रोका जा सकता है जिससे आज आधुनिकता की दौड़ से त्रस्त मानवता को पथ भ्रष्ट होने से बचाया जा सकता है।

महर्षि दयानन्द की सुशासन व्यवस्था का अनुसरण करके भारत को पुनः विश्व गुरू के पद पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Subject: Economical negligence of Education boards while planning textbooks.

Dr. Mrs Pradnya Sharad Deshpande
484/A, Professors colony,
Hanuman Nagar, Nagpur
Maharastra

Introduction:

I being a teacher, a parent and during my research work I came across the fact that somehow there were some blank pages in the text books. While drawing the inferences of my research it came to attention that even a single page left blank in the edition, may result in phenomenal waste of financial and environmental resources. The research was based only on the Sanskrit text books of 22 states of our country. I went through my son's text books too and found similar case, which were of Maharashtra state board only. There also, similar kind of negligence came to fore in more or less similar ratio. If it is such with only one subject or one education board we can understand the case with other subject text books and other boards. Taking into consideration the economical and environmental wastage and negligence, I was provoked to take this topic for my research.

Analytical table:

Name of publisher	Standard	Editions	No. of copies	Total no. Of pages in the text book	No. of blank pages	Cost of the text book
Rajasthan state text book board, Jaipur	3rd	2007	40,000	32	2	3.50/-
Rajasthan state text book board, Jaipur	4th	2007	30,000	40	4	4.00/-
Rajasthan state text book board, Jaipur	5th	2007	30,000	64	3	6.00/-
Rajasthan state text book board, Jaipur	6th	2007	9,00,000	96	1	8.50/-
Rajasthan state text book board, Jaipur	2nd	2006	50,000	40	2	4.00/-
Rajasthan state text book board, Jaipur	7th	2007	8,00,000	133	1	11.50/-
Human research development dept. Jharkhand.	8th	2007	Not mentioned	80	3	Free

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Human research development dept. Jharkhand.	6th	2007	Not mentioned	116	1	Free
Human research development dept. Jharkhand.	10TH	2005	30,000	136	1	17.25/-
Human research development dept. Jharkhand.	11th	2007	5,000	114	3	14.40/-
Human research development dept. Jharkhand.	10th	2007	5,000	127	3	14.40/-
Jharkhand education project council	11th	2007	5,000	103	2	14.40/-
National council of educational research and training	7th	2006	Not mentioned	120	3	30.00/-
Central board of secondary education, Delhi	7th	2005	20,000	80	1	40.00/-
Central board of secondary education, Delhi	9th	2007	1,40,000	154	3	35.00/-
Central board of secondary education, Delhi	11th	2006	8000	88	1	45.00/-
Himachal Pradesh school education board, Dharamshala.	7th	2005	1,35,000	108	1	25.00/-
Himachal Pradesh school education board, Dharamshala.	8th	2006	1,45,000	127	1	25.00/-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Himachal Pradesh school education board, Dharamshala.	10th	2006	1,09,000	152	2	50.00/-
School education, Uttrakhand	10th	2008	Not mentioned	123	3	38.70/-
School education, Uttrakhand	11th	2008	Not mentioned	104	1	53.40/-
School education, Uttrakhand	12th	2008	Not mentioned	104	2	29.75/-
Bihar state textbook publishing corporation limited, Patna	6th	2005	1,00,000	112	3	7.70/-
Bihar state textbook publishing corporation limited, Patna	8th	2006	75,000	72	3	5.00/-
Bihar state textbook publishing corporation limited, Patna	10th	2007	10,000	108	3	14.00/-
Bihar state textbook publishing corporation limited, Patna	12th	2008,	10,000	168	1	22.00/-
The Samskrita Academy, Govt. of Tamilnadu, Chennai.	10th	2006	1,000	68	1	35.00/-
Fellowship of Sanskrit culture , Govt. of Tamilnadu, Chennai.	12th	1996	2,000	80	1	30.00/-
Haryana school education boards,Bhiwani	11th	2006	Not mentioned	102	3	60.00/-
Secondary board of education,	12th	2005	Not mentioned	44	3	11.00/-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Himachal Pradesh school education board, Dharamshala.	10th	2006	1,09,000	152	2	50.00/-
School education, Uttrakhand	10th	2008	Not mentioned	123	3	38.70/-
School education, Uttrakhand	11th	2008	Not mentioned	104	1	53.40/-
School education, Uttrakhand	12th	2008	Not mentioned	104	2	29.75/-
Bihar state textbook publishing corporation limited, Patna	6th	2005	1,00,000	112	3	7.70/-
Bihar state textbook publishing corporation limited, Patna	8th	2006	75,000	72	3	5.00/-
Bihar state textbook publishing corporation limited, Patna	10th	2007	10,000	108	3	14.00/-
Bihar state textbook publishing corporation limited, Patna	12th	2008	10,000	168	1	22.00/-
The Samskrita Academy, Govt. of Tamilnadu, Chennai.	10th	2006	1,000	68	1	35.00/-
Fellowship of Sanskrit culture, Govt. of Tamilnadu, Chennai.	12th	1996	2,000	80	1	30.00/-
Haryana school education boards,Bhiwani	11th	2006	Not mentioned	102	3	60.00/-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Secondary board of education, Delhi	12th	2005	Not mentioned	44	3	11.00/-
Madhya Pradesh Pathyapustak nigam, Bhopal	7th	2006	Not mentioned	128	1	14.00/-
Bani prokashan pvt. Ltd for Assam board.	6th & 7th	2005	Not mentioned	88	1	30.00/-
Chhattisgarh text book corporation, Raipur	10th	2006	Not mentioned	64	2	8.00/-
Board of secondary education, Orissa	9th & 10th	2007	3,00,000	108	1	26.00/-

General observations:

In above table various text books of various standards and boards were analyzed on the basis of following points:

* No. of copies.
* Total no. Of pages.
* No. of blank pages.
* Cost of the text book.

The inferences drawn from the table:

* Text books of 22 states boards ranging from 2nd to 12th standard collected between year 2007 to 2008. Out of which 33 books were found to be having blank pages. Figuratively even if 33 is a small number, if calculated, results into large volume of wastage of paper.
* The total number of pages mentioned here in above table include very first page to last page excluding the cover pages (also includes oath, introduction, index instructions for teachers etc.)

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* The other outstanding issue came to fore is that the cover page no. 2 and 3 were found blank in almost 90% books. This is not the issue of my research as it might extend my work out of proportion.
* Even leaving quarter, half and three quarter page blank creates a great economical and environmental damage, which I will consider in my next research.
* In many cases exact number of copies of the edition was not mentioned because of which the exact calculation of damage could not be derived.
* Out of these 33 books the minimum copies printed for the edition was 5,000(Text book of Jharkhand for 10th, 11th compulsory and 11th literature).
* Out of these 33 books the maximum copies printed for the edition was 9, 00,000 (Text book of Rajasthan for 6th standard).
* The 8th and 6th standard textbooks of Jharkhand were for free distribution.
* Out of these 33 books the minimum cost the book was 3.50/-(Text book of Rajasthan for 6th standard).
* Out of these 33 books the maximum cost the book was 60/-(Text book of Haryana for 11th standard).
* Out of 33 books 1 had 4, 12 had 3, 6 had 2 and 14 had 1 page blank.

Conclusion:

One blank page seems to be very small in quantity but results into major economical and environmental wastage for the nation. This can be proved by following small calculation: the C.B.S.E 9th standard text book published in January 2007 has 3 blank pages. The number or copies printed for this edition were 1,40,000. Which means 1,40,000 x 3= 4,20,000 pages were left blank. The total number of pages of this book were 154 and the cost of it was 35/-. Which clearly indicates that 2727 books can be created out of the blank pages left in the book. If one book costs 35/- 2727 books will cost 95,445/-. C.B.S.E has unnecessarily burdened common people to bare these losses. Let me bring to attention that each student buys at least seven books in one academic session. If one subject can bring such damage, we can

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

understand the magnitude of other subjects. Stringent actions are needed to curb this wastage. India is a developing country and has second largest population in the world. Our country can't afford any kind of extravagance and wastage at least not in government education system. The text book should be ideal in front of pupil and society. If we want to inculcate good habit of saving in all aspects we expect that the text books should set an example.

Suggestions:

The reason behind the blank pages in the text books can be due to lack of awareness and lack of planning. The suggestion is that the text book committees should have great coordination while planning it. Even if there is a blank or two pages it should be utilized to provide national and social messages like join army advertisement by Indian army, national anthem, child welfare messages, pictures of heritage sites etc. This kind of utilization has been done very well in Madhya Pradesh text books.

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Role of Later Vedic Arts & Crafts in State Urbanization; A Study

Priya Saxena
Invited guest faculty
G.K.V. campus, Dehradun

The region of Kuru Panchala was the heartland of main activities during the later Vedic age. In the east the kingdoms of Kosala, Kasi and Videha were established. Few kingdoms were situated in North and South of the Ganga.

On the basis of obtainable data and sources the present study highlights the gradual transition in later Vedic period from nomadic to settled life and authentic phenomenon of arts and crafts industries in the development of urbanism.

The appearance of towns at Taxila, Kosambi, Hastinapura and other places has been assigned to the late stage of iron age by Vibha Tripathi suggest, a period which is generally identified with Mahajanapadas or second urbanization in the phase according to her. Structural activity, beautifully fashioned moulded pottery a nd other objects tend towards, standardization and metal, semiprecious stones and other archaeological artifacts proliferate, hence the sites have rich cultural remains indicating an urbanized stage"[2].

The Gangetic valley was the cradle of PGW culture. B.B. Lal associated this culture with Mahabharata people and some other scholars tried to associate it with Rgvedic Aryans. But the geographical horizons and the material aspects of this culture correspond to the later Vedic age"[3]. Stability in the settlement pattern of Vedic Aryans must be changed the economic life of later Vedic people from the archeological point of view PGW and NBPW deposits can largely be utilized for the study of material and cultural development of the people. The discovery of iron and growing arts and crafts played a prominent role in the growth and development of later Vedic Aryans.

The extensive use of clay and metal craft especially iron, textiles, ornaments of beads, ivory and bones etc were facilitate the development of trade industries, handicrafts, progress of agriculture and intensification of surplus wealth.

Thus an improved knowledge of iron implements enabled the peasants to produce more surpluses thereby leading to the emergence of towns in this period.

The Vedic texts refer two kinds of silpa namely Devasilpa and Silpa practiced by human beings"[4]:

In the Purusamedha a considerable multiplication of specialized occupation of human beings has been mentioned as carriage making, bead making, pottery, terracottas, textiles, metal worker and other.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Vajesneyi Samhita a list of several metals such as hiranya, rajata, ayasa, loha, sisa and trapu. These metals were suggests in later Vedic literature respectively as Gold, Silver, Iron, Copper, Lead and Tin.[5]

The discovery of iron can be considered as the most remarkable and revolutionary upsurge in history of urbanization. Aryans were the first user of the iron from the time of their earliest habitation in Punjab.

Atranjikhera was first site to yield the iron tools and implements from PGW phase. Iron objects included spearhead, arrowheads, points, socketed, tangs, axes, sickles knives, blades, ploughshare, rods, a pair of tongs, nails, pins, clamps, hooks, porers, chisels, needles, bangles, hoe, draggers, slags, lumps and some indeterminate have been reported from PGW level from a number of sites like Atranjikhera, Hastinapur, Jakhera, Allhapur, and Aalamgirpur.

The iron ploughshare from the pre NBPW deposits from Jakhera is a landmark advancement in the history of this period",[6]

Prolific use of iron and occurrence of raw materials in the form of ore smelted lumps and variety of objects and their quality is itself an identification of advanced technology".[7]

Iron technology affected the clearance of dark and dense tropical forests of Ganga Yamuna valley, extensive agricultural operations and urban transformation. Iron gave impetus to every walk of life and ultimately led to the development of rise of cities in the Gangatic plains.

Undoubtedly the textile industry was developed both an intensive as well as extensive basis and it gave birth to quite variety of product made of cotton, woolen and silk which are consi ered as the mark of civilized society'[8].It seems that textile industry was very - important commercial product of India.

The excavation at Atranjikhera brings out a new light on the weaving of cloth by the discovery of two sherds bearing cloth impression unearthed from the PGW level"[9].

During the later Vedic period several terms are mentioned for textiles as Vasana, nivi, adhivasa, drapi, hiranyadrapi, pesas, atka, tarpya, tantu, tasara and vayitri.

The wool was well known as urna in Vedic Period. The existence of Woolen industry was not clear from the excavations at Harappa and Mohanjodaro. It may be said that knowledge of woolen textile come to India through the Aryan invaders.

It is interesting to note that designing the garments by decorative techniques embroidery, dyeing, stiching, and brocading etc, were in fairly advanced stage during the later Vedic period.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The objectivity of literary evidence has been justified with the archaeological records of this period. Knitting needles of bone and metal have been recovered from Jakhera and Atranjikhera from PGW levels[10].

Spindle whorls are reported from the sites like Hulas and Ahichchhtra. In textile industry we may draw our attention to Atharvaveda which mentions different processes of commerce like Kraya (purchase), Phala (Profit), Charita (Transaction) and uthita (Principal and Profit)[11]. In this connection it can be stated that textile industry encouraged trade and commerce of this age.

Pottery is called as the alphabet of archa eology. The Painted Grey Ware is the most distinctive ceramic industries with its excellent febric, finish and manufacturing techniques. It was first found from Ahichchhatra (Bareilly UP) from the lowest levels. Later it has been reported from several sites.

It represents a good example of fine craftsmanship and a high degree of artistic ability. The fabric of the ware is marked by a superior quality of paste, formed of well levigated clay free from all impurities although Allchins calls it a hallmark of this period [11].

Different types of dishes and bowls are the predominant form of PG ware. Besides this, some other types with local variation used to the storing liquid and grain or for drinking water. A ring pedestal of a bowl or vase found at Alihapur (dist Meerut).

The pattern of painting and decoration IS concerned, PGW confined mostly to some geometrical patterns with only incidental emergence of floral designs.

PGW was needed by a new and striking pottery, commonly known as Northern Black polished Ware which is assigned the time bracket 600-200 Be. The NBP wares had attained an advanced stage of technological development in pot making. The NBP wares become a well known industry in the pre Mauryan period almost simultaneously III all the sixteen Mahajanpadas irrespective of their long distance[12] ..

The NBP ware was a full fledged iron culture which enabled its people to make full use of the facility of the Ganga plain and found cities and empires[13].

The terracotta art appeared to have felt the new era of development while some kind of figurines shows continuity from the preceding tradition.

Terracotta findings of this period display clearly a universal bias which was followed by the urban culture.

As the urban societies basically depend on the rural countryside for their existence, trade has to be extended to these areas.

Terracotta human and animal figurines, bird figurines, ornaments, games and toys and other religious objects occurred from various sites like Ahichchhatra, Atranjikhera, Hastinapura, Jakhera, Allahpur, and Abhipur (Bareilly).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Terracotta human figurines from J akhera and Bhagwanpura are the noteworthy occurrence in PGW period. The accounts of the production and sale of clay objects indicates the economy of pattern.. The realistic terracotta figurines are not marketed originally. Terracotta discs might have been used for the purpose of weighting in trade.

An urbanized community produced a variety of terracotta objects suggests that day craft was also in vogue. Thus it appears that clay art was closely related to the phenomenon of urbanization.

The forgoing suggests that the emergence of urban settlement is early historical period did not take place as early as sixth C.B.C. However we admit that foundation for the emergence of the future towns may have laid in 6th - 5th" CBC but the urban embrays could attain the status of cities/and towns only around forth third CBC .

Therefore, it can be considered that urbanization in Ganga valley was not a revolution, it was a gradual development. The analetical studies of the arts and crafts of later Vedic period revealed the facts of a long back history of second urbanization. The later Vedic age was an age of

agriculturists who were leading passive and advanced lives. The commencement of town towards the end of this period is suggested by such words as town (nagara) or town dweller (nagarin). The excavated PGW sites prove the existence of at least three towns in Ganga valley as

Ahichchatra, Kaumbi and Hastinapura. Ayodhyaya, Kausambi, Varanasi, Takshila, Mithila, Vaishali, Chamba, and Rajgriha etc most of which gained prominence as capital cities, centers of industries and trade in early historical period. It appears to have been undergoing process of development in later Vedic age.

Thus all references of craftsmanship not only provided material for the study of process of urbanization but illustrated different stages of urban growth.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारी मर्यादा के संरक्षक श्रीकृष्ण

डॉ. (श्रीमती) विभा अग्रवाल,
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

दिव्य, विराट्, परमपुरुष श्रीकृष्ण के अनिर्वचनीय एवं विलक्षण चरित्र के किसी भी पहलु का आकलन सामान्य–बुद्धि वाले मनुष्य के द्वारा सम्भव नहीं है,[1] तथापि हम सबके हृदयों में बसा उनका लोकनायक मोहनरूप हमें बार–बार उनके चरित्र का विमर्श करने की प्रेरणा देता है । वस्तुतः कृष्ण का व्यक्तित्व इतना लोकप्रिय है कि सबने उनके जीवन–चरित को मनोवाञ्छित, मानव–सुलभ भावनाओं के अनुरूप प्रस्तुत किया है । यशोदानन्दन बाल कृष्ण, गोपियों के प्रिय एवं गऊओं के रक्षक 'गोप–कृष्ण', कंस के विनाशक, गीता के उपदेशक इत्यादि रूपों में वर्णित कृष्ण के विषय में जितना वर्णन किया जाए कम है । तथापि महाभारत के विराट् रूप में, श्रीमद्भागवत के दिव्य रूप में, भक्ति काव्यों के भक्त–वत्सल में, शृंगार–काव्यों के रसिक में तथा वैष्णव सम्प्रदाय के भगवान् में यदि समन्वयात्मक दृष्टि से सोचें तो एक ही तत्त्व सर्वत्र अनुभूत होता है– 'परमतत्त्व' जिसे हमारी संस्कृति में परमपुरुष, परमात्मा, परमेश्वर आदि कहा गया है । यह परमेश्वर सबका रक्षक एवं सबका कल्याण करने वाला है । यह संरक्षण भले ही दुष्टों, दानवों और प्राकृतिक विपदाओं से हो या जन्म–मरण के चक्र से छुड़ाकर मोक्ष के रूप में, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि कृष्ण हमारे 'रक्षक' हैं। वे हर भक्त की जिज्ञासा, बौद्धिक सीमा एवं भक्ति भावना के अनुरूप ही फल उसे प्रदान करते हैं । गीता के सप्तम अध्याय में वे कहते हैं :–

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ।।[2]

भागवत पुराण में भी कहा गया है कि जो मनुष्य भगवान् में काम, क्रोध, भय, स्नेह, सौहार्द, ऐक्य किसी भी भाव को धारण करते हैं, वे तन्मयता अथवा कृष्ण की भक्ति को प्राप्त होते हैं।[3]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्ण एक योद्धा नहीं, योद्धाओं के संरक्षक हैं, रथी नहीं, सारथी हैं । दुराग्रही कंस एवं शिशुपाल जैसे राजाओं का वध वे अपना पराक्रम दिखाने के लिए नहीं अपितु प्रजा के हित के लिए ही करते हैं । वे स्वयं कहते हैं :–

परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे–युगे।।[4]

श्रीकृष्ण ने अपनी इस उक्ति को द्रौपदी को चीर हरण जैसी विपदा से अक्षय वस्त्र प्रदान करके बचाकर पुष्ट भी कर दिया है। तो क्या गोपियों के वस्त्र चुराने वाले कृष्ण नारी मर्यादा के संरक्षक कहे जा सकते हैं? यह एक विचारणीय विषय है क्योंकि अनेक साहित्यिक रचनाओं में रासलीला रचाने वाले कामुक प्रेमी के रूप में चित्रित कृष्ण की छवि दिव्य पुरुष की प्रतीत नहीं होती अपितु एक सामान्य कामातुर प्रेमी की दिखाई देती है । अतः यह आवश्यक है कि कृष्ण के जीवन के समस्त पहलुओं को ध्यान में रखकर तथा उनकी नीति एवं कर्मयोग को समझकर उनके जीवन के इस पक्ष का भी विश्लेषण किया जाए । यदि दार्शनिक दृष्टि से देखें तो गोपियों को इन्द्रिय–वृत्ति तथा कृष्ण को मोक्ष प्रदान करने वाले परम तत्त्व के रूप में समझा जा सकता है ।[5] वस्तुतः यदि कृष्ण को दिव्य पुरुष समझ पाएं तो यह बात सरलता से ग्राह्य हो जाती है कि कृष्ण व गोपियों का मिलन जीवात्मा और परमात्मा के मिलन का ही प्रतीक है । जीवात्मा और परमात्मा में परस्पर सखीभाव है, यह विचार हमारी संस्कृति में वैदिक काल से ही व्याप्त है। मुण्डकोपनिषद् में जीव और परमेश्वर की दो पक्षियों के रूप में कल्पना करते हुए कहा गया है:–

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वादवत्त्यनश्नन्नन्याम् अभिचाकशीति ।।[6]

अर्थात् दो सुन्दर पंखों वाले, परस्पर सखाभाव रखने वाले पक्षी एक ही वृक्ष का आश्रय लेकर रहते हैं । उनमें से एक फल का स्वाद लेता है तथा दूसरा न खाता हुआ केवल देखता रहता है। गोपियों और कृष्ण के प्रसंग में भी भोक्ता सखियाँ गोपियां हैं तथा द्रष्टा सखा श्रीकृष्ण और जो मात्र द्रष्टा है वह कामातुर प्रेमी नहीं अपितु संरक्षक ही हो सकता है । भागवत पुराण का निम्नलिखित श्लोक इसी आशय को लक्षित करता है :–

न खलु गोपिकानन्दनो भवान् अखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये, सखे उदेयिवान् सात्वतांकुले।।[7]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् तुम केवल गोपिकानन्दन नहीं हो, तुम समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा को देख सकते हो । तुम तो स्रष्टा के अनुरोध पर विश्व की रक्षा के लिए यदुवंशियों के कुल में आए हो । वस्तुतः वेदों उपनिषदों एवं अनेक वैदिक दर्शनों में परमपुरुष को द्रष्टा एवं प्रकृति अथवा माया को दृश्य जगत् का कारण कहा गया है । तदनुसार गोपियाँ प्रकृति अथवा माया की ही प्रतीक समझी जा सकतीं है । गीता में भी कृष्ण ने प्रकृति एवं माया शक्ति का उल्लेख किया है।[8] विष्णु पुराण में भी कहा गया है:–

स एव वासुदेवोऽयं साक्षात्पुरुष उच्यते।
स्त्रीप्रायमितरत्सर्वं जगत् ब्रह्म पुरस्सरम्।।[9]

अर्थात् यह वासुदेव कृष्ण ही साक्षात् परमपुरुष है । यह सारा स्त्रीप्राय जगत् ब्रह्म से व्याप्त है । अतः गोपियों और कृष्ण के मिलन का चित्रण भौतिक स्तर पर नहीं अपितु आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के आधार पर ही किया जाना चाहिए ।

इन्हीं गोपियों में एक राधा है जिसका नाम यद्यपि महाभारत एवं भागवत जैसे ग्रन्थों में नहीं आता तथापि हमारी संस्कृति में कृष्ण के साथ न जाने कब से जुड़ा है। स्कन्द पुराण में राधा को कृष्ण की आत्मा बताया गया है :–

आत्मा तु राधिका तस्य तथैव रमणादसौ।[10]

वस्तुतः राधा का कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम लौकिक प्रेम से कहीं अधिक ऊँचा है तथा इस प्रेम को इतनी गरिमा प्रदान करने का श्रेय श्रीकृष्ण को है क्योंकि कृष्ण ने ही राधा को वियोग की अग्नि में संतप्त कर एक अनन्य भक्त का रूप दिया । इसीलिए स्कन्द पुराण में श्रीकृष्ण की अन्य सभी नायिकाओं को राधा के अंश का विस्तार मात्र ही कहा है :–

तस्या एवांशविस्तारा सर्वा श्रीकृष्णनायिकाः ।[11]

कृष्ण की मां के रूप में देवकी और यशोदा हैं । कृष्ण ने देवकी की गोद में जन्म लेकर जहां उसे मातृत्व सुख प्रदान किया तथा अत्याचारी कंस से मुक्ति दिलाई वहीं बाल सुलभ लीलाओं द्वारा यशोदा को आश्चर्य चकित किया तथा नंद गांव की गोनिधि की रक्षा करके उनके गौरव को बढ़ाया । इस प्रकार श्रीकृष्ण ने सदैव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से नारी–मर्यादा की रक्षा की है । उनका रसिक रूप तो उनके दिव्य स्वरूप की लौकिक काव्यात्मक अभिव्यक्ति मात्र है ।

पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी की रक्षा कृष्ण के जीवन के इस पहलु का सबसे सशक्त प्रमाण है । क्योंकि यह घटना इस तथ्य को स्पष्ट कर देती है कि सर्वगुणसम्पन्न राजाओं के रहते भी नारी–मर्यादा पर आंच आ सकती है परन्तु केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगेश्वर कृष्ण के रहते नारी की रक्षा सुनिश्चित है । अतएव आज भी संकटग्रस्त मनुष्य कृष्ण का आह्वान करता है ।

अपनी पत्नी रुक्मिणी के साथ राजा के रूप में चित्रित कृष्ण को भक्तों की परम्परा में नारायण और लक्ष्मी का ही व्यक्त रूप माना गया है । कृष्ण की पत्नी के रूप में सत्यभामा, रुक्मिणी एवं अन्य अनेक पत्नियों का जो प्रसंग आता है, वह भी आध्यात्मिक दृष्टिकोण की अपेक्षा रखता है । यहां कृष्ण को एक परम पुरुष तथा समस्तप्रजा में स्त्रीत्व का आरोप करके जीवात्मा–परमात्मा का मिलन ही लक्ष्यार्थ समझना चाहिए । लौकिक दृष्टि से भी देखें तो कृष्ण ने रुक्मिणी व सत्यभामा दोनों को यथायोग्य सम्मान दिया है। वे रुक्मिणी की शिशुपाल से रक्षा करके उसके संरक्षक के रूप में ही चित्रित है।[12]

पौराणिक और वैष्णव परम्परा में वर्णित श्रीकृष्ण के वास्तविक रूप को गीता के अध्ययन के बिना जाना नहीं जा सकता । स्वयं श्रीकृष्ण के अनुसार भी गीता ही उनके यथार्थ–योगेश्वर रूप को प्रस्तुत करती है जो समस्त परम्परा का समन्वय करके आध्यात्मिक चिन्तन द्वारा प्राप्त होता है । नारी गरिमा के संरक्षण के समस्त दृष्टान्तों से बढ़कर है कृष्ण की यह उक्ति –

कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृति, क्षमा।।[13]

अर्थात् स्त्रियों में मैं कीर्ति, श्री, स्मृति, मेधा, धृति एवं क्षमा हूँ । विभूति योग नामक दसवें अध्याय में प्रत्येक तत्त्व की पराकाष्ठा को कृष्ण ने अपनी विभूति बताया है जहां उपर्युक्त भाव स्त्रीत्व की पराकाष्ठा के रूप में कहे गए हैं । श्रीकृष्ण ने नारी को कीर्ति, श्री, स्मृति, मेधा आदि के रूप में सम्मानित किया है । इस प्रकार श्रीकृष्ण के समस्त जीवन चरित में स्त्रीपात्रों का विशेष महत्त्व है जो हमारे देश की 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' वाली संस्कृति के परिचायक हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्धरण-

1. श्रीमद्भगवद्गीता, 7.25
2. तदेव, 7.21
3. कामं क्रोधां भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
   नित्यं हरौविदधातो यान्ति तन्मयतांहि ते ।। भागवत पुराण, 10.29.15
4. श्रीमद्भगवद्गीता, 4.8
5. डॉ॰ शरणाबिहारीगोस्वामी, कृष्णभक्तिकाव्य में सखीभाव, पृ॰ 137
   चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1966
6. मुण्डकोपनिषद्, 3.1.1; The Thirteen Princpal upanisads, Nag Publishers, 1997.
7. भागवतपुराण, 10.31.4; Srimad Bhagavat (Vol. I-IV) Sri Ramkrishna Matha, Chennai, 2004.
8. श्रीमद्भगवद्गीता, 7.5
9. कृष्णभक्तिकाव्य में सखीभाव, पृ॰ 31
10. (i) स्कन्द पुराण, वैष्णव खण्ड, 1.22
    (ii) कृष्ण भक्तिकाव्य में सखीभाव, पृ॰ 144
11. स्कन्द पुराण, वैष्णव खण्ड, 2.12
12. भागवत पुराण, 10.54
13. श्रीमद्भगवद्गीता, 10.34

131924

Central Library
Gurukul Kangri University
Haridwar-249404 (U.A.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

श्री स्वामी श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र के प्रकाशन

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	कीमत रु.
1.	स्वामी श्रद्धानन्द	500 रु.
2.	वेद का राष्ट्रिय गीत	200 रु.
3.	श्रुतिपर्णा	95 रु.
4.	वैदिक साहित्य संस्कृति एवं समाज दर्शन	500 रु.
5.	वेद और उसकी वैज्ञानिकता	300 रु.
6.	शोध सारावली	220 रु.
7.	भारतवर्ष का इतिहास (दो खंडों में)	350 रु. प्रति खंड
8.	क्लासिकल राइटिंग ऑन वैदिक एण्ड संस्कृत लिट्रेचर	80 रु.
9.	दीक्षालोक	500 रु.
10.	स्वामी श्रद्धानन्द के सम्पादकीय लेख	500 रु.
11.	स्वामी श्रद्धानन्द की सम्पादकीय टिप्पणियां	450 रु.
12.	कुलपुत्र सुनें	300 रु.
13.	ग्लिम्पस आफॅ इनवायरमेन्टल परसेप्ट्स ऑफ वैदिक लिट्रेचर	50 रु.
14.	स्वामी श्रद्धानन्द समग्र मूल्यांकन	300 रु.
15.	पं0 इन्द्रविद्यावाचस्पति कृतित्व के आयाम	300 रु.
16.	बातें मुलाकातें	125 रु.
17.	वेदों की वर्णन शैलियां	50 रु.
18.	हिन्दी काव्य को आर्यसमाज की देन	400 रु.
19.	श्रुति विचार सप्तक	500 रु.
20.	स्तूप निर्माण कला	55 रु.
21.	ईशोपनिषद्भाष्य	40 रु.
22.	इन्द्रविद्यावाचस्पति	40 रु.
23.	भारतवर्ष का इतिहास (तृतीय खंड)	55 रु.
24.	अग्निहोत्र	25 रु.
25.	वेद विमर्श	25 रु.
26.	आधुनिक भारत में वक्तृत्व कला की प्रगति	25 रु.
27.	आहार	35 रु.
28.	वैदिक वन्दना गीत	25 रु.
29.	ऋग्वेद विवेचन	25 रु.
30.	विष्णु देवता	25 रु.
31.	सोम	20 रु.
32.	ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार	25 रु.
33.	अध्यात्म रोगों की चिकित्सा	40 रु.
34.	गुरुकुल की आहुति	12 रु.,
35.	ब्राह्मण की गौ	25 रु.
36.	ऋषि-रहस्य	25 रु.
37.	धर्मोपदेश (भाग प्रथम और द्वितीय)	25 रु. प्रति खंड
38.	वैदिक कर्त्तव्य शास्त्र	40 रु.
39.	मेरा धर्म	500 रु.
40.	गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय कलेण्डर भाग-1	250 रु.

विश्वविद्यालय से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं का विवरण

1.	गुरुकुल पत्रिका	वार्षिक मूल्य 100 रु.
2.	वैदिक पॉथ	वार्षिक मूल्य 100 रु.
3.	प्राकृतिक एवं भौतिकीय शोध विज्ञान पत्रिका	वार्षिक मूल्य 500 रु.
4.	आर्य भट्ट	वार्षिक मूल्य 100 रु.
5.	गुरुकुल बिजनेस रिव्यू (GBR)	वार्षिक मूल्य 100 रु.

नोट :- ये सभी पुस्तकें कुलसचिव, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के नाम ड्राफ्ट भेजकर निम्न पते से प्राप्त की जा सकती है। क्रमांक १ से १२ एवं क्रमांक १८ तथा १९ पर ५० प्रतिशत तथा अन्य सभी पुस्तकों पर २० प्रतिशत की छूट देय है।

पुस्तकें मंगाने का पता :- पुस्तकालयाध्यक्ष/व्यवसाय प्रबन्धक, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार-२४९४०४ (उत्तराखण्ड)

मुद्रक : किरण ऑफसैट प्रिंटिंग प्रेस, कनखल, हरिद्वार फोन : 01334-245975

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar